सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी-अनुवादसहिता]



सम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-४१
Bauddha Bharati Series-41

सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहिता]

(२. निदानवग्गो ३. खन्धवग्गो च)

2

प्रधानसम्पादक
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Bauddha Bharati Series-41

The SAMYUTTANIKĀYAPĀLI

(1. Nidāna Vagga, 2. Khandha Vagga)

with

HINDI TRANSLATION

Vol. - 2

Edited & Translated By

Swāmī Dwārikādās Śāstrī

बौद्धभारती

Varanasi

B. 2543] 2000 [V. 2056

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-४१

सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहिता]

(२. निदानवग्गो ३. खन्धवग्गो च)

द्वितीय भाग

सम्पादक एवं अनुवादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारती

वाराणसी

बु० २५४३] सन् २००० ई० [वि० २०५६

प्रकाशक :
बौद्धभारती
पञ्चशील, एस १०/६ ए-२ए,
मकबूल आलम रोड,
(जिला जेल के सामने) वाराणसी-२२१ ००२
फोन : ०५४२-३२९८०४४
मो० : ०९३३६९१२५४७
* * * * * * * * * * * *
पोस्ट बाक्स नं. : १०४९,
वाराणसी-२२१ ००१. (भारत)

Publisher :
Bauddha Bhāratī
S 10/6 A-2A, 'Panchasila'
Maqbool Alam Road,
Opp. Distt. Jail, Varanasi-221 002
Ph. 0542-3298044
Mo. 09336912547
* * * * * * * * * * * *
Post Box No. : 1049,
Varanasi-221 001 (India)

e-mail : bauddhabhrti@satyam.net.in

सहसम्पादक :
धर्मकीर्तिशास्त्री
चन्द्रकीर्तिशास्त्री

प्रथम संस्करण : २००० ई.

First Edition : 2000 E.

Price Rs. 2250/- (In 4 Vol's set)

मुद्रक :
साधना प्रेस
वाराणसी-२२१ ००२

Printed By :
Sadhana Press
Varanasi- 221 002



"एसोहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि, धम्मं च, भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं, भन्ते, भगवा धारेतु, अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणङ्गतं" ति।

प्रकाशकीय वक्तव्य

''अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं'' ति

—विनयपिटके, भगवा बुद्धो।

सन् १९५८-१९६१ ई० में पालित्रिपिटकप्रकाशनसमिति, नालन्दा द्वारा सम्पूर्ण त्रिपिटक प्रकाशन में कार्य करते समय से ही हमारा यह सङ्कल्प था कि समस्त त्रिपिटक (बुद्धवचन) का हिन्दी-रूपान्तर (अनुवाद) के साथ भी प्रकाशन होना चाहिये, जिससे वह अन्य भाषाओं के विद्वानों के लिये भी उपयोगी हो सके। परन्तु यह कार्य स्वयं में इतना विशाल, गुरुतर एवं बहुजनसाध्य था कि हमारे जैसा अल्पसाधन वाला एकाकी पुरुष इसके प्रकाशन का साहस नहीं कर पा रहा था।

एतदर्थ, हमने विगत पन्द्रह वर्षों में अत्यधिक प्रयास किया; भारत के केन्द्रीय शिक्षामन्त्रालय से, उ०प्र० शासन के शिक्षाविभाग से, भारत के अनेक साधनसम्पन्न प्रकाशकों से तथा धनपतियों एवं बुद्धिजीवियों से इस कार्य के लिये आर्थिक साधन संगृहीत कराने हेतु निवेदन किया; परन्तु किसी ने भी, इस कार्यहेतु, हमारा उत्साहवर्धन नहीं किया।

अन्त में, हमने विवश होकर, अपने अल्प साधनों के बल पर ही इस कार्य को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। तदनुसार, सर्वप्रथम सुत्तपिटक का **मज्झिमनिकाय** (सम्पूर्ण) हिन्दी अनुवाद के साथ पाँच भागों में प्रकाशित किया, जो कि पाँच वर्ष में पूर्ण हुआ।

तदनन्तर, हमने सुत्तपिटक का **दीघनिकाय** (सम्पूर्ण) (हिन्दी अनुवाद के साथ) तीन भागों में प्रकाशित करने का सङ्कल्प किया।

इस बार हमने पुनः केन्द्रीय शिक्षामन्त्रालय, नई दिल्ली से (सन् १९९६ ई० में) इस ग्रन्थ के प्रकाशनहेतु आर्थिक अनुदान के लिये आवेदन किया। सौभाग्य से, इस बार हमारा यह आवेदन स्वीकृत हो गया और मुद्रण पर होने वाले समग्र व्यय में से ८० प्रतिशत अंश राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से प्राप्त होने की स्वीकृति मिली। एतदर्थ हम उक्त मन्त्रालय के आभारी हैं।

इसी क्रम में हमने समस्त **संयुत्तनिकायपालि** का हिन्दी अनुवाद के साथ चार भागों में प्रकाशन करने का सङ्कल्प किया। दो वर्ष के कठिन परिश्रम एवं प्रयास के बाद, यह ग्रन्थ (चार भागों में सम्पूर्ण) आप के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है। यह ग्रन्थ २२५० पृष्ठों में पूर्ण हो पाया, अतः ग्रन्थ का कलेवर कुछ विशाल हो गया है। परन्तु हमें इस बात की प्रसन्नता है कि यह ग्रन्थ पालि एवं हिन्दी-दोनों भाषाओं में एक साथ सुलभ हो रहा है। इस

तरह, इस ग्रन्थमाला में त्रिपिटक के **सुत्तनिकाय** का बहुत अंश प्रकाशित हो चुका है। अब **अङ्गुत्तरनिकाय** का अनुवाद कार्य हो रहा है। उसे भी यथासम्भव शीघ्र ही मुद्रित-प्रकाशित कराने का हमारा प्रयास है। अस्तु।

यह इस ग्रन्थ का **२. निदानवग्ग** एवं **३. खन्धवग्ग** नामक द्वितीय भाग है। इसमें ३४वें **ध्यानसंयुक्त** तक २३ संयुक्त संगृहीत हैं। 'मज्झिमनिकाय' एवं 'दीघनिकाय' की तरह इसमें भी हमने पालि-पाठ के लिये बर्मा में हुए छट्ठ सङ्गायन पर आधृत, और श्रीलंका, स्याम (थाईलैण्ड) तथा पालिटैक्स्ट सोसाइटी लन्दन के संस्करणों का सहयोग लेकर १९५९ में 'पालि त्रिपिटक प्रकाशन बोर्ड' नालन्दा से प्रकाशित एवं आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी-संस्करण को आदर्श रूप में रखा है। इसमें हमने बहुत कम परिवर्तन किया है। कहीं कहीं मुद्रणाशुद्धियों के संशोधन के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं किया है।

साथ ही हमने उक्त सभी बर्मा, नालन्दा एवं रोमन संस्करणों की पृष्ठ-संख्या भी रोमन अक्षरों में क्रमशः यथास्थान दे दी है। अनुसन्धाता इससे भी लाभान्वित होंगे।

इसमें हमने आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथा को प्रमाण मान कर अपना स्वतन्त्र **हिन्दी अनुवाद** सम्पन्न करते हुए, उसे पालि-पाठ के साथ नीचे दिया है। इससे पाठकों को पालि एवं उसकी हिन्दी—दोनों ही भाषाएँ अत्यन्त सरलता से हृदयङ्गम हो सकेंगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

यहाँ हमें एक निवेदन अवश्य करना है कि विषय-वैशद्य (बात को समझाने) के लिये त्रिपिटक में विषय का अनुकूल-प्रतिकूल, या आरोह-अवरोह दोनों क्रमों से विस्तृत (अक्षरशः) वर्णन किया जाता है। इस शैली में भाषाच्छटा तो अवश्य आ जाती है, परन्तु इस शब्द-समूह में फँस कर पाठक से मूल विषय दूर दूर सा होने लगता है। इसके लिये पालि-संग्रहकारों ने ऐसे विशेष स्थानों (जहाँ पाठ पुनः पुनः आवृत्त हो) के लिये '...पे०...' की परम्परा रखी है। इस परम्परा का इससे पहले के संस्करणों में निर्भयता से उपयोग हुआ है। इसे हमने भी अपने हिन्दी-अनुवाद में स्वीकार किया है। परन्तु '...पे०...' का अनुवाद हमने '...पूर्ववत्...' करके दिया है, या प्रायः '...' इस चिह्न का प्रयोग किया है, ताकि पाठक प्रसङ्ग के प्रधान विषय से दूर न हो जाय।

यों हमने एक अभिनव पद्धति में बुद्ध-वचन (त्रिपिटक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। यदि विद्वानों को यह पद्धति रुचिकर व अनुकूल प्रतीत हुई तो हम आगामी काल में त्रिपिटक के समग्र ग्रन्थों का प्रकाशन इसी पद्धति से करेंगे।

एक कार्य हमने इस प्रसङ्ग में और किया है। ग्रन्थ में वर्णित सूत्रों का संक्षेप हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ग्रन्थ के प्रारम्भ में दे दिया है, जिससे पाठकों को सूत्रों का वर्ण्य विषय एक ही दृष्टि में हृदयङ्गम हो जाय।

इस तरह, हम इस ग्रन्थमाला को पालि-हिन्दी-इंग्लिश तीनों ही भाषाओं के विद्वानों के लिये उपयोगी बना पाये हैं—ऐसा हमारा विश्वास है।

अन्ते च, इस पवित्र ग्रन्थ का यह अनुवाद हमने स्वकीय ज्ञानवृद्धिहेतु लिखा था, लिखने के बाद यह ध्यान में आया कि यह हमारे समानधर्मा अन्य जिज्ञासुओं का भी अर्थसाधक हो सकता है। इसी उद्देश्य से यह प्रकाशित किया जा रहा है।

इतने विस्तृत अनुवाद में, हो सकता है कहीं परम्परा का निर्वाह न हो पाया हो, एतदर्थ हमारा विज्ञ जनों से विनम्र निवेदन है कि हमारे प्रमाद को क्षमा करते हुए हमें सूचित करने का कष्ट करें; जिससे आगामी संस्करण में उस का परिहार किया जा सके।

वसन्तपञ्चमी, २०५६ वि.
वाराणसी

विद्वद्वशंवद
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

संयुक्तनिकायपालि के

निदानवर्ग का संक्षिप्त विवरण

इस वर्ग में १० संयुक्तों का व्याख्यान है; जैसे—१. निदानसंयुक्त, २. अभिसमय-संयुक्त, ३. धातुसंयुक्त, ४. अनमृताग्रसंयुक्त, ५. काश्यपसंयुक्त, ६. सत्कारलाभसंयुक्त, ७. राहुलसंयुक्त, ८. लक्षणसंयुक्त, ९. औपम्यसंयुक्त एवं १०. भिक्षुसंयुक्त। अब इन का क्रमशः संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है—

१. (१२) निदानसंयुक्त : यह संयुक्त १. बुद्धवर्ग, २. आहारवर्ग, ३. दशबलवर्ग, ४. कळारक्षत्रियवर्ग, ५. गृहपतिवर्ग, ६. दुःखवर्ग, ७. महावर्ग, ८. श्रमणब्राह्मणवर्ग, ९. पेय्यालवर्ग—इन नौ (९) वर्गों में विभाजित कर १०२ सूत्रों के आधार से वर्णित हुआ है। इन में प्रथम बुद्धवर्ग में विपश्यी बुद्ध से गौतम बुद्ध तक ७ बुद्धों ने प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त विस्तारपूर्वक समझाया है।

द्वितीय आहारवर्ग में सांसारिक प्राणियों के चतुर्विध आहारों का वर्णन किया गया है। ये आहार चार प्रकार के हैं—१. ग्रास ग्रास कर खाया जाने वाला आहार, २. स्पर्श, ३. मन की चेतना, एवं ४. विज्ञान। इन्हें आहार इस लिये कहा जाता है कि प्राणी इन के कारण अपने फल का आहरण (ग्रहण) करते हैं। साथ ही १७वें एवं २०वें सूत्र में प्रतीत्यसमुत्पाद, १९वें सूत्र में मूर्ख एवं पण्डित का भेद समझाया गया है।

तृतीय दशबलवर्ग में, १० सूत्रों से भगवान् बुद्ध सर्वोत्तम कहलाने योग्य क्यों हैं? बौद्धमत में कर्मवाद की व्याख्या, सुखदुःख की सहेतुकता, प्रतीत्यसमुत्पाद, परमार्थज्ञ श्रमणब्राह्मण एवं संस्कार पारङ्गत श्रमणब्राह्मणों के विषय में समझाया गया है।

चतुर्थ कळारक्षत्रियवर्ग के १० सूत्रों से यथार्थ ज्ञान, प्रतीत्यसमुत्पाद, ४४ ज्ञानविषय, ज्ञान के ७७ विषय, दुःखमूल अविद्या, शरीर के प्रति अनासक्ति, चेतना एवं सङ्कल्प के अभाव में मुक्ति—ये विषय विस्तारपूर्वक समझाये गये हैं।

पञ्चम गृहपतिवर्ग में, १० सूत्रों से पाँच वैरभयों की शान्ति, दुःख एवं दुःखनाश, लोक एवं उस का नाश, प्रतीत्यसमुत्पाद, मध्यम मार्ग का उपदेश, लौकिक मार्गों का त्याग, आर्यश्रावक को प्रतीत्यसमुत्पाद के प्रति सन्देह नहीं—आदि बातें समझायी गयी हैं।

षष्ठ दुःखवर्ग में, १० सूत्रों से प्रतीत्यसमुत्पाद, संसार के प्रति अशुभ भावना से दुःखनाश, आसक्ति त्याग से तृष्णानाश, सांसारिक आसक्ति से नामरूप का उत्पाद, विज्ञान का उत्पाद एवं प्रतीत्यसमुत्पाद का गाम्भीर्य समझाया गया है।

सप्तम महावर्ग में भी दश सूत्रों से चित्त की चञ्चलता, पञ्चस्कन्धों में वैराग्य से मुक्ति, चतुर्विध आहार, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही सनातन बुद्ध मार्ग, आध्यात्मिक चिन्तन, जरामरणोत्पत्तिनियम, भवनिरोध ही निर्वाण है, जरामरणनिरोध, धर्मज्ञान के अनन्तर ही निर्वाण-ज्ञान—आदि विषय समझाये गये हैं।

अष्टम श्रमणब्राह्मणवर्ग में ११ सूत्रों से परमार्थज्ञ श्रमणों एवं ब्राह्मणों के लक्षण बताये गये हैं।

नवम पेय्यालवर्ग में व्याख्यात १२ सूत्रों से यथार्थ ज्ञानहेतु भगवान् की गवेषणा, यथार्थ ज्ञानहेतु शिक्षक की गवेषणा, यथार्थ ज्ञानहेतु शिक्षा आदि विविध उपायों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस तरह विविध व्याख्यानों से परिपूर्ण यह निदानसंयुक्त सम्पन्न हुआ है॥

१३. अभिसमयसंयुक्त : (अभिसमय=स्पष्ट ज्ञान) इस संयुक्त में ११ सूत्रों के माध्यम से १. स्रोतआपन्न के दु:ख अत्यल्प हैं, २. महानदियों के जल-परिमाण से दु:ख की तुलना, ३. पृथ्वी के परिमाण से दु:ख की तुलना, ४. समुद्र जल के परिमाण से दु:ख की तुलना, ५. हिमालय पर्वत से दु:ख की तुलना, ६. सुमेरु पर्वत से दु:ख की तुलना—आदि का वर्णन है॥

१४. धातुसंयुक्त : इस संयुक्त में चार वर्ग हैं। प्रथम नानात्ववर्ग में—धातु एवं स्पर्श का विभाग, धातुभेद से स्पर्शभेद, वेदनाभेद, बाह्यपञ्चकधातुभेद, संज्ञाभेद, यत्नभेद से धातुभेद अस्वीकार्य, विभिन्न लाभों के हेतु, धातुनानात्व से संज्ञानानात्व—इन विषयों का १० सूत्रों में वर्णन है।

द्वितीय वर्ग में—सात धातु, कारण से कार्य की उत्पत्ति, धातु के कारण संज्ञादि की उत्पत्ति, धातुओं के अनुसार प्राणियों से सम्बन्ध—इन विषयों का १२ सूत्रों के माध्यम से अति विस्तृत वर्णन हुआ है।

तृतीय कर्मपथवर्ग में भी धातुओं के अनुसार प्राणियों का परस्पर मेल, दश कर्मपथिकों में परस्पर मेल, अष्टाङ्गिकों में, दश अङ्गों में परस्पर मेल का वर्णन सात सूत्रों द्वारा किया गया है।

चतुर्थ वर्ग में—पूर्वज्ञान, धातुओं के आस्वादन में विचरण, धातुओं के यथार्थ ज्ञान से मुक्ति, धातुओं में विरक्ति से दु:खमुक्ति, धातुनिरोध से दु:खनिरोध, चार धातु—इन का वर्णन है॥

१५. अनमृताग्रसंयुक्त : इस में दो वर्ग हैं। प्रथम वर्ग में—संसार के अनादित्व में तृणकाष्ठ की, आँसुओं की, दूध की, पर्वत की, लौहनगर की, कल्पों के स्मरण की, गङ्गा नदी के बालुकाकणों की उपमाएँ, संसार के आरम्भ के ज्ञान में असम्भावना का वर्णन है। तथा द्वितीय वर्ग में—दु:खी एवं सुखी प्राणी के प्रति सहानुभूति, समुद्र जल की

अपेक्षा मानव रक्त का आधिक्य, संसार में कोई कभी पिता, माता, भ्राता, भगिनी, पुत्र, पुत्री आदि न बना हो—इस की असम्भावना एवं वैपुल्यपर्वत की प्राचीनता—ये विषय वर्णित हैं। इस संयुक्त में **वैपुल्यपर्वतसूत्र** अनेक दृष्टियों से पठनीय है॥

१६. काश्यपसंयुक्त : इस संयुक्त में १३ सूत्र हैं। इन में—प्राप्त चीवर आदि से सन्तोष, उद्योगी सङ्कोची को ज्ञानप्राप्ति, भिक्षु का गृहस्थों के घरों में चन्द्रमा की तरह निरपेक्षभाव से जाना, आरण्यक व्रत के लाभ, धर्मोपदेश श्रवण में अयोग्य भिक्षु, ध्यानाभिज्ञा में आयुष्मान् काश्यप बुद्धतुल्य, थुल्लतिस्सा भिक्षुणी का सङ्घ से बहिष्कार, आयुष्मान् महाकाश्यप द्वारा आयुष्मान् आनन्द को 'बालक' कहना, अव्याकृत प्रश्न, चार आर्यसत्य एवं कृत्रिम धर्म से सद्धर्म का लोप—ये विषय वर्णित हैं। इस संयुक्त में **उपाश्रयसूत्र** अनेक दृष्टियों से पठनीय है॥

१७. लाभसत्कारसंयुक्त : इस संयुक्त का चार वर्गों में विभाजन कर वर्णन हुआ है।

प्रथम वर्ग में—दारुण लाभसत्कार को मछली पकड़ने के काँटे की, कछुए की, लम्बे बालों वाली भेड़ की उपमा से निर्वाणप्राप्ति एवं तदर्थ साधना में विघ्नकारक बताया है। लाभसत्कार पा कर प्रसन्न होना विद्युत् की, विषाक्त बाण की, शृगाल की, पर्वतों में उठने वाली प्रबल वायु के झोंकों की उपमा से कष्ट कर ही बताया है।

द्वितीय वर्ग में—सोने चाँदी की प्राप्ति के लोभ में असत्य भाषण आदि पापधर्मों का आश्रयण दुःखदायी बताया है।

तृतीय वर्ग में—लाभसत्कार को जञ्जाल बता कर उस के यथार्थ दोषज्ञानद्वारा ही संसार से छुटकारा पाया जा सकता है, क्यों कि लाभसत्कार की रस्सी चर्म को छेद डालती है, तथा यह अर्हत्त्वप्राप्ति में विघ्नकारक है—ऐसा बताया गया है।

चतुर्थ वर्ग में—लाभसत्कार के कारण सङ्घभेद, पुण्यमूल का उच्छेद, कुशल धर्मों तथा शुक्ल धर्मों का नाश, इस में देवदत्त की उपमा दे कर समझाया गया है। इस वर्ग में **अचिरप्रकान्तसूत्र** एवं **पञ्चशतरथसूत्र** पठनीय हैं॥

१८. राहुलसंयुक्त : यह संयुक्त भी दो वर्गों में विभक्त है। प्रथम वर्ग में १० सूत्र हैं, जिन में इन्द्रियों के अनित्यत्व, अनात्मत्व एवं दुःखत्व का, विज्ञान में, संस्पर्श में, वेदना में, संज्ञा में, सञ्चेतना में, तृष्णा में, धातुओं में, स्कन्धों में अनित्यत्व आदि का मनन निरूपित है। द्वितीय वर्ग में—चक्षु आदि में, रूप आदि में अनित्यत्वभावना से मुक्ति, रूप आदि के सम्यक् मनन से मानानुशय का नाश एवं ममत्वत्याग से मुक्ति बतायी गयी है॥

१९. लक्षणसंयुक्त : इस संयुक्त में दो वर्गों के माध्यम से २१ सूत्रों द्वारा गोहत्या, पक्षिहत्या, मृगहत्या, शूकरहत्या, अन्यायपूर्वक अभियोगों का निर्णय, चुगलखोरी, परस्त्रीगामिता, व्यभिचार, झूठे सच्चे ज्यौतिष बताना, डाका डालना, धर्मोपदेश में पापबुद्धि आदि दोषों (पापों) का दुष्परिणाम बताया है॥

२०. औपम्यसंयुक्त : इस संयुक्त में १२ सूत्रों के माध्यम से नख के अग्रभाग पर लगी धूल की, भात बनाने के बड़े पात्र की, भाले के अग्रभाग की, बाण की, मृदङ्ग की, लकड़ी के तख्तों की, हाथियों की उपमा देते हुए भगवान् ने भिक्षुओं को अविद्यामूलक अकुशल धर्मों के त्याग की, मैत्रीभावना की, अप्रमादपूर्वक साधना की, गम्भीर धर्मों में मन लगाने की, सावधान हो कर धर्मसाधना की, निरासक्त हो कर भोजन करने की, संयमपूर्वक भिक्षाटन की एवं अप्रमादमयी साधना की शिक्षा दी है। अन्त में किसी के द्वारा कृत उपकार की कृतज्ञता प्रकट करने की भी शिक्षा दी है॥

२१. भिक्षुसंयुक्त : इस संयुक्त में १२ सूत्रों की सहायता से भगवान् ने यथासमय यथाप्रसङ्ग पृथक् पृथक् भिक्षुओं को देशना की है। जैसे—महामोग्गल्लान को आर्य मौनभाव की, नवप्रव्रजित भिक्षु की शिथिलता को निर्वाणप्राप्ति में बाधा बताना, सुजात भिक्षु की, उस के गुणों के कारण, प्रशंसा, लकुण्डकभद्दिय की ज्ञान के कारण महत्ता बताना, विशाखपञ्चालपुत्र द्वारा की जा रही धर्मकथा की प्रशंसा, नन्द को कामभोगों के प्रति निरपेक्ष रह कर धर्मसाधना का उपदेश, तिष्य भिक्षु को कुपथगामी न होने का उपदेश, किसी स्थविर भिक्षु के एकाकी रहने की प्रशंसा, तथा आयुष्मान् कप्पिन के गुणों की प्रशंसा—ये सभी इस संयुक्त में वर्णित हैं। आयुष्मान् सारिपुत्र एवं महामोग्गलान की परस्पर स्तुति भी यहाँ यथाप्रसङ्ग वर्णित है॥

निदानवर्ग में १० संयुक्त एवं २९६ सूत्र संगृहीत हैं।

निदानवर्गपालि संक्षेप सम्पन्न॥

तृतीय स्कन्धवर्ग का सार-संक्षेप :

संयुक्तनिकायपालि के

स्कन्धवर्ग का संक्षिप्त विवरण

२२. स्कन्धसंयुक्त : ऐसा लगता है, यहाँ से ग्रन्थ के व्याख्यानक्रम में कुछ परिवर्तन कर दिया है। यहाँ से कुछ संयुक्तों में सूत्रों को वर्ग के साथ साथ 'पण्णासक' (पञ्चाशत्क) नाम से भी विभक्त किया गया है। क्यों कि सूत्रों की अधिक सङ्ख्या हो गयी है, अत: उन में पचास पचास की सङ्ख्या के सूत्रों का क्रमश: **मूल पण्णासक** (मूलपञ्चाशत्क), **मज्झिम पण्णासक** (मध्यम पञ्चाशत्क) एवं **उपरि पण्णासक** (उपरिपञ्चाशत्क)—यों एक और विभाजन कर दिया गया है। इस विभाजन की व्याख्यान-पद्धति से पूर्व व्याख्यानपद्धति में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। हाँ, सूत्रों के बहुत अधिक सङ्ख्या में हो जाने के कारण, उन की गणना में 'पञ्चाशत्क' नाम से कुछ सुविधा विशेष हो गयी है। इस के अतिरिक्त कोई अन्य अन्तर हमें प्रथमदृष्ट्या ज्ञात नहीं होता। आगे विद्वान् प्रमाण हैं।

(क) प्रथम पञ्चाशत्क में—पाँच वर्ग हैं तथा उन में बावन (५२) सूत्र परिगणित हैं। जैसे—१. नकुलपितृवर्ग, २. अनित्यवर्ग, ३. भारवर्ग, ४. नयुष्माकंवर्ग, एवं ५. आत्मद्वीपवर्ग।

प्रथम नकुलपितृवर्ग में ११ सूत्र संगृहीत हैं। **प्रथम सूत्र में**—भगवान् ने नकुलपिता गृहपति को शरीर के व्याधिग्रस्त रहते हुए भी चित्त को, साधना के बल पर अनातुर (स्वस्थ) रखने का उपदेश किया गया है। **द्वितीय सूत्र में** 'गुरुशिक्षा' के व्याज से भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्र के मुख से भिक्षुओं के सम्मुख कुछ बौद्धसिद्धान्तों का स्पष्टीकरण कराया है, जिन का समाज में प्रचार करना अत्यावश्यक माना गया। **तृतीय सूत्र** में चारिका करने वाले भिक्षु को ग्राम में किस तरह वास करना चाहिये ?—इसी बात का स्पष्टीकरण आयुष्मान् सारिपुत्र के मुख से सुत्तनिपात की एक गाथा का व्याख्यान हुआ है। **चतुर्थ, पञ्चम** एवं **षष्ठ सूत्रों** में शक्रप्रश्न में भगवान् के उपदेश का स्पष्टीकरण एवं समाधि के अभ्यास से ही स्कन्धों की यथार्थता का ज्ञान होना बताया है। **सप्तम** एवं **अष्टम** सूत्रों में परिग्रह परितर्षणा में तथा अपरिग्रह अपरितर्षणा (तृष्णाक्षय) में सहायक बताया गया। एवं **दशम** तथा **एकादशम** सूत्र में अतीत अनागत एवं वर्तमान के सभी स्कन्ध अनित्य, दु:ख तथा अनात्म हैं—ऐसा उपदेश हुआ है।

द्वितीय अनित्यवर्ग में पञ्चस्कन्धों को अनित्य, दु:ख एवं अनात्म बताते हुए अनित्यता, दु:खता एवं अनात्मता का माहात्म्य बताया गया। साथ ही हेतुओं की अनात्मता का ज्ञान एवं निरोध किस का करना है—यह बताया गया है।

तृतीय भारवर्ग का 'भारसूत्र' सभी बौद्धों के लिये महत्त्वशाली है, फिर भले ही वे श्रावकयानी हों या महायानी। सभी ने इस को समान महत्त्व दिया है। इस में 'भार', 'भारहार', एवं 'भारादान' तीनों ही शब्दों का आध्यात्मिक अर्थ बताते हुए उसे उतार फेंकने का उपदेश किया है। ततः 'परिज्ञा' एवं 'परिज्ञेय धर्म' बताये गये हैं। साथ ही रूप आदि का ज्ञान, छन्दराग का त्याग, रूप आदि का आस्वाद (रस), आस्वाद की गवेषणा, आस्वाद से आसक्ति, उस में आसक्ति से दुःखोत्पत्ति, तथा प्रसङ्गवश 'अघ' एवं 'क्षणभङ्गुरता' का भी विश्लेषण किया गया है॥

चतुर्थ नयुष्माकंवर्ग में—संसार के प्रति ममत्वत्याग का उपदेश किया गया है। तदनन्तर जिज्ञासु की चित्तप्रवृत्ति के अनुकूल धर्मोपदेश का सङ्केत, साथ ही धर्म का उत्पाद, नाश एवं अन्यथाभाव (विपरिणाम); अन्त में वैराग्यमयी, अनित्यानुपश्यना दुःखानुपश्यना अनात्मानुपश्यना पूर्वक साधना भी बतायी गयी है।

पञ्चम आत्मद्वीपवर्ग में—अपना आधार स्वयं बनो, सत्काय की उत्पत्ति तथा उस का निरोधमार्ग, अनित्यता, अविद्या, पाँच स्कन्ध, यथार्थ का ज्ञान, श्रमणत्व एवं ब्राह्मणत्व का बोधन, तथा आसक्ति का क्षय, एवं रूप का यथार्थतः दमन—यह सब बताया गया है॥

(ख) मध्यम पञ्चाशत्क में—पाँच वर्ग हैं—१. उपयवर्ग, २. अर्हद्वर्ग, ३. खादनीयवर्ग, ४. स्थविरवर्ग एवं ५. पुष्यवर्ग।

प्रथम उपयवर्ग में—अनासक्त ही विमुक्त होता है, पञ्चविध बीज का दृष्टान्त, आश्रवों का क्षय कैसे हो?, उपादानस्कन्धों की व्याख्या, सप्तस्थानकुशल में ज्ञानित्व, तथागत एवं प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में भेद, अनित्य, अनात्म दुःख का उपदेश, पूरणकाश्यप का मत, प्रज्वलित रूप आदि, तीन निरुक्तियाँ सब के लिये समान—इन विषयों पर उपदेश हुआ है।

द्वितीय अर्हद्वर्ग में—अपरिग्रह से मारबन्धन से मुक्ति, मार से मुक्ति का उपाय, संसार में आसक्ति से मारबन्धन में फँसना, छन्द, कामना, अनात्म पदार्थों में कामना, रागोत्पादक वस्तुओं में कामना तथा अहङ्कार का नाश—इन बातों का वर्णन है।

तृतीय खादनीयवर्ग में—आस्वाद, उत्पाद, अर्हत्त्व की श्रेष्ठता, बुद्धोपदेश से देवता भी भयाक्रान्त हो कर बुद्ध को दूर से प्रणाम करते हैं, श्मशान में दग्ध काष्ठ की उपमा, आश्रवक्षय का उपाय, पञ्चस्कन्धों की व्याख्या, आदि विषयों पर भगवान् के उपदेश संगृहीत हैं।

चतुर्थ स्थविरवर्ग में १० सूत्रों के माध्यम से इन विषयों का वर्णन हुआ है—उपादान से अहम्भाव, वीतराग ही वीतशोक, देहपात के बाद अर्हत् की स्थिति, दुःखनिरोध, धर्म का द्रष्टा ही बुद्ध का द्रष्टा है, वेदनाओं के प्रति अनासक्ति, वस्तु के उत्पाद-नाश के मनन से मुक्ति, बुद्धोपदिष्ट मध्यम मार्ग, स्कन्धज्ञान से अहङ्कार का नाश।

पञ्चम पुष्पवर्ग में १० सूत्र संगृहीत हैं, जिन में इन विषयों पर भगवान् का उपदेश संगृहीत है—अनित्यताज्ञान से पुनर्जन्मनिरोध, तथागत संसार से अनुपलिप्त, यह शरीर निःसार है, सभी संस्कार अनित्य हैं, अविद्याग्रस्त प्राणी का कोई अन्त नहीं, निरन्तर आत्मचिन्तन ही श्रेयस्कर है, भावना द्वारा आश्रवों का क्षय एवं अनित्य संज्ञा की भावना॥

(ग) उपरिपञ्चाशत्क में—इस पञ्चाशत्क का भी पाँच वर्गों से विभाजन है। जैसे—१. अन्तवर्ग, २. धर्मकथिकवर्ग, ३. अविद्यावर्ग, ४. कुकूलवर्ग एवं ५. दृष्टिवर्ग।

प्रथम अन्तवर्ग में—अन्तचतुष्टय, आर्यसत्यचतुष्टय, सत्कायदृष्टि, परिज्ञेय धर्म, पाँच उपादानस्कन्ध, स्रोतआपन्न, अर्हत् ज्ञानी, छन्दराग एवं कामनाओं का त्याग वर्णित हैं।

द्वितीय धर्मकथिकवर्ग में—अविद्या, विद्या, धर्मकथिक, बद्ध, रूपज्ञान से पुनर्जन्माभाव, संयोजन धर्म, उपादानीय धर्म, शीलवान् तथा श्रुतवान् के मननीय धर्म, अहङ्कारत्याग, अहङ्कारत्याग से मुक्ति आदि वर्णित हैं।

तृतीय अविद्यावर्ग में—अविद्या क्या है? विद्या क्या है?—इन प्रश्नों का विविध प्रकार से उत्तर है।

चतुर्थ कुकूलवर्ग में—पाँच उपादानस्कन्धों की उष्ण भस्म से तुलना, अनित्य में आसक्ति छन्दराग एवं कामना का निषेध, दुःख में आसक्ति आदि का निषेध; अनात्म पदार्थों में आसक्ति आदि का निषेध, वैराग्यपूर्वकसाधना, पदार्थों में अनित्यबुद्धि, दुःखबुद्धि एवं अनात्मबुद्धि से साधना वर्णित है।

पञ्चम दृष्टिवर्ग में—आध्यात्मिक सुखदुःख, 'यह मेरा है' या 'यह मेरी आत्मा है' आदि सांसारिक अभिनिवेश, मिथ्यादृष्टि, सत्कायदृष्टि, आत्मानुदृष्टि, संयोजनों में अभिनिवेश, आयुष्मान् आनन्द को उपदेश आदि वर्णित है॥

२३. राधसंयुक्त : इस संयुक्त को चार वर्गों में, जैसे—१. प्रथम वर्ग, द्वितीय वर्ग, तृतीय आयाचनवर्ग एवं चतुर्थ उपनिषिण्णवर्ग—इस तरह विभक्त कर वर्णित किया है।

प्रथम वर्ग में—मार क्या है? आसक्ति कैसे होती है? भवसूत्र, परिज्ञा परिज्ञाता एवं परिज्ञेय, उपादानस्कन्धज्ञ श्रमण, स्रोतआपन्न ज्ञानी, रूपकामना का त्याग वर्णित है। द्वितीय वर्ग में भी—मार, मारधर्म, अनित्य अनित्यधर्म, दुःख दुःखधर्म, अनात्म एवं अनात्मधर्म, क्षय एवं व्ययधर्म तथा निरोधधर्म पर उपदेश है। तृतीय आयाचनवर्ग में—मार के प्रति कामनात्याग, एवं निरोधधर्मों के प्रति छन्दराग का त्याग वर्णित है। चतुर्थ उपनिषिण्णवर्ग में—मार के प्रति कामनात्याग आदि द्वितीय वर्ग के समान ही वर्णित हुए हैं॥

२४. दृष्टिसंयुक्त : यह संयुक्त भी वर्गों में विभक्त कर के ही वर्णित हुआ है।

ज़ैसे—१. स्रोतआपत्तिवर्ग (१८ सूत्र), २. गमनवर्ग (२६ सूत्र), ३. गमनवर्ग (२६ सूत्र), ४. गमनवर्ग (२६ सूत्र)। प्रथम स्रोतआपत्तिवर्ग में—मिथ्यादृष्टि का मूल, उच्छेदवाद, अक्रियवाद, हेतुवाद, अकृतवाद, शाश्वतवाद, अशाश्वतवाद, अन्तवाद, अनन्तवाद, शरीर एवं तथागत के विषय में मिथ्यादृष्टि—इस तरह अट्ठारह (१८) उपदेश संगृहीत हैं। द्वितीय गमनवर्ग में—मिथ्यादृष्टि का मूल, तथागतविषयक मिथ्यादृष्टियाँ, आत्मविषयक मिथ्यादृष्टियाँ—आदि मिथ्यादृष्टियों का विस्तृत वर्णन है। तृतीय एवं चतुर्थ वर्ग में भी इन्हीं मिथ्यादृष्टियों का विस्तार है॥

२५. अवक्रान्तसंयुक्त : इस संयुक्त में दश सूत्र व्याख्यात हैं। जिन में—'चक्षु आदि अनित्य हैं'—ऐसा ज्ञान, 'रूप आदि अनित्य हैं'—ऐसा ज्ञान, 'पृथ्वी आदि धातु अनित्य हैं'—ऐसा ज्ञान, तथा 'पाँचों स्कन्ध अनित्य हैं'—ऐसा ज्ञान वर्णित है॥

२६. उत्पादसंयुक्त : यह संयुक्त भी दश सूत्रों से ही व्याख्यात है। इन में—चक्षुर्निरोध से दु:खनिरोध, रूपनिरोध से दु:खनिरोध, चक्षुर्विज्ञान, चक्षु:संस्पर्श, तज्जन्य वेदना संज्ञा सञ्चेतना तृष्णा का एवं पृथ्वीधातु आदि का तथा उपादानस्कन्धों का निरोध वर्णित है॥

२७. क्लेशसंयुक्त : यह संयुक्त भी दश ही सूत्रों से व्याख्यात है। इन सूत्रों में—चक्षु आदि छह स्थानों में, रूप आदि विषयों में, विज्ञान में, चक्षु:संस्पर्श आदि में, वेदना संज्ञा सञ्चेतना तृष्णा में, पृथ्वीधातु आदि में तथा स्कन्धों में उद्भूत छन्दराग ही चित्त का उपक्लेश है—यह समझाया गया है॥

२८. सारिपुत्रसंयुक्त : यह संयुक्त भी दश सूत्रों में ही व्याख्यात है। इन में प्रथम सूत्र में विवेकजन्य प्रथम ध्यानावस्था, द्वितीय सूत्र में वितर्करहित द्वितीय ध्यानावस्था, तृतीय सूत्र में प्रीतिसहगत तृतीय ध्यानावस्था, चतुर्थ सूत्र में उपेक्षासहगत चतुर्थ ध्यानावस्था, पञ्चम सूत्र में आकाशानन्त्यायतन अवस्था, षष्ठ सूत्र में विज्ञानानन्त्यायतन अवस्था, सप्तम सूत्र में आकिञ्चन्यायतन अवस्था, अष्टम सूत्र में नैवसंज्ञानासंज्ञायतन अवस्था, नवम सूत्र में निरोधसमापत्ति अवस्था का आयुष्मान् सारिपुत्र द्वारा प्रवचन किया गया है। तथा दशम सूत्र में आयुष्मान् सारिपुत्र द्वारा शुचिमुखी परिव्राजिका द्वारा पूछे गये भोजन विषयक प्रश्नों का उत्तर है॥

२९. नागसंयुक्त : इस संयुक्त में छोटे बड़े मिला कर पचास (५०) सूत्र व्याख्यात हैं। इन सभी में नागयोनि से सम्बद्ध क्रियाकलाप वर्णित हैं। जैसे—चार नागयोनियाँ, उन में औपपातिक (अयोनिज=देव) नागों की श्रेष्ठता, अण्डज नागों द्वारा उपोसथ व्रत ग्रहण, अण्डज नागयोनि में, जरायुज नागयोनि में, संस्वेदज नागयोनि में, औपपातिक नागयोनि में उत्पत्ति का हेतु, इन सभी नागयोनियों में उत्पन्न नागों द्वारा मानवसुलभ धार्मिक व्यवस्थाओं का, उपयोग (पालन) कर अपनी अपेक्षा श्रेष्ठ योनियों में उत्पत्ति का वर्णन है॥

३०. सुपर्णसंयुक्त : इस संयुक्त के व्याख्यान में पूर्व नागसंयुक्त में वर्णित विधि से, ४६ छयालीस सूत्रों द्वारा सुपर्णयोनिसम्बद्ध क्रियाकलाप वर्णित है। उपर्युक्त अनुसार ही इस का भी संक्षेप समझ लें॥

३१. गन्धर्वदेवकायसंयुक्त : संग्रहकारों के प्रमाण से इस संयुक्त में ११२ सूत्रों का व्याख्यान है। जिन में गन्धर्व देवकाय कौन हैं ? गन्धर्वदेव का दशविध विभाजन, गन्धर्वयोनि में उत्पन्न होने का कारण, दान से गन्धर्वयोनि में उत्पत्ति आदि का विस्तार नागसंयुक्त के समान किया गया है॥

३२. वलाहकसंयुक्त : इस संयुक्त में, संग्रहकारों के अनुसार, सतावन (५७) सूत्र वर्णित हैं। जिन में सर्वप्रथम वलाहकदेव कौन हैं ? यह प्रश्न उठा कर उत्तर दिया है—ये वलाहकदेव पञ्चविध होते हैं। फिर वलाहकदेवों की उत्पत्ति का कारण, शीतवलाहक उष्णवलाहक आदि की धार्मिक क्रियाएँ वर्णित हैं। इन का विस्तार नागसंयुक्त के समान कर लेना चाहिये॥

३३. वत्सगोत्रसंयुक्त : इस संयुक्त में आगत सूत्रों में अधोलिखित कारणों से उद्भूत मिथ्यादृष्टियों का वर्णन है। जैसे—१. अज्ञान से, २. अदर्शन से, ३. अनभिसमय (अस्पष्ट ज्ञान) से, ४. अननुबोध से, ५. अप्रतिवेध से, ६. असल्लक्षण से, ७. अनुपलक्षण से, ८. अप्रत्युपलक्षण से, ९. असम्प्रेक्षण से, १०. अप्रत्युपेक्षण से, तथा ११. अप्रत्यक्षकर्म (साक्षात्कार न करने) से॥

३४. ध्यानसंयुक्त : इस संयुक्त में ध्यानावस्था का विशद वर्णन है। ध्यानावस्था के स्थूल क्रम से दो भेद माने गये हैं—१. शमथ (समाधि) एवं २. विपश्यना। यहाँ (इस संयुक्त में) समाधिविषयक व्याख्यान हुआ है। इस के पहले विभाग में—समाधि की अवस्थाएँ— १. समापत्ति, २. स्थिति, ३. व्युत्थान (चिरस्थायिता), ४. कल्यित (दक्षता), ५. आलम्बन, ६. गोचर, ७. अभिनीहार (सङ्कल्प), ८. सत्कृत्यकारी, ९. सातत्यकारी एवं १०. सत्प्रायकारी—इन भेदों से वर्णित हैं। तदनन्तर समापत्ति, स्थिति आदि अवस्थाओं का क्रमशः वर्णन है। इस तरह समाधि की सभी अवस्थाओं का यह वर्णन ५५ (पचपन) सूत्रों में सम्पन्न हुआ। इसे पाठक को ग्रन्थ से साक्षात् समझने में अधिक सुविधा होगी।

प्रसङ्गवश एक बात और बता दें। इसी ग्रन्थ में **ध्यानसंयुक्त** नाम से ५१वें क्रम में भी एक संयुक्त वर्णित मिलेगा। वहाँ (यहाँ से) भिन्न क्रम में ध्यान का व्याख्यान है। वह व्याख्यान, उस का क्रम आने पर लिखा जायगा॥

इस वर्ग में **१३ संयुक्त** एवं **७१६ सूत्र** हैं।

स्कन्धवर्ग-संक्षेप सम्पन्न॥

The Saṁyutta Nikāya Pāli

There are altogether 2945 Suttas in the Saṁyutta Nikāya, classed in fifty-six divisions (called *Saṁyuttas*), grouped in five parts (called *Vaggas*), as under :—

(I) Sagātha Vagga

1. Devatā Saṁyutta
2. Devaputta Saṁyutta
3. Kosala Saṁyutta
4. Māra Saṁyutta
5. Bhikkhuni Saṁyutta
6. Brahma Saṁyutta
7. Brāhmaṇa Saṁyutta
8. Vaṅgisa Saṁyutta
9. Vana Saṁyutta
10. Yakkha Saṁyutta
11. Sakka Saṁyutta

(II) Nidāna Vagga

12. Nidāna Saṁyutta
13. Abhisamaya Saṁyutta
14. Dhātu Saṁyutta
15. Anamatagga Saṁyutta
16. Kassapa Saṁyutta
17. Lābhasakkāra Saṁyutta
18. Rāhula Saṁyutta
19. Lakkhana Saṁyutta
20. Opamma Saṁyutta
21. Bhikkhu Saṁyutta

(III) Khandha Vagga

22. Khandha Saṁyutta
23. Rādha Saṁyutta
24. Diṭṭhi Saṁyutta
25. Okkanta Saṁyutta
26. Uppāda Saṁyutta
27. Kiḷesa Saṁyutta
28. Sāriputta Saṁyutta
29. Nāga Saṁyutta
30. Supaṇṇa Saṁyutta
31. Gandhabbakāya Saṁyutta
32. Valāhaka Saṁyutta
33. Vacchagotta Saṁyutta
34. Jhāna Saṁyutta

(IV) Saḷāyatana Vagga

35. Saḷāyatana Saṁyutta
36. Vedanā Saṁyutta
37. Mātugāma Saṁyutta
38. Jambukhādaka Saṁyutta
39. Sāmaṇḍaka Saṁyutta
40. Moggallāna Saṁyutta
41. Citta Saṁyutta
42. Gāmaṇi Saṁyutta
43. Asaṅkhata Saṁyutta
44. Abyākata Saṁyutta

(V) Mahā Vagga

45. Magga Saṁyutta
46. Bojjhaṅga Saṁyutta
47. Satipaṭṭhāna Saṁyutta
48. Indriya Saṁyutta
49. Sammappadhāna Saṁyutta
50. Bala Saṁyutta
51. Iddhipāda Saṁyutta
52. Anuruddha Saṁyutta
53. Jhāna Saṁyutta
54. Ānāpāna Saṁyutta
55. Sotāpatti Saṁyutta &
56. Sacca Saṁyutta.

The Present Volume

2. NIDĀNAVAGGA

This Vagga deals with the important Buddhist principle of Dependent Origination, *Paticcasamuppāda*, explaining the cycle of birth and death of a being in a chain of twelve links, called the Nidānas.

The central point of the principle is—due to ignorance, a being takes the things of the world as steady, substantial and pleasurable. He gets an attachment for them and runs after them doing all sorts of good and bad actions. The accumulation of the impressions of these develop a particular temperament and inclinations in his personality. The last moment of consiousness of the being in this life is, so to say, a resultant of such impressions accumulated throughout his life. This moment is succeeded by the first moment of consciousness of his next life in the womb of the mother.

Simultaneously with this moment there arises the first seed as its basis, which, in due course, attaints to maturity, with the different sense-faculties. The senses come in contact with the objects, giving rise to feelings—pleasurable or painful or neutral. Feelings beget desire, attachment, and craving. And, again, the being, urged by the cravings, run after the things of the world, doing all sorts of actions, good or bad. Thus, the cycle goes on.

When one is able to dispell ignorance by the realisation of the true nature of existence, all of his desire for it comes to an end.

He dies a death free from desire, having no cause to take a rebirth. This is Nibbāna, a final cessation of all ills of life.

This has been explained in the following twelve links—

Ignorance begets mental formations. Mental formations beget the first moment of consciousness. The first moment of consciousness begets mind and matter. Mind and matter beget the six senses. The six senses beget contact. Contact begets feelings. Feelings beget desire. Desire begets craving. Craving begets life-activi-

ties. Life-activities beget birth. Birth begets old age, death, grief, lamentation and all ills.

Cessation of ignorance leads to the cessation of mental formations. Cessation of mental formations leads to the cessation of the first moment of consciousness. Cessation of the first moment of consciousness leads to the cessation of mind and matter. Cessation of mind and matter leads to the cessation of the six senses. Cessation of the six senses leads to the cessation of contact. Cessation of contact leads to the cessation of feelings. Cessation of feelings leads to the cessation of desire. Cessation of desire leads to the cessation of craving. Cessation of craving leads to the cessation of the life-activities. Cessation of life-activities leads to the cessation of birth. Cessation of birth leads to the cessation of old age, death, grief, lamentation and all ills.

The entire Vagga is devoted to the examination of the interaction amongst the twelve links of this chain of *Paticcasamuppāda* from different points of view.

Anamatagga Saṁyutta—The Suttas of this Saṁyutta are full of inspiration for renunciation. They teach that a being is subjected to miseries and pains through a limitless infinity of time. In the *Tinakaṭṭha Sutta*, it has been said—"Monks, if a man were to collect all the leaves and twigs of Jambudvipa, and go on throwing bits out of it, saying—'this is my mother, this is my mother's mother, this is my mother's mother's mother...'—then, O monks, all of it would be exhausted and still the series of them would go on." In the *Puggala Sutta* it has been said—"Monks, the beginning of the world is not known. If the bones of a single being in his different births could have been all accumulated and preserved, it would have been a huge heap, higher than the mountain. (15).

3. KHANDHAVAGGA

According to Buddhist philosophy there is no existence that is a pure unity, that is not composed of its constituent parts. This is called Anatta-doctrine or the principle of non-existence of a substance. The same principle has been applied to explain the personality of a being. There is no factor in a being like Attā or Jīva

or Puruṣa, a pure abiding substance. A being is a composite of the aggregates of the states of body, feelings, cognition, volition and consciousness.

These aggregates are in a state of flux through and through, and, therefore, devoid of bliss. Attachment towards tham leads to bondage.

The five aggregates have been compared to a burden, and Nibbāna to the getting rid of it. It has been said in the *Bhāra* Sutta—

"The five aggregates are a burden. The being is the carrier of the burden. The misery of the world is carrying the burden. It is a bliss to get rid of the burden. Having got rid of this burden, he does not take another. Uprooting attachment altogether, he attains Nibbāna, the Ultimate. (22.22.24).

Anattalakkhaṇa Sutta—This important Sutta, on substancelessness, was preached by the Buddha at Isipatana to the five monks, the Pancavaggiya Bhikkhus. (22.59.62).

Pārileyya Sutta—This Sutta refers to the incident of the Buddha retiring in a lonely forest, Pārileyya, for having a peaceful time, away from the crowded life of the Saṅgha. (22.81.87).

Yamaka Sutta—This Sutta is important from the philosophical point of view. It explains that Nibbāna is not a state of annihilation. The very conceptions of annihilation and eternity arise due to wrong view of reality. (22.85.92).

Vakkali Sutta—The Bhikkhu Vakkali was very anxious to have a view of the gracious appearance of the Buddha. The Buddha, however, chided him for it and said—"What is the use of having a view of this body, full of dirt and abnomible things? Vakkali, one who sees the Dharma does really see me, one who sees me does really see the Dharma." Then, the Buddha preached to him on the substanceless and flux nature of all the five aggregates. (22.87.94).

संयुत्तनिकायपालि

संयुत्त-वग्ग-सुत्तक्कमो

२. निदानवग्गो दुतियो

३. खन्धवग्गो ततियो

सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहिता]

(२. निदानवग्गो)

* नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स *

संयुत्तनिकायपालि

२. निदानवग्गो

१२. निदानसंयुत्तं

१. बुद्धवग्गो पठमो

१. पटिच्चसमुप्पादसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [N.Vol. II. 3, B.243, R. Vol. II. 1] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि— "भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच— "पटिच्चसमुप्पादं वो, भिक्खवे; देसेस्सामि; तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"कतमो च, भिक्खवे, पटिच्चसमुप्पादो? अविज्जापच्चया, भिक्खवे, सङ्खारा;

---

* उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम *

संयुक्तनिकायपालि

२. निदानवग्ग

१२. निदानसंयुक्त

१. बुद्धवर्ग प्रथम

प्रतीत्यसमुत्पादसूत्र : : **प्रतीत्यसमुत्पाद**

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती** में अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को.... बुलाया। तथा उनको यों कहा— "भिक्षुओ! मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद के विषय में उपदेश करूँगा। उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो, तथा जो मैं कहूँ उसे भली भाँति मन में बैठा लो।"

भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! यह 'प्रतीत्यसमुत्पाद' क्या है? भिक्षुओ! (मनुष्य

सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं; विञ्ञाणपच्चया नामरूपं; नामरूपपच्चया सळायतनं; सळायतनपच्चया फस्सो; फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा; तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो; भवपच्चया जाति; जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पटिच्चसमुप्पादो।

"अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाण-[B.244, R.2] निरोधो; विञ्ञाणनिरोधा नामरूपनिरोधो; नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो; सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो; फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो; वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो; तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो; भवनिरोधा [N.4] जातिनिरोधो; जातिनिरोधा जरामणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायसा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति।

२. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥ ●

२. विभङ्गसुत्तं

३. सावत्थियं विहरति। "पटिच्चसमुप्पादं वो, भिक्खवे, देसेस्सामि

के चित्त में) अविद्या के होने से संस्कार होते हैं, संस्कारों के होने से विज्ञान होता है, विज्ञान के होने से नामरूप होते हैं, नामरूप के होने से छह आयतन होते हैं। छह आयतनों के होने से स्पर्श होता है, स्पर्श के होने से वेदना होती है। वेदना के होने से तृष्णा होती है। तृष्णा के होने से उपादान (ग्रहण) होता है। उपादान के होने से भव (संसार का अस्तित्व) होता है, भव होने जाति (जन्म) होती है। जाति होने से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दु:ख, दौर्मनस्य एवं उपायास (चिन्ता) होते हैं। इस तरह इस समस्त दु:खसमूह का समुदय (उद्भव) होता है। भिक्षुओ! इसी को 'प्रतीत्यसमुत्पाद' कहते हैं।

(प्रतिलोम पद्धति) "उस अविद्या के पूर्णत: नष्ट (निरोध) हो जाने से संस्कार (उद्भूत) नहीं हो पाते, संस्कारों के सर्वथा निरोध होने पर विज्ञान नहीं....विज्ञान के न होने पर नामरूप नहीं....नामरूप के सर्वथा निरुद्ध हो जाने पर छह आयतन नहीं....छह आयतनों के न होने पर स्पर्श नहीं...., स्पर्श के सर्वथा निरोध से वेदना नहीं...., वेदना के सर्वथा न होने से तृष्णा नहीं...., तृष्णा के न रहने से उपादान नहीं...., उपादान के निरुद्ध होने से भव नहीं...., भव के न रहने से जाति का निरोध...., जाति के निरोध से इस समस्त सांसारिक दु:खसमुदय का सर्वथा निरोध हो जाता है।"

२. भगवान् ने यों उपदेश किया। इसे सुनकर उन भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण अभिनन्दन किया॥ ●

विभजिस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''कतमो च, भिक्खवे, पटिच्चसमुप्पादो? अविज्जापच्चया, भिक्खवे, सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं; विञ्ञाणपच्चया नामरूपं; नामरूपपच्चया सळायतनं; सळायतनपच्चया फस्सो; फस्सच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा; तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो; भवपच्चया जाति; जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

''कतमं च भिक्खवे, जरामरणं? या तेसं तेसं सत्तानं तम्हि तम्हि सत्तनिकाये जरा जीरणता खण्डिच्चं पालिच्चं वलित्तचता आयुनो संहानि इन्द्रियानं परिपाको; अयं वुच्चति जरा। या तेसं तेसं सत्तानं तम्हा तम्हा सत्तनिकाया चुति चवनता भेदो अन्तरधानं [R.3] मच्चु मरणं कालकिरिया खन्धानं भेदो कळेवरस्स निक्खेपो जीवितिन्द्रियस्स उपच्छेदो; इदं वुच्चति मरणं। इति अयं च जरा, इदं च मरणं। इदं वुच्चति भिक्खवे, जरामरणं।

''कतमा च, भिक्खवे, जाति? या तेसं तेसं सत्तानं तम्हि तम्हि सत्तनिकाये जाति

---

२. विभङ्गसूत्र : : 'प्रतीत्यसमुत्पाद' की व्याख्या

३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! मैं तुम्हें 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का उपदेश करूँगा....पूर्ववत्....उसे मन में बैठा लो।'' भगवान् यों बोले—

''भिक्षुओ! यह 'प्रतीत्यसमुत्पाद' क्या है? भिक्षुओ! अविद्या के कारण संस्कार होते हैं, संस्कारों के कारण....पूर्ववत्...., जाति के कारण जरा मरण, शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य एवं उपायास (चिन्ता) होते हैं। इस तरह इस समस्त सांसारिक दुःखसमूह समुदय (उद्भव) होता है।

''और, भिक्षुओ! 'जरा' एवं 'मरण' क्या है? यह जो उन उन जीवों का उन उन योनियों (सत्त्वनिकायों) में आकर बूढ़ा हो जाना, पुराना हो जाना, दाँत आदि का टूट जाना, बालों का श्वेत हो जाना, त्वचा में झुर्रियाँ पड़ जाना, आयु की क्षीणता (संहानि) तथा इन्द्रियों की शिथिलता (परिपाक)है, इसी को **जरा** कहते हैं। तथा जो उन उन जीवों का उन उन योनियों से च्युत हो जाना, मुक्त हो जाना, देहपात हो जाना, उससे पृथक् हो जाना, अन्तर्धान (लोप) हो जाना, मृत्यु, मरण, समय समाप्त हो जाना, शरीर का गिर जाना, स्कन्धों का छिन्न भिन्न हो जानाहै, इसको कहते हैं **मरण**। यों इस जरा एवं इस मरण को **जरामरण** कहते हैं।

''और, भिक्षुओ! यह 'जाति' क्या है? उन उन प्राणियों का उन उन योनियों में

सञ्जाति ओक्कन्ति निब्बत्ति अभिनिब्बत्ति खन्धानं पातुभावो आयतनानं पटिलाभो। अयं च जरा, इदं च मरणं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, जरामरणं।

[B.245] ''कतमो च, भिक्खवे, भवो? तयो मे, भिक्खवे, भवाकामभवो, रूपभवो, अरूपभवो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भवो।

[N.5] ''कतमं च, भिक्खवे, उपादानं? चत्तारिमानि, भिक्खवे, उपादानानि— कामुपादानं, दिट्ठुपादानं, सीलब्बतुपादानं, अत्तवादुपादानं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, उपादानं।

''कतमा च, भिक्खवे, तण्हा? छयिमे, भिक्खवे तण्हाकाया—रूपतण्हा, सद्दतण्हा, गन्धतण्हा, रसतण्हा, फोट्ठब्बतण्हा, धम्मतण्हा। अयं वुच्चति, भिक्खवे, तण्हा।

''कतमा च, भिक्खवे, वेदना? छयिमे, भिक्खवे, वेदनाकाया—चक्खुसम्फस्सजा वेदना, सोतसम्फस्सजा वेदना, घाणसम्फस्सजा वेदना, जिव्हासम्फस्सजा वेदना, कायसम्फस्सजा वेदना, मनोसम्फस्सजा वेदना। अयं वुच्चति, भिक्खवे, वेदना।

''कतमो च, भिक्खवे, फस्सो? छयिमे, भिक्खवे, फस्सकायाचक्खुसम्फस्सो,

---

जन्म लेना, उत्पन्न होना, आना, आकर उस रूप में प्रकट होना, स्कन्धों का प्रादुर्भाव, तथा आयतनों का प्रतिलाभ (प्राप्ति)—भिक्षुओ! इसी को कहते हैं **जाति**।

''और, भिक्षुओ! यह 'भव' क्या है? भिक्षुओ! इस भव के तीन भेद हैं— ? १. कामभव, २. रूपभव, एवं ३. अरूपभव। ('कामभव' का अर्थ है—कामलोक में बने रहना, 'रूपभव' का अर्थ है—रूपलोक में बने रहना एवं 'अरूपभव' का अर्थ है— अरूपलोक में बने रहना।) भिक्षुओ! इसी को कहते हैं—**भव**।

''और, भिक्षुओ! 'उपादान' (ग्रहण) किसे कहते हैं? भिक्षुओ! यह उपादान चार प्रकार का होता है; जैसे—१. काम-उपादान, २. मिथ्यादृष्टि-उपादान, ३. शीलव्रत-उपादान एवं ४. आत्मवाद-उपादान। भिक्षुओ! इसी को कहते हैं—**उपादान**।

''और, भिक्षुओ! यह 'तृष्णा' क्या है? भिक्षुओ! यह तृष्णा छह आकार की होती है; जैसे—१. रूपतृष्णा, २. शब्दतृष्णा, ३. गन्धतृष्णा, ४. रसतृष्णा, ५. स्पर्शतृष्णा एवं ६. धर्मतृष्णा। यह छह आकार की तृष्णा ही **तृष्णा** कहलाती है।

''और, भिक्षुओ! यह 'वेदना' क्या है? इस वेदना के छह भेद होते हैं; जैसे—१. चक्षु:संस्पर्शजन्य वेदना, २. श्रोत्रसंस्पर्शजन्य वेदना, ३. घ्राणसंस्पर्शजन्य वेदना, ४. जिह्वासंस्पर्शजन्य वेदना, ५. कायसंस्पर्शजन्य वेदना एवं ६. मन:संस्पर्शजन्य वेदना। भिक्षुओ! इन छहों वेदनाओं को **वेदना** कहते हैं।

सोतसम्फस्सो, घाणसम्फस्सो, जिव्हासम्फस्सो, कायसम्फस्सो, मनोसम्फस्सो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, फस्सो।

"कतमं च, भिक्खवे, सळायतनं? चक्खायतनं, सोतायतनं, घाणायतनं, जिव्हायतनं, कायायतनं, मनायतनं—इदं वुच्चति, भिक्खवे, सळायतनं।

"कतमं च, भिक्खवे, नामरूपं? वेदना, सञ्ञा, चेतना, फस्सो, मनसिकारो—इदं वुच्चति नामं। चत्तारो च महाभूता, चतुन्नं च महाभूतानं उपादायरूपं—इदं वुच्चति रूपं। इति इदं च नामं, इदं च रूपं—इदं वुच्चति, भिक्खवे, नामरूपं।

"कतमं च, भिक्खवे, विञ्ञाणं? छयिमे, भिक्खवे, विञ्ञाणकाया—चक्खुविञ्ञाणं, सोतविञ्ञाणं, घाणविञ्ञाणं, जिव्हाविञ्ञाणं, कायविञ्ञाणं, मनोविञ्ञाणं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, विञ्ञाणं।

"कतमे च, भिक्खवे, सङ्खारा? तयोमे, भिक्खवे, सङ्खारा—कायसङ्खारो, वचीसङ्खारो, चित्तसङ्खारो। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे सङ्खारा।

"कतमा च,भिक्खवे, अविज्जा? यं खो, भिक्खवे दुक्खे अञ्ञाणं, दुक्खसमुदये

"और, भिक्षुओ! यह 'स्पर्श' क्या है? यह **स्पर्श** भी छह प्रकार का होता है; जैसे—१. चक्षु:संस्पर्श, २. श्रोत्रसंस्पर्श, ३. घ्राणसंस्पर्श, ४. जिह्वासंस्पर्श, ५. कायसंस्पर्श एवं मन:संस्पर्श।

"और, भिक्षुओ! यह 'षडायतन' क्या कहलाता है? भिक्षुओ! आयतन छह प्रकार का होता है; जैसे—१. चक्षुरायतन, २. श्रोत्रायतन, ३. घ्राणायतन, ४. जिह्वायतन, ५. कायायतन एवं ६. मनआयतन। भिक्षुओ! ये छहों आयतन **षडायतन** कहलाते हैं।

"और, भिक्षुओ! यह 'नामरूप' क्या कहलाता है? भिक्षुओ! वेदना, संज्ञा, चेतना, स्पर्श एवं मनस्कार—यह समूह 'नाम' कहलाता है। तथा चार महाभूत तथा चारों महाभूतों को लेकर जो रूप बनते हैं, इन्हे 'रूप' कहते हैं। इस तरह यह 'नाम' और यह 'रूप' कहलाते हैं। भिक्षुओ! यह **नामरूप** कहलाता है।

"और, भिक्षुओ! 'विज्ञान' किसे कहते हैं? भिक्षुओ! विज्ञान छह होते हैं; जैसे—१. चक्षुर्विज्ञान, २. श्रोत्रविज्ञान, ३. घ्राणविज्ञान, ४. जिह्वाविज्ञान, ५. कायविज्ञान, एवं ६. मनोविज्ञान। भिक्षुओ! यह समूह **विज्ञान** कहलाता है।

"और, भिक्षुओ! 'संस्कार' किसे कहते हैं? भिक्षुओ! ये तीन संस्कार होते हैं; जैसे—१. कायसंस्कार, २. वाक्संस्कार एवं ३. मन:संस्कार। भिक्षुओ! इन तीन संस्कारों को **संस्कार** कहते हैं।

"और, भिक्षुओ! 'अविद्या' किसे कहते हैं? भिक्षुओ! 'अविद्या' चार प्रकार की होती है; जैसे—१. दु:ख को न जानना, २. दु:खसमुदय को न जानना, ३. दु:खनिरोध को

अञ्ञाणं, दुक्खनिरोधे अञ्ञाणं, दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय अञ्ञाणं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अविज्जा।

[B.246] "इति खो, भिक्खवे, अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं ...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो...पे०...एवमेतस्स [N.6] केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति॥ ●

३. पटिपदासुत्तं

४. सावत्थियं विहरति। मिच्छापटिपदं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि सम्मापटिपदं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसिकरोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"कतमा च, भिक्खवे, मिच्छापटिपदा? अविज्जापच्चया, भिक्खवे, सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, मिच्छापटिपदा।

"कतमा च, भिक्खवे, सम्मापटिपदा? अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो; विञ्ञाणनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो [R.5] होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सम्मापटिपदा" ति॥ ●

न जानना तथा दुःखनिरोध की तरफ ले जाने वाले मार्ग को न जानना। भिक्षुओ! ये चार प्रकार के अज्ञान **अविद्या** कहलाते हैं। "भिक्षुओ! इसी अविद्या के होने से संस्कार होते हैं,.....पूर्ववत्.....। इस तरह समस्त दुःखसमूह का समुदय (उद्भव) होता है।

(इसके विपरीत) अविद्या के न रहने पर समस्त संस्कारों का निरोध हो जाता है, उन संस्कारों के निरोध होने पर विज्ञान का निरोध हो जाता है,.....पूर्ववत्....इस तरह इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है।" ●

३. प्रतिपदासूत्र : : **मार्ग-भेद**

श्रावस्ती में साधना के समय....।" अब, भिक्षुओ! मैं तुम्हें साधना की मिथ्याप्रतिपदा एवं सम्यक्प्रतिपदा के विषय में बताऊँगा। उसे एकाग्रचित्त होकर भली भाँति कान लगाकर सुनो।"....पूर्ववत्....। भगवान् यों कहने लगे—

"भिक्षुओ! यह 'मिथ्याप्रतिपदा' (साधना का अनुचित मार्ग) क्या है? भिक्षुओ! अविद्या के कारण संस्कारों का होना, संस्कारों के कारण विज्ञान का होना....पूर्ववत्....यों इस समस्त दुःखस्कन्ध का उद्भव होता है। यही, भिक्षुओ! मिथ्याप्रतिपदा कहलाती है।

"और, भिक्षुओ! यह 'सम्यक्प्रतिपदा' (साधना का उचित मार्ग) क्या है? अविद्या के पूर्णतः हट जाने या निरुद्ध हो जाने पर संस्कारों का निरोध हो जाता है, संस्कारों का

४. विपस्सीसुत्तं

५. सावत्थियं विहरति। ''विपस्सिस्स, भिक्खवे,भगवतो अरहतो सम्मा-सम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि—'किच्छं वतायं लोको आपन्नो जायति च जीयति च मीयति च चवति च उपपज्जति च। अथ च पनिमस्स दुक्खस्स निस्सरणं नप्पजानाति जरामरणस्स। कुदास्सु नाम इमस्स दुक्खस्स निस्सरणं पञ्ञायिस्सति जरामरणस्सा' ति?

''अथ खो भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि— 'किम्हि नु खो सति जरामणं होति, किंपच्चया जरामरणं' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'जातिया खो सति जरामरणं होति, जातिपच्चया जरामरणं' ति ।

''अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि [B.247] नु खो सति जाति होति, किंपच्चया जाती' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स [N.7] बोधसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'भवे खो सति जाति होति, भवपच्च्या जाती' ति।

निरोध होने पर विज्ञान का निरोध....पूर्ववत्....। इस तरह समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है। यह, भिक्षुओ! 'सम्यक्प्रतिपदा' कहलाती है॥ •

४. विपश्यीसूत्र : : विपश्यी बुद्ध को प्रतीत्यसमुत्पाद की अनुभूति

५. **श्रावस्ती में** साधना के समय। भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् विपश्यी को सम्बोधिप्राप्ति से पूर्व, जबकि वे अनभिसम्बुद्ध बोधिसत्त्व ही थे, कभी यह विचार हुआ—''अरे! यह संसार कैसे घोर सङ्कट में पड़ा है। यह जनमता है, बूढ़ा होता है, मर जाता है, पुनः जन्म लेता है। जन्म-मरण की परम्परा से कभी मुक्ति नहीं पाता। अहो! मैं इस जन्म-मरण से मुक्ति (निःसरण) का ज्ञान कब प्राप्त कर पाऊँगा?''

अनुलोम पद्धति से विचार : ''तब, भिक्षुओ, विपश्यी बोधिसत्त्व को यों विचार हुआ—'किसके होने पर या किसके कारण यह जरामरण होता है?' सूक्ष्मतया चिन्तन करने पर उन्हें यह समझ में आया कि यह जरामरण जाति के होने पर या जाति के कारण होता है।

''भिक्षुओ! तब विपश्यी बोधिसत्त्व को अच्छी तरह विचार करने पर मन में यह हुआ—'किसके होने पर या किस कारण यह 'जाति' होती है? तब भिक्षुओ! उन विपश्यी बोधिसत्त्व को बहुत चिन्तन के बाद यह समझ में आया कि यह जाति भव के होने पर या भव के कारण होती है।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति भवो होति, किंपच्चया भवो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'उपादाने खो सति भवो होति, उपादानपच्चया भवो' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति उपादानं होति, किंपच्चया उपादानं' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स [R.6] बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'तण्हाय खो सति उपादानं होति, तण्हापच्चया उपादानं' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति तण्हा होति, किंपच्चया तण्हा' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'फस्से खो सति वेदना होति, फस्सपच्चया वेदना' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति वेदना होति, किंपच्चया वेदना' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'फस्से खो सति वेदना होति, फस्सपच्चया वेदना' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति फस्सो होति, किंपच्चया फस्सो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'सळायतने खो सति फस्सो होति, सळायतनपच्चया फस्सो' ति।

"तदनन्तर, भिक्षुओ! उन विपश्यी बोधिसत्त्व को बहुत चिन्तन करने पर, 'यह भव किसके होने पर या किस कारण होता है?'....पूर्ववत्....'यह भव उपादान के होने पर या उपादान के कारण होता है।'

"तदनन्तर,....उपादान किसके होने पर या किस कारण होता है?'....'यह उपादान तृष्णा के होने पर या तृष्णा के कारण होता है।'

"तदनन्तर,....यह तृष्णा किसके होने पर या किस कारण होती है?'....'यह तृष्णा वेदना के होने पर या वेदना के कारण होती है।

"तदनन्तर,....'यह वेदना किसके होने पर या किस कारण होती है?'....'यह वेदना स्पर्श के होने पर या स्पर्श के कारण होती है।'

"तदनन्तर,....'यह स्पर्श किसके होने पर किस कारण होता है?'....'यह स्पर्श छह आयतनों के होने पर या छह आयतनों के कारण होता है।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि [B.248] नु खो सति सळायतनं होति, किंपच्चया सळायतनं' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'नामरूपे खो सति सळायतनं होति, नामरूपपच्चया सळायतनं' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु [N.8] खो नामरूपं होति, किंपच्चया नामरूपं' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'विञ्ञाणे खो सति नामरूपं होति, विञ्ञाणपच्च्या नामरूपं' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति विञ्ञाणं होति, किंपच्चया विञ्ञाणं' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'सङ्खारेसु खो सति विञ्ञाणं होति, सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति सङ्खारा होन्ति, किंपच्चया सङ्खारा' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'अविज्जाय खो सति सङ्खारा होन्ति, अविज्जापच्चया सङ्खारा' ति।

"इति हिदं अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०...एवमेतस्स केवलंस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। 'समुदयो, समुदयो' ति खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि॥

"तदनन्तर,....'यह षडायतन किसके होने पर या किस कारण होता है?'....'यह षडायतन नामरूप के होने पर या नामरूप के कारण होता है।

"तदनन्तर,....'यह नामरूप किसके होने पर या किस कारण होता है?'....'यह नामरूप विज्ञान के होने पर या विज्ञान के कारण होता है?'

"तदनन्तर,....'यह विज्ञान किसके होने पर या किस कारण होता है?'....'यह विज्ञान संस्कारों के होने पर या संस्कारों के कारण होता है।'

"तदनन्तर,....'ये संस्कार किसके होने पर या किस कारण होते हैं?'....'ये संस्कार अविद्या के होने पर या अविद्या के कारण होते हैं।'

"यों, ये संस्कार अविद्या के कारण उत्पन्न होते हैं, संस्कारों के कारण विज्ञान होता है....पूर्ववत्....। इस तरह इस समस्त दुःखस्कन्ध का समुदय होता है। इस प्रकार

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति जरामरणं न होति, किस्स निरोधा जरामरणनिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'जातिया खो असति जरामरणं न होति, जातिनिरोधा जरामरणनिरोधो' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो [B.249] असति जाति न होति, किस्स निरोधा जातिनिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो —'भवे खो असति जाति न होति, भवनिरोधा जातिनिरोधो' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति भवो न होति, किस्स निरोधा भवनिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स [N.9] बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'उपादाने खो असति भवो न होति, उपादाननिरोधा भवनिरोधो' ति।

"अथ खो,भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति उपादानं न होति, किस्स निरोधा उपादाननिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'तण्हाय खो असति उपादानं न होति, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो' ति।

"अथ खो,भिक्खवे, विप्पस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो [R.8] असति तण्हा न होति, किस्स निरोधा तण्हानिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'वेदनाय खो असति तण्हा न होति, वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो' ति।

भिक्षुओ! उन विपश्यी बोधिसत्त्व की, इस पूर्वश्रुत 'समुदय' शब्द पर विचार करते करते, पूर्व में न सुने गये धर्मों के विषय में, आँखें खुल गयीं, ज्ञान (विवेक) उत्पन्न हो गया, प्रज्ञा (समझ) उत्पन्न हो गयी, विद्या उत्पन्न हो गयी, दिव्य प्रकाश उनके सम्मुख प्रकट हो गया॥

प्रतिलोम पद्धति से विचार : "तब, भिक्षुओ! उन विपश्यी बोधिसत्त्व को यों विचार हुआ—किसके न होने पर या किसके निरुद्ध होने पर यह जरामरण निरुद्ध हो जाता है? तब भिक्षुओ! उनको, सूक्ष्मता से चिन्तन करने पर, अन्त में यह समझ (प्रज्ञा) में आया—'जाति के न होने पर या जाति के निरुद्ध होने पर यह जरामरण नहीं होता। अर्थात् जाति के निरोध से जरामरण का निरोध हो जाता है।....पूर्ववत्.... *[पीछे अनुलोम पद्धति में आया हुआ पाठ यहाँ प्रतिलोम पद्धति से परिवर्तन कर पढ़ें।]*

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति वेदना न होति, किस्स निरोधा वेदनानिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'फस्से खो असति वेदना न होति, फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति फस्सो न होति, किस्स निरोधा फस्सनिरोधो' ति? अथ खो [B.250] भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'सळायतने खो असति फस्सो न होति, सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति सळायतनं न होति, किस्स निरोधा सळायतननिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'नामरूपे खो असति सळायतनं न होति, नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति नामरूपं न होति, किस्स निरोधा नामरूपनिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—[N.10] 'विञ्ञाणे खो असति नामरूपं न होति विञ्ञाणनिरोधा नामरूपनिरोधो' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति विञ्ञाणं न होति, किस्स निरोधा विञ्ञाणनिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'सङ्खारेसु खो असति विञ्ञाणं न होति, सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स एतदहोसि—'किम्हि नु [R.9] खो असति सङ्खारा न होन्ति, किस्स निरोधा सङ्खारनिरोधो' ति? अथ खो, भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'अविज्जाय खो असति सङ्खारा न होन्ति, अविज्जानिरोधा सङ्खारनिरोधो' ति।

"इति हिदं अविज्जानिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो... पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती ति। 'निरोधो, निरोधो' ति खो,

---

"यों, यह अविद्या के निरोध से संस्कारों का निरोध, संस्कारों के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है....पूर्ववत्....इस तरह इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध होता है। इस प्रकार उन विपश्यी बोधिसत्त्व की, इस पूर्वश्रुत 'निरोध' शब्द पर विचार करते करते, पूर्व

भिक्खवे, विपस्सिस्स बोधिसत्तस्स पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि''।

(सत्तन्नं पि बुद्धानं एवं वित्थारेतब्बो)

५. सिखीसुत्तं

६. सिखिस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स...पे०...। •

६. वेस्सभुसुत्तं

७. वेस्सभुस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स...पे०..॥ •

७. ककुसन्धसुत्तं

८. ककुसन्धस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स...पे०...॥ •

८. कोणागमनसुत्तं

[N.11] ९. कोणागमनस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स...पे०...॥ •

९. कस्सपसुत्तं

१०. कस्सपस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स...पे०...॥ •

१०. गोतमसुत्तं

[R.10] ११. ''पुब्बेव मे, भिक्खवे, सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेवं सतो

में न सुने गये धर्मों के विषय में आँखें खुल गयीं, असन्दिग्ध ज्ञान हो गया, प्रज्ञा (समझ) आ गयी, ज्ञान (विवेक) हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी। यों उनके सम्मुख दिव्य प्रकाश प्रकट हो गया॥'' •

[इसी तरह इस प्रतीत्यसमुत्पाद की अनुभवपद्धति का अनुपद में ही आगे वर्णित सातों बुद्धों के सूत्रों में भी विस्तार कर लेना चाहिये।]

५. शिखीसूत्र : : ....प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुभव

६. भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् शिखी को....पूर्ववत्....॥ •

६. विश्वभूसूत्र : : ....प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुभव

७. भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् विश्वभू को....पूर्ववत्....॥ •

७. ककुसन्धसूत्र : : ....प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुभव

८. भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् ककुसन्ध को....पूर्ववत्....॥ •

८. कोणागमनसूत्र : : ....प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुभव

९. भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् कोणागमन को....पूर्ववत्....॥ •

९. काश्यपसूत्र : : ....प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुभव

१०. भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् काश्यप को....पूर्ववत्....॥ •

एतदहोसि—'किच्छं वतायं लोको आपन्नो जायति च जीयति च मीयति च चवति च उपपज्जति च, अथ च पनिमस्स दुक्खस्स निस्सरणं पञ्ञायिस्सति जरामरणस्सा' ति?

''तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति जरामरणं होति, किंपच्चया जरामरणं' ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'जातिया खो सति जरामरणं होति, जातिपच्चया जरामरणं' ति।

''तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति जाति [B.252] होति...पे०...भवो...उपादानं....तण्हा...वेदना...फस्सो...सळायतनं...नामरूपं...विञ्ञाणं... सङ्खारा होन्ति, अविज्जापच्चया सङ्खारा' ति।

''इति हिदं अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खाक्खन्धस्स समुदयो होति। 'समुदयो, समुदयो' ति खो मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि॥

''तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति जरामरणं न होति, किस्स निरोधा जरामरणनिरोधो' ति? तस्स मय्हं भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा अहु

---

१०. गौतमसूत्र : : प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुभव

११. ''भिक्षुओ! बुद्धत्वप्राप्ति से पूर्व, बोधिसत्त्वावस्था में रहते हुए मुझको भी यह विचार हुआ था—'यह संसार बहुत मन्दभाग्य है कि यह निरन्तर सङ्कटग्रस्त ही रहता है। यह जनमता है, बूढ़ा होता है, मरता है, पुनः जन्म लेता है; परन्तु इसे इस जन्म मरण से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं सूझता। न जाने यह कब इस जन्म-मरण से छुटकारा पाने का कोई उपाय जान पाएगा!'

अनुलोम पद्धति से विचार : ''तब मुझको विचारते विचारते यह ध्यान में आया— 'किस के होने पर या कि कारण यह जाति होती है?'....भव के कारण यह जाति होती है।....भव होता है....उपादान....तृष्णा....वेदना....स्पर्श....षडायतन....नामरूप....विज्ञान.... संस्कार होते हैं?

''विचार करते करते मुझे समझ आयी कि अविद्या के होने पर या अविद्या के कारण ये संस्कार उद्भूत होते हैं....यों यह समस्त दुःखसमुदय होता है। भिक्षुओ! यों मुझे इस समुदय के विषय में पहले कभी न सुने गये धर्मों को लेकर भी मेरी आँखें खुल गयीं, ज्ञान उत्पन्न हो गया....पूर्ववत्....मेरे सम्मुख दिव्य आलोक प्रकट हो गया।

प्रतिलोम पद्धति से विचार : ''भिक्षुओ! फिर मैं इस विषय पर इस तरह विचार करने लगा—किसके न होने पर या किसके निरोध से यह जरामरण नहीं होता? तथा किसके निरोध से जरामरण हो जाता है?....संस्कारनिरोध हो जाता है'?

[N.12] पञ्ञाय अभिसमयो—'जातिया खो असति जरामरणं न होति, जातिनिरोधा जरामरणनिरोधो' ति।

"तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति जाति न होति... पे०... भवो... उपादानं... तण्हा... वेदना... फस्सो... सळायतनं... नामरूपं... विञ्ञाणं... सङ्खारा न होन्ति, किस्स निरोधा सङ्खारनिरोधो' ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'अविज्जाय खो असति सङ्खारा न होन्ति, अविज्जानिरोधा सङ्खारनिरोधो' ति।

"इति हिदं अविज्जानिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो... पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति। 'निरोधो, निरोधो' ति खो मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादी" ति॥ ●

बुद्धवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

देसना विभङ्गपटिपदा च, विपस्सी सिखी च वेस्सभू।
ककुसन्धो कोणागमनो कस्सपो, महासक्यमुनि च गोतमो ति॥

"भिक्षुओ! सूक्ष्मतया विचार करने पर मुझे ज्ञात हुआ—अविद्या के निरोध से संस्कारनिरोध.... संस्कारनिरोध से विज्ञाननिरोध.... यों इस समग्र दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है। अथ च 'निरोध' शब्द के विषय में.... आलोक प्रकट हो गया॥ ●

बुद्धवर्ग प्रथम समाप्त॥

इस बुद्धवर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. प्रतीत्यसमुत्पादसूत्र, २. विभङ्गसूत्र, ३. प्रतिपदासूत्र, ४. विपश्यीसूत्र, ५. शिखीसूत्र, ६. विश्वभूसूत्र, ७. ककुसन्धसूत्र, ८. कोणागमनसूत्र, ९. काश्यपसूत्र एवं १०. गौतमसूत्र॥

२. आहारवग्गो दुतियो

११. आहारसुत्तं

१२. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आराम। "चत्तारोमे, भिक्खवे, आहारा भूतानं वा सत्तानं ठितिया [B.253] सम्भवेसीनं वा अनुग्गहाय। कतमे चत्तारो? कबळीकारो आहारो ओळारिको वा सुखुमो वा, फस्सो दुतियो, मनोसञ्चेतना ततिया, विञ्ञाणं चतुत्थं। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो आहारा भूतानं वा सत्तानं ठितिया सम्भवेसीनं वा अनुग्गहाय।

"इमे खो भिक्खवे, चत्तारो आहारा किंनिदाना किंसमुदया [Ṙ.12, N.13] किंजातिका किंपभवा? इमे चत्तारो आहारा तण्हानिदाना तण्हासमुदया तण्हाजातिका तण्हापभवा। तण्हा चायं, भिक्खवे किंनिदाना किंसमुदया किंजातिका किंपभवा? तण्हा वेदनानिदाना वेदनासमुदया वेदनाजातिका वेदनापभवा? फस्सो चायं, भिक्खवे, किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो? फस्सो सळायतननिदानो सळायतनसमुदयो सळायतनजातिको सळायतनपभवो। सळायतनं चिदं, भिक्खवे, किंनिदानं

---

२. आहारवर्ग द्वितीय

११. आहारसूत्र : : प्राणियों का आहार

११. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। (भगवान् बोले—) "भिक्षुओ! इस संसार में जन्म लेने वाले प्राणियों की स्थिति तथा उनके अनुग्रह के लिये चतुर्विध आहार होते हैं। (इन्हें 'आहार' इसलिये कहते हैं कि प्राणी इनके कारण से अपने फल का आहरण करते हैं।) कौन से चार? १. ग्रास ग्रास कर खाया जाने वाला स्थूल या सूक्ष्म आहार, २. स्पर्श, ३. मन की चेतना, एवं ४. विज्ञान। इस संसार में जनमने वाले प्राणियों की स्थिति तथा उन पर अनुग्रह के लिये ये ही चार प्रकार के आहार हैं।

"भिक्षुओ! इन चारों आहारों का निदान (कारण) क्या है? समुदय क्या है? उनका जन्म कैसे होता है? तथा उनका प्रभव (उत्पत्तिस्थल) कौन है? इन चारों आहारों का निदान है तृष्णा, समुदय भी है तृष्णा, तृष्णा से उनका जन्म होता है तथा उनका प्रभव भी तृष्णा ही है।

"फिर, भिक्षुओ! इस तृष्णा का भी निदान, समुदय, जाति एवं प्रभव क्या है? इस तृष्णा का निदान है वेदना, समुदय भी है वेदना, जाति एवं प्रभव भी वेदना ही है। वेदना का निदान....प्रभव क्या है? वेदना का निदान है स्पर्श....। स्पर्श का निदान....प्रभव क्या है? स्पर्श का निदान है षडायतन। षडायतन का निदान....प्रभव क्या है? षडायतन का

किंसमुदयं किंजातिकं किंपभवं? नामरूपं विञ्ञाणनिदानं विञ्ञाणसमुदयं विञ्ञाणजातिकं विञ्ञाणपभवं। विञ्ञाणं चिदं, भिक्खवे, किंनिदानं किंसमुदयं किंजातिकं किंपभवं ति? विञ्ञाणं सङ्खारनिदानं सङ्खारसमुदयं सङ्खारजातिकं सङ्खारपभवं। सङ्खारा चिमे, भिक्खवे, किंनिदाना किंसमुदया किंजातिका किंपभवा? सङ्खारा अविज्जानिदाना अविज्जासमुदया अविज्जाजातिका अविज्जापभवा।

"इति खो, भिक्खवे, अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०... [B.254] एवमेतस्स केवलतस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति॥ ●

१२. मोळियफग्गुनसुत्तं

१३. सावत्थियं विहरति। "चत्तारोमे, भिक्खवे, आहारा भूतानं वा [R.13] सत्तानं ठितिया सम्भवेसीनं वा अनुग्गहाय। कतमे चत्तारो? कबळीकारो आहारो ओळारिको वा सुखुमो वा, फस्सो दुतियो, मनोसञ्चेतना ततिया, विञ्ञाणं चतुत्थं। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो आहारा भूतानं वा सत्तानं ठितिया सम्भवेसीनं वा अनुग्गहाया" ति।

निदान है नामरूप। नामरूप का निदान....प्रभव क्या है? नामरूप का निदान है विज्ञान। विज्ञान का निदान....प्रभव क्या है? विज्ञान का निदान है संस्कार। संस्कार का निदान....प्रभव क्या है? संस्कार का निदान है अविद्या, इसका समुदय भी अविद्या ही है, तथा इसके जन्म तथा प्रभव भी अविद्या से ही होते हैं।

"भिक्षुओ! इस तरह अविद्या के होने से संस्कार होते हैं, संस्कारों के होने से विज्ञान होता है....पूर्ववत्....। यों, इस समस्त दुःखस्कन्ध का समुदय होता है। (अथ च धर्मसाधना द्वारा) इस अविद्या का पूर्णतः नाश तथा निरोध होने पर संस्कारों का निरोध हो जाता है, संस्कारों के निरोध से विज्ञान का निरोध....पूर्ववत्....इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है"॥ ●

१२. मोळियफग्गुनसूत्र : : आहारचतुष्टय

१३. **श्रावस्ती में** साधना के समय। (भगवान् बोले—) "भिक्षुओ! इस संसार में जनमने वाले प्राणियों की स्थिति तथा अनुग्रह के लिये चार प्रकार के आहार होते हैं। वे चार कौन से हैं? १. ग्रास ग्रास कर खाया जाने वाला स्थूल या सूक्ष्म आहार। २. स्पर्श, ३. मनःसञ्चेतना एवं ४. विज्ञान। यों, भिक्षुओ! ये चार आहार प्राणियों की स्थिति तथा अनुग्रह के लिये होते हैं।

एवं वुत्ते, आयस्मा मोळियफग्गुनो भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, विञ्ञाणाहारं आहारेती" ति?

"नो कल्लो पञ्हो" ति भगवा अवोच "'आहारेती' ति अहं न वदामि। [N.14] 'आहारेती' ति चाहं वदेय्य, तत्रस्स कल्लो पञ्हो—'को नु खो, भन्ते, आहारेती' ति। एवं चाहं न वदामि। एवं मं अवदन्तं यो एवं पुच्छेय्य—'किस्स नु खो, भन्ते, विञ्ञाणाहारो' ति, एस कल्लो पञ्हो। तत्र कल्लं वेय्याकरणं—'विञ्ञाणाहारो आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्तिया पच्चयो, तस्मिं भूते सति सळायतनं, सळायतनपच्चया फस्सो'" ति।

"को नु खो, भन्ते, फुसती" ति?

"नो कल्लो पञ्हो" ति भगवा अवोच "'फुसती' ति अहं न वदामि। 'फुसती' ति चाहं वदेय्य, तत्रस्स कल्लो पञ्हो—'को नु खो, भन्ते, 'फुसती' ति? एवं चाहं न वदामि। एवं मं अवदन्तं यो एवं पुच्छेय्य—'किंपच्चया नु खो, भन्ते, फस्सो' ति, एस कल्लो पञ्हो। तत्र कल्लं वेय्याकरणं—'सळायतनपच्चया फस्सो, फस्सपच्चया वेदना'" ति।

"को नु खो, भन्ते, वेदयती" ति?

"नो कल्लो पञ्हो" ति भगवा अवोच "'वेदयती' ति अहं न वदामि। 'वेदयती'

भगवान् द्वारा ऐसा उपदेश किये जाने पर मोळियफग्गुन भिक्षु भगवान् से यों पूछने लगा—"भन्ते! इस विज्ञान आहार का कौन आहार करता है?"

भगवान् बोले—"यह प्रश्न ही तुम्हारा अनुचित है; क्योंकि मैं कहाँ कह रहा हूँ कि कोई खाता है! यदि मैं कहता कि कोई खाता है, तब तो तुम्हारा यह प्रश्न सङ्गत होता। ऐसा मैं कह नहीं रहा हूँ। ऐसा न कहते हुए भी कोई मुझसे यों पूछे—भन्ते! इस विज्ञान आहार से क्या होता है? तो यह प्रश्न सङ्गत होता। उसका उचित उत्तर यह है—

यह विज्ञानाहार आगे पुनर्जन्म होने का हेतु है। उस विज्ञानाहार के होने से षडायतन होते हैं। षडायतन से स्पर्श का समुदय होता है।"

(फग्गुन—) "कौन स्पर्श करता है?"

(भगवान्—) यह प्रश्न भी असङ्गत है; क्योंकि मैं कहाँ कह रहा हूँ कि कोई स्पर्श करता है! यह प्रश्न तो तभी सङ्गत होता जब मैं कहता कि कोई स्पर्श करता है। ऐसा मैं कह नहीं रहा। ऐसा न कहते हुए कोई मुझसे यों पूछे—भन्ते, क्या होने से स्पर्श होता है? तो यह प्रश्न सङ्गत हो सकता है। इसका उचित उत्तर यह है—'षडायतन होने से स्पर्श होता है। तथा स्पर्श के होने से वेदना होती है।"

(फग्गुन—) "भन्ते! इस वेदना अनुभव कौन करता है?"

ति चाहं वदेय्यं, तत्रस्स कल्लो पञ्हो—'को नु खो, भन्ते, वेदयती' ति? एवं चाहं न वदामि। एवं मं अवदन्तं यो एवं पुच्छेय्य—'किंपच्चया नु खो, भन्ते, वेदना' ति, एस कल्लो पञ्हो। तत्र कल्लं वेय्याकरणं—'फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा''' ति।

[B.255] ''को नु खो, भन्ते, तसती'' ति?

[R.14] '' नो कल्लो पञ्हो'' ति भगवा अवोच '''तसती' ति अहं न वदामि। 'तसती' ति चाहं वदेय्यं, तत्रस्स कल्लो पञ्हो—'को नु खो, भन्ते, तसती' ति? एवं चाहं न वदामि। एवं मं अवदन्तं यो एवं पुच्छेय्य—'किंपच्चया नु खो, भन्ते, तण्हा' ति, एस कल्लो पञ्हो। तत्र कल्लं वेय्याकरणं—'वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं''' ति।

''को नु खो, भन्ते, उपादियती'' ति?

''नो कल्लो पञ्हो'' ति भगवा अवोच '''उपादियती' ति अहं न वदामि। 'उपादियती' ति चाहं वदेय्यं, तत्रस्स कल्लो पञ्हो—'को नु खो, भन्ते, उपादियती' ति? एवं चाहं न वदामि। एवं मं अवदन्तं यो एवं पुच्छेय्य—'किंपच्चया नु खो, भन्ते, [N.15] उपादानं' ति, एस कल्लो पञ्हो। तत्र कल्लं वेय्याकरणं—'तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो ति...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

''छन्नं त्वेव, फग्गुन, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा फस्सनिरोधो; फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो; वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो; तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो; भवनिरोधा जातिनिरोधो; जातिनिरोधा जरामरणं

(भगवान्—) ''यह प्रश्न भी....पूर्ववत्....यह पूछना चाहिये—'भन्ते! किसके होने से वेदना होती है?' इसका उचित उत्तर यह है—'स्पर्श के होने से वेदना होती है। वेदना के होने से तृष्णा होती है।''

(फग्गुन—) ''यह तृष्णा कौन करता है?''

(भगवान्—) ''यह प्रश्न भी....पूर्ववत्...., यह पूछना चाहिये—'भन्ते! किसके होने से तृष्णा होती है? —यह उचित प्रश्न होता। इसका उचित उत्तर यह है—'वेदना के होने से तृष्णा होती है। तृष्णा के होने से उपादान (किसी वस्तु के ग्रहण या त्याग में प्रवृत्ति) होता है'।''

(फग्गुन—) ''भन्ते! कौन उपादान करता है?''

(भगवान्—) यह प्रश्न भी....पूर्ववत्....यह पूछना चाहिये—'किसके होने से उपादान होता है?' तो इसका उचित उत्तर यही हो सकता है—'तृष्णा के होने से उपादान होता है।'....पूर्ववत्....इस तरह समस्त दुःखस्कन्ध का समुदय होता है।....।

''फग्गुन! इन छह स्पर्शायतनों के सर्वथा विरुद्ध हो जाने से स्पर्शनिरोध, स्पर्शनिरोध से वेदनानिरोध, वेदनानिरोध से तृष्णानिरोध, तृष्णानिरोध से उपादाननिरोध, उपादाननिरोध

सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती'' ति॥ •

१३. समणब्राह्मणसुत्तं

१४. सावत्थियं विहरति। ''ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा जरामरणं नप्पजानन्ति, जरामरणसमुदयं नप्पजानन्ति, जरामरणनिरोधं नप्पजानन्ति, जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति; जातिं...पे०...भवं...उपादानं...तण्हं... वेदनं...फस्सं...सळायतनं...नामरूपं...विञ्ञाणं...सङ्खारे नप्पजानन्ति, सङ्खार-[R.15] समुदयं नप्पजानन्ति, सङ्खारनिरोधं नप्पजानन्ति, सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति, न मे ते, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु वा समण-[B.256] सम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मणसम्मता; न च पन ते आयस्मन्तो सामञ्ञत्थं वा ब्रह्मञ्ञत्थं वा दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति।

''ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा जरामरणं पजानन्ति, जरामरणसमुदयं पजानन्ति, जरामरणनिरोधं पजानन्ति, जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानन्ति; जातिं...पे०...भवं...उपादानं...तण्हं...वेदनं...फस्सं...सळायतनं...नामरूपं... विञ्ञाणं...सङ्खारे पजानन्ति, सङ्खारसमुदयं पजानन्ति, सङ्खारनिरोधं पजानन्ति, सङ्खार-

---

से भवनिरोध, भवनिरोध से जरा मरण शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य एवं उपायास सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं। यों, इस समस्त दुःखस्कन्ध का सर्वथा निरोध हो जाता है॥ •

१३. प्रथमश्रमणब्राह्मणसूत्र : : अन्वर्थनामा श्रमण-ब्राह्मण

१४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। (भगवान् ने यों कहा—) ''भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण जरामरण के विषय में कुछ नहीं जानते, जरामरण के हेतु को नहीं जानते, जरामरण का निरोध नहीं जानते, जरामरण का निरोध बताने वाले मार्ग (साधना) को नहीं जानते, जाति....पूर्ववत्....भव....उपादान....तृष्णा....वेदना....स्पर्श....षडायतन.... नामरूप....विज्ञान....संस्कार को नहीं जानते, संस्कारसमुदय को नहीं जानते, संस्कारनिरोध को नहीं जानते, संस्कारनिरोधगामी मार्ग को नहीं जानते, भिक्षुओ! वे श्रमण ब्राह्मण, मेरी दृष्टि में, न श्रमण कहलाने योग्य हैं, न ब्राह्मण ही; क्योंकि वे लोग न तो श्रमणधर्म को न ब्राह्मणधर्म को ही अपना लक्ष्य बनाकर उसे जानने के लिये इस जन्म में वास्तविक साधना में प्रवृत्त नहीं होते।

(इसके विपरीत) ''भिक्षुओ! जो श्रमण या ब्राह्मण जरामरण को जानते हैं, जरामरणसमुदय को, जरामरणनिरोध को, जरामरणनिरोधगामी मार्ग को जानते हैं, जाति.... भव....उपादान....तृष्णा....वेदना....स्पर्श....षडायतन....नामरूप....विज्ञान....संस्कारों को,

निरोधगामिनिं पटिपदं पजानन्ति, ते खो मे, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु चेव समणसम्मता ब्राह्मणेसु च ब्राह्मणसम्मता; ते च पनायस्मन्तो सामञ्ञत्थं च ब्रह्मञ्ञत्थं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥ ●

१४. दुतियसमणब्राह्मणसुत्तं

१५. सावत्थियं विहरति। ''ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा इमे [N.16] धम्मे नप्पजानन्ति, इमेसं धम्मानं समुदयं नप्पजानन्ति, इमेसं धम्मानं निरोधं नप्पजानन्ति, इमेसं धम्मानं निरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति, कतमे धम्मे नप्पजानन्ति, कतमेसं धम्मानं समुदयं नप्पजानन्ति, कतमेसं धम्मानं निरोधं नप्पजानन्ति, कतमेसं धम्मानं निरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति ?

'' जरामरणं नप्पजानन्ति, जरामरणसमुदयं नप्पजानन्ति, जरामरणनिरोधं नप्पजानन्ति, जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजाननित; जातिं...पे०...भवं... उपादानं...तण्हं...वेदनं... फस्सं...सळायतनं...नामरूपं...विञ्ञाणं...सङ्खारे नप्पजानन्ति, सङ्खारसमुदयं नप्पजानन्ति, सङ्खारनिरोधं नप्पजानन्ति, सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं [R.16] नप्पजानन्ति। इमे धम्मे नप्पजानन्ति, इमेसं धम्मानं समुदायं नप्पजनन्ति, इमेसं धम्मानं निरोधं नप्पजानन्ति, इमेसं धम्मानं निरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति। न मे ते,

---

संस्कारसमुदय को, संस्कारनिरोध को, संस्कारनिरोधगामी मार्ग को जानते हैं; भिक्षुओ! वे ही श्रमण ब्राह्मण, मेरी दृष्टि में, श्रमणों में 'श्रमण' तथा ब्राह्मणों में 'ब्राह्मण' कहलाने के अधिकारी हैं; क्योंकि वे लोग श्रमणधर्म तथा ब्राह्मणधर्म को भली भाँति जानकर उसे ही अपना लक्ष्य बनाकर उसे अधिक जानने के लिये इसी जन्म में वास्तविक साधना में निरत रहते हैं''॥ ●

१४. द्वितीयश्रमणब्राह्मणसूत्र : : सम्यग्दृष्टि की व्याख्या

१५. **श्रावस्ती में** साधना के समय ही....। (भगवान् बोले—) ''भिक्षुओ! जब हम यह कहते हैं कि ये श्रमण ब्राह्मण इन धर्मों को नहीं जानते, इन धर्मों का समुदय नहीं जानते, इन धर्मों का निरोध नहीं जानते, इन धर्मों के निरोध का मार्ग नहीं जानते, तो हमारा यहाँ 'इन' शब्द से क्या अभिप्राय है ? अर्थात् वे किन धर्मों को नहीं जानते ? किन धर्मों के समुदय को, किन धर्मों के निरोध को तथा किन धर्मों के निरोध का मार्ग नहीं जानते ?

''भिक्षुओ! वे जरामरण को, जरामरणसमुदय को, जरामरणनिरोध को, जरामरण-निरोधगामी मार्ग को नहीं जानते। वे जाति....भव....उपादान....तृष्णा.... वेदना ....स्पर्श....षडायतन....नामरूप....विज्ञान....संस्कारों को, संस्कारसमुदय को, संस्कारनिरोध को, संस्कारनिरोधगामी मार्ग को नहीं जानते। वे इन धर्मों को नहीं जानते, इन धर्मों के

भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु वा समणसम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मणसम्मता, न च पन ते आयस्मन्तो सामञ्ञत्थं वा ब्रह्मञ्ञत्थं वा दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति।''

''ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा इमे धम्मे पजानन्ति, [B.257] इमेसं धम्मानं समुदयं पजानन्ति, इमेसं धम्मानं निरोधं पजानन्ति, इमेसं धम्मानं निरोधगामिनिं पटिपदं पजानन्ति, कतमे धम्मे पजानन्ति, कतमेसं धम्मानं समुदयं पजानन्ति, कतमेसं धम्मानं निरोधं पजानन्ति, कतमेसं धम्मानं निरोधगामिनिं पटिपदं पजानन्ति ?

''जरामरणं पजानन्ति, जरामरणसमुदयं पजानन्ति, जरामरणनिरोधं पजानन्ति, जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानन्ति; जातिं...पे०...भवं...उपादानं...तण्हं...वेदनं... फस्सं...सळायतनं...नामरूपं...विञ्ञाणं...संङ्खारे पजानन्ति, सङ्खारसमुदयं पजानन्ति, सङ्खारनिरोधं पजानन्ति, सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं पजाननित। इमे धम्मे पजानन्ति, इमेसं धम्मानं समुदयं पजानन्ति, इमेसं धम्मानं निरोधं पजानन्ति, इमेसं धम्मानं निरोधगामिनिं पटिपदं पजानन्ति। ते खो मे, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा [N.17] समणेसु चेव समणसम्मता, ब्राह्मणेसु च ब्राह्मणसम्मता। ते च पनायस्मन्तो सामञ्ञत्थं च ब्रह्मञ्ञत्थं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥●

समुदय को, इन धर्मों के निरोध को, इन धर्मों के निरोधमार्ग को नहीं जानते। भिक्षुओ! ऐसे श्रमण ब्राह्मण, मेरी दृष्टि में, न श्रमण कहलाने के अधिकारी हैं, न ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी; क्योंकि वे आयुष्मान् वे लोग श्रमणधर्म या ब्राह्मण धर्म को भली भाँति जानकर उसे ही अपना लक्ष्य बनाकर उसको अधिक जानने के लिये इसी जन्म में वास्तविक साधना में नहीं लगते।

''और भिक्षुओ! जब हम यह कहते हैं कि जो श्रमण ब्राह्मण इस धर्म को जानते हैं, इन धर्मों के समुदय को, निरोध को, निरोधगामी मार्ग को जानते हैं, तो वे कौन से धर्मों को जानते हैं, कौन से धर्मों के समुदय को, निरोध को, निरोधगामी मार्ग को जानते हैं ?

''वे जरामरण को जानते हैं, जरामरणसमुदय को, जरामरणनिरोध को, जरामरण-निरोधगामी मार्ग को जानते हैं; जाति....भव....उपादान....तृष्णा....वेदना....स्पर्श.... षडायतन....नामरूप....विज्ञान....संस्कारों को जानते हैं, संस्कारसमुदय को, संस्कारनिरोध को, संस्कारनिरोधगामी मार्ग को जानते हैं। इस तरह वे इन धर्मों को, इन धर्मों के समुदय को, इन धर्मों के निरोध को, इन धर्मों के निरोधगामी मार्ग को जानते हैं। इस तरह, भिक्षुओ! वे श्रमण ब्राह्मण श्रमणों में 'श्रमण' कहलाने योग्य हैं तथा ब्राह्मणों में 'ब्राह्मण' कहलाने योग्य; ये आयुष्मान् श्रामण्यप्राप्ति के लिये, ब्राह्मण्यप्राप्ति के लिये इसी जन्म में स्वयं साक्षात्कार करने हेतु प्रव्रज्या लेकर धर्मसाधना में लगे रहते हैं॥'' ●

१५. कच्चानगोत्तसुत्तं

[R.17] १६. सावत्थियं विहरति। अथ खो आयस्मा कच्चानगोत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा कच्चानगोत्तो भगवन्तं एतदवोच—"'सम्मादिट्ठि सम्मादिट्ठी' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, सम्मादिट्ठि होती" ति?

"द्वयनिस्सितो ख्वायं, कच्चान, लोको येभुय्येन—अत्थितं चेव नत्थितं च। लोकसमुदयं खो, कच्चान, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो या लोके नत्थिता सा न होति। लोकनिरोधं खो, कच्चान, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो या लोके अत्थिता सा न होति। उपयुपादनाभिनिवेसविनिबन्धो ख्वायं, कच्चान, लोको येभुय्येन। तं चायं उपयुपादानं [B.258] चेतसो अधिट्ठानं अभिनिवेसानुसयं न उपेति न उपादियति नाधिट्ठाति—'अत्ता मे' ति। 'दुक्खमेव उप्पजमानं उप्पज्जति, दुक्खं निरुज्झमानं निरुज्झती' ति न कङ्खति न विचिकिच्छति अपरपच्चया ञाणमेवस्स एत्थ होति। एत्तावता खो, कच्चान, सम्मादिट्ठि होति।"

"'सब्बमत्थी' ति खो, कच्चान, अयमेको अन्तो। 'सब्बं नत्थी' ति अयं दुतियो

---

१५. कात्यायनगोत्रसूत्र : : सम्यग्दृष्टि की व्याख्या

१६. **श्रावस्ती में** साधना के समय।....तब आयुष्मान् कात्यायनगोत्र भगवान् के सम्मुख पहुँचे। पहुँच कर, भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे हुए आयुष्मान् कात्यायनगोत्र भगवान् से यों निवेदन करने लगे—"भन्ते! आप 'सम्यग्दृष्टि' की बार बार चर्चा करते हैं, यह साधक सम्यग्दृष्टि कैसे होता है?"

(भगवान् ने बताया—) "कात्यायन! ये संसार के प्राणी द्विविध अविद्याओं के जाल में फँसे हुए हैं। उनमें कुछ अस्तित्व बुद्धि वाले हैं, कुछ नास्तित्व बुद्धि वाले। कात्यायन! लोक के समुदय को यथार्थतः जान लेने पर लोक में नास्तित्व बुद्धि समाप्त हो जाती है; तथा लोक के निरोध को यथार्थतः जान लेने पर लोक में अस्तित्व बुद्धि भी मिट जाती है। कात्यायन! यह संसार प्रायः तृष्णा आसक्ति एवं ममत्व के मोहजाल में फँसा हुआ है। अतः साधक उस तृष्णा, आसक्ति, मन का लगाना, ममत्व के मोह में नहीं पड़ता। आत्मभाव में नहीं बँधता। 'यहाँ दुःख ही उत्पन्न होता हुआ उत्पन्न होता है, तथा दुःख ही निरुद्ध होता हुआ निरुद्ध होता है'—यह समझकर वह साधक यहाँ न किसी वस्तु की आकांक्षा करता है, न कोई संशय। उसे अपने अन्दर ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। कात्यायन! वह इसी से 'सम्यग्दृष्टि' हो जाता है।

"कात्यायन! लोकव्यवहार में दो सीमाएँ (अन्त) होती हैं, 'सब कुछ है'—ऐसी

अन्तो। एते ते, कच्चान, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति— 'अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो...पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती'' ति॥ ●

१६. धम्मकथिकसुतं

१७. सावत्थियं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो [R.18] सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"'धम्मकथिको धम्मकथिको' ति, भन्ते, [N.18] वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, धम्मकथिको होती'' ति।

"जरामरणस्स चे भिक्खु निब्बिदाय विरागाय निरोधाय धम्मं देसेति, 'धम्मकथिको भिक्खू' ति अलं वचनाय। जरामरणस्स चे भिक्खु निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति, 'धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो भिक्खू' ति अलं वचनाय। जरामरणस्स चे भिक्खु निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो, 'दिट्ठधम्मनिब्बानप्पत्तो भिक्खू' ति अलं वचनाय।

मान्यता पहली सीमा है तथा 'सब कुछ नहीं है'—ऐसी मान्यता दूसरी सीमा है। कात्यायन! तथागत इन दोनों ही सीमाओं का परित्याग कर अपना समस्त उपदेश मध्यम मार्ग से करते हैं। वह मध्यम मार्ग यह है—'अविद्या के होने से संस्कार होते हैं'....आदि। इस तरह समग्र दुःखसमूह का समुदय होता है। तथा 'उस अविद्या के निरोध होने से संस्कारों का निरोध हो जाता है'....आदि। इस तरह समस्त दुःखसमूह निरुद्ध हो जाता है''॥ ●

१६. धर्मकथिकसूत्र : : धर्मोपदेशक के गुण

१७. **श्रावस्ती में** साधना के समय। तब कोई भिक्षु भगवान् के पास गया। वह भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे हुए उसने भगवान् से पूछा—'भन्ते! आप 'धर्मकथिक' के विषय में कहते हैं, यह धर्मकथिक किन विशेषताओं के कारण कहलाता है?''

"भिक्षु! जो जरामरण के निर्वेद, विराग एवं निरोध के लिये उपदेश करता है वही वस्तुतः 'धर्मकथिक' कहलाता है।

"भिक्षु! जो जरामरण के निर्वेद, विराग एवं निरोध के लिये प्रतिपल (मार्गारूढ) है वही वस्तुतः 'धर्मकथिक' कहलाता है।

"भिक्षु! जो जरामरण का निर्वेद, विराग एवं निरोध हो जाने से विमुक्त हो जाता है वही 'धर्मकथिक' कहलाता है।

"जातिया चे भिक्खु...पे०...भवस्स चे भिक्खु...उपादानस्स चे भिक्खु... तण्हाय चे भिक्खु... वेदनाय चे भिक्खु...सङ्खारानं चे भिक्खु...अविज्जाय चे भिक्खु निब्बिदाय विरागाय निरोधाय धम्मं देसेति, 'धम्मकथिको भिक्खू' ति अलं वचनाय। अविज्जा चे भिक्खु निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति, 'धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो भिक्खू' ति अलं वचनाय। अविज्जाय चे भिक्खू निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो होति, 'दिट्ठधम्मनिब्बानप्पत्तो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति॥ •

१७. अचेलकस्सपसुत्तं

१८. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। [B.259] अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहे पिण्डाय [R.19] पाविसि। अद्दसा खो अचेलो कस्सपो भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो अचेलो कस्सपो भगवन्तं एतदवोच—'पुच्छेय्याम मयं भवन्तं गोतमं कञ्चिदेव देसं, सचे नो भवं गोतमो ओकासं करोति पञ्हस्स वेय्याकरणाया" ति।

"भिक्षु! जो जाति.... भव.... उपादान.... तृष्णा.... वेदना.... स्पर्श.... षडायतन.... नामरूप.... विज्ञान.... संस्कार.... अविद्या के निरोध का उपदेश करता है वही 'धर्मकथिक' कहलाता है।

"भिक्षु! जो जरामरण के निर्वेद विराग एवं निरोध के लिये प्रतिपन्न है वही 'धर्मानुधर्मप्रतिपन्न भिक्षु' कहलाता है।

"भिक्षु! जो जरामरण का निर्वेद विराग एवं निरोध हो जाने से विमुक्त हो चुका है वही 'देखते ही देखते निर्वाणप्राप्त भिक्षु' कहलाता है॥ •

१७. अचेलकाश्यपसूत्र : : प्रतीत्यसमुत्पाद

१८. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। तब किसी दिन भगवान् प्रात:काल अपने वस्त्र व्यवस्थित रूप से पहनकर पात्र एवं चीवर लेकर राजगृह में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। उसी समय अचेल (निर्वस्त्र= नग्न) काश्यप ने दूर से आते हुए भगवान् को देखा। देखकर वह भगवान् के पास आया। तथा कुशल-मङ्गल पूछकर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े होकर उसने भगवान् से यों कहा—"मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, क्या आप मुझे उसका उत्तर दे सकेंगे?"

(भगवान् बोले—) "काश्यप! अभी तो मैं भिक्षाहेतु गृहस्थों के घरों में आ जा रहा हूँ।"

"अकालो खो ताव, कस्सप, पञ्हस्स; अन्तरघरं पविट्ठम्हा" ति।

दुतियं पि खो अचेलो कस्सपो भगवन्तं एतदवोच—"पुच्छेय्याम मयं [N.1७] भवन्तं गोतमं कञ्चिदेव देसं, सचे नो भवं गोतमो ओकासं करोति पञ्हस्स वेय्याकरणाया" ति।

"अकालो खो ताव, कस्सप, पञ्हस्स; अन्तरघरं पविट्ठम्हा" ति।

ततियं पि खो अचेलो कस्सपो...पे०...अन्तरघरं पविट्ठम्हा ति। एवं वुत्ते, अचेलो। कस्सपो भगवन्तं एतदवोच—"न खो पन मयं भगवन्तं गोतमं बहुदेव पुच्छितुकामा" ति।

"पुच्छ, कस्सप, यदाकङ्खसी" ति।

"किं नु खो, भो गोतम, सयङ्कतं दुक्खं" ति? "मा हेवं, कस्सपा" ति भगवा अवोच। "किं पन, भो गोतम, परङ्कतं दुक्खं" ति? "मा हेवं, कस्सपा" ति [R.20] भगवा अवोच। "किं नु खो, भो गोतम, सयङ्कतं च परङ्कतं च दुक्खं" ति? "मा हेवं, कस्सपा" ति भगवा अवोच। "किं पन भो गोतमं, असयङ्कार अपरङ्कार अधिच्चसमुप्पन्नं दुक्खं" ति? "मा हेवं, कस्सपा" ति भगवा अवोच।

दूसरी बार भी काश्यप ने वही बात कही, तथा भगवान् ने भी वही (पूर्वोक्त) उत्तर दिया।

तीसरी बार भी....वही उत्तर दिया। भगवान् द्वारा यह उत्तर दिये जाने पर अचेलकाश्यप ने कहा—"हमारा छोटा सा ही प्रश्न है, हम आपसे बहुत लम्बे समय में उत्तर दिये जाने योग्य प्रश्न नहीं करेंगे।" भगवान् ने अपनी स्वीकृति देते हुए कहा—"तो पूछ ले, काश्यप! जो तूँ पूछना चाहता है।"

"भो गौतम! क्या दुःख अपने स्वयं द्वारा किया हुआ होता है?"

"काश्यप! ऐसी बात तो नहीं है।"

"भो गौतम! तो क्या दुःख दूसरे द्वारा किया होता है?"

"काश्यप! ऐसी बात भी नहीं है।"

"तो. भो गौतम! यह दुःख स्वयं तथा पर—यों उभयकृत है?"

"काश्यप! ऐसी बात भी नहीं है।"

"तो, भो गौतम! यह दुःख अकस्मात् कहीं अन्यत्र से चला आता है?"

"काश्यप! ऐसी बात भी नहीं है।"

"तो, भो गौतम! क्या यह दुःख है ही नहीं?"

"काश्यप! ऐसी बात भी नहीं है कि दुःख है ही नहीं। दुःख तो, काश्यप! है ही।"

"किं नु खो, भो गोतम, नत्थि दुक्खं" ति?

"न खो, कस्सप, नत्थि दुक्खं। अत्थि खो, कस्सप, दुक्खं" ति।

"तेन हि भवं गोतमो दुक्खं न जानाति न पस्सती" ति।

"न ख्वाहं, कस्सप, दुक्खं न जानामि न पस्सामि। जानामि ख्वाहं, कस्सप, दुक्खं; पस्सामि ख्वाहं, कस्सप, दुक्खं" ति।

"किं नु खो, भो गोतम, 'सयङ्कतं दुक्खं ति' इति पुट्ठो समानो 'मा हेवं, कस्सपा' ति वदेसि। किं पन, भो गोतम, 'परङ्कतं दुक्खं ति' इति पुट्ठो समानो 'मा हेवं, कस्सपा' [B.260] ति वदसि। 'किं नु खो, भो गोतम, सयङ्कतं च परङ्कतं च दुक्खं ति' इति पुट्ठो समानो 'मा हेवं, कस्सपा' ति वेदसि। 'किं पन, भो गोतम, असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं दुक्खं ति' इति पुट्ठो समानो 'मा हेवं, कस्सपा' ति वदेसि। 'कि नु खो, भो गोतम, नत्थि दुक्खं ति' इति पुट्ठो समानो 'न खो, कस्स्प, नत्थि दुक्खं, अत्थि खो कस्स्प, दुक्खं' ति वदेसि। 'तेन हि भवं गोतमो दुक्खं न जानाति न पस्ससी' ति इति पुट्ठो समानो 'न ख्वाहं, कस्सप, दुक्खं न जानामि न पस्सामि; जानामि ख्वाहं, कस्सप, [N.20] दुक्खं; पस्सामि ख्वाहं, कस्सप, दुक्खं' ति वदेसि। आचिक्खतु च मे, भन्ते, भगवा दुक्खं। देसेतु च मे भन्ते, भगवा दुक्खं" ति।

"'सो करोति सो पटिसंवेदयती' ति खो, कस्सप, आदितो सतो 'सयङ्कतं दुक्खं' ति इति वदं सस्सतं एतं परेति। 'अञ्ञो करोति अञ्ञो पटिसंवेदयती' ति खो, कस्सप, वेदनाभितुन्नस्स सतो 'परङ्कतं दुक्खं' ति इति वदं उच्छेदं एतं परेति। एते ते, कस्सप, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति—'अविज्जापच्चया सङ्खारा;

"तो, गौतम! आप न दु:ख को जानते हैं, न देख (अनुभव कर) पाते हैं?"

"ऐसी बात भी नहीं है, काश्यप! मैं दु:ख को जानता भी हूँ, तथा इस दु:ख को देख भी पाता हूँ।"

"भो गौतम! मैं जब पूछता हूँ—'क्या यह दु:ख स्वयंकृत है? तो आपका उत्तर था—ऐसा तो नहीं है.... पूर्ववत्.... मैं इस दु:ख को जानता भी हूँ तथा देख भी पाता हूँ'। तो भन्ते! कृपया इस दु:ख के विषय में स्पष्ट बताइये, स्पष्ट उपदेश कीजिये?

"'भो काश्यप! जो करता है वही भोगता है'—इस सिद्धान्त को मानते हुए यदि यह कहा जाय—'दु:ख स्वयंकृत है?, तो यह शाश्वतवाद का समर्थन माना जायगा; तथा 'दूसरा करता है, दूसरा भोगता है'—यह कहा जाय तो इससे उच्छेदवाद को समर्थन मिलेगा। काश्यप! तथागत तो इन दोनों ही अन्तों का त्यागकर मध्यम मार्ग स्वीकार करते हुए यह बताते हैं—'अविद्या के होने से या अविद्या के कारण संस्कार होते हैं.... इस तरह

सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं ...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो [R.21] होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो ...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती''' ति।

एवं वुत्ते, अचेलो कस्सपो भगवन्तं एतदवोच—''अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुजेय्य...पे०...चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं'' ति।

''यो खो, कस्सप, अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खति पब्बज्जं, आकङ्खति उपसम्पदं, सो चत्तारो मासे परिवसति। चतुन्नं मासानं अच्चयेन परिवुत्थपरिवासं आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय। अपि च मया पुग्गलवेमत्तता विदिता'' ति।

''सचे, भन्ते, अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खति [B.261] पब्बज्जं, आकङ्खति उपसम्पदं, चत्तारो मासे परिवसति, चतुन्नं मासानं अच्चयेन

इस समस्त दुःखस्कन्ध का समुदय (प्रादुर्भाव) होता है। तथा 'उस अविद्या के सर्वथा नष्ट या निरुद्ध हो जाने पर संस्कार नहीं हो पाते....इस तरह यह समस्त दुःखसमूह निरुद्ध हो जाता है।''

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर अचेल काश्यप भगवान् से यों बोला—''मेरा सौभाग्य है, प्रभो! आपके इस उपदेश से मैं कृतार्थ हो गया। जैसे उल्टे पात्र को सीधा कर दे....पूर्ववत्....आँखों वाले प्राणी मार्ग को देख लें, इसी तरह आप भगवान् ने मेरे लिये अनेक प्रकार से धर्म का प्रकाश कर दिया। अतः, भन्ते! यह मैं आपकी, आपके धर्म की, आपके सङ्घ की शरण में जाता हूँ। क्या ही अच्छा होता, भन्ते! कि मैं आपसे प्रव्रज्या दीक्षा प्राप्त कर लेता। उपसम्पदा प्राप्त कर लेता''।

(भगवान्—) ''काश्यप! हमारे यहाँ दीक्षा चाहने वाले अपर सम्प्रदाय वालों के लिये यह प्रतिबन्ध है कि इस धर्मविनय में दीक्षित होने से पूर्व कुछ समय प्रतीक्षा करनी पड़ती है तथा उसे चार मास पर्यन्त परिवास नियमों के अन्तर्गत रहना पड़ता है। *(इस अवधि में उस अभ्यर्थी को भिक्षुओं के साथ, उनकी सेवा-परिचर्या में रहना पड़ता है। उसकी सेवा-परिचर्या से भिक्षुओं के सन्तुष्ट होने पर वे उसे प्रव्रजित करते हैं।)* किन्तु हमें व्यक्ति के प्रति भिन्नता करने की भी सुविधा है।''

(काश्यप—) ''भन्ते! यदि दूसरे सम्प्रदायों के साधुओं के लिये इस धर्मविनय में दीक्षाप्राप्तिहेतु चार मास का 'परिवास' लेना पड़ता है तो मैं प्रसन्नतापूर्वक चार मास के

परिवुत्थपरिवासं आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय, अहं चत्तारि वस्सानि परिवसिस्सामि, चतुन्नं वस्सानं अच्चयेन परिवुत्थपरिवासं आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्तु उपसम्पादेन्तु भिक्खुभावाय अहं चत्तारि वस्सानि परिवसिस्सामि, चतुन्नं मासानं अच्चयेन परिवुत्थपरिवासं आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्तु उपसम्पादेन्तु भिक्खुभावाय'' ति।

[N.21] अलत्थ खो अचेलो कस्सपो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। [R.22] अचिरूपसम्पन्नो च पनायस्मा कस्सपो एको अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया'' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञातरो च पनायस्मा कस्स्पो अरहतं अहोसी ति॥ ●

१८. तिम्बरुकसुत्तं

१९. सावत्थियं विहरति। अथ खो तिम्बरुको परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो तिम्बरुको परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—

स्थान पर चार वर्ष तक भी यह 'परिवास' लेने को तत्पर हूँ। चार वर्ष का परिवास व्यतीत होने के बाद भी यदि आपको मेरे आचरण पर सन्तोष हो तो मुझे प्रव्रज्या, उपसम्पदा दीक्षा दें।''

उस अचेल काश्यप ने यथासमय भगवान् से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त कर ली। उपसम्पदाप्राप्ति के बाद उस अचेल काश्यप ने सावधान रहकर उद्योग करते हुए इन्द्रियसंयम के साथ साधना करते हुए शीघ्र ही—जिसके लिये कोई कुलपुत्र गृह त्यागकर प्रव्रजित होता है—उस अद्वितीय धर्मसाधना की अन्तिम अवधि तक पहुँचकर, स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर यह समझ लिया—'मेरी जन्ममरणपरम्परा क्षीण हो चुकी है, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो चुकी हैं, मैं कृतकृत्य हो चुका हूँ, मेरा यहाँ अब अन्य कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है।' तथा यह आयुष्मान् काश्यप कुछ ही समय में एक प्रतिष्ठित अर्हत् हो गया॥ ●

१८. तिम्बरुकसूत्र : : सुख दुःख के कारण

१९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। वह तिम्बरुक परिव्राजक भगवान् के सम्मुख आया। आकर कुशलमङ्गल के बाद एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने भगवान् से यों प्रश्न किया—

"किं नु खो, भो गोतम, सयङ्कतं सुखदुखं" ति? "मा हेवं, तिम्बरुका" ति भगवा अवोच। "किं पन, भो गोतम, परङ्कतं सुखदुक्खं" ति? "मा हेवं, तिम्बरुका" ति भगवा अवोच। "किं नु खो, भो गोतम सयङ्कतं च परङ्कतं च सुखदुक्खं" ति? "मा हेवं, तिम्बरुका" ति भगवा अवोच। "किं पन, भो गोतम, असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं सुखदुक्खं" ति? "मा हेवं, तिम्बरुका" ति भगवा अवोच।

"किं नु खो, भो गोतम, नत्थि सुखदुक्खं" ति?

"न खो, तिम्बरुक, नत्थि सुखदुक्खं; अत्थि खो, तिम्बरुक, सुखदुक्खं" ति।

"तेन हि भवं गोतमो सुखदुक्खं न जानाति न पस्सती" ति।

"'किं नु खो, भो गोतम, सयङ्कतं सुखदुक्खं' ति इति पुट्ठो समानो 'मा [B.262] हेवं, तिम्बरुका' ति वदेसि। 'किं पन, भो गोतम, परङ्कतं सुखदुक्खं' ति इति पुट्ठो समानो 'मा हेवं, तिम्बरुका' ति वदेसि। 'किं नु खो, भो गोतम, सयङ्कतं च परङ्कतं च सुखदुक्खं' इति पुट्ठो समानो 'मा हेवं, तिम्बरुका' ति वदेसि। 'किं पन, भो [R.23] गोतम, असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं सुखदुक्खं' ति इति पुट्ठो समानो [N.22] 'मा हेवं, तिम्बरुका' ति वदेसि। 'किं नु खो, भो गोतम, नत्थि सुखदुक्खं' ति इति पुट्ठो समानो 'न खो, तिम्बरुक, नत्थि सुखदुक्खं; अत्थि खो, तिम्बरुक, सुखदुक्खं' ति वदेसि। 'तेन हि भवं गोतमो सुखदुक्खं न जानाति न पस्सती' ति इति पुट्ठो समानो 'न ख्वाहं, तिम्बरुक, सुखदुक्खं; पस्सामि ख्वाहं, तिम्बरुक, सुखदुक्खं' ति वदेसि। आचिक्खतु च मे भवं गोतमो सुखदुक्खं। देसेतु च मे भवं गोतमो सुखदुक्खं'" ति।

"'सा वेदना सो वेदयती' ति खो, तिम्बरुक, आदितो सतो 'सयङ्कतं सुखदुक्खं' ति एवम्पाहं न वदामि। 'अञ्ञा वेदना अञ्ञो वेदयती' ति खो, तिम्बरुक, वेदनाभितुन्नस्स सतो 'परङ्कतं सुखदुक्खं' ति एवम्पाहं न वदामि। एते ते, तिम्बरुक, उभो

"भो गौतम! यह सुख दु:ख क्या स्वयं अपने किया हुआ होता है?"

"नहीं, तिम्बरुक! ऐसा नहीं है।"....पूर्ववत्....आप मुझे सुख दु:ख के विषय में स्पष्ट उपदेश करें।

(भगवान्—) "काश्यप! 'जो करता है वही भोगता है'—इस सिद्धान्त के अनुसार यदि यह कहा जाय—'दु:ख स्वयंकृत है, तो मैं इसे नहीं मानता' 'दूसरे के द्वारा दिया हुआ दु:ख दूसरा भोगता है'— तिम्बरुक! मैं इसे भी नहीं मानता। कोई निर्णय देने की इन दोनों ही परिधियों को छोड़कर मैं तथागत इन दोनों के बीच का मध्यम मार्ग निकालकर इस बात को यों कहता हूँ—' ाविद्या के होने से या अविद्या के कारण संस्कार होते हैं, संस्कार के कारण विज्ञान होते हैं....पूर्ववत्....यों इस समस्त दु:खस्कन्ध का समुदय होता

अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति— 'अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खार-पच्चया विञ्ञाणं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो ...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती''' ति।

एवं वुत्ते, तिम्बरुको परिब्बाजको भगवन्तो एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ •

१९. बालपण्डितसुत्तं

२०. सावत्थियं विहरति। "अविज्जानीवरणस्स, भिक्खवे, बालस्स तण्हाय [R.24] सम्पयुत्तस्स एवमयं कायो समुदागतो। इति अयं चेव कायो बहिद्धा च [B.263] नामरूपं—इत्थेतं द्वयं, द्वयं पटिच्च फस्सो सळेवायतनानि येहि फुट्ठो बालो सुखदुक्खं पटिसंवेदयति एतेसं वा अञ्ञतरेन।

"अविज्जानीवरणस्स, भिक्खवे, पण्डितस्स तण्हाय सम्पयुत्तस्स एवमयं कायो [N.23] समुदागतो। इति अयं चेव कायो बहिद्धा च नामरूपं इत्थेतं द्वयं, द्वयं पटिच्च

है। तथा इस अविद्या का सर्वथा विराग या निरोध होने से संस्कार का निरोध होता है, संस्कार का निरोध होने से विज्ञान का निरोध होता है....पूर्ववत्....यों इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है।"

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, तिम्बरुक परिव्राजक ने भगवान् से यों निवेदन किया—"धन्य है, भो गौतम! आप धन्य हैं।....पूर्ववत्....यह मैं आप गौतम की, आपके धर्म की, आपके सङ्घ की शरण में जाता हूँ। आप गौतम आज से मुझको, मेरे प्राण रहने तक, अपनी शरण में आया हुआ उपासक समझें॥" •

१९. बाल-पण्डितसूत्र : : मूर्ख एवं विद्वान् में भेद

२०. **श्रावस्ती में** ही साधना के समय....।"भिक्षुओ! अविद्या के बन्धन में जकड़े हुए तथा तृष्णा से आबद्ध मूर्ख पुरुषों का यह शरीर दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त होता रहता है। यह शरीर बाह्य आभ्यन्तर भेद से नामरूप (पञ्च स्कन्ध) मात्र ही है। इस तरह उसके दो दो (इन्द्रिय और उनके विषय) होने से स्पर्श होता है। यही छह आयतन हैं जिनसे स्पर्श अनुभव कर मूर्ख पुरुष सुख दुःख का अनुभव करता है या इन छह आयतनों में से किसी एक के स्पर्शानुभव से।

"भिक्षुओ! अविद्या में जकड़े हुए तथा तृष्णा से आबद्ध पण्डितजनों का शरीर भी वृद्धिङ्गत होता रहता है। यह शरीर भी बाह्य आभ्यन्तरभेद से नाम-रूप (पञ्च स्कन्ध) ही

फस्सो सळेवायतनानि, येहि फुट्ठो पण्डितो सुखदुक्खं पटिसंवेदयति एतेसं वा अञ्ञतरेन। तत्र, भिक्खवे, को विसेसो को अधिप्पयासो किं नानाकरणं पण्डितस्स बालेना'' ति?

''भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा, भगवन्नेत्तिका, भगवम्पटिसरणा। साधु वत, भन्ते, भगवन्तञ्ञेव पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती'' ति।

''तेन हि, भिक्खवे, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चसोसुं। भगवा एतदवोच—''याय च, भिक्खवे, अविज्जाय निवुतस्स बालस्स याय च तण्हाय सम्पयुत्तस्स अयं कायो समुदगतो, सा चेव अविज्जा बालस्स अप्पहीना सा च तण्हा अपरिक्खीणा। तं किस्स हेतु? न, भिक्खवे, बालो अचरि ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खक्खयाय। तस्मा बालो कायस्स भेदा कायूपगो होति, सो कायूपगो समानो न परिमुच्चति जातिया जरामरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि। न परिमुच्चति दुक्खस्मा ति वदामि।''

''याय च, भिक्खवे, अविज्जाय निवुतस्स पण्डितस्स याय च तण्हाय

हैं। वह भी दो दो होने से स्पर्श होता है। यही छह आयतन हैं; जिनसे स्पृष्ट होकर पण्डित पुरुष सुख दुःख का अनुभव करता है। तो, भिक्षुओ! इन मूर्ख एवं पण्डितों में क्या भेद हैं?

(भिक्षु—) ''भन्ते! आप ही हमारे धर्मगुरु एवं धर्मोपदेष्टा, धर्मपथप्रदर्शक तथा धर्म के मूल तथा धर्मनिर्णायक हैं। अच्छा होता कि आप ही इस विषय में कुछ स्पष्ट कर देते। उसी के सहारे से हम भी अपने विचार स्थिर कर लेंगे।''

(भगवान्—) ''तो भिक्षुओ! एकाग्रचित्त होकर सुनो, जो मैं कहता हूँ उसे भली भाँति मन में बैठा लो।'' भिक्षुओं ने भगवान् के आदेश को स्वीकार किया। तब भगवान् बोले—

''भिक्षुओ! जिस अविद्या एवं तृष्णा के आधार पर मूर्खों का शरीर टिका रहता है, उनकी वह अविद्या एवं तृष्णा कभी क्षीण नहीं होती। वह क्यों? क्योंकि, भिक्षुओ! उस मूर्ख मनुष्य ने अपनी उस अविद्या एवं तृष्णा के नाश के लिये धर्म की साधना नहीं की; अतः वह इस जन्ममरण की परम्परा में निरन्तर पड़ा रहा। यों वह इस जन्ममरणपरम्परा में गिरा हुआ निरन्तर जरामरण शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य एवं उपायास के चक्र में फँसा रहता है। वह इनसे कभी छुटकारा नहीं पाता। अतः उसका दुःख से मुक्त होना अशक्य है।

सम्पयुत्तस्स अयं कायो समुदागतो, सा चेव अविज्जा पण्डितस्स पहीना, सा च तण्हा परिक्खीणा। तं किस्स हेतु? अचरि, भिक्खवे, पण्डितो ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्ख-
[R.25] क्खयाय। तस्मा पण्डितो कायस्स भेदा न कायूपगो होति। सो अकायूपगो समानो
[B.264] परिमुच्चति जातिया जरामरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि। परिमुच्चति दुक्खस्मा ति वदामि। अयं खो, भिक्खवे, विसेसो, अयं अधिप्पयासो, इदं नानाकरणं पण्डितस्स बालेन यदिदं ब्रह्मचरियवासो'' ति॥ •

२०. पच्चयसुत्तं

[N.24] २१. सावत्थियं विहरति। ''पटिच्चसमुप्पादं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि पटिच्चसमुप्पन्ने च धम्मे। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''कतमो च, भिक्खवे पटिच्चसमुप्पादो? जातिपच्चया, भिक्खवे, जरामरणं। उप्पादा वा तथागतानं अनुप्पदा वा तथागतानं, ठिता व सा धातु धम्मट्ठितता धम्मनियामता इदप्पच्चयता। तं तथागतो अभिसम्बुज्झति अभिसमेति। अभिसम्बु-

---

(इसके विपरीत—) बुद्धिमान् पुरुष भी यद्यपि प्रारम्भ में अविद्या एवं तृष्णा के जाल में फँसा रहता है; परन्तु आगे चलकर उसकी वे अविद्या एवं तृष्णा क्षीण हो जाती हैं। वह क्यों? वह इसलिये कि वह बुद्धिमान् पुरुष अपनी उन अविद्या एवं तृष्णा के सर्वथा नाशहेतु धर्म की साधना करता है। इस धर्मसाधना के प्रभाव से वह संसार में जन्म-मरण की परम्परा से मुक्ति पा लेता है। इस तरह वह इस परम्परा से उद्भूत जरा मरण शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य एवं उपायास से भी छुटकारा पा लेता है। अन्त में वह इस 'दुःख' से भी मुक्त हो जाता है।

''भिक्षुओ! मूर्ख एवं बुद्धिमान् पुरुष में यही विशेष है, यही भेद है, यही नानात्व है, यही अन्तर है। अर्थात् यह धर्मसाधना करने तथा न करने का भेद मूर्ख एवं बुद्धिमान् (पण्डित) पुरुष को पृथक् करता है॥ •

२०. प्रत्ययसूत्र : : प्रतीत्यसमुत्पाद की व्याख्या

२१. श्रावस्ती में साधना के समय....। ''भिक्षुओ! मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद एवं प्रत्यय (कारण=हेतु) से उत्पन्न धर्मों के विषय में उपदेश करूँगा, इसे सुनो, भली भाँति मन में बैठा लो।'' भिक्षुओं ने भगवान् के आदेश को स्वीकार किया। तब भगवान् बोले—

''भिक्षुओ! यह 'प्रतीत्यसमुत्पाद' क्या है? तथागत इस लोक में अवतार लेकर इस बात को कहें या न कहें, यह बात तो सर्वदा सत्य ही रहेगी कि प्रत्येक मनुष्य जनमने

ज्झित्वा अभिसमेत्वा आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति विभजति उत्तानीकरोति। 'पस्सथा' ति चाह— 'जातिपच्चया, भिक्खवे, जरामरणं'।

"भवपच्चया, भिक्खवे, जाति...पे०...उपादानपच्चया, भिक्खवे, भवो...तण्हा-पच्चया, भिक्खवे, उपादानं...वेदनापच्चया, भिक्खवे, तण्हा...फस्सपच्चया, भिक्खवे, वेदना...सळायतनपच्चया, भिक्खवे, फस्सो...नामरूपपच्चया, भिक्खवे, सळायतनं... विञ्ञाणपच्चया, भिक्खवे, नामरूपं...सङ्खारपच्चया, भिक्खवे, विञ्ञाणं...अविज्जा-पच्चया, भिक्खवे, सङ्खारा। उप्पादा वा तथागतानं अनुप्पादा वा तथागतानं, ठिता व सा धातु धम्मट्ठितता धम्मनियामता इदप्पच्चयता। तं तथागतो अभिसम्बुज्झति [R.26] अभिसमेति। अभिसम्बुज्झित्वा अभिसमेत्वा आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति विभजति उत्तानीकरोति। 'पस्सथा,' ति चाह—'अविज्जापच्चया, भिक्खवे, सङ्खारा'। इति खो, भिक्खवे, या तत्र तथता अवितथता अनञ्ञथता इदप्पच्चयता—अयं वुच्चति, भिक्खवे, पटिच्चसमुप्पादो।

"कतमे च, भिक्खवे, पटिच्चसमुप्पन्ना धम्मा? जरामरणं, भिक्खवे, अनिच्चं सङ्खतं पटिच्चसमुप्पन्नं खयधम्मं वयधम्मं विरागधम्मं निरोधधम्मं। जाति, भिक्खवे, अनिच्चा

के बाद उसको बुढ़ापा एवं मृत्यु अवश्य प्राप्त होगी; क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है, इसका कोई अपवाद नहीं हो सकता। इस बात को तथागत ने ही भली भाँति समझा है। उन्होंने इसको भली भाँति समझकर अधिकारी जनता को समझाया, उपदेश किया, बताया, प्रमाणित किया तथा विविध प्रकार से स्पष्ट किया कि जन्म के कारण ही बुढ़ापा एवं मृत्यु का आगमन होता है।

"भिक्षुओ! भव के कारण जाति होती है, उपादान के कारण भव होता है....तृष्णा के कारण, भिक्षुओ! उपादान होता है,....वेदना के कारण तृष्णा होती है....स्पर्श के कारण वेदना होती है....षडायतन के कारण स्पर्श होता है....नामरूप के कारण षडायतन होता है....विज्ञान के कारण नामरूप होते हैं....संस्कारों के कारण विज्ञान होता है....अविद्या के कारण संस्कार होते हैं। यह सब कुछ प्रकृतिगत नियम हैं, भले ही इन्हें कोई तथागत की तरह का अधिकारी पुरुष किसी को बताये या न बताये। इस बात को, इस प्राकृतिक नियम को तथागत ने ही....पूर्ववत्....वे ही इसे स्पष्ट करते हैं, तथा कहते हैं—देखो, भिक्षुओ! अविद्या के कारण ही संस्कार होते हैं। भिक्षुओ! इसकी सारी सत्यता, यथार्थता इसी नियम पर, इसी हेतु पर निर्भर है॥ (क)

"भिक्षुओ! ये प्रतीत्यसमुत्पन्न (सापेक्ष) धर्म क्या हैं? भिक्षुओ! यह जरामरण अनित्य है, संस्कृत है, प्रतीत्यसमुत्पन्न हैं, क्षयधर्मा व्ययधर्मा (विनाशशील) है, विराग

सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना खयधम्मा वयधम्मा विरागधम्मा निरोधधम्मा। भवो, भिक्खवे, अनिच्चो सङ्खतो पटिच्चसमुप्पन्नो खयधम्मो वयधम्मो विरागधम्मो निरोधधम्मो। [B.265] उपादानं, भिक्खवे ...पे०... तण्हा, भिक्खवे...वेदना, भिक्खवे...फस्सो, भिक्खवे...सळायतनं, भिक्खवे...नामरूपं, भिक्खवे...विञ्ञाणं, भिक्खवे...सङ्खारा, भिक्खवे...अविज्जा, भिक्खवे, अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना खयधम्मा वयधम्मा विरागधम्मा निरोधधम्मा। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, पटिच्चसमुप्पन्ना धम्मा।

[N.25] ''यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स 'अयं च पटिच्चसमुप्पादो, इमे च पटिच्चसमुपन्ना धम्मा' यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठा होन्ति, सो वत पुब्बन्तं वा पटिधाविस्सति— 'अहोसिं नु खो अहं अतीतमद्धानं, ननु खो अहोसिं अतीतमद्धानं, किं नु खो अहोसिं अतीतमद्धानं, कथं नु खो अहोसिं अतीतमद्धानं, किं हुत्वा किं अहोसिं नु खो अहं अतीतमद्धानं' ति; अपरन्तं वा उपधाविस्सति—'भविस्सामि नु खो अहं अतीतमद्धानं, ननु खो भविस्सामि अनागतमद्धानं, किं नु खो भविस्सामि अनागतमद्धानं, कथं नु खो भविस्सामि अनागतमद्धानं किं हुत्वा किं भविस्सामि नु खो अहं अनागतमद्धानं' ति; एतरहि वा पच्चुप्पन्नं अद्धानं अज्झत्तं कथङ्कथी भविस्सति— 'अहं नु खोस्मि, नो नु खोस्मि, किं नु खोस्मि, कथं नु खोस्मि, अयं नु खो सत्तो कुतो आगतो, सो कुहिं गमिस्सती' ति— 'नेतं ठानं विज्जति। तं किस्स हेतु? तथाहि,

---

(त्याग)स्वभाव है तथा निरोधस्वभाव है। भिक्षुओ! यह जाति....यह भव....यह उपादान....यह तृष्णा....यह वेदना....यह स्पर्श....यह षडायतन....यह नामरूप....यह विज्ञान....ये संस्कार....यह अविद्या अनित्य है, संस्कृत है, प्रतीत्यसमुत्पन्न है, क्षयधर्मा है, विनाशस्वभाव है, विरागस्वभाव है तथा निरोधस्वभाव है। भिक्षुओ! ये ही सब धर्म प्रतीत्यसमुत्पन्न कहलाते हैं॥ (ख)

''क्योंकि, भिक्षुओ! जिस किसी आर्यश्रावक द्वारा यह 'प्रतीत्यसमुत्पाद' नियम तथा ये प्रतीत्यसमुत्पन्न धर्म भली भाँति जान लिये गये होते हैं, समझ लिये गये होते हैं, स्पष्टतः प्रत्यक्ष (साक्षात्) कर लिये गये होते हैं; तब ऐसा जान लेने, समझ लेने के बाद, न वह **पूर्वान्त की मिथ्यादृष्टि** में फँसता है कि मैं भूतकाल में था या नहीं था? या भूतकाल में क्या था? कैसा था? या मैं भूतकाल में क्या होकर क्या हो गया था? न वह **अपरान्त की दृष्टि** में फँसता है कि मैं भविष्य में होऊँगा या नहीं होऊँगा ? या भविष्य में क्या होऊँगा? कैसा होऊँगा? या भविष्य में क्या होकर क्या होऊँगा? न वह **प्रत्युत्पन्न दृष्टि** में फँसकर यह ऊहापोह करता है कि मैं हूँ, मैं नहीं हूँ, मैं क्या हूँ, मैं कैसा हूँ? मेरा यह प्राण कहाँ से आया है? या कहाँ जायगा?

भिक्खवे, अरियसावकस्स अयं च पटिच्चसमुप्पादो, इमे च पटिच्चसमुप्पन्ना धम्मा यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठा'' ति॥

आहारवग्गो दुतियो॥

तस्सुद्दानं

आहारं फग्गानो चेव, द्वे च समणब्राह्मणा।
कच्चानगोत्तो धम्मकथिकं, अचेलं तिम्बरुकेन च।
बालपण्डिततो चेव, दसमो पच्चयेन चा ति॥

''वह क्यों ? वह इसलिये, भिक्षुओ ! कि उस आर्यश्रावक द्वारा यह 'प्रतीत्यसमुत्पाद' नियम एवं ये उपर्युक्त प्रतीत्यसमुत्पन्न धर्म भली भाँति समझकर जानकर साक्षात् कर लिये गये होते हैं॥ •

आहारवर्ग द्वितीय समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची इस प्रकार है—१. आहारसूत्र, २. मोळिय-फग्गुनसूत्र, ३. प्रथमश्रमणब्राह्मणसूत्र, ४. द्वितीय श्रमणब्राह्मणसूत्र, ५. कात्यायनगोत्रसूत्र, ६. धर्मकथिकसूत्र, ७. अचेलकाश्यपसूत्र, ८. तिम्बरुकसूत्र, ९. बालपण्डितसूत्र एवं १०. प्रत्ययसूत्र॥ •

३. दसबलवग्गो ततियो

२१. दसबलसुत्तं

२२. सावत्थियं विहरति। "दसबलसमन्नागतो, भिक्खवे, तथागतो चतूहि च वेसारज्जेहि समन्नागतो आसभं ठानं पटिजानाति, परिसासु सीहनादं नदति, ब्रह्मचक्कं [B.263, R.28] पवत्तेति—इति रूपं इति रूपस्स समुदयो इति रूपस्स अत्थङ्गमो, इति वेदना इति वेदनाय समुदयो इति वेदनाय अत्थङ्गमो, इति सञ्ञा इति सञ्ञाय समुदयो [N.26] इति सञ्ञाय अत्थङ्गमो, इति सङ्खारा इति सङ्खारानं समुदयो इति सङ्खारानं अत्थङ्गमो, इति विञ्ञाणं इति विञ्ञाणस्स समुदयो इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो। इति इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति। इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स निरोधा इदं निरुज्झति। यदिदं अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं ...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति॥ •

२२. दुतियदसबलसुत्तं

२३. सावत्थियं विहरति। "दसबलसमन्नागतो, भिक्खवे, तथागतो चतूहि च

---

३. दशबलवर्ग

२१. प्रथमदशबलसूत्र : : बुद्ध सर्वोत्तम कहलाने योग्य

२२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। भिक्षुओ! दश बलों से युक्त भगवान् बुद्ध चतुर्विध वैशारद्यों (दक्षताओं) से सम्पन्न रहते हुए सर्वोच्च स्थान पर विराजमान होकर यों सिंहनाद करते हैं, यों धर्मोपदेश करते हैं—यह रूप है, यह रूप का उत्पत्तिकारण है, यह रूप का निरोध (नाश) है, यह वेदना है, यह की उत्पत्ति का कारण है, यह वेदना का नाश (अस्त होना) है; यह संज्ञा है, यह संज्ञा का समुद्भव है, यह संज्ञा का नाश है; ये संस्कार हैं, ये संस्कारों की उत्पत्ति के कारण हैं, यों संस्कारों का नाश होता है; यह विज्ञान है, यह विज्ञान का उत्पत्तिहेतु है, यह विज्ञान का नाश है। तथा 'इसके होने पर यह होता है', या 'इसके न होने पर यह भी नहीं होता—' यह भी घोषणा करते हैं। जैसे—'अविद्या के कारण से संस्कार होते हैं, संस्कारों के कारण विज्ञान....पूर्ववत्....यों, इस समस्त दुःखसमूह का उत्पाद (समुदय) होता है'। और, 'अविद्या के निरोध से संस्कारों का निरोध, संस्कारों के निरोध से विज्ञान का निरोध....पूर्ववत्....यों इस समस्त दुःखसमूह का निरोध होता है'॥" •

वेसारज्जेहि समन्नागतो आसभं ठानं पटिजानाति, परिसासु सीहनादं नदति, ब्रह्मचक्कं पवत्तेति— 'इति रूपं इति रूपस्स समुदयो इति रूपस्स अत्थङ्गमो, इति वेदना इति वेदनाय समुदयो इति वेदनाय अत्थङ्गमो, इति सञ्ञा इति सञ्ञाय समुदयो इति सञ्ञाय अत्थङ्गमो, इति सङ्खारा इति सङ्खारानं समुदयो इति सङ्खारानं अत्थङ्गमो, इति विञ्ञाणं इति विञ्ञाणस्स समुदयो इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो। इति इमस्मिं सति इदं होति इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति, इमस्मिं असति इदं न होति इमस्स निरोधा इदं निरुज्झति। यदिदं अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति'।

"एवं स्वाक्खातो, भिक्खवे, मया धम्मो उत्तानो विवटो पकासितो छिन्नपिलोतिको। एवं स्वाक्खाते खो, भिक्खवे, मया धम्मे उत्ताने विवटे पकासिते छिन्नपिलोतिके अलमेव सद्धापब्बजितेन कुलपुत्तेन विरियं आरभितुं—'कामं [B.267] तचो च न्हारू च अट्ठि च अवसिस्सतु, सरीरे उपसुस्सतु मंसलोहितं। यं तं पुरिसथमेन पुरिसविरियेन पुरिसपरक्कमेन पत्तब्बं न तं अपापुणित्वा सण्ठानं भविस्सती' ति।

"दुक्खं, भिक्खवे, कुसीतो विहरति वोकिण्णो पापकेहि अकुसलेहि [N.27] धम्मेहि, महन्तं च सदत्थं परिहापेति; आरद्धविरियो च खो, भिक्खवे, सुखं विहरति पविवित्तो पापकेहि अकुसलेहि धम्मेहि, महन्तं च सदत्थं परिपूरेति। न, भिक्खवे, हीनेन

---

२२. द्वितीय दशबलसूत्र : : प्रव्रज्या की सफलता हेतु प्रयास

२३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! दशबलों से युक्त भगवान् ....पूर्ववत्....इस समस्त दुःखसमूह का निरोध होता है।

"इस तरह, भिक्षुओ! मैंने स्वोपदिष्ट धर्म का भली भाँति स्पष्ट एवं विशद रूप से व्याख्यान कर दिया है, समझा दिया है तथा सब तरफ से उसको अनावृत कर (खोल=छिन्नपिलोतिक) दिया है।

"भिक्षुओ! ऐसे सुविख्यात धर्म में दीक्षित होकर साधना (वीर्य=उद्योग) करने वाला कुलपुत्र सफल ही होता है। भले ही उसके शरीर की त्वचा, रक्तवाहिनी नाड़ियाँ, हड्डी, मांस एवं रक्त आदि सब कुछ सूख जाय; परन्तु उस कुलपुत्र का वह प्रयास, वह उद्योग, वह पराक्रम लक्ष्य को प्राप्त किये विना बीच में ही नहीं रुक सकता।

"भिक्षुओ! आलसी पुरुष पापधर्मों में लिप्त रहता हुआ दुःखमय जीवन का भागी होता है। इस तरह वह (आलसी) पुरुष अपने महान् प्राप्तव्य सदर्थ से दूर हो जाता है। उसे क्षीण कर देता है। इसके विपरीत, भिक्षुओ! धर्मसाधक पापमय अकुशल धर्मों से दूर

अग्गस्स पत्ति होति। अग्गेन च खो, भिक्खवे, अग्गस्स पत्ति होति। मण्डपेय्यमिदं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियं, सत्था सम्मुखीभूतो। तस्मातिह, भिक्खवे, विरियं आरभथ अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। 'एवं नो अयं अम्हाकं पब्बज्जा अवञ्झा भविस्सति सफला सउद्रया। येसं च मयं परिभुञ्जाम चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं तेसं ते कारा अम्हेसु महप्फला भविस्सन्ति महानिसंसा' ति—एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं। अत्तत्थं वा हि, भिक्खवे, सम्पस्समानेन अलमेव अप्पमादेन सम्पादेतुं; परत्थं वा हि, भिक्खवे, सम्पस्समानेन अलमेव सम्पादेतुं; उभयत्थं वा हि, भिक्खवे, सम्पस्समानेन अलमेव अप्पमादेन सम्पादेतुं'' ति॥ ●

२३. उपनिससुत्तं

२४. सावत्थियं विहरति। ''जानतो अहं, भिक्खवे, पस्सतो आसवानं खयं वदामि, नो अजानतो नो अपस्सतो। किञ्च, भिक्खवे, जानतो किं पस्सतो आसवानं खयो होति? इति रूपं इति रूपस्स समुदयो इति रूपस्स अत्थङ्गमो, इति वेदना...पे०...इति सञ्ञा...इति सङ्खारा...इति विञ्ञाणं इति विञ्ञाणस्स समुदयो इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो ति। एवं खो, भिक्खवे, जानतो एवं पस्सतो आसवानं खयो होति।

रहता हुआ सुखमय जीवन व्यतीत करता है। तथा अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफल होता है। भिक्षुओ! हीन जीवनवृत्ति से श्रेष्ठ जीवन नहीं बनता, अपितु उच्च जीवनवृत्ति से ही श्रेष्ठ जीवन प्राप्त किया जा सकता है। अत:, भिक्षुओ! अपने चित्त में इस धर्म के प्रति श्रद्धा जाग्रत् करो, तुम्हारे सम्मुख बुद्ध उपस्थित हैं। इसलिये, भिक्षुओ! अप्राप्त की प्राप्ति के लिये, अदृष्ट के दर्शन के लिये, अगम्य की सुलभता के लिये प्रयास करो। भिक्षुओ! 'इस तरह हमारी यह प्रव्रज्या सफल होगी, क्रियात्मक होगी। तथा हमारे लिये चीवर, पिण्डदान, शयनासन एवं रुग्णावस्था में जो ओषधिव्यवस्था करते हैं उनका किया हुआ यह अपूर्व दान भी उनके लिये पुण्यप्रद होगा।'—भिक्षुओ! तुम्हें यह सीखना चाहिये।

''भिक्षुओ! इस तरह, तुम लोग स्वहित को ध्यान में रखते हुए सावधानी से इस साधना में श्रम करो, तथा दूसरों (दानदाताओं) के हित को भी ध्यान में रखते हुए अप्रमादपूर्वक साधना में श्रम करो''॥ ●

२३. उपनिषत्सूत्र : : आश्रवक्षय : प्रतीत्यसमुत्पाद

२४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! मैं इन आश्रवों को जानते समझते हुए ही, इनके त्याग का उपदेश करता हूँ, विना जानते समझते हुए नहीं। भिक्षुओ! क्या जानते क्या समझते हुए इन आश्रवों का क्षय होता है? यह रूप है, यह रूप का उद्भव है, यह रूप का नाश है....पूर्ववत्....यह वेदना है....यह संज्ञा है....यह संस्कार है....यह

"यं पिस्स तं, भिक्खवे, खयस्मिं खयेञाणं तं पि सउपनिसं वदामि नो [R.30] अनुपनिसं। का च, भिक्खवे, खयेञाणस्स उपनिसा? 'विमुत्ती' तिस्स वचनीयं। विमुत्तिं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपनिसं। का च, भिक्खवे, [B.268] विमुत्तिया उपनिसा? 'विरागो' तिस्स वचनीयं। विरागं पाहं, भिक्खवे, [N.28] सउपनिसं वदामि नो अनुपरिसं। का च, भिक्खवे विरागस्स उपनिसा? 'निब्बिदा' तिस्स वचनीयं। निब्बिदं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपनिसं। का च, भिक्खवे, निब्बिदाय उपनिसा? 'यथाभूतञाणदस्सनं तिस्स वचनीयं। यथाभूतञाण-दस्सनं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपनिसं। का च, भिक्खवे, यथाभूत-ञाणदस्सनस्स उपनिसा? 'समाधी' तिस्स वचनीयं। समाधिं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपरिसं।

"का च, भिक्खवे, समाधिस्स उपनिसा? 'सुखं' तिस्स वचनीयं। सुखं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपनिसं। का च, भिक्खवे, सुखस्स उपनिसा? 'पस्सद्धी' तिस्स वचनीयं। पस्सद्धिं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपनिसं। का च, भिक्खवे, पस्सद्धिया उपनिसा? 'पीती' तिस्स वचनीयं। पीतिं पाहं, भिक्खवे,

---

विज्ञान है, यह विज्ञान का उद्भव है, यह विज्ञान का नाश है—यों जानते समझते हुए आश्रवों का क्षय होता है।

"भिक्षुओ! इसी तरह मैं 'क्षय होने पर जो क्षय का ज्ञान होता है वह भी सहेतुक होता है, अहेतुक नहीं'—ऐसा बताता हूँ। भिक्षुओ! इस क्षयज्ञान का हेतु क्या है? क्षयज्ञान का हेतु है विमुक्ति। यह विमुक्ति भी सहेतुक है, अहेतुक नहीं। इस विमुक्ति का हेतु क्या है? इस विमुक्ति का हेतु है वैराग्य। भिक्षुओ! इस वैराग्य को भी मैं सहेतुक ही बताता हूँ, अहेतुक नहीं। इस वैराग्य का हेतु क्या है? संसार की बुराइयों को देखकर उनसे भय मानना (निर्वेद) वैराग्य का हेतु है। भिक्षुओ! इस निर्वेद को भी मैं सहेतुक ही मानता हूँ, अहेतुक नहीं। इस निर्वेद का हेतु क्या है? उसका हेतु है यथार्थज्ञानदर्शन। भिक्षुओ! इस यथार्थज्ञानदर्शन को भी मैं सहेतुक ही मानता हूँ, अहेतुक नहीं। इस यथार्थज्ञानदर्शन का हेतु क्या है? इस यथार्थज्ञानदर्शन का हेतु है समाधि—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! इस समाधि को भी मैं सहेतुक ही मानता हूँ, अहेतुक नहीं।

"और, भिक्षुओ! समाधि का हेतु क्या है? समाधि का हेतु है सुख—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! मैं इस सुख को भी सहेतुक ही कहता हूँ, अहेतुक नहीं। इस सुख का हेतु क्या है? इस सुख का हेतु है प्रश्रब्धि (शान्ति)—ऐसा कहना चाहिये। यह प्रश्रब्धि भी सहेतुक है, अहेतुक नहीं। इस प्रश्रब्धि का हेतु क्या है? प्रश्रब्धि का हेतु है प्रीति—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! मैं इस प्रीति को भी सहेतुक ही मानता हूँ, अहेतुक नहीं।

सउपनिसं वदामि, नो अनुपनिसं। का च, भिक्खवे, पीतिया उपनिसा? 'पामोज्जं' तिस्स वचनीयं। पामोज्जं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपनिसं। का च, भिक्खवे, पामोज्जस्स उपनिसा? 'सद्धा' तिस्स वचनीयं। सद्धं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपनिसं।

[R.31] "का च, भिक्खवे, सद्धाय उपनिसा? 'दुक्खं' तिस्स वचनीयं। दुक्खं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपनिसं। का च, भिक्खवे, दुक्खस्स उपनिसा? 'जाती' तिस्स वचनीयं। जातिं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपनिसं। का च, जातिया उपनिसा? 'भवो' तिस्स वचनीयं। भवं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपनिसं। का च, भिक्खवे, भवस्स उपनिसा? 'उपादानं' तिस्स वचनीयं। उपादानं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपनिसं। का च, भिक्खवे,उपादानस्स उपनिसा? 'तण्हा' तिस्स वचनीयं। तण्हं पाहं, भिक्खवे, सउपनिसं वदामि नो अनुपनिसं।

"का च, भिक्खवे, तण्हाय, उपनिसा? 'वेदना' तिस्स वचनीयं...पे०... 'फस्सो' तिस्स वचनीयं...'सळायतनं' तिस्स वचनीयं... 'नामरूपं' तिस्स वचनीयं... 'विञ्ञाणं' तिस्स वचनीयं...'सङ्खारा' तिस्स वचनीयं। सङ्खारे पाहं, भिक्खवे,

---

इस प्रीति का हेतु क्या है? प्रीति का हेतु है प्रमोद (हर्ष)—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! मैं इस प्रमोद को भी सहेतुक ही मानता हूँ, अहेतुक नहीं। इस प्रमोद का हेतु क्या है? प्रमोद का हेतु है श्रद्धा—ऐसा कहना चाहिये। अथ च, भिक्षुओ! मैं इस श्रद्धा को भी सहेतुक ही मानता हूँ, अहेतुक नहीं।

"तो, भिक्षुओ! इस श्रद्धा का हेतु क्या है? उसका हेतु है दुःख—ऐसा कहना चाहिये। इस दुःख को भी, भिक्षुओ! मैं सहेतुक ही मानता हूँ, अहेतुक नहीं। तो इस दुःख का हेतु क्या है? दुःख का हेतु है जाति (जन्मपरम्परा)—ऐसा कहना चाहिये। इस जाति को भी भिक्षुओ! मैं सहेतुक ही मानता हूँ, अहेतुक नहीं। तो इस जाति का हेतु क्या है? इस जाति का हेतु है भव—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! इस भव को भी मैं सहेतुक ही मानता हूँ, अहेतुक नहीं। तो इस भव का हेतु क्या है? इस भव का हेतु है उपादान—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! मैं इस उपादान को भी सहेतुक ही मानता हूँ, अहेतुक नहीं। तो, भिक्षुओ! इस उपादान का हेतु क्या है? उपादान का हेतु है तृष्णा—ऐसा कहना चाहिये। फिर, भिक्षुओ! मैं इस तृष्णा को भी सहेतुक ही मानता हूँ, अहेतुक नहीं।

"तो फिर, भिक्षुओ! इस तृष्णा का हेतु क्या है? वेदना ही इस तृष्णा का हेतु है—ऐसा मानना चाहिये।....पूर्ववत्....स्पर्श तृष्णा का हेतु है....षडायतन....नामरूप....विज्ञान.... संस्कार विज्ञान का हेतु है—ऐसा मानना चाहिये। फिर, भिक्षुओ! इन संस्कारों को भी मैं

सउपनिसे वदामि नो अनुपनिसे। का च, भिक्खवे, सङ्खारानं उपनिसा? 'अविज्जा' तिस्स वचनीयं।

"इति खो, भिक्खवे, अविज्जूपनिसा सङ्खारा, सङ्खारूपनिसं विञ्ञाणं, [N.29] विञ्ञाणूपनिसं नामरूपं, नामरूपूपनिसं सळायतनं, सळायतनूपनिसो फस्सो, [B.269] फस्सूपनिसा वेदना, वेदनूपनिसा तण्हा, तण्हूपनिसं उपादानं, उपादानूपनिसो भवो, भवूपनिसा जाति, जातूपनिसं दुक्खं, दुक्खूपनिसा सद्धा, सद्धूपनिसं पामोज्जं, पामोज्जूपनिसा पीति, पीतूपनिसा पस्सद्धि, पस्सद्धूपनिसं सुखं, सुखूपनिसो समाधि, समाधूपनिसं यथाभूतञाणदस्सनं, यथाभूतञाणदस्सनूपनिसा निब्बिदा, निब्बिदूपनिसो विरागो, विरागूपनिसा विमुत्ति, विमुत्तूपनिसं खयेञाणं।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, उपरिपब्बते थुल्लफुसितके देवे वस्सन्ते तं उदकं [R.32] यथानिन्नं पवत्तमानं पब्बतकन्दरपदरसाखा परिपूरेति। पब्बतकन्दरपदरसाखापरिपूरा कुसोब्भे परिपूरेन्ति। कुसोब्भा परिपूरा महासोब्भे परिपूरेन्ति। महासोब्भा परिपूरा कुन्नदियो परिपूरेन्ति। कुन्नदियो परिपूरा महानदियो परिपूरेन्ति। महानदियो परिपूरा महासमुद्दं परिपूरेन्ति।

"एवमेव खो, भिक्खवे, अविज्जूपनिसा सङ्खारा, सङ्खारूपनिसं विञ्ञाणं, विञ्ञाणूपनिसं नामरूपं, नामरूपूपनिसं सळायतनं, सळायतनूपनिसो फस्सो,

---

सहेतुक ही मानता हूँ, अहेतुक नहीं। इन संस्कारों का हेतु क्या है? अविद्या संस्कारों की हेतु है—ऐसा मानना चाहिये।

"यों, भिक्षुओ! अविद्या के कारण संस्कार, संस्कारों के कारण विज्ञान, विज्ञान के कारण नामरूप, नामरूप के कारण षडायतन, षडायतन के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जाति, जाति के कारण दुःख, दुःख के कारण श्रद्धा, श्रद्धा के कारण प्रमोद, प्रमोद के कारण प्रीति, प्रीति के कारण प्रश्रब्धि, प्रश्रब्धि के कारण सुख, सुख के कारण समाधि, समाधि के कारण यथाभूतज्ञानदर्शन, यथाभूतज्ञानदर्शन के कारण निर्वेद, निर्वेद के कारण वैराग्य, वैराग्य के कारण विमुक्ति तथा विमुक्ति के कारण क्षयज्ञान के होता है।

"भिक्षुओ! जैसे किसी पर्वत पर प्रबल वर्षा होने पर वह जल नीचे की ओर बहता हुआ उस पर्वत की कन्दराओं, खाली गड्ढों आदि को भर देता है; इनके भर जाने से उस पर्वत से निकलने वाले नाले भर कर बह निकलते हैं, इन नालों के भर जाने से झरने झर कर बह निकलते हैं, छोटे झरनों से बड़े झरने, बड़े झरनों से छोटी नदियाँ, छोटी नदियों से बड़ी नदियाँ, बड़ी नदियों से समुद्र भी भरता रहता है।

फस्सूपनिसा वेदना, वेदनूपनिसा तण्हा, तण्हूपनिसं उपादानं, उपादानूपनिसो भवो, भवूपनिसा जाति, जातूपनिसं दुक्खं, दुक्खूपनिसा सद्धा, सद्धूपनिसं पामोज्जं, पामोज्जूपनिसा पीति, पीतूपनिसा पस्सद्धि, पस्सद्धूपनिसं सुखं, सुखूपनिसो समाधि, समाधूपनिसं यथाभूतञाणदस्सनं, यथाभूतञाणदस्सनूपनिसा निब्बिदा, निब्बिदूपनिसो विरागो, विरागूपनिसा विमुत्ति, विमुत्तूपनिसं खयेञाणं'' ति॥ •

२४. अञ्ञतित्थियसुत्तं

२५. ...राजगहे विहरति वेळुवने। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पिण्डाय पाविसि। अथ खो आयस्मतो सारिपुत्तस्स एतदहोसि—''अतिप्पगो खो ताव राजगहे पिण्डाय चरितुं। यन्नूनाहं येन अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं आरामो तेनुपसङ्कमेय्यं'' ति।

[N.30,B.270, R.33] अथ खो अयस्मा सारिपुत्तो येन अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं आरामो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तेहि अञ्ञतित्थियेहि परिब्बाजकेहि सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं सारिपुत्तं ते अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एतदवोचुं—

''१. सन्तावुसो, सारिपुत्त, एके समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति। २. सन्ति पनावुसो सारिपुत्त, एके समणब्राह्मणा कम्मवादा परङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति। ३. सन्तावुसो सारिपुत्त, एके समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं च परङ्कतं च

''इसीतरह, भिक्षुओ! अविद्या के क।रण संस्कार....पूर्ववत्....विमुक्ति का कारण (हेतु) क्षयज्ञान है॥ •

२४. अन्यतीर्थिकसूत्र : : दु:ख का उत्पाद सापेक्ष है

२५. **राजगृह** के वेणुवन में साधना के समय....। तब किसी दिन आयुष्मान् सारिपुत्र ने पूर्वाह्ण में अपने वस्त्रों को सुव्यवस्थित कर, पात्र चीवर लेकर राजगृह में भिक्षा हेतु प्रवेश किया। तब आयुष्मान् सारिपुत्र के मन में यह विचार आया कि भिक्षाकाल में अभी विलम्ब है, तो क्यों न मैं इतना समय किसी अन्यतीर्थिक परिव्राजकों के आश्रम में चलकर शास्त्रचर्चा में बिताऊँ!

तब आयुष्मान् सारिपुत्र अन्यतीर्थिक परिव्राजकों के किसी आश्रम में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर परिव्राजकों से कुशलमङ्गल पूछकर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे हुए उनसे परिव्राजकों ने यह प्रश्न पूछा—

''आयुष्मन् सारिपुत्र! (क) कुछ श्रमण ब्राह्मण कर्मवाद सिद्धान्त को मानते हुए दु:ख को स्वकृत बताते हैं। (ख) तथा कुछ श्रमण ब्राह्मण कर्मवादी होते हुए दु:ख को

दुक्खं पञ्ञापेन्ति। ४. सन्ति पनावुसो सारिपुत्त,एके समणब्राह्मणा कम्मवादा असयङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं दुक्खं पञ्ञापेन्ति। इध पनावुसो सारिपुत्त, समणो गोतमो किंवादी किमक्खायी? कथं ब्याकरमाना च मयं वुत्तवादिनो चेव समणस्स गोतमस्स अस्साम, न च समणं गोतमं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्याम, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्याम, न च कोचि सहधम्मिको वादानुपातो गारय्हं ठानं आगच्छेय्या'' ति?

''पटिच्चसमुपन्नं खो, आवुसो, दुक्खं वुत्तं भगवता। किं पटिच्च? फस्सं पटिच्च इति वदं वुत्तवादी चेव भगवतो अस्स, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्य, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्य, न च कोचि सहधम्मिको वादानुपातो गारय्हं ठानं आगच्छेय्य।

''तत्रावुसो, ये ते समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति तदपि फस्सपच्चया। ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा परङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति तदपि [R.34] फस्सपच्चया। ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं च परङ्कतं च दुक्खं पञ्ञापेन्ति तदपि फस्सपच्चया। ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं दुक्खं पञ्ञापेन्ति तदपि फस्सपच्चा।

परकृत मानते हैं। (ग) एवं कुछ श्रमण ब्राह्मण....दुःख को स्व तथा पर—यों उभयकृत मानते हैं। (घ) परन्तु कुछ ऐसे भी श्रमण ब्राह्मण हैं जो....इस दुःख को न स्वकृत और न परकृत—उभयथा ही नहीं मानते। तो, आयुष्मन् सारिपुत्र! आपके (गुरु) श्रमण गौतम इन चारों में से कौन सा सिद्धान्त उचित बताते हैं तथा उसका व्याख्यान किस प्रकार करते हैं? कैसा कहकर हम उनके सिद्धान्त का उचित व्याख्यान कर सकते हैं? ऐसा न हो कि हम जो उनके विषय में कहें उससे हम पर असत्य भाषण का आरोप लगने लगे तथा उनकी निन्दा होने लगे। हम ऐसा चाहते हैं कि श्रमण गौतम के विषय में वही बोले जो उनके सिद्धान्तों से मेल खावे तथा उससे उनकी किसी तरह की निन्दा भी न हो?''

(सारिपुत्र—) ''आयुष्मानो! 'भगवान् ने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न (सकारण) बताया है। किस कारण से? स्पर्श के कारण। ऐसा कहते हुए आप लोग भगवान् के सिद्धान्त के विषय में उचित ही कहेंगे। ऐसा कहते हुए आप लोगों पर कोई असत्यभाषण का आरोप भी नहीं लगेगा। ऐसा कहते हुए आप उनका सिद्धान्तसम्मत ही व्याख्यान करेंगे। आपका यह कथन उनके धर्मानुकूल ही होगा। न उनकी किसी प्रकार से निन्दा ही होगी।

''वहाँ, आयुष्मानो! जो श्रमण ब्राह्मण कर्मवादी होते हुए दुःख को स्वकृत मानते हैं, वे स्पर्श के कारण ही ऐसा मानते हैं; और जो श्रमण ब्राह्मण....दुःख को परकृत मानते हैं वे भी स्पर्श के कारण ही ऐसा मानते हैं; अथ च—जो....स्व तथा पर—यों उभयकृत

"तत्रावुसो, ये ते समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति। ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा परङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति। [B.271] ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं च परङ्कतं च दुक्खं पञ्ञापेन्ति ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति। ये पि समणब्राह्मणा कम्मवादा [N.31] असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं दुक्खं पञ्ञापेन्ति ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जती" ति।

अस्सोसि खो आयस्मा आनन्दो आयस्मतो सारिपुत्तस्स तेहि अञ्ञतित्थियेहि परिब्बाजकेहि सद्धिं इमं कथासल्लापं। अथ खो आयस्मा आनन्दो राजगहे पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो यावतको आयस्मतो सारिपुत्तस्स तेहि अञ्ञतित्थियेहि परिब्बाजकेहि सद्धिं अहोसि कथासल्लापो तं सब्बं भगवतो आरोचेसि।

"साधु साधु, आनन्द, यथा तं सारिपुत्तो सम्मा ब्याकरमानो ब्याकरेय्य। पटिच्चसमुप्पन्नं खो, आनन्द, दुक्खं वुत्तं मया। किं पटिच्च? फस्सं पटिच्च। इति वदं वुत्तवादी चेव मे अस्स, न च मं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्य, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्य, न च कोचि सहधम्मिको वादानुपातो गारय्हं ठानं आगच्छेय्य।"

मानते हैं वे भी स्पर्श के कारण ही ऐसा मानते हैं; तथा जो....न स्वकृत या न परकृत—यों अनुभयकृत मानते हैं वे भी स्पर्श के कारण ही ऐसा मानते हैं।

"वहाँ, आयुष्मानो! वे कर्मवादी दुःख को स्वकृत मानने वाले श्रमण ब्राह्मण स्पर्श के कारण ही ऐसा मान सकते हैं, इसके अतिरिक्त अन्य किसी कारण से ऐसा मानें—यह सम्भव नहीं। तथा जो श्रमण....पूर्ववत्....दुःख को न स्वकृत न परकृत—यों अनुभयकृत मानते हैं वे भी यहाँ स्पर्श के अतिरिक्त किसी अन्य को कारण मानेंगे—यह सम्भव नहीं।"

आयुष्मान् आनन्द ने भी अन्य तीर्थिक परिव्राजकों के साथ हुए इस आयुष्मान् सारिपुत्र के संवाद को सुना। तब आयुष्मान् आनन्द राजगृह में भिक्षाकर्म से निवृत्त होकर भोजन कर भगवान् के सम्मुख पहुँचे। पहुँचकर उन्हें प्रणामकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए उन्होंने यह समस्त संवाद, जो आयुष्मान् सारिपुत्र का अन्य तीर्थिक परिव्राजकों के साथ हुआ था, भगवान् को अविकल सुनाया।

(उसे सुनकर भगवान् ने कहा—) "ठीक है, आनन्द! ठीक है। जैसा इस

"तत्रानन्द, ये ते समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति [R.35] तदपि फस्सपच्चया। ये पि ते...पे०...ये पि ते...पे०...ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं दुक्खं पञ्ञापेन्ति तदपि फस्सच्चया।

"तत्रानन्द, ये पि समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति। ये पि ते...पे०...ये पि ते...पे०...ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं दुक्खं पञ्ञापेन्ति ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ति ति नेतं ठानं विज्जति।

"एकमिदाहं, आनन्द, समयं इधेव राजगहे विहरामि वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ ख्वाहं, आनन्द, पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पिण्डाय पाविसिं। तस्स मय्हं, आनन्द, एतदहोसि–'अतिप्पगो खो ताव राजगहे पिण्डाय [B.272] चरितुं। यन्नूनाहं येन अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं आरामो तेनुपसङ्कमेय्यं' ति।

"अथ ख्वाहं, आनन्द, येन अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं आरामो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा तेहि अञ्ञतित्थियेहि परिब्बाजकेहि सद्धिं सम्मोदिं। सम्मोदनीयं [N.32] कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिं। एकमन्तं निसिन्नं खो मं, आनन्द, ते अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एतदवोचुं—

१. 'सन्तावुसो गोतम, एके समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति। २. सन्ति पनावुसो गोतम,एके समणब्राह्मणा कम्मवादा परङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति। ३. सन्तावुसो गोतम, एके समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं च परङ्कतं च दुक्खं पञ्ञापेन्ति। ४. सन्ति पनावुसो गोतम,एके समणब्राह्मणा कम्मवादा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्च-समुप्पन्नं दुक्खं पञ्ञापेन्ति। इध नो अयस्मा गोतमो किंवादी किमक्खायी? कथं ब्याकरमाना च मयं वुत्तवादिनो चेव आयस्मतो गोतमस्स अस्साम, न च [R.36]

सारिपुत्र ने कहा है। मैंने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न ही कहा है। ऐसा कहते हुए ही....पूर्ववत्....मेरी निन्दा नहीं होगी।

"वहाँ, आनन्द! जो श्रमण ब्राह्मण कर्मवादी होते हुए....पूर्ववत्....किसी अन्य को कारण मानेंगे—यह सम्भव नहीं है।

"एक समय, आनन्द! मैं इसी राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु ठहरा हुआ था।....पूर्ववत्....ये परिव्राजक यों बोले—

'यहाँ कुछ श्रमण ब्राह्मण कर्मवाद सिद्धान्त को मानते हुए....पूर्ववत्....आपकी किसी तरह निन्दा भी न हो?"

आयस्मन्तं गोतमं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्याम, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्याम, न च कोचि सहधम्मिको वादानुपातो गारय्हं ठानं आगच्छेय्या' ति?

"एवं वुत्ताहं, आनन्द, ते अञ्ञतित्थिये परिब्बाजके एतदवोचं—'पटिच्च-समुप्पन्नं खो, आवुसो, दुक्खं वुत्तं मया। किं पटिच्च? फस्सं पटिच्च। इति वदं वुत्तवादी चेव मे अस्स, न च मं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्य, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्य, न च कोचि सहधम्मिको वादानुपातो गारय्हं ठानं आगच्छेय्या' ति।

"तत्रावुसो, ये ते समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं दुक्खं पञ्ञपेन्ति तदपि फस्सपच्चया। ये पि ते...पे०...ये पि ते...पे०...ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं दुक्खं पञ्ञापेन्ति तदपि फस्सपच्चया।

"तत्रावुसो, ये ते समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति। ये पि ते...पे०...ये पि ते...पे०... ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं दुक्खं पञ्ञापेन्ति ते वत अञ्ञत्र फस्सा पदिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जती" ति।

"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यत्र हि नाम एकेन पदेन सब्बो अत्थो वुत्तो [B.273] भविस्सति। सिया नु खो, भन्ते, एसवत्थो वित्थारेन वुच्चमानो गम्भीरो चेव अस्स गम्भीरावभासो चा" ति।

[N.33] "तेनहानन्द, तञ्ञेवेत्थ पटिभातू" ति।

"सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं—'जरामरणं, आवुसो आनन्द, किंनिदानं किंसमुदयं किंजातिकं किंपभवं' ति, एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं—'जरामरणं खो,

---

....'पूर्ववत्....वे भी स्पर्श के अतिरिक्त किसी अन्य को कारण मानेंगे—यह सम्भव नहीं है।"

(यह सुनकर आयुष्मान् आनन्द भगवान् से यों बोले—) "आश्चर्य है, भन्ते! आपने तो एक ही पद से (बहुत संक्षेप में) सब कुछ कह दिया। भन्ते! यदि यही बात विस्तार से कही जाती तो बहुत गम्भीर (विस्तृत) हो जाती। देखने-सुनने में यह बहुत विस्तृत ज्ञान होता।"

(भगवान्—) "तो तुम इसका विस्तार कैसे करोगे?"

(आनन्द—) "भन्ते! कोई मुझसे यों पूछे—'आयुष्मान् आनन्द! जरा-मरण की उत्पत्ति का क्या निदान (कारण) है, क्या उद्भव है, उसकी क्या जाति है या क्या प्रभव (उत्पत्तिस्थल) है?' तो मैं उसको यही उत्तर दूँगा, 'आयुष्मानो! जरामरण का जाति ही

आवुसो, जातिनिदानं जातिसमुदयं जातिजातिकं जातिप्पभवं' ति। एवं पुट्ठोहं, भन्ते एवं ब्याकरेय्यं।

"सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं—'जाति पनावुसो आनन्द, किंनिदाना किंसमुदया किंजातिका किंपभवा' ति? एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं—'जाति खो, आवुसो, भवनिदाना भवसमुदया भवजातिका भवप्पभवा' ति। एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं।

"सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं—'भवो पनावुसो आनन्द, किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो' ति? एवं पुट्ठोहं,भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं—'भवो खो, आवुसो, उपादाननिदानो उपादानसमुदयो उपादानजातिको उपादानप्पभवो' ति। एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं।

"सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं— उपादानं पनावुसो...पे०...तण्हा पनावुसो ...पे०...वेदना पनावुसो...पे०...सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं—'फस्सो पनावुसो आनन्द, किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो' ति, एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं— 'फस्सो खो, आवुसो, सळायतननिदानो सळायतनसमुदयो सळायतनजातिको सळायतनप्पभवो' ति। 'छन्नं त्वेव, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा फस्सनिरोधो; फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो; वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो; फस्सनिरोधो; फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो; वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो; तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो; भवनिरोधा जातिनिरोधो; जातिनिरोधा जरामरणं सोक-परिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती' ति। एवं पुट्ठोहं,भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं" ति॥

●

निदान है, जाति ही उद्भव है, जाति ही उसकी जाति है तथा जाति ही उसका प्रभवस्थल है।' उक्त प्रश्न पूछे जाने पर, भन्ते! मैं उसका यही उत्तर दूँगा।

"और, भन्ते! कोई मुझसे यह पूछे—'इस जाति का क्या निदान है,.....पूर्ववत्....भव ही इस जाति का प्रभवस्थल है।

"....भव का क्या निदान है,....उपादान ही इस भव का प्रभवस्थल है।

"....उपादान का....तृष्णा का....वेदना का....स्पर्श का....षडायतन ही इस स्पर्श का प्रभवस्थल है। आयुष्मानो! इन छहों स्पर्शायतनों के पूर्णत: निरुद्ध हो जाने पर स्पर्श का निरोध हो जाता है, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध हो जाता है, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध हो जाता है, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध हो जाता है, उपादान के निरोध से भव का निरोध, भव के निरोध से जाति का निरोध तथा जाति के निरोध से जरामरण शोक परिदेव दु:ख दौर्मनस्य एवं उपायास निरुद्ध हो जाते हैं। यों इस समस्त दु:खस्कन्ध का निरोध सम्भव है। उक्त प्रश्न पूछे जाने पर मैं वही उत्तर दूँगा"॥

२५. भूमिजसुत्तं

[B.274] २६. सावत्थियं विहरति। अथ खो आयस्मा भूमिजो सायन्हसमयं पटिसल्लाना [R.38] वुट्ठितो येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन [N.33] सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा भूमिजो आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—

"सन्तावुसो सारिपुत्त, एके समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति। सन्ति पनावुसो सारिपुत्त, एके समणब्राह्मणा कम्मवादा परङ्कतं सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति। सन्तावुसो सारिपुत्त, एके समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं च परङ्कतं च सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति। सन्ति पनावुसो सारिपुत्त, एके समणब्राह्मणा कम्मवादा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति। इध नो, आवुसो सारिपुत्त, भगवा किंवादी किमक्खायी, कथं ब्याकरमाना च मयं वुत्तावादिनो चेव भगवतो अस्साम, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्याम, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्याम, न च कोचि सहधम्मिको वादानुपातो गारय्हं ठानं आगच्छेय्या" ति?

"पटिच्चसमुप्पन्नं खो, आवुसो, सुखदुक्खं वुत्तं भगवता। किं पटिच्च? फस्सं पटिच्च। इति वदं वुत्तवादी चेव भगवतो अस्स, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्य, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्य, न च कोचि सहधम्मिको वादानुपातो गारय्हं ठानं आगच्छेय्य।

"तत्रावुसो, ये तो समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति तदपि फस्सपच्चया। ये पि ते...पे०...ये पि ते...पे०...ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुसमुप्पन्नं सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति तदपि फस्सपच्चया।

"तत्रावुसो, ये ते समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति ते वत [R.39] अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति। ये पि ते...पे०...ये पि

---

२५. भूमिजसूत्र : : सहेतुक सुख दुःख

२६. **श्रावस्ती में** ही साधना के समय....। किसी दिन आयुष्मान् भूमिज समाधि से उठकर आयुष्मान् सारिपुत्त के पास पहुँचे। पहुँच कर, कुशल मङ्गल पूछते हुए एक ओर बैठकर यों पूछने लगे—

"आयुष्मन् सारिपुत्र! यहाँ कुछ श्रमण ब्राह्मण कर्मवाद का समर्थन करते हुए सुख दुःख को स्वयंकृत मानते हैं,....पूर्ववत्....भगवान् की निन्दा भी न हो?"

(सारिपुत्र—) "आयुष्मन्! भगवान् ने सुख दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न कहा है।....पूर्ववत्....भगवान् की किसी प्रकार से निन्दा भी नहीं होती।"

ते...पे०...ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जती'' ति।

''अस्सोसि खो आयस्मा आनन्दो आयस्मतो सारिपुत्तस्स आयस्मता [B.275] भूमिजेन सद्धिं इमं कथासल्लापं। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो यावतको आयस्मतो सारिपुत्तस्स आयस्मता भूमिजेन सद्धिं अहोसि [N.35] कथासल्लापो तं सब्बं भगवतो आरोचेसि।

''साधु साधु, आनन्द, यथा तं सारिपुत्तो सम्मा ब्याकरमाना ब्याकरेय्य। पटिच्चसमुपन्नं खो, आनन्द, सुखदुक्खं वुत्तं मया। किं पटिच्च? फस्सं पटिच्च। इति वदं वुत्तवादी चेव मे अस्स, न च मं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्य, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्य, न च कोचि सहधम्मिको वादानुपातो गारय्हं ठानं आगच्छेय्य।

''तत्रानन्द, ये ते समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति तदपि फस्सपच्चया। ये पि ते...पे०...ये पि ते...पे०...ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति तदपि फस्सपच्चया।

''तत्रानन्द, ये ते समणब्राह्मणा कम्मवादा सयङ्कतं सुखदुक्खं पञ्ञपेन्ति ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ति ति नेतं ठानं विज्जति। ये पि ते...पे०...ये पि ते...पे०...ये पि ते समणब्राह्मणा कम्मवादा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं सुखदुक्खं पञ्ञापेन्ति ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् भूमिज का यह संवाद सुना। तब वे भगवान् के सम्मुख गये तथा....उनको यह संवाद सुनाया। (यह संवाद सुनकर भगवान् बोले—)

''आनन्द! सारिपुत्र का उपर्युक्त व्याख्यान सर्वथा उचित है। मैंने सुख दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न ही बताया है। इनकी उत्पत्ति में प्राणी की इन्द्रियों का विषय के साथ स्पर्श ही कारण है। ऐसा कहता हुआ कोई भी मेरा शिष्य मेरी निन्दा नहीं करता।

''आनन्द! वहाँ (इस प्रसङ्ग में) जो कर्मवादी श्रमण ब्राह्मण सुख दुःख को स्वयंकृत....जो परकृत....जो स्व एवं पर—यों उभयकृत....या जो न स्वयंकृत एवं न परकृत मानते हैं वे सब स्पर्श के कारण ही ऐसा मानते हैं।—

''आनन्द! वे इस सुख दुःख का....स्पर्श को छोड़कर अन्य कोई कारण मानेंगे— यह सम्भव ही नहीं है।

"काये वा हानन्द, सति कायसञ्चेतनाहेतु उप्पज्जति अज्झतं सुखदुक्खं। वाचाय [R.40] वा हानन्द, सति वचीसञ्चेतनाहेतु उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। मने वा हानन्द, सति मनोसञ्चेतनाहेतु उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं अविज्जापच्चया च।

"सामं वा तं, आनन्द, कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, यम्पच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झतं सुखदुक्खं। परे वा तं, आनन्द, कायसङ्खारं अभिसङ्खरोन्ति, यम्पच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। सम्पजानो वा तं, आनन्द, कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति यम्पच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। असम्पजानो वा तं, आनन्द, कायसङ्खारं [B.276] अभिसङ्खरोति यम्पच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं।

"सामं वा तं, आनन्द, वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, यम्पच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झतं सुखदुक्खं। परे वा तं, आनन्द, वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोन्ति यम्पच्चयास्स तं [N.36] उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। सम्पजानो वा तं, आनन्द...पे०...असम्पजानो वा तं, आनन्द, वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति यम्पच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं।

"सामं वा तं, आनन्द, मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति यम्पच्चयास्स उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। परे वा तं, आनन्द, मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोन्ति यम्पच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। सम्पजानो वा तं, आनन्द...पे०...असम्पजानो वा तं, आनन्द, मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति यम्पच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं।

"इमेसु, आनन्द, धम्मेसु अविज्जा अनुपतिता। अविज्जाय त्वेव, आनन्द,

---

"आनन्द! शरीर में शरीरसञ्चेतना (उद्वेग) के कारण कोई कर्म करने पर, इस कर्मसञ्चेतना के हेतु से प्राणी अपने में सुख दुःख का अनुभव करता है। आनन्द! वाणी से वाक्सञ्चेतना के कारण कुछ वचन बोलने पर, मन से मनःसञ्चेतना के कारण कुछ चिन्तन करने पर प्राणी अपने में सुख-दुःख का अनुभव करता है। या फिर, आनन्द! अविद्या के कारण जो कायसंस्कार एकत्र हो जाते हैं उनके कारण उसे अपने में सुख दुःख का अनुभव होने लगता है।

"आनन्द! चाहे शरीरसंस्कार का एकत्रकरण स्वयंकृत हो या परकृत हो, या फिर वह संस्कार जानते बूझते एकत्र किया गया हो या विना जाने बूझे एकत्र किया गया हो, उसी के कारण यह सुख दुःख प्राणी में उद्भूत होता है।

"आनन्द! इसी तरह किसी वाक्संस्कार का....या मनःसंस्कार का एकत्रकरण स्वकृत हो या परकृत, जानते बूझते हो या न जानते बूझते; उसी के कारण वह सुख दुःख उस प्राणी में उद्भूत होता है।

"आनन्द! इन उपर्युक्त छह धर्मों में अविद्या साथ लगी हुई है। अतः, आनन्द! इस

असेसविरागनिरोधा सो कायो न होति यम्पच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। सा वाचा न होति यम्पच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। सो मनो न होति यम्पच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। खेत्तं तं न होति...पे०...वत्थु तं न [R.41] होति...पे० आयतनं तं न होति...पे०...अधिकरणं तं न होति यम्पच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं'' ति। •

२६. उपवाणसुत्तं

२७. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो आयस्मा उपवाणो येन भगवा तेनुपङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा उपवाणो भगवन्तं एतदवोच—

''सन्ति पन, भन्ते, एके समणब्राह्मणा सयङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति। सन्ति पन, भन्ते, एके समणब्राह्मणा परङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति। सन्ति पन, भन्ते, एके समणब्राह्मणा सयङ्कतं च परङ्कतं च दुक्खं पञ्ञापेन्ति। सन्ति पन, भन्ते, एके समणब्राह्मणा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं दुक्खं पञ्ञापेन्ति। इध नो, भन्ते, भगवा किंवादी किमक्खायी, कथं ब्याकरमाना च मयं वुत्तवादिनो चेव भगवतो अस्साम, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्याम, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्याम, न च कोचि [B.277] सहधम्मिको वादानुपातो गारय्हं ठानं आगच्छेय्या'' ति?

''पटिच्चसमुप्पन्नं खो, उपवाण, दुक्खं वुत्तं मया। किं पटिच्च? फस्सं पटिच्च। इति वदं वुत्तवादी चेव मे अस्स, न च मं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्य, धम्मस्स [N.37] चानुधम्मं ब्याकरेय्य, न च कोचि सहधम्मिको वादानुपातो गारय्हं ठानं आगच्छेय्य।

अविद्या के निरोध से शरीर से, वाणी से तथा मन से वे कर्म ही नहीं होंगे जिनके कारण मनुष्य अपने में सुख दुःख का अनुभव करता है। इस अविद्या के न रहने पर न वह क्षेत्र रहता है....न वह आयतन रहता है....न वह अधिकरण (आधार=आश्रय) रहता है जिसके कारण प्राणी अपने में इन सुख दुःखों का अनुभव कर सके॥ •

२६. उपवाणसूत्र : : समुत्पन्न दुःख

२७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। तब आयुष्मान् उपवाण भगवान् के सम्मुख पहुँचा। वहाँ पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस आयुष्मान् उपवाण ने भगवान् से यों निवेदन किया—

''भन्ते! यहाँ कुछ कर्मवादी श्रमण ब्राह्मण दुःख को स्वयंकृत मानते हैं....पूर्ववत्.... निन्दात्मक आरोप न लगे?''

''उपवाण! मैंने इस सुख दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न कहा है। किसके आधार पर?

"तत्र, उपवाण, ये ते समणब्राह्मणा सयङ्कतं दुक्खं पञ्ञपेन्ति तदपि फस्सपच्चया। ये पि ते...पे०...ये पि ते...पे०...ये पि ते समणब्राह्मणा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं दुक्खं पञ्ञापेन्ति तदपि फस्सपच्चया।

[R.42] "तत्र, उपवाण, ये ते समणब्राह्मणा सयङ्कतं दुक्खं पञ्ञापेन्ति ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति। ये पि ते...पे०...ये पि ते...पे०...ये पि ते समणब्राह्मणा असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं दुक्खं पञ्ञापेन्ति ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जती" ति॥ •

२७. पच्चयसुत्तं

२८. सावत्थियं विहरति। "अविज्जापच्चया, भिक्खवे, सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"कतमो च, भिक्खवे, जरामरणं? या तेसं तेसं सत्तानं तम्हि तम्हि सत्तनिकाये जरा जीरणता खण्डिच्चं पालिच्चं वलित्तचता आयुनो संहानि इन्द्रियानं परिपाको—अयं वुच्चति जरा। या तेसं तेसं सत्तानं तम्हा तम्हा सत्तनिकाया चुति चवनता भेदो अन्तरधानं मच्चु मरणं कालकिरिया खन्धानं भेदो कळेवरस्स निक्खेपो जीवितिन्द्रियस्स उपच्छेदो; इदं वुच्चति मरणं। इति अयं च जरा इदं च मरणं—इदं वुच्चति, भिक्खवे, जरामरणं।

स्पर्श के आधार पर। ऐसा व्याख्यान करता हुआ कोई भी मेरा शिष्य....मुझ पर निन्दात्मक आरोप नहीं लगता।

"वहाँ, उपवाण! जो कर्मवादी श्रमण ब्राह्मण दुःख को स्वयंकृत मानते हैं वे स्पर्श को ही उसका कारण मानते हैं।

"वहाँ, उपवाण! जो कर्मवादी श्रमण ब्राह्मण दुःख को स्वयंकृत मानते हैं, वे स्पर्श के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म को उसका कारण मानें—यह सम्भव ही नहीं है।....और जो....और जो....और जो न स्वयंकृत न परकृत मानते हैं, वे भी स्पर्श के अतिरिक्त किसी अन्य को कारण मानेंगे—यह सम्भव नहीं है॥ •

२७. प्रत्ययसूत्र : : कार्यकारणसिद्धान्त

२८. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** साधना करते समय ही....। "भिक्षुओ! अविद्या के कारण संस्कार होते हैं, संस्कार के कारण विज्ञान....यों इस समस्त दुःखस्कन्ध का समुदय होता है।

"भिक्षुओ! जरा मरण कौन सा है? यह जो उन उन प्राणियों का उन उन योनियों में आकर बूढ़ा हो जाना, जीर्ण हो जाना, दाँतों का टूटना, बाल श्वेत हो जाना, झुर्रियाँ पड़ जाना, आयु का क्षीण हो जाना, इन्द्रियों की शिथिलता, इसी को कहते हैं—**जरा**। जो उन उन योनियों से प्राणियों का च्युत हो जाना, सम्बन्ध समाप्त हो जाना, लुप्त हो जाना, मृत्यु,

जातिसमुदया जरामरणसमुदयो; जातिनिरोधा जरामरणनिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो जरामरणनिरोधगामिनी पटिपदा। सेय्यथीदं+सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मवाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि।

"कतमा च,भिक्खवे, जाति...पे०...कतमो च, भिक्खवे, भवो...कतमं [B.278] च, भिक्खवे, उपादानं...कतमा च, भिक्खवे, तण्हा...कतमा च, भिक्खवे [R.43] वेदना... कतमो च, भिक्खवे, फस्सो...कतमं च, भिक्खवे, सळायतनं...कतमं [N.38] च, भिक्खवे, नामरूपं...कतमं च, भिक्खवे, विञ्ञाणं...।

"कतमे च, भिक्खवे, सङ्खारा? तयोमे, भिक्खवे, सङ्खारा—कायसङ्खारो, वचीसङ्खारो, चित्तसङ्खारो। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, सङ्खारा। अविज्जासमुदया सङ्खार-समुदयो; अविज्जानिरोधा सङ्खारनिरोधा। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो सङ्खारनिरोध-गामिनी पटिपदा। सेय्यथीदंसम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावको एवं पच्चयं पजानाति, एवं पच्चयसमुदयं पजानाति, एवं पच्चयनिरोधं पजानाति, एवं पच्चयनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको दिट्ठिसम्पन्नो इति पि, दस्सनसम्पन्नो इति पि, आगतो

मरण, देहविच्छेद, स्कन्धों का छिन्न भिन्न हो जाना, या देहपात—इसे कहते हैं—**मरण**। यों यह जरा एवं यह मरण—यही दोनों कहलाते हैं—जरा मरण। जाति के समुदय (उद्भव) से जरामरण का समुदय होता है तथा जाति के निरोध से जरामरण का निरोध। यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग कहलाता है और यही जरामरण निरोधगामिनी प्रतिपदा। जैसे—सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति एवं सम्यक्समाधि।

"भिक्षुओ! यह जाति....भव....उपादान....तृष्णा....वेदना....स्पर्श....षडायतन.... नामरूप....विज्ञान क्या है?....पूर्ववत्....।

"भिक्षुओ! ये संस्कार क्या हैं? भिक्षुओ! संस्कार तीन हैं—कायसंस्कार, वाक्संस्कार, एवं मन:संस्कार। भिक्षुओ! इन्हें कहते हैं—संस्कार। अविद्या के समुदय से संस्कार-समुदय। इसी तरह अविद्या के निरोध से संस्कारों का निरोध होता है। इसी को कहते हैं—अष्टाङ्गिक मार्ग या संस्कारनिरोधगामिनी प्रतिपदा। जैसे— सम्यग्दृष्टि.... सम्यक्समाधि।

"क्योंकि, भिक्षुओ! आर्यश्रावक (साधक) इस प्रत्यय (हेतु) को जानता है, इस प्रत्ययसमुदय को जानता है, इस प्रत्ययनिरोध को जानता है, इस प्रत्ययनिरोधगामिनी प्रतिपदा को जानता है; अत: भिक्षुओ! ऐसा यह आर्यश्रावक दृष्टिसम्पन्न भी कहा जाता है,

इमं सद्धम्मं इति पि, पस्सति इमं सद्धम्मं इति पि, सेक्खेन ञाणेन समन्नागतो इति पि, सेक्खाय विज्जाय समन्नागतो इति पि, धम्मसोतं समापन्नो इति पि, अरियो निब्बेधिकपञ्ञो इति पि, अमतद्वारं आहच्च तिट्ठति इति पी'' ति॥ ●

२८. भिक्खुसुत्तं

२९. ...सावत्थियं विहरति। तत्र खो...पे०...इध, भिक्खवे, भिक्खु जरामरणं पजानाति, जरामरणसमुदयं पजानाति, जरामरणनिरोधं पजानाति, जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानाति, जातिं पजानाति...पे०...भवं पजानाति...उपादानं पजानति... [R.44] तण्हं पजानाति वेदनं पजानाति फस्सं पजानाति...सळायतनं पजानाति...नामरूपं पजानाति...विञ्ञाणं पजानाति...सङ्खारे पजानाति...सङ्खारसमुदयं पजानाति...सङ्खारनिरोधं पजानाति...सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानाति।

''कतमं च, भिक्खवे, जरामरणं? या तेसं तेसं सत्तानं तम्हि तम्हि सत्तनिकाये जरा जीरणता खण्डिच्चं पालिच्चं वलित्तचता आयुनो संहानि इन्द्रियानं परिपाको—अयं वुच्चति जरा। या तेसं तेसं सत्तानं तम्हा तम्हा सत्तनिकाया चुति चवनता भेदो अन्तरधानं [N.39] मच्चु मरणं कालकिरिया खन्धानं भेदो कळेवरस्स निक्खेपो जीवितिन्द्रयस्स [B.279] उपच्छेदो; इदं वुच्चति मरणं। इति अयं च जरा इदं च मरणं—इदं वुच्चति, भिक्खवे, जरामरणं। जातिसमुदया जरामरणसमुदयो; जातिनिरोधा जरामरणनिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो जरामरणनिरोधगामिनी पटिपदा। सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि।

''कतमा च, भिक्खवे, जाति...पे०...कतमो च, भिक्खवे, भवो...कतमं च, भिक्खवे, उपादानं...कतमा च, भिक्खवे, तण्हा...वेदना...फस्सो...सळायतनं...नामरूपं...विञ्ञाणं।

दर्शनसम्पन्न भी। वह सद्धर्म में प्रविष्ट हो चुका समझा जाता है, सद्धर्म का द्रष्टा (साक्षात्कर्ता) भी, वह शैक्ष्य ज्ञान से सम्पृक्त है, शैक्ष्य विद्या से युक्त भी, धर्मस्रोत में आगत भी समझा जाता है, अन्तःप्रविष्टमति भी कहलाता है तथा अमृतद्वार (निर्वाण) तक जाकर खड़ा हुआ भी कहलाता है॥'' ●

२८. भिक्षुसूत्र : : कार्यकारणसिद्धान्त

२९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। वहाँ....पूर्ववत्....भिक्षुओ! साधक भिक्षु जरामरण को जानता है, जरामरण के समुदय को जानता है, जरामरण के निरोध को जानता है, जरामरण-निरोधगामिनी प्रतिपद् (मार्ग) को जानता है, जाति....भव....उपादान ....तृष्णा....वेदना....स्पर्श....षडायतन....नामरूप....विज्ञान....संस्कार....संस्कारसमुदय.... संस्कारनिरोध....संस्कारनिरोधगामिनी प्रतिपद् को जानता है।

''कतमे च, भिक्खवे, सङ्खारा? तयोमे, भिक्खवे, सङ्खारा—कायसङ्खारो, वचीसङ्खारो, चित्तसङ्खारो। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, सङ्खारा। अविज्जासमुदया सङ्खार-समुदयो; अविज्जानिरोधा सङ्खारनिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो सङ्खारनिरोध-गामिनी पटिपदा। सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि।

''यतो खो, भिक्खवे, भिक्खु एवं जरामरणं पजानाति, एवं जरामरणसमुदयं पजानाति, एवं जरामरणनिरोधं पजानाति, एवं जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानाति, एवं जातिं पजानाति...पे०...भवं...उपादानं...तण्हं...वेदनं...फस्सं...सळायतनं...नामरूपं ...विञ्ञाणं...सङ्खारे...सङ्खारसमुदयं...सङ्खारनिरोधं...एवं सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु दिट्ठिसम्पन्नो इति पि, दस्सनसम्पन्नो इति पि, आगतो इमं सद्धम्मं इति पि, पस्सति इमं सद्धम्मं इति पे, सेक्खेन ञाणेन [R.45] समन्नागतो इति पि, सेक्खाय विज्जाय समन्नागतो इति पि, धम्मसोतं समापन्नो इति पि, अरियो निब्बेधिकपञ्ञो इति पि, अमतद्वारं आहच्च तिट्ठति इति पी'' ति॥ •

२९. समणब्राह्मणसुत्तं

३०. ...सावत्थियं विहरति। तत्र खो...पे०...ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा जरामरणं न परिजानन्ति, जरामरणसमुदयं न परिजानन्ति, जरामरणनिरोधं न परिजानन्ति, जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं न परिजानन्ति, जातिं न परिजानन्ति [N.40] ...पे०...भवं...उपादानं...तण्हं...वेदनं...फस्सं...सळायतनं...नामरूपं... [B.280] विञ्ञाणं...सङ्खारे...सङ्खारसमुदयं...सङ्खारनिरोधं...सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं न परिजानन्ति; न मे ते, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु वा समणसम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मसम्मता। न च पनेते आयस्मन्तो सामञ्ञत्थं वा ब्रह्मञ्ञत्थं वा दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति।

''भिक्षुओ! यह जरामरण क्या है?....पूर्वसूत्रवत्....तथा अमृतद्वार (निर्वाण) तक जाकर खड़ा हुआ भी कहलाता है।

२९. श्रमणब्राह्मणसूत्र : : परमार्थज्ञ श्रमणब्राह्मण

३०. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। वहाँ....पूर्ववत्....भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण जरामरण के विषय में कुछ नहीं जानते, जरामरणसमुदय के विषय में कुछ नहीं जानते, जरामरणनिरोध के विषय में कुछ नहीं जानते, जरामरणनिरोधगामी मार्ग के विषय में कुछ नहीं जानते....पूर्ववत्....जाति....भव....उपादान....तृष्णा....वेदना....स्पर्श....षडायतन.... नामरूप....विज्ञान....संस्कार....संस्कारसमुदय....संस्कारनिरोध....संस्कारनिरोधगामी प्रतिपदा को नहीं जानते; मैं, भिक्षुओ! उन श्रमणों या ब्राह्मणों को श्रमणों में 'श्रमण' या

"ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा जरामरणं परिजानन्ति, जरामरणसमुदयं परिजानन्ति, जरामरणनिरोधं परिजानन्ति, जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं परिजानन्ति, जातिं परिजानन्ति...पे०...भवं...उपादानं...तण्हं...वेदनं...फस्सं... [R.46] सळायतनं ... नामरूपं ... विञ्ञाणं ... सङ्खारे परिजानन्ति; सङ्खारसमुदयं परिजानन्ति। सङ्खारनिरोधं परिजानन्ति, सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं परिजानन्ति। ते खो मे, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु चेव समणसम्यता, ब्राह्मणेसु च ब्राह्मणसम्मता; न च पनेते आयस्मन्तो सामञ्ञत्थं च ब्रह्मञ्ञत्थं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्मज्ज विहरन्ती" ति॥ ●

३०. दुतियसमणब्राह्मणसुत्तं

३१. ...सावत्थियं विहरति। "तत्र खो...पे०...ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा जरामरणं नप्पजानन्ति, जरामरणसमुदयं नप्पजानन्ति, जरामरणनिरोधं नप्पजानन्ति, जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति, ते वत जरामरणं समतिक्कम्म टस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति। जातिं नप्पजानन्ति... पे०...भवं...उपादानं...तण्हं... वेदनं...फस्सं...सळायतनं...नामरूपं...विञ्ञाणं...सङ्खारे नप्पजानन्ति, सङ्खारसमुदयं नप्पजानन्ति, सङ्खारनिरोधं नप्पजानन्ति, सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति, ते वत सङ्खारे समतिक्कम्म ठस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।"

[N.41] "ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा जरामरणं पजानन्ति, जरामरणसमुदयं पजानन्ति, जरामरणनिरोधं पजानन्ति, जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानन्ति ते वत जरामरणं समतिक्कम्म ठस्सन्ती ति ठानमेतं विज्जति। जातिं

ब्राह्मणों में 'ब्राह्मण' नहीं मानता। क्योंकि वे श्रमणत्व या ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिये इसी जन्म में स्वयं जानने के लिये या साक्षात्कार के लिये कोई धर्मसाधना नहीं करते।

("इसके विपरीत—) जो श्रमण ब्राह्मण जरामरण के विषय में भली भाँति जानते हैं, जरामरणसमुदय....पूर्ववत्....; भिक्षुओ! मैं उन श्रमण ब्राह्मणों को श्रमणों में 'श्रमण' तथा ब्राह्मणों में 'ब्राह्मण' मानता हूँ; क्योंकि वे श्रमणत्व....पूर्ववत्....साक्षात्कार के लिये सतत धर्मसाधना में लगे रहते हैं॥ ●

३०. द्वितीयश्रमणब्राह्मणसूत्र : : संस्कारपारङ्गत श्रमण ब्राह्मण

३१. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। वहाँ....पूर्ववत्...."भिक्षुओ! जो कोई श्रमण ब्राह्मण जरामरण को नहीं जानते, जरामरणसमुदय को नहीं जानते....पूर्ववत्....वे संस्कारों को पार कर लेंगे—यह सम्भव नहीं है।

"परन्तु, भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण जरामरण को साधना द्वारा भली भाँति जान

पजानन्ति...पे०...भवं...उपादानं...तण्हं...वेदनं...फस्सं...सळायतनं...नामरूपं...विञ्ञाणं...सङ्खारे पजानन्ति, सङ्खारसमुदयं पजानन्ति, सङ्खारनिरोधं पजानन्ति, सङ्खानिरोधगामिनिं पटिपदं पजानन्ति। ते वत सङ्खारे समतिक्कम्म ठस्सन्ती ति ठानमेतं विज्जती'' ति॥

दसबलवग्गो ततियो॥

तस्सुद्दानं

द्वे दसबला उपनिसा च, अञ्ञतित्थियभूमिजो। [B.281, R.47]
उपवाणो पच्चयो भिक्खु, द्वे च समणब्राह्मणा ति॥

चुके हैं, जरामरणसमुदय को भली भाँति....पूर्ववत्....संस्कारनिरोधगामिनी प्रतिपदा को भली भाँति जान चुके हैं वे अवश्य ही संस्कारों को पार कर लेंगे—यह सम्भव है''॥●

दशबलवर्ग तृतीय सम्पन्न॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. दशबलसूत्र, २. द्वितीय दशबलसूत्र, ३. उपनिषत्सूत्र, ४. अन्यतीर्थिकसूत्र, ५. भूमिज सूत्र, ६. उपबाणसूत्र, ७. प्रत्ययसूत्र, ८. भिक्षुसूत्र, ९. प्रथमश्रमणब्राह्मणसूत्र एवं १०. द्वितीय श्रमणब्राह्मणसूत्र॥

४. कळारखत्तियवग्गो चतुत्थो

३१. भूतसुत्तं

३२. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति। तत्र खो भगवा आयस्मन्तं सारिपुत्तं आमन्तेसि—"वुत्तमिदं, सारिपुत्त, पारायने अजितपञ्हे—

'ये च सङ्खतधम्मासे, ये च सेक्खा पुथू इध।
तेसं मे निपको इरियं, पुट्ठो पब्रूहि मारिसा' ति॥(सु. नि. पि.४२४)

"इमस्स नु खो, सारिपुत्त, सङ्खित्तेन भासितस्स कथं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो" ति? एवं वुत्ते, आयस्मा सारिपुत्तो तुण्ही अहोसि। दुतियं पि खो भगवा आयस्मातं सारिपुत्तं आमन्तेसि...पे०...दुतियं पि खो आयस्मा सारिपुत्तो तुण्ही अहोसि। ततियं पि खो भगवा आयस्मन्तं सारिपुत्तं आमन्तेसि—"वुत्तमिदं सारिपुत्त, पारायने अजित-पञ्हे—

'ये च सङ्खातधम्मासे, ये च सेक्खा पुथू इध।
तेसं मे निपको इरियं, पुट्ठो पब्रूहि, मारिसा' ति॥(सु.नि.पि. ४२४)

[R.48] "इमस्स नु खो, सारिपुत्त, सङ्खित्तेन भासितस्स कथं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो"
[N.42] ति? ततियं पि खो आयस्मा सारिपुत्तो तुण्ही अहोसि।

"भूतमिदं ति, सारिपुत्त, पस्ससी" ति?

---

४. कळारक्षत्रियवर्ग

३१. भूतसूत्र : : **यथार्थ ज्ञान**

३२. एक समय भगवान् **श्रावस्ती में** साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्र से पूछा—"सारिपुत्र! (**सुत्तनिपात के**) **पारायणवर्ग** स्थित **अजितमाणवपिपृच्छा** के प्रसङ्ग में यह कहा गया था—

'जिन्होंने धर्म को जान लिया है, जो इस शासन में सीखने योग्य (शैक्ष्य) हैं उनके ज्ञान एवं आचार का वर्णन कीजिये?—मेरा यही प्रश्न है मार्ष!' (सु. नि. पृ. ४२४, ना०)

"सारिपुत्र! वहाँ इस प्रश्न का जो संक्षेप में व्याख्यान हुआ है उसी का अब हमें विस्तृत अर्थ सुनाओ?" ऐसा पूछे जाने पर भी आयुष्मान् सारिपुत्र चुप ही रहे।

भगवान् द्वारा दूसरी बार भी....आयुष्मान् सारिपुत्र चुप ही रहे। तीसरी बार भी....आयुष्मान् सारिपुत्र चुप ही रहे।

(तब भगवान् ने पूछा—) "सारिपुत्र! यह जो कुछ हो गया उसे तुम देख रहे हो?"

"भूतमिदं ति, भन्ते, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। भूतमिदं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा भूतस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति। [B.282] तदाहारसम्भवं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। तदाहारसम्भवं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा आहारसम्भवस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति। तदाहारनिरोधा यं भूतं निरोधधम्मं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। तदाहारनिरोधा यं भूतं तं निरोधधम्मं ति सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा निरोधधम्मस्स निब्बिदाय विरागा निरोधाय पटिपन्नो होति। एवं खो, भन्ते, सेक्खो होति।

"कथं च, भन्ते, सङ्खातधम्मो होति? भूतमिदं ति,भन्ते, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। भूतमिदं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा भूतस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो होति। तदाहारसम्भवं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। तदाहार-सम्भवं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा आहारसम्भवस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो होति। तदाहारनिरोधा यं भूतं तं निरोधधम्मं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। तदाहारनिरोधा यं भूतं तं निरोधम्मं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। [R.49] तदाहारनिरोधा यं भूतं तं निरोधधम्मं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा निरोधधम्मस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो होति। एवं खो, भन्ते, सङ्खातधम्मो होति। इति खो, भन्ते, यं तं वुत्तं **पारायने अजितपञ्हे**—

'ये च सङ्खातधम्मासे, ये च सेक्खा पुथू इध।
तेसं मे निपको इरियं, पुट्ठो पब्रूहि मारिसा' ति॥

"इमस्स ख्वाहं, भन्ते, सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारन अत्थं आजानामी" ति।

(सारिपुत्र—) "भन्ते! यह जो कुछ हो चुका—इसे यथार्थत: सम्यक्प्रज्ञा से ही देखा जा सकता है। इस भूत को यथार्थत: सम्यक्प्रज्ञा से देखकर, साधक उसके निर्वेद, विराग एवं निरोध के लिये प्रयत्न करता है। इस भूत को आहार हेतु से होते देखकर उस आहारसम्भव के निर्वेद, विराग एवं निरोध के लिये प्रयत्न करता है। यों उस आहारसम्भव के निरोध से उसे यह ज्ञात हो जाता है कि जो कुछ भी आहारसम्भव है वह निरोध धर्म वाला है। ऐसा यथार्थत: सम्यक्प्रज्ञा से जानकर वह साधक निरोधधर्म के निर्वेद, विराग एवं निरोध (अनुपादान) से विमुक्त हो जाता है, छुटकारा पा जाता है। भन्ते! धर्म का ज्ञानी (शैक्ष्य) इसी तरह होता है।

"और, भन्ते! धर्म का ज्ञान किस प्रकार होता है? यह जो कुछ हो चुका—इसे यथार्थत: सम्यक्प्रज्ञा से....पूर्ववत्....भन्ते! धर्म इसी तरह जाना जाता है। भन्ते! **पारायणवर्ग**

"साधु साधु, सारिपुत्त, भूतमिदं ति, सारिपुत्त, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। भूतमिदं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा भूतस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिप्पन्नो होति। तदाहारसम्भवं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। तदाहारसम्भवं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा आहारसम्भवस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो [N.43] होति। तदाहारनिरोधा यं भूतं तं निरोधधम्मं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। तदाहारनिरोधा यं भूतं तं निरोधधम्मं ति यथाभूतं सम्मपञ्ञाय दिस्वा निरोधधम्मस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति। एवं खो, सारिपुत्तो, सेक्खो होति।

"कथं च, सारिपुत्त, सङ्खातधम्मो होति? भूतमिदं ति, सारिपुत्त, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। भूतमिदं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा भूतस्स निब्बिदा [B.283] विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो होति। तदाहारसम्भवं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। तदाहारसम्भवं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा आहारसम्भवस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो होति। तदाहारनिरोधा यं भूतं तं निरोधधम्मं ति यथा भूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। तदाहारनिरोधा यं भूतं तं निरोधधम्मं ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा निरोधधम्मस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो होति। [R.50] एवं खो, सारिपुत्त, सङ्खातधम्मो होति। इति खो, सारिपुत्त, यं तं वुत्तं **पारायने अजितपञ्हे**—

'ये च सङ्खातधम्मासे, ये च सेक्खा पुथू इध।
तेसं मे निपको इरियं, पुट्ठो पब्रूहि मारिसा' ति॥

"इमस्स खो, सारिपुत्त सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो" ति॥

३२. कळारसुत्तं

३३. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो कळारखत्तियो भिक्खु येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं

में अजितमाणवकपिपृच्छा के प्रसङ्ग में जो यह कहा गया था—'जिन्होंने धर्म को.... पूर्ववत्....'। उस संक्षेप से कहे गये का मैं विस्तार से अर्थ समझ पाया हूँ॥"

(भगवान्—) साधु, साधु, सारिपुत्र! यह जो कुछ हो गया—इसे यथार्थत: सम्यक्प्रज्ञा से ही देखा जा सकता है....पूर्ववत्....। यही विस्तृत अर्थ जानना चाहिये। (सारिपुत्र का ऊपरवाला उत्तर ही यहाँ दोहरा लेना चाहिये।)॥ •

३२. कडारक्षत्रियसूत्र : : प्रतीत्यसमुत्पाद

३३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। तब कभी कडारक्षत्रिय नामक भिक्षु आयुष्मान् सारिपुत्र के पास गया। वहाँ जाकर सारिपुत्र से कुशलक्षेम पूछकर वह आयुष्मान् सारिपुत्र

सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो कळारखत्तियो भिक्खु आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"मोळियफग्गुनो, आवुसो सारिपुत्त, भिक्खु, सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तो ति। न हि नून सो आयस्मा इमस्मिं धम्मविनये अस्सासमलत्था ति। तेन हायस्मा सारिपुत्तो इमस्मिं धम्मविनये अस्सासं पत्तो" ति?

"न ख्वाहं, आवुसो, कङ्खामी" ति।

"आयतिं, पनावुसो" ति? [N.44]

"न ख्वाहं, आवुसो, विचिकिच्छामी" ति।

अथ खो कळारखत्तियो भिक्खु उट्ठायासना येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो कळारखत्तियो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"आयस्मता, भन्ते, सारिपुत्तेन अञ्ञा ब्याकता—[R.51] 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानामी" ति॥ (क)

अथ खो भगवा अञ्ञतरं भिक्खु आमन्तेसि—"एहि त्वं, भिक्खु, मम [B.284] वचनेन सारिपुत्तं आमन्तेहि—'सत्था तं, आवुसो सारिपुत्त, आमन्तेती'" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो सो भिक्खु भगवतो पटिस्सुत्वा येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"सत्था तं, आवुसो सारिपुत्त, आमन्तेती" ति।

से यों पूछने लगा—"आयुष्मन् सारिपुत्र! मोळियफग्गुन भिक्षु भिक्षुभाव छोड़कर पुन: गृहस्थ हो गया है। उसको निश्चय ही इस धर्मविनय में कोई आश्वासन या उत्साह नहीं मिला। क्या आपको इस धर्मविनय में कोई आश्वासन मिला है?"

(सारिपुत्र—) "मुझे तो इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

(क. क्ष.) "भविष्य में भी?"

"इसमें भी मुझे कोई आशङ्का नहीं है।"

तब कड़ारक्षत्रिय भिक्षु वहाँ से उठकर जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गया, जाकर भगवान् को प्रणामकर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठकर वह भगवान् से यों निवेदन करने लगा—"भन्ते! आयुष्मान् सारिपुत्र ने मुझसे यह दर्पोक्ति की है—'मेरी जाति क्षीण हो गयी, मैंने धर्मसाधना पूर्ण कर ली। मैं अपना कर्तव्य पूर्ण कर चुका। अब मुझे यहाँ कोई करणीय शेष नहीं है—ऐसा मैं जानता हूँ।"

तब भगवान् ने किसी भिक्षु को यह कहकर सारिपुत्र के पास भेजा—"जाओ, भिक्षु! सारिपुत्र को मेरी ओर से यह कहो—'आयुष्मन् सारिपुत्र! शास्ता आपको बुला रहे

"एवं, आवुसो" ति खो आयस्मा सारिपुत्तो तस्स भिक्खुनो पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं सारिपुत्तं भगवा एतदवोच—"सच्चं किर तया, सारिपुत्त, अञ्ञा ब्याकता—'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानामी" ति?

"न खो, भन्ते, एतेहि पदेहि एतेहि ब्यञ्जनेहि अत्थो वुत्तो" ति।

"येन केनचि पि, सारिपुत्त, परियायेन कुलपुत्तो अञ्ञं ब्याकरोति, अथ खो ब्याकतं ब्याकततो दट्ठब्बं" ति।

"ननु अहं पि, भन्ते, एवं वदामि—'न खो, भन्ते, ऐतेहि पदेहि एतेहि ब्यञ्जनेहि अत्थो वुत्तो'" ति।

"सचे तं, सारिपुत्त, एवं पुच्छेय्युं—'कथं जानता पन तया, आवुसो सारिपुत्त, कथं पस्सता अञ्ञा ब्याकता—खीणा जाति वुसितं ब्रह्मचरियं कतं करणीयं नापरं इत्थत्ताया ति पजानामी' ति। एवं पुट्ठो त्वं, सारिपुत्त, किन्ति ब्याकरेय्यासी" ति?

[N.45] "सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं—'कथं जानता पन तया, आवुसो सारिपुत्त, कथं
[R.52] पस्सता अञ्ञा ब्याकता—खीणा जाति वुसितं ब्रह्मचरियं कतं करणीयं नापरं

हैं।" भिक्षु ने भगवान् की आज्ञा स्वीकार कर आयुष्मान् सारिपुत्र को भगवान् का आदेश सुना दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्र, भगवान् का आदेश सुनकर, भगवान् के सम्मुख पहुँच कर उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्र से भगवान् ने यों पूछा—"सारिपुत्र! क्या तुमने वस्तुत: यह दर्पोक्ति की है—'मेरी जाति क्षीण हो गयी है....करणीय शेष नहीं है—ऐसा मैं जानता हूँ?'

"नहीं, भन्ते! मैंने इन शब्दों से इस अर्थ में कोई दर्पोक्ति नहीं की है।"

(भगवान्—) "सारिपुत्र! जिस किसी तरह की बात कोई कुलपुत्र किसी को कहे तो वह कहा हुआ तो कहा हुआ ही हुआ न?"

(सारिपुत्र—) "तभी तो मैं कहता हूँ कि मैंने यह बात इस तरह कही ही नहीं!"

(भगवान्—) "अच्छा, सारिपुत्र! कोई तुमसे यह पूछे—'कैसे जानते हुए या समझते हुए यह दर्पोक्ति की—'मेरी जाति क्षीण हो गयी है....करणीय शेष नहीं है—ऐसा मैं जानता हूँ'। ऐसा पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे?"

(सारिपुत्र—) "यदि, भन्ते! कोई मुझसे उक्त प्रश्न पूछे, तो वैसा पूछे जाने पर मैं यह उत्तर दूँगा—'आयुष्मानो! जिन कारणों से यह जाति उद्भूत हुई थी उन कारणों के

इत्थत्ताया ति पजानामी' ति; एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं—'यंनिदाना, आवुसो, जाति, तस्स निदानस्स खया खीणस्मिं खीणाम्ही ति विदितं। खीणाम्ही ति विदित्वा—खीणा जाति वुसितं ब्रह्मचरियं कतं नापरं इत्थत्ताया ति पजानामी' ति। एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं'' ति।

''सचे पन तं, सारिपुत्त, एवं पुच्छेय्युं—'जाति पनावुसो सारिपुत्त, किंनिदाना किंसमुदया किंजातिका किंपभवा' ति? एवं पुट्ठो तं, सारिपुत्त, किन्ति ब्याकरेय्यासी'' ति?

''सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं—'जाति पनावुसो सारिपुत्त, किंनिदाना किंसमुदया किंजातिका किंपभवा' ति? एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं—'जाति खो, आवुसो, भवनिदाना भवसमुदया भवजातिका भवप्पभवा' ति। एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं'' ति।

''सचे पन तं, सारिपुत्त, एवं पुच्छेय्युं—'भवो पनावुसो सारिपुत्त, किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो' ति? एवं पुट्ठो त्वं, सारिपुत्त, किन्ति ब्याकरेय्यासी'' ति?

''सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं—'भवो पनावुसो सारिपुत्त, किंनिदानों किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो' ति? एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं—'भवो खो, आवुसो, उपादाननिदानो उपादानसमुदयो उपादानजातिको उपादानप्पभवो' ति। एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं'' ति।

''सचे पन तं, सारिपुत्त, एवं पुच्छेय्युं —'उपादानं पनावुसो...पे०...सचे पन तं, सारिपुत्त, एवं पुच्छेय्युं—'तण्हा पनावुसो सारिपुत्त, किंनिदाना किंसमुदया किंजातिका किंपभवा' ति। एवुं पुट्ठो त्वं, सारिपुत्त, किन्ति ब्याकरेय्यासी'' ति?

क्षीण हो जाने से, वह भी क्षीण हो गयी'—ऐसा मैंने जान लिया। 'क्षीण हो गयी' ऐसा जानकर 'मेरी जाति क्षीण हो गयी....कोई करणीय शेष नहीं रहा।' ऐसा पूछे जाने पर मैं ऐसा उत्तर दूँगा।''

(भगवान्—) ''यदि, सारिपुत्र! तुमसे कोई यह पूछे—'आयुष्मन्! जाति किस कारण से उद्भूत होती है?' तो तुम क्या उत्तर दोगे?''

(सारिपुत्र—) ''भन्ते! यदि कोई मुझसे ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँगा—'यह जाति भव के कारण से उत्पन्न होती है।'....

(भगवान्—)....भव किस कारण उत्पन्न होता है?....

(सारिपुत्र—)....भव उपादान के कारण होता है।....

"सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं —'तण्हा पनावुसो सारिपुत्त, किंनिदाना [R.53] किंसमुदया किंजातिका किंपभवा' ति ? एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं एवं ब्याकरेय्यं— 'तण्हा खो, आवुसो, वेदनासमुदया वेदनाजातिका वेदनापभवा' ति। एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं " ति।

"सचे पन तं, सारिपुत्त, एवं पुच्छेय्युं—'कथं जानतो पन ते, आवुसो सारिपुत्त, [N.46] कथं पस्सतो या वेदनासु नन्दी सा न उपट्ठासी' ति। एवं पुट्ठो त्वं, सारिपुत्त, किन्ति ब्याकरेय्यासी" ति ?

"सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं—'कथं जानतो पन ते, आवुसो सारिपुत्त, कथं पस्सतो या वेदनासु नन्दी सा न उपट्ठासी' ति। एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं— 'तिस्सो खो इमा, आवुसो, वेदना। कतमा तिस्सो ? सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। इमा खो, आवुसो, तिस्सो वेदना अनिच्चा। यदनिच्चं तं दुक्खं ति विदितं, या वेदनासु नन्दी सा न उपट्ठासी' ति। एवं, पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं" ति।

"साधु साधु, सारिपुत्त। अयं पि खो, सारिपुत्त, परियायो, एतस्सेव अत्थस्स सङ्खित्तेन वेय्याकरणाय—'यं किञ्चि वेदयितं तं दुक्खस्मिं' ति।

"सचे पन तं, सारिपुत्त, एवं पुच्छेय्युं—'कथं विमोक्खा पन तया, आवुसो [B.286] सारिपुत्त, अञ्ञा ब्याकता—खीणा जाति वुसितं ब्रह्मचरियं कतं करणीयं नापरं इत्थत्ताया ति पजानामी' ति ? एवं पुट्ठो त्वं, सारिपुत्त, किन्ति ब्याकरेय्यासी" ति ?

(भगवान्—)....उपादान किस कारण उत्पन्न होता है ?

(सारिपुत्र—)....उपादान तृष्णा के कारण होता है।....

(भगवान्—)....तृष्णा किस कारण होती है ?....

(सारिपुत्र—)....तृष्णा वेदना के कारण होती है।....

(भगवान्—)....वेदना में आसक्ति किस कारण नहीं रह पाती ?....

(सारिपुत्र—)....'आयुष्मानो! वेदनाएँ विविध होती हैं—१. सुखा, २. दुक्खा एवं ३. अदुःखाअसुखा वेदना। ये तीनों वेदनाएँ अनित्य हैं तथा जो अनित्य है वह दुःखसम्पृक्त है—प्रज्ञा द्वारा ऐसा जान लिये जाने पर वेदनाओं में आसक्ति नहीं रहती।' भन्ते! उक्त प्रश्न पूछे जाने पर मैं उसका यों उत्तर दूँगा।

(भगवान्—) "ठीक है, सारिपुत्र! इसका और भी संक्षिप्त उत्तर यह भी हो सकता है—'जो कुछ भी वेदनीय (अनुभवनीय) है वह सब दुःख है'। अस्तु! यदि सारिपुत्र! कोई तुमसे यह पूछे—'आयुष्मन् सारिपुत्र! किस विमोक्ष के आधार पर आपने यह कह दिया—मेरी जाति क्षीण हो चुकी है....कर्तव्य शेष नहीं है—यह मैं जान चुका हूँ ?' ऐसा पूछा जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे ?"

"सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं—'कथं विमोक्खा पन तया, आवुसो सारिपुत्त, अञ्ञा ब्याकता—खीणा जाति वुसितं ब्रह्मचरियं कतं करणीयं नापरं इत्थत्तया ति पजानामी' ति एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं—'अज्झत्तं विमोक्खा ख्वाहं, [R.54] आवुसो, सब्बुपादानक्खया तथा सतो नावजानामी' ति। एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं" ति।

"साधु साधु, सारिपुत्त। अयं पि खो सारिपुत्त, परियायो एतस्सेव अत्थस्स सङ्खित्तेन वेय्याकरणाय—ये आसवा समणेन वुत्ता तेस्वाहं न कङ्खामि, ते मे पहीना ति न विचिकिच्छामी" ति। इदमवोच भगवा। इदं वत्वा सुगतो उट्ठायासना विहारं पाविसि॥

(ख)

"तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो अचिरपक्कन्तस्स भगवतो भिक्खू आमन्तेसि—"पुब्बे अप्पटिसंविदितं मं, आवुसो, भगवा पठमं पञ्हं अपुच्छि, तस्स मे [N.47] अहोसि दन्धायितत्तं। यतो च खो मे, आवुसो, भगवा पठमं पञ्हं अनुमोदि, तस्स मय्हं, आवुसो एतदहोसि—'दिवसं चे पि मं भगवा एतमत्थं पुच्छेय्य अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि, दिवसं पाहं भगवतो एतमत्थं ब्याकरेय्यं अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि। रत्तिं चे पि मं भगवा एतमत्थं पुच्छेय्य अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि, रत्तिं पाहं भगवतो एतमत्थं ब्याकरेय्यं अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि। रतिन्दिवं चे पि मं भगवा एतमत्थं पुच्छेय्य अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि

(सारिपुत्र—)...."आयुष्मन्! मैं अपने सभी आश्रवों के जाल से मुक्ति पा गया हूँ, मेरे सभी उपादान क्षीण हो गये। अब मैं ऐसा स्मृतिमान् होकर साधनारत हूँ कि वे आश्रव मेरे पास नहीं आ पाते। तथा अपने आपको अनादृत (अपमानित) भी नहीं समझता।'....।

"उचित कह रहे हो, सारिपुत्र! बहुत उचित कह रहे हो। इसी बात को संक्षेप में यों भी कह सकते हैं—'जिन आश्रवों का श्रमण ने निर्देश किया है उसमें मुझको सन्देह हुआ ही नहीं, या वे मेरे प्रहीण हो चुके'—ऐसी मुझे शङ्का भी नहीं रही।' " ऐसा कह कर भगवान् आसन से उठ कर साधनास्थल में चले गये।

भगवान् के जाने के कुछ समय बाद, आयुष्मान् सारिपुत्र उपस्थित भिक्षुओं से यों कहने लगे—"आयुष्मानो! भगवान् ने मुझसे जब पहला प्रश्न पूछा था तो वह मुझे ठीक से समझ में नहीं आया था, अत: मैं उस समय चुप रहा; परन्तु जब भगवान् ने मेरे प्रथम प्रश्न का अनुमोदन कर दिया, तब मुझे, आयुष्मानो! यह विचार हुआ—'यदि भगवान् से मेरा इस प्रश्न पर समस्त दिन संवाद होता रहे तो मैं भी समस्त दिन विविध शब्दों से

अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि, रत्तिन्दिवं पाहं भगवतो एतमत्थं ब्याकरेय्यं अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि। द्वे रत्तिन्दिवानि चे पि मं भगवा एतमत्थं पुच्छेय्य...पे०...द्वे रत्तिन्दिवानि पाहं भगवतो एतमत्थं ब्याकरेय्यं...पे०...तीणि रत्तिन्दिवानि चे पि मं भगवा एतमत्थं पुच्छेय्य...पे०...तीणि रत्तिन्दिवानि पाहं भगवतो [B.287] एतमत्थं ब्याकरेय्यं...पे०...चत्तारि रत्तिन्दिवानि चे पि मं भगवा एतमत्थं पुच्छेय्य...पे० चत्तारि रत्तिन्दिवानि पाहं भगवतो एतमत्थं ब्याकरेय्यं...पे०...पञ्च रत्तिन्दिवानि चे पि मं भगवा एतमत्थं पुच्छेय्य...पे०... पञ्च रत्तिन्दिवानि पहं भगवतो एतमत्थं ब्याकरेय्यं...पे०... छ रत्तिन्दिवानि चे पि मं भगवा एतमत्थं पुच्छेय्य...पे०...छ रत्तिन्दिवानि पाहं भगवतो एतमत्थं ब्याकरेय्यं...पे०...सत्त रत्तिन्दिवानि चे पि मं भगवा एतमत्थं पुच्छेय्य अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि, सत्त रत्तिन्दिवानि पाहं भगवतो एतमत्थं अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेही'' ति॥ (ग)

अथ खो कळारखत्तियो भिक्खु उट्ठायासना येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो कळारखत्तियो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''आयस्मता, भन्ते, सारिपुत्तेन सीहनादो नदितो—'पुब्बे अप्पटिसंविदितं मं, आवुसो, भगवा पठमं पञ्हं अपुच्छि, तस्स मे अहोसि दन्धायितत्तं। यतो च खो मे, आवुसो, भगवा पठमं पञ्हं अनुमोदि, तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—'दिवसं चे पि मं भगवा एतमत्थं पुच्छेय्य अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि, दिवसं पाहं भगवतो एतमत्थं ब्याकरेय्यं अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि [N.48] अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि; रत्तिं चे पि...पे०... रत्तिन्दिवं चे पि भगवा...पे०...द्वे रत्तिन्दिवानि चे पि मं भगवा...पे०...तीणि...चत्तारि...पञ्च...छ...द्वे रत्तिन्दिवानि चे पि मं [R.56] भगवा...पे०...तीणि...चत्तारि...पञ्च...छ...सत्त रत्तिन्दिवानि चे पि मं भगवा एतमत्थं पुच्छेय्य अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि, सत्त रत्तिन्दिवानि पाहं भगवतो एतमत्थं ब्याकरेय्यं अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेही'' ति॥

विविध अर्थों में उत्तर देता रहूँ '....समस्त रात्रि....समस्त एक रात्रिदिन....दो रात्रिदिन....तीन रात्रिदिन....चार रात्रिदिन....पाँच रात्रिदिन....छह रात्रिदिन....सात रात्रिदिन संवाद होता रहे तो मैं सात रात्रिदिन पर्यन्त भी उसका विविध शब्दों से विविध अर्थों में उत्तर देता रहूँ'।''

तब कडारक्षत्रिय भिक्षु अपने आसन से उठ कर भगवान् के पास गया, तथा भगवान् को प्रणाम कर उनसे यों निवेदन करने लगा—''भन्ते! आयुष्मान् सारिपुत्र

"सा हि, भिक्खु, सारिपुत्तस्स धम्मधातु सुप्पटिविद्धा यस्सा धम्मधातुया सुप्पटिविद्धत्ता दिवसं चे पाहं सारिपुत्तं एतमत्थं पुच्छेय्यं अञ्ञमञ्ञेहि पदेहिह अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि, दिवसं पि मे सारिपुत्तो एतमत्थं ब्याकरेय्य अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि। रत्तिं चे पाहं सारिपुत्तं एतमत्थं पुच्छेय्यं अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि, रत्तिं पि मे सारिपुत्तो एतमत्थं ब्याकरेय्य...पे०... रत्तिन्दिवं चे पाहं सारिपुत्तं एतमत्थं पुच्छेय्यं, रत्तिन्दिवं पि मे सारिपुत्तो एतमत्थं ब्याकरेय्य...द्वे रत्तिन्दिवानि चे पाहं सारिपुत्तं एतमत्थं पुच्छेय्यं, द्वे रत्तिन्दिवानि [B.288] पि मे सारिपुत्तो एतमत्थं पुच्छेय्यं, तीणि रत्तिन्दिवानि पि मे सारिपुत्तो एतमत्थं ब्याकरेय्य...चत्तारि रत्तिन्दिवानि चे पाहं सारिपुत्तं एतमत्थं पुच्छेय्यं, चत्तारि रत्तिन्दिवानि पि मे सारिपुत्तो एतमत्थं ब्याकरेय्य...पञ्च रत्तिन्दिवानि चे पाहं सारिपुत्तं एतमत्थं पुच्छेय्यं पञ्च रत्तिन्दिवानि पि मे सारिपुत्तो एतमत्थं ब्याकरेय्य...छ रत्तिन्दिवानि चे पाहं सारिपुत्तं एतमत्थं पुच्छेय्यं, छ रत्तिन्दिवानि पि मे सारिपुत्तो एतमत्थं ब्याकरेय्य...सत्त रत्तिन्दिवानि चे पाहं सारिपुत्तं एतमत्थं पुच्छेय्यं अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेहि, सत्त रत्तिन्दिवानि पि मे सारिपुत्तो एतमत्थं ब्याकरेय्य अञ्ञमञ्ञेहि पदेहि अञ्ञमञ्ञेहि परियायेही" ति॥ •

३३. पठमञाणवत्थुसुत्तं

३४. ...सावत्थियं।"चतुचत्तारीसं वो, भिक्खवे, ञाणवत्थूनि देसेस्सामि, तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति।"एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

भिक्षुपरिषद् में बैठकर यों सिंहनाद कर रहे हैं—'आयुष्मानो! भगवान् ने मुझसे जब पहला प्रश्न....पूर्ववत्....विविध शब्दों से विविध अर्थों में उत्तर देता रहूँ।'''

(यह सुन कर भगवान् ने उस कळारक्षत्रिय भिक्षु को सारिपुत्र के विषय में यों समझाया—) ''भिक्षु! सारिपुत्र का (प्रतीत्यसमुत्पादविषयक) धर्मज्ञान इतना अधिक उच्च स्तर तक पहुँच चुका है कि यदि मैं उससे समस्त दिनपर्यन्त....रात्रिपर्यन्त....रात्रिदिन पर्यन्त....सात दिनरात्रिपर्यन्त भी प्रतीत्यसमुत्पादविषयक प्रश्न करता रहूँ तो वह भी उसका उत्तर विविध शब्दों से विविध अर्थों में देता ही रहेगा। (अत: इसमें कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिये।)॥ •

३३. प्रथमज्ञानवस्तुसूत्र : : ज्ञान के विषय

३४. **श्रावस्ती में** साधना के समय ही....। ''भिक्षुओ! मैं तुम्हें ४४ ज्ञानविषय बताऊँगा। उन्हें ध्यानपूर्वक सुनो, जो बताऊँ उसे मन में अच्छी तरह बैठा लो।'' भिक्षुओं ने भगवान् के आदेश को शिरोधार्य किया।

[N.49] "कतमानि, भिक्खवे, चतुचत्तारीसं ञाणवत्थूनि? जरामरणे ञाणं, जरामरण-समुदये ञाणं, जरामरणनिरोधे ञाणं, जरामरणनिरोधगामिनिया पटिपदाय ञाणं; जातिया ञाणं, जातिसमुदये ञाणं, जातिनिरोधे ञाणं, जातिनिरोधगामिनिया पटिपदाय ञाणं; भवे ञाणं, भवसमुदये ञाणं, भवनिरोधे ञाणं, भवनिरोधगामिनिया पटिपदाय ञाणं; उपादाने ञाणं, उपादानसमुदये ञाणं, उपादाननिरोधे ञाणं, उपादाननिरोध-गामिनिया पटिपदाय ञाणं; तण्हाय ञाणं, तण्हासमुदये ञाणं, तण्हानिरोधे ञाणं, तण्हानिरोधगामिनिया पटिपदाय ञाणं; वेदनाय ञाणं, वेदनासमुदये ञाणं, वेदनानिरोधे ञाणं, वेदनानिरोधगामिनिया पटिपदाय ञाणं; फस्से ञाणं...पे०...सळायतने ञाणं... नामरूपे ञाणं...विञ्ञाणे ञाणं...सङ्खारेसु ञाणं, सङ्खारसमुदये ञाणं, सङ्खारनिरोधे ञाणं,

---

(भगवान्—) "भिक्षुओ! ये ४४ ज्ञान के विषय कौन से हैं?

१. जरामरण का ज्ञान, २. जरामरण के समुदय का ज्ञान, ३. जरामरण के निरोध का ज्ञान, ४. जरामरणनिरोधगामी मार्ग का ज्ञान।

५. जाति का ज्ञान, ६. जातिसमुदय का...., ७. जातिनिरोध का...., ८. जातिनिरोधगामी मार्ग का ज्ञान....।

९. भव का...., १०. भवसमुदय का...., ११. भवनिरोध का...., १२. भवनिरोधगामी मार्ग का ज्ञान।

१३. उपादान का...., १४. उपादानसमुदय का...., १५. उपादाननिरोध का...., १६. उपादाननिरोधगामी मार्ग का....।

१७. तृष्णा का...., १८. तृष्णासमुदय का...., १९. तृष्णानिरोध का...., २०. तृष्णानिरोधगामी मार्ग....।

२१. वेदना का...., २२. वेदनासमुदय का...., २३. वेदनानिरोध का...., २४. वेदनानिरोधगामी मार्ग का....।

२५. स्पर्श का...., २६. स्पर्शसमुदय का...., २७. स्पर्शनिरोध का...., २८. स्पर्शनिरोधगामी मार्ग का....।

२९. षडायतन का...., ३०. षडायतनसमुदय का...., ३१. षडायतननिरोध का...., ३२. षडायतननिरोधगामी मार्ग....।

३३. नामरूप का...., ३४. नामरूपसमुदय का...., ३५. नामरूपनिरोध का...., ३६. नामरूपनिरोधगामी मार्ग का....।

३७. विज्ञान का...., ३८. विज्ञानसमुदय का...., ३९. विज्ञाननिरोध का...., ४०. विज्ञाननिरोधगामी मार्ग का....।

सङ्खारनिरोधगामिनिया पटिपदाय ञाणं। इमानि वुच्चन्ति, भिक्खवे, चतुचत्तारीसं ञाणवत्थूनि।

"कतमं च, भिक्खवे, जरामरणं? या तेसं तेसं सत्तानं तम्हि तम्हि सत्तनिकाये जरा जीरणता खण्डिच्चं पालिच्चं वलित्तचता आयुनो संहानि इन्द्रियानं परिपाको, अयं वुच्चति जरा। या तेसं तेसं सत्तानं तम्हा तम्हा सत्तनिकाया चुति चवनता भेदो [B.289] अन्तरधानं मच्चु मरणं कालकिरिया खन्धानं भेदो कळेवरस्स निक्खेपो जीवितिन्द्रियस्स उपच्छेदो, इदं वुच्चति मरणं। इति अयं च जरा इदं च मरणं; इदं वुच्चति, भिक्खवे, जरामरणं।

"जातिसमुदया जरामरणसमुदयो; जातिनिरोधा जरामरणनिरोधो; अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो जरामरणनिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि ...पे०... सम्मासमाधि।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावको एवं जरामरणं पजानाति, एवं [R.58] जरामरणसमुदयं पजानाति, एवं जरामरणनिरोधं पजानाति, एवं जरामरणनिरोधगामिनिं

---

४१. "संस्कार का...., ४२. संस्कारसमुदय का...., ४३. संस्कारनिरोध का...., ४४. संस्कारनिरोधगामी मार्ग का ज्ञान।

"भिक्षुओ! यही ४४ वस्तुएँ ज्ञान की विषय कही जाती हैं।

"भिक्षुओ! यह जरामरण क्या है? यह उन उन प्राणियों के उस उस जन्म के शरीर में जो जरा (बुढापा), जीर्णता (पुरानापन), दाँत आदि का टूटना (खाण्डित्य), बालों का सफेद होना (पालित्य), त्वचा में झुर्रियाँ पड़ना (बलित्तचता), आयु की क्षीणता (संहानि), इन्द्रियों का दुर्बल होना (परिपाक)—यह कहलाती है—**जरा**। तथा उन उन प्राणियों के उस उस शरीर की च्युति (पात), च्यवनता, भेद (नाश), अन्तर्धान (लोप), मृत्यु, मरण कालक्रिया (समय समाप्त हो जाना), स्कन्धों का परस्पर भिन्न हो जाना, शरीर का गिर जाना, जीवितेन्द्रिय का विच्छेद—यह कहलाता है—**मरण**। भिक्षुओ! यों यह जरा कहलाती है, यों यह कहलाता है मरण। और ये दोनों मिलकर कहलाते हैं—**जरामरण**।

"जाति के उद्भव से जरामरण का उद्भव होता है तथा जाति के निरोध से जरामरण का निरोध होता है। यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग या जरामरणनिरोधगामिनी प्रतिपदा कहलाती है; जैसे—सम्यग्दृष्टि....पूर्ववत्....सम्यक्समाधि।

"भिक्षुओ! जब कोई साधक भिक्षु धर्मसाधना के बल से जरामरण को इस तरह जान लेता है, जरामरण के समुदय को जान लेता है, जरामरण के निरोध को जान लेता है, जरामरणनिरोधगामिनी प्रतिपदा को जान लेता है—यही उसका धर्मज्ञान है। जो इस धर्म

पटिपदं पजानाति, इदमस्स धम्मे ञाणं। सो इमिना धम्मेन दिट्ठेन विदितेन अकालिकेन पत्तेन परियोगाळ्हेन अतीतानागतेन यं नेति।

"ये खो केचि अतीतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा जरामरणं अब्भञ्ञंसु, जरामरणसमुदयं अब्भञ्ञंसु, जरामरणनिरोधं अब्भञ्ञंसु, जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं अब्भञ्ञंसु, सब्बे ते एवमेव अब्भञ्ञंसु, सेय्यथापाहं एतरहि।

"ये पि हि केचि अनागतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा जरामरणं अभिजा- [N.50] निस्सन्ति, जरामरणसमुदयं अभिजानिस्सन्ति, जरामरणनिरोधं अभिजानिस्सन्ति, जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं अभिजानिस्सन्ति, सब्बे ते एवमेव अभिजानिस्सन्ति, सेय्यथापाहं एतरही ति। इदमस्स अन्वये ञाणं।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमानि द्वे ञाणानि परिसुद्धानि होन्ति परियोदातानि—धम्मे ञाणं च, अन्वये ञाणं च। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको दिट्ठिसम्पन्नो इति पि, दस्सनसम्पन्नो इति पि, आगतो इमं सद्धम्मं इति पि, पस्सति इमं सद्धम्मं इति पि, सेक्खेन ञाणेन समन्नागतो इति पि, सेक्खाय विज्जाय समन्नागतो इति पि, धम्मसोतं समापन्नो इति पि, अरियो निब्बेधिकपञ्ञो इति पि, अमतद्वारं आहच्च तिट्ठति इति पी ति।

"कतमा च, भिक्खवे, जाति...पे०...कतमो च, भिक्खवे, भवो...कतमं च, भिक्खवे, उपादानं...कतमा च, भिक्खवे तण्हा...कतमा च, भिक्खवे, वेदना...कतमो [B.290, R.59] च, भिक्खवे, फस्सो...कतमं च, भिक्खवे, सळायतनं...कतमं च,

---

को जान लेता है, साक्षात्कार कर लेता है, प्राप्त कर लेता है, इसका यथार्थतः अवगाहन कर लेता है वही अतीत अनागत में यहाँ नेतृत्व ग्रहण करता है।

"अतीत काल में भी जिन श्रमण ब्राह्मणों ने इस जरामरण को....जाना था, इसका अभ्यास किया था, उन्होंने इसको इसी तरह जाना था, जैसा कि मैं इस समय कह रहा हूँ।

"भविष्य में भी जो श्रमण ब्राह्मण इस जरामरण को, जरामरणसमुदयको, जरामरणनिरोध को, जरामरणनिरोधगामी मार्ग को जानेंगे वे सब भी इसी तरह जान पायँगे, जैसा कि मैं कह रहा हूँ; क्योंकि यह ज्ञानपरम्परा से ही प्राप्त होता आया है।

"भिक्षुओ! क्योंकि सफल साधक आर्यश्रावक का यह धर्मज्ञान एवं परम्पराप्राप्त ज्ञान परिशुद्ध एवं पर्यवदात होता है, अतः वह 'दृष्टिसम्पन्न, दर्शनसम्पन्न, धर्म का गम्भीर ज्ञाता, धर्मद्रष्टा, शैक्ष्यज्ञानयुक्त, शैक्ष्यविद्यायुक्त, धर्मस्रोतआपन्न, आर्य, कुशाग्रबुद्धि है एवं अमृतद्वार (निर्वाण) तक पहुँचकर ही स्थित है'—ऐसा कहलाता है।

पुनः भिक्षुओ! जाति....भव....उपादान....तृष्णा....वेदना....स्पर्श....षडायतन....

भिक्खवे, नामरूपं...कतमं च, भिक्खवे, विञ्ञाणं...कतमे च, भिक्खवे, सङ्खारा? तयोमे, भिक्खवे, सङ्खारा—कायसङ्खारो, वचीसङ्खारो, चित्तसङ्खारो ति। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, सङ्खारा।

"अविज्जासमुदया सङ्खारसमुदयो; अविज्जानिरोधा सङ्खारनिरोधो; अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो सङ्खारनिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०... सम्मासमाधि।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावको एवं सङ्खारे पजानाति, एवं सङ्खारसमुदयं पजानाति, एवं सङ्खारनिरोधं पजानाति, एवं सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानाति, इदमस्स धम्मे ञाणं। सो इमिना धम्मेन दिट्ठेन विदितेन अकालिकेन पत्तेन परियोगाळ्हेन अतीतानागतेन यं नेति।

"ये खो केचि अतीतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा सङ्खारे अब्भञ्ञंसु, सङ्खारसमुदयं अब्भञ्ञंसु, सङ्खारनिरोधं अब्भञ्ञंसु, सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं [N.51] अब्भञ्ञंसु, सब्बे ते एवमेव अब्भञ्ञंसु, सेय्यथापाहं एतरहि।

"ये हि पि केचि अनागतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा सङ्खारे अभिजानिस्सन्ति, सङ्खारसमुदयं अभिजानिस्सन्ति, सङ्खारनिरोधं अभिजानिस्सन्ति, सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं अभिजानिस्सन्ति, सब्बे ते एवमेव अभिजानिस्सन्ति, सेय्यथापाहं एतरहि। इदमस्स अन्वये ञाणं।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमानि द्वे ञाणानि परिसुद्धानि होन्ति परियोदातानि—धम्मे ञाणं च, अन्वये ञाणं च। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको दिट्ठिसम्पन्नो इति पि, दस्सनसम्पन्नो इति पि, आगतो इमं सद्धम्मं इति पि, पस्सति इमं सद्धम्मं इति पि, सेक्खेन ञाणेन समन्नागतो इति पि, सेक्खाय विज्जाय समन्नागतो इति पि, धम्मसोतं समापन्नो इति पि, अरियो निब्बेधिकपञ्ञो इति पि, अमतद्वारं आहच्च तिट्ठति इति पी" ति॥ •

३४. दुतियञाणवत्थुसुत्तं

३५. ...सावत्थियं विहरति। "सत्तसत्तरि वो, भिक्खवे, ञाणवत्थूनि देसेस्सामि।

नामरूप.... विज्ञान....संस्कार क्या हैं? भिक्षुओ! संस्कार तीन प्रकार के होते हैं; जैसे— १. कायसंस्कार, २. वाक्संस्कार एवं ३. वित्तसंस्कार। भिक्षुओ! ये संस्कार कहलाते हैं।

अविद्या के समुदय से....पूर्ववत्....अमृतद्वार (निर्वाण) तक पहुँच कर स्थित है। (इसी सूत्र का 'जरामरण' वाला पाठ दोहरा लें)॥ •

तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

[B.291, R.60] ''कतमानि, भिक्खवे, सत्तसत्तरि ञाणवत्थूनि? १. जातिपच्चया जरामरणं ति ञाणं; २. असति जातिया नत्थि जरामरणं ति ञाणं; ३. अतीतं पि अद्धानं जातिपच्चया जरामरणं ति ञाणं; ४. असति जातिया नत्थि जरामरणं ति ञाणं; ५. अनागतं पि अद्धानं जातिपच्चया जरामरणं ति ञाणं; ६. असति जातिया नत्थि जरामरणं ति ञाणं; ७. यं पिस्स तं धम्मट्ठितिञाणं तं पि खयधम्मं वयधम्मं विरागधम्मं निरोधधम्मं ति ञाणं।

''भवपच्चया जाती ति ञाणं...पे०...उपादानच्चया भवो ति ञाणं...तण्हापच्चया उपादानं ति ञाणं...वेदनापच्चया तण्हा ति ञाणं...फस्सपच्चया वेदना ति ञाणं... सळायतनपच्चया फस्सो ति ञाणं...नामरूपपच्चया सळायतनं ति ञाणं...विञ्ञाण-पच्चया नामरूपं ति ञाणं...सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं ति ञाणं; अविज्जापच्चया सङ्खारा ति

---

३४. द्वितीय ज्ञानवस्तुसूत्र : : ज्ञान के ७७ विषय

३५. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! मैं तुम्हें ७७ ज्ञान के विषय बताऊँगा; उन्हें ध्यानपूर्वक सुनो, और मन में भली भाँति बैठा लो। मैं बताता हूँ।'' भिक्षुओं ने भगवान् के आदेश को शिरोधार्य किया। भगवान् यों बोले—

''भिक्षुओ! ये ७७ ज्ञान कौनसे हैं? १. जाति के होने से जरामरण होने का ज्ञान; २. जाति के न होने से जरामरण न होने का ज्ञान; ३. अतीत काल में भी जाति के होने से जरामरण हुआ करता था; ४. अतीत काल में भी जाति के न होने पर जरामरण नहीं हुआ करता था—इसका ज्ञान; ५. भविष्य में जाति होने पर जरामरण होगा—इसका ज्ञान; एवं ६. भविष्य भी जाति के न होने पर जरामरण नहीं होगा—इसका ज्ञान; तथा ७. यह जो धर्मों की स्थिति का ज्ञान है वह भी क्षीण होने वाला, विनष्ट होने वाला, छूटने वाला, निरुद्ध होनेवाला है—इसका ज्ञान।

१. भव के होने से जाति होने का ज्ञान....।

२. उपादान के होने से भव होने का ज्ञान....।

३. तृष्णा के होने से उपादान होने का ज्ञान....।

४. वेदना के होने से तृष्णा के होने का ज्ञान....।

५. स्पर्श के होने से वेदना के होने का ज्ञान....।

६. षडायतन के प्रत्यय से स्पर्श होने का ज्ञान....।

७. नामरूप के होने से षडायतन होने का ज्ञान....।

८. विज्ञान के होने से नामरूप होने का ज्ञान....।

ञाणं, असति अविज्जाय नत्थि सङ्खारा ति ञाणं; अतीतं पि अद्धानं अविज्जापच्चया सङ्खारा ति ञाणं, असति अविज्जाय नत्थि सङ्खारा ति ञाणं; अनागतं पि अद्धानं [N.52] अविज्जापच्चया सङ्खारा ति ञाणं, असति अविज्जाय नत्थि सङ्खारा ति ञाणं; यं पिस्स तं धम्मट्ठितिञाणं तं पि खयधम्मं वयधम्मं विरागधम्मं निरोधधम्मं ति ञाणं। इमानि वुच्चन्ति, भिक्खवे, सत्तसत्तरि ञाणवत्थूनी'' ति॥ •

३५. पठमअविज्जापच्चयसुत्तं

३६. ...सावत्थियं विहरति। ''अविज्जापच्चया, भिक्खवे, सङ्खारा, सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होती'' ति। एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''कतमं नु खो, भन्ते, जरामरणं, कस्स च पनिदं जरामरणं'' ति?

''नो कल्लो पञ्हो'' ति भगवा अवोच, ''कतमं जरामरणं, कस्स च [R.61] पनिदं जरामरणं' ति इति वा, भिक्खु, यो वदेय्य, 'अञ्ञं जरामरणं अञ्ञस्स च पनिदं जरामरणं' ति, इति वा, भिक्खु, यो वदेय्य, उभयमेतं एकत्थं ब्यञ्जनमेव नानं। तं जीवं

---

९. संस्कारों के होने से विज्ञान होने का ज्ञान....।

१०. अविद्या के होने से संस्कारों के होने का ज्ञान....।

११. अविद्या के न होने से संस्कारों के न होने का ज्ञान....।

१२.भूतकाल में अविद्या के होने पर संस्कार हुआ करते थे—यह ज्ञान, तथा अविद्या के न होने पर संस्कार भी नहीं होते थे—यह ज्ञान....।

१३.भविष्य में अविद्या के होने पर संस्कार होंगे—यह ज्ञान, तथा अविद्या के न होने पर संस्कार भी न होंगे—यह ज्ञान....।

१४.तथा यह जो धर्मस्थितिज्ञान है, यह भी क्षयधर्मा, व्ययधर्मा, त्यागधर्मा एवं निरोधधर्मा है—यह ज्ञान....।

भिक्षुओ! ये कहलाते हैं ७७ ज्ञानविषय''॥ •

३५. प्रथमअविद्याप्रत्ययसूत्र : : दुःखमूल अविद्या

श्रावस्ती में साधना के समय....।''भिक्षुओ! अविद्या के होने से संस्कार होते हैं, संस्कारों के होने पर विज्ञान होता है....पूर्ववत्....यों, इस समग्र दुःखस्कन्ध का उद्भव होता है।'' (भगवान् की इस देशना के बाद) कोई भिक्षु यह बोला—''भन्ते! जरामरण क्या है? तथा यह किसका होता है?''

(भगवान्—) ''तुम्हारा यह प्रश्न सङ्गत नहीं है। भिक्षु! जो ऐसा कहे—'जरामरण क्या है? तथा यह किसको होता है?' अथवा ऐसा कहे—'जरामरण अन्य है तथा उसका भोक्ता अन्य है', तो इन दोनों बातों का अर्थ एक ही है, केवल शब्द भिन्न हैं। भिक्षु! 'जो

तं सरीरं ति वा, भिक्खु, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति। अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, भिक्खु, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति। एते ते, भिक्खु, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति—'जातिपच्चया जरामरणं''' ति।

"कतमो नु खो, भन्ते, भवो, कस्स च पनायं भवो" ति?

"नो कल्लो पञ्हो" ति भगवा अवोच, '''कतमो भवो, कस्स च पनायं भवो' [B.292] ति इति वा, भिक्खु, यो वदेय्य, 'अञ्ञो भवो अञ्ञस्स च पनायं भवो' ति इति वा, भिक्खु, यो वदेय्य, उभयमेतं एकत्थं ब्यञ्जनमेव नानं। तं जीवं तं सरीरं ति वा, भिक्खु, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति। अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, भिक्खु, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति। एते ते, भिक्खु, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति—'भवपच्चया जाती''' ति।

"कतमो नु खो, भन्ते, भवो, कस्स च पनायं भवो" ति?

"नो कल्लो पञ्हो" ति भगवा अवोच, "'कतमो भवो, कस्स च पनायं भवो' ति इति वा, भिक्खु; यो वदेय्य, 'अञ्ञो भवो अञ्ञस्स च पनायं भवो' ति इति वा, भिक्खु, [N.53, R.62] यो वदेय्य, उभयमेतं एकत्थं ब्यञ्जनमेव नानं। तं जीवं तं सरीरं ति वा, भिक्खु, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति; अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, भिक्खु, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति। एते ते, भिक्खु, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति—'उपादानपच्चया भवो' ति...पे०...तण्हापच्चया उपादानं ति...

जीव है वही शरीर है' या 'जीव दूसरा है और शरीर दूसरा'—ऐसी दृष्टि रखने वाले साधक की धर्मसाधना सफल नहीं होती। भिक्षु! इन दोनों ही सीमाओं (अन्तों) को न स्वीकार कर तथागत मध्यम मार्ग से यही बात यों कहते हैं—"जाति के होने से जरामरण होता है।"

(भिक्षु—) "तो, भन्ते! यह 'जाति' क्या है? तथा यह जाति (जन्म) किसकी होती है?"

(भगवान्—) "भिक्षु! तुम्हारा यह प्रश्न भी सङ्गत नहीं। भले ही कोई यह कहे—'जाति क्या है और किसकी होती है?' या कोई यह कहे—'जाति दूसरी है, शरीर दूसरा है'; भिक्षु! ये दोनों ही बातें समान हैं, केवल दोनों के शब्द भिन्न हैं, दोनों का अर्थ एक ही है।....पूर्ववत्....भगवान् इसी बात को मध्यम मार्ग से यों कहते हैं—'भव के होने से जाति होती है'।"

(भिक्षु—) "तो, भन्ते! यह 'भव' क्या है? और किसका होता है?

(भगवान्—) "भिक्षु! तुम्हारा यह प्रश्न भी असङ्गत ही है;....पूर्ववत्....इसी बात को यों कहते हैं—'उपादान के होने से भव होता है।'

वेदनापच्चया तण्हा ति...फस्सपच्चया वेदना ति...सळायतनपच्चया फस्सो ति... नामरूपच्चया सळायतनं ति...विञ्ञाणपच्चया नामरूपं ति...'सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं''' ति।

''कतमे नु खो, भन्ते, सङ्खारा, कस्स च पनिमे सङ्खारा'' ति?

''नो कल्लो पञ्हो'' ति भगवा अवोच, ''कतमे सङ्खारा कस्स च पनिमे सङ्खारा' ति इति वा, भिक्खु, यो वदेय्य, 'अञ्ञे सङ्खारा अञ्ञस्स च पनिमे सङ्खारा' ति इति वा, भिक्खु, यो वदेय्य, उभयमेतं एकत्थं ब्यञ्जनमेव नानं। तं जीवं तं सरीरं ति वा, भिक्खु, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति; अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, भिक्खु, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति। एते ते, भिक्खु, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति—'अविज्जापच्चया सङ्खारा' ति।

''अविज्जाय त्वेव, भिक्खु, असेसविरागनिरोधा यानिस्स तानि विसूकायिकानि विसेवितानि विप्फन्दितानि कानिचि कानिचि। 'कतमं जरामरणं, कस्स च पनिदं जरामरणं' इति वा, 'अञ्ञं जरामरणं, अञ्ञस्स च पनिदं जरामरणं' इति वा, 'तं जीवं तं सरीरं' इति वा, 'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' इति वा सब्बानिस्स तानि पहीनानि भवन्ति उच्छिन्नमूलानि तालावत्थुकतानि अनभावङ्कतानि आयतिं अनुप्पादधम्मानि।

''अविज्जाय त्वेव, भिक्खु, असेसविरागनिरोधा यानिस्स तानि [B.293]

....तृष्णा के होने से उपादान होता है....वेदना के होने से तृष्णा होती है....स्पर्श के होने से वेदना होती है....षडायतन के होने से स्पर्श होता है....नामरूप के होने से षडायतन होता है....विज्ञान के होने से नामरूप होता है....'संस्कारों के होने से विज्ञान होता है'।

(भिक्षु—) ''तो, भन्ते! ये संस्कार क्या हैं और ये किसको होते हैं?''

(भगवान्—) ''यह प्रश्न भी सङ्गत नहीं है;....पूर्ववत्....मध्यम मार्ग से यों कहते हैं—'अविद्या के होने से संस्कार होते हैं'।

''और, भिक्षु! इस अविद्या के पूर्णतः त्याग तथा निरोध होने पर, विद्वानों द्वारा परिहसनीय (=विसूकायिक) तथा असेवनीय या उधर उधर की जो कुछ भी उछलकूद वाली दृष्टियाँ (बातें) हैं; जैसे—'जरामरण क्या है? यह किसका होता है?' या 'जरामरण अन्य है, तथा इसका भोक्ता अन्य है', या 'वही जीव है वह भोक्ता शरीर है' या 'जीव अन्य है, भोक्ता अन्य है' आदि; ये सभी बातें (दृष्टियाँ) प्रहीण हो जाती हैं, मूलतः विच्छिन्न हो जाती हैं, जड़ से उखड़ जाती हैं, इनका अभाव हो जाता है, पुनः भविष्य में उत्पादयोग्य (विचारणीय) भी नहीं रह जातीं।

विसूकायिकानि विसेवितानि विप्फन्दितानि कानिचि कानिचि। 'कतमा जाति, कस्स च पनायं जाति' इति वा, 'अञ्ञा जाति, अञ्ञस्स च पनायं जाति' इति वा, 'तं जीवं तं सरीरं' इति वा, 'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' इति वा सब्बानिस्स तानि पहीनानि भवन्ति उच्छिन्नमूलानि तालावत्थुकतानि अनभावङ्कतानि आयतिं अनुप्पादधम्मानि।

"अविज्जाय त्वेव, भिक्खु, असेसविरागनिरोधा यानिस्स तानि विसूकायिकानि [N.54, R.63] विसेवितानि विप्फन्दितानि कानिचि कानिचि। कतमो भवो...पे०...कतमं उपादानं...कतमा तण्हा...कतमा वेदना...कतमो फस्सो...कतमं सळायतनं...कतमं नामरूपं... कतमं विञ्ञाणं...पे०...।

"अविज्जाय त्वेव, भिक्खु, असेसविरागनिरोधा यानिस्स तानि विसूकायिकानि विसेवितानि विप्फन्दितानि कानिचि कानिचि। 'कतमे सङ्खारा, कस्स च पनिमे सङ्खारा' इति वा, 'अञ्ञं सङ्खारा, अञ्ञस्स च पनिमे सङ्खारा' इति वा, 'तं जीवं तं सरीरं' इति वा, 'अञ्ञं जीवं, अञ्ञं सरीरं' इति वा सब्बानिस्स तानि पहीनानि भवन्ति उच्छिन्नमूलानि तालावत्थुक-तानि अनभावङ्कतानि आयतिं अनुप्पादधम्मानी" ति॥ •

३६. दुतियअविज्जापच्चयसुत्तं

३७. ...सावत्थियं विहरति। "अविज्जापच्चया, भिक्खवे, सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"''कतमं जरामरणं, कस्स च पनिदं जरामरणं' ति इति वा, भिक्खवे, यो वदेय्य, 'अञ्ञं जरामरणं, अञ्ञस्स च पनिदं जरामरणं' ति इति वा, भिक्खवे, यो वदेय्य, उभयमेतं एकत्थं ब्यञ्जनमेव नानं। 'तं जीवं तं सरीरं' इति वा, भिक्खवे, दिट्ठिया सति

"और, भिक्षु! इस अविद्या के पूर्णतः त्याग तथा निरोध होने पर ही....पूर्ववत्.... भव....उपादान....तृष्णा....वेदना....स्पर्श....षडायतन....नामरूप....विज्ञान....नहीं रह जातीं।

"और, भिक्षु! इस अविद्या के पूर्णतः त्याग....पूर्ववत्....पुनः भविष्य में उत्पादयोग्य नहीं रह जातीं॥ •

३६. द्वितीय अविद्याप्रत्ययसूत्र : : दुःखमूल अविद्या

३७. श्रावस्ती में साधना के समय....। "भिक्षुओ! अविद्या के होने से संस्कार होते हैं, संस्कारों के होने से विज्ञान होता है....पूर्ववत्....यों, इस समस्त दुःखस्कन्ध का उद्भव होता है।

"भिक्षुओ! कोई यह कहे—'जरामरण क्या है? यह जरामरण किसका होता है?' या कोई यह कहे—जरामरण दूसरी बात है तथा किसी का जरामरण होना दूसरी बात है'—ये दोनों बातें शब्दतः भले ही भिन्न हों, अर्थ दोनों का एक ही है। 'शरीर अन्य

ब्रह्मचरियवासो न होति। 'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' इति वा, भिक्खवे, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति। एते ते, भिक्खवे, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति—'जातिपच्चया जरामरणं' ति।

''कतमा जाति...पे०...कतमो भवो...कतमं उपादानं...कतमा [B.294, R.64] तण्हा...कतमा वेदना...कतमो फस्सो...कतमं सळायतनं...कतमं नामरूपं...कतमं विञ्ञाणं... कतमे सङ्खारा, कस्स च पनिमे सङ्खारा ति इति वा, भिक्खवे, यो वदेय्य, 'अञ्ञे सङ्खारा अञ्ञस्स च पनिमे सङ्खारा' ति इति वा, भिक्खवे, यो वदेय्य, उभयमेतं एकत्थं ब्यञ्जनमेव नानं। 'तं जीवं तं सरीरं' इति वा, भिक्खवे, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति। 'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' इति वा, भिक्खवे, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति। एते ते, भिक्खवे, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति—'अविज्जापच्चया सङ्खारा' ति।

''अविज्जाय त्वेव, भिक्खवे, असेसविरागनिरोधा यानिस्स तानि [N.55] विसूकायिकानि विसेवितानि विप्फन्दितानि कानिचि कानिचि। 'कतमं जरामरणं, कस्स च पनिदं जरामरणं' इति वा, 'अञ्ञं जरामरणं, अञ्ञस्स च पनिदं जरामरणं' इति वा, 'तं जीवं तं सरीरं' इति वा, 'अञ्ञं जीवं, अञ्ञं सरीरं' इति वा सब्बानिस्स तानि पहीनानि भवन्ति उच्छिन्नमूलानि तालावत्थुकतानि अनभावङ्कतानि आयतिं अनुप्पाद-धम्मानि।

है, जीव अन्य है'—यह दृष्टि रखने पर साधक की धर्मसाधना सफल नहीं होती। अत: इन दोनों ही सीमाओं का त्याग कर तथागत मध्यम मार्ग स्वीकार करते हुए यों उपदेश करते हैं—'जाति के होने पर जरामरण होता है।'

''जाति क्या है?....भव क्या है?....उपादान क्या है? तृष्णा क्या है?....वेदना क्या है। ....स्पर्श क्या है?....षडायतन क्या है?....नामरूप क्या है?....विज्ञान क्या है?....संस्कार क्या हैं? तथा ये संस्कार किसको होते हैं?'—भिक्षुओ! ऐसा कोई कहे, या कोई यह कहे—'संस्कार अन्य हैं तथा संस्कारों का होना अन्य है' तो ये दोनों बातें शब्दश: भिन्न हो सकती हैं, अर्थ तो दोनों का एक ही है। 'वही जीव है, वही शरीर है'—ऐसे विचार रखने वाला साधना में सफल नहीं हो सकता। अत: भिक्षुओ! तथागत ने ये दोनों ही सीमाएँ त्याग कर, मध्यम मार्ग का आश्रयण कर यह कहा है—'अविद्या के होने से संस्कार होते हैं'।

''भिक्षुओ! इस अविद्या के पूर्णत: त्याग तथा निरोध किये जाने पर विद्वानों द्वारा परिहसनीय तथा असेवनीय....पूर्ववत्....पुन: भविष्य में उत्पादयोग्य नहीं रह जातीं।

"अविज्जाय त्वेव, भिक्खवे, असेसविरागनिरोधा यानिस्स तानि विसूकायिकानि विसेवितानि विप्फन्दितानि कानिचि कानिचि। कतमा जाति...पे०...कतमो भवो...कतमं उपादानं...कतमा तण्हा...कतमा वेदना...कतमो फस्सो...कतमं सळायतनं ...कतमं नामरूपं...कतमं विञ्ञाणं...'कतमे सङ्खारा, कस्स च पनिमे सङ्खारा' इति वा, 'अञ्ञे सङ्खारा, अञ्ञस्स च पनिमे सङ्खारा' इति वा; 'तं जीवं तं सरीरं' इति वा, 'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' इति वा सब्बानिस्स तानि पहीनानि भवन्ति उच्छिन्नमूलानि तालावत्थुकतानि अनभावङ्कतानि आयतिं अनुप्पादधम्मानी" ति॥ ●

३७. नतुम्हसुत्तं

३८. सावत्थियं विहरति। "नायं, भिक्खवे, कायो तुम्हाकं न पि अञ्ञेसं। [R.65] पुराणमिदं, भिक्खवे, कम्मं अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयितं वेदनियं दट्ठब्बं।

"तत्र खो, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको पटिच्चसमुप्पादञ्ञेव साधुकं योनिसो [B.295] मनसि करोति—'इति इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति; इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स निरोधा इदं निरुज्झति, यदिदं अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति॥ ●

"भिक्षुओ! इस अविद्या के पूर्णतः त्याग एवं निरोध होने पर, विद्वानों द्वारा परिहसनीय तथा असेवनीय....सब प्रहीण हो जाती हैं....पुनः भविष्य में उत्पाद योग्य भी नहीं रह जातीं"॥ ●

३७. 'नतुम्ह' सूत्र : : यह शरीर तुम्हारा नहीं

३८. **श्रावस्ती** में साधना के समय...। "भिक्षुओ! यह शरीर न तुम्हारा है, न किसी दूसरे का। भिक्षुओ! यह तो पुराने कर्मों से सञ्चित, वेदना एवं चेतना से युक्त प्रत्ययों के होने से उत्पन्न हुआ है।

"भिक्षुओ! आर्यश्रावक इसे सीख कर प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त का ही यों भली भाँति मनन करता है—'इसके होने पर यह होता है, इसके उत्पन्न होने पर यह उत्पन्न होता है, इसके निरुद्ध होने पर यह निरुद्ध होता है; जैसे—अविद्या के होने से संस्कार, संस्कारों के होने से विज्ञान....पूर्ववत्....यों, इस समस्त दुःखस्कन्ध का उद्भव होता है। तथा अविद्या के सर्वथा त्याग एवं निरोध से संस्कार का निरोध होता है....पूर्ववत्....दुःखस्कन्ध का निरोध (विनाश) होता है"॥ ●

३८. पठमचेतनासुत्तं

३९. ...सावत्थियं विहरति। "यं च, भिक्खवे, चेतेति यं च पकप्पेति यं [N.56] च अनुसेति, आरम्मणमेतं होति विञ्ञाणस्स ठितिया। आरम्मणे सति पतिट्ठा विञ्ञाणस्स होति। तस्मिं पतिट्ठिते विञ्ञाणे विरूळ्हे आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति होति। आयतिं पुनब्भवाभि-निब्बत्तिया सति आयतिं जाति जरामरणं सोकपरिदेव-दुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"नो चे, भिक्खवे, चेतेति नो चे पकप्पेति अथ चे अनुसेति, आरम्मणमेतं होति विञ्ञाणस्स ठितिया। आरम्मणे सति पतिट्ठा विञ्ञाणस्स होति। तस्मिं पतिट्ठिते विञ्ञाणे विरूळ्हे आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति होति। आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्तिया सति आयतिं जाति जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"यतो च खो, भिक्खवे, नो चेव चेतेति नो च पकप्पेति नो च अनुसेति, [R.66] आरम्मणमेतं न होति विञ्ञाणस्स ठितिया। आरम्मणे असति पतिट्ठा विञ्ञाणस्स न होति। तदप्पतिट्ठिते विञ्ञाणे अविरूळ्हे आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति न होति। आयतिं

---

३८. प्रथम चेतनासूत्र : : चेतना एवं सङ्कल्प के अभाव में मुक्ति

३९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! जो किसी विषय का चिन्तन करता है, किसी कार्य को करने का सङ्कल्प करता है, किसी कार्य में लग जाता है वह सब कुछ विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन होता है। विज्ञान के बने रहने से उसकी प्रतिष्ठा होती है। उसके प्रतिष्ठित होने पर, उसके वृद्धिङ्गत होने पर, प्राणी भविष्य में बार बार जन्म लेता है। इस तरह बार बार जन्म लेने से भविष्य में उसको जन्म, बुढ़ापा तथा मृत्यु एवं शोक, परिदेव दुःख दौर्मनस्य एवं शोक घेरे रहते हैं। इस तरह उस (प्राणी) के लिये समस्त दुःखस्कन्ध का समुदय होता है।

"भिक्षुओ! एक बात और भी है—भले ही कोई उस विषय का चिन्तन या सङ्कल्प न करे, परन्तु उस कार्य में लगा रहे तो यह भी विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन होता है। यों विज्ञान के बने रहने से....पूर्ववत्....शोक घेरे रहते हैं। इस तरह उस (प्राणी) के लिये समस्त दुःखस्कन्ध का समुदय होता है।

"परन्तु, भिक्षुओ! जो किसी विषय का चिन्तन या सङ्कल्प नहीं करता, न किसी कार्य में व्यापृत रहता है तो वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन नहीं होता। इस तरह विज्ञान के न बने रहने से, न बढते रहने से भविष्य में उसका पुनर्भव (पुनर्जन्म)

पुनब्भवाभिनिब्बत्तिया असति आयतिं जातिजरामरणं सोकपरिदेव-दुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती'' ति॥ •

३९. दुतियचेतनासुत्तं

४०. ...सावत्थियं विहरति। ''यं च, भिक्खवे, चेतेति यं च पकप्पेति यं च अनुसेति, आरम्मणमेतं होति विञ्ञाणस्स ठितिया। आरम्मणे सति पतिट्ठा विञ्ञाणस्स [B.296] होति। तस्मिं पतिट्ठिते विञ्ञाणे विरूळ्हे नामरूपस्स अवक्कन्ति होति। नामरूपपच्चया सळायतनं; सळायतनपच्चया फस्सो; फस्सपच्चया वेदना...पे०... तण्हा...उपादानं...भवो...जाति...जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

''नो चे, भिक्खवे, चेतेति नो चे पकप्पेति अथ चे अनुसेति, आरम्मणमेतं होति [N.57] विञ्ञाणस्स ठितिया। आरम्मणे सति पतिट्ठा विञ्ञाणस्स होति। तस्मिं पतिट्ठिते विञ्ञाणे विरूळ्हे नामरूपस्स अवक्कन्ति होति। नामरूपपच्चया सळायतनं...पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

''यतो च खो, भिक्खवे, नो चेव चेतेति नो च पकप्पेति नो च अनुसेति,

---

नहीं होता। यों, भविष्य में पुनर्भव न होने से जरा, मरण....पूर्ववत्....शोक से वह छुटकारा पा जाता है। इस तरह उस का समस्त दुःखसमूह निरुद्ध हो जाता है॥ •

३९. द्वितीय चेतनासूत्र : : चेतना एवं सङ्कल्प के अभाव में मुक्ति

४०. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! जो किसी विषय का चिन्तन....करता है वह विज्ञान की स्थिति का आलम्बन होता है। यों, विज्ञान के प्रतिष्ठित एवं वृद्धिङ्गत होने पर नाम रूप की अवक्रान्ति (प्रवेश) होती है। यों नामरूप के होने से षडायतन....षडायतन से स्पर्श....स्पर्श से वेदना....वेदना से तृष्णा....तृष्णा से उपादान....उपादान से भव....भव से जाति....जाति से जरामरण शोक....उपायास समुद्भूत होते हैं।

''यदि भिक्षुओ! वह किसी प्रकार का चिन्तन या सङ्कल्प तो नहीं करता, परन्तु उस के चित्त की प्रवृत्ति (अनुशय) उधर ही बनी रहती है, तब यह अनुशय ही विज्ञान की स्थिति का आलम्बन बन जाता है। इस आलम्बन के बन जाने पर, विज्ञान की स्थिति सुदृढ़ होने पर, नामरूप की अवक्रान्ति होती है। उससे षडायतन....पूर्ववत्....उपायास समुद्भूत होते हैं।

''परन्तु भिक्षुओ! यदि वह कोई चिन्तन, सङ्कल्प नहीं करता है या उस के चित्त

आरम्मणमेतं न होति विञ्ञाणस्स ठितिया। आरम्मणे असति पतिट्ठा विञ्ञाणस्स न होति। तदप्पतिट्ठिते विञ्ञाणे अविरूळ्हे नामरूपस्स अवक्कन्ति न होति। नामरूप-निरोधा सळायतननिरोधो... पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती'' ति॥

४०. ततियचेतनासुत्तं

४१. सावत्थियं विहरति। ''यं च, भिक्खवे, चेतेति यं च पकप्पेति यं च [R.67] अनुसेति आरम्मणमेतं होति विञ्ञाणस्स ठितिया। आरम्मणे सति पतिट्ठा विञ्ञाणस्स होति। तस्मिं पतिट्ठिते विञ्ञाणे विरूळ्हे नति होति। नतिया सति आगतिगति होति। आगतिगतिया सति चुतूपपातो होति। चुतूपपाते सति आयतिं जातिजरामरणं सोक-परिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

''नो चे, भिक्खवे, चेतेति नो चे पकप्पेति अथ चे अनुसेति, आरम्मणमेतं होति

की प्रवृत्ति उधर नहीं होती तो विज्ञान की स्थिति के लिये ऐसी दशा में कोई आलम्बन नहीं बन पाता।

''परन्तु यदि, भिक्षुओ! वह न कोई चिन्तन करता है, न कोई सङ्कल्प करता है, न किसी कर्म में उस का अनुशय (प्रवृत्ति) होता है, ऐसी स्थिति में विज्ञान का कोई आलम्बन नहीं बन पाता। ऐसे आलम्बन के न होने पर....पूर्ववत्....नामरूप के निरोध से षडायतन का निरोध हो जाता है।....पूर्ववत्....यों, इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है॥

४०. तृतीय चेतनासूत्र : : चेतना एवं सङ्कल्प के अभाव में मुक्ति

४१. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! जब ऐसा प्राणी कुछ भी चिन्तन या सङ्कल्प करता है या उस कर्म में प्रवृत्त होता है, तब यह उसके विज्ञान की स्थिति के लिये आलम्बन बन जाता है। यों, आलम्बन में विज्ञान के प्रतिष्ठित एवं वृद्धिङ्गत होने पर उस प्राणी का झुकाव (नति) होता है। झुकाव होने से उसकी गति (संसार की तरफ बढ़ना) होने लगती है। इस गति से उस का संसार में आवागमन बनने लगता है। इस आवागमन के फलस्वरूप उस के च्युति एवं नाश होने लगते हैं। इस आवागमन, च्युति एवं नाश की परम्परा से भविष्य में जाति, जरा मरण, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास (चिन्ता) उत्पन्न होने लगते हैं। यों इस समस्त **दुःखस्कन्ध** का समुदय हो जाता है।

''दूसरी स्थिति में, भिक्षुओ! जब वह प्राणी न कोई चिन्तन करे, न कोई सङ्कल्प; परन्तु उस की किसी न किसी कर्म में प्रवृत्ति होती रहती है, ऐसी स्थिति में वह प्रवृत्ति भी

विञ्ञाणस्स ठितिया। आरम्मणे सति पतिट्ठा विञ्ञाणस्स होति। तस्मिं पतिट्ठिते विञ्ञाणे विरूळ्हे नति होति। नतिया सति आगतिगति होति। आगतिगतिया सति [B.297] चुतूपपातो होति। चुतूपपाते सति आयतिं जातिजरामरणं सोकपरिदेव-दुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"यतो च खो, भिक्खवे, नो चेव चेतेति नो च पकप्पेति नो च अनुसेति, आरम्मणमेतं न होति विञ्ञाणस्स ठितिया। आरम्मणे असति पतिट्ठा विञ्ञाणस्स न होति। तदप्पतिट्ठिते विञ्ञाणे अविरूळ्हे नति न होति। नतिया असति आगतिगति न होति। आगतिगतिया असति चुतूपपातो न होति। चुतूपपाते असति आयतिं जाति जरामरणं सोकपरिदेवदुक्ख-दोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति॥ ●

कळारखत्तियवग्गो चतुत्थो।

तस्सुद्दानं

[N.58, R.68] भूतमिदं कळारं च, दुवे च ञाणवत्थूनि।
अविज्जापच्चया च द्वे, नतुम्हा चेतना तयो ति॥ ●

विज्ञान की प्रतिष्ठा का आलम्बन बन जाती है। इस तरह विज्ञान के प्रतिष्ठित एवं वृद्धिङ्गत होने पर उस प्राणी का झुकाव होने लगता है। इस झुकाव से उस का संसार में आवागमन होने लगता है। इस आवागमन से....पूर्ववत्....समुदय हो जाता है।

"परन्तु भिक्षुओ! जब वह न कुछ चिन्तन करता है, न सङ्कल्प करता है; न उसकी किसी कर्म में प्रवृत्ति होती है, तब उसके विज्ञान का कोई आलम्बन नहीं बन पाता। ऐसा आलम्बन न बन पाने से विज्ञान की प्रतिष्ठा या वृद्धि न होने के कारण, उसका कहीं झुकाव नहीं होता।....पूर्ववत्....दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है"॥ ●

कडारक्षत्रियवर्ग तृतीय समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. भूत, कडारक्षत्रिय, ३. ज्ञानवस्तु, ४. द्वितीय ज्ञानवस्तु, ५. प्रथम अविद्याप्रत्यय, ६. द्वितीय अविद्याप्रत्यय, ७. नतुम्ह, ८. प्रथम चेतना, ९. द्वितीय चेतना एवं १०. तृतीय चेतनासूत्र॥

५. गहपतिवग्गो पञ्चमो

४१. पठमपञ्चवेरभयसुत्तं

४२. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अनाथपिण्डिकं गहपतिं भगवा एतदवोच—

"यतो खो, गहपति, अरियसावकस्स पञ्च भयानि वेरानि वूपसन्तानि होन्ति, चतूहि च सोतापत्तियङ्गेहि समन्नागतो होति, अरियो चस्स ञायो पञ्ञाय सुदिट्ठो होति सुप्पटिविद्धो, सो आकङ्खमानो अत्तना व अत्तानं ब्याकरेय्य—'खीणनिरयोम्हि खीण-तिरच्छानयोनि खीणपेत्तिविसयो खीणापायदुग्गतिविनिपातो, सोतापन्नोहमस्मि अवि-निपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो' ति।

"कतमानि पञ्च भयानि वेरानि वूपसन्तानि होन्ति? यं, गहपति, [B.298] पाणातिपाती पाणातिपातपच्चया दिट्ठधम्मिकं पि भयं वेरं पसवति, सम्परायिकं पि भयं वेरं पसवति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति, पाणातिपाता पटिविरतस्स एवं तं भयं वेरं वूपसन्तं होति।

---

५. गृहपतिवर्ग

४१. पञ्चवैरभयसूत्र : : पांच वैर-भयों की शान्ति

४२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। तब अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँच कर, भगवान् को प्रणाम कर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान् ने यों उपदेश किया—

"क्योंकि, गृहपति! आर्यश्रावक के पाँच वैर-भय (जिन के कारण वैर होने से भय उत्पन्न होता है) शान्त हुए रहते हैं, चार स्रोतआपत्ति अङ्गों से वह समन्वित रहता है, उस के द्वारा आर्यज्ञान प्रज्ञा के सहारे से भली भाँति देख तथा समझ लिया गया होता है। तब वह चाहे तो स्वयं को स्वयं ही यों घोषित कर सकता है—'मेरा नरकपात क्षीण हो चुका, मेरा तिर्यग्योनिगमन या प्रेतयोनिगमन भी समाप्त हो चुका; क्योंकि अब मैं स्रोतआपन्न हो चुका हूँ, अब मैं धर्ममार्ग से च्युत नहीं हो सकता, परमज्ञान को प्राप्त कर लेना अब मेरे लिये निश्चित है'।

"उस के कौन से पाँच वैरभय शान्त हुए रहते हैं? गृहपति! जिस किसी प्राणातिपाती (हिंसक) को प्राणातिपात के कारण पारलौकिक भययुक्त वैर प्रसूत होता है, या उस (प्राणातिपात) के कारण वह दुःख एवं दौर्मनस्य का अनुभव करता है—ऐसा वह भययुक्त वैर शान्त हुआ रहता है। (१)

"यं, गहपति, अदिन्नादायी अदिन्नादानपच्चया दिट्ठधम्मिकं पि भयं वेरं पसवति, सम्परायिकं पि भयं वेरं पसवति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति, अदिन्नादाना पटिविरतस्स एवं तं भयं वेरं वूपसन्तं होति।

"यं, गहपति, कामेसुमिच्छाचारी कामेसुमिच्छाचारपच्चया दिट्ठधम्मिकं पि भयं [R.69] वेरं पसवति, सम्परायिकं पि भयं वेरं पसवति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतस्स एवं तं भयं वेरं वूपसन्तं होति।

"यं, गहपति, मुसावादी मुसावादपच्चया दिट्ठधम्मिकं पि भयं वेरं पसवति, [N.59] सम्परायिकं पि भयं वेरं पसवति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति, मुसावादा पटिविरतस्स एवं तं भयं वेरं वूपसन्तं होति।

"यं, गहपति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी सुरामेरयमज्जपमादट्ठानपच्चया दिट्ठ-धम्मिकं पि भयं वेरं पसवति, सम्परायिकं पि भयं वेरं पसवति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतस्स एवं तं भयं वेरं वूपसन्तं होति। इमानि पञ्च भयानि वेरानि वूपसन्तानि होन्ति। (१)

"कतमेहि चतूहि सोतापत्तियङ्गेहि समन्नागतो होति? इध, गहपति,

"गृहपति! जो न दिये हुए को (चौरी से) लेने वाला प्राणी उस अदत्त के ग्रहण के कारण ऐहलौकिक (राजदण्ड आदि) भययुक्त वैर प्राप्त करता है, उसके कारण चैतसिक दु:ख अनुभव करता है; इस अदत्तादान के न करने पर उस का यह भययुक्त वैर शान्त हुआ रहता है। (२)

"गृहपति! जो कामभोगों में मिथ्या रमण (व्यभिचार) के कारण ऐहलौकिक भययुक्त वैर प्राप्त करता है, वह पारलौकिक भययुक्त वैर भी प्राप्त करता है; परन्तु कामभोगों के मिथ्या रमण से दूर रहने वाले का यह भययुक्त वैर शान्त रहता है। (३)

"जो, गृहपति, मृषावादी (असत्यवादी) मृषावाद के कारण ऐहलौकिक भययुक्त वैर प्राप्त करता है, पारलौकिक भय प्राप्त करता है, उसके कारण चैतसिक दु:ख दौर्मनस्य प्राप्त करता है, ऐसा भययुक्त वैर मृषावाद से दूर रहने वाले का पूर्णत: शान्त रहता है। (४)

"तथा गृहपति! जो आर्यस्रावक सुरा, मैरेय, मद्य आदि प्रमादस्थानों में बैठने वाला हो, वह उन प्रमादस्थानों के सेवन के कारण ऐहलौकिक एवं पारलौकिक भययुक्त वैर प्राप्त करता है, चैतसिक दु:ख दौर्मनस्य का अनुभव करता है, वह भययुक्त वैर सुरा मैरेय आदि प्रमादस्थानों से विरत रहने वाले का पूर्णत: शान्त रहता है॥ (५)

"यों ये पाँचों भययुक्त वैर पूर्णत: शान्त कहलाते हैं।

(२) "फिर वह आर्यश्रावक किन स्रोतआपत्ति अङ्गों से युक्त कहलाता है? यहाँ,

अरियसावको बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति।

"धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति।

"सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—'सुप्पटिपन्नो भगवतो [B.299, R.70] सावकसङ्घो, उजुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, ञायपप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, सामीचिप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला, एस भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति।

"अरियकन्तेहि सीलेहि समान्नागतो होति अखण्डेहि अच्छिद्दहि असबलेहि अकम्मासेहि भुजिस्सेहि विञ्ञुप्पसत्थेहि अपरामट्ठेहि समाधिसंवत्तनिकेहि। इमेहि चतूहि सोतापत्तियङ्गेहि समन्नागतो होति। (२)

"कतमो चस्स अरियो ञायो पञ्ञाय सुदिट्ठो होति सुप्पटिविद्धो? इध, गहपति,

---

गृहपति! कोई आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति इस तरह अचल श्रद्धालु होता है—'वे भगवान् अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध, विद्याचरणसम्पन्न, सुगतिप्राप्त, लोकविद्, अद्वितीय, पुरुषों को अनुशासित रखनेवाले, देवता और मनुष्यों के सत्पथप्रदर्शक हैं'। (१)

"धर्म के प्रति यों अचल श्रद्धालु होता है—'भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म स्वाख्यात है, इसी जन्म में फल देने वाला है, तथा विलम्ब के विना ही (तत्काल) फल देने वाला है, लोगों को बुला बुलाकर दिखाया जाने वाला (एहिपस्सिक) है, विज्ञ जनों द्वारा अपने हृदय में (प्रत्यात्म) अनुभव किया जाने वाला है'। (२)

"सङ्घ के प्रति यों अचल श्रद्धालु होता है—'भगवान् का यह शिष्यसङ्घ सन्मार्ग पर आरूढ है, सरल मार्ग पर आरूढ है, ज्ञानमार्ग पर आरूढ है, भली भाँति शोधित मार्ग पर आरूढ है, यह सङ्घ पुरुषों के चार युग्मों में विभक्त है, इस तरह इस में आठ प्रकार के पुरुष दीक्षित हैं। यही भगवान् का श्रावकसङ्घ है। यह (भोजनहेतु) निमन्त्रण करने योग्य है, सत्कार करने योग्य है, दान देने योग्य है, प्रणाम करने योग्य है, यह इस लोक में अद्वितीय पुण्यक्षेत्र है। अर्थात् इसको दान करना अत्यधिक पुण्य फलप्रद है'। (३)

"यह आर्यश्रावक आर्यजनों को प्रिय लगने वाले सदाचार से सम्पन्न है, इसका यह शील (सदाचार) अखण्ड, छिद्ररहित, निर्मल, निर्दोष, सभी विकारों से दूर, विद्वानों द्वारा प्रशस्त तथा समाधि (चित्तवृत्तिनिरोध) के अनुकूल है। (४)

अरियसावको पटिच्चसमुप्पादञ्ञेव साधुकं योनिसो मनसि करोति—'इति इमस्मिं [N.60] सति इदं होति, इमस्मिं असति इदं न होति; इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति, इमस्स निरोधा इदं निरुज्झति। यदिदं अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविराग-निरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति। अयमस्स अरियो ञायो पञ्ञाय सुदिट्ठो होति सुप्पटिविद्धो। (३)

"यतो खो, गहपति, अरियसावकस्स इमानि पञ्च भयानि वेरानि वूपसन्तानि होन्ति, इमेहि चतूहि सोतापत्तियङ्गेहि समन्नागतो होति, अयं चस्स अरियो ञायो पञ्ञाय सुदिट्ठो होति सुप्पटिविद्धो, सो आकङ्खमानो अत्तना व अत्तानं ब्याकरेय्य—'खीणनिरयोम्हि खीणतिरच्छानयोनि खीणपेत्तिविसयो खीणापायदुग्गतिविनिपातो, सोतापन्नोहमस्मि अविनिपात-धम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो''' ति॥ •

४२. दुतियपञ्चवेरभयसुत्तं

४३. ...सावत्थियं विहरति। "यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स पञ्च भयानि [R.71, B.300] वेरानि वूपसन्तानि होन्ति, चतूहि च सोतापत्तियङ्गेहि समन्नागतो होति,

---

(३) "प्रज्ञा से भली भाँति देखा तथा जान गया यह आर्यज्ञान क्या है?

"यहाँ, गृहपति, कोई आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त को यों भली भाँति मन में बैठा लेता है—इस (कारण) के होने पर यह (कार्य) होता है तथा इस (कारण) के न होने पर यह (कार्य) नहीं होता; या इस (कारण) के उत्पन्न होने पर यह (कार्य) उत्पन्न होता है और इस (कारण) के निरुद्ध होने पर यह (कार्य) भी निरुद्ध हो जाता है। जैसे—अविद्या के कारण संस्कार उत्पन्न होते हैं, संस्कारों के कारण विज्ञान....पूर्ववत्....यों इस समस्त दु:खस्कन्ध का समुदय (उत्पाद) होता है। तथा अविद्या के निरोध से समस्त संस्कारों का निरोध, संस्कारों के निरोध से विज्ञान का निरोध....पूर्ववत्....यों इस समस्त दु:खस्कन्ध का निरोध हो जाता है।

"इस तरह यह आर्यज्ञान प्रज्ञा से भली भाँति देखा तथा जाना गया कहलाता है।

"क्योंकि, भिक्षुओ! इस आर्यश्रावक के (१) ये पाँच भययुक्त वैर शान्त हुए रहते हैं, (२) चार स्रोतआपत्ति अङ्गों से यह समन्वित रहता है, तथा (३) इसका आर्यज्ञान प्रज्ञा के द्वारा भली भाँति देखा गया तथा जाना गया होता है, अत: वह चाहे तो अपने विषय में स्वयं यह घोषित कर सकता है—'मेरा नरकपात क्षीण हो चुका है....पूर्ववत्....परम ज्ञान प्राप्त कर लेना सुनिश्चित है' "॥ •

अरियो चस्स ञायो पञ्ञाय सुदिट्ठो होति सुप्पटिविद्धो, सो आकङ्खमानो अत्तना व अत्तानं ब्याकरेय्य—'खीणनिरयोम्हि...पे०...अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो' ति।

"कतमानि पञ्च भयानि वेरानि वूपसन्तानि होन्ति? यं, भिक्खवे, पाणातिपाती ...पे०...यं, भिक्खवे, अदिन्नादायी...पे०...यं, भिक्खवे, कामेसुमिच्छाचारी...यं, भिक्खवे, मुसावादी...यं, भिक्खवे, सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी...पे०...इमानि पञ्च भयानि वेरानि वूपसन्तानि होन्ति। (१)

"कतमेहि चतूहि सोतापत्तियङ्गेहि समन्नागतो होति? इध, भिक्खवे, अरियसावको बुद्धे...पे०...धम्मे...सङ्घे...अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागतो होति। इमेहि चतूहि सोतापत्तियङ्गेहि समन्नागतो होति। (२)

"कतमो चस्स अरियो ञायो पञ्ञाय सुदिट्ठो होति सुप्पटिविद्धो? इध, भिक्खवे, अरियसावको पटिच्चसमुप्पादञ्ञेव साधुकं योनिसो मनसि करोति [N.61] ...पे०... अयमस्स अरियो ञायो पञ्ञाय सुदिट्ठो होति सुप्पटिविद्धो। (३)

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमानि पञ्च भयानि वेरानि वूपसन्तानि होन्ति, इमेहि चतूहि सोतापत्तियङ्गेहि समन्नागतो होति, अयं चस्स अरियो ञायो पञ्ञाय सुदिट्ठो होति सुप्पटिविद्धो, सो आकङ्खमानो अत्तना व अत्तानं ब्याकरेय्य—'खीण-निरयोम्हि खीणतिरच्छानयोनि खीणपेत्तिविसयो खीणापायदुग्गतिविनिपातो, सोता-पन्नोहमस्मि अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ ●

---

४२. द्वितीय पञ्चवैरभयसूत्र : : पाँच वैरभयों की शान्ति

४३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! क्योंकि आर्यश्रावक के ये भययुक्त पाँच वैर शान्त हुए रहते हैं....पूर्ववत्....परम ज्ञान प्राप्त कर लेना सुनिश्चित है।

(१) "कौन से पाँच भययुक्त वैर शान्त हुए रहते हैं?....पूर्ववत्....ये पाँच भययुक्त वैर शान्त हुए रहते हैं।

(२) "किन चार स्रोतआपत्ति अङ्गों से आर्यश्रावक समन्वित रहता है?.... पूर्ववत्....।

(३) "प्रज्ञा से भली भाँति देखा तथा जाना गया आर्य ज्ञान क्या है?....पूर्ववत्....।

"क्योंकि, भिक्षुओ! आर्यश्रावक के ये पाँच भययुक्त वैर शान्त हुए रहते हैं, चार स्रोतआपत्ति अङ्गों से वह समन्वित रहता है, प्रज्ञा से इसका आर्यज्ञान प्रज्ञा से भली भाँति देखा सुना गया रहता है अत: यह अपने विषय में यह घोषणा करने का अधिकारी हो जाता है कि....पूर्ववत्....परम ज्ञान प्राप्त होना सुनिश्चित है"॥ ●

४३. दुक्खसुत्तं

४४. ...सावत्थियं विहरति। ''दुक्खस्स, भिक्खवे, समुदयं च अत्थङ्गमं च [R.72] देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''कतमो च, भिक्खवे, दुक्खस्स समुदयो? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। अयं खो, भिक्खवे, दुक्खस्स समुदयो।

[B.301] ''सोतं च पटिच्च सद्दे च उप्पज्जति सोतविञ्ञाणं...पे०...घानं च पटिच्च गन्धे च...पे०...जिव्हं च पटिच्च रसे च...पे०...कायं च पटिच्च फोट्ठब्बे च...पे०...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। अयं खो, भिक्खवे, दुक्खस्स समुदयो।

''कतमो च, भिक्खवे, दुक्खस्स अत्थङ्गमो? चक्खुं च पटिच्च रूपे च [N.62] उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो; भवनिरोधा जातिनिरोधो; जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति। अयं खो, भिक्खवे, दुक्खस्स अत्थङ्गमो। "

---

४३. दुःखसूत्र : : दुख और उसका लय (नाश)

४४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें दुःख की उत्पत्ति एवं नाश के विषय में उपदेश करूँगा। उसे सुनो, तथा सुन कर ठीक से अपने मन में बैठा लो।'''' ऐसा ही होगा, भन्ते!''—ऐसा कहते हुए भिक्षुओं ने भगवान् का आदेश स्वीकार किया। भगवान् यों उपदेश करने लगे—

''भिक्षुओ! यह 'दुःख की उत्पत्ति' क्या है? चक्षुरिन्द्रिय और उस के विषयभूत रूप का सहारा लेकर चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। उन तीनों की सङ्गति ही 'स्पर्श' कहलाती है। इस स्पर्श के कारण वेदना एवं वेदना के कारण तृष्णा (सांसारिक विषयों में) उत्पन्न होती है। यों यह भिक्षुओ! 'दुःख की उत्पत्ति' कहलाती है।

''और, भिक्षुओ! यह 'दुःख का नाश' क्या है? चक्षु और रूप की अपेक्षा से चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। इन तीनों की सङ्गति 'स्पर्श' कहलाती है। स्पर्श के कारण 'वेदना' वेदना के कारण 'तृष्णा' उत्पन्न होती है। उस तृष्णा को सर्वथा दूर हटा देने से 'उपादान' (सांसारिक विषयों का ग्रहण) का निरोध हो जाता है। उपादान के निरोध से 'भव' का निरोध, भव के निरोध से 'जाति' का निरोध, जाति के निरोध से जरा मरण

"सोतं च पटिच्च सद्दे च उप्पज्जति सोतविञ्ञाणं...पे०...घानं च पटिच्च गन्धे च...पे०...जिव्हं च पटिच्च रसे च...पे०...कायं च पटिच्च फोट्ठब्बे च...पे०...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधा उपादाननिरोधो; उपादान-निरोधा भवनिरोधो; भवनिरोधा जातिनिरोधो; जातिनिरोधा जरामरणं सोक- [R.73] परिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति। अयं खो, भिक्खवे, दुक्खस्स अत्थङ्गमो" ति। ●

४४. लोकसुत्तं

४५. ...सावत्थियं विहरति। "लोकस्स, भिक्खवे, समुदयं च अत्थङ्गमं च देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"कतमो च, भिक्खवे, लोकस्स समुदयो? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा; तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो; भवपच्चया जाति; जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। अयं खो, भिक्खवे, लोकस्स समुदयो।

"सोतं च पटिच्च सद्दे च...पे०...घानं च पटिच्च गन्धे च...जिव्हं च [B.302] पटिच्च रसे च...कायं च पटिच्च फोट्ठब्बे च...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना...पे०...जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। अयं खो, भिक्खवे, लोकस्स समुदयो।

शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य एवं उपायास (पश्चात्ताप) का निरोध हो जाता है। यों, इस समस्त दुःखस्कन्ध का नाश हो जाता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—'दुःख का नाश'।

"इसी तरह श्रोत्रेन्द्रिय एवं उस के विषय शब्द के सहारे से श्रोत्रविज्ञान उत्पन्न होता है; घ्राणेन्द्रिय एवं गन्ध के सहारे से घ्राणविज्ञान उत्पन्न होता है, जिह्वेन्द्रिय एवं रस के सहारे से जिह्वाविज्ञान, काय एवं स्प्रष्टव्य के सहारे से कायविज्ञान, मन तथा उसके विषय के सहारे से मनोविज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों की सङ्गति स्पर्श....पूर्ववत्....तृष्णा के सर्वथा मूलोच्छेद से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से....पूर्ववत्....उपायास का निरोध हो जाता है। इस तरह समस्त दुःखसमूह का निरोध सम्भव है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—'दुःख का नाश' "॥ ●

४४. लोकसूत्र : : लोक की उत्पत्ति तथा उसका नाश

४५. **श्रावस्ती** में साधना के समय....। "भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें लोक की उत्पत्ति

"कतमो च, भिक्खवे, लोकस्स अत्थङ्गमो? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भव- [N.63] निरोधो...पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति। अयं खो, भिक्खवे, लोकस्स अत्थङ्गमो।

[R.74] "सोतं च पटिच्च सद्दे च...पे०...घानं च पटिच्च गन्धे च...जिव्हं च पटिच्च रसे च... कायं च पटिच्च फोट्ठब्बे च...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति। अयं खो, भिक्खवे, लोकस्स अत्थङ्गमो" ति॥ •

४५. ञातिकसुत्तं

४६. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा ञातिके विहरति गिञ्जकावसथे। अथ खो भगवा रहोगतो पटिसल्लानो इमं धम्मपरियायं अभासि—

"चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा; तण्हापच्चया उपादानं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"सोतं च पटिच्च सद्दे च...पे०...घानं च पटिच्च गन्धे च...जिव्हं च पटिच्च रसे च...कायं च पटिच्च फोट्ठब्बे च...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा; तण्हापच्चया उपादानं...पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

[B.303] "चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधा

तथा उसके नाश के विषय में बताऊँगा....पूर्ववत्....। *[पूर्व सूत्र में आये 'दुःख' शब्द के स्थान 'लोक' शब्द लगा कर इस सूत्र का विस्तार कर लें।]* •

४५. ञातिकसूत्र : : प्रतीत्यसमुत्पादसिद्धान्त

४६. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **ञातिका** के गिञ्जकावसथ विहार साधनाहेतु विराजमान थे। तब भगवान् ने एकान्त में ध्यानस्थ होकर इस धर्मपरियाय का यों उपदेश किया—

उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति।

"सोतं च पटिच्च सद्दे च...पे०...मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति [R.75, N.64] मनोविञ्ञाणं। तिण्णं सङ्गति फस्सो। फस्सपच्चया वेदना; वेदनापच्चया तण्हा। तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो...पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति।

४७. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु भगवतो उपस्सुति ठितो होति। अद्दसा खो भगवा तं भिक्खुं उपस्सुति ठितं। दिस्वान तं भिक्खुं एतदवोच—"अस्सोसि नो त्वं, भिक्खु, इमं धम्मपरियायं" ति?

"एवं, भन्ते" ति।

"उग्गण्हाहि त्वं, भिक्खु, इमं धम्मपरियायं; परियापुणाहि त्वं, भिक्खु, इमं धम्मपरियायं; धारेहि त्वं, भिक्खु, इमं धम्मपरियायं। अत्थसंहितो अयं, भिक्खु, धम्मपरियायो आदिब्रह्मचरियको" ति॥

४६. अञ्ञतरब्राह्मणसुत्तं

४८. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो अञ्ञतरो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—

चक्षुरिन्द्रिय तथा उसके विषय रूप की अपेक्षा से उत्पन्न होता है चक्षुर्विज्ञान.... पूर्ववत्....दुःखस्कन्ध का निरोध होता है।

४७. उस समय कोई भिक्षु भगवान् के समीप ही खड़ा हुआ उनका यह उपदेश सुन रहा था। भगवान् ने उसको पास खड़े हुए देख लिया। तब उन्होंने उससे पूछा— "भिक्षु! क्या तुमने मेरे द्वारा उपदिष्ट यह धर्मप्रवचन सुना? भिक्षु ने उत्तर दिया—"हाँ, भन्ते!" तब भगवान् ने उससे कहा—

"भिक्षु! तूँ इसे अपने चित्त में भली भाँति बैठा ले, तथा इसका अभ्यास कर। अभ्यास करते हुए तूँ इसे धारण कर ले; क्योंकि इस स्थिति में पहुँचा हुआ यह धर्मोपदेश तेरे लिये सार्थक होगा, साथ ही यह तेरी धर्मसाधना में भी सहायक होगा"॥

४६. अन्यतरब्राह्मणसूत्र : : मध्यम मार्ग का उपदेश

४८. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। उस समय कोई ब्राह्मण भगवान् के पास आया। आकर भगवान् से कुशल मङ्गल पूछ कर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे हुए उस ब्राह्मण से भगवान् से यों पूछा—"भो गौतम! क्या जो करता है वही उस कर्म का फल भोगता है?"

"किं नु खो, भो गोतम, सो करोति सो पटिसंवेदयती" ति?

"सो करोति सो पटिसंवेदयती' ति खो, ब्राह्मण अयमेको अन्तो"।

[R.76] "किं पन, भो गोतम, अञ्ञो करोति, अञ्ञो पटिसंवेदयती" ति?

"अञ्ञो करोति, अञ्ञो पटिसंवेदयती" ति खो, ब्राह्मण, अयं दुतियो अन्तो।

[B.304] एते ते, ब्राह्मण, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति— 'अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति।

[N.65] एवं वुत्ते, सो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ •

४७. जाणुस्सोणिसुत्तं

४९. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—

"ब्राह्मण, यह कहना कि जो करता है वही भोगता है; यह वाद का एक अन्त (पक्ष) है।"

"भो गौतम! तो क्या कर्म का कर्ता कोई अन्य है तथा उसके फल का भोक्ता कोई अन्य है?"

"ब्राह्मण, यह कहना कि कर्ता अन्य है तथा फलभोक्ता कोई अन्य है; यह वाद का दूसरा अन्त (पक्ष) है। परन्तु, ब्राह्मण, तथागत इस वाद के दोनों ही पक्षों को छोड़, इन दोनों के मध्य का दूसरा ही निष्कर्ष घोषित करते हैं; जैसे—'अविद्या के कारण संस्कार उद्भूत होते हैं, संस्कारों के कारण विज्ञान उत्पन्न होता है....पूर्ववत्....यों इस समस्त सांसारिक दुःखस्कन्ध का उद्भव होता है। तथा अविद्या का साधना द्वारा मूलतः उच्छेद कर देने पर उन संस्कारों का निरोध हो जाता है, संस्कारों के निरोध से....पूर्ववत्....इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध होना भी सम्भव है'।"

भगवान् द्वारा यों समझाये जाने पर, वह ब्राह्मण भगवान् से यों बोला—"आश्चर्य है, भो गौतम!....पूर्ववत्....आज से आप गौतम मुझको, मेरे प्राण रहने तक (जीवनपर्यन्त), अपना विनीत शरणागत उपासक समझें॥" •

४७. जानुश्रोणिसूत्र : : मध्यम मार्ग का उपदेश

४९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। तब कोई जानुश्रोणि नामक ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा....और भगवान् से यों पूछने लगा—

"किं नु खो, भो, गोतम, सब्बमत्थी" ति? "'सब्बमत्थी' ति खो, ब्राह्मणो, अयमेको अन्तो"।

"किं पन, भो गोतम, सब्बं नत्थी" ति? "'सब्बं नत्थी' ति खो, ब्राह्मण, अयं दुतियो अन्तो। एते ते, ब्राह्मण, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति—'अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती'" ति।

एवं वुत्ते, जाणुस्सोणि ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं भो [R.77] गोतम...पे०... पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ ●

४८. लोकायतिकसुत्तं

५०. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो लोकायतिको ब्राह्मणो येन भगवा...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो लोकायतिको ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—

"किं नु खो, भो गोतम, सब्बमत्थी" ति?

"भो गौतम! लोक में इस दृश्यमान पदार्थसमूह की परमार्थत: कोई सत्ता है (सब्बमत्थि)?"

"ब्राह्मण! तुम्हारा कथन (सब्बमत्थि) वाद का एक पक्ष हो सकता है।"

"तो क्या, भो गौतम! 'यह दृश्यमान पदार्थसमूह परमार्थत: नहीं है (न सब्बमत्थि) ऐसा है?"

"हाँ, ब्राह्मण! तुम्हारा यह कथन भी वाद का एक पक्ष है; परन्तु तथागत इस वाद का मध्यम मार्ग से यों निर्णय करते हैं, जैसे—'अविद्या के कारण संस्कार उद्भूत होते हैं, संस्कारों के कारण विज्ञान....पूर्ववत्....यों इस समस्त दु:खस्कन्ध का समुदय (उत्पत्ति) होता है। तथा उस अविद्या का मूलत: उच्छेद होने से संस्कारों का निरोध हो जाता है, संस्कारों के निरोध से विज्ञान का निरोध....यों इस समस्त दु:खस्कन्ध का निरोध हो जाता है।"

ऐसा कहे जाने पर जानुश्रोणि ब्राह्मण ने कहा....शरणागत उपासक समझें॥ ●

४८. लोकायतिकसूत्र : : लौकिक मार्गों का त्याग

५०. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। उस समय कोई लौकायतिक (भौतिकवादी) ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे....पूर्ववत्....यह बोला—"क्या, भो गौतम! इस संसार में जो कुछ दिखायी दे रहा है वह परमार्थ रूप से सत्य है?"

"'सब्बमत्थी' ति खो, ब्राह्मण, जेट्ठमेतं लोकायतं"।

[B.305] "किं पन, भो गोतम, सब्बं नत्थी" ति?

"'सब्बं नत्थी' ति खो, ब्राह्मण, दुतियमेतं लोकायतं"।

"किं नु खो, भो गोतम, सब्बमेकत्तं" ति?

[N.66] "'सब्बमेकत्तं' ति खो, ब्राह्मण, ततियमेतं लोकायतं"।

"किं पन, भो गोतम, सब्बं पुथुत्तं" ति?

"'सब्बं पुथुत्तं' ति खो, ब्राह्मण, चतुत्थमेतं लोकायतं। एते ते ब्राह्मण, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति—'अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं ...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति।

एवं वुत्ते, लोकायतिको ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम ...पे०...अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥

४९. अरियसावकसुत्तं

५१. ...सावत्थियं विहरति। "न, भिक्खवे, सुतवतो अरियसावकस्स एवं

"ब्राह्मण! ऐसा कहना लौकायतिकों का परम सिद्धान्त है।"

"तो क्या....वह सब कुछ परमार्थ रूप से नहीं है?"

"यह एक दूसरा सिद्धान्त है।"

"क्या यह सब अद्वैत है?"

"यह एक तीसरा सिद्धान्त है।"

"क्या यह सब नाना है?"

"यह भी लौकायतिकों का ही जाना माना सिद्धान्त है। ब्राह्मण! ये चारों ही बातें किसी वाद के चार अन्त (कोण) हो सकते हैं। तथागत इन सभी को न मानते हुए इसी बात को यों कहकर स्पष्ट कह कर स्पष्ट करते हैं—'अविद्या के कारण संस्कार होते हैं, संस्कार के कारण विज्ञान....यों इस समस्त दुःखस्कन्ध का समुदय होता है। इसी तरह उस अविद्या का साधना द्वारा समूल उच्छेद कर देने पर संस्कार का निरोध तथा उसके निरोध से विज्ञान का निरोध....यों इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है।"

यों कहे जाने पर वह लौकायतिक ब्राह्मण भगवान् के उपदेश से प्रभावित होकर जीवनपर्यन्त उनका उपासक हो गया॥

४९. प्रथम आर्यश्रावकसूत्र : : आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद के प्रति असन्दिग्ध

५१. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! गुरुमुख से धर्मश्रुत आर्यश्रावक

होति—'किं नु खो किस्मिं सति किं होति, किस्सुप्पादा किं उप्पज्जति? किस्मिं [R.78] सति सङ्खारा होन्ति, किस्मिं सति विञ्ञाणं होति, किस्मिं सति नामरूपं होति, किस्मिं सति सळायतनं होति, किस्मिं सति फस्सो होति, किस्मिं सति वेदना होति, किस्मिं सति तण्हा होति, किस्मिं सति उपादानं होति, किस्मिं सति भवो होति, किस्मिं सति जाति होति, किस्मिं सति जरामरणं होती' ति?

''अथ खो, भिक्खवे, सुतवतो अरियसावकस्स अपरप्पच्चया ञाणमेवेत्थ होति— 'इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति। अविज्जाय सति [B.306] सङ्खारा होन्ति; सङ्खारेसु सति विञ्ञाणं होति; विञ्ञाणे सति नामरूपं होति; नामरूपे सति सळायतनं होति; सळायतने सति फस्सो होति; फस्से सति वेदना होति; वेदनाय सति तण्हा होति; तण्हाय सति उपादानं होति; उपादाने सति भवो होति; भवे सति जाति होति; जातिया सति जरामरणं होती' ति। सो एवं पजानाति—'एवमयं लोको समुदयती' ति।

''न, भिक्खवे, सुतवतो अरियसावकस्स एवं होति—'किं नु खो किस्मिं असति किं न होति, किस्स निरोधा किं निरुज्झति? किस्मिं असति सङ्खारा न होन्ति, [N.67] किस्मिं असति विञ्ञाणं न होति, किस्मिं असति नामरूपं न होति, किस्मिं असति सळायतनं न होति, किस्मिं असति फस्सो न होति, किस्मिं असति वेदना न होति,

---

को यह सन्देह नहीं होता—'किसी के होने पर क्या होता है? या किसी के होने पर कोई उत्पन्न होता है? किसके होने पर किसका उत्पाद होता है? किसके होने पर संस्कार होते हैं? किसके होने पर षडायतन होते हैं? किसके होने पर स्पर्श होता है? किसके होने पर वेदना होती है? किसके होने पर तृष्णा होती है? किसके होने पर उपादान होता है? किसके होने पर भव होता है? किसके होने पर जाति एवं जरामरण होते हैं?'

''तथा, भिक्षुओ! वैसे आर्यश्रावक को यह (सन्देह) भी नहीं होता—'क्या किसी के न होने पर क्या नहीं भी होता है? तथा किस के निरोध से क्या निरुद्ध हो जाता है? किस के न होने पर संस्कार नहीं होते? किस के न होने पर विज्ञान नहीं होता? किस के न होने पर नामरूप नहीं होता? किस के न होने पर षडायतन नहीं होता? किस के न होने पर स्पर्श नहीं होता? किस के न होने पर वेदना नहीं होती? किस के न होने पर तृष्णा नहीं होती? किस के न होने पर उपादान नहीं होता? किस के न होने पर भव नहीं होता? किस के न्न होने पर जाति एवं जरा मरण नहीं होते?'

''भिक्षुओ! उस आर्यश्रावक को दूसरे कारणों (प्रतीत्यसमुत्पाद) से यहाँ यह ज्ञान होता है; जैसे—'इसके न होने पर यह नहीं होता, इसके निरोध से यह निरुद्ध हो जाता है। अविद्या के न होने पर संस्कार नहीं होते, संस्कारों के न होने पर विज्ञान नहीं

किस्मि असति तण्हा न होति, किस्मिं असति उपादानं न होति, किस्मि असति भवो न होति, किस्मि असति जाति न होति, किस्मि असति जरामरणं न होती' ति?

"अथ खो, भिक्खवे, सुतवतो अरियसावकस्स अपरप्पच्चया ञाणमेवेत्थ होति—'इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स निरोधा इदं निरुज्झति। अविज्जाय असति सङ्खारा न होन्ति; सङ्खारेसु असति विञ्ञाणं न होति; विञ्ञाणे असति नामरूपं न होति; नामरूपे असति सळायतनं न होति...पे०...भवो न होति...जाति न होति...जातिया असति जरामरणं न होती' ति। सो एवं पजानाति—'एवमयं लोको निरुज्झती' ति।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावको एवं लोकस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च [R.79] यथाभूतं पजानाति, अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको दिट्ठिसम्पन्नो इति पि...पे०...अमतद्वारं आहच्च तिट्ठति इति पी" ति॥

५०. दुतियअरियसावकसुत्तं

५२. ...सावत्थियं विहरति। "न, भिक्खवे, सुतवतो अरियसावकस्स एवं [B.307] होति—'किं नु खो किस्मि सति किं होति, किस्सुप्पादा किं उप्पज्जति? किस्मिं सति सङ्खारा होन्ति, किस्मिं सति विञ्ञाणं होति, किस्मि सति नामरूपं होति, किस्मिं सति सळायतनं होति, किस्मि सति फस्सो होति, किस्मि सति वेदना होति, किस्मि सति तण्हा होति, किस्मि सति उपादानं होति, किस्मि सति भवो होति, किस्मि सति जाति होति, किस्मि सति जरामरणं होती' ति?

होता, विज्ञान के न होने पर नामरूप नहीं होते, नामरूप के न होने पर षडायतन नहीं होता, षडायतन के न होने पर भव नहीं होता, भव के न होने पर जाति नहीं होती, जाति के न होने पर जरामरण नहीं होते। तब वह जानता है—यह लोक ऐसे निरुद्ध होता है।

"क्योंकि, भिक्षुओ, यह आर्यश्रावक यह जानता है कि यह लोक कैसे उत्पन्न होता है, कैसे निरुद्ध होता है, इसकी यथार्थता जानता है, अतः इस आर्यश्रावक को दृष्टिसम्पन्न भी कहा जा सकता है....पूर्ववत्....उसके सामने अमृत (निर्वाण) का द्वार खुला हुआ सा ही है॥

५०. द्वितीय आर्यश्रावकसूत्र : : आर्यश्रावक को प्रतीत्यसमुत्पाद में सन्देह नहीं

५२. **श्रावस्ती में** विहार के समय....। भिक्षुओ! श्रुतवान् आर्यश्रावक को यह सन्देह नहीं होता कि किस के होने पर क्या होता है? किसकी उत्पत्ति से क्या उत्पन्न होता है? किसके होने पर संस्कार होते हैं? किसके होने पर विज्ञान होता है? किसके होने पर नामरूप होता है? किसके होने पर षडायतन होता है? किसके होने पर स्पर्श होता है?

"अथ खो, भिक्खवे, सुतवतो अरियसावकस्स अपरप्पच्चया ञाणमेवेत्थ होति—'इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति। अविज्जाय सति सङ्खारा होन्ति; सङ्खारेसु सति विञ्ञाणं होति; विञ्ञाणे सति नामरूपं होति; नामरूपे [N.68] सति सळायतनं होति; सळायतने सति फस्सो होति; फस्से सति वेदना होति; वेदनाय सति तण्हा होति; तण्हाय सति उपादानं होति; उपादाने सति भवो होति; भवे सति जाति होति; जातिया सति जरामरणं होती' ति। सो एवं पजानाति—'एवमयं लोको समुदयती' ति।

"न, भिक्खवे, सुतवतो अरियसावकस्स एवं होति—'किं नु खो किस्मिं असति किं न होति, किस्स निरोधा किं निरुज्झति? किस्मिं असति सङ्खारा न होन्ति, किस्मिं असति विञ्ञाणं न होति, किस्मिं असति नामरूपं न होति, किस्मिं असति सळायतनं न होति, किस्मिं असति फस्सो न होति, किस्मिं असति वेदना न होति, किस्मिं असति तण्हा न होति...पे०...उपादानं...भवो...जाति...किस्मिं असति जरामरणं न होती' ति?

"अथ खो, भिक्खवे, सुतवतो अरियसावकस्स अपरप्पच्चया [R.80] ञाणमेवेत्थ होति—'इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स निरोधा इदं निरुज्झति। अविज्जाय असति सङ्खारा न होन्ति; सङ्खारेसु असति विञ्ञाणं न होति; विञ्ञाणे असति नामरूपं न होति; नामरूपे असति सळायतनं न होति....पे०...जातिया असति जरामरणं न होती' ति। सो एवं पजानाति—'एवमयं लोको निरुज्झती' ति।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावको एवं लोकस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च यथाभूतं पजानाति, अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको दिट्ठिसम्पन्नो इति पि,

---

किसके होने पर वेदना होती है? किसके होने पर तृष्णा होती है? किसके होने पर उपादान होता है? किसके होने पर भव....जाति....एवं जरामरण होते हैं?

"तब भिक्षुओ! उस आर्यश्रावक को दूसरे कारणों (प्रतीत्यसमुत्पाद) से यह ज्ञान यों होता है—'इसके होने पर यह होता है, इसकी उत्पत्ति से यह उत्पन्न होता है? अविद्या के होने पर संस्कार होते हैं....पूर्ववत्....जाति जरा मरण होते हैं'— यों वह जानता है कि इस लोक की उत्पत्ति ऐसे होती है।

"भिक्षुओ! उस श्रुतवान् आर्यश्रावक को यह सन्देह नहीं होता—'क्या न होने पर क्या नहीं होता? या किसके निरोध होने पर किसका निरोध होता है? क्या न होने पर संस्कार नहीं होते?....पूर्ववत्....किसके न होने पर जरा मरण नहीं होते?'

"क्योंकि, भिक्षुओ! यह धर्मश्रुत आर्यश्रावक लोक के उत्पाद एवं विनाश को यथार्थ रूप से जानता है अत: यह आर्यश्रावक दृष्टिसम्पन्न (सम्यग्दृष्टि) भी कहलाता है,

[B.308] दस्सनसम्पन्नो इति पि, आगतो इमं सद्धम्मं इति पि, पस्सति इमं सद्धम्मं इति पि, सेक्खेन ञाणेन समन्नागतो इति पि, सेक्खाय विज्जाय समन्नागतो इति पि, धम्मसोतं समापन्नो इति पि, अरियो निब्बेधिकपञ्ञो इति पि, अमतद्वारं आहच्च तिट्ठति इति पी'' ति॥

गहपतिवग्गो पञ्चमो॥

तस्सुद्दानं

द्वे पञ्चवेरभया वुत्ता, दुक्खं लोको च आतिकं।
अञ्ञतरं जाणुस्सोणि च, लोकायतिकेन अट्ठमं।
द्वे अरियसावका वुत्ता, वग्गो तेन पवुच्चती ति॥

दर्शनसम्पन्न भी, यह इस सद्धर्म में प्रविष्ट हो चुका है, यह इस सद्धर्म का साक्षात्कार कर चुका है, यह शैक्ष्य ज्ञान से सम्पन्न है, यह शैक्ष्य विद्या से युक्त है, धर्मस्रोत में पहुँच चुका है, यह आर्य निर्वेधिकप्रज्ञ हो चुका है। इसके सम्मुख अमृत (निर्वाण) का द्वार खुल गया सा ही है''॥

गृहपतिवर्ग पञ्चम समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. पञ्चवैरभय, २. द्वितीय पञ्चवैरभय, ३. दुःख, ४. लोक, ५. आतिक, ६. अन्यतर ब्राह्मणसूत्र, ७. जानुश्रोणि, ८. लौकायतिक, ९. प्रथम आर्यश्रावकसत्र, एवं १०. द्वितीय आर्यश्रावकसूत्र॥

६. दुक्खवग्गो छट्ठो

५१. परिवीमंसनसुत्तं

५३. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ-[N.69] पिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"कित्तावता नु खो, भिक्खवे, भिक्खु परिवीमंसमानो परिवीमंसेय्य सब्बसो सम्मा दुक्खक्खयाया" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा भगवन्नेत्तिका भगवम्पटिसरणा। साधु [R.81] वत, भन्ते, भगवन्तं येव पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती" ति।

"तेन हि, भिक्खवे, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"इध, भिक्खवे, भिक्खु परिवीमंसमानो परिवीमंसति—'यं खो इदं अनेकविधं नानप्पकारकं दुक्खं लोके उप्पज्जति जरामरणं; इदं नु खो दुक्खं किंनिदानं [B.309] किंसमुदयं किंजातिकं किंपभवं? किस्मिं सति जरामरणं होति, किस्मिं असति जरामरणं

---

६. दुःखवर्ग

५१. परिमीमांसासूत्र : : दुःखक्षयहेतु प्रतीत्यसमुत्पाद का मनन

५३. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् **श्रावस्ती** स्थित जेतवन में अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित विहार में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने 'भिक्षुओ' सम्बोधन से भिक्षुओं को अपने पास बुलाया। "भन्ते!" कह कर सभी भिक्षु वहाँ उपस्थित हुए। भगवान् ने उनको यह धर्मोपदेश करते हुए पूछा—"भिक्षुओ! दुःख के समूल नाश के लिये किस तरह और क्या मनन करे?"

भिक्षु बोले—"भगवन्! हमारे धर्मज्ञान के आधार तो आप ही हैं, आप ही हमारे इसमें मार्गदर्शक तथा अधिष्ठाता हैं; अतः अच्छा होता कि भगवान् ही अपने इस प्रश्न का उत्तर हमें समझाते। आपसे सुन कर हम इसे अपने मन में बैठा लेंगे।"

भगवान् ने कहा—"तो सुनो, इसे अच्छी तरह मन में बैठा लो, मैं बताता हूँ।

भिक्षुओं ने कहा—"ठीक है, भन्ते! ऐसा ही होगा।"

भगवान् ने कहा—"यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु विचार करते हुए यों मनन करता है—'यह जो लोक में जरामरण रूप नानाविध दुःख उत्पन्न होता है इस दुःख का क्या निदान (हेतु) है? क्या कारण है? इसका जन्म कैसे होता है? इसका उत्पाद कैसे होता

न होती' ति? सो परिवीमंसमानो एवं पजानाति—'यं खो इदं अनेकविधं नानप्पकारकं दुक्खं लोके उप्पज्जति जरामरणं, इदं खो दुक्खं जातिनिदानं जातिसमुदयं जातिजातिकं जातिप्पभवं। जातिया सति जरामरणं होति, जातिया असति जरामरणं न होती' ति।

"सो जरामरणं च पजानाति, जरामरणसमुदयं च पजानाति, जरामरणनिरोधं च पजानाति, या च जरामरणनिरोधसारुप्पगामिनी पटिपदा तं च पजानाति, तथा पटिपन्नो च होति अनुधम्मचारी; अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु सब्बसो सम्मा दुक्खक्खयाय पटिपन्नो जरामरणनिरोधाय।

"अथापरं परिवीमंसमानो परिवीमंसति—'जाति पनायं किंनिदाना किंसमुदया [N.70] किंजातिका किंपभवा, किस्मिं सति जाति होति, किस्मिं असति जाति न होती' ति? सो परिवीमंसमानो एवं पजानाति—'जाति भवनिदाना भवसमुदया भवजातिका भवप्पभवा; भवे सति जाति होति, भवे असति जाति न होती' ति।

"सो जातिं च पजानाति, जातिसमुदयं च पजानाति, जातिनिरोधं च पजानाति, या च जातिनिरोधसारुप्पगामिनी पटिपदा तं च पजानाति, तथा पटिपन्नो च होति अनुधम्मचारी; अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु सब्बसो सम्मा दुक्खक्खयाय पटिपन्नो जातिनिरोधाय।

है तथा यह किससे उत्पन्न होता है? किसके होने पर जरामरण होता है? किसके न होने पर जरामरण नहीं होता?' यों विचार करता हुआ आगे मनन करता है—'यह इस लोक में अनुभूत होने वाला नानाविध दुःख जाति के कारण होता है, जाति इसकी उत्पत्ति में हेतु है, जाति से यह उद्भूत होता है। जाति के होने पर जरामरण होता है, जाति के न होने पर जरामरण नहीं होता।'

"इस तरह वह साधक जरा मरण को भी भली भाँति जान लेता है, जरामरण समुदय को....जरामरणनिरोध को....जरामरणनिरोध की तरफ पहुँचाने वाले मार्ग (उपाय) को भी जान लेता है, वह धर्मानुसार उस मार्ग का अभ्यास करता है, भिक्षुओ! ऐसा साधक ही उक्त दुःख के समूल नाश के लिये जरामरणनिरोध के उपाय का अभ्यास करता है।

"तदनन्तर, आगे विचार करते हुए मनन करता है—'फिर यह जाति किस कारण से उद्भूत होती है? इसकी उत्पत्ति कैसे होती है? इसके जन्म में क्या कारण है? यह किसके होने पर होती है? किसके न होने पर नहीं होती?' यह मनन करता हुआ जान लेता है कि जाति भवमूलक है, भव से उत्पन्न होती है, भव इसके जन्म में कारण है, अर्थात् भव के होने पर जाति होती है, भव के न होने पर नहीं होती।

"अथापरं परिवीमंसमानो परिवीमंसति—'भवो पनायं किंनिदानो...पे०... उपादानं पनिदं किंनिदानं...तण्हा पनायं किंनिदाना...वेदना...फस्सो...सळायतनं पनिदं किंनिदानं...नामरूपं पनिदं...विञ्ञाणं पनिदं...सङ्खारा पनिमे किंनिदाना किंसमुदया किंजातिका किंपभवा; किस्मिं सती सङ्खारा होन्ति, किस्मिं असति सङ्खारा न [R.82] होन्ती' ति? सो परिवीमंसमानो एवं पजानाति—'सङ्खारा अविज्जानिदाना अविज्जा-समुदया अविज्जाजातिका अविज्जापभवा; अविज्जाय सति सङ्खारा होन्ति, अविज्जाय असति सङ्खारा न होन्ती' ति।

"सो सङ्खारे च पजानाति, सङ्खारसमुदयं च पजानाति, सङ्खारनिरोधं च पजानाति, या च सङ्खारनिरोधसारुप्पगामिनी पटिपदा तं च पजानाति, तथा पटिपन्नो च होति अनुधम्मचारी; अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु सब्बसो सम्मा दुक्खक्खयाय पटिपन्नो सङ्खारनिरोधाय।

"अविज्जागतो यं, भिक्खवे, पुरिसपुग्गलो पुञ्ञं चे सङ्खारं अभिसङ्खरोति, पुञ्ञूपगं होति विञ्ञाणं। अपुञ्ञं चे सङ्खारं अभिसङ्खरोति, अपुञ्ञूपगं होति [B.310] विञ्ञाणं। आनेञ्जं चे सङ्खारं अभिसङ्खरोति आनेञ्जूपगं होति विञ्ञाणं। यतो खो,

---

"इस तरह वह जाति के विषय में भली भाँति जान लेता है....पूर्ववत्....दुःखक्षय के लिये जाति के निरोध का अभ्यास करता है।

"फिर वह इस विषय में आगे विचार करता हुआ यों मनन करता है—'यह भव किस कारण उद्भूत होता है....उपादान....तृष्णा....वेदना....स्पर्श....षडायतन....नामरूप.... विज्ञान....संस्कार किन कारणों से उद्भूत होते हैं....किसके होने पर संस्कार होते हैं तथा किसके न होने पर संस्कार नहीं होते?' यह मनन करते हुए वह जान लेता है—'संस्कार अविद्या के कारण उत्पन्न होते हैं, अविद्या के कारण इनका जन्म होता है, अविद्या ही इनकी मूल है। अतः अविद्या के होने पर संस्कार होते हैं, अविद्या के न होने पर नहीं होते।

"यह मनन करते हुए वह संस्कारों को भली भाँति जान लेता है, संस्कारसमुदय को....संस्कारनिरोध को भली भाँति जान लेता है, संस्कारनिरोधगामी मार्ग को भली भाँति जान कर तदनुसार साधना करता है जब वह इसमें सफल हो जाता है तब भिक्षुओ! वह भिक्षु दुःखक्षयहेतु संस्कारनिरोध के लिये सम्यक्प्रतिपन्न (भलीभाँति मार्गारूढ) हो चुका होता है।

"भिक्षुओ! अविद्या से आकीर्ण पुद्गल जब पुण्यकर्म करता है तो उसके पुण्यमय संस्कारों के कारण उसका विज्ञान भी पुण्योपग (पुण्ययुक्त) हो जाता है तथा जब वह अविद्याग्रस्त हो कर पापमय कर्म करता है तब उसके पापमय संस्कारों के कारण उसका

भिक्खवे, भिक्खुनो अविज्जा पहीना होति विज्जा उप्पन्ना, सो अविज्जाविरागा विज्जुप्पादा नेव पुञ्ञाभिसङ्खारं अभिसङ्खरोति न अपुञ्ञाभिसङ्खारं अभिसङ्खरोति न आनेञ्जाभिसङ्खारं अभिसङ्खरोति। अनभिसङ्खरोन्तो अनभिसञ्चेतयन्तो न किञ्चि लोके उपादियति; अनुपादियं न परितस्सति, अपरितस्सं पच्चत्तञ्ञेव परिनिब्बायति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति।

[N.71] ''सो सुखं चे वेदनं वेदयति, सा अनिच्चा ति पजानाति, अनज्झोसिता ति पजानाति, अनभिनन्दिता ति पजानाति। दुक्खं चे वेदनं वेदयति, सा अनिच्चा ति पजानाति, अनज्झोसिता ति पजानाति, अनभिनन्दिता ति पजानाति। अदुक्खमसुखं चे वेदनं वेदयति, सा अनिच्चा ति पजानाति, अनज्झोसिता ति पजानाति, अनभिनन्दिता ति पजानाति। सो सुखं चे वेदनं वेदयति, विसंयुत्तो नं वेदयति। दुक्खं चे वेदनं वेदयति, विसंयुत्तो नं वेदयति। अदुक्खमसुखं चे वेदनं वेदयति, विसंयुत्तो नं वेदयति।

''सो कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी ति

विज्ञान भी पापसम्पृक्त हो जाता है। यदि वह आनेञ्ज्य (अचञ्चल=स्थिर कर्म) करता है उस समय उसका विज्ञान अचल फलदायी होता है।

''भिक्षुओ! क्योंकि भिक्षु की अविद्या प्रहीण हो चुकी होती है, विद्या उद्भूत हो चुकी होती है, उसके प्रभाव से उस समय अविद्या के उच्छिन्न होने से तथा विद्या के उद्भूत होने से उसको न पुण्यसंस्कार उत्पन्न होते हैं, न अपुण्यमय संस्कार और न आनेञ्ज्य संस्कार ही उत्पन्न होते हैं। इस तरह किसी भी संस्कार के न होने कारण वह संसार में किसी प्रकार का उपादान (परिग्रह) नहीं करता, कोई लौकिक चिन्तन नहीं करता, लोक में कहीं भी आसक्त नहीं होता। यों सर्वथा अनासक्त होने से उसे लोक में कहीं भय नहीं होता, यों वह निर्भीक रहता हुआ अपने अन्दर ही निर्वाण अधिगत कर लेता है। वह समझ लेता है कि मेरी जातिपरम्परा क्षीण हो चुकी, मेरा धर्माभ्यास पूर्ण हो चुका, अब मेरा यहाँ कोई कर्तव्य शेष नहीं है।

''इस तरह वह जब सुखा वेदना का अनुभव करता रहता है, तो वह उस वेदना की अनित्यता भी जानता रहता है, अत: उसमें आसक्त नहीं होता। जब दु:खा वेदना का अनुभव करता है तो उसकी अनित्यता भी जानता रहता है, 'वह अध्यवसाययोग्य या अभिनन्दनीय नहीं है'—ऐसा भी जानता रहता है। जब अदु:खा असुखा वेदना का अनुभव करता है तो उसकी भी अनित्यता, अनध्यवसेयता तथा अनभिनन्दनीयता जानता रहता है। अत: वह जब सुख वेदना का अनुभव करता है तो वह उससे असंसक्त रहता हुआ ही उसका अनुभव करता है, दु:खा वेदना तथा अदु:खा असुखा वेदना के प्रति भी उसका यह असंसक्तभाव ही विद्यमान रहता है।

पजानाति, जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी [R.83] ति पजानाति। कायस्स भेदा उद्धं जीवितपरियादाना इधेव सब्बवेदयितानि अनभि-नन्दितानि सीतीभविस्सन्ति, सरीरानि अवसिस्सन्ती ति पजानाति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो कुम्भकारपाका उण्हं कुम्भं उद्धरित्वा समे भूमिभागे पटिसिस्सेय्य। तत्र यायं उस्मा सा तत्थेव वूपसमेय्य, कपल्लानि अवसिस्सेय्युं। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी ति पजानाति, जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो जीवितपरियन्तिकं [B.311] वेदनं वेदयामी ति पजानाति। कायस्स भेदा उद्धं जीवितपरियादाना इधेव सब्ब-वेदयितानि अनभिनन्दितानि सीतीभविस्सन्ति, सरीरानि अवसिस्सन्ती ति पजानाति।

"तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु खो खीणासवो भिक्खु पुञ्ञाभिसङ्खारं वा अभिसङ्खरेय्य अपुञ्ञाभिसङ्खारं वा अभिसङ्खरेय्य आनेञ्जाभिसङ्खारं वा अभि-सङ्खरेय्या" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"सब्बसो वा पन सङ्खारेसु असति, सङ्खारनिरोधा अपि नु खो विञ्ञाणं पञ्ञापेथा" ति?

"जब वह ऐसा अनुभव करता है कि मेरी काया या जीवन का अन्त हो रहा है तो वह उस बात से सावधान रहता है। 'देहपात एवं जीवन का अन्त हो जाने के बाद उसकी वे समस्त वेदनाएँ यहीं शान्त हो कर निष्फल एवं शान्त हो जाती हैं तथा देहपात हो जाता है'—वह ऐसा जानता रहता है।

"भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष कुम्भकार के आँवे (कच्चा घड़ा पकाने का भट्ठा) से तप्त घटपात्र को निकाल खुली भूमि पर रख दे। तो उस पात्र की वह उष्णता कुछ ही काल में समाप्त हो जायगी, केवल कपालमात्र रह जायँगे। इसी तरह, भिक्षुओ! वह भिक्षु काया या जीवन का अन्त करने वाली वेदनाओं को अनुभव करता हुआ 'काया या जीवन का अन्त करने वाली वेदनाओं का अनुभव कर रहा हूँ'—ऐसा जानता है। 'देहपात या जीवन के अवसान के बाद, ये समस्त लौकिक वेदनाएँ, यदि उनके प्रति कोई आसक्ति न रखी जाय तो यहीं शान्त हो जायँगी, निर्जीव शरीरमात्र रह जायगा'—ऐसा वह जानता है।

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ, क्या क्षीणाश्रव भिक्षु को पुण्यमय, पापमय या स्थिर संस्कारों के प्रति कोई ममत्व रखना चाहिये?"

"नहीं, भन्ते!"

"....क्या संस्कारों के सर्वथा न होने से, संस्कारों का निरोध हो जाने से उसको विज्ञान होगा?"

"नो हेतं, भन्ते"।

"सब्बसो वा पन विञ्ञाणे असति, विञ्ञाणनिरोधा अपि नु खो नामरूपं [N.72] पञ्ञायेथा" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"सब्बसो वा पन नामरूपे असति, नामरूपनिरोधा अपि नु खो सळायतनं पञ्ञायेथा" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"सब्बसो वा पन सळायतने असति, सळायतननिरोधा अपि नु खो फस्सो पञ्ञायेथा" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

[R.84] "सब्बसो वा पन फस्से असति, फस्सनिरोधा अपि नु खो वेदना पञ्ञायेथा" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"सब्बसो वा पन वेदनाय असति, वेदनानिरोधा अपि नु खो तण्हा पञ्ञायेथा" ति ?

"नहीं, भन्ते!"

"....क्या विज्ञान के सर्वथा न रहने से, विज्ञान का निरोध हो जाने से उसका नामरूप रहेगा ?"

"नहीं, भन्ते!"

"....क्या नामरूप के सर्वथा न रहने पर, नामरूप का निरोध हो जाने से उसको षडायतन का भान होगा ?"

"नहीं, भन्ते!"

"....क्या षडायतन के सर्वथा न रहने पर, षडायतन का निरोध हो जाने से उसको स्पर्श की प्रज्ञप्ति होगी ?"

"नहीं, भन्ते!"

"....क्या स्पर्श के सर्वथा न रहने पर, स्पर्श का पूर्णतः निरोध हो जाने पर वेदना का अनुभव होगा ?"

"नहीं, भन्ते!"

"....क्या वेदना के सर्वथा न रहने पर, वेदना का पूर्णतः निरोध हो जाने पर तृष्णा का अनुभव होगा ?"

"नो हेतं, भन्ते"।

"सब्बसो वा पन तण्हाय असति, तण्हानिरोधा अपि नु खो उपादानं पञ्ञायेथा" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"सब्बसो वा पन उपादाने असति, उपादाननिरोधा अपि नु खो भवो पञ्ञायेथा" ति।

"नो हेतं, भन्ते"।

"सब्बसो वा पन भवे असति, भवनिरोधा अपि नु खो जाति पञ्ञायेथा" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"सब्बसो वा पन जातिया असति, जातिनिरोधा अपि नु खो जरामरणं पञ्ञायेथा" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"साधु साधु, भिक्खवे, एवमेतं, भिक्खवे, नेतं अञ्ञथा। सद्दहथ मे तं, भिक्खवे, अधिमुच्चथ, निक्कङ्खा एत्थ होथ निब्बिचिकिच्छा। एसेवन्तो दुक्खस्सा" ति॥ ●

"नहीं, भन्ते!"

"....क्या तृष्णा के सर्वथा न रहने पर, तृष्णा के सर्वथा निरुद्ध हो जाने पर उपादान की प्रज्ञप्ति होगी?"

"नहीं, भन्ते!"

"....क्या उपादान के सर्वथा न रहने पर, उपादान के पूर्णतः निरुद्ध हो जाने पर भव का प्रज्ञापन होगा?"

"नहीं, भन्ते!"

"....क्या भव के सर्वथा न रहने पर, भव का पूर्णतः निरोध हो जाने पर जाति का प्रज्ञापन होगा?"

"नहीं, भन्ते!"

"....क्या जाति के सर्वथा निरुद्ध हो जाने पर, जाति के पूर्णतः निरुद्ध हो जाने पर जरामरण फिर भी शिर उठा सकेंगे?"

"नहीं, भन्ते!"

"उचित है, भिक्षुओ! बहुत उचित है! यह बात इसी तरह है, अन्यथा नहीं। भिक्षुओ! इस (मेरे वचन) पर श्रद्धा करो। किसी प्रकार का सन्देह न करो, विचिकित्सा या कोई 'ननु नच' न करो। दुःखों के अन्त (नाश) करने का यही मार्ग है"॥ ●

५२. उपादानसुत्तं

५४. ...सावत्थियं विहरति। ''उपादानियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु अस्सादानु-[N.73] पस्सिनो विहरतो तण्हा पवड्ढति। तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो; भवपच्चया जाति; जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, दसन्नं वा कट्ठवाहानं वीसाय वा कट्ठवाहानं तिंसाय वा [B.312, R.85] कट्ठवाहानं चत्तारीसाय वा कट्ठवाहानं महाअग्गिक्खन्धो जलेय्य; तत्र पुरिसो कालेन कालं सुक्खानि चेव तिणानि पक्खिपेय्य, सुक्खानि च गोमयानि पक्खिपेय्य, सुक्खानि च कट्ठानि पक्खिपेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, महाअग्गिक्खन्धो तदाहारो तदुपादानो चिरं दीघमद्धानं जलेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे, उपादानियेसु धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो तण्हा पवड्ढति। तण्हापच्चया उपादानं...पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

''उपादानियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो तण्हा निरुज्झति। तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो; भवनिरोधा जातिनिरोधो; जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति।

---

५२. उपादानसूत्र : : संसार में अशुभ भावना से दुःखनाश

५४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! उपादानीय (संग्रहयोग्य= आकर्षक) धर्मों में आस्वाद (आसक्ति) रखने से तृष्णा वृद्धिङ्गत होती है। इस तृष्णावृद्धि के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जाति, जाति के कारण जरामरण शोक आदि सम्भूत होते हैं। यों, इस समस्त दुःखस्कन्ध का समुदय होता रहता है।

''जैसे, भिक्षुओ! दश, बीस, तीस, चालीस काष्ठ के ढेर (भारसमूह) को कोई जलावे, साथ ही कोई पुरुष उसमें रह रह कर सूखा तृणसमूह भी डालता रहे, सूखा गोबर भी डालता रहे, सूखा काष्ठ भी डालता रहे; यों वह काष्ठ का भार जलता रहेगा, तथा वह अग्निस्कन्ध निरन्तर चिरकाल तक प्रज्वलित रहेगा। इसी तरह, भिक्षुओ! उपादानीय धर्मों में निरन्तर आसक्ति रखने से भी प्राणी की तृष्णा बढती जाती है। तथा इस तृष्णा के कारण, उपादान भी बढता रहता है....। यों यह समस्त दुःखस्कन्ध भी उत्पन्न होता रहता है।

''परन्तु, इसके विपरीत, भिक्षुओ! उपादानीय धर्मों में दोषद्रष्टा साधक की यह तृष्णा यथासमय स्वयमेव शान्त हो जाती है। तृष्णा के न होने से उपादान का अभाव....पूर्ववत्....समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, दसन्नं वा कट्ठवाहानं वीसाय वा तिंसाय वा चत्तारीसाय वा कट्ठवाहानं महाअग्गिक्खन्धो जलेय्य; तत्र पुरिसो न कालेन कालं सुक्खानि चेव तिणानि पक्खिपेय्य, न सुक्खानि च गोमयानि पक्खिपेय्य, न सुक्खानि च कट्ठानि पक्खिपेय्य। एवं हि सो भिक्खवे, महाअग्गिक्खन्धो पुरिमस्स च उपादानस्स परियादाना अञ्ञस्स च अनुपहारा अनाहारो निब्बायेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे, उपादानियेसु धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो तण्हा निरुज्झति, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति॥ •

५३. पठमसंयोजनसुत्तं

५५. ...सावत्थियं विहरति। "संयोजनियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु [N.74, R.86] अस्सादानुपस्सिनो विहरतो तण्हा पवड्ढति। तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो; भवपच्चया जाति; जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, तेलं च पटिच्च वट्टिं च पटिच्च तेलप्पदीपो झायेय्य; तत्र पुरिसो कालेन कालं तेलं आसिञ्चेय्य वट्टिं उपसंहरेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, [B.313] तेलप्पदीपो तदाहारो तदुपादानो चिरं दीघमद्धानं जलेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे,

---

"जैसे, भिक्षुओ! दस, बीस, तीस, चालीस लकड़ियों का समूह किसी के द्वारा जलाया जाय, परन्तु उसमें कोई दूसरा पुरुष न कुछ सूखा तृणसमूह या न सूखा गोबर या न सूखा अतिरिक्त काष्ठ ही डाले, तब वह अग्निस्कन्ध कुछ ही समय बाद, पूर्व काष्ठसमूह के जल जाने से तथा अन्य काष्ठसमूह के आगे उपलब्ध न होने से वह विशाल अग्निस्कन्ध, निराहार (ज्वलन सामग्री का अभाव) होने से स्वयमेव बुझ जायगा। इसी तरह, भिक्षुओ! उपादानीय धर्मों के दोषद्रष्टा साधक की तृष्णा समय आने पर स्वयं ही निरुद्ध हो जाती है। तृष्णा के निरुद्ध होने से उपादान का निरोध....पूर्ववत्....समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है"॥ •

५३. प्रथम संयोजनसूत्र : : आसक्तित्याग से तृष्णा का नाश

५५. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! सांसारिक बन्धनों में डालने वाले धर्मों में आसक्ति रखने वाले साधक की तृष्णा बढती जाती है। तृष्णा की वृद्धि से उपादान, उपादान की वृद्धि से भव....पूर्ववत्....दुःखस्कन्ध का उद्भव होता है।

"जैसे, भिक्षुओ! तैल और बत्ती के सहारे कोई दीपक प्रज्वलित हो, वहाँ कोई पुरुष उस दीपक में, समय समय पर, तैल डालता रहे, बत्ती बदलता रहे, यों, भिक्षुओ! वह दीपक तैल और बत्ती का सहारा पाकर निरन्तर दीर्घकाल तक जलता रहेगा; इसी

संयोजनियेसु धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो तण्हा पवड्ढति। तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो; भवपच्चया जाति; जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्ख-दोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"संयोजनियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो तण्हा निरुज्झति। तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो; भवनिरोधा जातिनिरोधो; जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, तेलं च पटिच्च वट्टिं च पटिच्च तेलप्पदीपो झायेय्य; तत्र पुरिसो न कालेन कालं तेलं आसिञ्चेय्य न वट्टिं उपसंहरेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, तेलप्पदीपो पुरिमस्स च उपादानस्स परियादाना अञ्ञस्स च अनुपहारा अनाहारो निब्बायेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे, संयोजनियेसु धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो तण्हा निरुज्झति। तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्ख-क्खन्धस्स निरोधो होती" ति॥ •

५४. दुतियसंयोजनसुत्तं

५६. ...सावत्थियं विहरति। "सेय्यथापि, भिक्खवे, तेलं च पटिच्च वट्टिं च [R.87, N.75] पटिच्च तेलप्पदीपो झायेय्य; तत्र पुरिसो कालेन कालं तेलं आसिञ्चेय्य वट्टिं उपसंहरेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, तेलप्पदीपो तदाहारो तदुपादानो चिरं दीघमद्धानं जलेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे, संयोजनियेसु धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो तण्हा

तरह, भिक्षुओ! सांसारिक बन्धनों वाले धर्मों में आसक्त पुरुष की तृष्णा बढती रहती है, तृष्णावृद्धि से उपादान....पूर्ववत्.... समस्त दुःखस्कन्ध का उद्भव होता रहता है।

"परन्तु, इसके विपरीत, भिक्षुओ! इन संयोजनीय धर्मों में दोषद्रष्टा पुरुष की सांसारिक तृष्णा निरन्तर घटती रहती है, तृष्णा के घटने से उपादान घटता जाता है....पूर्ववत्....समस्त दुःखस्कन्ध का एक दिन निरोध हो जाता है।

"जैसे, भिक्षुओ! तैल और बत्ती के सहारे से कोई दीप प्रज्वलित किया जाय, परन्तु उसमें समय समय अतिरिक्त तैल और बत्ती या अन्य ज्वलनसामग्री न डाली जायँ तो एक समय आयगा कि वह दीपक बुझ ही जायगा; इसी तरह संयोजनीय धर्मों में दोषद्रष्टा पुरुष की तृष्णा घटती जाती है। तृष्णा के घटने से उपादान घटता है....पूर्ववत्....एक दिन इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है।

"इसी तरह भिक्षुओ! संयोजनीय धर्मों में दोषद्रष्टा साधक की तृष्णा का निरोध.... दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है"॥ •

पवड्ढति। तण्हापच्चया उपादानं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, तेलं च पटिच्च वट्टिं च पटिच्च तेलप्पदीपो झायेय्य; तत्र पुरिसो न कालेन कालं तेलं आसिञ्चेय्य न वट्टिं उपसंहरेय्य। एवं हि सो, [B.314] भिक्खवे, तेलप्पदीपो पुरिमस्स च उपादानस्स परियादाना अञ्ञस्स च अनुपहारा अनाहारो निब्बायेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे, संयोजनियेसु धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो तण्हा निरुज्झति। तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति॥

५५. पठममहारुक्खसुत्तं

५७. ...सावत्थियं विहरति। "उपादानियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो तण्हा पवड्ढति। तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो...पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, महारुक्खो। तस्स यानि चेव मूलानि अधोगमानि [R.88] यानि च तिरियङ्गमानि सब्बानि तानि उद्धं ओजं अभिहरन्ति। एवं हि सो, भिक्खवे, महारुक्खो तदाहारो तदुपादानो चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे, उपादानियेसु धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो तण्हा पवड्ढति। तण्हापच्चया उपादानं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

---

५४. द्वितीय संयोजनसूत्र : : आसक्तित्याग से तृष्णा का नाश

५६. श्रावस्ती में साधना के समय....। "जैसे, भिक्षुओ! तैल एवं बत्ती के सहारे से दीपक जलता है....पूर्ववत्....दुःखस्कन्ध का निरोध होता है"॥ •

[प्रथम संयोजनसूत्र की तरह अक्षरशः विस्तार कर लें।]

५५. प्रथम महावृक्षसूत्र : : तृष्णा महावृक्ष

५७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! उपादानीय धर्मों में आसक्ति रखने वाले साधक की तृष्णा बढती रहती है। तृष्णावृद्धि से उपादानवृद्धि होती है....पूर्ववत्....दुःखस्कन्ध का समुदय होता है।

वृक्ष की उपमा—भिक्षुओ! जैसे कोई महावृक्ष हो। जिसकी जड़ें नीचे की तरफ जा रही हों, शाखाएँ ऊपर की तरफ फैली हुई हों। वे सभी रस (वृद्धिकारक तत्त्व) ऊपर भेजती हों, इस तरह वह वृक्ष उस रस के आधार पर दिनानुदिन बढता ही रहेगा, तथा उसकी स्थिति चिरकाल तक रहेगी। इसी प्रकार, भिक्षुओ! उपादानीय धर्मों में आसक्ति रखने वाले साधक की तृष्णा बढती रहती है, इस तृष्णा से उपादान....यों इसके समस्त दुःखस्कन्ध का समुदय होता है। (१)

"उपादानियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो तण्हा निरुज्झति। तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, महारुक्खो। अथ पुरिसो आगच्छेय्य कुद्दालपिटकं [N.76] आदाय; सो तं रुक्खं मूले छिन्देय्य, मूलं छिन्दित्वा पलिखणेय्य, पलिखणित्वा मूलानि उद्धरेय्य अन्तमसो उसीरनाळिमत्तानि पि। सो तं रुक्खं खण्डाखण्डिकं छिन्देय्य, खण्डाखण्डिकं छिन्दित्वा फालेय्य, फालेत्वा सकलिकं सकलिकं करेय्य, सकलिकं सकलिकं करित्वा वातातपे विसोसेय्य; वातातपे विसोसेत्वा अग्गिना डहेय्य, अग्गिना डहेत्वा मसिं करेय्य, मसिं करित्वा महावाते वा ओफुणेय्य नदिया वा सीघसोताय [B.315] पवाहेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, महारुक्खो उच्छिन्नमूलो अस्स तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। एवमेव खो, भिक्खवे, उपादानियेसु धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो तण्हा निरुज्झति। तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो; उपादान-निरोधा भवनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति॥●

५६. दुतियमहारुक्खसुत्तं

५८. ...सावत्थियं विहरति। "सेय्यथापि, भिक्खवे, महारुक्खो। तस्स यानि [R.89] चेव मूलानि अधोगमानि यानि च तिरियङ्गमानि सब्बानि तानि उद्धं ओजं

"उपादानीय धर्मों में दोषद्रष्टा पुरुष की सांसारिक विषयों में तृष्णा घटती जाती है। तृष्णा के घटने से उपादान....पूर्ववत्....यों समस्त दुःखस्कन्ध का भी निरोध हो जाता है।

"जैसे, भिक्षुओ! कोई महावृक्ष हो, वहाँ कोई पुरुष कुल्हाड़ा लेकर आवे, वह उस वृक्ष की जड़ें काट दे, जड़ें काट कर उन्हें खोद डाले, खोद कर उसकी जड़ें उखाड़ दे, यहाँ तक उसकी छोटी से छोटी (तन्तुमात्र=सूक्ष्म) जड़ भी भूमि में न रह जाय। फिर वह उस वृक्ष को टुकड़े टुकड़े में विभक्त कर दे। यों विभक्त कर उसे फाड़ दे, फाड़ता उसे छोटे छोटे खण्डों में विभक्त कर दे। तथा उन्हें सूखने के लिये धूप एवं हवा में डाल दे, इस तरह सुखा कर अग्नि से उन्हें जला दे। जला कर राख कर दे। राख करके उसे तीव्र हवा में उड़ा दे या किसी तीव्र प्रवाह वाली महानदी में बहा दे। भिक्षुओ! इस तरह मूल से उच्छिन्न वह महावृक्ष जड़ से उखड़ जाने पर विनाश को ही प्राप्त होगा तथा भविष्य में उसका कभी उत्पाद नहीं होगा। इसी तरह भिक्षुओ! उपादानीय धर्मों में दोषद्रष्टा साधक की तृष्णा निरुद्ध हो जाती है। तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध....पूर्ववत्....समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है॥ (२) ●

अभिहरन्ति। एवं हि सो, भिक्खवे, महारुक्खो तदाहारो तदुपादानो चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे, उपादानियेसु धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो तण्हा पवड्ढति। तण्हापच्चया उपादानं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, महारुक्खो। अथ पुरिसो आगच्छेय्य कुद्दालपिटकं आदाय। सो तं रुक्खं मूले छिन्देय्य, मूले छेत्वा पलिखणेय्य, पलिखणित्वा मूलानि उद्धरेय्य...पे०...नदिया वा सीघसोताय पवाहेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, महारुक्खो उच्छिन्नमूलो अस्स तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। एवमेव खो, भिक्खवे, उपादानियेसु धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो तण्हा निरुज्झति। तण्हा-निरोधा उपादाननिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती'' ति॥ •

५७. तरुणरुक्खसुत्तं

५९. ...सावत्थियं विहरति। ''संयोजनियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु [N.77] अस्सादानुपस्सिनो विहरतो तण्हा पवड्ढति। तण्हापच्चया उपादानं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, तरुणो रुक्खो। तस्स पुरिसो कालेन कालं [B.316] मूलानि पलिमज्जेय्य, कालेन कालं पंसुं ददेय्य, कालेन कालं उदकं ददेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, तरुणो रुक्खो तदाहारो तदुपादानो वुद्धिं विरुळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्य। एवमेव

---

५६. द्वितीय महावृक्षसूत्र : : तृष्णा महावृक्ष है

५८. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। जैसे, भिक्षुओ! कोई महान् वृक्ष हो....पूर्ववत्....इस समस्त दुःखस्कन्ध का नाश हो जाता है॥ •

[प्रथम महावृक्षसूत्र की तरह ही इस सूत्र का भी पाठ-विस्तार समझें।]

५७. तरुणवृक्षसूत्र : : तृष्णा तरुणवृक्ष तुल्य है

५९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''सांसारिक बन्धन में डालने वाले धर्मों में आसक्ति रखने वाले साधक की तृष्णा बढती रहती है। इस बढी हुई तृष्णा के कारण उपादान....यों समस्त दुःखस्कन्ध की उत्पत्ति होती रहती है।

''भिक्षुओ! जैसे कोई नया वृक्ष हो। वहाँ कोई पुरुष समय समय पर उसकी जड़ को स्वच्छ करता रहे, समय समय उसके आसपास की मट्टी बदलता रहे, यथासमय उसको जल देता रहे। भिक्षुओ! यों वह नया वृक्ष उक्त सब साधनों के सहारे से वृद्धि, विशालता तथा पुष्टि को प्राप्त होता रहता है। इसी तरह, भिक्षुओ! बन्धनों में फँसाने वाले

खो, भिक्खवे, संयोजनियेसु धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो तण्हा पवड्ढति। तण्हापच्चया उपादानं...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

''संयोजनियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो तण्हा निरुज्झति। तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, तरुणो रुक्खो। अथ पुरिसो आगच्छेय्य कुद्दालपिटकं [R.90] आदाय...पे०...नदिया वा सीघसोताय पवाहेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, तरुणो रुक्खो उच्छिन्नमूलो अस्स तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। एवमेव खो, भिक्खवे, संयोजनियेसु धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो तण्हा निरुज्झति। तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती'' ति॥ ●

५८. नामरूपसुत्तं

६०. ...सावत्थियं विहरति। ''संयोजनियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो नामरूपस्स अवक्कन्ति होति। नामरूपपच्चया सळायतनं...पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खन्धस्स समुदयो होति।

धर्मों में लिप्त साधक की तृष्णा भी नित्य नये रूप में बढती रहती है। इस तृष्णा के बढने से उपादान....यों इस समस्त दु:खस्कन्ध की उत्पत्ति होती है।

''परन्तु, भिक्षुओ! संयोजनीय धर्मों में दोषद्रष्टा साधक की तृष्णा क्रमश: घटती रहती है। तृष्णा के घटने से उपादान का....पूर्ववत्....दु:खस्कन्ध का निरोध होता है।

''जैसे, भिक्षुओ! कोई नया वृक्ष हो। वहाँ कोई पुरुष कुल्हाड़ा (फरसा) लेकर आवे ....पूर्ववत्....प्रवाहवती नदी में बहा दे।....भविष्य में कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। इसी तरह, भिक्षुओ! संयोजनीय धर्मों में दोषद्रष्टा साधक की तृष्णा क्रमश: निरुद्ध होती रहती है। तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध होता है....पूर्ववत्.. .यों समस्त दु:खस्कन्ध का निरोध हो जाता है॥ ●

५८. नामरूपसूत्र : : सांसारिक आसक्ति से नामरूप की उत्पत्ति

६०. श्रावस्ती में साधना के समय....। ''सांसारिक बन्धनों में डालने वाले धर्मों में आसक्ति (आस्वाद) रखने वाले साधक नामरूप में प्रवेश (अवक्रान्ति) होने लगती है। तब इस नामरूप के कारण षडायतन होता है....पूर्ववत्....यों समस्त दु:खस्कन्ध की उत्पत्ति होती है।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, महारुक्खो। तस्स यानि चेव मूलानि अधोगमानि यानि च तिरियङ्गमानि सब्बानि तानि उद्धं ओजं अभिहरन्ति। एवं हि सो, भिक्खवे, महारुक्खो तदाहारो तदुपादानो चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्य। एवमेव खो, [N.78] भिक्खवे, संयोजनियेसु धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो नामरूपस्स अवक्कन्ति होति...पे०...।

''संयोजनियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो नामरूपस्स अवक्कन्ति न होति। नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो...पे०...एवमेतस्स [R.91] केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, महारुक्खो। अथ पुरिसो आगच्छेय्य कुद्दालपिटकं आदाय...पे०...आयतिं अनुप्पादधम्मो। एवमेव खो, भिक्खवे, संयोजनियेसु [B.317] धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो नामरूपस्स अवक्कन्ति न होति। नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती'' ति॥●

५९. विञ्ञाणसुत्तं

६१. ...सावत्थियं विहरति। ''संयोजनियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो विञ्ञाणस्स अवक्कन्ति होति। विञ्ञाणपच्चया नामरूपं...पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, महारुक्खो। तस्स यानि चेव मूलानि...पे०...एवमेव खो, भिक्खवे, संयोजनियेसु धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो विञ्ञाणस्स अवक्कन्ति होति...पे०...।

''संयोजनियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो विञ्ञाणस्स अवक्कन्ति न होति। विञ्ञाणनिरोधा नामरूपनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खन्धस्स निरोधो होति।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, महारुक्खो। अथ पुरिसो आगच्छेय्य कुद्दालपिटकं आदाय...पे०...आयतिं अनुप्पादधम्मो। एवमेव खो, भिक्खवे, संयोजनियेसु धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो विञ्ञाणस्स अवक्कन्ति न होति। विञ्ञाणस्स निरोधा नामरूपनिरोधो ...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती'' ति।

''भिक्षुओ! जैसे कोई विशाल वृक्ष हो....पूर्ववत्....(द्र०—प्रथम महावृक्षसूत्र) दुःखस्कन्ध का निरोध होता है''॥ ●

५९. विज्ञानसूत्र : : सांसारिक आसक्ति से विज्ञान की उत्पत्ति

६१. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। सांसारिक बन्धनों में फँसाने वाले धर्मों में

६०. निदानसुत्तं

६२. एकं समयं भगवा कुरूसु विहरति कम्मासधम्मं नाम कुरूनं निगमो। अथ [N.79, R.92] खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! याव गम्भीरो चायं, भन्ते, पटिच्चसमुप्पादो गम्भीरावभासो च, अथ च पन मे उत्तानकुत्तानको विय खायती" ति।

"मा हेवं, आनन्द, मा हेवं, आनन्द! गम्भीरो चायं, आनन्द, पटिच्चसमुप्पादो [B.318] गम्भीरावभासो च। एतस्स, आनन्द, धम्मस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमयं पजा तन्ता-कुलकजाता कुलगण्ठिकजाता मुञ्जबब्बजभूता अपायं दुग्गतिं विनिपातं संसारं नातिवत्तति।

"उपादानियेसु, आनन्द, धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो तण्हा पवड्ढति। तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो; भवपच्चया जाति; जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

आसक्ति रखने वाले साधक का विज्ञान में प्रवेश होता है। इस विज्ञान के कारण नामरूप ....पूर्ववत्....यों इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है॥

[द्र० प्रथम महावृक्षसूत्र]

६०. निदानसूत्र : : प्रतीत्यसमुत्पाद की गम्भीरता

६२. एक समय भगवान् (बुद्ध) कुरु देश के **कम्मासधम्म** नामक कुरुओं के किसी निगम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान् के पास पहुँचे। पहुँच कर, उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया—"आश्चर्य है, भन्ते! कि यह प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त दूसरों को सुनने समझने में जितना गम्भीर लगता है वही मेरे लिये स्पष्ट, सरल (सीधा लेटा हुआ सा) दिखायी देता है"

(भगवान् बोले—) "आनन्द! ऐसा न कहो, यह प्रतीत्यसमुत्पाद तो वस्तुतः गम्भीर है ही, तथा समझने में भी ब्हुत गम्भीर है। यह धर्म जाने तथा समझे विना इस समस्त संसार को उलझे हुए सूत के गोले जैसा, गाँठ और बन्धनों वाला, मूँज की झाड़ी (गुल्म) की तरह अप्रवेश्य लगता है, इसीलिये यह संसार अपाय दुर्गति में पड़ा हुआ है। इससे इसका उद्धार नहीं हो पाता।

"आनन्द! उपादानीय (संसार की तरफ आकृष्ट करने वाले) धर्मों में आसक्त

"सेय्यथापि, आनन्द, महारुक्खो। तस्स यानि चेव मूलानि अधोगमानि [R.93] यानि च तिरियङ्गमानि सब्बानि तानि उद्धं ओजं अभिहरन्ति। एवं हि सो, आनन्द, महारुक्खो तदाहारो तदुपादानो चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्य। एवमेव खो, आनन्द, उपादानियेसु धम्मेसु अस्सादानुपस्सिनो विहरतो तण्हा पवड्ढति। तण्हापच्चया उपादानं; उपादानपच्चया भवो...पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"उपादानियेसु, आनन्द, धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो तण्हा निरुज्झति। तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति।

"सेय्यथापि, आनन्द, महारुक्खो। अथ पुरिसो आगच्छेय्य कुद्दालपिटकं आदाय। सो तं रुक्खं मूले छिन्देय्य, मूले छेत्वा पलिखणेय्य, पलिखणित्वा [N.80] मूलानि उद्धरेय्य अन्तमसो उसीरनाळिमत्तानि पि। सो तं रुक्खं खण्डाखण्डिकं छिन्देय्य। खण्डाखण्डिकं छिन्दित्वा फालेय्य; फालेत्वा सकलिकं सकलिकं करेय्य, सकलिकं सकलिकं करित्वा वातातपे विसोसेय्य, वातातपे विसोसेत्वा अग्गिना डहेय्य, अग्गिना डहेत्वा मसिं करेय्य, मसिं करित्वा महावाते वा ओफुणेय्य, नदिया वा सीघसोताय पवाहेय्य। एवं हि सो, आनन्द, महारुक्खो उच्छिन्नमूलो अस्स [B.319] तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। एवमेव खो, आनन्द, उपादानियेसु धम्मेसु आदीनवानुपस्सिनो विहरतो तण्हा निरुज्झति। तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो; उपादाननिरोधा भवनिरोधो; भवनिरोधा जातिनिरोधो; जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति॥ •

दुक्खवग्गो छट्ठो॥

तस्सुद्दानं

परिवीमंसनुपादानं, द्वे च संयोजनानि च।

पुरुष की तृष्णा उसके आस्वाद के लिये बढती ही जाती है। उस तृष्णा के कारण उपादान....पूर्ववत्....यों समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है॥ •

[द्र०— पीछे महावृक्षसूत्र]

दुःखवर्ग षष्ठ समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. परिमीमांसा, २. उपादान, ३. प्रथम

महारुक्खेन द्वे वुत्ता, तरुणेन च सत्तमं।
नामरूपं च विञ्ञाणं, निदानेन च ते दसा ति॥

संयोजन, ४. द्वितीय संयोजन, ५. प्रथम महावृक्ष, ६. द्वितीय महावृक्ष, ७. तरुण वृक्ष, ८. नामरूप, ९. विज्ञान सूत्र एवं १०. निदान सूत्र॥

७. महावग्गो सत्तमो

६१. पठमअस्सुतवासुत्तं

६३. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने [R.94] अनाथपिण्डिकस्स आरामे।

"अस्सुतवा, भिक्खवे, पुथुज्जनो इमस्मिं चातुमहाभूतिकस्मिं कायस्मिं निब्बिन्देय्य पि विरज्जेय्य पि विमुच्चेय्य पि। तं किस्स हेतु? दिस्सति, भिक्खवे, इमस्स चातुमहाभूतिकस्स कायस्स आचयो पि अपचयो पि आदानं पि निक्खेपनं पि। तस्मा तत्रास्सुतवा पुथुज्जनो निब्बिन्देय्य पि विरज्जेय्य पि विमुच्चेय्य पि।

"यं च खो एतं, भिक्खवे, वुच्चति चित्तं इति पि, मनो इति पि, विञ्ञाणं इति पि, तत्रास्सुतवा पुथुज्जनो नालं निब्बिन्दितुं नालं विरज्जितुं नालं विमुच्चितुं। तं किस्स [N.81] हेतु? दीघरत्तं हेतं, भिक्खवे, अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स अज्झोसितं ममायितं परामट्ठं— 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति। तस्मा तत्रास्सुतवा पुथुज्जनो नालं निब्बिन्दितुं नालं विरज्जितुं नालं विमुच्चितुं।

"वरं, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो इमं चातुमहाभूतिकं कायं अत्ततो [B.320] उपगच्छेय्य, न त्वेव चित्तं। तं किस्स हेतु? दिस्सतायं, भिक्खवे, चातुमहाभूतिको कायो एकं पि वस्सं तिट्ठमानो द्वे पि वस्सानि तिट्ठमानो तीणि पि वस्सानि तिट्ठमानो चत्तारि पि

---

७. महावर्ग सप्तम

६१. अश्रुतवान् सूत्र : : मर्कटोपम चित्त

६३. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् श्रावस्ती के अनाथपिण्डक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे।

"भिक्षुओ! अज्ञ पृथग्जन भी इस चातुर्महाभौतिक काय के प्रति ग्लानि, वैराग्य या अनुत्सुकता प्रकट कर सकते हैं। वह क्यों? क्योंकि इस चातुर्महाराजिक काय में भी समय समय पर अपचय (घटना), आचय (बढना) ग्रहण और त्याग देखा जाता है। इस कारण वहाँ अज्ञ पृथग्जन भी ग्लानि वैराग्य या अनुत्सुकता प्रकट कर सकते हैं।

"भिक्षुओ! लोग जिसको मन या चित्त कहते हैं उसी को 'विज्ञान' भी कहते हैं। उस विज्ञान के प्रति अज्ञ जन अनुत्सुक होना, विरक्त होना, या उसके प्रति ग्लान होना नहीं चाहता; वह क्यों? वह इसलिये कि उस अज्ञ का इस चातुर्महाभूतिक काय के प्रति अध्यवसाय, ममत्व एवं राग रहा है।

"भिक्षुओ! अच्छा होता कि वह अज्ञ इस शरीर को ही, न कि चित्त को 'आत्मा' कह कर मानता। वह क्यों? वह इसलिये कि यह शरीर एक वर्ष भी यहाँ ठहरा हुआ

वस्सानि तिट्ठमानो पञ्च पि वस्सानि तिट्ठमानो दस पि वस्सानि तिट्ठमानो वीसति पि वस्सानि तिट्ठमानो तिंसं पि वस्सानि तिट्ठमानो चत्तारीसं पि वस्सानि तिट्ठमानो पञ्ञासं [R.95] पि वस्सानि तिट्ठमानो वस्ससतं पि तिट्ठमानो, भिय्यो पि तिट्ठमानो।

"यं च खो एतं, भिक्खवे, वुच्चति चित्तं इति पि, मनो इति पि, विञ्ञाणं इति पि, तं रत्तिया च दिवसस्स च अञ्ञदेव उप्पज्जति अञ्ञं निरुज्झति। सेय्यथापि, भिक्खवे, मक्कटो अरञ्ञे पवने चरमानो साखं गण्हति, तं मुञ्चित्वा अञ्ञं गण्हति, तं मुञ्चित्वा अञ्ञं गण्हति; एवमेव खो, भिक्खवे, यमिदं वुच्चति चित्तं इति पि, मनो इति पि, विञ्ञाणं इति पि, तं रत्तिया च दिवसस्स च अञ्ञदेव उप्पज्जति अञ्ञं निरुज्झति।

"तत्र, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको पटिच्चसमुप्पादं येव साधुकं योनिसो मनसि करोति—'इति इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति; इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स निरोधा इदं निरुज्झतियदिदं अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं ...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो; सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो ...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती' ति।

दिखायी देता है, दो वर्ष भी, तीन वर्ष भी, चार वर्ष भी, पाँच वर्ष भी, दश वर्ष भी, बीस वर्ष भी, तीस वर्ष भी, चालीस वर्ष भी, पचास वर्ष भी, सौ वर्ष भी या इससे आगे भी ठहरा हुआ दिखायी देता है।

चित्त को मर्कट की उपमा—"भिक्षुओ! किन्तु वह चित्त, मन या विज्ञान दिन रात अन्य से अन्य उत्पन्न होता तथा निरुद्ध होता दिखायी देता है। भिक्षुओ! जैसे जङ्गल में कोई बन्दर इधर से उधर घूमता हुआ कभी वृक्ष की इस शाखा पर जाता है फिर इसे छोड़ कर कभी उस शाखा पर जाता है; इसी तरह भिक्षुओ! जिसे चित्त, मन या विज्ञान कहा जाता है वह रातदिन अन्य से अन्य उत्पन्न होता या निरुद्ध होता दिखायी देता है।

वहाँ, भिक्षुओ! श्रुतवान् (शिक्षित) आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद पर ही सूक्ष्मतया यों चिन्तन, मनन करता है—'इसके होने पर यह होता है', या 'इसके उत्पन्न होने पर यह उत्पन्न होता है'; या 'इसके न होने पर यह नहीं होता' या 'इसके निरुद्ध होने पर यह निरुद्ध हो जाता है'। इसी सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में देखिये—अविद्या के कारण संस्कार उत्पन्न होते हैं, संस्कार के कारण विज्ञान,....पूर्ववत्....यों इस समस्त दुःखस्कन्ध का समुदय होता है। इसी तरह अविद्या के सर्वथा निरुद्ध होने पर संस्कारों का निरोध होता है, संस्कारों के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है। यों इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है।

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति; निब्बिन्दं विरज्जति, विरागा विमुच्चति, विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं [N.82] होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति॥ •

६२. दुतियअस्सुतवासुत्तं

६४. सावत्थियं विहरति। "अस्सुतवा, भिक्खवे, पुथुज्जनो इमस्मिं चातुमहाभूतिकस्मिं कायस्मिं निब्बिन्देय्य पि विरज्जेय्य पि विमुच्चेय्य पि। तं [B.321, R.96] किस्स हेतु? दिस्सति, भिक्खवे, इमस्स चातुमहाभूतिकस्स कायस्स आचयो पि अपचयो पि आदानं पि निक्खेपनं पि। तस्मा तत्रास्सुतवा पुथुज्जनो निब्बिन्देय्य पि विरज्जेय्य पि विमुच्चेय्य पि। यं च खो एतं, भिक्खवे, वुच्चति चित्तं इति पि, मनो इति पि, विञ्ञाणं इति पि, तत्रास्सुतवा पुथुज्जनो नालं निब्बिन्दितुं नालं विरज्जितुं नालं विमुच्चितुं। तं किस्स हेतु? दीघरत्तं हेतं, भिक्खवे, अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स अज्झोसितं ममायितं परामट्ठं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति। तस्मा तत्रास्सुतवा पुथुज्जनो नालं निब्बिन्दितुं नालं विरज्जितुं नालं विमुच्चितुं।

"वरं, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो इमं चातुमहाभूतिकं कायं अत्ततो उपगच्छेय्य, न त्वेव चित्तं। तं किस्स हेतु? दिस्सतायं, भिक्खवे, चातुमहाभूतिको कायो एकं पि वस्सं तिट्ठमानो द्वे पि वस्सानि तिट्ठमानो तीणि पि वस्सानि तिट्ठमानो चत्तारि पि वस्सानि तिट्ठमानो पञ्च पि वस्सानि तिट्ठमानो दस पि वस्सानि तिट्ठमानो वीसति पि

यों वह श्रुतवान् आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद के सहारे मनन-चिन्तन करता हुआ रूप में, वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में विरक्त हो जाता है। इस वैराग्य से वह विमुक्ति की तरफ बढता है , विमोक्ष होने पर उसे यहाँ विमुक्त ज्ञान हो जाता है। तब उसे समझ में आ जाता है कि उसकी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी है, धर्मसाधना पूर्ण हो चुकी है, कर्तव्य कर्म पूर्ण हो चुका है, अब उसका आगे कोई कर्तव्य कर्म अवशिष्ट नहीं है॥ •

६२. द्वितीय अश्रुतवान् सूत्र : : पञ्चस्कन्ध वैराग्य से मुक्ति

६४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। भिक्षुओ! अश्रुतवान् (अशिक्षित) पृथग्जन इस चातुर्महाभौतिक काय में अनुत्सुक भी हो सकता है, वैराग्यवान् भी हो सकता है। वह क्यों? वह इसलिये कि इस चातुर्महाभौतिक काय की वृद्धि या हानि होती रहती है। ग्रहण या त्याग होता रहता है। अत: वह अज्ञ पृथग्जन यहाँ अनुत्सुक भी, वैराग्यवान् भी या उसके प्रति ग्लान भी होता रहता है।....पूर्ववत्....। *[द्र० प्रथम अश्रुतवान् सूत्र]*

वस्सानि तिट्ठमानो तिंसं पि वस्सानि तिट्ठमानो चत्तारीसं पि वस्सानि तिट्ठमानो पञ्ञासं पि वस्सानि तिट्ठमानो वस्ससतं पि तिट्ठमानो, भिय्यो पि तिट्ठमानो। यं च खो एतं, भिक्खवे, वुच्चति चित्तं इति पि, मनो इति पि, विञ्ञाणं इति पि, तं रत्तिया च दिवसस्स च अञ्ञदेव उप्पज्जति अञ्ञं निरुज्झति।

''तत्र, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको पटिच्चसमुप्पादं येव साधुकं योनियो मनसि करोति—'इति इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति; इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स निरोधा इदं निरुज्झती' ति। सुखवेदनियं, भिक्खवे, फस्सं [N.83] पटिच्च उप्पज्जति सुखवेदना। तस्सेव सुखवेदनियस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं सुखवेदनियं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना सुखवेदना सा निरुज्झति सा वूपसम्मति। [R.97] दुक्खवेदनियं, भिक्खवे, फस्सं पटिच्च उप्पज्जति दुक्खवेदना। तस्सेव दुक्खवेदनियस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं दुक्खवेदनियं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना दुक्खवेदना सा निरुज्झति सा वूपसम्मति। अदुक्खमसुखवेदनियं, भिक्खवे, फस्सं पटिच्च उप्पज्जति अदुक्खमसुखवेदना। तस्सेव अदुक्खमसुखवेदनियस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं अदुक्खमसुखवेदनियं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना अदुक्खमसुख-वेदना सा निरुज्झति सा वूपसम्मति।

[B.322] ''सेय्यथापि, भिक्खवे, द्विन्नं कट्ठानं सङ्घट्टनसमोधाना उस्मा जायति तेजो अभिनिब्बत्तति। तेसं येव द्विन्नं कट्ठानं नानाकतविनिब्भोगा या तज्जा उस्मा सा निरुज्झति सा वूपसम्मति; एवमेव खो, भिक्खवे, सुखवेदनियं फस्सं पटिच्च उप्पज्जति सुखवेदना।

''वहाँ, भिक्षुओ! श्रुतवान् आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद के माध्यम से यों चिन्तन मनन करता है—'इसके होने पर यह होता है, इसकी उत्पत्ति से यह उत्पन्न होता है; तथा इसके न होने पर यह नहीं होता या इसके निरुद्ध होने पर यह निरुद्ध हो जाता है।' भिक्षुओ! सुखवेदनीय स्पर्श की अपेक्षा से सुखा वेदना उत्पन्न होती है। उस सुखवेदनीय स्पर्श के निरोध से तज्जन्य (अनुभूत होने वाली) सुखा वेदना भी निरुद्ध हो जाती है, शान्त हो जाती है। इसी तरह भिक्षुओ! दु:खवेदनीय स्पर्श की अपेक्षा से दु:खा वेदना उत्पन्न होती है, परन्तु उस स्पर्श के निरोध से वह दु:खा वेदना भी निरुद्ध हो जाती है। भिक्षुओ! इसी तरह अदु:खा असुखा वेदना के लिये भी समझ लेना चाहिये। अर्थात् वह भी उक्त स्पर्श के निरोध से निरुद्ध हो जाती है, शान्त हो जाती है।

अरणि की उपमा—''जैसे, भिक्षुओ! दो अरणि काष्ठखण्डों के सङ्घर्षण से ऊष्मा निकलती है, ज्वाला प्रकट होती है; परन्तु जब वे दोनों काष्ठ किसी कारण से पृथक् हो जाते हैं, सङ्घर्षण नहीं कर पाते तो वह ऊष्मा तथा ज्वाला भी प्रकट नहीं हो पाती, निरुद्ध

तस्सेव सुखवेदनियस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं सुखवेदनियं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना सुखवेदना सा निरुज्झति सा वूपसम्मति...पे०...दुक्खवेदनियं फस्सं पटिच्च। अदुक्खमसुखवेदनियं फस्सं पटिच्च उप्पज्जति अदुक्खमसुखवेदना। तस्सेव अदुक्खमसुखवेदनियस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं अदुक्खमसुखवेदनियं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना अदुक्खमसुखवेदना सा निरुज्झति सा वूपसम्मति।

''एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको फस्से पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति; निब्बिन्दं विरज्जति, विरागा विमुच्चति, विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ ●

६३. पुत्तमंससुत्तं

६५. ...सावत्थियं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, आहारा भूतानं वा सत्तानं [R.98] ठितिया सम्भवेसीनं वा अनुग्गहाय। कतमे चत्तारो? कबळीकारो आहारो ओळारिको वा सुखुमो वा, फस्सो दुतियो, मनोसञ्चेतना ततिया, विञ्ञाणं चतुत्थं। इमे खो, [N.84] भिक्खवे, चत्तारो आहारा भूतानं वा सत्तानं ठितिया सम्भवेसीनं वा अनुग्गहाय।

''कथं च, भिक्खवे, कबळीकारो आहारो दट्ठब्बो? सेय्यथापि, [B.323] भिक्खवे, द्वे जायम्पतिका परित्तं सम्बलं आदाय कन्तारमग्गं पटिपज्जेय्युं। तेसमस्स

हो जाती हैं; इसी तरह भिक्षुओ! सुखवेदनीय स्पर्श की अपेक्षा से सुखा वेदना उत्पन्न होती है, उसके निरोध से वह निरुद्ध हो जाती है; दुःखवेदनीय स्पर्श की अपेक्षा से....अदुःख असुख वेदनीय स्पर्श की अपेक्षा से उत्पन्न अदुःख असुख वेदना तज्जन्य स्पर्श के निरोध से वह भी निरुद्ध हो जाती है।

यों समीक्षा करता हुआ वह श्रुतवान् आर्यश्रावक स्पर्श में, वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में वैराग्ययुक्त होता है, तथा इस वैराग्य के सहारे एक दिन विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर उसे विमुक्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है। तब वह समझ लेता है—'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी....पूर्ववत्....अब मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है॥''' ●

६३. पुत्रमांससूत्र : : चतुर्विध आहार

६५. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! इस संसार में उत्पन्न होने वाले प्राणियों की स्थिति के लिये तथा उत्पन्न होने वालों पर अनुग्रह के लिये चार आहार हैं। कौन से चार? १. स्थूल या सूक्ष्म ग्रास के रूप में, २. स्पर्श, ३. मन की सञ्चेतना एवं ४. विज्ञान। भिक्षुओ! ये चार आहार....पूर्ववत्....।

१. ''भिक्षुओ! **कवलीकार (ग्रास ग्रास कर खाया जाने वाला) आहार क्या है?**

एकपुत्तको पियो मनापो। अथ खो तेसं, भिक्खवे, द्विन्नं जायम्पतिकानं कन्तारगतानं या परित्ता सम्बलमत्ता सा परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य। सिया च नेसं कन्तारावसेसो अनतिण्णो। अथ खो तेसं, भिक्खवे, द्विन्नं जायम्पतिकानं एवमस्स—'अम्हाकं खो या परित्ता सम्बलमत्ता सा परिक्खीणं परियादिण्णा। अत्थि चायं कन्तारावसेसो अनतिण्णो। यन्नून मयं इमं एकपुत्तकं पियं मनापं वधित्वा वल्लूरं च सोण्डिकं च करित्वा पुत्तमंसानि खादन्ता एवं तं कन्तारावसेसं नित्थरेय्याम, मा सब्बेव तयो विनस्सिम्हा' ति। अथ खो ते, भिक्खवे, द्वे जायम्पतिका तं एकपुत्तकं पियं मनापं वधित्वा वल्लूरं च सोण्डिकं च करित्वा पुत्तमंसानि खादन्ता एवं तं कन्तारावसेसं नित्थरेय्युं, ते पुत्तमंसानि चेव खादेय्युं, उरे च पटिपिसेय्युं—'कहं, एकपुत्तक, कहं, एकपुत्तका' ति।

"तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु ते दवाय वा आहारं आहारेय्युं, मदाय वा [R.99] आहारं आहारेय्युं, मण्डनाय वा आहारं आहारेय्युं, विभूसनाय वा आहारं आहारेय्युं" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"ननु ते, भिक्खवे, यावदेव कन्तारस्स नित्थरणत्थाय आहारं आहारेय्युं" ति?

जैसे, भिक्षुओ! दो पति-पत्नी थोड़ा सा कलेवा (शम्बल) लेकर दूर किसी मार्ग के लिये चलें। उनके साथ उनका एक प्रिय पुत्र भी हो। उस मार्ग में लम्बा चौड़ा जङ्गल भी हो। उस जङ्गल में जाते जाते उनका वह कलेवा समाप्त हो जाय, जबकि उन्हें अभी बहुत मार्ग पार करना है। तब, भिक्षुओ! उन दोनों दम्पतियों को यों विचार हो—'हम जो प्राणधारण के लिये कलेवा साथ में लाये थे, वह समाप्त हो चुका है, जब यात्रा बहुत अवशिष्ट है। तो क्यों न हम अपने प्रिय एवं सुन्दर पुत्र को मार कर, इसे टुकड़े टुकड़े कर, इसका मांस खाते हुए यह अवशिष्ट मार्ग पार कर लें। इस तरह हमारी यह यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो पायगी; अन्यथा हम तीनों का ही यहाँ देहपात हो जायगा।' तब भिक्षुओ! वे दोनों पतिपत्नी अपने उस सुन्दर प्रिय पुत्र को मार कर खण्डशः विभक्त कर उसका मांस खाते हुए उस अवशिष्ट मार्ग को पार कर अन्त में वे छाती पीटते हुए यों विलाप करने लगें—'अरे हमारा प्रिय, सुन्दर एकमात्र पुत्र कहाँ गया?'

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! क्या उन दोनों ने वह पुत्र का मांस अपने खेल के लिये, मद के लिये, मण्डन या विभूषण के लिये खाया था?"

"नहीं, भन्ते!"

"भिक्षुओ! क्या वे उस क नार को सरलता से पार करने के लिये यह कर्म कर बैठे थे?"

"एवं, भन्ते"।

"एवमेव ख्वाहं, भिक्खवे, कबळीकारो आहारो दट्ठब्बो ति वदामि। कबळीकारे, भिक्खवे, आहारे परिञ्ञाते पञ्चकामगुणिको रागो परिञ्ञातो होति। पञ्चकामगुणिके रागे परिञ्ञाते नत्थि तं संयोजनेन संयुत्ते अरियसावको पुन इमं लोकं आगच्छेय्य।

"कथं च, भिक्खवे, फस्साहारो दट्ठब्बो? सेय्यथापि, भिक्खवे, गावी [N.85] निच्चम्मा कुड्डं चे निस्साय तिट्ठेय्य। ये कुड्डनिस्सिता पाणा ते नं खादेय्युं। रुक्खं चे निस्साय तिट्ठेय्य, ये रुक्खनिस्सिता पाणा ते नं खादेय्युं। उदकं चे निस्साय तिट्ठेय्य, ये उदकनिस्सिता पाणा ते नं खादेय्युं। आकासं चे निस्साय तिट्ठेय्य, ये आकासनिस्सिता पाणा ते नं खादेय्युं। यं यदेव हि सा, भिक्खवे, गावी निच्चम्मा निस्साय तिट्ठेय्य, ये तन्निस्सिता पाणा ते नं खादेय्युं। एवमेव ख्वाहं, भिक्खवे, फस्साहारो दट्ठब्बो ति वदामि। फस्से, भिक्खवे, आहारे परिञ्ञाते तिस्सो वेदना परिञ्ञाता होन्ति। तीसु वेदनासु परिञ्ञातासु अरियसावकस्स नत्थि किञ्चि उत्तरिकरणीयं ति वदामि।

"कथं च, भिक्खवे, मनोसञ्चेतनाहारो दट्ठब्बो? सेय्यथापि, भिक्खवे, अङ्गार-

---

"ऐसा ही है, भन्ते!"

(१) "भिक्षुओ! ऐसा ही इस कवलीकार आहार के विषय में समझना चाहिये। ऐसा समझने से साधक पाँच कामगुणों के राग को पहचान लेता है, इस राग को पहचान लेने से उस (साधक) के लिये वह बन्धन नहीं रहता, जिस बन्धन में बन्ध कर वह पुनः जन्म ग्रहण करे।

(२) "भिक्षुओ! **स्पर्श के आहार को कैसा समझना चाहिये?**

"भिक्षुओ! किसी रोग के कारण शरीर का चर्म कटी हुई गौ किसी दीवार के सहारे से खड़ी हो, वहाँ उस दीवार में रहने वाले कीड़े उसे काटने लगें; किसी वृक्ष के सहारे खड़ी हो, वहाँ वृक्ष में रहने वाले कीड़े उसे काटने लगें; जल में खड़ी हो तो जल में रहने वाले कीड़े उसे काटें; खुले आकाश (मैदान) में खड़ी हो....। भिक्षुओ! वह गौ जहाँ भी जाकर खड़ी हो, वहाँ के कीड़े उसे काटने लगें। स्पर्श के आहार को भी, भिक्षुओ! ऐसा ही समझना चाहिये—ऐसा मेरा कहना है। भिक्षुओ! स्पर्श के आहार को ऐसा समझ लेने से पूर्वोक्त तीनों सुखा आदि वेदनाएँ जान ली जाती हैं। इन तीनों वेदनाओं को जान लेने से आर्यश्रावक का पुनः आगे कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ। (२)

(३) "भिक्षुओ! **मनःसञ्चेतना आहार को कैसा समझना चाहिये?** भिक्षुओ!

[B.324] कासु साधिकपोरिसा पुण्णा अङ्गारानं वीतच्चिकानं वीतधूमानं। अथ पुरिसो आगच्छेय्य जीवितुकामो अमरितुकामो सुखकामो दुक्खप्पटिकूलो। तमेनं द्वे बलवन्तो पुरिसा नानाबाहासु गहेत्वा तं अङ्गारकासुं उपकड्ढेय्युं। अथ खो, भिक्खवे, तस्स [R.100] पुरिसस्स आरकावस्स चेतना आरका पत्थना आरका पणिधि। तं किस्स हेतु? एवं हि, भिक्खवे, तस्स पुरिसस्स होति—'इमं चाहं अङ्गारकासुं पपतिस्सामि, ततोनिदानं मरणं वा निगच्छामि मरणमत्तं वा दुक्खं' ति। एवमेव ख्वाहं, भिक्खवे, 'मनोसञ्चेतनाहारो दट्ठब्बो' ति वदामि। मनोसञ्चेतनाय, भिक्खवे, आहारे परिञ्ञाते तिस्सो तण्हा परिञ्ञाता होन्ति। तीसु तण्हासु परिञ्ञातासु अरियसावकस्स नत्थि किञ्चि उत्तरिकरणीयं ति वदामि।

"कथं च, भिक्खवे, विञ्ञाणाहारो दट्ठब्बो? सेय्यथापि, भिक्खवे, चोरं आगुचारिं गहेत्वा रञ्ञो दस्सेय्युं—'अयं ते, देव, चोरो आगुचारी, इमस्स यं इच्छसि तं दण्डं पणेही' ति। तमेनं राजा एवं वदेय्य—'गच्छथ, भो, इमं पुरिसं पुब्बण्हसमयं सत्तिसतेन हनथा' ति। तमेनं पुब्बण्हसमयं सत्तिसतेन हनेय्युं। अथ राजा मज्झन्हिक-समयं एवं वदेय्य—'अम्भो, कथं सो पुरिसो' ति?

'तथेव, देव, जीवती' ति।

"तमेनं राजा एवं वदेय्य—'गच्छथ भो तं पुरिसं मज्झन्हिकसमयं सत्तिसतेन [N.86] हनथा' ति। तमेनं मज्झन्हिकसमयं सत्तिसतेन हनेय्युं। अथ राजा सायन्हसमयं एवं वदेय्य—'अम्भो, कथं सो पुरिसो' ति?

किसी पुरुषप्रमाण गर्त में लपट और धूएँ से रहित धधकती हुई अग्नि हो। तब कोई पुरुष आवे जो जीवित रहना चाहता हो, मरना न चाहता हो, सुखी रहना चाहता हो दु:खी न होना चाहता हो। भिक्षुओ! उसको दो बलवान् पुरुष हठपूर्वक बाहों से पकड़ कर उसे उस गर्त में ढकेलना चाहें, तो भिक्षुओ! उस पुरुष की चेतना, प्रार्थना तथा प्रणिधि (आकांक्षा) वहाँ से छूटने के लिये ही होगी। वह क्यों? वह इसलिये कि वह जानता है कि इस अग्नि में गिरते ही मेरा प्राणान्त हो जायगा या मरण के समान दु:ख भोगूँगा। भिक्षुओ! मन की सञ्चेतना के आहार को ऐसा ही समझना चाहिये—ऐसा मेरा कहना है। (३)

"भिक्षुओ! विज्ञान के आहार को कैसा समझना चाहिये? जैसे, भिक्षुओ! किसी अपराधी चौर को राजपुरुष पकड़ कर राजा के पास ले जायँ, और कहें—'देव! यह अपराधी चौर है। अत: इसे आप यथेच्छ दण्ड दें।' यह सुनकर राजा यह कहे—'जाओ, इसको प्रात:काल सौ भाले भोंक दो और मार डालो'। वे राजपुरुष उस चौर को सौ भाले भोंक दें। तब राजा मध्याह्न में पूछे—'अरे! उस चौर पुरुष की क्या स्थिति है?' राजपुरुष

'तथेव, देव, जीवती' ति।

"तमेनं राजा एवं वदेय्य—'गच्छथ, भो, तं पुरिसं सायन्हसमयं सत्तिसतेन हनथा' ति। तमेनं सायन्हसमयं सत्तिसतेन हनेय्युं। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु सो पुरिसो दिवसं तीहि सत्तिसतेहि हञ्ञमानो ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदियेथा" ति?

"एकिस्सा पि, भन्ते, सत्तिया हञ्ञमानो ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदियेथ; को पन वादो तीहि सत्तिसतेहि हञ्ञमानो" ति!

"एवमेव ख्वाहं, भिक्खवे, विञ्ञाणाहारो दट्ठब्बो ति वदामि। विञ्ञाणे, भिक्खवे, आहारे परिञ्ञाते नामरूपं परिञ्ञातं होति, नामरूपे परिञ्ञाते अरियसावकस्स नत्थि किञ्चि उत्तरिकरणीयं ति वदामी" ति॥

●

६४. अत्थिरागसुत्तं

६६. ...सावत्थियं विहरति। "चत्तारोमे, भिक्खवे, आहारा [B.325, R.101] भूतानं वा सत्तानं ठितिया सम्भवेसीनं वा अनुग्गहाय। कतमे चत्तारो? कबळीकारो आहारो ओळारिको वा सुखुमो वा, फस्सो दुतियो, मनोसञ्चेतना ततिया, विञ्ञाणं चतुत्थं। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो आहारा भूतानं वा सत्तानं ठितिया सम्भवेसीनं वा अनुग्गहाय।

कहें—'देव! वह तो अभी जीवित है।' तब राजा यों कहे—'जाओ! उस पुरुष को मध्याह्न में भी सौ भाले भोंक दो तथा मार डालो।' तब राजा सायङ्काल पुनः उस चौर की स्थिति पूछे। उसकी जीवितावस्था बताने पर वह पुनः आदेश दे—'जाओ, उसको सायङ्काल भी सौ भाले भोंक दो।' तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! वह चौर पुरुष तीन सौ बार भाले भोंके जाने पर उस कारण दुःख दौर्मनस्य नहीं अनुभव करेगा?"

"भन्ते! साधारण पुरुष को एक भाला भोंके जाने पर ही वह प्राणान्तक कष्ट अनुभव करता है, इस चौर को तो तीन सौ भाले भोंके जाने के बाद उसके दुःख दौर्मनस्य के विषय में क्या कहना रह जायगा!"

"इसी तरह, भिक्षुओ! विज्ञानाहार के विषय में भी समझना चाहिये। ऐसा मेरा कहना है। विज्ञानाहार के विषय में इतना जान लेने के बाद नामरूप की वास्तविकता भी जान ली जाती है। नामरूप के जान लेने पर, उस आर्यश्रावक का यहाँ कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। ऐसा मेरा कहना है॥"

●

६४. अस्तिरागसूत्र : : चतुर्विध आहार

६६. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। भिक्षुओ! इस संसार में उत्पन्न प्राणियों की स्थिति के लिये....पूर्ववत्....भिक्षुओ! ये चार आहार....पूर्ववत्....।

''कबळीकारे चे, भिक्खवे, आहारे अत्थि रागो अत्थि नन्दी अत्थि तण्हा, पतिट्ठितं तत्थ विञ्ञाणं विरूळ्हं। यत्थ पतिट्ठितं विञ्ञाणं विरूळ्हं, अत्थि तत्थ नामरूपस्स अवक्कन्ति। यत्थ अत्थि नामरूपस्स अवक्कन्ति, अत्थि तत्थ सङ्खारानं वुद्धि। यत्थ अत्थि सङ्खारानं वुद्धि, अत्थि तत्थ आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति। यत्थ अत्थि आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति, अत्थि तत्थ आयतिं जातिजरामरणं। यत्थ अत्थि आयतिं [N.87] जातिजरामरणं, ससोकं तं, भिक्खवे, सदरं सउपायासं ति वदामि।

''फस्से चे, भिक्खवे, आहारे...पे०...मनोसञ्चेतनाय चे, भिक्खवे, आहारे... विञ्ञाणे चे, भिक्खवे, आहारे अत्थि रागो अत्थि नन्दी अत्थि तण्हा, पतिट्ठितं तत्थ विञ्ञाणं विरूळ्हं। यत्थ पतिट्ठितं विञ्ञाणं विरूळ्हं, अत्थि तत्थ नामरूपस्स अवक्कन्ति। यत्थ अत्थि नामरूपस्स अवक्कन्ति, अत्थि तत्थ सङ्खारानं वुद्धि। यत्थ अत्थि सङ्खारानं वुद्धि, अत्थि तत्थ आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति। यत्थ अत्थि आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति, अत्थि तत्थ आयतिं जातिजरामरणं। यत्थ अत्थि आयतिं जाति-जरामरणं, ससोकं तं, भिक्खवे, सदरं सउपायासं ति वदामि।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, रजको वा चित्तकारको वा सति रजनाय वा लाखाय [R.102] वा हालिद्दिया वा नीलिया वा मञ्जिट्ठाय वा सुपरिमट्ठे वा फलके भित्तिया वा दुस्सपट्टे वा इत्थिरूपं वा पुरिसरूपं वा अभिनिम्मिनेय्य सब्बङ्गपच्चङ्गं; एवमेव खो, भिक्खवे, कबळीकारे चे आहारे अत्थि रागो अत्थि नन्दी अत्थि तण्हा, पतिट्ठितं तत्थ

''भिक्षुओ! ग्रास ग्रास कर खाये जाने वाले आहार में यदि आसक्ति (राग) बढती है तो वहाँ तृष्णा बढती है तथा वहाँ विज्ञान प्रतिष्ठित एवं वृद्धिङ्गत होता है। जब विज्ञान इस स्थिति में आ जाता है तो वहाँ नामरूप की अवक्रान्ति होने लगती है। जहाँ नामरूप की अवक्रान्ति होती है वहाँ संस्कारों की वृद्धि होना निश्चित है। जहाँ संस्कारों की वृद्धि होती है वहाँ जन्मपरम्परा के पाश में बंधना भी निश्चित है। जहाँ जन्मपरम्परा गले पड़ी तो भविष्य में उसके कारण जाति, जरामरण तो निश्चित ही है। जहाँ जाति जरामरण आये वहाँ केवल शोक, भय एवं पश्चात्ताप ही आगे पीछे रहते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।

''भिक्षुओ! स्पर्श....मन:सञ्चेतना....विज्ञानमय आहार के होने पर, उस आहार में यदि राग बढता है तो वहाँ तृष्णा....पूर्ववत्....पश्चात्ताप ही आगे पीछे रहते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।

''भिक्षुओ! जैसे कोई रंग का कार्य करने वाला या चित्रकार रंग, लाख, हल्दी, नील, मंजीठ आदि रंगों के व्यवस्थित होने पर किसी फलक (काष्ठपट्ट) या दीवार पर या किसी वस्त्र पर किसी स्त्री या पुरुष का चित्र बना दे; इसी तरह, भिक्षुओ! ग्रास ग्रास के

विञ्ञाणं विरूळ्हं। यत्थ पतिट्ठितं विञ्ञाणं विरूळ्हं, अत्थि तत्थ नामरूपस्स अवक्कन्ति। यत्थ अत्थि नामरूपस्स अवक्कन्ति, अत्थि तत्थ सङ्खारानं वुद्धि। यत्थ अत्थि सङ्खारानं वुद्धि, अत्थि तत्थ आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति। यत्थ अत्थि आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति, अत्थि तत्थ आयतिं जाति-जरामरणं। यत्थ अत्थि आयतिं [B.326] जातिजरामरणं, ससोकं तं, भिक्खवे, सदरं सउपायासं ति वदामि।

''फस्से चे, भिक्खवे, आहारे...पे०...मनोसञ्चेतनाय चे, भिक्खवे, आहारे... विञ्ञाणे चे, भिक्खवे, आहारे अत्थि रागो अत्थि नन्दी अत्थि तण्हा, पतिट्ठितं तत्थ विञ्ञाणं विरूळ्हं। यत्थ पतिट्ठितं विञ्ञाणं विरूळ्हं, अत्थि तत्थ नामरूपस्स अवक्कन्ति। यत्थ अत्थि नामरूपस्स अवक्कन्ति, अत्थि तत्थ सङ्खारानं वुद्धि। यत्थ अत्थि सङ्खारानं वुद्धि, अत्थि तत्थ आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति। यत्थ अत्थि आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति, अत्थि तत्थ आयतिं जातिजरामरणं। यत्थ अत्थि आयतिं [N.88] जातिजरामरणं, ससोकं तं, भिक्खवे, सदरं सउपायासं ति वदामि।

''कबळीकारे चे, भिक्खवे, आहारे नत्थि रागो नत्थि नन्दी नत्थि तण्हा, अप्पतिट्ठितं तत्थ विञ्ञाणं अविरूळ्हं। यत्थ अप्पतिट्ठितं विञ्ञाणं अविरूळ्हं, नत्थि तत्थ नामरूपस्स अवक्कन्ति। यत्थ नत्थि नामरूपस्स अवक्कन्ति, नत्थि तत्थ सङ्खारानं वुद्धि। यत्थ नत्थि सङ्खारानं वुद्धि, नत्थि तत्थ आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति। यत्थ नत्थि आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति, नत्थि तत्थ आयतिं जातिजरामरणं। यत्थ नत्थि आयतिं जातिजरामरणं, असोकं तं, भिक्खवे, अदरं अनुपायासं ति वदामि।

''फस्से चे, भिक्खवे, आहारे...पे०...मनोसञ्चेतनाय चे, भिक्खवे, आहारे...

आहार में यदि किसी की आसक्ति है, तृष्णा है तो वहाँ विज्ञान को प्रतिष्ठित एवं वृद्धिङ्गत ही समझो। जहाँ यह विज्ञान प्रतिष्ठित एवं वृद्धिङ्गत हुआ वहाँ नामरूप का प्रवेश होना निश्चित ही है। तब संस्कारों की वृद्धि भी होगी ही। यों, संस्कारों की वृद्धि होने पर, पुनर्जन्म को अवकाश निश्चित मिलेगा। तथा इसके परिणामस्वरूप जाति एवं जरामरण की परम्परा चल निकलेगी। इस जाति जरामरण के आरम्भ होते ही प्राणी शोक परिदेव....उपायास आदि आवृत कर लेंगे।

''स्पर्श आहार के होने पर भी....पूर्ववत्....मनःसञ्चेतना....विज्ञान के होने पर....पूर्ववत्....उपायास आदि आवृत कर लेंगे। ऐसा मैं कहता हूँ।

(इसके विपरीत) ''भिक्षुओ! जिस साधक को कवली (ग्रास) कृत आहार में आसक्ति नहीं है, तृष्णा नहीं है उसका विज्ञान प्रतिष्ठित या वृद्धिङ्गत नहीं होगा.... पूर्ववत्....उपायास भी नहीं होंगे—ऐसा मैं कहता हूँ।

[R.103] विञ्ञाणे चे, भिक्खवे, आहारे नत्थि रागो नत्थि नन्दी नत्थि तण्हा, अप्पतिट्ठितं तत्थ विञ्ञाणं अविरूळ्हं। तत्थ अप्पतिट्ठितं विञ्ञाणं अविरूळ्हं, नत्थि तत्थ नामरूपस्स अवक्कन्ति। यत्थ नत्थि नामरूपस्स अवक्कन्ति, नत्थि तत्थ सङ्खारानं वुद्धि। यत्थ नत्थि सङ्खारानं वुद्धि, नत्थि तत्थ आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति। यत्थ नत्थि आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति, नत्थि तत्थ आयतिं जातिजरामरणं। यत्थ नत्थि। आयतिं जाति-जरामरणं, असोकं तं, भिक्खवे, अदरं अनुपायासं ति वदामि।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, कूटागारं वा कूटागारसालं वा उत्तराय वा दक्खिणाय वा पाचीनाय वा वातपाना सुरिये उग्गच्छन्ते वातपानेन रस्मि पविसित्वा क्वास्स पतिट्ठिता" ति?

"पच्छिमायं, भन्ते, भित्तियं" ति।

"पच्छिमा चे, भिक्खवे, भित्ति नास्स, क्वास्स पतिट्ठिता" ति?

"पठवियं, भन्ते" ति।

"पठवी चे, भिक्खवे, नास्स क्वास्स पतिट्ठिता" ति?

"आपस्मिं, भन्ते" ति।

[B.327] "आपो चे, भिक्खवे, नास्स क्वास्स पतिट्ठिता" ति?

"अपतिट्ठिता, भन्ते" ति।

"स्पर्श आहार के होने पर, मनःसञ्चेतना....विज्ञान आहार के होने पर उसमें जिसकी आसक्ति नहीं है....पूर्ववत्....उपायासादि भी नहीं होंगे—ऐसा मैं कहता हूँ।

"जैसे, भिक्षुओ! किसी कूटागार या कूटागारयुक्त भवन के उत्तर दक्षिण या पूर्व दिशा की तरफ वाले झरोखे (गवाक्ष) से सूर्य की किरणें निकलने लगें तो वे कहाँ प्रतिष्ठित होंगी?"

"भन्ते! उसके पश्चिम तरफ वाली दीवाल पर।"

"भिक्षुओ! यदि उस कूटागारशाला के पश्चिम की तरफ दीवाल न हो तो वे किरणें कहाँ गिरेंगी?"

"भन्ते! पृथ्वी पर।"

"भिक्षुओ! वहाँ पृथ्वी भी न हो तो?"

"तब, वे किरणें जल पर गिरेंगी, भन्ते।"

"यदि वहाँ जल भी न हो, भिक्षुओ, तब?"

"तब, भन्ते! वे कहीं नहीं गिरेंगी।"

"कहीं भी नहीं, भन्ते!"

''एवमेव खो, भिक्खवे, कबळीकारे चे आहारे नत्थि रागो नत्थि नन्दी नत्थि तण्हा...पे०...।

''फस्से चे, भिक्खवे, आहारे...मनोसञ्चेतनाय चे, भिक्खवे, आहारे...[N.89] विञ्ञाणे चे, भिक्खवे, आहारे नत्थि रागो नत्थि नन्दी नत्थि तण्हा, अप्पतिट्ठितं तत्थ विञ्ञाणं अविरूळ्हं। यत्थ अप्पतिट्ठितं विञ्ञाणं अविरूळ्हं, नत्थि तत्थ नामरूपस्स अवक्कन्ति। यत्थ नत्थि नामरूपस्स अवक्कन्ति, नत्थि तत्थ सङ्खारानं वुद्धि। यत्थ नत्थि सङ्खारानं वुद्धि, नत्थि तत्थ आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति। यत्थ नत्थि आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति, नत्थि तत्थ आयतिं जातिजरामरणं। यत्थ नत्थि आयतिं जाति-[R.104] जरामरणं असोकं तं, भिक्खवे, अदरं अनुपायासं ति वदामी'' ति॥ ●

६५. नगरसुत्तं

६७. सावत्थियं विहरति। ''पुब्बे मे, भिक्खवे, सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि—'किच्छा वतायं लोको आपन्नो जायति च जीयति च मीयति च चवति च उपपज्जति च। अथ च पनिमस्स दुक्खमस्स निस्सरणं नप्पजानाति जरामरणस्स। कुदास्सु नाम इमस्स दुक्खस्स निस्सरणं पञ्ञायिस्सति जरामरणस्सा' ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति जरामरणं होति, किंपच्चया जरामरणं ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'जातिया खो सति जरामरणं होति, जातिपच्चया जरामरणं' ति।

''इसी तरह, भिक्षुओ! जिस साधक का कवलीकार आहार में न आसक्ति है, न तृष्णा, तब उसका विज्ञान कहीं भी न प्रतिष्ठित होगा, न वृद्धिङ्गत ही....पूर्ववत्....।

''भिक्षुओ! स्पर्श....मनःसञ्चेतना....विज्ञान आहार में जिसकी आसक्ति न हो, तृष्णा न हो तो उसका विज्ञान....उपायासरहित ही वह साधक होगा—ऐसा मेरा कहना है॥'' ●

६५. नगरसूत्र : : आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग सनातन बुद्धमार्ग

६७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! सम्बोधि प्राप्त करने से पूर्व, बोधिसत्त्व रहते हुए, कभी मेरे मन में यह विचार उठा—'अरे! यह संसार तो बहुत कठोर स्थिति में फँस गया है! यह (बार बार) जनमता है, बुड्ढा होता है, मरता है, इस देह से च्युत होता है, नया देह धारण करता है। यह यह भी नहीं जानता है कि उसका इस बार बार के जरामरण से कैसे छुटकारा होगा? कब यह इस दुःख से मुक्त होने का उपाय जान पायगा!' तब मुझको यह ध्यान में आया कि क्या होने पर यह जरामरण होता है या किस कारण यह जरामरण होता है? तब मुझको, इस पर सूक्ष्मतया विचार करने पर यह समझ

"तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति जाति होति...पे०... भवो होति...उपादानं होति...तण्हा होति...वेदना होति...फस्सो होति...सळायतनं होति...नामरूपं होति...किंपच्चया नामरूपं' ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'विञ्ञाणे खो सति नामरूपं होति, विञ्ञाण-पच्चया नामरूपं' ति। तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'किम्हि नु खो सति विञ्ञाणं होति, किंपच्चया विञ्ञाणं' ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'नामरूपे खो सति विञ्ञाणं होति, नामरूपपच्चया विञ्ञाणं' ति।

[N.90, B.328] "तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—पच्चुदावत्तति खो इदं विञ्ञाणं नामरूपम्हा न परं गच्छति। एत्तावता जायेथ वा जीयेथ वा मीयेथ वा चवेथ वा उपपज्जेथ वा, यदिदं नामरूपपच्चया विञ्ञाणं; विञ्ञाणपच्चया नामरूपं; नामरूप-पच्चया सळायतनं; सळायतनपच्चया फस्सो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्ख-
[R105] न्धस्स समुदयो होति। 'समुदयो, समुदयो' ति खो मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि ञाणं उदपादि पञ्ञा उदपादि विज्जा उदपादि आलोको उदपादि।

में आया कि जाति के होने पर जरामरण होता है तथा जाति के कारण ही जरामरण होता है।

"इससे आगे बढ कर, मैं यों चिन्तन करने लगा—किसके होने पर यह जाति होती है?....भव....उपादान....तृष्णा....वेदना....स्पर्श....षडायतन....नामरूप होता है? किस कारण नामरूप होता है? तब भिक्षुओ! सूक्ष्मता से विचार करने पर मुझे यह बात समझ में आयी—'विज्ञान के होने पर नामरूप होता है'। अर्थात् विज्ञान के कारण नामरूप होता है। तभी यह भी मैं समझ पाया—'नामरूप के होने पर विज्ञान का उत्पाद होता है।' अर्थात् नामरूप के कारण विज्ञान उत्पन्न होता है।

"आगे, मुझे यह भी विचार हुआ—'नामरूप से ही यह विज्ञान लौट जाता है, इससे आगे यह नहीं बढता। इतने से ही यह प्राणी जनमता है, वृद्ध होता है, मरता है, च्युत होता है, पुन: उत्पन्न होता है। यही 'नामरूप के कारण विज्ञान का उत्पाद' कहलाता है। तब विज्ञान के कारण नामरूप, नामरूप के कारण षडायतन, षडायतन के कारण स्पर्श....पूर्ववत्....यों, इस समस्त दु:खस्कन्ध का समुदय होता है। 'समुदय' (उठ खड़ा होना=उत्पाद) 'समुदय'—यह मैं बहुत समय से सुनता आ रहा था, ऐसा इन पहले न सुने गये धर्मों के विषय में यह समझ (दृष्टि) आयी, ज्ञान हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, मेरे सामने एक विशेष आलोक (प्रकाश) फैल गया॥

''तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति, जरामरणं न होति; किस्स निरोधा जरामरणनिरोधो' ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'जातिया खो असति, जरामरणं न होति; जातिनिरोधा जातिजरामरणनिरोधो' ति। तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति जाति न होति...पे०...भवो न होति...उपादानं न होति...तण्हा न होति...वेदना न होति...फस्सो न होति...सळायतनं न होति...नामरूपं न होति। किस्स निरोधा नामरूपनिरोधो' ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'विञ्ञाणे खो असति, नामरूपं न होति; विञ्ञाणनिरोधा नामरूप-निरोधो' ति।

''तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'किम्हि नु खो असति विञ्ञाणं न होति; किस्स निरोधा विञ्ञाणनिरोधो' ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा अहु पञ्ञाय अभिसमयो—'नामरूपे खो असति, विञ्ञाणं न होति; नामरूपनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो' ति।

''तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—अधिगतो खो म्यायं मग्गो बोधाय यदिदं-नामरूपनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो; विञ्ञाणनिरोधा नामरूपनिरोधो; नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो; सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्ख-क्खन्धस्स निरोधो होति। 'निरोधो, निरोधो' ति खो मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु

''भिक्षुओ! तब मेरे मन में यह विचार हुआ—'तो किसके न होने पर यह जरामरण नहीं होता? किसका निरोध होने से इस जरामरण का निरोध हो जाता है? इस विषय में सूक्ष्मतया चिन्तन करने पर यह समझ में आया—'जाति के न होने पर जरामरण नहीं होता। अर्थात् जाति के निरोध से जरामरण का निरोध भी हो जाता है। तब मैंने यह विचार किया—'किसके न होने पर जाति नहीं होती?....भव नहीं होता? उपादान नहीं होता? तृष्णा....वेदना....स्पर्श....षडायतन....नामरूप नहीं होता? किसके निरोध से नामरूप का निरोध हो जाता है? एतदनन्तर, मुझे यह समझ में आया—'विज्ञान के न होने पर नामरूप नहीं होता' अर्थात् उसका निरोध हो जाता है।

''....भिक्षुओ! किसके न होने पर विज्ञान नहीं होता, किसके निरोध से विज्ञान का निरोध होता है? तब मुझे समझ में आया—'नामरूप के न होने पर विज्ञान नहीं होता, अर्थात् नामरूप के निरोध होने से विज्ञान का निरोध होता है।

''तब मुझे यह विचार हुआ—'मैने बोध (ज्ञान) का मार्ग जान लिया है। वह यही है—'नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है तथा विज्ञान के निरोध से नामरूप

धम्मेसु चक्खुं उदपादि ञाणं उदपादि पञ्ञा उदपादि विज्जा उदपादि आलोको उदपादि।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो अरञ्ञे पवने चरमानो पस्सेय्य पुराणं मग्गं [N.91, B.329, R.106] पुराणञ्जसं पुब्बकेहि मनुस्सेहि अनुयातं। सो तमनुगच्छेय्य। तमनुगच्छन्तो पस्सेय्य पुराणं नगरं पुराणं राजधानिं पुब्बकेहि मनुस्सेहि अज्झावुत्थं आरामसम्पन्नं वनसम्पन्नं पोक्खरणीसम्पन्नं उद्धापवन्तं रमणीयं। अथ खो सो, भिक्खवे, पुरिसो रञ्ञो वा राजमहामत्तस्स वा आरोचेय्य—'यग्घे, भन्ते, जानेय्यासिअहं अद्दसं अरञ्ञे पवने चरमानो पुराणं मग्गं पुराणञ्जसं पुब्बकेहि मनुस्सेहि अनुयातं तमनुगच्छिं। तमनुगच्छन्तो अद्दसं पुराणं नगरं पुराणं राजधानिं पुब्बकेहि मनुस्सेहि अज्झावुत्थं आरामसम्पन्नं वनसम्पन्नं पोक्खरणीसम्पन्नं उद्धापवन्तं रमणीयं। तं, भन्ते, नगरं मापेही' ति। अथ खो सो, भिक्खवे, राजा वा राजमहामत्तो वा तं नगरं मापेय्य। तदस्स नगरं अपरेन समयेन इद्धं चेव फीतं च बाहुजञ्ञं आकिण्णमनुस्सं वुद्धिवेपुल्लप्पत्तं। एवमेव ख्वाहं, भिक्खवे, अद्दसं पुराणं मग्गं पुराणञ्जसं पुब्बकेहि सम्मासम्बुद्धेहि अनुयातं।

"कतमो च सो, भिक्खवे, पुराणमग्गो पुराणञ्जसो पुब्बकेहि सम्मासम्बुद्धेहि

का निरोध हो जाता है। नामरूप के निरोध से षडायतन का निरोध, षडायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध....पूर्ववत्....यों इस समस्त दु:खस्कन्ध का निरोध हो जाता है।

"भिक्षुओ! ऐसा चिन्तन करते करते इस 'निरोध' के विषय में मेरी आँखें खुल गयीं। अपूर्व ज्ञान हो गया।....एक नवीन प्रकाश मेरे सामने फैल गया।

"जैसे, भिक्षुओ! कोई पुरुष किसी वन में घूमता हुआ कोई पुराना मार्ग देखे, पुरानी पगडण्डी देखे, जिस पर बहुत से लोगों के चलने के पदचिह्न हों। वह भी उस (मार्ग) का अनुसरण करे। वह उसका अनुसरण करता हुआ किसी पुराने नगर को, जो किसी राज्य की राजधानी था, देखे। जिसमें बहुत सी जनता रहती हो, जिसमें स्थान स्थान पर बाग बगीचे हों, पुष्करणियाँ हो, फूल पौधे हों, वह सब तरह से हरा भरा एवं देखने में सुन्दर हो। तब, भिक्षुओ! वह पुरुष किसी राजा या राजमहामात्य से यह कहे—'मैंने किसी वन में घूमते हुए एक पुराना मार्ग देखा, उस पर चलते हुए मैंने एक सुन्दर नगर....पूर्ववत्....देखा, कृपया वैसा ही नगर आप भी बनवा ले।' वह राजा या राजमहामात्य उस पुरुष की प्रार्थना से प्रभावित होकर वैसा ही नगर बनवा दे। समय पाकर उसमें बहुसंख्यक जनता रहने लगे, वह धनधान्य से सम्पन्न हो, वह नगर भी सब सुविधाओं से युक्त बन जाय। इसी तरह, भिक्षुओ! मैंने उस सरल एवं सीधे सनातन मार्ग का साक्षात्कार किया, जिसका कि अनुसरण पूर्व सम्यक्सम्बुद्ध भी कर चुके थे।

अनुयातो? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथीदंसम्मादिट्ठि...पे०...सम्मा-समाधि। अयं खो सो, भिक्खवे, पुराणमग्गो पुराणञ्जसो पुब्बकेहि सम्मासम्बुद्धेहि अनुयातो, तमनु-गच्छिं; तमनुगच्छन्तो जरामरणं अब्भञ्ञासिं; जरामरणसमुदयं अब्भ-ञ्ञासिं; जरामरणनिरोधं अब्भञ्ञासिं; जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं अब्भञ्ञासिं। तमनुगच्छिं; तमनुगच्छन्तो जातिं अब्भञ्ञासिं...पे०...भवं अब्भञ्ञासिं...उपादानं अब्भञ्ञासिं...तण्हं अब्भञ्ञासिं...वेदनं अब्भञ्ञासिं...फस्सं अब्भञ्ञासिं...सळायतनं अब्भञ्ञासिं...नामरूपं अब्भञ्ञासिं...विञ्ञाणं अब्भञ्ञासिं। तमनुगच्छिं; तमनु-गच्छन्तो सङ्खारे अब्भञ्ञासिं; सङ्खारसमुदयं अब्भञ्ञासिं; सङ्खारनिरोधं अब्भञ्ञासिं; सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं अब्भञ्ञासिं। तदभिञ्ञाय आचिक्खिं भिक्खूनं [R.107] भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकानं। तयिदं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियं इद्धं चेव फीतं च वित्थारिकं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं'' ति॥ •

६६. सम्मससुत्तं

६८. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कुरूसु विहरति कम्मासदम्मं [N.92, B.330] नाम कुरूनं निगमो। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते''

आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग—''भिक्षुओ! वह कौन सा सीधा एवं सरल मार्ग है, जिसका पूर्व सम्यक्सम्बुद्धों ने भी अनुसरण किया है? भिक्षुओ! वह है यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग। जैसे—१.सम्यग्दृष्टि,....पूर्ववत्....८. सम्यक्समाधि। भिक्षुओ! यह है वह पुराना सीधा एवं सरल सनातन मार्ग जिसका पूर्व सम्यक्सम्बुद्धों ने अनुसरण किया है तथा आज मैं भी उसी का अनुसरण कर रहा हूँ। उसका अनुसरण करते हुए मैंने जरामरण, जरामरणसमुदय का अभ्यास (साक्षात्कार) किया, जरामरणनिरोध एवं जरामरणनिरोधगामी मार्ग (प्रतिपदा) का अभ्यास किया। उसका अभ्यास करते हुए जाति के विषय में....भव....उपादान....तृष्णा....वेदना.... स्पर्श....षडायतन....नामरूप....विज्ञान के विषय में अभ्यास किया, तथा उसका अनुगमन किया। उसका अभ्यास करते हुए संस्कार एवं संस्कारनिरोधगामिनी प्रतिपदा का अभ्यास करते हुए उसका साक्षात्कार करने के बाद ही मैंने भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों एवं उपासिकाओं को इसका उपदेश किया। भिक्षुओ! इस तरह यह धर्मसाधना का उपाय सरल है, सीधा है, स्पष्ट है, सुविस्तृत है, सर्वजनग्राह्य (बाहुजञ्ञ) है, स्वयं साधना करने योग्य है, देवता और मनुष्य सभी के लिये सुप्रकाशित है॥ •

६६. सम्मर्षणसूत्र : : आध्यात्मिक चिन्तन

६८. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) कुरुदेश **कम्मासदम्म** नामक

ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—"सम्मसथ नो तुम्हे, भिक्खवे, अन्तरं सम्मसं" ति। एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"अहं खो, भन्ते, सम्मसामि अन्तरं सम्मसं" ति।

"यथा कथं पन त्वं, भिक्खु, सम्मससि अन्तरं सम्मसं" ति?

अथ खो सो भिक्खु ब्याकासि। यथा सो भिक्खु ब्याकासि न सो भिक्खु भगवतो चित्तं आराधेसि।

एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"एतस्स, भगवा, कालो; एतस्स, सुगत, कालो; यं भगवा अन्तरं सम्मसं भासेय्य। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती" ति।

"तेन हानन्द, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"इध, भिक्खवे, भिक्खु सम्मसमानो सम्मसति अन्तरं सम्मसं—'यं खो इदं अनेक-विधं नानप्पकारकं दुक्खं लोके उप्पज्जति जरामरणं। इदं खो दुक्खं किंनिदानं [R.108] किं समुदयं किंजातिकं किंपभवं, किस्मिं सति जरामरणं होति, किस्मिं असति जरामरणं न होती' ति? सो सम्मसमानो एवं जानाति—'यं खो इदं अनेकविधं

कुरुओं के किसी कस्बे में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को एकत्र कर उपदेश किया—"भिक्षुओ! तुम अपने अन्तर्हृदय में ही बार बार गहन चिन्तन करो"। यह सुन कर एक भिक्षु बोला—"भन्ते! मैं तो पहले ही गम्भीर चिन्तन कर रहा हूँ, अन्तर्मन्थन कर रहा हूँ।" भगवान् ने पूछा—"भिक्षु! तुम कैसे अन्तर्मन्थन करते हो?" तब भिक्षु ने अपने अन्तर्मन्थन की विधि भगवान् को बता दी; परन्तु भगवान् उससे सन्तुष्ट नहीं हुए।

तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से निवेदन किया—"भगवन्! यही अवसर है जब भगवान् स्वयं श्रीमुख से इसका प्रवचन करें। उसे सुनकर हम भिक्षु उसी पद्धति से अन्तर्मन्थन कर सकेंगे।

"तो, आनन्द! ध्यानपूर्वक सुनो, सुन कर मन में भली भाँति धारण कर लो। मैं बताता हूँ।"

"अच्छा, भन्ते!"

भगवान् बोले—"भिक्षुओ! यहाँ कोई साधक आध्यात्मिक चिन्तन करता हुआ यों गहन चिन्तन करता है—'यह जो लोक में नाना प्रकार का दु:ख उत्पन्न होता है, जिसे 'जरामरण' कहते हैं, इसका निदान क्या है?....पूर्ववत्....जरामरण नहीं होता?' वह यों

नानप्पकारकं दुक्खं लोके उप्पज्जति जरामरणं। इदं खो दुक्खं उपधिनिदानं उपधिसमुदयं उपधिजातिकं उपधिपभवं, उपधिस्मिं सति जरामरणं होति, उपधिस्मिं असति जरामरणं न होती' ति। सो जरामरणं च पजानाति जरामरणसमुदयं च पजानाति जरामरणनिरोधं च पजानाति या च जरामरणनिरोधसारुप्पगामिनी पटिपदा तं च पजानाति। तथापटिपन्नो च होति अनुधम्मचारी। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु सब्बसो सम्मा दुक्खक्खयाय पटिपन्नो जरामरणनिरोधाय।

"अथापरं सम्मसमानो सम्मसति अन्तरं सम्मसं—'उपधि पनायं [N.93] किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो, किस्मिं सति उपधि होति, किस्मिं असति उपधि न होती' ति। सो सम्मसमानो एवं जानाति—'उपधि तण्हानिदानो तण्हासमुदयो तण्हाजातिको तण्हापभवो, तण्हाय सति उपधि होति, तण्हाय असति उपधि न होती' ति। सो उपधिं च पजानाति उपधिसमुदयं च पजानाति उपधिनिरोधं च [B.331] पजानाति या च उपधिनिरोधसारुप्पगामिनी पटिपदा तं च पजानाति। तथा पटिपन्नो च होति अनुधम्मचारी। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु सब्बसो सम्मा दुक्खक्खयाय पटिपन्नो उपधिनिरोधाय।

"अथापरं सम्मसमानो सम्मसति अन्तरं सम्मसं—'तण्हा पनायं कत्थ उप्पज्जमाना उप्पज्जति, कत्थ निविसमाना निविसती' ति? सो सम्मसमानो एवं

अन्तर्मन्थन करता हुआ जान लेता है कि पञ्चस्कन्धों के कारण जरामरण होता है....। यों वह जरामरण को, जरामरणसमुदय को, जरामरणनिरोध को, जरामरणनिरोधगामी मार्ग को जानता है। उसको जानता हुआ धर्माभ्यास करता है। भिक्षुओ! यही भिक्षु सर्वथा सम्यग्दु:खक्षय के लिये तथा जरामरणनिरोध के लिये सम्यक्प्रतिपन्न कहलाता है।

"इसके बाद भी, भिक्षुओ! वह साधक भिक्षु अन्तर्मन्थन करता है कि यह पञ्चस्कन्ध किस कारण उत्पन्न होता है? किसके होने पर होता है? किसके न होने पर यह नहीं होता? तब आगे अन्तर्मन्थन से उसे ज्ञात होता है यह पञ्चस्कन्ध तृष्णा के कारण उत्पन्न होता है....तृष्णा के होने पर यह होता है तथा तृष्णा के न होने पर इसका निरोध हो जाता है। इस तरह वह इस पञ्चस्कन्ध की उत्पत्ति को, इसकी उत्पत्ति के कारण को, इसकी उत्पत्ति के निरोध को तथा इसकी उत्पत्ति के निरोधगामी मार्ग को भी जान जाता है। वैसा जान कर वह धर्मानुसार उसके अभ्यास में लग जाता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु साधक सर्वथा दु:खक्षय के लिये प्रयास करता हुआ इस पञ्चस्कन्ध के निरोध के लिये सतत प्रयत्न करने वाला कहलाता है।

"फिर वह अन्तर्मन्थन करता यह विचार करता है—यह तृष्णा कहाँ उत्पन्न होती

जानाति—यं खो लोके पियरूपं सातरूपं एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति। किञ्च लोके पियरूपं सातरूपं? चक्खुं लोके पियरूपं, सातरूपं। एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति, एत्थ निविसमाना निविसति। सोतं लोके [R.109] पियरूपं सातरूपं...पे०...घानं लोके पियरूपं सातरूपं...जिव्हा लोके पियरूपं सातरूपं...कायो लोके पियरूपं सातरूपं...मनो लोके पियरूपं सातरूपं एत्थेसा तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति एत्थ निविसमाना निविसति।

"ये हि केचि, भिक्खवे, अतीतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा यं लोके पियरूपं सातरूपं तं निच्चतो अद्दक्खुं सुखतो अद्दक्खुं अत्ततो अद्दक्खुं आरोग्यतो अद्दक्खुं खेमतो अद्दक्खुं ते तण्हं वड्ढेसुं। ये तण्हं वड्ढेसुं ते उपधिं वड्ढेसुं। ये उपधिं वड्ढेसुं ते दुक्खं वड्ढेसुं। ये दुक्खं वड्ढेसुं ते न परिमुच्चिंसु जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, न परिमुच्चिंसु दुक्खस्मा ति वदामि।

"ये पि हि केचि, भिक्खवे, अनागतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा यं लोके पियरूपं सातरूपं तं निच्चतो दक्खिस्सन्ति सुखतो दक्खिस्सन्ति अत्ततो दक्खिस्सन्ति आरोग्यतो दक्खिस्सन्ति खेमतो देक्खिस्सन्ति ते तण्हं वड्ढिस्सन्ति। ये तण्हं वड्ढिस्सन्ति ते उपधिं वड्ढिस्सन्ति। ये उपधिं वड्ढिस्सन्ति ते दुक्खं वड्ढिस्सन्ति। ये दुक्खं वड्ढिस्सन्ति ते न परिमुच्चिस्सन्ति जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, न परिमुच्चिस्सन्ति दुक्खस्मा ति वदामि।

हुई उत्पन्न होती है....वह जान लेता है—'लोक में जो सुन्दर एवं मनोहर (लुभावने) विषय हैं उन्हीं में तृष्णा उत्पन्न होती है, तथा उन्हीं में रम जाती है। लोक में चक्षुरिन्द्रिय के जो सुन्दर एवं मनोहर रूप हैं यह तृष्णा वहाँ उत्पन्न होती है, उन्हीं में रम जाती है'। श्रोत्रेन्द्रिय के लिये सुन्दर एवं मनोहर शब्द....घ्राणेन्द्रिय के लिये सुन्दर मनोहर गन्ध.... जिह्वेन्द्रिय के लिये सुन्दर, मनोहर रस....कायेन्द्रिय सुन्दर, मनोहर स्प्रष्टव्य विषय एवं मनइन्द्रिय के लिये सुन्दर एवं मनोहर धर्म हैं उन्हीं में यह तृष्णा उत्पन्न होती है तथा वहीं रम जाती है।

"भिक्षुओ! इस लोक में जो भी प्राचीन काल में श्रमण या ब्राह्मण साधक हुए हैं उनमें से कुछ इस संसार में प्रिय एवं मनोहर लगने वाले सभी पदार्थों को नित्य, सुखमय, तथा आत्ममय एवं स्वास्थ्यदायक मान बैठे। अतः उन पदार्थों में उनकी तृष्णा उत्पन्न हुई, तथा बढने लगी। तृष्णा के बढने से वह उपधि बढी, उपधि बढने से दुःख बढा। यों वे जाति, जरा, मरण शोक....उपायास से मुक्त न हो पाये—ऐसा मैं कहता हूँ।

"भिक्षुओ! भविष्यत् (अनागत) काल में भी जो श्रमण ब्राह्मण....पूर्ववत्....उपायास से मुक्त न हो पायेंगे—ऐसा मैं मानता हूँ।

"ये पि हि केचि, भिक्खवे, एतरहि समणा वा ब्राह्मणा वा यं लोके [N.94] पियरूपं सातरूपं तं निच्चतो पस्सन्ति सुखतो पस्सन्ति अत्ततो पस्सन्ति आरोग्यतो पस्सन्ति खेमतो पस्सन्ति। ते तण्हं वड्ढेन्ति। ये तण्हं वड्ढेन्ति ते उपधिं वड्ढेन्ति। ये [B.332] उपधिं वड्ढेन्ति ते दुक्खं वड्ढेन्ति। ये दुक्खं वड्ढेन्ति ते न परिमुच्चन्ति जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, न परिमुच्चन्ति दुक्खस्मा ति वदामि।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, आपानीयकंसो वण्णसम्पन्नो गन्धसम्पन्नो [R.110] रससम्पन्नो। सो च खो विसेन संसट्ठो। अथ पुरिसो आगच्छेय्य घम्माभितत्तो घम्मपरेतो किलन्तो तसितो पिपासितो। तमेनं एवं वदेय्युं—'अयं ते, अम्भो पुरिस, आपानीयकंसो वण्णसम्पन्नो गन्धसम्पन्नो रससम्पन्नो; सो च खो विसेन संसट्ठो। सचे आकङ्खसि, पिव। पिवतो हि खो तं छादेस्सति वण्णेन पि गन्धेन पि रसेन पि, पिवित्वा च पन ततोनिदानं मरणं वा निगच्छसि मरणमत्तं वा दुक्खं' ति। सो तं आपानीयकंसं सहसा अप्पटिसङ्खा पिवेय्य, नप्पटिनिस्सज्जेय्य। सो ततोनिदानं मरणं वा निगच्छेय्य मरणमत्तं वा दुक्खं। एवमेव खो, भिक्खवे, ये हि केचि अतीतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा यं लोके पियरूपं...पे०...अनागतमद्धानं...पे०... एतरहि समणा वा ब्राह्मणा वा यं लोके पियरूपं सातरूपं तं निच्चतो पस्सन्ति सुखतो पस्सन्ति अत्ततो पस्सन्ति आरोग्यतो पस्सन्ति खेमतो पस्सन्ति, ते तण्हं वड्ढेन्ति। ये तण्हं वड्ढेन्ति ते उपधिं वड्ढेन्ति। ये उपधिं वड्ढेन्ति ते दुक्खं वड्ढेन्ति। ये दुक्खं वड्ढेन्ति ते न परिमुच्चन्ति जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, न परिमुच्चन्ति दुक्खस्मा ति वदामि।

"भिक्षुओ! वर्तमान काल में भी जो श्रमण ब्राह्मण....पूर्ववत्....उपायास से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।

"भिक्षुओ! जैसे किसी कटोरे (जलपात्र) में रंग, गन्ध एवं रस से युक्त जल भरा हो, परन्तु साथ ही वह विषसम्पृक्त हो; वहाँ कोई ग्रीष्म की तपती धूप में थका माँदा और पिपासित कोई पुरुष आवे, उस पुरुष को कोई यों कहे—'हे पुरुष! यह जलपात्र तुम्हारे लिये है, यह रंग....विष से सम्पृक्त है, यदि तुम चाहो तो इसका जल पी सकते हो। पीते समय यह रंग गन्ध एवं स्वाद में तो प्रिय लगेगा परन्तु पीने के बाद, इसमें विष मिला होने के कारण, या तो तुम्हारा देहपात हो जायगा, या फिर तुम्हें मरणान्तक दुःख अनुभूत होगा।' यह सुन कर भी वह पुरुष सहसा उस पात्र को उठा कर उसका सम्पूर्ण जल पी डाले, स्वयं पर नियन्त्रण न रखे तो वह या तो तत्काल मर जायगा, या मरणान्तक दुःख अनुभव करेगा।

"ये च खो केचि, भिक्खवे, अतीतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा यं लोके पियरूपं सातरूपं तं अनिच्चतो अद्दक्खुं दुक्खतो अद्दक्खुं अनत्ततो अद्दक्खुं रोगतो अद्दक्खुं भयतो अद्दक्खुं, ते तण्हं पजहिंसु। ये तण्हं पजहिंसु ते उपधिं पजहिंसु। ये उपधिं पजहिंसु ते दुक्खं पजहिंसु। ये दुक्खं पजहिंसु ते परिमुच्चिंसु जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, परिमुच्चिंसु दुक्खस्मा ति वदामि।

"ये पि हि केचि, भिक्खवे, अनागतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा यं लोके [N.95, R.111] पियरूपं सातरूपं तं अनिच्चतो दक्खिस्सन्ति दुक्खतो दक्खिस्सन्ति [B.333] अनत्ततो दक्खिस्सन्ति रोगतो दक्खिस्सन्ति भयतो दक्खिस्सन्ति, ते तण्हं पजहिस्सन्ति। ये तण्हं पजहिस्सन्ति...पे०...परिमुच्चिस्सन्ति दुक्खस्मा ति वदामि।

"ये पि हि केचि, भिक्खवे, एतरहि समणा वा ब्राह्मणा वा यं लोके पियरूपं सातरूपं तं अनिच्चतो पस्सन्ति दुक्खतो पस्सन्ति अनत्ततो पस्सन्ति रोगतो पस्सन्ति भयतो पस्सन्ति, ते तण्हं पजहन्ति। ये तण्हं पजहन्ति ते उपधिं पजहन्ति। ये उपधिं पजहन्ति ते दुक्खं पजहन्ति। ये दुक्खं पजहन्ति ते परिमुच्चन्ति जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, परिमुच्चन्ति दुक्खस्मा ति वदामि।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, आपानीयकंसो वण्णसम्पन्नो गन्धसम्पन्नो रससम्पन्नो। [R.112] सो च खो विसेन संसट्ठो। अथ पुरिसो आगच्छेय्य घम्माभितत्तो घम्मपरेतो किलन्तो तसितो पिपासितो। तमेनं एवं वदेय्युं—'अयं ते, अम्भो पुरिस, आपानीयकंसो वण्णसम्पन्नो गन्धसम्पन्नो रससम्पन्नो सो च खो विसेन संसट्ठो। सचे आकङ्खसि पिव।

"इसी तरह, भिक्षुओ! जो भी अतीत में, अनागत में या वर्तमान काल में ऐसे श्रमण ब्राह्मण साधक हुए हैं, होंगे या हैं जिन्होंने इस संसार के पदार्थों को प्रिय एवं मनोहर रूप में देख कर उन्हें नित्य, सुखमय, आत्ममय, या स्वास्थ्यदायक तथा मङ्गलकारक माना है उनकी उनके प्रति तृष्णा बढेगी ही, तृष्णा के पञ्चस्कन्ध तथा पञ्चस्कन्धों के कारण वे इन जाति जरामरण....उपायासों से कभी मुक्त न हो पायँगें—ऐसा मैं कहता हूँ।

(इसके विपरीत)"भिक्षुओ! जो भी अतीत में....अनागत में....वर्तमान में श्रमण ब्राह्मण....हैं जिन्होंने इन सांसारिक पदार्थों को प्रिय एवं मनोहर रूप में न देखकर इन्हें अनित्य, अनात्म, दुःखदायक, रोगकारक तथा अमङ्गलकारक ही माना है, उनकी इनमें किसी प्रकार की तृष्णा' नहीं हो सकती; बढने की बात तो कौन कहे! अतः वे जाति जरामरण....उपायास से छुटकारा पा जायँगें, दुःख से मुक्त हो जायँगें—ऐसा मैं कहता हूँ।

"भिक्षुओ! जैसे किसी कटोरे में....पूर्ववत्....या तुम्हें मरणान्त दुःख अनुभूत

पिवतो हि खो तं छादेस्सति वण्णेन पि गन्धेन पि रसेन पि; पिवित्वा च पन ततोनिदानं मरणं वा निगच्छसि मरणमत्तं वा दुक्खं' ति। अथ खो, भिक्खवे, तस्स पुरिसस्स एवमस्स—'सक्का खो मे अयं सुरापिपासिता पानीयेन वा विनेतुं दधिमण्डकेन वा विनेतुं भट्ठलोणिकाय वा विनेतुं लोणसोवीरकेन वा विनेतुं, न त्वेवाहं तं पिवेय्यं यं मम अस्स दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया' ति। सो तं आपानीयकंसं पटिसङ्खा न पिवेय्य, पटिनिस्सज्जेय्य। सो ततोनिदानं न मरणं वा निगच्छेय्य मरणमत्तं वा दुक्खं। एवमेव खो, भिक्खवे, ये हि केचि अतीतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा यं लोके पियरूपं सातरूपं तं अनिच्चतो अद्दक्खुं दुक्खतो अद्दक्खुं अनत्ततो अद्दक्खुं रोगतो अद्दक्खुं भयतो अद्दक्खुं, ते तण्हं पजहिंसु। ये तण्हं पजहिंसु ते उपधिं पजहिंसु। ये उपधिं पजहिंसु ते दुक्खं पजहिंसु। ये दुक्खं पजहिंसु ते परिमुच्चिंसु जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, परिमुच्चिंसु दुक्खस्मा ति वदामि।

''ये पि हि केचि, भिक्खवे, अनागतमद्धानं...पे०...एतरहि [N.96, B.334] समणा वा ब्राह्मणा वा यं लोके पियरूपं सातरूपं तं अनिच्चतो पस्सन्ति दुक्खतो पस्सन्ति अनत्ततो पस्सन्ति रोगतो पस्सन्ति भयतो पस्सन्ति, ते तण्हं पजहन्ति। ये तण्हं पजहन्ति ते उपधिं पजहन्ति। ये उपधिं पजहन्ति ते दुक्खं पजहन्ति। ये दुक्खं पजहन्ति ते परिमुच्चन्ति जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, परिमुच्चन्ति दुक्खस्मा ति वदामी'' ति॥ ●

होगा। यह सुन कर वह घर्मतप्त पुरुष यह विचार करे—'मेरी यह पिपासा अन्य साधन से भी पूर्ण हो सकती है, जैसे साधारण जल से, दही से, लस्सी से, नींबू मिले जल से या जीरा नमक मिले जल से। अत: मैं इस विषमिश्रित जल को न पीऊँगा जो मेरे लिये चिरकाल तक अहितकर होगा।'' यों वह उस विषमिश्रित जल को न पीवे, दूर से ही त्याग दे।

''इसी प्रकार, भिक्षुओ! जो पुरा काल में साधक प्रिय एवं मनोहर रूप को अनित्य अनात्म तथा दु:खमय समझते थे उन्होंने तृष्णा का व्यामोह छोड़ दिया। जिन्होंने तृष्णा को त्याग दिया उन्हें उपधि से छुटकारा मिल गया। जो उपधि से मुक्त हुए वे दु:ख से मुक्त हो गये। जो दु:ख से मुक्त हो गये उनको जाति, जरामरण, शोक....उपायास से भी मुक्ति मिल गयी—ऐसा मैं कहता हूँ।

''इसी प्रकार अनागत काल में....वर्तमान काल में जो साधक प्रिय एवं मनोहर रूप को....वे दु:ख से मुक्त हो जाते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ''॥ ●

६७. नळकलापीसुत्तं

६९. एकं समयं आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाकोट्ठिको बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये। अथ खो आयस्मा महाकोट्ठिको सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा महाकोट्ठिको आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"किं नु खो, आवुसो सारिपुत्त, सयङ्कतं जरा-मरणं, परङ्कतं जरामरणं, सयङ्कतं च परङ्कतं च जरामरणं, उदाहु [R.113] असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं जरामरणं" ति?

"न खो, आवुसो कोट्ठिक, सयङ्कतं जरामरणं, न परङ्कतं जरामरणं, न सयङ्कतं च परङ्कतं च जरामरणं, नापि असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं जरामरणं। अपि च, जातिपच्चया जरामरणं" ति।

"किं नु खो, आवुसो सारिपुत्त, सयङ्कता जाति, परङ्कता जाति, सयङ्कता च परङ्कता च जाति, उदाहु असयङ्कारा अपरङ्कारा अधिच्चसमुप्पन्ना जाती" ति?

"न खो, आवुसो कोट्ठिक, सयङ्कता जाति, न परङ्कता जाति, न सयङ्कता च परङ्कता च जाति, नापि असयङ्कारा अपरङ्कारा अधिच्चसमुप्पन्ना जाति। अपि च, भव-पच्चया जाती" ति।

"किं नु खो, आवुसो सारिपुत्त, सयङ्कतो भवो...पे०...सयङ्कतं उपादानं...

---

६७. नड़कलापसूत्र : : जरामरणोत्पत्ति नियम

६९. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् महाकौष्ठिक वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब आयुष्मान् महाकौष्ठिक ने समाधि से उठ कर आयुष्मान् सारिपुत्र के पास पहुँच कर उनसे यों संवाद किया—"आयुष्मन् सारिपुत्र! क्या यह जरामरण स्वयंकृत है? या परकृत? या स्व एवं पर—उभयकृत है? या न स्वकृत न परकृत—यों अनुभयकृत है? अर्थात् अकारण हठात् उत्पन्न हो गया है।

(सारिपुत्र ने कहा—) "आयुष्मन् कौष्ठिक! यह जरामरण न स्वकृत है....पूर्ववत्....न हठात् उत्पन्न हो गया है; अपितु जाति के कारण यह जरामरण होता है।"

(कौष्ठिक—) "तो क्या यह जाति स्वयं कृत है?....या हठात् उत्पन्न हो गयी है?"

(सारिपुत्र—) "नहीं, आयुष्मन् कौष्ठिक! यह जाति न स्वयंकृत है....न हठात् उत्पन्न है; अपितु भव के कारण यह 'जाति' होती है।"

(कौष्ठिक—) "यह भव स्वयंकृत है?....उपादान स्वयंकृत है?....तृष्णा स्वयंकृत

सयङ्कता तण्हा...सयङ्कता वेदना...सयङ्कतो फस्सो...सयङ्कतं सळायतनं...सयङ्कतं नामरूपं, परङ्कतं नामरूपं, सयङ्कतं च परङ्कतं च नामरूपं, उदाहु [N.97, B.335] असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं नामरूपं'' ति?

''न खो, आवुसो कोट्ठिक, सयङ्कतं नामरूपं, न परङ्कतं नामरूपं, न सयङ्कतं च परङ्कतं च नामरूपं, नापि असयङ्कारं अपरङ्कारं, अधिच्चसमुप्पन्नं नामरूपं। अपि च, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं'' ति।

''कि नु खो, आवुसो सारिपुत्त, सयङ्कतं विञ्ञाणं, परङ्कतं विञ्ञाणं, सयङ्कतं च परङ्कतं च विञ्ञाणं, उदाहु असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं विञ्ञाणं'' ति?

''न खो, आवुसो कोट्ठिक, सयङ्कतं विञ्ञाणं, न परङ्कतं विञ्ञाणं न सयङ्कतं च परङ्कतं च विञ्ञाणं, नापि असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं विञ्ञाणं। अपि च, नामरूपपच्चया विञ्ञाणं'' ति।

''इदानेव खो मयं आयस्मतो सारिपुत्तस्स भासितं एवं आजानाम—'न [R.114] ख्वावुसो कोट्ठिक, सयङ्कतं नामरूपं, न परङ्कतं नामरूपं, न सयङ्कतं च परङ्कतं च नामरूपं, नापि असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं नामरूपं। अपि च, विञ्ञाण-पच्चया नामरूपं' ति।

है?....वेदना....स्पर्श....षडायतन....नामरूप स्वयंकृत है?....या हठात् उत्पन्न हो जाता है?''

(सारिपुत्र—) ''नहीं, आयुष्मन् कौष्ठिक! यह नामरूप न स्वयंकृत है....न हठात् उत्पन्न हो जाता है; अपितु विज्ञान के कारण होता है।''

(कौष्ठिक—) ''तो क्या यह विज्ञान स्वयंकृत है?....या हठात् उत्पन्न हो जाता है?''

(सारिपुत्र—) ''नहीं, आयुष्मन् कौष्ठिक! यह विज्ञान भी न स्वयंकृत है....न हठात् उत्पन्न होता है; अपितु नामरूप के कारण होता है।''

(कौष्ठिक—) ''तो क्या यह नामरूप स्वयंकृत है?....या हठात् उत्पन्न हो जाता है?''

(सारिपुत्र—) ''नहीं, आयुष्मन् कौष्ठिक! यह नामरूप न स्वयंकृत है....न हठात् उत्पन्न होता है; अपितु यह विज्ञान के कारण होता है।''

(कौष्ठिक—) ''आयुष्मन् सारिपुत्र! आपके इस कथन का सार हमने यों समझा है—'यह नामरूप न स्वयंकृत है....न हठात् उत्पन्न होता है; अपितु यह नामरूप विज्ञान के कारण है।'

"इदानेव च पन मयं आयस्मतो सारिपुत्तस्स भासितं एवं आजानाम—'न ख्वावुसो कोट्ठिक, सयङ्कतं विञ्ञाणं, न परङ्कतं विञ्ञाणं, न सयङ्कतं च परङ्कतं च विञ्ञाणं, नापि असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं विञ्ञाणं। अपि च, नामरूप-पच्चया विञ्ञाणं''' ति।

"यथा कथं पनावुसो सारिपुत्त, इमस्स भासितस्स अत्थो दट्ठब्बो" ति ?

"तेन हावुसो, उपमं ते करिस्सामि। उपमाय पिधेकच्चे विञ्ञू पुरिसा भासितस्स [N.98] अत्थं आजानन्ति। सेय्यथापि, आवुसो, द्वे नळकलापियो अञ्ञमञ्ञं निस्साय तिट्ठेय्युं। एवमेव खो, आवुसो, नामरूपपच्चया विञ्ञाणं; विञ्ञाणपच्चया नामरूपं; नामरूपपच्चया सळायतनं; सळायतनपच्चया फस्सो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। तासं चे, आवुसो, नळकलापीनं एकं आकड्ढेय्य, एका पपतेय्य; अपरं चे आकड्ढेय्य, अपरा पपतेय्य। एवमेव खो, आवुसो, नामरूपनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो; विञ्ञाणनिरोधा नामरूपनिरोधो; नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो, सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो...पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती" ति।

[B.336] "अच्छरियं, आवुसो सारिपुत्त; अब्भुतं, आवुसो सारिपुत्त! यावसुभासितं चिदं

"तथा आपके इस कथन का अभिप्राय हमने यह भी समझा है—'यह विज्ञान न स्वयं कृत है.....न हठात् उत्पन्न है; अपितु यह नामरूप के कारण होता है'।"

"परन्तु, आयुष्मन् सारिपुत्र! आपके इस कथन को हम और अधिक स्पष्ट कैसे समझें?"

(सारिपुत्र—) "तो, आयुष्मन् कौष्ठिक! इस विषय में मैं तुम्हें एक उपमा देकर इस बात को और अधिक स्पष्ट करता हूँ; क्योंकि कभी कभी बुद्धिमान् लोग इस उपमा के सहारे से विषय को शीघ्र समझ लेते हैं। आयुष्मानो! जैसे दो नरकट के बोझ (कलाप=भार) एक दूसरे के सहारे खड़े हों, वैसे ही नामरूप के सहारे (प्रत्यय) से विज्ञान और विज्ञान के सहारे से नामरूप होता है। नामरूप के प्रत्यय से षडायतन होता है।....इस तरह समस्त दुःखसमूह उत्पन्न होता है।

"इसी तरह, उन दोनों नरकट के बोझों में से एक को हटा लिया जाय तो दूसरा बोझ (सहारा न होने के कारण) स्वयं ही गिर जायगा; इसी प्रकार, आयुष्मान् नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध तथा विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध हो जाता है। नामरूप के निरोध से षडायतन का निरोध, षडायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध.... पूर्ववत्....यों, इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है।"

आयस्मता सारिपुत्तेन। इदं च पन मयं आयस्मतो सारिपुत्तस्स भासितं इमेहि [B.336] छत्तिंसाय वत्थूहि अनुमोदाम—

'जरामरणस्स चे, आवुसो, भिक्खु निब्बिदाय विरागाय निरोधाय धम्मं [R.115] देसेति, धम्मकथिको भिक्खू ति अलं वचनाय। जरामरणस्स चे, आवुसो, भिक्खु निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति, धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो भिक्खू ति अलं वचनाय। जरामरणस्स चे, आवुसो, भिक्खु निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो होति, दिट्ठधम्मनिब्बानप्पत्तो भिक्खू ति अलं वचनाय। जातिया चे...भवस्स चे... उपादानस्स चे...तण्हाय चे...फस्सस्स चे...सळायतनस्स चे...नामरूपस्स चे... विञ्ञाणस्स चे...सङ्खारानं चे...अविज्जाय चे, आवुसो, भिक्खु निब्बिदाय विरागाय निरोधाय धम्मं देसेति, धम्मकथिको भिक्खू ति अलं वचनाय। अविज्जाय चे, आवुसो, भिक्खु निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति, धम्मानु-धम्मप्पटिपन्नो भिक्खू ति अलं वचनाय। अविज्जाय चे, आवुसो, भिक्खु निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो होति, दिट्ठधम्मनिब्बानप्पत्तो भिक्खू ति अलं वचनाया.'' ति॥ •

(कौष्ठिक—) ''आश्चर्य है, आयुष्मन् सारिपुत्र! यह अद्भुत भी है कि आपने कितनी सरलता से इस गम्भीर एवं दुरूह विषय को स्पष्ट कर दिया। आपके ही इस कथन का हम इन छत्तीस (३६) प्रकारों से अनुमोदन करते हैं—

''आयुष्मन्! यदि कोई भिक्षु जरामरण के प्रति ग्लानि, वैराग्य एवं निरोध हेतु धर्मदेशना करता है तो वही वास्तविक 'धर्मकथिक' है—ऐसा कहा जा सकता है। आयुष्मन्! यदि कोई भिक्षु जरामरण के प्रति ग्लानि....निरोधहेतु धर्मदेशना करता है तो वही 'धर्म एवं अनुधर्म का वास्तविक ज्ञाता है'—ऐसा कहा जा सकता है। आयुष्मन्! जो भिक्षु जरामरण के वैराग्य एवं निरोध तथा अनुत्पाद से, विमुक्तावस्था में पहुँच चुका है, वही 'इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त कर चुका है'—ऐसा कहा जा सकता है। जाति के प्रति....भव के प्रति....उपादान के प्रति....तृष्णा के प्रति....स्पर्श के प्रति....षडायतन के प्रति....नामरूप के प्रति....विज्ञान के प्रति....संस्कारों के प्रति....अविद्या के प्रति, आयुष्मन्! जो भि‌क्षु ग्लानि, वैराग्य एवं निरोधहेतु धर्मदेशना करता है वही वास्तविक 'धर्मकथिक' है—ऐसा कहा जा सकता है। अविद्या के प्रति जो भिक्षु ग्लानि, वैराग्य एवं निरोध से युक्त होता है वही 'धर्म एवं अनुधर्म का वास्तविक ज्ञाता है'—ऐसा कहा जा सकता है। तथा जो भिक्षु अविद्या से ग्लान, विरक्त एवं दूर हो चुका है, वही वास्तव में इस संसार के आवागमन से पूर्णतः विमुक्त हो चुका है, इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त कर चुका है—ऐसा कहा जा सकता है॥ •

६८. कोसम्बिसुत्तं

७०. एकं समयं आयस्मा च मुसिलो आयस्मा च पविट्ठो आयस्मा च नारदो आयस्मा च आनन्दो कोसम्बियं विहरन्ति घोसितारामे। अथ खो आयस्मा पविट्ठो आयस्मन्तं मुसिलं एतदवोच—"अञ्ञत्रेव, आवुसो मुसिल, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अत्थायस्मतो मुसिलस्स पच्चत्तमेव ञाणं—'जातिपच्चया जरामरणं''' ति?

"अञ्ञत्रेव, आवुसो पविट्ठ, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अहमेतं जानामि अहमेतं पस्सामि—'जातिपच्चया जरामरणं''' ति।

[N.99, R.116] "अञ्ञत्रेव, आवुसो मुसिल, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अत्थायस्मतो मुसिलस्स [B.337] पच्चत्तमेव ञाणं—'भवपच्चया जाती' ति...पे०...उपादानपच्चया भवो ति... तण्हापच्चया उपादानं ति...वेदनापच्चया तण्हा ति...फस्सपच्चया वेदना ति...सळायतनपच्चया फस्सो ति...नामरूपपच्चया सळायतनं ति...विञ्ञाणपच्चया नामरूपं ति...सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं ति...अविज्जापच्चया सङ्खारा" ति?

"अञ्ञत्रेव, आवुसो पविट्ठ, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र

---

६८. कौशाम्बीसूत्र : : भवनिरोध ही निर्वाण है

७०. एक समय आयुष्मान् मुसिल, आयुष्मान् प्रविष्ट, आयुष्मान् नारद एवं आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब आयुष्मान मुसिल से आयुष्मान् प्रविष्ट ने यों पूछा—"आयुष्मन् मुसिल! श्रद्धा, रुचि, अनुश्रव (=जनश्रुति) एवं आकारपरिवितर्क या दृष्टिनिध्यानक्षान्ति (अन्तर्दृष्टि) के विना ही आप (मुसिल) को ऐसा ज्ञान हो गया है—'जाति के कारण जरामरण होता है'?"

"हाँ, आयुष्मन् प्रविष्ट! मैं इन श्रद्धा आदि के विना ही ऐसा ज्ञान प्राप्त कर चुका हूँ—'जाति के कारण जरामरण होता है'।"

"क्या आयुष्मन् मुसिल! श्रद्धा आदि के विना ही आपको यह ज्ञान प्राप्त हो गया है—'भव के कारण जाति होती है'....'उपादान के कारण भव होता है'....'तृष्णा के कारण उपादान होता है'....'वेदना के कारण तृष्णा होती है'....'स्पर्श के कारण वेदना होती है'....'षडायतन के कारण स्पर्श होता है'....'नामरूप के कारण षडायतन होता है'....'विज्ञान के कारण नामरूप होता हैं'....'संस्कार के कारण विज्ञान होता है'....तथा 'अविद्या के कारण संस्कार होते हैं'?"

आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अहमेतं जानामि अहमेतं पस्सामि—'अविज्जापच्चया सङ्खारा''' ति।

"अञ्ञत्रेव, आवुसो मुसिल, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अत्थायस्मतो मुसिलस्स पच्चत्तमेव ञाणं—'जातिनिरोधा जरामरणनिरोधो''' ति?

"अञ्ञत्रेव, आवुसो पविट्ठ, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अहमेतं जानामि अहमेतं पस्सामि—'जातिनिरोधा जरामरणनिरोधो'' ति।

"अञ्ञत्रेव, आवुसो मुसिल, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अत्थायस्मतो मुसिलस्स पच्चत्तमेव ञाणं—'भवनिरोधा जातिनिरोधो' ति...पे०...उपादाननिरोधा भवनिरोधो ति...तण्हानिरोधा उपादान-निरोधो ति...वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो ति...फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो ति...सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो ति...नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो ति...विञ्ञाणनिरोधा नामरूपनिरोधो ति...सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो [R.117] ति...अविज्जानिरोधा सङ्खारनिरोधो'' ति?

"अञ्ञत्रेव, आवुसो पविट्ठ, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र

"हाँ, आयुष्मन् प्रविष्ट! श्रद्धा आदि के विना ही, मैं यह जानता तथा समझता हूँ—'अविद्या के कारण संस्कार होते हैं।'''

"तो क्या, आयुष्मन् मुसिल! श्रद्धा आदि के विना ही आप को यह ज्ञान भी हो गया है—'जाति के निरोध से जरामरण का निरोध होता है?'''

"हाँ, आयुष्मन् प्रविष्ट! मैं ऐसा जानता तथा समझता हूँ—'श्रद्धा आदि के विना ही मुझे यह ज्ञान हो गया है—'जाति के निरोध से जरामरण का निरोध हो जाता है'।''

"तो क्या, आयुष्मन् मुसिल! श्रद्धा आदि के विना ही आपको यह अध्यात्म ज्ञान हो गया है—'भव के निरोध से जाति का निरोध होता है'....पूर्ववत्....'उपादान के निरोध से भव का निरोध'....'तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध'....'वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध'....'स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध'....'षडायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध'....'नामरूप के निरोध से षडायतन का निरोध'....'विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध'....'संस्कारों के निरोध से विज्ञान का निरोध'....तथा 'अविद्या के निरोध से संस्कारों का निरोध होता है'?''

आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अहमेतं जानामि अहमेतं पस्सामि—'अविज्जानिरोधा सङ्खारनिरोधो''' ति।

[N.100] ''अञ्ञत्रेव, आवुसो मुसिल, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अत्थायस्मतो मुसिलस्स पच्चत्तमेव ञाणं—'भवनिरोधो निब्बानं''' ति?

''अञ्ञत्रेव, आवुसो पविट्ठ, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र [B.338] आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अहमेतं जानामि अहमेतं पस्सामि—'भवनिरोधो निब्बानं''' ति।

''तेन हायस्मा मुसिलो अरहं खीणासवो'' ति?

एवं वुत्ते, आयस्मा मुसिलो तुण्ही अहोसि। अथ खो आयस्मा नारदो आयस्मन्तं पविट्ठं एतदवोच—''साधावुसो पविट्ठ, अहं एतं पञ्हं लभेय्यं। मं एतं पञ्हं पुच्छ। अहं ते एतं पञ्हं ब्याकरिस्सामी'' ति।

''लभतायस्मा नारदो एतं पञ्हं। पुच्छामहं आयस्मन्तं नारदं एतं पञ्हं। ब्याकरोतु च मे आयस्मा नारदो एतं पञ्हं।

''अञ्ञत्रेव, आवुसो नारद, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अत्थायस्मतो नारदस्स पच्चत्तमेव ञाणं—'जातिपच्चया जरामरणं'' ति?

''हाँ, आयुष्मन् प्रविष्ट! मैं ऐसा मानता, देखता एवं समझता हूँ—'श्रद्धा आदि के विना ही अविद्या के निरोध से संस्कार का निरोध होता है।'''

''तो क्या, आयुष्मन् मुसिल! श्रद्धा आदि के विना ही आपको यह प्रत्यात्म ज्ञान हो गया है—'भव का निरोध ही निर्वाण है'?''

''हाँ, आयुष्मन् प्रविष्ट! श्रद्धा आदि के विना ही मैं यह जान पाया हूँ, समझ पाया हूँ—'भव का निरोध ही निर्वाण है।'''

''तब तो आप, आयुष्मन् मुसिल! क्षीणास्रव अर्हत् हो चुके हैं?''

आयुष्मान् प्रविष्ट द्वारा ऐसा पूछे जाने पर, आयुष्मान् मुसिल चुप ही रहे। (१)

तब आयुष्मान् नारद आयुष्मान् प्रविष्ट से यों बोले—''अच्छा होता यदि यही प्रश्न मुझसे भी पूछा जाता। आप मुझसे यह प्रश्न पूछें, मैं आपको इसका उत्तर दूँगा।''

''तो, आयुष्मन् नारद! आपसे ही मैंने यह प्रश्न किया है—ऐसा समझ लें। कृपया आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें। आयुष्मन् नारद! क्या आपको श्रद्धा आदि के विना ही यह प्रत्यात्म ज्ञान हो गया है—'जाति के कारण जरामरण होता है'?''

"अञ्ञत्रेव, आवुसो पविट्ठ, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अहमेतं जानामि अहमेतं पस्सामि— 'जातिपच्चया जरामरणं''' ति।

"अञ्ञत्रेव, आवुसो नारद, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अत्थायस्मतो नारदस्स पच्चत्तमेव ञाणं—भवपच्चया जाति...पे०...अविज्जापच्चया सङ्खारा" ति?

"अञ्ञत्रेव, आवुसो पविट्ठ, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अहमेतं जानामि अहमेतं पस्सामि— 'अविज्जापच्चया सङ्खारा''' ति।

"अञ्ञत्रेव, आवुसो नारद, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अत्थायस्मतो नारदस्स पच्चत्तमेव ञाणं—'जातिनिरोधा जरामरणनिरोधो''' ति?

"अञ्ञत्रेव, आवुसो पविट्ठ, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा [N.101] अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अहमेतं जानामि अहमेतं पस्सामि—'जातिनिरोधा जरामरणनिरोधो''' ति।

"अञ्ञत्रेव, आवुसो नारद, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा [B.339] अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अत्थायस्मतो नारदस्स पच्चत्तमेव ञाणं—'भवनिरोधा जातिनिरोधो ति...पे०...अविज्जानिरोधा सङ्खार-निरोधो''' ति?

"अञ्ञत्रेव, आवुसो पविट्ठ, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अहमेतं जानामि अहमेतं पस्सामि— 'अविज्जानिरोधा सङ्खारनिरोधो''' ति।

"अञ्ञत्रेव, आवुसो नारद, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अत्थायस्मतो नारदस्स पच्चत्तमेव ञाणं—'भवनिरोधो निब्बानं''' ति?

"अञ्ञत्रेव, आवुसो पविट्ठ, सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया अहमेतं जानामि अहमेतं पस्सामि— 'भवनिरोधो निब्बानं''' ति।

(यहाँ आयुष्मान् मुसिल के साथ अनुपद में हुए आयुष्मान् प्रविष्ट के 'भवनिरोधो निब्बानं' तक समग्र संवाद की आवृत्ति कर लें।)

"तेन हायस्मा नारदो अरहं खीणासवो" ति?

"'भवनिरोधो निब्बानं' ति खो मे, आवुसो, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं, न [R.118] चम्हि अरहं खीणासवो। सेय्यथापि, आवुसो, कन्तारमग्गे उदपानो। तत्र नेवस्स रज्जु न उदकवारको। अथ पुरिसो आगच्छेय्य घम्माभितत्तो घम्मपरेतो किलन्तो तसितो पिपासितो, सो तं उदपानं ओलोकेय्य। तस्स 'उदकं' ति हि खो ञाणं अस्स न च कायेन फुसित्वा विहरेय्य। एवमेव खो, आवुसो, 'भवनिरोधो निब्बानं' ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं, न चम्हि अरहं खीणासवो" ति।

एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं पविट्ठं एतदवोच—"एवंवादी त्वं, आवुसो पविट्ठ, आयस्मन्तं नारदं किं वदेसी" ति?

"एवंवादाहं, आवुसो आनन्द, आयस्मन्तं नारदं न किञ्चि वदामि अञ्ञत्र कल्याणा अञ्ञत्र कुसला" ति॥ •

६९. उपयन्तिसुत्तं

[N.102] ७१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ-पिण्डिकस्स आरामे...पे०...महासमुद्दो, भिक्खवे, उपयन्तो महानदियो उपयापेति,

---

"तब तो आयुष्मान् नारद भी क्षीणास्रव अर्हत् हो गये?"

"नहीं, आयुष्मन् : यद्यपि मुझे 'भव का निरोध ही निर्वाण है'—यह ज्ञान है, तो भी अभी मैं क्षीणास्रव अर्हत् नहीं हो पाया हूँ। आयुष्मन्! जैसे किसी भीषण (बीहड़) जङ्गल में कोई उदपान (=कूआ) हो, परन्तु वहाँ न कोई रस्सी हो और न जल निकालने का कोई पात्र। तब वहाँ कोई पुरुष आवे वह गर्मी से तपा हुआ, थका माँदा तथा बहुत अधिक प्यासा हो। वह उस कूअे को देखे। उक्त पुरुष को जल का ज्ञान तो हो गया, परन्तु उससे स्पर्श का कोई साधन नहीं मिला। इसी तरह मैं कहता हूँ कि मुझे 'भवनिरोध ही निर्वाण है'—यह ज्ञान तो है, परन्तु मैं अभी क्षीणास्रव अर्हत् नहीं हुआ हूँ।"

(आयुष्मान् नारद द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् प्रविष्ट से पूछा—"आयुष्मन् प्रविष्ट! ऐसा कहते हुए आयुष्मान् नारद के विषय में क्या कहना चाह रहे हो?"

"ऐसा कहते हुए आयुष्मान् नारद के विषय में अन्यथा कुछ न कह कर मैं यही कह सकता हूँ इनका कल्याण हो, कुशल हो!" •

६९. उपयन्तिसूत्र : : जरामरण का निरोध

७१. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे।....पूर्ववत्...."भिक्षुओ! महासमुद्र

[B.340] महानदियो उपयन्तियो कुन्नदियो उपयापेन्ति, कुन्नदियो उपयन्तियो महासोब्भे उपयापेन्ति, महासोब्भा उपयन्ता कुसोब्भे उपयापेन्ति। एवमेव खो, भिक्खवे, अविज्जा उपयन्ती सङ्खारे उपयापेति, सङ्खारा उपयन्ता विञ्ञाणं उपयापेन्ति, विञ्ञाणं उपयन्तं नामरूपं उपयापेति, नामरूपं उपयन्तं सळायतनं उपयापेति, सळायतनं उपयन्तं फस्सं उपयापेति, फस्सो उपयन्तो वेदनं उपयापेति, वेदना उपयन्ती तण्हं उपयापेति, तण्हा उपयन्ती उपादानं उपयापेति, उपादानं उपयन्तं भवं उपयापेति, भवो उपयन्तो [R.119] जातिं उपयापेति, जाति उपयन्ती जरामरणं उपयापेति।

"महासमुद्दो, भिक्खवे, अपयन्तो महानदियो अपयापेति, महानदियो अपयन्तियो कुन्नदियो अपयापेन्ति, कुन्नदियो अपयन्तियो महासोब्भे अपयापेन्ति, महासोब्भा अपयन्ता कुसोब्भे अपयापेन्ति। एवमेव खो, भिक्खवे, अविज्जा अपयन्ती सङ्खारे अपयापेति, सङ्खारा अपयन्ता विञ्ञाणं अपयापेन्ति, विञ्ञाणं अपयन्तं नामरूपं अपयापेति, नामरूपं अपयन्तं सळायतनं अपयापेति, सळायनं अपयन्तं फस्सं अपयापेति, फस्सो अपयन्तो वेदनं अपयापेति, वेदना अपयन्ती तण्हं अपयापेति, तण्हा अपयन्ती उपादानं अपयापेति, उपादानं अपयन्तं भवं अपयापेति, भवो अपयन्तो जातिं अपयापेति, जाति अपयन्ती जरामरणं अपयापेती" ति॥ ●

७०. सुसिमपरिब्बाजकसुत्तं

७२. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन भगवा सक्कतो होति गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो लाभी

बढ कर नदियों को भी बढा देता है। महानदियाँ बढती हुई छोटी नदियों को बढा देती हैं। छोटी नदियाँ बढती हुई बड़े ताल तलैया को बढा देती हैं। ये बड़ी ताल-तलैय्या बढती हुई छोटे ताल तलैय्याओं को बढा देती हैं। उसी तरह, भिक्षुओ! अविद्या बढती हुई संस्कारों को बढाती है, संस्कार बढते हुए विज्ञान को बढाते हैं, विज्ञान बढता हुआ नामरूप को बढाता है, नामरूप बढता हुआ षडायतन को बढाता है, षडायतन बढता हुआ स्पर्श को बढाता है, स्पर्श बढता हुआ वेदना को बढाता है, वेदना बढती हुई तृष्णा को बढाती है, तृष्णा बढती हुई उपादान को बढाती है, उपादान बढता हुआ भव को बढाता है, भव बढता हुआ जाति को बढाता है, तथा जाति बढती हुई जरामरण को बढाती है।

"इसी तरह, भिक्षुओ! जब महासमुद्र पीछे हटता है तो महानदियाँ पीछे हटती हैं....पूर्ववत्....जाति के पीछे हटने पर जरामरण पीछे हट जाता है"॥ ●

७०. सुसिम परिव्राजकसूत्र : : धर्मज्ञान के बाद निर्वाणज्ञान

७२. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेणुवनस्थित

चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं। भिक्खुसङ्घो पि सक्कतो होति गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो लाभी चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्ज-परिक्खारानं। अञ्ञतित्थिया पन परिब्बाजका असक्कता होन्ति अगरुकता अमानिता अपूजिता अनपचिता, न लाभिनो चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्ज-परिक्खारानं।

७३. तेन खो पन समयेन सुसिमो परिब्बाजको राजगहे पटिवसति महतिया [N.103, B.341, R.120] परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं। अथ खो सुसिमस्स परिब्बाजकस्स परिसा सुसिमं परिब्बाजकं एतदवोचुं—"एहि त्वं, आवुसो सुसिम, समणे गोतमे ब्रह्मचरियं चर। त्वं धम्मं परियापुणित्वा अम्हे वाचेय्यासि। तं मयं धम्मं परियापुणित्वा गिहीनं भासिस्साम। एवं मयं पि सक्कता भविस्साम गरुकता मानिता पूजिता अपचिता लाभिनो चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं" ति। "एवमावुसो" ति खो सुसिमो परिब्बाजको सकाय परिसाय पटिस्सुणित्वा येनायस्मा आनन्दो तेनुप-सङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सुसिमो परिब्बाजको आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"इच्छामहं, आवुसो आनन्द, इमस्मिं धम्मविनये ब्रह्मचरियं चरितुं" ति।

७४. अथ खो आयस्मा आनन्दो सुसिमं परिब्बाजकं आदाय येन भगवा

कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् जनता द्वारा चीवर, पिण्डपात, शयनासन एवं रोगशमन के लिये भैषज्य आदि के दान से सत्कृत, सम्मानित, पूजित तथा लाभयुक्त थे। (इसके विपरीत) दूसरे सम्प्रदायों के परिव्राजक समाज में इन वस्तुओं के लिये अत्यधिक असत्कृत, असम्मानित, अपूजित तथा लाभकर स्थिति में नहीं थे।

सुसिम परिव्राजक का भिक्षुभाव—७३. उस समय सुसिम परिव्राजक अपनी विशाल परिव्राजकसभा के साथ राजगृह में ही ठहरा हुआ था। कभी उसकी परिव्राजक परिषद् ने उस परिव्राजक से निवेदन किया कि आयुष्मन्! आप श्रमण गौतम से दीक्षा लेकर उनसे धर्म-प्रवचन-पद्धति सीख लें। तदनुसार हम भी जनता में धर्मप्रवचन करेंगे तो हम को भौतिक लाभ सत्कार मिलेगा। सुसिम परिव्राजक ने उसके इस निवेदन को स्वीकार कर वह आयुष्मान् आनन्द के पास पहुँचा। वहाँ पहुँच कर वह उनसे कुशल मङ्गल पूछ कर एकान्त में बैठ गया तथा यों बोला—"मेरी इच्छा है, आयुष्मन् आनन्द! कि मैं भी आपके इस धर्म में दीक्षा ले लूँ।"

तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"अयं, भन्ते, सुसिमो परिब्बाजको एवमाह—'इच्छामहं, आवुसो आनन्द, इमस्मिं धम्मविनये ब्रह्मचरियं चरितुं'' ति।

"तेन हानन्द, सुसिमं पब्बाजेथा" ति।

अलत्थ खो सुसिमो परिब्बाजको भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं।

७५. तेन खो पन समयेन सम्बहुलेहि भिक्खूहि भगवतो सन्तिके अञ्ञा [R.121] ब्याकता होति—"खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया ति पजानामा" ति। अस्सोसि खो आयस्मा सुसिमो—"सम्बहुलेहि किर भिक्खूहि भगवतो सन्तिके अञ्ञा ब्याकता—'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानामा" ति। अथ खो आयस्मा सुसिमो येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तेहि भिक्खूहि सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सुसिमो ते भिक्खू एतदवोच— "सच्चं किरायस्मन्तेहि भगवतो सन्तिके अञ्ञा [N.104, B.342] ब्याकता—'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानामा" ति?

"एवमावुसो" ति।

---

७४. यह सुनकर आयुष्मान् आनन्द सुसिम परिव्राजक को भगवान् के पास ले गये। वहाँ जाकर वे दोनों भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! यह सुसिम परिब्बाजक भगवान् से प्रव्रज्या लेना चाहता है।"

(भगवान्—) "तो इसको प्रव्रज्या दीक्षा दे दो।"

तदनन्तर सुसिम परिव्राजक ने भगवान् से प्रव्रज्यादीक्षा ग्रहण कर ली।

सुसिम का भिक्षुओं से संवाद— ७५. उस समय कुछ भिक्षुओं ने अपना यह धर्मपालननिष्कर्ष दुहराया था "हमारी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी है, हमारा धर्माभ्यास पूर्ण हो चुका है। हमने अपना कर्तव्य पूर्ण कर लिया है, अब हमारा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—ऐसा हम जान चुके हैं।" सुसिम परिव्राजक ने भी उन भिक्षुओ का यह धर्मनिष्कर्ष सुना। सुन कर वह उनके पास गया। जाकर, कुशल मङ्गल प्रश्न के बाद, वह भिक्षुओं से पूछने लगा—"आयुष्मानो! क्या आप लोगों ने वस्तुत: ही भगवान् के सम्मुख अपना उक्त धर्मनिष्कर्ष दुहराया था?"

"हाँ आयुष्मन्!"

"अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो एवं जानन्ता एवं पस्सन्ता अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोथ—एको पि हुत्वा बहुधा होथ, बहुधा पि हुत्वा एको होथ; आविभावं, तिरोभावं, तिरोकुड्डं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमाना गच्छथ, सेय्यथापि आकासे; पठविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोथ, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमाने गच्छथ, सेय्यथापि पठवियं; आकासे पि पल्लङ्केन कमथ, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे पाणिना परिमसथ परिमज्जथ, याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेथा" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

"अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो एवं जानन्ता एवं पस्सन्ता दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणाथ दिब्बे च मानुसे च ये दूरे सन्तिके चा" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

"अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो एवं पस्सन्ता परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानाथसरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानाथ; वीतरागं वा चित्तं वीतरागं चित्तं ति पजानाथ; सदोसं वा चित्तं सदोसं चित्तं ति पजानाथ; वीतदोसं वा चित्तं वीतदोसं

(सुसिम—) "आयुष्मानो! क्या आप लोगों ने ऐसा कहते हुए इन अनेक प्रकार की ऋद्धियों को भी प्राप्त कर लिया है? जैसे—एक होकर भी बहुत हो जाना, बहुत होकर भी एक हो जाना, प्रकट होकर छिप जाना या छिप कर पुनः प्रकट हो जाना, दीवार प्राकार या पर्वत के पीछे उनको विना स्पर्श किये चले जाना, जैसे आकाश में। या फिर आप लोग जल पर भी उसी तरह चल सकते हैं जैसे पृथ्वी पर। या पृथ्वी में भी उसी तरह डूब उतरा सकते हैं जैसे जल पर। आकाश में पद्मासन लगा कर बैठ सकते हैं जैसे पक्षी स्थिर रह जाते हैं। क्या आप लोग इन चन्द्रमा एवं तेजस्वी सूर्य को हाथ से स्पर्श कर सकते हैं? या ब्रह्मलोक तक इसी शरीर से जा सकते हैं?"

"नहीं, आयुष्मन्!"

"तो क्या आप लोग ऐसा कहने से पूर्व अपने में ऐसी दिव्य शक्ति प्राप्त कर चुके हैं कि आप अपनी इस श्रोत्रेन्द्रिय से दोनों प्रकार के शब्द सुन सकें—दिव्य या लौकिक, पास या दूर के?"

"नहीं, आयुष्मन्!"

"क्या आप लोग ऐसी गर्वोक्ति के ख्यापन से पूर्व स्वयं में ऐसी शक्ति प्राप्त कर चुके हैं—दूसरे प्राणियों के चित्त की समीक्षा कर, सरागचित्त प्राणी को सरागचित्त के रूप में जान सकें, वीतरागचित्त को वीतरागचित्त के रूप में; द्वेषमय चित्तवाले को द्विष्टचित्त के

चित्तं ति पजानाथ; समोहं वा चित्तं समोहं चित्तं ति पजानाथ; वीतमोहं वा चित्तं [R.122] वीतमोहं चित्तं ति पजानाथ; सङ्खित्तं वा चित्तं सङ्खित्तं चित्तं ति पजानाथ; विक्खित्तं वा चित्तं विक्खित्तं चित्तं ति पजानाथ; महग्गतं वा चित्तं महग्गतं चित्तं ति पजानाथ; अमहग्गतं वा चित्तं अमहग्गतं चित्तं ति पजानाथ; सउत्तरं वा चित्तं सउत्तरं चित्तं ति पजानाथ; अनुत्तरं वा चित्तं अनुत्तरं चित्तं ति पजानाथ; समाहितं वा चित्तं समाहितं चित्तं ति पजानाथ; असमाहितं वा चित्तं असमाहितं चित्तं ति पजानाथ; विमुत्तं वा [B.343] चित्तं विमुत्तं चित्तं ति पजानाथ; अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानाथा'' ति?

''नो हेतं, आवुसो''। [N.105]

''अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो एवं जानन्ता एवं पस्सन्ता अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरथ, सेय्यथीद—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दसपि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तारीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि, अनेके पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खपटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्ख-पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरथा'' ति?

रूप में; द्वेषरहित चित्त वाले को निर्द्विष्ट चित्त के रूप में, मुग्धचित्त को मुग्धचित्त के रूप में; निर्मुग्धचित्त को निर्मुग्ध (वीतमोह) चित्त के रूप में; संक्षिप्तचित्त को....विक्षिप्तचित्त को....महद्गतचित्त को....अमहद्गतचित्त को....सोत्तरचित्त को....निरुत्तरचित्त को....समाहित-चित्त को....असमाहितचित्त को....विमुक्तचित्त प्राणी को....अविमुक्तचित्त प्राणी को 'इसका चित्त अविमुक्त है'—ऐसा जान चुके हैं?''

''नहीं, आयुष्मन्!''

''आप लोग ऐसा जानते हुए, ऐसा देखते हुए क्या अपने अनेकविध पूर्वजन्मों को स्मरण कर सकते हैं? जैसे—एक जन्म भी, दो जन्म भी, तीन....चार....पाँच....दश....बीस....तीस....चालीस....पचास....सौ....हजार....लाख जन्मों को....अनेक संवर्तकल्पों को, अनेक विवर्तकल्पों को....अनेक संवर्त-विवर्तकल्पों को स्मरण कर सकते हैं कि मैं वहाँ था, इस नाम का, इस गोत्र का, इस वर्ण का, ऐसा भोजन करने वाला, ऐसा सुख दुःख भोगने वाला, या इतनी आयु वाला था। या वहाँ से मर कर वहाँ उत्पन्न हुआ, वहाँ भी इस नाम का....पूर्ववत्....था? इस प्रकार क्या आप लोग आकार एवं उद्देश्य के साथ अपने विविध पूर्व जन्म की बातें स्मरण कर सकते हैं?''

"नो हेतं, आवुसो"।

"अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो एवं जानन्ता एवं पस्सन्ता दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सथ चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे [R.123] दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाथ—'इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता, अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना; इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता, अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना' ति, इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सथ चवमाने उपपज्जामाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाथा" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

"अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो एवं जानन्ता एवं पस्सन्ता ये ते सन्ता विमोक्खा अतिक्कम्म रूपे आरुप्पा ते कायेन फुसित्वा विहरथा" ति?

[N.106] "नो हेतं, आवुसो"।

[B.344] "एत्थ दानि आयस्मन्तो इदं च वेय्याकरणं इमेसं च धम्मानं असमापत्ति; इदं नो, आवुसो, कथं" ति?

"नहीं, आयुष्मन्!"

"आप लोग ऐसा जानते हुए, ऐसा देखते हुए क्या अपने दिव्य चक्षुओं से, मनुष्यों की पहुँच से बाहर, मरते, जनमते, हीन, प्रणीत, सुन्दर, असुन्दर, सुगत, दुर्गत, कर्मानुसार अवस्था प्राप्त प्राणियों को देख पाते हैं? ये जीव काय वाक् कर्म से दुराचारी हैं, आर्यपुरुषों के निन्दक हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि कर्मों का आचरण करने वाले हैं, जो मरने के बाद नरक में उत्पन्न होकर दुर्गति प्राप्त करेंगे; ये जीव काय वाक् एवं मन से सदाचाररत हैं....जो मरणानन्तर स्वर्ग में उत्पन्न होकर सुगति प्राप्त करेंगे। इस प्रकार क्या मरते, जनमते....स्वकर्मानुसार अवस्थाप्राप्त जीवों को देख पाते हैं?"

"नहीं, आयुष्मन्!"

"आयुष्मानो! आप लोग ऐसा जानते और देखते हुए क्या उस शान्त विमोक्ष रूप के परे अरूपों को शरीर से स्पर्श करते हुए विचरण करते हैं?"

"नहीं, आयुष्मन्!"

"आप लोगों का, आयुष्मानो! अपने विषय में यह स्वीकार करना, इन विशिष्ट

"पञ्ञाविमुत्ता खो मयं, आवुसो सुसिमा" ति।

"न ख्वाहं इमस्स आयस्मन्तानं सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानामि। साधु मे आयस्मन्तो तथा भासन्तु यथाहं इमस्स आयस्मन्तानं सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानेय्यं" ति।

"आजानेय्यासि वा त्वं, आवुसो सुसिम, न वा त्व आजानेय्यासि अथ [R.124] खो पञ्ञाविमुत्ता मयं" ति।

७६. अथ खो आयस्मा सुसिमो उट्ठायासना येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सुसिमो यावतको तेहि भिक्खूहि सद्धिं अहोसि कथासल्लापो तं सब्बं भगवतो आरोचेसि।

"पुब्बे खो, सुसिम, धम्मट्ठितिञाणं, पच्छा निब्बाने ञाणं" ति।

"न ख्वाहं, भन्ते, इमस्स भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानामि। साधु मे, भन्ते, भगवा तथा भासतु यथाहं इमस्स भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानेय्यं" ति।

धर्मों का असमायोजन, फिर भी अपने 'मुक्त' होने की प्रतिज्ञा करना—यह सब कुछ मेरी बुद्धि में बैठ नहीं रहा है।"

"आयुष्मन् सुसिम! आप हमें जैसा भी समझें, हम तो प्रज्ञा के सहारे से विमुक्त हो चुके हैं।"

"नहीं, आयुष्मानो! मैं आप लोगों के इस संक्षिप्त वचन का स्पष्ट अर्थ नहीं समझ सका, अच्छा होता कि आप लोग अपने कथन को कुछ अधिक स्पष्ट करते!"

"आयुष्मन् सुसिम! आप समझें या न समझें; हम तो प्रज्ञा के सहारे से विमुक्त हो चुके हैं।"

सुसिम का भगवान् से संवाद—७६. तब आयुष्मान् सुसिम, अपने आसन से उठ कर, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गया तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे आयुष्मान् सुसिम ने अभी भिक्षुओं से जो उसका संवाद हुआ उसे अविकल रूप से भगवान् को सुनाया।

(भगवान् ने कहा—) "सुसिम! पहले धर्म के स्वभाव का ज्ञान होता है तब निर्वाण का ज्ञान।"

(सुसिम—) "भगवान् के इस संक्षिप्त कथन का विस्तार से अर्थ सुनना चाहता हूँ। कृपा कर भगवान् ऐसा प्रवचन करें कि आपके इस संक्षिप्त कथन का विस्तृत (स्पष्ट) अर्थ समझ सकूँ।"

"आजानेय्यासि वा त्वं, सुसिम, न वा त्वं आजानेय्यासि, अथ खो धम्मट्ठितिञाणं पुब्बे, पच्छा निब्बाने ञाणं। तं किं मञ्ञसि, सुसिम, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, [N.107] एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

पञ्चस्कन्ध की अनित्यता—(भगवान् बोले—) "सुसिम! तुम समझो या न समझो, धर्म के स्वभाव का ज्ञान ही पहले होता है, तदनन्तर निर्वाण का ज्ञान। तो क्या मानते हो, सुसिम! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"और यह जो अनित्य है वह दुःख है या सुख?"

"दुःख है, भन्ते!"

"तो जो पदार्थ अनित्य है, दुःखमय है, विनाश धर्म वाला है, उसके विषय में 'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है'—ऐसी धारणा बनाना उचित होगा?"

"नहीं, भन्ते!" (१)

"वेदना नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"जो अनित्य है उसे सुखमय मानते हो या दुःखमय?"

"दुःखमय, भन्ते!"

"तो जो पदार्थ अनित्य....पूर्ववत्....ऐसी धारणा उचित होगी या अनुचित?"

"अनुचित है, भन्ते!" (२)

"सञ्ञा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते" ...पे०...।

"सङ्खारा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"। [R.125]

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"। [B.345]

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिह, सुसिम, यं किञ्चि रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं नेतं मम नेसोहमस्मि न मेसो अत्ता ति; एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। या काचि वेदना अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिका वा सुखुमा वा हीना वा पणीता

"संज्ञा नित्य है या अनित्य.... ?"

"अनुचित है, भन्ते!" (३)

"संस्कार नित्य हैं या अनित्य.... ?"

"अनुचित है, भन्ते!" (४)

"विज्ञान नित्य है या अनित्य.... ?"

"अनुचित है, भन्ते!" (५)

"इसलिये, सुसिम! जो कुछ भी यह अतीत अनागत एवं वर्तमान, बाह्य एवं आभ्यन्तर, स्थूल या सूक्ष्म, हीन या प्रणीत, दूर या समीप जो कुछ भी रूप दिखायी देता है, वह यह सब 'न मेरा है', 'न यह मैं हूँ', 'न यह मेरी आत्मा है'—यह अपनी प्रज्ञा का उचित प्रयोग करते हुए भली भाँति समझ लेना चाहिये। (१)। इसी तरह जो कुछ भी

वा या दूरे सन्तिके वा, सब्बा वेदना नेतं मम नेसोहमस्मि न मेसो अत्ता ति; एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। या काचि सञ्ञा...पे०...ये केचि सङ्खारा अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिका वा सुखुमा वा हीना वा पणीता वा ये दूरे सन्तिके वा, सब्बे सङ्खारा नेतं मम नेसोहमस्मि न मेसो अत्ता ति; एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा [N.108] ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं नेतं मम नेसोहमस्मि न मेसो अत्ता ति; एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं।

"एवं पस्सं, सुसिम, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दिति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति, विरागा विमुच्चति, विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति।

"'जातिपच्चया जरामरणं' ति, सुसिमं, पस्ससी" ति?

"एवं, भन्ते"।

"'भवपच्चया जाती' ति, सुसिम, पस्ससी" ति?

"एवं, भन्ते"।

"'उपादानपच्चया भवो' ति, सुसिम, पस्ससी" ति?

"एवं, भन्ते"।

वेदना....पूर्ववत्....है—यह अपनी प्रज्ञा का....। (२)। जो कुछ भी संज्ञा....पूर्ववत्....। (३)। जो कुछ संस्कार....है....पूर्ववत्....। (४)। जो कुछ भी विज्ञान....है....पूर्ववत्....भली भाँति समझ लेना चाहिये। (५)

"सुसिम! ऐसा देखते हुए ज्ञानी आर्यश्रावक का चित्त रूप से हट जाता है, विरक्त हो जाता है, वेदना से....संज्ञा से....संस्कारों से....विज्ञान से हट जाता है, विरक्त हो जाता है....मोक्ष का ज्ञान हो जाता है। तब वह साधक यह निष्कर्ष निकाल लेता है—'मेरी जाति क्षीण हो गयी, मेरा धर्माभ्यास सार्थक हो गया, कर्तव्य पूर्ण कर चुका, अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है।"

प्रतीत्यसमुत्पाद—"सुसिम! जाति के कारण जरामरण होता है—यह जानते हो?"

"हाँ, भन्ते!"

"भव के कारण जाति होती है यह भी मानते हो?"

"हाँ, भन्ते!"

"उपादान के कारण भव होता है—यह भी मानते हो?"

"''तण्हापच्चया उपादानं' ति, सुसिम, पस्ससी'' ति? [R.126]

"एवं, भन्ते''।

"वेदनापच्चया तण्हा ति...फस्सपच्चया वेदना ति...सळायतनपच्चया फस्सो ति...नामरूपपच्चया सळायतनं ति...विञ्ञाणपच्चया नामरूपं ति...सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं ति...अविज्जापच्चया सङ्खारा ति, सुसिम, पस्ससी'' ति?

"एवं, भन्ते''।

"''जातिनिरोधा जरामरणनिरोधो' ति, सुसिम, पस्ससी'' ति? [B.346]

"एवं, भन्ते''।

"''भवनिरोधा जातिनिरोधो' ति, सुसिम, पस्ससी'' ति?

"एवं, भन्ते''।

"उपादाननिरोधा भवनिरोधो ति...तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो ति...वेदना-निरोधा तण्हानिरोधो ति...फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो ति...सळायतननिरोधा फस्स-निरोधो ति... नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो ति...विञ्ञाणनिरोधा नामरूपनिरोधो ति...सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो ति...अविज्जानिरोधा सङ्खारनिरोधो ति, सुसिम, पस्ससी'' ति?

"एवं, भन्ते''। [N.109]

"हाँ, भन्ते!''

"तृष्णा के कारण उपादान होता है—यह भी मानते हो?''

"हाँ, भन्ते!''

"वेदना के कारण तृष्णा होती है—यह भी मानते हो?'' "हाँ, भन्ते!'' "स्पर्श के कारण वेदना होती है—यह भी मानते हो?'' "हाँ, भन्ते!'' "षडायतन के कारण स्पर्श....नामरूप के कारण षडायतन....विज्ञान के कारण नामरूप....संस्कार के कारण विज्ञान....अविद्या के कारण संस्कार होते हैं—यह भी मानते हो?''

"हाँ, भन्ते!''

इसी तरह जाति के निरोध से जरामरणनिरोध....भव के निरोध से जाति का निरोध....उपादाननिरोध से भव का निरोध....तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध....वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध....षडायतन के निरोध से स्पर्श का विरोध....नामरूप के निरोध से षडायतन का निरोध....विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध....संस्कारों के निरोध से विज्ञान का निरोध....अविद्या के निरोध से संस्कारों का निरोध भी सुसिम! मानते हो?''

"हाँ, भन्ते!''

"अपि पन त्वं, सुसिम, एवं जानन्तो एवं पस्सन्तो अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोसि—एको पि हुत्वा बहुधा होसि, बहुधा पि हुत्वा एको होसि; आविभावं, तिरोभावं, तिरोकुट्टं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानो गच्छसि, सेय्यथापि आकासे; पठविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोसि, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमानो गच्छसि, सेय्यथापि पठवियं; आकासे पि पल्लङ्केन कमसि, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे पाणिना परिमससि परिमज्जसि, याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेसी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"अपि पन त्वं, सुसिम, एवं जानन्तो एवं पस्सन्तो दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणासि दिब्बे च मानुसे च ये दूरे सन्तिके चा" ति?

[R.127] "नो हेतं, भन्ते"।

"अपि पन त्वं, सुसिम, एवं जानन्तो एवं पस्सन्तो परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानासि—सरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानासि...पे०...विमुत्तं वा चित्तं विमुत्तं चित्तं ति पजानासी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"अपि पन त्वं, सुसिम, एवं जानन्तो एवं पस्सन्तो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरसि, सेय्यथीदंएकं पि जातिं...पे०...इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरसी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"अपि पन त्वं, सुसिम, एवं जानन्तो एवं पस्सन्तो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्ससि चवमाने...पे०...यथाकम्मूपगे सत्ते पजानासी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"अपि पन त्वं, सुसिम, एवं जानन्तो एवं पस्सन्तो ये ते सन्ता विमोक्खा [B.347] अतिक्कम्म रूपे, आरुप्पा ते कायेन फुसित्वा विहरसी" ति?

[N.110] "नो हेतं, भन्ते"।

"एत्थ दानि, सुसिम, इदं च वेय्याकरणं इमेसं च धम्मानं असमापत्ति, इदं नो, सुसिम, कथं" ति?

धर्मस्थितिज्ञान—"सुसिम! क्या तुमने ऐसा जानते हुए, देखते हुए अनेक प्रकार

अथ खो आयस्मा सुसिमो भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोच—"अच्चयो मं, भन्ते, अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, य्वाहं एवं स्वाक्खाते धम्मविनये धम्मत्थेनको पब्बजितको। तस्स मे, भन्ते, भगवा अच्चयं अच्चयतो पटिग्गण्हातु आयतिं संवराया" ति।

"तग्घ त्वं, सुसिम, अच्चयो अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, यो त्वं एवं स्वाक्खाते धम्मविनये धम्मत्थेनको पब्बजितो। सेय्यथापि, सुसिम, [R.128] चोरं आगुचारिं गहेत्वा रञ्ञो दस्सेय्युं—'अयं ते, देव, चोरो आगुचारी, इमस्स यं इच्छसि तं दण्डं पणेही' ति। तमेनं राजा एवं वदेय्य—'गच्छथ, भो, इमं पुरिसं दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथियाय रथियं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खामेत्वा दक्खिणतो नगरस्स सीसं छिन्दथा' ति। तमेनं रञ्ञो पुरिसा दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथियाय रथियं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खामेत्वा दक्खिणतो नगरस्स सीसं छिन्देय्युं। तं किं मञ्ञसि, सुसिम, अपि नु सो पुरिसो ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदियेथा" ति?

की ऋद्धियों को प्राप्त कर लिया है? *[यहाँ पीछे वर्णित सुसिम और भिक्षुओं के संवाद को अविकल रूप से दोहरा लेना चाहिये।]*

"नहीं, भन्ते!"

"सुसिम! तब तो उन भिक्षुओं का 'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी है'—आदि कथन तथा इन दिव्य धर्मों न प्राप्त करना—दोनों ही अपने अपने स्थान पर उचित ही कहलायँगें। क्या ऐसा नहीं है! तुम्हें इसमें क्या सन्देह हो रहा है!"

सुसिम द्वारा क्षमायाच्ञा—तब आयुष्मान् सुसिम भगवान् के श्रीचरणों में प्रणाम करता हुआ निवेदन करने लगा—"भगवन्! मैने बाल, मूढ, अकुशल के समान इस स्वाख्यात धर्मविनय में चौरी से प्रव्रजित होकर 'धर्मस्तेनक' (धर्मचौर) के रूप में महान् अपराध किया है। भगवान् मेरे इस अपराध को अपराध के रूप में स्वीकार करते हुए क्षमा कर दें। भविष्य में मैं ऐसा नहीं करूँगा।"

सुसिम तुमने....पूर्ववत्....वस्तुतः बहुत बडा अपराध किया है। सुसिम! जैसे कोई राजपुरुष किसी अपराधी चौर को पकड कर राजा के सम्मुख ले जाय और यह कहे—'देव! यह आपका अपराधी है, आप इसे जो चाहें, दण्ड दें'। तब राजा आदेश दे—'जाओ! इस अपराधी के हाथ दृढ रस्सी से पीछे बाँध कर, इसका शिर मुण्डित कर, ढोल बजाते हुए सड़कों के चौराहे तथा गलियों में घुमाते हुए नगर के दक्षिण द्वार से निकाल

"एवं, भन्ते"।

"यं खो सो, सुसिम, पुरिसो ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदियेथ। या एवं स्वाक्खाते धम्मविनये धम्मत्थेनकस्स पब्बज्जा, अयं ततो दुक्खविपाकतरा च कटुकविपाकतरा च, अपि च विनिपाताय संवत्तति। यतो च खो त्वं, सुसिम, अच्चयं अच्चयतो दिस्वा [B.348] यथाधम्मं पटिकरोसि तं ते मयं पटिग्गण्हाम। वुद्धि हेसा, सुसिम, अरियस्स विनये यो अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोति, आयतिं च संवरं आपज्जती" ति॥ ●

महावग्गो सत्तमो॥

[N.111]

तस्सुद्दानं

द्वे अस्सुतवता वुत्ता, पुत्तमंसन चापरं।
अत्थिरागो च नगरं, सम्मसं नळकलापियं।
कोसम्बी उपयन्ति च, दसमो सुसिमेन चा ति॥ ●

कर दक्षिण दिशा की तरफ ले जाकर इसका शिर काट डालो।' तब वे राजपुरुष राजाज्ञा के अनुसार सब कर्म करते हुए उस चौर को यथास्थान ले जाकर उसका शिर काट डालें। क्या मानते हो? इस क्रिया से वह चौर अपराधी दुःख तथा दौर्मनस्य नहीं प्राप्त करेगा?"

"अवश्य, भन्ते!"

तो, सुसिम! जैसा अपराध उस चौर ने किया था, जिसके फलस्वरूप उसको इतना दुःख एवं दौर्मनस्य भोगना पडा, वही दण्ड एक धर्मस्तेनक का भी होना चाहिये। इस तरह चौरी से प्रव्रज्या लेना तो उस चौर के अपराध से भी दुःखमय फलदाता है। परन्तु, सुसिम! तुम अपना यह अपराध नम्रता से स्वीकार कर रहे हो, अतः हम उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेते हैं। यह इस आर्य धर्म की वृद्धि ही है जहाँ अपना अपराध इस प्रकार नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लिया जाता है। इससे भविष्य में इस धर्म की अभिवृद्धि ही होगी॥" ●

महावर्ग सप्तम समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. प्रथम अश्रुतवान्, २. द्वितीय अश्रुतवान्, ३. पुत्रमांस, ४. अस्तिराग, ५. नगर, ६. सम्मर्षण, ७. नडकलाप, ८. कौशाम्बी, ९. उपयन्ति एवं १०. सुसिम परिव्राजक सूत्र॥ ●

८. समणब्राह्मणवग्गो अट्ठमो

७१. जरामरणसुत्तं

७७. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने [R.129] अनाथपिण्डिकस्स आरामे...पे०...।

"ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा जरामरणं नप्पजानन्ति, जरामरणसमुदयं नप्पजानन्ति, जरामरनिरोधं नप्पजानन्ति, जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति, न मे ते, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु वा समणसम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मणसम्मता, न च पन ते आयस्मन्तो सामञ्ञत्थं वा ब्रह्मञ्ञत्थं वा दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति।

"ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा जरामरणं पजानन्ति...पे०... पटिपदं पजानन्ति, ते खो मे, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु चेव समणसम्मता ब्राह्मणेसु च ब्राह्मणसम्मता, ते च पनायस्मन्तो सामञ्ञत्थं च ब्रह्मञ्ञत्थं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती" ति। (सुत्तन्तो एको) ●

७२-८१. जातिसुत्तादिदसकं

७८. सावत्थियं विहरति। जातिं नप्पजानन्ति...पे०...। [B.349]

७९. भवं नप्पजानन्ति...पे०...।

---

८. श्रमण-ब्राह्मणवर्ग

७१. जरामरणसूत्र : : परमार्थज्ञ श्रमण एवं ब्राह्मण

७७. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। ....पूर्ववत्....।

"जो कोई श्रमण ब्राह्मण साधक जरामरण के विषय में नहीं जानते, जरामरणसमुदय के विषय में....जरामरणनिरोध के विषय में....जरामरणनिरोधगामी मार्ग के विषय में नहीं जानते, भिक्षुओ! ऐसे श्रमण ब्राह्मण वास्तविक श्रमण ब्राह्मण नहीं हैं; क्योंकि ऐसे श्रमणों में श्रमणभाव है न ब्राह्मणों में ब्राह्मणभाव। न वे इस जन्म में श्रमणत्व एवं ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हेतु कोई सच्ची साधना ही करते हैं।

(इसके विपरीत—) "जो श्रमण ब्राह्मण जरामरण....जरामरणसमुदय....जरामरण-निरोध एवं जरामरणनिरोधगामी मार्ग के विषय में जानते हैं, वैसे ही ये श्रमण ब्राह्मण वास्तविक श्रमण ब्राह्मण हैं, वे श्रमणों में मान्य हैं, ब्राह्मणों में मान्य हैं; क्योंकि इन्होंने इस जन्म में श्रमणत्व एवं ब्राह्मणत्व प्राप्ति हेतु कुछ सच्ची साधना की है॥ ●

प्रथम सूत्र निष्पन्न॥

८०. उपादानं नप्पजानन्ति...पे०...।

८१. तण्हं नप्पजानन्ति...पे०...।

८२. वेदनं नप्पजानन्ति...पे०...।

८३. फस्सं नप्पजानन्ति...पे०...।

८४. सळायतनं नप्पजानन्ति...पे०...।

८५. नामरूपं नप्पजानन्ति...पे०...।

८६. विञ्ञाणं नप्पजानन्ति...पे०...।

[N.112, R.130] ८७. "सङ्खारे नप्पजानन्ति, सङ्खारसमुदयं नप्पजानन्ति, सङ्खारनिरोधं नप्पजानन्ति, सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति...पे०...पजानन्ति ...पे०...सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती" ति॥ •

समणब्राह्मणवग्गो अट्ठमो॥

तस्सुद्दानं

पच्चयेकादस वुत्ता, चतुसच्चविभज्जना।
समणब्राह्मणवग्गो, निदाने भवति अट्ठमो॥

७२-८१. जातिसूत्रादि दशक : : परमार्थज्ञ श्रमण ब्राह्मण

७८. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। जो श्रमण ब्राह्मण....जाति को नहीं जानते....पूर्ववत्....*[विस्तार कर लें।]*॥

७९.....भव को नहीं जानते....पूर्ववत्....॥

८०.....उपादान को नहीं जानते....पूर्ववत्....॥

८१.....तृष्णा को नहीं जानते....पूर्ववत्....॥

८२.....वेदना को नहीं जानते....पूर्ववत्....॥

८३.....स्पर्श को नहीं जानते....पूर्ववत्....॥

८४.....षडायतन को नहीं जानते....पूर्ववत्....॥

८५.....नामरूप को नहीं जानते....पूर्ववत्....॥

८६.....विज्ञान को नहीं जानते....पूर्ववत्....॥

८७.....संस्कारों को....संस्कारसमुदय को....संस्कारनिरोध को....संस्कारनिरोधगामी प्रतिपदा को नहीं जानते, वे....स्वयं साक्षात्कार कर साधना में निरत रहते हैं॥ •

श्रमणब्राह्मणवर्ग अष्टम समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों का स्पष्टीकरण—इन ११ (एकादश) सूत्रों में एकादश

वग्गुद्दानं

बुद्धो आहारो दसबलो, कळारो गहपतिपञ्चमो।
दुक्खवग्गो महावग्गो, अट्ठमो समणब्राह्मणो ति॥

प्रत्ययों की भावना का आर्यसत्यचतुष्टय में विभाजन के साथ इस श्रमण ब्राह्मणवर्ग का व्याख्यान किया गया है।

अनुपद में व्याख्यात वर्गों के नाम—इस संयुक्त में १. बुद्धवर्ग, २. आहारवर्ग, ३. दशबलवर्ग, ४. कडारक्षत्रियवर्ग, ५. गृहपतिवर्ग, ६. दुःखवर्ग, ७. महावर्ग एवं ८. श्रमण-ब्राह्मणवर्ग।

९. पेय्यालवग्गो नवमो

८२. सत्थुसत्तं

८८. ...सावत्थियं विहरति। "जरामरणं, भिक्खवे, अजानता अपस्सता यथाभूतं जरामरणे यथाभूतं ञाणाय सत्था परियेसितब्बो; जरामरणसमुदयं अजानता अपस्सता यथाभूतं जरामरणसमुदये यथाभूतं ञाणाय सत्था परियेसितब्बो; जरामरणनिरोधं [B.350] अजानता अपस्सता यथाभूतं जरामरणनिरोधे यथाभूतं ञाणाय सत्था परियेसितब्बो; जरामरणनिरोधगामिनिं पटिपदं अजानता उपस्सता यथाभूतं जरामरण-निरोधगामिनिया पटिपदाय यथाभूतं ञाणाय सत्था परियेसितब्बो" ति॥

(सब्बेसं पेय्यालो एवं वित्थारेतब्बो) ●

८३-९२. दुतियसत्थुसुत्तादिदसकं

[R.131] ८९. जातिं, भिक्खवे, अजानता अपस्सता यथाभूतं...पे०...।

९०. भवं, भिक्खवे, अजानता अपस्सता यथाभूतं...पे०...।

९१. उपादानं, भिक्खवे, अजानता अपस्सता यथाभूतं...पे०...।

पेय्यालवर्ग

८२. शास्तृसूत्र : : यथार्थ ज्ञानहेतु बुद्ध की गवेषणा

८८. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! जरामरण को न जानने वाले साधक को जरामरण के विषय में यथार्थ ज्ञान के लिये शास्ता की पर्येषणा (खोज) करनी चाहिये। जरामरणसमुदय को न जाननेवाले साधक को भी उसके यथार्थ ज्ञान के लिये शास्ता की पर्येषणा करनी चाहिये। जरामरणनिरोध को भी न जानने वाले साधक को उसके विषय में यथार्थ ज्ञान के लिये शास्ता की पर्येषणा करनी चाहिये। (इसी तरह) जरामरणनिरोधगामी मार्ग को न जानने वाले साधक को भी उसके यथार्थ ज्ञानहेतु शास्ता की पर्येषणा करनी चाहिये॥ ●

[आगे सभी का पेय्याल इसी पद्धति से समझ लेना चाहिये।]

८३-९२. द्वितीय शास्तृसूत्रादि दशक : : यथार्थ ज्ञानहेतु शिक्षक की खोज

८९. "भिक्षुओ! जाति के विषय में न जानने वाले साधक को यथार्थ ज्ञानहेतु....पूर्ववत्.... ॥

९०. "भिक्षुओ! भव के विषय में न जानने वाले साधक को यथार्थ ज्ञानहेतु....पूर्ववत्.... ॥

९१. "भिक्षुओ! उपादान के विषय में न जानने वाले साधक को यथार्थ ज्ञानहेतु....पूर्ववत्.... ॥

९२. तण्हं, भिक्खवे, अजानता अपस्सता यथाभूतं...पे०...।

९३. वेदनं, भिक्खवे, अजानता अपस्सता यथाभूतं...पे०...।

९४. फस्सं, भिक्खवे, अजानता अपस्सता यथाभूतं...पे०...।

९५. सळायतनं, भिक्खवे, अजानता अपस्सता यथाभूतं...पे०...।

९६. नामरूपं, भिक्खवे, अजानता अपस्सता यथाभूतं...पे०...।

९७. विञ्ञाणं, भिक्खवे, अजानता अपस्सता यथाभूतं...पे०...।

९८. ''सङ्खारे, भिक्खवे, अजानता अपस्सता यथाभूतं सङ्खारेसु यथाभूतं ञाणाय सत्था परियेसितब्बो; सङ्खारसमुदयं अजानता अपस्सता यथाभूतं सङ्खारसमुदये यथाभूतं ञाणाय सत्था परियेसितब्बो; सङ्खारनिरोधं अजानता अपस्सता यथाभूतं सङ्खारनिरोधे यथाभूतं ञाणाय सत्था परियेसितब्बो; सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं अजानता अपस्सता यथाभूतं सङ्खारनिरोधगामिनिया पटिपदाय यथाभूतं ञाणाय सत्था परियेसितब्बो'' ति॥

(सब्बेसं चतुसच्चिकं कातब्बं)

---

९२. ''भिक्षुओ! तृष्णा के विषय में न जानने वाले साधक को यथार्थ ज्ञानहेतु....पूर्ववत्.... ॥

९३. ''भिक्षुओ! वेदना के विषय में न जानने वाले साधक को यथार्थ ज्ञानहेतु....पूर्ववत्.... ॥

९४. ''भिक्षुओ! स्पर्श के विषय में न जानने वाले साधक को यथार्थ ज्ञानहेतु....पूर्ववत्.... ॥

९५. ''भिक्षुओ! षडायतन के विषय में न जानने वाले साधक को यथार्थ ज्ञानहेतु ....पूर्ववत्.... ॥

९६. ''भिक्षुओ! नामरूप के विषय में न जानने वाले साधक को यथार्थ ज्ञानहेतु ....पूर्ववत्.... ॥

९७. ''भिक्षुओ! विज्ञान के विषय में न जानने वाले साधक को यथार्थ ज्ञानहेतु ....पूर्ववत्.... ॥

९८. ''भिक्षुओ! संस्कारों के विषय में न जानने वाले साधक को उनके यथार्थ ज्ञानहेतु शास्ता की खोज करनी चाहिये। संस्कारसमुदय को....संस्कारनिरोध को....संस्कारनिरोधगामी मार्ग को न जानने वाले साधक उसके यथार्थ ज्ञानहेतु शास्ता की खोज करनी चाहिये॥

[सभी सूत्रों के व्याख्यान में आर्यसत्यचतुष्टय का विभाजन कर लेना चाहिये।]

९३-१०३. सिक्खासुत्तादिपेय्यालएकादसकं

[B.351] ९९. "जरामरणं, भिक्खवे, अजानता अपस्सता यथाभूतं जरामरणे यथाभूतं ञाणाय सिक्खा करणीया। (पेय्यालो। चतुसच्चिकं कातब्बं)

१००. जंरामरणं, भिक्खवे, अजानता...पे०...योगो करणीयो...पे०...।

[R.132]१०१. जरामरणं, भिक्खवे, अजानता...पे०...छन्दो करणीयो...पे०...।

१०२. जरामरणं, भिक्खवे, अजानता...पे०...उस्सोळ्ही करणीया...पे०...।

१०३. जरामरणं, भिक्खवे, अजानता...पे०...अप्पटिवानी करणीया...पे०...।

१०४. जरामरणं, भिक्खवे, अजानता...पे०...आतप्पं करणीयं...पे०...।

[N.114]१०५. जरामरणं, भिक्खवे, अजानता...पे०...विरियं करणीयं...पे०...।

१०६. जरामरणं, भिक्खवे, अजानता...पे०...सातच्चं करणीयं...पे०...।

१०७. जरामरणं, भिक्खवे, अजानता...पे०...सति करणीया...पे०...।

---

९३. शिक्षासूत्र आदि एकादश पेय्यालसूत्र : : यथार्थ ज्ञान हेतु शिक्षा

९९. "भिक्षुओ! जरामरण के विषय में न जानने वाले साधक को उसके यथार्थ ज्ञानहेतु शिक्षा लेने के लिये शास्ता की खोज करनी चाहिये॥" •

[यह पहला सूत्र है। इसमें तथा आगे भी आर्यसत्यचतुष्टय से विभाजन कर लेना चाहिये।]

९४. योगसूत्र : : यथार्थ ज्ञानहेतु योग

१००. "भिक्षुओ!....पूर्ववत्....योग करना चाहिये॥ •

९५. छन्दसूत्र : : यथार्थ ज्ञान के लिये छन्द

१०१. "भिक्षुओ!....पूर्ववत्....छन्द (इच्छा) करनी चाहिये॥ •

९६. उत्साहसूत्र : : यथार्थ ज्ञान के लिये उत्साह

१०२. "भिक्षुओ!....पूर्ववत्....उत्साह करना चाहिये॥ •

९६. अप्रतिवानीयसूत्र : : यथार्थ ज्ञान के लिये पीछे न हटना

१०३. "भिक्षुओ!....पूर्ववत्....पीछे नहीं हटना चाहिये॥ •

९७. आतप्यसूत्र : : यथार्थ ज्ञान के लिये उद्योग

१०४. "भिक्षुओ!....पूर्ववत्....सतत उद्योग (आतप्य) करना चाहिये॥ •

९८. वीर्यसूत्र : : यथार्थ ज्ञान के लिये वीर्य करना

१०५. "भिक्षुओ!....पूर्ववत्....निरन्तर साहस (वीर्य) रखना चाहिये॥ •

९९. सातत्यसूत्र : : यथार्थ ज्ञान के लिये निरन्तरता रखना

१०६. "भिक्षुओ!....पूर्ववत्....निरन्तरता (क्रम-भङ्ग न होना) रखनी चाहिये॥ •

१०८. जरामरणं, भिक्खवे, अजानता...पे०...सम्पजञ्ञं करणीयं...पे०...।

१०९. जरामरणं, भिक्खवे, अजानता...पे०...अप्पमादो करणीयो...पे०...।

अन्तरपेय्यालो नवमो॥

तस्सुद्दानं

सत्था सिक्खा च योगो च, छन्दो उस्सोळ्हिपञ्चमी।
अप्पटिवानि यातप्पं, विरियं सातच्चमुच्चति। [R.133]
सति च सम्पजञ्ञं च, अप्पमादेन द्वादसा ति॥

सुत्तन्ता अन्तरपेय्याला निट्ठिता॥

परे ते द्वादस होन्ति, सुत्ता द्वत्तिंस सतानि।
चतुसच्चेन ते वुत्ता, पेय्यालअन्तरम्हि येति॥

अन्तरपेय्यालेसु उद्दानं समत्तं॥

निदानसंयुत्तं समत्तं॥

---

१००. स्मृतिसूत्र : : यथार्थ ज्ञान के लिये स्मृति रखना

१०७. ''भिक्षुओ!....पूर्ववत्....स्मृति रखनी चाहिये॥ ●

१०१. सम्प्रजन्यसूत्र : : यथार्थ ज्ञान के लिये विवेक रखना

१०८. ''भिक्षुओ!....पूर्ववत्....सम्प्रजन्य (विवेक) रखना चाहिये॥ ●

१०२. अप्रमादसूत्र : : यथार्थ ज्ञान के लिये अप्रमाद रखना

१०९. ''भिक्षुओ!....पूर्ववत्....अप्रमाद (जागरूकता) रखना चाहिये॥ ●

[पेय्याल का पूर्ववत् विस्तार कर लें।]

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. शास्ता, २. शिक्षा, ३. योग, ४. छन्द, ५. उत्साह, ६. अप्रतिवानीयता, ७. आतप्य, ८. वीर्य, ९. सातत्य, १०. स्मृति, ११. सम्प्रजन्य, १२. अप्रमादसूत्र॥

[ये सभी सूत्र पेय्याल के विस्तार सहित समाप्त।]

विशेष स्पष्टीकरण—इन पूर्व व्याख्यात बत्तीस सूत्रों का व्याख्यान चार आर्यसत्यों के सहारे से पेय्यालों का विस्तार करके ही करना चाहिये॥

निदानसंयुक्त समाप्त॥

१३. अभिसमयसंयुत्तं

१. नखसिखासुत्तं

[N.115, B.352] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो भगवा परित्तं नखसिखायं पंसुं आरोपेत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, यो वायं मया परित्तो नखसिखायं पंसु आरोपितो, अयं वा महापठवी" ति?

"एतदेव, भन्ते, बहुतरं, यदिदं महापठवी। अप्पमत्तको भगवता परित्तो नखसिखायं पंसु आरोपितो। नेव सतिमं कलं उपेति न सहस्सिमं कलं उपेति न सतसहस्सिमं कलं उपेति महापठविं उपनिधाय भगवता परित्तो नखसिखायं पंसु आरोपितो" ति।

"एवमेव खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स दिट्ठिसम्पन्नस्स पुग्गलस्स अभिसमेताविनो एतदेव बहुतरं दुक्खं यदिदं परिक्खीणं परियादिण्णं; अप्पमत्तकं अवसिट्ठं। नेव सतिमं कलं उपेति न सहस्सिमं कलं उपेति न सतसहस्सिमं कलं उपेति पुरिमं दुक्खक्खन्धं परिक्खीणं परियादिण्णं उपनिधाय यदिदं सत्तक्खत्तुं परमता। एवं महत्थियो खो, भिक्खवे, धम्माभिसमयो; एवं महत्थियो धम्मचक्खुपटिलाभो" ति॥●

---

१३. अभिसमयसंयुक्त

१. नखशिखसूत्र : : स्रोत आपन्न के दुःख अत्यल्प हैं

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती** स्थित अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवन विहार में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् ने अपने नख के अग्रभाग पर बालू का एक कण रख कर अपने सम्मुख बैठे भिक्षुओं से पूछा— "क्या मानते हो, भिक्षुओ! मेरे नख के अग्रभाग पर रखा हुआ यह बालुकाकण अधिक है, या यह महापृथ्वी?"

"भन्ते! यह महापृथ्वी ही विशाल (अधिक) है, आप के नख के अग्रभाग पर रखा हुआ बालुकाकण तो बहुत अल्प है, इस पृथ्वी का शतांश या सहस्रांश भी नहीं है। यह तो लक्षांश पर भी नहीं ठहरता।"

"इसी तरह, भिक्षुओ! दृष्टिसम्पन्न, ज्ञानी, आर्यश्रावक पुद्गल के लिये वह दुःखराशि ही अधिक है जिसे (साधना से) क्षीण किया जा चुका है, उस की अपेक्षा अवशिष्ट भोग्य सुख तो बहुत अल्प है। यह उसका शतांश, सहस्रांश या लक्षांश भी नहीं है। यह अधिक से अधिक आगे के सात जन्मों में क्षीण हो जायगा।

२. पोक्खरणीसुत्तं

२. ...सावत्थियं विहरति। ''सेय्यथापि, भिक्खवे, पोक्खरणी पञ्ञासयोजनानि आयामेन पञ्ञासयोजनानि वित्थारेन पञ्ञासयोजनानि उब्बेधेन, पुण्णा उदकस्स समतित्तिका काकपेय्या। ततो पुरिसो कुसग्गेन उदकं उद्धरेय्य। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, यं वा कुसग्गेन उदकं उब्भतं यं वा पोक्खरणिया उदकं'' ति?

''एतदेव, भन्ते, बहुतरं, यदिदं पोक्खरणिया उदकं। अप्पमत्तकं कुसग्गेन उदकं उब्भतं। नेव सतिमं कलं उपेति न सहस्सिमं कलं उपेति न सतसहस्सिमं कलं [B.353] उपेति पोक्खरणिया उदकं उपनिधाय कुसग्गेन उदकं उब्भतं'' ति।

''एवमेव खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स दिट्ठिसम्पन्नस्स पुग्गलस्स [N.116] अभिसमेताविनो एतदेव बहुतरं दुक्खं यदिदं परिक्खीणं परियादिण्णं; अप्पमत्तकं अवसिट्ठं। नेव सतिमं कलं उपेति न सहस्सिमं कलं उपेति न सतसहस्सिमं कलं उपेति पुरिमं दुक्खक्खन्धं परिक्खीणं परियादिण्णं उपनिधाय, यदिदं सत्तक्खत्तुं परमता। एवं महत्थियो खो, भिक्खवे, धम्माभिसमयो; एवं महत्थियो धम्मचक्खुपटिलाभो'' ति॥ ●

३. सम्भेज्जउदकसुत्तं

३. ...सावत्थियं विहरति। ''सेय्यथापि, भिक्खवे, यत्थिमा महानदियो [R.135]

'भिक्षुओ! धर्म का ज्ञान हो जाना इतना अधिक फलप्रद है, इतना अधिक परमार्थदायक है॥ ●

२. पुष्करिणीसूत्र : : स्रोतआपन्न के दुःख अत्यल्प हैं

२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....''भिक्षुओ! जैसे कोई सभी दिशाओं में पचास योजन तक फैली पुष्करणी हो। वह किनारों तक जल से इतनी परिपूर्ण हो कि उस में कौओे आदि पक्षी भी सुखपूर्वक जल पी सकें। वहाँ कोई पुरुष आवे और कुश के अग्र भाग से उस पुष्करिणी में से एक जलबिन्दु उठा ले। तो बताओ भिक्षुओ! इन दोनों जलों में कौन जल अधिक होगा—यह पुष्करिणी का जल या यह कुशाग्र से उठाया हुआ जलबिन्दु?

''भन्ते! यह पुष्करिणी जल ही मात्रा में अधिक है, कुशाग्र भाग पर स्थित जल तो उसके सौ, हजार या लाखवें अंश की भी समता नहीं करता।''

''इसी तरह भिक्षुओ! दृष्टिसम्पन्न....पूर्वसूत्रवत्....धर्मज्ञान इतना अधिक परमार्थदायक है॥ ●

३. प्रथम सम्भेद्यउदकसूत्र : : महानदियों में एकत्र जल से दुःख की तुलना

३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।''जैसे, भिक्षुओ! ये पाँचों महानदियाँ, यथा—

संसन्दन्ति समेन्ति, सेय्यथीदं—गङ्गा यमुना अचिरवती सरभू मही, ततो पुरिसो द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि उद्धरेय्य। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, यानि वा द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि उब्भतानि यं वा सम्भेज्जउदकं'' ति?

''एतदेव, भन्ते, बहुतरं यदिदं सम्भेज्जउदकं; अप्पमत्तकानि द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि उब्भतानि। नेव सतिमं कलं उपेन्ति न सहस्सिमं कलं उपेन्ति न सतसहस्सिमं कलं उपेन्ति सम्भेज्जउदकं उपनिधाय द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि उब्भतानी'' ति।

''एवमेव खो, भिक्खवे...पे०...धम्मचक्खुपटिलाभो'' ति॥ •

४. दुतियसम्भेज्जउदकसुत्तं

४. सावत्थियं विहरति। ''सेय्यथापि, भिक्खवे, यत्थिमा महानदियो संसन्दन्ति समेन्ति, सेय्यथीदं—गङ्गा यमुना अचिरवती सरभू मही, तं उदकं परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य ठपेत्वा द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, यं वा सम्भेज्जउदकं परिक्खीणं परियादिण्णं यानि वा द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि अवसिट्ठानी'' ति?

''एतदेव, भन्ते, बहुतरं सम्भेज्जउदकं यदिदं परिक्खीणं परियादिण्णं; अप्प-
[B.354] मत्तकानि द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि अवसिट्ठानि। नेव सतिमं कलं उपेन्ति न सहस्सिमं कलं उपेन्ति न सतसहस्सिमं कलं उपेन्ति सम्भेज्जउदकं परिक्खीणं परियादिण्णं उपनिधाय द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि अवसिट्ठानी'' ति।

गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरयू एवं मही एकत्र हो जायँ। इन की इस विशाल जलराशि में से कोई पुरुष दो तीन जलबिन्दु उठा ले, तो बताओ कौन सा जल विशाल परिमाण वाला होगा—वह महानदियों की एकत्र जलराशि या यह किसी पुरुष द्वारा उठाया गया दो तीन बिन्दु चल?''

''भन्ते! ....पूर्ववत्....धर्मज्ञान इतना अधिक परमार्थदायक है॥ •

४. द्वितीय सम्भेद्यउदकसूत्र : : महानदियों के एकत्र जल से दुःख की तुलना

४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''जैसे, भिक्षु उक्त गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरयू एवं मही इन पाँचों महानदियों का समस्त जल किसी कारण सूख जाय, केवल उसमें से दो चार जलबिन्दु अवशिष्ट रह जायँ। तो बताओ, भिक्षुओ! उस समस्त शुष्क जलराशि एवं अवशिष्ट दो चार जलबिन्दुओं में से कौन अधिक (विशाल) परिमाण वाला होगा?''

"एवमेव खो, भिक्खवे...पे०...धम्मचक्खुपटिलाभो" ति॥ [N.117] ●

५. पठमपठवीसुत्तं

५. ....सावत्थियं विहरति। "सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो महापठविया [R.136] सत्त कोलट्ठिमत्तियो गुळिका उपनिक्खिपेय्य। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, या वा सत्त कोलट्ठिमत्तियो गुळिका उपनिक्खित्ता या वा महापठवी" ति?

"एतदेव, भन्ते, बहुतरं, यदिदं महापठवी; अप्पमत्तिका सत्त कोलट्ठिमत्तियो गुळिका उपनिक्खित्ता। नेव सतिमं कलं उपेन्ति न सहस्सिमं कलं उपेन्ति न सत-सहस्सिमं कलं उपेन्ति महापठविं उपनिधाय सत्त कोलट्ठिमत्तियो गुळिका उपनि-क्खित्ता" ति।

"एवमेव खो, भिक्खवे...पे०...धम्मचक्खुपटिलाभो" ति॥ ●

६. दुतियपठवीसुत्तं

६. ...सावत्थियं विहरति। "सेय्यथापि, भिक्खवे, महापठवी परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य, ठपेत्वा सत्त कोलट्ठिमत्तियो गुळिका। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, यं वा महापठविया परिक्खीणं परियादिण्णं या वा सत्त कोलट्ठि-मत्तियो गुळिका अवसिट्ठा" ति?

"एतदेव भन्ते, बहुतरं, महापठविया, यदिदं परिक्खीणं परियादिण्णं; अप्प-मत्तिका सत्त कोलट्ठिमत्तियो गुळिका अवसिट्ठा। नेव सतिमं कलं उपेन्ति न सहस्सिमं कलं उपेन्ति न सतसहस्सिमं कलं उपेन्ति महापठविया परिक्खीणं परियादिण्णं उपनिधाय सत्त कोलट्ठिमत्तियो गुळिका अवसिट्ठा" ति।

"भन्ते! ....पूर्ववत्....धर्मज्ञान इतना अधिक परमार्थदायक है॥ ●

५. पृथ्वीसूत्र : : महापृथ्वी से दुःख की तुलना

५. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।"भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष इस महापृथ्वी की अल्पमात्र मृत्तिका से बेर के समान छोटी छोटी पाँच सात गोली बना कर पृथक् रख दे। तो बताओ, भिक्षुओ! इस महापृथ्वी की वह मृत्तिकाराशि विशाल है या वे पृथक् रखी हुई पाँच सात गोलियाँ?"

"भन्ते! ....पूर्ववत्....धर्मज्ञान ही परमार्थदायक है॥ ●

६. द्वितीयपृथ्वीसूत्र : : पृथ्वी के परिमाण से दुःख की तुलना

६. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।"भिक्षुओ! कभी किसी कारण से यह महापृथ्वी क्षीण हो जाय, केवल बेर के समान पाँच सात गोली बनने योग्य इस की मृत्तिका अवशिष्ट रह जाय, तो बताओ, भिक्षुओ! वह क्षीण हुई मृत्तिकाराशि विशाल थी या यह पाँच सात गोली बनने योग्य अवशिष्ट मृत्तिका?"

"एवमेव खो, भिक्खवे...पे०...धम्मचक्खुपटिलाभो" ति॥

७. पठमसमुद्दसुत्तं

७. ...सावत्थियं विहरति। "सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो महासमुद्दतो द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि उद्धरेय्य। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, यानि [N.118, B.355] वा द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि उब्भतानि यं वा महासमुद्दे उदकं" ति?

"एतदेव, भन्ते, बहुतरं, यदिदं महासमुद्दे उदकं; अप्पमत्तकानि द्वे वा तीणि [R.137] वा उदकफुसितानि उब्भतानि। नेव सतिमं कलं उपेन्ति न सहस्सिमं कलं उपेन्ति न सतसहस्सिमं कलं उपेन्ति महासमुद्दे उदकं उपनिधाय द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि उब्भतानी" ति।

"एवमेव खो, भिक्खवे...पे०...धम्मचक्खुपटिलाभो" ति॥

८. दुतियसमुद्दसुत्तं

८. ...सावत्थियं विहरति। "सेय्यथापि, भिक्खवे, महासमुद्दो परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य, ठपेत्वा द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, यं वा महासमुद्दे उदकं परिक्खीणं परियादिण्णं यानि वा द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि अवसिट्ठानी" ति?

"एतदेव, भन्ते, बहुतरं महासमुद्दे उदकं, यदिदं परिक्खीणं परियादिण्णं; अप्पमत्तकानि द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि अवसिट्ठानि। नेव सतिमं कलं उपेन्ति न सहस्सिमं कलं उपेन्ति न सतसहस्सिमं कलं उपेन्ति महासमुद्दे उदकं परिक्खीणं परियादिण्णं उपनिधाय द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि अवसिट्ठानी" ति।

"एवमेव खो भिक्खवे...पे०...धम्मचक्खुपटिलाभो" ति॥

"भन्ते! ....पूर्ववत्....धर्मज्ञान इतना अधिक परमार्थदायक है॥

७. समुद्रसूत्र : : समुद्र के परिमाण से दुःख की तुलना

७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। भिक्षुओ! कोई पुरुष महासमुद्र की विशाल जलराशि में से दो या तीन उदकबिन्दु किसी तरह पृथक् निकाल ले, तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! इन दोनों में से कौन अपेक्षाकृत अधिक परिमाण है—वह महासमुद्र की जलराशि या उसमें से पृथक् की गयी ये दो तीन जलबिन्दु?

"भन्ते! ....पूर्ववत्....धर्मज्ञान इतना अधिक परमार्थप्रद है॥

८. द्वितीयसमुद्रसूत्र : : समुद्र के परिमाण से दुःख की तुलना

[६. द्वितीयपृथ्वीसूत्र के समान अर्थ विस्तार कर लें।]

९. पठमपब्बतसुत्तं

९. सावत्थियं विहरति। ''सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो हिमवतो पब्बतराजस्स सत्त सासपमत्तियो पासाणसक्खरा उपनिक्खिपेय्य। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, या वा सत्त सासपमत्तियो पासाणसक्खरा उपनिक्खित्ता यो वा हिमवा पब्बतराजा'' ति?

''एतदेव, भन्ते, बहुतरं यदिदं हिमवा पब्बतराजा; अप्पमत्तिका सत्त [R.138] सासपमत्तियो पासाणसक्खरा उपनिक्खित्ता। नेव सतिमं कलं उपेन्ति न [B.356] सहस्सिमं कलं उपेन्ति न सतसहस्सिमं कलं उपेन्ति हिमवन्तं पब्बतराजानं [N.119] उपनिधाय सत्त सासपमत्तियो पासाणसक्खरा उपनिक्खित्ता'' ति।

''एवमेव खो...पे०...धम्मचक्खुपटिलाभो'' ति॥ ●

१०. दुतियपब्बतसुत्तं

१०. ...सावत्थियं विहरति। ''सेय्यथापि, भिक्खवे, हिमवा पब्बतराजा परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य, ठपेत्वा सत्त सासपमत्तियो पासाणसक्खरा। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, यं वा हिमवतो पब्बतराजस्स परिक्खीणं परियादिण्णं या वा सत्त सासपमत्तियो पासाणसक्खरा अवसिट्ठा'' ति?

''एतदेव, भन्ते, बहुतरं हिमवतो पब्बतराजस्स यदिदं परिक्खीणं परियादिण्णं; अप्पमत्तिका सत्त सासपमत्तियो पासाणसक्खरा अवसिट्ठा। नेव सतिमं कलं उपेन्ति न सहस्सिमं कलं उपेन्ति न सतसहस्सिमं कलं उपेन्ति हिमवतो पब्बतराजस्स परिक्खीणं परियादिण्णं उपनिधाय सत्त सासपमत्तियो पासाणसक्खरा अवसिट्ठा'' ति।

''एवमेव खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स दिट्ठिसम्पन्नस्स पुग्गलस्स अभि-समेताविनो एतदेव बहुतरं दुक्खं यदिदं परिक्खीणं परियादिण्णं; अप्पमत्तकं अवसिट्ठं। नेव सतिमं कलं उपेति न सहस्सिमं कलं उपेति न सतसहस्सिमं कलं उपेति पुरिमं

---

९. प्रथमपर्वतसूत्र : : हिमालय पर्वत की उपमा से दुःख की तुलना

९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। जैसे, भिक्षुओ! कोई पुरुष पर्वतराज हिमालय से सरसों के समान सात पत्थर के टुकड़े (प्रस्तरखण्ड) निकाल ले। तो यहाँ क्या मानते हो, भिक्षुओ! परिमाण में वह पर्वतराज हिमालय विशाल है या ये सर्षपसमान सात प्रस्तरखण्ड?

''भन्ते! ....पूर्ववत्....धर्मज्ञान इतना अधिक परमार्थदायक है॥ ●

दुक्खक्खन्धं परिक्खीणं परियादिण्णं उपनिधाय यदिदं सत्तक्खत्तुं परमता। एवं महत्थियो खो, भिक्खवे, धम्माभिसमयो, एवं महत्थियो धम्मचक्खुपटिलाभो'' ति॥ •

११. ततियपब्बतसुत्तं

[R139] ११. सावत्थियं विहरति। ''सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो सिनेरुस्स पब्बतराजस्स सत्त मुग्गमत्तियो पासाणसक्खरा उपनिक्खिपेय्य। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, या वा सत्त मुग्गमत्तियो पासाणसक्खरा उपनिक्खित्ता यो वा सिनेरु पब्बतराजा'' ति?

''एतदेव, भन्ते, बहुतरं यदिदं सिनेरु पब्बतराजा; अप्पमत्तिका सत्त मुग्गमत्तियो [N.120, B.357] पासाणसक्खरा उपनिक्खित्ता। नेव सतिमं कलं उपेन्ति न सहस्सिमं कलं उपेन्ति न सतसहस्सिमं कलं उपेन्ति सिनेरुं पब्बतराजानं उपनिधाय सत्त मुग्गमत्तियो पासाणसक्खरा उपनिक्खित्ता'' ति।

''एवमेव खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स दिट्ठिसम्पन्नस्स पुग्गलस्स अधिगमं उपनिधाय अञ्ञतित्थियसमणब्राह्मणपरिब्बाजकानं अधिगमो नेव सतिमं कलं उपेति न सहस्सिमं कलं उपेति न सतसहस्सिमं कलं उपेति। एवं महाधिगमो, भिक्खवे, दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो, एवं महाभिञ्ञो'' ति॥ •

अभिसमयसंयुत्तं समत्तं॥

---

१०. द्वितीयपर्वतसूत्र : : हिमालय पर्वत की उपमा से दुःखपरिमाण निरूपण

१०. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।

[इस सूत्र का भी द्वितीय पृथ्वीसूत्र के अनुवाद के सहारे से अर्थविस्तार कर लें।] •

११. तृतीयपर्वतसूत्र : : सुमेरु पर्वत की उपमा से दुखःपरिमाण का निरूपण

११. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।

[इस सूत्र का भी ९. पर्वतसूत्र की तरह ही ('हिमालय' शब्द के स्थान पर 'सुमेरु' शब्द तथा 'सरसों' के स्थान पर 'मूँग' शब्द लगाते हुए अर्थविस्तार कर लें) अन्त में—]

''इसी तरह, भिक्षुओ! दृष्टिसम्पन्न आर्यश्रावक का वह ज्ञान अन्य सम्प्रदायों के श्रमणब्राह्मणों के ज्ञान से शतगुण सहस्रगुण या लक्षगुण अधिक अच्छा है। अतः वह दृष्टिसम्पन्न आर्यश्रावक ही महान् ज्ञानी है, विशिष्ट ज्ञानी (अभिज्ञावान्) है॥ •

अभिसमयसंयुक्त समाप्त॥

तस्सुद्दानं

नखसिखा पोक्खरणी, सम्भेज्जउदके च द्वे।
द्वे पठवी द्वे समुद्दा, तयो च पब्बतूपमा ति॥

अभिसमयसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. नखशिख, २. पुष्करिणी, ३. प्रथमसम्भेद्यउदक, ४. द्वितीयसम्भेद्यउदक, ५. प्रथम पृथ्वी, ६. द्वितीय पृथ्वी, ७. प्रथम समुद्र, ८. द्वितीय समुद्र, ९. प्रथम पर्वतसूत्र, १०. द्वितीय पर्वतसूत्र, एवं तृतीय पर्वतसूत्र॥ ●

१४. धातुसंयुत्तं

१. नानत्तवग्गो पठमो

१. धातुनानत्तसुत्तं

[N.121, B.358, R.140] १. ...सावत्थियं विहरति। ''धातुनानत्तं वा, भिक्खवे, देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''कतमं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं? चक्खुधातु रूपधातु चक्खुविञ्ञाणधातु, सोतधातु सद्दधातु सोतविञ्ञाणधातु, घानधातु गन्धधातु घानविञ्ञाणधातु, जिव्हाधातु रसधातु जिव्हाविञ्ञाणधातु, कायधातु फोट्ठब्बधातु कायविञ्ञाणधातु, मनोधातु धम्मधातु मनोविञ्ञाणधातु—इदं वुच्चति, भिक्खवे, धातुनानत्तं'' ति॥ •

२. फस्सनानत्तसुत्तं

२. ...सावत्थियं विहरति। ''धातुनानत्तं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं। कतमं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं? चक्खुधातु सोतधातु घानधातु जिव्हाधातु कायधातु मनोधातु—इदं वुच्चति, भिक्खवे, धातुनानत्तं।

---

१४. धातुसंयुक्त

१. नानात्ववर्ग

१. धातुनानात्वसूत्र : : अध्यात्मपञ्चक (धातु)

श्रावस्ती में साधना के समय....। ''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें धातुओं के नानात्व (अनेकत्व) के विषय में बताऊँगा, उसे तुम सुनो, ध्यानपूर्वक मन में बैठा लो, बताता हूँ। भिक्षुओं ने ''ठीक है, भन्ते!'' कह क़र भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की। भगवान् बोले—

भिक्षुओ! धातुओं का नानात्व (विभाजन) क्या है? चक्षुर्धातु, रूपधातु, चक्षुर्विज्ञानधातु; श्रोत्रधातु, शब्दधातु, शब्दविज्ञानधातु; घ्राणधातु, गन्धधातु, घ्राणविज्ञानधातु; जिह्वाधातु, रसधातु, जिह्वाविज्ञानधातु; कायधातु, स्प्रष्टव्यधातु, कायविज्ञानधातु; मनोधातु, धर्मधातु, मनोविज्ञानधातु—भिक्षुओ! यह हुआ धातुओं का विभाजन॥ •

२. स्पर्शनानात्वसूत्र : : स्पर्श का विभाग

२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण ही स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है। भिक्षुओ! यह धातुविभाजन अभी पीछे बता ही दिया, पुनः सुन लो। मुख्य

"कथं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं? चक्खुधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति चक्खुसम्फस्सो। सोतधातुं पटिच्च...घानधातुं [R.141] पटिच्च... जिव्हाधातुं पटिच्च...कायधातुं पटिच्च...मनोधातुं पटिच्च उप्पज्जति मनोसम्फस्सो। एवं खो, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं" ति॥ •

३. नोफस्सनानत्तसुत्तं

३. ...सावत्थियं विहरति। "धातुनानत्तं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, नो फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति धातुनानत्तं। कतमं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं? चक्खुधातु...पे०... मनोधातु—इदं वुच्चति, भिक्खवे, धातुनानत्तं।

"कतमं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, [N.122, B.359] नो फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति धातुनानत्तं?

"चक्खुधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति चक्खुसम्फस्सो, नो चक्खुसम्फस्सं पटिच्च उप्पज्जति चक्खुधातु...पे०...मनोधातुं पटिच्च उप्पज्जति मनोसम्फस्सो, नो मनोसम्फस्सं पटिच्च उप्पज्जति मनोधातु। एवं खो, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, नो फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति धातुनानत्तं" ति॥ •

रूप से धातुनानात्व छह प्रकार से किया जाता है : जैसे—१. चक्षुर्धातु, २. श्रोत्रधातु, ३. घ्राणधातु, ४. जिह्वाधातु, ५. कायधातु, एवं ६. मनोधातु। यह हुआ धातुविभाग।

भिक्षुओ! इस धातुविभाजन के कारण यह स्पर्शनानात्व कैसे हो पाता है? भिक्षुओ! चक्षुर्धातु के कारण चक्षु:संस्पर्श होता है, इसी तरह श्रोत्रधातु के कारण श्रोत्रसंस्पर्श, घ्राणधातु के कारण घ्राणसंस्पर्श, जिह्वाधातु के कारण जिह्वासंस्पर्श, कायधातु के कारण कायसंस्पर्श एवं मनोधातु के कारण मन:संस्पर्श होता है। यों, भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण स्पर्शनानात्व होता है॥ •

३. नस्पर्शनानात्वसूत्र : : धातुविभिन्नता से ही स्पर्शविभिन्नता

३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।"भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण ही स्पर्शनानात्व हो पाता है; ऐसा नहीं है कि स्पर्शनानात्व के कारण धातुनानात्व होता हो। भिक्षुओ! यह धातुनानात्व क्या है? चक्षुर्धातु....पूर्ववत्....मनोधातु—भिक्षुओ! यह है धातुनानात्व।

"भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण ही स्पर्शनानात्व होता है। ऐसा क्यों नहीं कि स्पर्शनानात्व के कारण धातुनानात्व होने लगे?

"भिक्षुओ! चक्षुर्धातु के कारण चक्षु:संस्पर्श उत्पन्न होता है, न कि चक्षु:संस्पर्श के कारण चक्षुर्धातु। ....पूर्ववत्....मनोधातु के कारण ही मन:संस्पर्श उत्पन्न होता है, न कि मन:संस्पर्श के कारण मनोधातु। यों, भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण ही स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है, न कि स्पर्शनानात्व के कारण धातुनानात्व॥ •

४. वेदनानानत्तसुत्तं

४. ...सावत्थियं विहरति। "धातुनानत्तं, भिक्खवे, पटिच्च उंप्पज्जति फस्सनानत्तं, फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति वेदनानानत्तं। कतमं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं? [R.142] चक्खुधातु...पे०...मनोधातु—इदं वुच्चति, भिक्खवे, धातुनानत्तं।

"कथं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति वेदनानानत्तं? चक्खुधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति चक्खुसम्फस्सो, चक्खुसम्फस्सं पटिच्च उप्पज्जति चक्खुसम्फस्सजा वेदना...पे०...मनोधातुं पटिच्च उप्पज्जति मनोसम्फस्सो, मनोसम्फस्सं पटिच्च उप्पज्जति मनोसम्फस्सजा वेदना। एवं खो, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति वेदनानानत्तं" ति।

५. दुतियवेदनानानत्तसुत्तं

५. सावत्थियं विहरति। "धातुनानत्तं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति वेदनानानत्तं, नो वेदनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, नो फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति धातुनानत्तं। कतमं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं? चक्खुधातु... पे०...मनोधातु—इदं वुच्चति, भिक्खवे, धातुनानत्तं।

---

४. वेदनानानात्वसूत्र : : वेदना की विभिन्नता

श्रावस्ती में साधना के समय....। "भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है तथा इस स्पर्शनानात्व के कारण वेदनानानात्व उत्पन्न होता है। भिक्षुओ! धातुनानात्व तो चक्षुर्धातु....पूर्ववत्....मनोधातु रूप से पहले बता ही दिया गया है।

"कैसे, भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण....पूर्ववत्....वेदनानानात्व होता है? भिक्षुओ! चक्षुर्धातु के कारण चक्षु:संस्पर्श होता है, तथा इस चक्षु:संस्पर्श के कारण चक्षु:संस्पर्शजन्य वेदना होती है....पूर्ववत्....मनोधातु के कारण मन:संस्पर्श होता है तथा मन:संस्पर्श के कारण मन:संस्पर्शजन्य वेदना होती है। यों, भिक्षुओ! धातुओं के नानात्व के कारण स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है तथा उस स्पर्शनानात्व के कारण वेदनानानात्व का उत्पाद होता है॥

•

५. द्वितीय वेदनानानात्वसूत्र : : वेदना की विभिन्नता

५. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! धातुओं के नानात्व के कारण स्पर्शनानात्व उद्भूत होता है तथा स्पर्शनानात्व के कारण वेदनानानात्व। ऐसा नहीं होता कि वेदनानानात्व के कारण स्पर्शनानात्व उद्भूत होता हो और स्पर्शनानात्व के कारण धातुओं में नानात्व आता हो। भिक्षुओ! यह धातुनानात्व क्या है? चक्षुर्धातु....पूर्ववत्....मनोधातु—भिक्षुओ! यह कहलाता है धातुनानात्व।

"कथं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति वेदनानानत्तं, नो वेदनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, नो फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति धातुनानत्तं?

"चक्खुधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति चक्खुसम्फस्सो, [N.123, R.143] चक्खुसम्फस्सं पटिच्च उप्पज्जति चक्खुसम्फस्सजा वेदना, नो चक्खुसम्फस्सजं वेदनं पटिच्च उप्पज्जति चक्खुसम्फस्सो, नो चक्खुसम्फस्सं पटिच्च उप्पज्जति चक्खुधातु... पे०...मनोधातुं पटिच्च उप्पज्जति मनोसम्फस्सो, मनोसम्फस्सं पटिच्च उप्पज्जति [B.360] मनोसम्फस्सजा वेदना, नो मनोसम्फस्सजं वेदनं पटिच्च उप्पज्जति मनोसम्फस्सो, नो मनोसम्फस्सं पटिच्च उप्पज्जति मनोधातु। एवं खो, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति वेदनानानत्तं, नो वेदनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानतं, नो फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति धातुनानत्तं" ति॥ •

६. बाहिरधातुनानत्तसुत्तं

६. ...सावत्थियं विहरति। "धातुनानत्तं वो, भिक्खवे, देसेस्सामि। तं सुणाथ ...पे०...कथं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं? रूपधातु सद्दधातु गन्धधातु रसधातु फोट्ठब्बधातु धम्मधातु—इदं वुच्चति, भिक्खवे, धातुनानत्तं" ति॥ •

७. सञ्ञानानत्तसुत्तं

७. ...सावत्थियं विहरति। "धातुनानत्तं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सङ्कप्पनानत्तं, सङ्कप्पनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति

"और, भिक्षुओ! धातुनानात्व के आश्रय से स्पर्शनानात्व कैसे उद्भूत होता है तथा स्पर्शनानात्व के कारण वेदनानानात्व कैसे उद्भूत होता है? ऐसा क्यों नहीं होता कि वेदनानानात्व के कारण स्पर्शनानात्व हो और स्पर्शनानात्व के कारण धातुनानात्व हो?

भिक्षुओ! चक्षुर्धातु के कारण चक्षुःसंस्पर्श....पूर्ववत्....(प्रथम वेदनानानात्व की तरह विस्तार कर लें।) न कि स्पर्शनानात्व के कारण धातुनानात्व उद्भूत होता है॥ •

६. बाह्यधातुनानात्वसूत्र : : बाह्यपञ्चक धातु विभाजन

६. **श्रावस्ती में** साधना करते समय....। भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें धातुनानात्व की देशना करूँगा। उसे सुनो....पूर्ववत्....। कैसे, भिक्षुओ! धातुनानात्व होता है? रूपधातु, शब्दधातु, गन्धधातु, रसधातु, स्प्रष्टव्यधातु एवं धर्मधातु। भिक्षुओ! यह कहलाता है—धातुनानात्व॥ •

७. संज्ञानानात्वसूत्र : : संज्ञा की विभिन्नता

७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण संज्ञानानात्व

छन्दनानत्तं, छन्दनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परिळाहनानत्तं, परिळाहनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परियेसनानानत्तं। कतमं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं? रूपधातु...पे०...धम्मधातु—इदं वुच्चति, भिक्खवे, धातुनानत्तं।

[R.144] ''कथं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सङ्कप्पनानत्तं, सङ्कप्पनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति छन्दनानत्तं, छन्दनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परिळाहनानत्तं, परिळाहनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परियेसनानानत्तं?

''रूपधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति रूपसञ्ञा, रूपसञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति रूपसङ्कप्पो, रूपसङ्कप्पं पटिच्च उप्पज्जति रूपच्छन्दो, रूपच्छन्दं पटिच्च उप्पज्जति [N.124] रूपपरिळाहो, रूपपरिळाहं पटिच्च उप्पजज्जति रूपपरियेसना...पे०...धम्मधातुं पटिच्च उप्पज्जति धम्मसञ्ञा, धम्मसञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति धम्मसङ्कप्पो, धम्मसङ्कप्पं पटिच्च उप्पज्जति धम्मच्छन्दो, धम्मच्छन्दं पटिच्च उप्पज्जति धम्मपरिळाहो, धम्मपरिळाहं पटिच्च उप्पज्जति धम्मपरियेसना।

''एवं, खो, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, सञ्ञानानत्तं [B.361] पटिच्च उप्पज्जति सङ्कप्पनानत्तं, सङ्कप्पनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति छन्दनानत्तं, छन्दनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परिळाहनानत्तं, परिळाहनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परियेसनानानत्तं'' ति॥

●

उत्पन्न होता है, संज्ञानानात्व के कारण सङ्कल्पनानात्व, सङ्कल्पनानात्व के कारण छन्दनानात्व, छन्दनानात्व के कारण परिदाहनानात्व, परिदाह (तीव्र राग) नानात्व के कारण पर्येषणा (मार्गणा=खोज) नानात्व उत्पन्न होता है। यहाँ धातुनानात्व क्या है? रूपधातु.... पूर्ववत्....धम्मधातु—भिक्षुओ! यह धातुनानात्व कहलाता है।

''कैसे, भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण ही संज्ञानानात्व होता है, संज्ञानानात्व कारण....पूर्ववत्....परिदाहनानात्व के कारण पर्येषणानानात्व होता है?

''रूपधातु के कारण, भिक्षुओ! रूपसंज्ञा उत्पन्न होती है, रूपसंज्ञा के कारण रूपसङ्कल्प, रूपसङ्कल्प के कारण रूपच्छन्द, रूपच्छन्द के कारण रूपपरिदाह, रूपपरिदाह के कारण रूपपर्येषणा....पूर्ववत्....धर्मधातु के कारण धर्मसंज्ञा, धर्मसंज्ञा के कारण धर्मसङ्कल्प, धर्मसङ्कल्प के कारण धर्मच्छन्द, धर्मच्छन्द के कारण धर्मपरिदाह, धर्मपरिदाह के कारण धर्मपर्येषणा उद्भूत होती है।

इस तरह, भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण संज्ञानानात्व....पूर्ववत्....पर्येषणानानात्व उद्भूत होता है॥

●

८. नोपरियेसनानानत्तसुत्तं

८. ...सावत्थियं विहरति। "धातुनानत्तं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सङ्कप्पनानत्तं, सङ्कप्पनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति छन्दनानत्तं, छन्दनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परिळाहनानत्तं, परिळाहनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परियेसनानानत्तं; नो परियेसनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परिळाहनानत्तं, नो परिळाहनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति छन्दनानत्तं, नो छन्दनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति [R.145] सङ्कप्पनानत्तं, नो सङ्कप्पनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, नो सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति धातुनानत्तं। कतमं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं? रूपधातु...पे०...धम्मधातु— इदं वुच्चति, भिक्खवे, धातुनानत्तं।

"कथं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति...पे०...परियेसनानानत्तं; नो परियेसनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परिळाहनानत्तं, नो परिळाहनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति छन्दनानत्तं, नो छन्दनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सङ्कप्पनानत्तं, नो सङ्कप्पनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, नो सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति धातुनानत्तं?

"रूपधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति रूपसञ्ञा...पे०...धम्मधातुं पटिच्च उप्पज्जति धम्मसञ्ञा, धम्मसञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति...पे०...धम्मपरियेसना; नो [R.146] धम्मपरियेसनं पटिच्च उप्पज्जति धम्मपरिळाहो, नो धम्मपरिळाहं पटिच्च उप्पज्जति

---

८. नोपर्येषणानानात्वसूत्र : :यत्न की विभिन्नता से धातु विभिन्नता नहीं

८. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण संज्ञानानात्व उद्भूत होता है....पूर्ववत्....पर्येषणानानात्व होता है। ऐसा नहीं होता कि पर्येषणानानात्व के कारण परिदाहनानात्व होता हो, या परिदाहनानात्व के कारण छन्दनानात्व होता हो, न छन्दनानात्व के कारण सङ्कल्पनानात्व होता है, न सङ्कल्पनानात्व के कारण संज्ञानानात्व होता है, न संज्ञानानात्व के कारण धातुनानात्व ही उद्भूत होता है।

"कैसे, भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण संज्ञानानात्व उद्भूत होता है? संज्ञानानात्व के कारण....पूर्ववत्....पर्येषणानानात्व उद्भूत होता है? ऐसा क्यों नहीं होता कि पर्येषणानानात्व के कारण परिदाहनानात्व उद्भूत हो? या परिदाहनानात्व के कारण छन्दनानात्व या छन्दनानात्व के कारण सङ्कल्पनानात्व, या सङ्कल्पनानात्व के कारण संज्ञानानात्व या संज्ञानानात्व के कारण धातुनानात्व उद्भूत होता हो?

"भिक्षुओ! रूपधातु के कारण रूपसंज्ञा उद्भूत होती है....पूर्ववत्....धर्मधातु के कारण धर्मसंज्ञा उद्भूत होती है। धर्मसंज्ञा के कारण....पूर्ववत्....धर्मपर्येषणा। न कि

[N.125] धम्मच्छन्दो, नो धम्मच्छन्दं पटिच्च उप्पज्जति धम्मसङ्कप्पो, नो धम्मसङ्कप्पं पटिच्च उप्पज्जति धम्मसञ्ञा, नो धम्मसञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति धम्मधातु।

"एवं खो, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति...पे०...परियेसनानानत्तं; नो परियेसनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परिळाहनानत्तं, नो परिळाहनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति छन्दनानत्तं, नो छन्दनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सङ्कप्पनानत्तं, नो सङ्कप्पनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, नो सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति धातुनानत्तं" ति॥

९. बाहिरफस्सनानत्तसुत्तं

[B.362] ९. ...सावत्थियं विहरति। "धातुनानत्तं भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सङ्कप्पनानत्तं, सङ्कप्पनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति वेदनानानत्तं, वेदनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति छन्दनानत्तं, छन्दनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परिळाहनानत्तं, परिळाहनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परियेसनानानत्तं, परियेसनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति लाभनानत्तं। कतमं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं? रूपधातु...पे०...धम्मधातु—इदं वुच्चति, भिक्खवे, धातुनानत्तं।

"कथं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, सञ्ञानानत्तं [R.147] पटिच्च उप्पज्जति...पे०...लाभनानत्तं?

धर्मपर्येषणा के कारण धर्मपरिदाह उद्भूत होता है, न धर्मपरिदाह के कारण धर्मच्छन्द, न धर्मच्छन्द के कारण धर्मसङ्कल्प, न धर्मसङ्कल्प के कारण धर्मसंज्ञा, न धर्मसंज्ञा के कारण धर्मधातु ही उद्भूत होती है।

"इस तरह, भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण संज्ञानानात्व उद्भूत होता है संज्ञानानात्व के कारण....पूर्ववत्....पर्येषणानानात्व। यह नहीं होता कि पर्येषणानानात्व के कारण परिदाहनानात्व उद्भूत होता हो; या....पूर्ववत्....संज्ञानानात्व के कारण धातुनानात्व उद्भूत होता हो॥

●

९. बाह्यस्पर्शनानात्वसूत्र : : विभिन्न लाभों के हेतु

९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण संज्ञानानात्व उद्भूत होता है, संज्ञानानात्व के कारण सङ्कल्पनानात्व, सङ्कल्पनानात्व के कारण स्पर्शनानात्व, स्पर्शनानात्व के कारण वेदनानानात्व, वेदनानानात्व के कारण छन्दनानात्व, छन्दनानात्व के कारण परिदाहनानात्व, परिदाहनानात्व के कारण पर्येषणानानात्व तथा पर्येषणानानात्व के कारण विविध (नाना) लाभ उद्भूत होते हैं। भिक्षुओ! यह धातुनानात्व क्या है? रूपधातु....पूर्ववत्....धर्मधातु—भिक्षुओ! इस प्रकरण में इसे कहते हैं धातुनानात्व।

"रूपधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति रूपसञ्ञा, रूपसञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति रूपसङ्कप्पो, रूपसङ्कप्पं पटिच्च उप्पज्जति रूपसम्फस्सो, रूपसम्फस्सं पटिच्च उप्पज्जति रूपसम्फस्सजा वेदना, रूपसम्फस्सजं वेदनं पटिच्च उप्पज्जति रूपच्छन्दो, रूपच्छन्दं पटिच्च उप्पज्जति रूपपरिळाहो, रूपपरिळाहं पटिच्च उप्पज्जति रूपपरियेसना, रूप-परियेसनं पटिच्च उप्पज्जति रूपलाभो...पे०...धम्मधातुं पटिच्च उप्पज्जति धम्मसञ्ञा, धम्मसञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति धम्मसङ्कप्पो, धम्मसङ्कप्पं पटिच्च उप्पज्जति धम्म-सम्फस्सो, धम्मसम्फस्सं पटिच्च उप्पज्जति धम्मसम्फस्सजा वेदना, धम्मसम्फस्सजं वेदनं पटिच्च उप्पज्जति धम्मच्छन्दो, धम्मच्छन्दं पटिच्च उप्पज्जति धम्म- [N.126] परिळाहो, धम्मपरिळाहं पटिच्च उप्पज्जति धम्मपरियेसना, धम्मपरियेसनं पटिच्च उप्पज्जति धम्मलाभो।

"एवं खो, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति...पे०...परियेसनानानत्तं, परियेसनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति लाभ-नानत्तं" ति॥

●

१०. दुतियबाहिरफस्सनानत्तसुत्तं

१०. ...सावत्थियं विहरति। "धातुनानत्तं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सङ्कप्पनानत्तं, फस्स...वेदना... [R.148] छन्द... परिळाह...परियेसनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति लाभनानत्तं; नो लाभनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परियेसनानानत्तं, नो परियेसनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परिळाहनानत्तं, नो

"और कैसे, भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण संज्ञानानात्व उद्भूत होता है तथा संज्ञानानात्व के कारण....पूर्ववत्....लाभ नानात्व?

"भिक्षुओ! रूपधातु के कारण रूपसंज्ञा, रूपसंज्ञा के कारण रूपसङ्कल्प, रूपसङ्कल्प के कारण रूपसंस्पर्श, रूपसंस्पर्श के कारण रूपसंस्पर्शजन्य वेदना, रूपसंस्पर्शज वेदना के कारण रूपच्छन्द, रूपच्छन्द के कारण रूपपरिदाह, रूपपरिदाह के कारण रूपपर्येषणा, रूपपर्येषणा के कारण रूपलाभ....पूर्ववत्....। धर्मधातु के कारण धर्मसंज्ञा, उसके कारण धर्मसङ्कल्प, उस से धर्मसंस्पर्श, उससे धर्मसंस्पर्शज वेदना, उस वेदना के कारण धर्मच्छन्द, उसके कारण, धर्मपरिदाह, उससे धर्मपर्येषणा तथा उस धर्मपर्येषणा के कारण उत्पन्न होता है धर्मपरिलाभ।

"इस तरह, भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण संज्ञानानात्व उद्भूत होता है, संज्ञानानात्व के कारण....पूर्ववत्....पर्येषणानानात्व एवं उस पर्येषणानानात्व से लाभनानात्व उत्पन्न होता है॥

●

[B.363] परिळाहनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति... पे०...छन्द...वेदना...फस्स...सङ्कप्प... सञ्ञानानत्तं, नो सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति धातुनानत्तं। कतमं च, भिक्खवे, धातु-नानत्तं? रूपधातु...पे०...धम्मधातु—इदं वुच्चति, भिक्खवे, धातुनानत्तं।

"कथं च, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सङ्कप्पनानत्तं? फस्स...वेदना...छन्द...परिळाह...परियेसना...लाभ... नो लाभनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परियेसनानानत्तं, नो परियेसनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परिळाह...छन्द...वेदना...फस्स...नो सङ्कप्पनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, नो सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति धातुनानत्तं?

"रूपधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति रूपसञ्ञा...पे०...धम्मधातुं पटिच्च उप्पज्जति धम्मसञ्ञा, धम्मसञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति...पे०...धम्मपरियेसना, धम्म-परियेसनं पटिच्च उप्पज्जति धम्मलाभो; नो धम्मलाभं पटिच्च उप्पज्जति धम्मपरियेसना, [R.149] नो धम्मपरियेसनं पटिच्च उप्पज्जति धम्मपरिळाहो, नो धम्मपरिळाहं पटिच्च उप्पज्जति धम्मच्छन्दो, नो धम्मच्छन्दं पटिच्च उप्पज्जति धम्मसम्फस्सजा वदना, नो धम्मफस्सजं वेदनं पटिच्च उप्पज्जति धम्मसम्फस्सो, नो धम्मसम्फस्सं पटिच्च उप्पज्जति [N.127] धम्मसङ्कप्पो, नो धम्मसङ्कप्पं पटिच्च उप्पज्जति धम्मसञ्ञा, नो धम्मसञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति धम्मधातु।

"एवं खो, भिक्खवे, धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति...पे०...सङ्कप्प...फस्स...वेदना...छन्द...परिळाह...परियेसना...लाभ ...नो लाभनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परियेसनानानत्तं, नो परियेसनानानत्तं पटिच्च

---

१०. द्वितीय बहिःस्पर्शनानात्वसूत्र : : धातुनानात्व से संज्ञानानात्व

१०. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण संज्ञानानात्व उद्भूत होता है....पूर्ववत्....।

[प्रथम दो अनुबन्धों का विस्तार अनुपद के प्रथम सूत्र के ही समान है।]

"रूपधातु के कारण, भिक्षुओ! रूपसंज्ञा....पूर्ववत्....। धर्मधातु के कारण धर्मसंज्ञा, धर्मसंज्ञा के कारण....पूर्ववत्....धर्मपर्येषणा, धर्मपर्येषणा के कारण धर्मलाभ उद्भूत होता है; न कि धर्मलाभ के कारण धर्मपर्येषणा....धर्मपरिदाह....धर्मच्छन्द....धर्मसंस्पर्शज वेदना....धर्मसंस्पर्श....धर्मसङ्कल्प के कारण धर्मसंज्ञा या धर्मसंज्ञा के कारण धर्मधातु उत्पन्न होती है।

"इस तरह, भिक्षुओ! धातुनानात्व के कारण संज्ञानानात्व....सङ्कल्प....स्पर्श.... स्पर्शजवेदना....छन्द....परिदाह....पर्येषणा....लाभनानात्व उद्भूत होता है; न कि लाभनानात्व

उप्पज्जति परिळाहनानत्तं, नो परिळाहनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति छन्दनानत्तं, नो छन्दनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति वेदनानानत्तं, नो वेदनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, नो फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सङ्कप्पनानत्तं, नो सङ्कप्पनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञानानत्तं, नो सञ्ञानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति धातुनानत्तं'' ति॥ •

नानत्तवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

धातुफस्सं च नो चेतं, वेदना अपरे दुवे।
एतं अज्झत्तपञ्चकं, धातुसञ्ञं च नो चेतं।
फस्सस्स अपरे दुवे, एतं बाहिरपञ्चकं ति॥

के कारण पर्येषणानानात्व, पर्येषणानानात्व के कारण परिदाहनानात्व....छन्दनानात्व.... वेदनानानात्व....स्पर्शनानात्व....सङ्कल्पनानात्व....संज्ञानानात्व, न संज्ञानानात्व के कारण धातुनानात्व उद्भूत होता है॥ •

नानात्ववर्ग प्रथम समाप्त॥

नानात्ववर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—(अध्यात्मपञ्चक—) १. धातुनानात्व, २. स्पर्शनानात्व, ३. न स्पर्शनानात्व (नो चेतं), ४. वेदनानानात्व, ५. द्वितीय वेदनानानात्व, (बाह्यपञ्चक—) ६. बाह्यधातुनानात्व, ७. संज्ञानानात्व, ८. नोपर्येषणा, ९. बाह्यस्पर्शनानात्व, एवं १०. द्वितीय बाह्यस्पर्शनानात्वसूत्र॥ •

२. दुतियो वग्गो

११. सत्तधातुसुत्तं

[B.364, R.150] ११. सावत्थियं विहरति। "सत्तिमा, भिक्खवे, धातुयो। कतमा सत्त? आभाधातु, सुभधातु, आकासानञ्चायतनधातु, विञ्ञाणञ्चायतनधातु, आकिञ्चञ्ञायतनधातु, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनधातु, सञ्ञावेदयितनिरोधधातु—इमा खो, भिक्खवे, सत्त धातुयो" ति।

एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"या चायं, भन्ते, आभाधातु या च सुभधातु या च आकासानञ्चायतनधातु या च विञ्ञाणञ्चायतनधातु या च आकिञ्चञ्ञायतनधातु या च नेवसञ्ञानासञ्ञायतनधातु या च सञ्ञावेदयितनिरोधधातु—इमा नु खो, भन्ते, धातुयो किं पटिच्च पञ्ञायन्ती" ति?

"यायं, भिक्खु, आभाधातु—अयं धातु अन्धकारं पटिच्च पञ्ञायति। यायं, [N.128] भिक्खु, सुभधातु—अयं धातु असुभं पटिच्च पञ्ञायति। यायं, भिक्खु, आकासानञ्चायतनधातु—अयं धातु रूपं पटिच्च पञ्ञायति। यायं, भिक्खु, विञ्ञाणञ्चयतनधातु—अयं धातु आकासानञ्चायतनं पटिच्च पञ्ञायति। यायं, भिक्खु, आकिञ्चायतनधातु—अयं धातु विञ्ञाणञ्चायतनं पटिच्च पञ्ञायति। यायं, भिक्खु, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनधातु—अयं धातु आकिञ्चञ्ञायतनं पटिच्च पञ्ञायति। यायं, भिक्खु, सञ्ञावेदयितनिरोधधातु—अयं धातु निरोधं पटिच्च पञ्ञायती" ति।

द्वितीय वर्ग

११. सत्तधातुसूत्र

सात धातु

११. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! ये सात धातु होती हैं। कौन सी सात? १. आभाधातु, २. शुभधातु, ३. आकाशानन्त्यायतनधातु, ४. विज्ञानानन्त्यायतनधातु, ५. आकिञ्चन्यायतनधातु, ६. नैवसंज्ञानासंज्ञायतनधातु एवं ७. संज्ञावेदयितनिरोधधातु। भिक्षुओ! ये सात धातु होती हैं।"

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर किसी भिक्षु ने भगवान् से यों पूछा—"भन्ते! आपने ऊपर जो आभाधातु आदि सात धातु गिनायी हैं वे किस हेतु से प्रज्ञप्त होती (जानी जाती) हैं?"

(भगवान् का उत्तर—) "भिक्षु! यह आभाधातु अन्धकारहेतु से प्रज्ञप्त होती है, शुभधातु अशुभहेतु से, आकाशानन्त्यायतन धातु रूप हेतु से, विज्ञानानन्त्यायतनधातु आकाशानन्त्यायनहेतु से, आकिञ्चन्यायतनधातु विज्ञानानन्त्यायतनहेतु से, नैवसंज्ञाना-

"या चायं, भन्ते, आभाधातु या च सुभधातु या च आकासानञ्चायतनधातु या च विञ्ञाणञ्चायतनधातु या च आकिञ्चञ्ञायतनधातु या च नेवसञ्ञानासञ्ञायतनधातु या च सञ्ञावेदयितनिरोधधातु—इमा नु खो, भन्ते, धातुयो कथं समापत्ति पत्तब्बा" ति?

"या चायं, भिक्खु, आभाधातु या च सुभधातु या च आकासानञ्चायतनधातु या च विञ्ञाणञ्चायतनधातु या च आकिञ्चञ्ञायतनधातु—इमा धातुयो [R.151] सञ्ञासमापत्ति पत्तब्बा। यायं, भिक्खु, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनधातु—अयं धातु सङ्खारावसेससमापत्ति पत्तब्बा। यायं, भिक्खु, सञ्ञावेदयितनिरोधधातु—अयं [B.365] धातु निरोधसमापत्ति पत्तब्बा" ति॥ ●

१२. सनिदानसुत्तं

१२. ...सावत्थियं विहरति। "सनिदानं, भिक्खवे, उप्पज्जति कामवितक्को, नो अनिदानं; सनिदानं उप्पज्जति ब्यापादवितक्को, नो अनिदानं; सनिदानं उप्पज्जति विहिंसावितक्को, नो अनिदानं।

"कथं च, भिक्खवे, सनिदानं उप्पज्जति कामवितक्को, नो अनिदानं; सनिदानं उप्पज्जति ब्यापादवितक्को, नो अनिदानं; सनिदानं उप्पज्जति विहिंसावितक्को, नो अनिदानं? कामधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति कामसञ्ञा, कामसञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति कामसङ्कप्पो, कामसङ्कप्पं पटिच्च उप्पज्जति कामच्छन्दो, कामच्छन्दं पटिच्च उप्पज्जति कामपरिळाहो, कामपरिळाहं पटिच्च उप्पज्जति कामपरियेसना। [N.129]

संज्ञानन्त्यायतनधातु आकिञ्चन्यायतनधातु से तथा संज्ञावेदयितनिरोधधातु नैवसंज्ञाना-संज्ञायतनधातु से प्रज्ञप्त होती है।"

(भिक्षु—) "भन्ते! इन उपर्युक्त आभा आदि सात धातुओं की समापत्ति (प्राप्ति=ज्ञान) कैसे होती है?"

"भिक्षु! इन में प्रथम पाँच धातुओं की प्राप्ति संज्ञा से होती है। तथा नैवसंज्ञानासंज्ञायतनधातु की प्राप्ति संस्कारों के सर्वथा नि:शेष हो जाने से ज्ञात होती है। तथा, भिक्षु! संज्ञावेदयितनिरोधधातु निरोध के होने से प्राप्त होती है॥ ●

१२. सनिदानसूत्र : : कारण से कार्य की उत्पत्ति

१२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! कामवितर्क किसी निदान (कारण) से ही उत्पन्न होता है, कारण के विना नहीं; व्यापादवितर्क एवं विहिंसावितर्क भी किसी निदान से ही उत्पन्न होता है निदान के विना नहीं।"

"कैसे, भिक्षुओ! कामवितर्क....विहिंसावितर्क किसी निदान से ही उत्पन्न होता है, निदान के विना नहीं? भिक्षुओ! कामधातु के कारण कामसंज्ञा उत्पन्न होती है, कामसंज्ञा

कामपरियेसनं, भिक्खवे, परियेसमानो अस्सुतवा पुथुज्जनो तीहि ठानेहि मिच्छा पटिपज्जतिकायेन वाचाय मनसा।

"ब्यापादधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति ब्यापादसञ्ञा, ब्यापादसञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति ब्यापादसङ्कप्पो...पे०...ब्यापादच्छन्दो...ब्यापादपरिळाहो...ब्यापादपरियेसना ...ब्यापादपरियेसनं, भिक्खवे, परियेसमानो अस्सुतवा पुथुज्जनो तीहि ठानेहि मिच्छा पटिपज्जति—कायेन वाचाय मनसा।

"विहिंसाधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति विहिंसासञ्ञा; विहिंसासञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति विहिंसासङ्कप्पो...पे०...विहिंसाछन्दो...विहिंसापरिळाहो...विहिंसापरियेसना [R.152] ...विहिंसापरियेसनं, भिक्खवे, परियेसमानो अस्सुतवा पुथुज्जनो तीहि ठानेहि मिच्छा पटिपज्जति—कायेन वाचाय मनसा।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो आदित्तं तिणुक्कं सुक्खे तिणदाये निक्खिपेय्य; नो चे हत्थेहि च पादेहि च खिप्पमेव निब्बापेय्य। एवं हि, भिक्खवे, ये तिणकट्ठनिस्सिता पाणा ते अनयब्यसनं आपज्जेय्युं। एवमेव खो, भिक्खवे, यो हि कोचि समणो वा [B.366] ब्राह्मणो वा उप्पन्नं विसमगतं सञ्ञं न खिप्पमेव पजहति विनोदेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति सो दिट्ठे चेव धम्मे दुक्खं विहरति सविघातं सउपायासं सपरिळाहं; कायस्स च भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा।

के कारण कामसङ्कल्प, कामसङ्कल्प के कारण कामच्छन्द, कामच्छन्द के कारण कामपरिदाह, कामपरिदाह के कारण कामपर्येषणा उत्पन्न होती है। परन्तु कोई पृथग्जन, जिसका शास्त्र से कोई सम्बन्ध न हो, इस तरह की पर्येषणा की खोज में कायिक, वाचिक एवं मानसिक— ये त्रिविध प्रमाद कर सकता है।

"इसी तरह, भिक्षुओ! व्यापादधातु के कारण व्यापादसंज्ञा....पूर्ववत्....।

"इसी तरह, भिक्षुओ! विहिंसाधातु के कारण विहिंसासंज्ञा....पूर्ववत्....त्रिविध प्रमाद कर सकता है।

"भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष जलता हुआ तृणपिण्ड (उल्का) किसी विशाल घास के समूह (राशि) में फैंक दे। यदि वह उस जलती हुई तृणराशि को उस विशाल तृणसमूह से दूर न हटा दे, बुझा न दे तो उस विशाल तृणसमूह में रहनेवाले जीवजन्तुओं के प्राण निश्चय ही सङ्कट में पड़ जायँगे। इसी तरह, भिक्षुओ! जो कोई भी श्रमण ब्राह्मण उत्पन्न विषमगत (अशुभ) संज्ञा को तत्काल छोड़ न दे, दूर न कर दे, उसे नष्ट न कर दे तो वह इसी जन्म में दुःखमय जीवनयापन के लिये बाध्य हो जायगा। तथा मरणानन्तर उस का नरकपात सुनिश्चित है।

"सनिदानं, भिक्खवे, उप्पज्जति नेक्खम्मवितक्को, नो अनिदानं; सनिदानं उप्पज्जति अब्यापादवितक्को, नो अनिदानं; सनिदानं उप्पज्जति अविहिंसावितक्को, नो अनिदानं।

"कथं च, भिक्खवे, सनिदानं उप्पज्जति नेक्खम्मवितक्को, नो अनिदानं; सनिदानं उप्पज्जति अब्यापादवितक्को, नो अनिदानं; सनिदानं उप्पज्जति अविहिंसावितक्को, नो अनिदानं? नेक्खम्मधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति नेक्खम्मसञ्ञा, नेक्खम्मसञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति नेक्खम्मसङ्कप्पो, नेक्खम्मसङ्कप्पं पटिच्च उप्पज्जति नेक्खम्मच्छन्दो, नेक्खमच्छन्दं पटिच्च उप्पज्जति नेक्खम्मपरिळाहो, नेक्खम्मपरिळाहं पटिच्च उप्पज्जति नेक्खम्मपरियेसना; नेक्खम्मपरियेसनं, भिक्खवे, परियसमानो सुतवा अरिय- [N.130] सावको तीहि ठानेहि सम्मापटिपज्जति—कायेन वाचाय मनसा।

"अब्यापादधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति अब्यापादसञ्ञा, अब्यापादसञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति अब्यापादसङ्कप्पो...पे०...अब्यापादच्छन्दो...अब्यापादपरिळाहो... अब्यापादपरियेसना, अब्यापादपरियेसनं, भिक्खवे, परियेसमानो सुतवा अरियसावको तीहि ठानेहि सम्मा पटिपज्जति—कायेन वाचाय मनसा।

"अविहिंसाधातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति अविहिंसासञ्ञा, [R.153] अविहिंसासञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति अविहिंसासङ्कप्पो, अविहिंसासङ्कप्पं पटिच्च उप्पज्जति अविहिंसाछन्दो, अविहिंसाछन्दं पटिच्च उप्पज्जति अविहिंसापरिळाहो, अविहिंसापरिळाहं पटिच्च उप्पज्जति अविहिंसापरियेसना; अविहिंसापरियेसनं, भिक्खवे, परियेसमानो सुतवा अरियसावको तीहि ठानेहि सम्मा पटिपज्जति—कायेन वाचाय मनसा।

"भिक्षुओ! नैष्कर्म्यवितर्क एवं अव्यापादवितर्क तथा अविहिंसावितर्क भी किसी न किसी कारण से ही उत्पन्न होता है, कारण के विना नहीं।

"भिक्षुओ! यह नैष्कर्म्यवितर्क....एवं अव्यापादवितर्क....तथा अविहिंसावितर्क किस कारण से उत्पन्न होता है? भिक्षुओ! नैष्कर्म्य धातु के कारण नैष्कर्म्यसंज्ञा उत्पन्न होती है, नैष्कर्म्यसंज्ञा के कारण नैष्कर्म्यसङ्कल्प, नैष्कर्म्यसङ्कल्प के कारण नैष्कर्म्यछन्द, नैष्कर्म्यछन्द के कारण नैष्कर्म्यपरिदाह, नैष्कर्म्यपरिदाह के कारण नैष्कर्म्यपर्येषणा उत्पन्न होती है। परन्तु कोई पृथग्जन, जिस का शास्त्र से कोई सम्बन्ध न हो, इस तरह की पर्येषणा करता हुआ कायिक, वाचिक एवं मानसिक—ये त्रिविध प्रमाद कर सकता है।

"इसी तरह, भिक्षुओ! अव्यापादधातु के कारण....पूर्ववत्....ये त्रिविध प्रमाद कर सकता है।

भिक्षुओ! अविहिंसाधातु के कारण अविहिंसासंज्ञा, अविहिंसासंज्ञा के कारण अविहिंसासङ्कल्प....पूर्ववत्....ये त्रिविध प्रमाद कर सकता है।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो आदित्तं तिणुक्कं सुक्खे तिणदाये निक्खिपेय्य; तमेनं हत्थेहि च पादेहि च खिप्पमेव निब्बापेय्य। एवं हि, भिक्खवे, ये तिणकट्ठनिस्सिता पाणा ते न अनयब्यसनं आपज्जेय्युं। एवमेव खो, भिक्खवे, यो हि कोचि समणो वा ब्राह्मणो वा उप्पन्नं विसमगतं सञ्ञं खिप्पमेव पजहति विनोदेति ब्यन्तीकरोति अनभावं [B.367] गमेति सो दिट्ठे चेव धम्मे सुखं विहरति अविघातं अनुपायासं अपरिळाहं; कायस्स च भेदा परं मरणा सुगति पाटिकङ्खा" ति॥ •

१३. गिञ्जकावसथसुत्तं

१३. एकं समयं भगवा ञातिके विहरति गिञ्जकावसथे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"धातुं, भिक्खवे, पटिच्च उप्पज्जति सञ्ञा, उप्पज्जति दिट्ठि, उप्पज्जति वितक्को" ति। एवं वुत्ते, आयस्मा कच्चानो भगवन्तं एतदवोच—"यायं, भन्ते, दिट्ठि—'असम्मासम्बुद्धेसु सम्मासम्बुद्धा' ति, अयं नु खो, भन्ते, दिट्ठि किं पटिच्च पञ्ञायती" ति?

[N.131, R.154] "महती खो एसा, कच्चान, धातु यदिदं अविज्जाधातु। हीनं, कच्चान, धातुं पटिच्च उप्पज्जति हीना सञ्ञा, हीना दिट्ठि, हीनो वितक्को, हीना चेतना, हीना पत्थना, हीनो पणिधि, हीनो पुग्गलो, हीना वाचा; हीनं आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति विभजति उत्तानीकरोति; हीना तस्स उपपत्ती ति वदामि।

जैसे, भिक्षुओ! कोई पुरुष जलता हुआ तृणपिण्ड किसी विशाल घास के पुञ्ज (समूह) में फैंक दे....पूर्ववत्....तथा मरणानन्तर उसका नरकपात सुनिश्चित है॥ •

१३. गिञ्जकावसथसूत्र : : धातु के कारण संज्ञादि की उत्पत्ति

१३. एक समय भगवान् (बुद्ध) **ज्ञातिका** के गिञ्जकावसथ (ईंटों से बने भवन) में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को बुला कर यह देशना की—

"भिक्षुओ! धातु के कारण संज्ञा उत्पन्न होती है, दृष्टि एवं वितर्क उत्पन्न होता है।" ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् कात्यायन ने भगवान् से यह पूछा—"भन्ते! असम्यक्सम्बुद्ध में सम्यक्सम्बुद्धत्व—यह दृष्टि किस कारण होती है?

"कात्यायन! इस अविद्याधातु का क्षेत्र बहुत विशाल है। कात्यायन! हीन धातु के कारण हीन संज्ञा उत्पन्न होती है, हीन दृष्टि उत्पन्न होती है, हीन वितर्क, हीन चेतना, हीन प्रार्थना, हीन प्रणिधि (आकांक्षा), हीन पुद्गल, एवं हीन वाक् उत्पन्न होती है। इस कारण वह पुद्गल हीन बातें करता है, दूसरों को भी हीन उपदेश करता है, हीन प्रज्ञापन करता है,

"मज्झिमं, कच्चान, धातुं पटिच्च उप्पज्जति मज्झिमा सञ्ञा, मज्झिमा दिट्ठि, मज्झिमो वितक्को, मज्झिमा चेतना, मज्झिमा पत्थना, मज्झिमो पणिधि, मज्झिमो पुग्गलो, मज्झिमा वाचा; मज्झिमं आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति विभजति उत्तानीकरोति; मज्झिमा तस्स उपपत्ती ति वदामि।

"पणीतं, कच्चान, धातुं पटिच्च उप्पज्जति पणीता सञ्ञा, पणीता दिट्ठि, पणीतो वितक्को, पणीता चेतना, पणीता पत्थना, पणीतो पणिधि, पणीतो पुग्गलो, पणीता वाचा; पणीतं आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति विभजति उत्तानीकरोति; पणीता तस्स उपपत्ती ति वदामी" ति॥ •

१४. हीनाधिमुत्तिकसुत्तं

१४. ...सावत्थियं विहरति। "धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति [B.368] समेन्ति। हीनाधिमुत्तिंका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति।

"अतीतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दिंसु समिंसु। हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु; कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु।

"अनागतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दिस्सन्ति समेस्सन्ति।

अपना हीन मत स्थिर करता है, उसे हीन रूप से ही दूसरों के सम्मुख स्पष्ट करता है, उसका विभाजन (विश्लेषण) भी हीन रूप से ही करता है, स्वयं भी उसे हीन रूप से समझता है—ऐसा मैं कहता हूँ।"

"इसी तरह, कात्यायन! मध्यम धातु से मध्यम संज्ञा....पूर्ववत्....स्वयं भी उसे मध्यम रूप से समझता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

"इसी तरह, कात्यायन! प्रणीत (उत्तम) धातु से प्रणीत संज्ञा....पूर्ववत्....स्वयं भी उसे प्रणीत रूप से समझता है—ऐसा मैं कहता हूँ"॥ •

१४. हीनाधिमुक्तिकसूत्र : : धातुओं के अनुसार ही प्राणि-सम्पर्क

१४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! धातुओं के अनुसार ही प्राणी परस्पर मिलते जुड़ते हैं, सम्पृक्त होते हैं। उन में जो हीन प्रवृत्तिवाले हैं वे दूसरे हीन प्रवृत्ति वालों से मिलते जुड़ते हैं, सम्पृक्त होते हैं, तथा कल्याण (शुभ) प्रवृत्तिवाले प्राणी शुभ प्रवृत्ति वालों से मिलते जुड़ते हैं, सम्पृक्त होते हैं।

"भिक्षुओ! अतीत काल में भी प्राणी धातुओं के अनुसार....पूर्ववत्....सम्पृक्त होते रहे।

हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दिस्सन्ति समेस्सन्ति; कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दिस्सन्ति समेस्सन्ति।

"एतरहि पि खो, भिक्खवे, पच्चुप्पन्नं अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दन्ति [N.132, R.155] समेन्ति। हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती" ति॥ ●

१५. चङ्कमसुत्तं

१५. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। तेन खो पन समयेन आयस्मा सारिपुत्तो सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं भगवतो अविदूरे चङ्कमति; आयस्मा पि खो महामोग्गल्लानो सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं भगवतो अविदूरे चङ्कमति; आयस्मा पि खो महाकस्सपो सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं भगवतो अविदूरे चङ्कमति; आयस्मा पि खो अनुरुद्धो सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं भगवतो अविदूरे चङ्कमति; आयस्मा पि खो पुण्णो मन्तानिपुत्तो सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं भगवतो अविदूरे चङ्कमति; आयस्मा पि खो उपालि सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं भगवतो अविदूरे चङ्कमति; आयस्मा पि खो आनन्दो सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं भगवतो अविदूरे चङ्कमति; देवदत्तो पि खो सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं भगवतो अविदूरे चङ्कमति।

[B.369] १६. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, सारिपुत्तं सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं चङ्कमन्तं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"भिक्षुओ! अनागत काल में भी प्राणी धातुओं के अनुसार....पूर्ववत्....सम्पृक्त होते रहेंगे।

"भिक्षुओ! आज (वर्तमान काल में) भी उत्पन्न प्राणी धातुओं के अनुसार ही....पूर्ववत्....सम्पृक्त हो रहे हैं॥ ●

१५. चंक्रमसूत्र : : धातुओं के अनुसार ही प्राणि-सम्पर्क

१५. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र भी बहुत से भिक्षुओं के साथ भगवान् से कुछ ही दूर चंक्रमण (साधना का एक क्रम) कर रहे थे। आयुष्मान् महामौद्गल्यायन.... महाकाश्यप ....अनुरुद्ध....पूर्ण मन्त्रायणीपुत्र....आयुष्मान् उपालि....आनन्द....चंक्रमण कर रहे थे। देवदत्त भी कुछ भिक्षुओं के साथ भगवान् से कुछ दूर एक स्थान पर चंक्रमण कर रहे थे।

१६. तब भगवान् ने भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! क्या तुम लोग कुछ भिक्षुओं के साथ सारिपुत्र को चंक्रमण करते हुए देख रहे हो?"

"हाँ, भन्ते!"

"सब्बे खो एते, भिक्खवे, भिक्खू महापञ्ञा। पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, मोग्गल्लानं सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं चङ्कमन्तं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"सब्बे खो एते, भिक्खवे, भिक्खू महिद्धिका। पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, कस्सपं सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं चङ्कमन्तं" ति?

"एवं, भन्ते"। [R.156]

"सब्बे खो एते, भिक्खवे, भिक्खू धुतवादा। पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, अनुरुद्धं सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं चङ्कमन्तं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"सब्बे खो एते, भिक्खवे, भिक्खू दिब्बचक्खुका। पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, पुण्णं मन्तानिपुत्तं सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं चङ्कमन्तं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"सब्बे खो एते, भिक्खवे, भिक्खू धम्मकथिका। पस्सथ नो तुम्हे, [N.133] भिक्खवे, उपालिं सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं चङ्कमन्तं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"सब्बे खो एते, भिक्खवे, भिक्खू विनयधरा। पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, आनन्दं सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं चङ्कमन्तं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"सब्बे खो एते, भिक्खवे, भिक्खू बहुस्सुता। पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, देवदत्तं सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं चङ्कमन्तं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"भिक्षुओ! ये सभी भिक्षु महाप्राज्ञ हैं।

"भिक्षुओ! तुम मौद्गल्यायन को....पूर्ववत्....। ये सभी भिक्षु धुताङ्ग साधना में प्रवीण हैं।

"भिक्षुओ! तुम अनुरुद्ध को....पूर्ववत्....। ये सभी भिक्षु दिव्यचक्षुष्क (दिव्य दृष्टिवाले) हैं।

"भिक्षुओ! तुम पूर्ण मैत्रायणीपुत्र को....पूर्ववत्....। ये सभी भिक्षु धर्मकथाकारकों में श्रेष्ठ हैं।

"भिक्षुओ! तुम उपालि को....पूर्ववत्....। ये सभी भिक्षु श्रेष्ठ विनयधर हैं।

"भिक्षुओ! तुम आनन्द को....पूर्ववत्....। ये सभी धर्म के विषय में बहुश्रुत हैं।

"सब्बे खो एते, भिक्खवे, भिक्खू पापिच्छा। धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति। अतीतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दिंसु समिंसु। हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु; कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु।

"अनागतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दिस्सन्ति समेस्सन्ति। हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दिस्सन्ति समेस्सन्ति; कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दिस्सन्ति समेस्सन्ति।

[R.157] "एतरहि पि खो, भिक्खवे, पच्चुप्पन्नं अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती" ति॥ •

१६. सगाथासुत्तं

[B.370] १७. सावत्थियं विहरति। "धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति। अतीतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दिंसु समिंसु। हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु। अनागतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दिस्सन्ति समेस्सन्ति। हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दिस्सन्ति समेस्सन्ति। एतरहि

"भिक्षुओ! तुम देवदत्त को....पूर्ववत्....। भिक्षुओ! ये सभी भिक्षु पापमय इच्छा वाले हैं। भिक्षुओ! सभी प्राणी धातुओं के अनुसार परस्पर मेल जोड़ करते हैं। हीन प्रवृत्तिवाले हीनप्रवृत्तिवालों के साथ परस्पर मेल जोड़ बढाते हैं; तथा उत्तम (शुभ) प्रवृत्तिवाले उत्तम प्रवृत्तिवालों के साथ मेल जोड़ बढाते हैं, सम्पर्क करते हैं।

प्राचीन काल में भी....पूर्ववत्....सम्पर्क बढाते थे।

"भविष्य में भी....सम्पर्क बढायँगे।

"वर्तमान में भी, भिक्षुओ! ....पूर्ववत्....शुभ प्रवृत्तिवालों के साथ सम्पर्क बढा रहे हैं॥ •

१६. सगाथसूत्र : : धातुओं के अनुसार ही परस्पर सम्पर्क

१७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। धातुओं के अनुसार ही, भिक्षुओ! समस्त प्राणी परस्पर मेल जोड़ रखते हैं, सम्पर्क बढाते हैं। प्राचीन काल में भी....भविष्यत्

पि खो, भिक्खवे, पच्चुप्पन्नं अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। [N.134] हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, गूथो गूथेन संसन्दति समेति; मुत्तं मुत्तेन संसन्दति समेति; खेळो खेळेन संसन्दति समेति; पुब्बो पुब्बेन संसन्दति समेति; लोहितं लोहितेन संसन्दति समेति; एवमेव खो, भिक्खवे, धातुसो व सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति। अतीतं पि खो अद्धानं ...पे०...अनागतं पि खो अद्धानं...पे०...एतरहि पि खो पच्चुप्पन्नं अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। हीनाधिमुत्तिका हीनाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति।

"धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। कल्याणाधिमुत्तिका [R.158] कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति। अतीतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दिंसु समिंसु। कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु।

"अनागतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं...पे०...एतरहि पि खो, भिक्खवे, पच्चुप्पन्नं अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, खीरं खीरेन संसन्दति समेति; तेलं तेलेन संसन्दति समेति; सप्पि सप्पिना संसन्दति समेति; मधु मधुना संसन्दति समेति; फाणितं फाणितेन संसन्दति समेति; एवमेव खो, भिक्खवे, धातुसो व सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। [B.371]

(अनागत) काल में भी....वर्तमान में भी हीन प्रवृत्तिवाले प्राणी हीन प्रवृत्तिवालों से तथा शुभ प्रवृत्तिवाले प्राणी शुभ प्रवृत्तिवालों से मेल जोड़ तथा सम्पर्क बढाते हैं।

"भिक्षुओ! जैसे मल से मल सम्पृक्त हो (घुल मिल) जाता है, मूत्र से मूत्र सम्पृक्त हो जाता है, क्ष्वेड़ (खँखार) से क्ष्वेड़ मिल जाता है, पूय (दुर्गन्धयुक्त रक्त=मवाद) से पूय मिल जाता है, रक्त से रक्त मिल जाता है; इसी प्रकार, भिक्षुओ! धातुओं के अनुसार प्राणी परस्पर मेल जोड़ (सम्पर्क) कर लेते हैं। ....पूर्ववत्....।

"धातुओं के अनुसार ही, भिक्षुओ! ....शुभप्रवृत्ति वाले शुभ प्रवृत्तिवालों के साथ मेल जोड़ बढाते हैं। प्राचीन काल में भी....।

"भविष्यत् (अनागत) काल में भी प्राणी....।

"जैसे, भिक्षुओ! क्षीर (दूध) से क्षीर, तैल से तैल, घी से घी परस्पर घुलमिल जाता है, मधु से मधु मिल जाता है, फाणित (सीरा) से फाणित मिल जाता है; इसी तरह भिक्षुओ! धातुओं के अनुसार प्राणी परस्पर घुल मिल जाते हैं। शुभ प्रवृत्तिवाले....।

कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति। अतीतं पि खो अद्धानं...अनागतं पि खो अद्धानं...एतरहि पि खो पच्चुप्पन्नं अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती'' ति।

१८. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

[N.135] ''संसग्गा वनथो जातो, असंसग्गेन छिज्जति।
परित्तं दारुमारुय्ह, यथा सीदे महण्णवे॥
''एवं कुसीतमागम्म, साधुजीवि पि सीदति।
तस्मा तं परिवज्जेय्य, कुसीतं हीनविरियं॥
''पविवित्तेहि अरियेहि, पहितत्तेहि झायीहि।
निच्चं आरद्धविरियेहि, पण्डितेहि सहावसे'' ति॥

१७. अस्सद्धसन्दनसुत्तं

[R.159] ...१९. सावत्थियं विहरति। ''धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। अस्सद्धा अस्सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अहिरिका अहिरिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अनोत्तप्पिनो अनोत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अप्पस्सुता अप्पस्सुतेहि

अतीत काल में भी....अनागत काल में भी....वर्तमान में भी धातु के अनुसार ही शुभ प्रवृत्ति वाले शुभ प्रवृत्तिवालों के साथ घुलमिल जाते हैं। सम्पृक्त हो जाते हैं।''

भगवान् ने यह उपदेश किया। यह कह कर भगवान् ने इसके साथ ही ये गाथाएँ भी कहीं—

''संसर्ग से उत्पन्न राग का जङ्गल (वृक्षसमूह) असंसर्ग से काटा जा सकता है।

''छोटी लकड़ी का सहारा लेने पर जैसे समुद्र में डूबना सम्भव है; इसी तरह आलसी (निकम्मे) आदमी के साथ रहने पर साधु (सदाचारी) पुरुष का इस संसारसागर में डूबना सम्भव है।

''अत: ऐसे पुरुष का, जो आलसी हो उद्यम करने में जी चुराता हो, साथ कभी नहीं करना चाहिये; अपि तु—

''एकान्त में रह कर साधना करनेवाले आर्य पुरुषों का, जो इन्द्रियनिग्रही हों, सदा ध्यानरत रहने वाले हों, सतत उत्साही हों, सङ्ग (सहवास) करना चाहिये''॥ ●

१७. अश्रद्धस्यन्दनसूत्र : : धातुओं के अनुसार सम्पर्क

१९. **श्रावस्ती में** साधना करते समय....। ''भिक्षुओ! धातुओं के अनुसार ही प्राणियों में मेल जोड़ (सम्पर्क) होता तथा बढता है। धर्म के प्रति अश्रद्धालु का वैसे ही अश्रद्धालुओं से सम्पर्क बढता है, निर्लज्जों का निर्लज्जों के साथ, पापियों का पापियों के

सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; कुसीता कुसीतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; मुट्ठस्सतिनो मुट्ठस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति।

"अतीतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दिंसु समिंसु। अस्सद्धा अस्सद्धेहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु; अहिरिका अहिरिकेहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु; अनोत्तप्पिनो अनोत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु; अप्पस्सुता अप्पस्सुतेहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु; कुसीता कुसीतेहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु; मुट्ठस्सतिनो मुट्ठस्सतीहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु; दुप्पञ्ञा दुपञ्ञेहि सद्धिं संसन्दिंसु समिंसु।

"अनागतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दिस्सन्ति [B.372] समेस्सन्ति। अस्सद्धा अस्सद्धेहि सद्धिं संसन्दिस्सन्ति समेस्सन्ति; अहिरिका अहिरिकेहि सद्धिं संसन्दिस्सन्ति समेस्सन्ति; अनोत्तप्पि॑नो अनोत्तप्पीहि सद्धिं...पे०... अप्पस्सुता अप्पस्सुतेहि सद्धिं...पे०...कुसीता कुसीतेहि सद्धिं...पे०...मुट्ठ- [R.160] स्सतिनो मुट्ठस्सतीहि सद्धिं...पे०...दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दिस्सन्ति समेस्सन्ति।

"एतरहि पि खो, भिक्खवे, पच्चुप्पन्नं अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। अस्सद्धा अस्सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अहिरिका अहिरिकेहि [N.136] सद्धिं...पे०...अनोत्तप्पिनो अनोत्तप्पीहि सद्धिं...पे०...अप्पस्सुता अप्पस्सुतेहि सद्धिं ...पे०...कुसीता कुसीतेहि सद्धिं...पे०...मुट्ठस्सतिनो मुट्ठस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति।

"धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। सद्धा सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; हिरिमना हिरिमनेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; ओत्तप्पिनो ओत्तप्पीहि सद्धिं

साथ, मूर्खों का मूर्खों के साथ, आलसियों का आलसियों के साथ, जड़बुद्धियों का जड़बुद्धियों के साथ सम्पर्क होता है, मेल जोड़ बढता है। कुबुद्धिजन कुबुद्धिजनों से मिल कर ही प्रसन्न होते हैं, उन्हीं से सम्पर्क बढाते हैं।

"पुराकाल में भी....अश्रद्धालुओं का अश्रद्धालुओं के साथ....पूर्ववत्....उन्हीं से सम्पर्क बढाते थे।

"अनागतकाल में....अश्रद्धालु अश्रद्धालुओं के साथ....पूर्ववत्....उन्हीं से सम्पर्क बढायेंगे।

"आज (वर्तमान में) भी अश्रद्धालु अश्रद्धालुओं के साथ....पूर्ववत्....उन्हीं से सम्पर्क बढाते हैं।

"क्योंकि, भिक्षुओ! प्राणी धातुओं के अनुसार ही परस्पर सम्पर्क बढाते हैं। अत: श्रद्धालु श्रद्धालुओं के साथ, लज्जालु लज्जालुओं के साथ, पापभीरु पापभीरुओं के साथ,

संसन्दन्ति समेन्ति; बहुस्सुता बहुस्सुतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; आरद्धविरिया आरद्धविरियेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; उपट्ठितस्सतिनो उपट्ठितस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति। अतीतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं...पे०...अनागतं पि खो, भिक्खवे...पे०...एतरहि पि खो, भिक्खवे, पच्चुप्पन्नं अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। सद्धा सद्धेहि सद्धिं...पे०... पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती'' ति॥ •

१८. अस्सद्धमूलकसुत्तं

[R.161] २०. ...सावत्थियं विहरति। ''धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। अस्सद्धा अस्सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, अहिरिका अहिरिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सद्धा सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, हिरिमना हिरिमनेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति। अतीतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दिंसु समिंसु...पे०...अनागतं पि खो, भिक्खवे, अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दिस्सन्ति समेस्सन्ति...पे०...।

''एतरहि पि खो, भिक्खवे, पच्चुप्पन्नं अद्धानं धातुसो व सत्ता संसन्दन्ति [B.373] समेन्ति। अस्सद्धा अस्सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, अहिरिका अहिरिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सद्धा सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, हिरिमना हिरिमनेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती ति।

[N.137] ''धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। अस्सद्धा अस्सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, अनोत्तप्पिनो अनोत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सद्धा सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, ओत्तप्पिनो

विद्वान् विद्वानों के साथ, उद्योगी उद्योगियों के साथ, स्मृतिमान् स्मृतिमानों के साथ तथा प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ ही सम्पर्क बढाते हैं। अतीत में भी....पूर्ववत्....भविष्य में भी....पूर्ववत्....आज भी....प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ ही सम्पर्क बढाते हैं॥ •

१८. अश्रद्धामूलकसूत्र (पञ्चक) : : धातुओं के अनुसार ही सम्पर्क

२०. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! धातुओं के अनुसार ही प्राणी परस्पर सम्पर्क बढाते हैं। अश्रद्धालु अश्रद्धालुओं के साथ....पूर्ववत्....अतीत में भी....भविष्य में भी....आज भी....पूर्ववत्....प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ सम्पर्क रखते हैं।

''भिक्षुओ! धातुओं के अनुसार ही प्राणी परस्पर सम्पर्क बढाते हैं। पापी पापियों के

ओत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति...पे०...। [R.162]

(पठमवारो विय वित्थारेतब्बो।)

"धातुसो व, भिक्खवे...पे०...अस्सद्धा अस्सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, अप्पस्सुता अप्पस्सुतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सद्धा सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, बहुस्सुता बहुस्सुतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति...पे०...।

"धातुसो व, भिक्खवे...पे०...अस्सद्धा अस्सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, कुसीता कुसीतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सद्धा सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, आरद्धविरिया आरद्धविरियेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति...पे०...।

"धातुसो व, भिक्खवे...पे०...अस्सद्धा अस्सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, मुट्ठस्सतिनो मुट्ठस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सद्धा सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, उपट्ठितस्सतिनो उपट्ठितस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति...पे०...कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती" ति॥ ●

साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ, श्रद्धालु श्रद्धालुओं के साथ, पापभीरु पापभीरुओं के साथ, प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ....पूर्ववत्....। *[प्रथम वार की तरह विस्तार कर लें।]*

"भिक्षुओ! धातुओं के अनुसार, अश्रद्धालु अश्रद्धालुओं के साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ, कुमति कुमतियों के साथ, श्रद्धालु श्रद्धालुओं के साथ, विद्वान् विद्वानों के साथ, प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ परस्पर मेल जोड़ तथा सम्पर्क बढाते हैं।

"भिक्षुओ! धातुओं के अनुसार अश्रद्धालु अश्रद्धालुओं के साथ, आलसी आलसियों के साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ, श्रद्धालु श्रद्धालुओं के साथ, उद्योगी उद्योगियों के साथ, विद्वान् विद्वानों के साथ, प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ परस्पर मेल जोड़ तथा सम्पर्क बढाते हैं।

"भिक्षुओ! धातुओं के अनुसार अश्रद्धालु अश्रद्धालुओं के साथ स्मृतिभ्रष्ट स्मृतिभ्रष्टों के साथ, कुमति कुमतियों के साथ; श्रद्धालु श्रद्धालुओं के साथ, स्मृतिमान् स्मृतिमानों के साथ, प्रज्ञावान् प्रज्ञावनों के साथ सम्पर्क तथा मेल जोड़ बढाते हैं। ....पूर्ववत्....शुभ प्रवृत्ति वाले शुभ प्रवृत्ति वालों के साथ सम्पर्क तथा मेल जोड़ बढाते हैं॥ ●

१९. अहिरिकमूलकसुत्तं

२१. ...सावत्थियं विहरति। "धातुसो व...पे०...अहिरिका अहिरिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, अनोत्तप्पिनो अनोत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा [R.163] दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; हिरिमना हिरिमनेहि सद्धिं संसन्दन्ति [B.374] समेन्ति, ओत्तप्पिनो ओत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, बहुस्सुता बहुस्सुतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति...पे०...। [N.138] "अहिरिका अहिरिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, अप्पस्सुता अप्पस्सुतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; हिरिमना हिरिमनेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, बहुस्सुता बहुस्सुतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति...पे०...।

"अहिरिका अहिरिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, कुसीता कुसीतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; हिरिमना हिरिमनेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, आरद्धविरिया आरद्धविरियेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति...पे०...।

"अहिरिका अहिरिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, मुट्ठस्सतिनो मुट्ठस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; हिरिमना हिरिमनेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, उपट्ठितस्सतिनो उपट्ठितस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती ति...पे०...कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती" ति। ●

---

१९. अह्रीकमूलकसूत्र (चतुष्क) : : धातुओं के अनुसार सम्पर्क

२१. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। धातुओं के अनुसार....पूर्ववत्....निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, पाप में भय न मानने वाले पाप में भय न माननेवालों के साथ, दुष्प्रज्ञ दुष्प्रज्ञों के साथ; लज्जालु लज्जालुओं के साथ, पापभीरु पापभीरुओं के साथ बहुश्रुत (विद्वान्) बहुश्रुतों के साथ तथा प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ सम्पर्क करते हैं....पूर्ववत्....।

"निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ, कुमति कुमतियों के साथ; लज्जालु लज्जालुओं के साथ, विद्वान् विद्वानों के साथ, प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ हिल मिल कर रहना सुखप्रद समझते हैं। ....पूर्ववत्....।

"निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, पापी पापियों के साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ; लज्जालु लज्जालुओं के साथ, विद्वान् विद्वानों के साथ ही हिल मिल कर रहना सन्तोषप्रद समझते हैं।

"निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, मन्दमति मन्दमतियों के साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ;

२०. अनोत्तप्पमूलकसुत्तं

२२. सावत्थियं विहरति। "धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति [R.164] समेन्ति। अनोत्तप्पिनो अनोत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, अप्पस्सुता अप्पस्सुतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; ओत्तप्पिनो ओत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, बहुस्सुता बहुस्सुतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति...पे०...।

"अनोत्तप्पिनो अनोत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, कुसीता कुसीतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; ओत्तप्पिनो ओत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, आरद्धविरिया आरद्धविरियेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति...पे०...।

"अनोत्तप्पिनो अनोत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, मुट्ठस्सतिनो [B.375] मुट्ठस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; ओत्तप्पिनो ओत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, उपट्ठितस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती ति...पे०... [N.139] कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती" ति॥ ●

२१. अप्पस्सुतमूलकसुत्तं

२३. ...सावत्थियं विहरति। "धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति।

लज्जालु लज्जालुओं के साथ, स्मृतिमान् स्मृतिमानों के साथ ही रहना सुखप्रद समझते हैं। ....पूर्ववत्....शुभ प्रवृत्तिवाले शुभ प्रवृत्ति वालों के साथ ही मेल जोड़ बढाते हैं॥ ●

२०. अनवत्राप्यमूलकसूत्र (त्रिक) : : धातुओं के अनुसार सम्पर्क

२२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "धातुओं के अनुसार ही, भिक्षुओ! प्राणी परस्पर मिलते जुड़ते हैं। पापी पापियों के साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ, कुमति कुमतियों के साथ; पापभीरु पापभीरुओं के साथ, विद्वान् विद्वानों के साथ तथा प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ ही हिलमिल कर रहना सुखकर मानते हैं।

"पापी पापियों के साथ, आलसी आलसियों के साथ, कुमति कुमतियों के साथ; पापभीरु पापभीरुओं के साथ, उद्योगी उद्योगियों के साथ तथा प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ ही रहना सुखकर मानते हैं।

"पापी पापियों के साथ, मन्दमति मन्दमतियों के साथ; पापभीरु पापभीरुओं के साथ, स्मृतिमान् स्मृतिमानों के साथ एवं प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ ही परस्पर सम्बन्ध रखना अच्छा समझते हैं। शुभ प्रवृत्तिवाले शुभ प्रवृत्तिवाले प्राणियों के साथ पारस्परिक सम्बन्ध रखना अच्छा समझते हैं॥

●

अप्पस्सुता अप्पस्सुतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, कुसीता कुसीतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; बहुस्सुता बहुस्सुतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, आरद्धविरिया आरद्धविरियेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो [R.165] पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति...पे०...।

"अप्पस्सुता अप्पस्सुतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, मुट्ठस्सतिनो मुट्ठस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; बहुस्सुता बहुस्सुतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, उपट्ठितस्सतिनो उपट्ठितस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती ति...पे०... कल्याणाधिमुत्तिका कल्याणाधिमुत्तिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती" ति॥ •

२२. कुसीतमूलकसुत्तं

२४. ...सावत्थियं विहरति। "धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। कुसीता कुसीतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, मुट्ठस्सतिनो मुट्ठस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; आरद्धविरिया आरद्धविरियेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, उपट्ठितस्सतिनो उपट्ठितस्सतीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति, पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती ति...पे०...॥ •

(सब्बत्थ अतीतानागतपच्चुप्पन्नं कातब्बं।)

दुतियो वग्गो॥

---

२१. अल्पश्रुतमूलकसूत्र (द्विक) : : धातुओं के अनुसार सम्पर्क

२३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ ! संसार के सभी प्राणी धातुओं के अनुसार परस्पर मेल जोड़ बढाने का प्रयास करते हैं। अल्पश्रुत (मूर्ख) अल्पश्रुतों के साथ, पापी पापियों के साथ, कुमति कुमतियों के साथ; बहुश्रुत बहुश्रुतों के साथ, उद्योगी उद्योगियों के साथ तथा प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ परस्पर मेल जोड़ बढाते हैं।

अल्पश्रुत अल्पश्रुतों के साथ, स्मृतिभ्रष्ट स्मृतिभ्रष्टों के साथ, कुमति कुमतियों के साथ; बहुश्रुत बहुश्रुतों के साथ, स्मृतिमान् स्मृतिमानों के साथ, प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ ही....पूर्ववत्....। शुभ प्रवृति वाले प्राणी शुभ प्रवृत्तिवालों के साथ ही परस्पर सम्बन्ध बनाते हैं॥ •

२२. कुसीदमूलकसूत्र (एकक) : : धातुओं के अनुसार सम्पर्क

२४. श्रावस्ती में साधना के समय....। "भिक्षुओ ! सांसारिक प्राणी स्व धातुओं के अनुसार ही परस्पर सम्पर्क बढाते हैं। पापी पापियों के साथ, स्मृतिभ्रष्ट स्मृतिभ्रष्टों के साथ, कुमति कुमतियों के साथ; उद्योगी उद्योगियों के साथ, स्मृतिमान् स्मृतिमानों के साथ तथा प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ....पूर्ववत्....॥ •

तस्सुद्दानं

सत्तिमा सनिदानं च, गिञ्झकावसथेन च ॥[N.140, B.376]
हीनाधिमुत्ति चङ्कमं, सगाथा अस्सद्धसत्तमं ॥
अस्सद्धमूलका पञ्च, चत्तारो अहिरिकमूलका। [R.166]
अनोत्तप्पमूलका तीणि, दुवे अप्पस्सुतेन च ॥
कुसीतं एककं वुत्तं, सुत्तन्ता तीणि पञ्चका।
वावीसति वुत्ता सुत्ता, दुतियो वग्गो पवुच्चती ति ॥

[उपरिवर्णित सभी सूत्रों में अतीत, अनागत तथा वर्तमान वाले प्रकरण मिला कर इन सूत्रों का विस्तार कर लेना चाहिये।]

द्वितीय वर्ग समाप्त ॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. सप्तधातु, २. सनिदान, ३. गिञ्झकावसथ, ४. हीनाधिमुक्तिक, ५. चंक्रमसूत्र, ६. सगाथ, ७. अश्रद्धस्यन्दन, ८. अश्रद्धामूलक (पञ्चक), ९. अह्रीकमूलक (चतुष्क), १०. अनवत्राप्यमूलक (त्रिक), ११. अल्पश्रुतमूलक (द्विक), १२. कुसीदमूलकसूत्र। ●

३. कम्मपथवग्गो ततियो

२३. असमाहितसुत्तं

२५. ...सावत्थियं विहरति। "धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। अस्सद्धा अस्सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अहिरिका अहिरिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अनोत्तप्पिनो अनोत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; असमाहिता असमाहितेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति।

"सद्धा सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; हिरिमना हिरिमनेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; ओत्तप्पिनो ओत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; समाहिता समाहितेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती" ति॥ •

२४. दुस्सीलसुत्तं

२६. ...सावत्थियं विहरति। "धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। अस्सद्धा अस्सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अहिरिका अहिरिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अनोत्तप्पिनो अनोत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; दुस्सीला दुस्सीलेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; दुप्पञ्ञा दुप्पञ्ञेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति।

[N.141] "सद्धा सद्धेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; हिरिमना हिरिमनेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; ओत्तप्पिनो ओत्तप्पीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सीलवन्तो सीलवन्तेहि सद्धिं

कर्मपथवर्ग

२३. असमाहितसूत्र : : असमाहित का असमाहितों से मेल

२५. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! धातुओं के अनुसार ही प्राणी परस्पर मेल करते हैं, सम्पर्क बढाते हैं। जैसे—अश्रद्धालु अश्रद्धालुओं के साथ, निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ; पापी पापियों के साथ, असमाहित (=चञ्चलचित्त) असमाहितों के साथ एवं दुष्प्रज्ञ (=कुमति) दुष्प्रज्ञों के साथ ही परस्पर मेल जोड़ बढाते हैं।

"श्रद्धालु श्रद्धालुओं के साथ, ...पूर्ववत्....प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ परस्पर मेल जोड़ बढाते हैं। •

२४. दु:शीलसूत्र : : दु:शील का दु:शीलों से मेल

२६. **श्रावस्ती में** साधना करते समय....।"भिक्षुओ! सभी प्राणी धातुओं के अनुसार ही परस्पर सम्पर्क करते हैं। जैसे—अश्रद्धालु अश्रद्धालुओं के साथ, निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, पापी पापियों के साथ सम्पर्क करते हैं; वैसे दु:शील दु:शीलों के साथ तथा दुष्प्रज्ञ दुष्प्रज्ञों के साथ सम्पर्क करते हैं।

संसन्दन्ति समेन्ति; पञ्ञवन्तो पञ्ञवन्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती" [B.377, R.167] ति ॥ •

२५. पञ्चसिक्खापदसुत्तं

२७. ...सावत्थियं विहरति। "धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। पाणातिपातिनो पाणातिपातीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अदिन्नादायिनो अदिन्नादायीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; कामेसुमिच्छाचारिनो कामेसुमिच्छाचारीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; मुसावादिनो मुसावादीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठायिनो सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठायीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति।

"पाणातिपाता पटिविरता पाणातिपाता पटिविरतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अदिन्नादाना पटिविरता अदिन्नादाना पटिविरतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; कामेसु-मिच्छाचारा पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; मुसावादा पटिविरता मुसावादा पटिविरतेहिं सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सुरामेरय-मज्जप्पमादट्ठाना सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठाना पटिविरतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती" ति ॥ •

२६. सत्तकम्मपथसुत्तं

२८. ...सावत्थियं विहरति। "धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। पाणातिपातिनो पाणातिपातीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अदिन्नादायिनो अदिन्नादायीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; कामेसुमिच्छाचारिनो कामेसुमिच्छाचारीहि सद्धिं संसन्दन्ति

"जैसे श्रद्धालु....लज्जालु....पापभीरु....; इसी प्रकार शीलवान् शीलवानों के साथ तथा प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ रहने में आनन्द मानते हैं ॥ •

२५. पञ्चशिक्षापदसूत्र : : हीन आदि का हीन आदि के साथ सम्पर्क

२७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! प्राणी धातुओं के अनुसार ही परस्पर सम्बन्ध बढाते हैं। प्राणातिपाती प्राणातिपातियों के साथ सम्पर्क बढाते हैं, चौर चौरों के साथ, व्यभिचारी व्यभिचारियों के साथ, असत्यभाषी असत्यभाषियों के साथ एवं मद्य पीने वाले मद्य पीनेवालों के साथ ही सम्बन्ध बढाते हैं।

(इसके विपरीत—) प्राणातिपात से दूर रहने वाले प्राणातिपात से दूर रहने वालों से, चौर चौरों से, व्यभिचारी व्यभिचारियों से, असत्यभाषी असत्यभाषियों से मद्यपायी मद्यपायियों से सम्बन्ध बढाते हैं ॥ •

२६. सप्तकर्मपथसूत्र : : सात कर्मपथिकों में परस्पर सम्पर्क

२८. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! धातुओं के अनुसार प्राणी परस्पर

समेन्ति; मुसावादिनो मुसावादीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; पिसुणवाचा पिसुणवाचेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; फरुसवाचा फरुसवाचेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सम्फप्पलापिनो सम्फप्पलापीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति।

"पाणातिपाता पटिविरता...पे०...अदिन्नादाना पटिविरता...कामेसुमिच्छाचारा [N.142] पटिविरता...मुसावादा पटिविरता...पिसुणाय वाचाय पटिविरता पिसुणाय वाचाय पटिविरतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; फरुसाय वाचाय पटिविरता फरुसाय वाचाय पटिविरतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सम्फप्पलापा पटिविरता सम्फप्पलापा पटिविरतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती" ति॥

२७. दसकम्मपथसुत्तं

२९. ...सावत्थियं विहरति। "धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। [B.378, R.168] पाणातिपातिनो पाणातिपातीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अदिन्नादायिनो...पे०...कामेसुमिच्छाचारिनो...मुसावादिनो...पिसुणवाचा...फरुसवाचा...सम्फप्पलापिनो सम्फप्पलापीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अभिज्झालुनो अभिज्झालूहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; ब्यापन्नचित्ता ब्यापन्नचित्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति।

"पाणातिपाता पटिविरता पाणातिपाता पटिविरतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अदिन्नादाना पटिविरता...पे०...कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता...मुसावादा पटिविरता...

सम्पर्क करते हैं। प्राणातिपाती....चौर....व्यभिचारी....असत्यभाषी....चुगलखोर....रूखा (कर्कश) बोलने वाला....प्रलाप करने वाला प्रलाप करनेवालों के साथ ही सम्पर्क रखने में सुख मानता है।

(इसके विपरीत—) अहिंसक....न दिया हुआ लेने वाला....सदाचारी....सत्यभाषी....चुगली न करने वाला....कठोर वाणी बोलने वाला....प्रलाप (बकवाद) करने वाला प्रलाप करने वालों के साथ रहने में ही सुख मानता है॥

२७. दशकर्मपथसूत्र : : दश कर्मपथिकों में परस्पर सम्पर्क

२९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! सभी प्राणी धातुओं के अनुसार ही परस्पर व्यवहार करते हैं। जैसे प्राणातिपाती....चौर....व्यभिचारी....चुगलखोर....मद्यप....कर्कश बोलने वाला....प्रलापी....अभिध्यालु (लोभी)....व्यापादचित्त (मन में निरन्तर द्वेष रखने वाला)....एवं मिथ्यादृष्टिक मिथ्यादृष्टिकों के साथ ही मेल जोड़ बढाता है।

(इसके विपरीत—) अहिंसक....दिये हुए को ही लेने वाला....सदाचारी....सत्यभाषी

पिसुणाय वाचाय...फरुसाय वाचाय...सम्फप्पलापा पटिविरता सम्फप्पलापा पटिविरतेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अनभिज्झालुनो अनभिज्झालूहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; अब्यापन्नचित्ता अब्यापन्नचित्तेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती'' ति॥ ●

२८. अट्ठङ्गिकसुत्तं

३०. ...सावत्थियं विहरति। ''धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; मिच्छासङ्कप्पा...पे०... मिच्छावाचा...मिच्छाकम्मन्ता...मिच्छाआजीवा...मिच्छावायामा...मिच्छसतिनो...मिच्छासमाधिनो मिच्छासमाधीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सम्मासङ्कप्पा...पे०...सम्मावाचा...सम्माकमन्ता...सम्माआजीवा...सम्मावायामा... सम्मासतिनो...सम्मासमाधिनो सम्मासमाधीहि सद्धिं [N.143] संसन्दन्ति समेन्ती'' ति॥ ●

२९. दसङ्गसुत्तं

३१. ...सावत्थियं विहरति। ''धातुसो व, भिक्खवे, सत्ता संसन्दन्ति समेन्ति। मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; मिच्छासङ्कप्पा...पे०... मिच्छावाचा...मिच्छाकम्मन्ता...मिच्छाआजीवा...मिच्छावायामा...मिच्छसतिनो...मिच्छासमाधिनो मिच्छासमाधीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; मिच्छाञाणिनो [B.379, R.169]

....चुगली न करने वाला....मद्यप....कर्कश न बोलने वाला....मितभाषी....निर्लोभ.... अद्वेषी....सम्यग्दृष्टिक सम्यग्दृष्टिकों से ही मेल जोड़ बढाता है॥ ●

२८. अष्टाङ्गिकसूत्र : : अष्टाङ्गिकों में परस्पर सम्पर्क

३०. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।''भिक्षुओ! प्राणी धातुओं के अनुसार ही....। मिथ्यादृष्टिक....मिथ्यासङ्कल्पक....मिथ्यावाक्....मिथ्याकर्मान्तक....मिथ्याजीव....मिथ्याव्यायाम....मिथ्यास्मृति....मिथ्या समाधि (साधना) वाले प्राणी....मिथ्या समाधि वालों से सम्पर्क बढाते हैं। मिथ्याज्ञानी मिथ्याज्ञानियों से सम्पर्क बढाते हैं।

(इसके विपरीत—) सम्यग्दृष्टिक....सम्यक्सङ्कल्प....सम्यग्वाक्....सम्यक्कर्मान्त.... सम्यगाजीव....सम्यग्व्यायाम....सम्यक्स्मृति....सम्यक्समाधि....सम्यग्विमुक्ति वाले प्राणी सम्यग्विमुक्ति वाले प्राणियों से ही परस्पर सम्पर्क बढाते हैं॥ ●

२९. दशाङ्गसूत्र : : दश अङ्गों में परस्पर सम्पर्क

३१. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।''भिक्षुओ! धातुओं के कारण प्राणी परस्पर सम्पर्क करते हैं, मेल जोड़ बढाते हैं। मिथ्यादृष्टिक....मिथ्यासङ्कल्प....मिथ्यावाक्....

मिच्छाञाणीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; मिच्छाविमुत्तिनो मिच्छाविमुत्तीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति।

"सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकेहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति। सम्मासङ्कप्पा...पे०... सम्मावाचा...सम्माकम्मन्ता...सम्माआजीवा...सम्मावायामा...सम्मासतिनो...सम्मासमाधिनो... सम्माञाणिनो सम्माञाणीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ति; सम्माविमुत्तिनो सम्माविमुत्तीहि सद्धिं संसन्दन्ति समेन्ती" ति। (सब्बत्थ अतीतानागतपच्चुप्पन्नं कातब्बं।)

सत्तन्नं सुत्तन्तानं उद्दानं

असमाहितं दुस्सीलं, पञ्च सिक्खापदानि च।
सत्त कम्मपथा वुत्ता, दसकम्मपथेन च।
छट्ठं अट्ठङ्गिको वुत्तो, दसङ्गेन च सत्तमं॥

कम्मपथवग्गो ततियो॥

मिथ्याकर्मान्त....मिथ्याजीव....मिथ्याव्यायाम....मिथ्यास्मृति....मिथ्यासमाधि....मिथ्याज्ञानी... मिथ्याविमुक्ति पुरुष मिथ्याविमुक्ति वालों के साथ ही सम्पर्क बढाते हैं।

(इसके विपरीत—) सम्यग्दृष्टि....सम्यक्सङ्कल्प....सम्यग्वाक्....सम्यक्कर्मान्त.... सम्यगाजीव....सम्यग्व्यायाम....सम्यक्स्मृति....सम्यक्समाधि....सम्यग्ज्ञानी....सम्यग्विमुक्ति वाले सम्यग्विमुक्ति वालों के साथ ही सम्पर्क बढाते हैं।

[ऊपर के सभी सातों सूत्रों में अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्न का भी विस्तार कर लेना चाहिये।]

कर्मपथवर्ग तृतीय समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सात सूत्रों की सूची—१. असमाहित, २. दुःशील, ३. पञ्चशिक्षापद, ४. सप्तकर्मपथ, ५. दशकर्मपथ, ६. अष्टाङ्गिक एवं ७. दशाङ्ग सूत्र॥ •

४. चतुत्थो वग्गो

३०. चतुधातुसुत्तं

३२. एक समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। "चतस्सो इमो, भिक्खवे, धातुयो। कतमा चतस्सो? पठवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातु—इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो धातुयो" ति।

३१. पुब्बेसम्बोधसुत्तं

३३. ...सावत्थियं विहरति। "पुब्बेव मे, भिक्खवे, सम्बोधा [N.144, R.170] अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि—'को नु खो पठवीधातुया [B.380] अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं; को आपोधातुया अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं; को तेजोधातुया अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं; को वायोधातुया अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं' ति?

"तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'यं खो पठवीधातुं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं पठवीधातुया अस्सादो; यं पठवीधातु अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा, अयं पठवीधातुया आदीनवो; यो पठवीधातुया छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं पठवीधातुया निस्सरणं। यं आपोधातुं पटिच्च...पे०...यं तेजोधातुं पटिच्च...पे०...यं

चतुर्थ वर्ग

३०. चतुर्धातुसूत्र : : चार धातु

३२. एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती में** अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे।....

भिक्षुओ! ये चार धातु होती हैं; जैसे—१. पृथ्वीधातु, २. अब्धातु, ३. तेजोधातु एवं ४. वायुधातु। भिक्षुओ! ये चार धातु होती हैं॥ •

३१. पूर्वसम्बोधिसूत्र : : पूर्वज्ञान, धातुओं का आस्वाद, दुष्परिणाम

३३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! मुझे सम्बोधि से पूर्व ही बोधिसत्त्वावस्था में कभी यह विचार हुआ—"पृथ्वीधातु का आस्वाद (स्थायी रस), दोष, निःसरण (त्याग) क्या है? अब्धातु का....तेजोधातु का....वायुधातु का....निःसरण क्या है?

तब मुझ को यह ध्यान में आया—"पृथ्वीधातु के कारण जो सुख सौमनस्य उत्पन्न होता है वही इस धातु का आस्वाद है। पृथ्वीधातु की अनित्यता, दुःखता एवं विनाशधर्मिता—वही उस के आदीनव हैं। तथा इस धातु का जो छन्दरागविनय या छन्दरागप्रहाण है वही इसका निःसरण (त्याग) है। इसी तरह, अब्धातु के कारण जो सुख...तेजोधातु के

वायोधातुं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं वायोधातुया अस्सादो; यं वायोधातुं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं वायोधातुया अस्सादो; यं वायोधातु अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा, अयं वायोधातुया आदीनवो; यो वायोधातुया छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं वायोधातुया निस्सरणं'।

"यावकीवञ्चाहं, भिक्खवे, इमासं चतुन्नं धातूनं एवं अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं न अब्भञ्ञासिं, नेव तावाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति पच्चञ्ञासिं।

"यतो च ख्वाहं, भिक्खवे, इमासं चतुन्नं धातूनं एवं अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अथाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय [R.171] अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति पच्चञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि—'अकुप्पा मे विमुत्ति, अयमन्तिमा जाति, नत्थि दानि पुनब्भवो''' ति।

३२. अचरिंसुत्तं

[N.145] ३४. ...सावत्थियं विहरति। "पठवीधातुयाहं, भिक्खवे, अस्सादपरियेसनं अचरिं, यो पठवीधातुया अस्सादो तदज्झगम, यावता पठवीधातुया अस्सादो पञ्ञाय मे [B.381] सो सुदिट्ठो। पठवीधातुयाहं, भिक्खवे, आदीनवपरियेसनं अचरिं, यो पठवी-

---

कारण....वायुधातु के कारण जो सुख सौमनस्य है वही वायुधातु का आस्वाद है....वही इस वायुधातु का नि:सरण है।

"भिक्षुओ! जब तक मुझे इन चारों धातुओं के आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण का यथाभूत (वास्तविक) ज्ञान नहीं हुआ, तब तक मैने देवता, मार एवं ब्रह्मा सहित इस लोक में देवमनुष्यों सहित श्रमण एवं ब्राह्मणों के मध्य यह गर्वोक्ति (दावा) नहीं की कि मुझे अनुत्तर सम्यक्सम्बुद्धत्व प्राप्त कर लिया है।

"तथा अन्त में, चिन्तन करते करते जब मुझे इन धातुओं के आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण का यथाभूत ज्ञान हो गया तब मैंने देवता....पूर्ववत्....सम्यक्सम्बुद्धत्व प्राप्त कर लिया है। उसी समय मुझे यह ज्ञानदर्शन भी हो गया कि मेरे चित्त की विमुक्ति स्थायी (अकोप्य) हो गयी। अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा॥ •

३२. अचरिं-सूत्र : : धातुओं के आस्वादन में विचरण

३४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! मैंने पृथ्वीधातु के आस्वाद की खोज में विचरण किया। मैं पृथ्वीधातु के आस्वाद की अन्तिम सीमा तक पहुँच गया। इस

धातुया आदीनवो तदज्झगमं, यावता पठवीधातुया आदीनवो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। पठवीधातुयाहं, भिक्खवे, निस्सरणपरियेसनं अचरिं, यं पठवीधातुया निस्सरणं तदज्झगमं, यावता पठवीधातुया निस्सरणं पञ्ञाय मे तं सुदिट्ठं।

''आपोधातुयाहं, भिक्खवे...पे०...तेजोधातुयाहं, भिक्खवे...वायोधातुयाहं, भिक्खवे, अस्सादपरियेसनं अचरिं, यो वायोधातुया अस्सादो तदज्झगमं, यावता वायोधातुया अस्सादो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। वायोधातुयाहं, भिक्खवे, आदीनव-परियेसनं अचरिं, यो वायोधातुया आदीनवो तदज्झगमं, यावता वायोधातुया आदीनवो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। वायोधातुयाहं, भिक्खवे, निस्सरणपरियेसनं अचरिं, यं वायोधातुया निस्सरणं तदज्झगमं, यावता वायोधातुया निस्सरणं पञ्ञाय मे तं सुदिट्ठं।

''यावकीवञ्चाहं, भिक्खवे, इमासं चतुन्नं धातूनं अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं न अब्भञ्ञासिं, नेव तावाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय [R.172] अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति पच्चञ्ञासिं।

''यतो च ख्वाहं, भिक्खवे, इमासं चतुन्नं धातूनं अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अथाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति पच्चञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि— 'अकुप्पा मे विमुत्ति, अयमन्तिमा जाति, नत्थि दानि पुनब्भवो''' ति॥ •

३३. नोचेदंसुत्तं

३५. ...सावत्थियं विहरति। ''नो चेदं, भिक्खवे, पठवीधातुया अस्सादो अभविस्स, नयिदं सत्ता पठवीधातुया सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि

धातु के आस्वाद को मैंने प्रज्ञा से जान लिया। इसी तरह इस धातु के आदीनव तथा निःसरण की....प्रज्ञा से जान लिया।

''अब्धातु के....तेजोधातु के....वायुधातु के आस्वाद की खोज में विचरण किया। ....प्रज्ञा से जान लिया।

''भिक्षुओ! जब तक मुझे....उपरि सूत्रवत्....मैंने सम्यक्सम्बुद्धत्व प्राप्त कर लिया।

''तथा अन्त में, चिन्तन करते करते....पूर्ववत्....पुनर्जन्म नहीं होगा''॥ •

३३. नोचेदं-सूत्र : : धातुओं के यथार्थ ज्ञान से ही मुक्ति

३५. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।''भिक्षुओ! यदि इस पृथ्वीधातु का आस्वाद न होता तो यहाँ के ये प्राणी इस पृथ्वी में कोई आसक्ति न रखते। क्योंकि, भिक्षुओ!

[B.382, N.146] पठवीधातुया अस्सादो, तस्मा सत्ता पठवीधातुया सारज्जन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, पठवीधातुया आदीनवो अभविस्स, नयिदं सत्ता पठवीधातुया निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि पठवीधातुया आदीनवो, तस्मा सत्ता पठवीधातुया निब्बिन्दन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, पठवीधातुया निस्सरणं अभविस्स, नयिदं सत्ता पठवीधातुया निस्सरेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि पठवीधातुया निस्सरणं, तस्मा सत्ता पठवीधातुया निस्सरन्ति।

''नो चेदं, भिक्खवे, आपोधातुया अस्सादो अभविस्स...पे०...नो चेदं, भिक्खवे, तेजोधातुया...नो चेदं, भिक्खवे, वायोधातुया अस्सादो अभविस्स, नयिदं सत्ता वायोधातुया सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि वायोधातुया अस्सादो, तस्मा सत्ता वायोधातुया सारज्जन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, वायोधातुया आदीनवो [R.173] अभविस्स, नयिदं सत्ता वायोधातुया निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि वायोधातुया आदीनवो, तस्मा सत्ता वायोधातुया निब्बिन्दन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, वायोधातुया निस्सरणं अभविस्स, नयिदं सत्ता वायोधातुया निस्सरेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि वायोधातुया निस्सरणं, तस्मा सत्ता वायोधातुया निस्सरन्ति।

''यावकीवञ्चिमे, भिक्खवे, सत्ता इमासं चतुन्नं धातूनं अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं न अब्भञ्ञंसु, नेव ताविमे भिक्खवे, सत्ता सदेवका लोका समारका सब्रह्मका सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय निस्सटा विसंयुत्ता विप्पमुत्ता विमरियादिकतेन चेतसा विहरिंसु।

''यतो च खो, भिक्खवे, सत्ता इमासं चतुन्नं धातूनं अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्ञंसु, अथ, भिक्खवे,

---

पृथ्वीधातु में आस्वाद है अत: वे इस में आसक्त हैं। भिक्षुओ! यदि पृथ्वीधातु में आदीनव न होता तो प्राणी इससे निर्विण्ण (विरक्त) न होते। क्योंकि, भिक्षुओ! पृथ्वीधातु में आदीनव है अत: प्राणी इस धातु से निर्वेद (ग्लानि=वैराग्य) मानते रहते हैं। इसी तरह, यदि इस धातु में नि:सरण (त्याग) न होता तो प्राणी इस का त्याग न करते। क्योंकि इसमें त्याग है अत: प्राणी इस का त्याग करते रहते हैं।

''इसी तरह, भिक्षुओ! अब्धातु में....तेजोधातु में....वायोधातु में....आस्वाद.... पूर्ववत्....आदीनव....नि:सरण न होता तो....पूर्ववत्....प्राणी इस वायुधातु का त्याग करते रहते हैं।

''भिक्षुओ! जब तक मुझे इन चारों धातुओं में....पूर्ववत्....मैने सम्यक्सम्बुद्धत्व प्राप्त कर लिया।

सत्ता सदेवका लोका समारका सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय निस्सटा विसंयुत्ता विमुत्ता विमरियादिकतेन चेतसा विहरन्ती'' ति॥ ●

३४. एकन्तदुक्खसुत्तं

३६. सावत्थियं विहरति। ''पठवीधातु चे हिदं, भिक्खवे, [N.147, B.383] एकन्तदुक्खा अभविस्स दुक्खानुपतिता दुक्खावक्कन्ता अनवक्कन्ता सुखेन, नयिदं सत्ता पठवीधातुया सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, पठवीधातु सुखा सुखानुपतिता सुखावक्कन्ता अनवक्कन्ता दुक्खेन, तस्मा सत्ता पठवीधातुया सारज्जन्ति।

''आपोधातु चे हिदं, भिक्खवे...पे०...तेजोधातु चे हिदं, भिक्खवे...वायोधातु चे हिदं, भिक्खवे, एकन्तदुक्खा अभविस्स दुक्खानुपतिता दुक्खावक्कन्ता अनवक्कन्ता सुखेन, नयिदं सत्ता वायोधातुया सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, वायोधातु सुखा सुखानुपतिता सुखावक्कन्ता अनवक्कन्ता दुक्खेन, तस्मा सत्ता वायोधातुया सारज्जन्ति।

''पठवीधातु चे हिदं, भिक्खवे, एकन्तसुखा अभविस्स सुखानुपतिता सुखावक्कन्ता अनवक्कन्ता दुक्खेन, नयिदं सत्ता पठवीधातुया निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, पठवीधातु दुक्खा दुक्खानुपतिता दुक्खावक्कन्ता अनवक्कन्ता सुखेन, तस्मा सत्ता पठवीधातुया निब्बिन्दन्ति।

''आपोधातु चे हिदं, भिक्खवे...पे०...तेजोधातु चे हिदं, भिक्खवे...वायोधातु चे हिदं, भिक्खवे, एकन्तसुखा अभविस्स सुखानुपतिता सुखावक्कन्ता अनवक्कन्ता दुक्खेन,

---

''तथा अन्त में, चिन्तन करते करते....पूर्ववत्....पुनर्जन्म नहीं होगा''॥ ●

३४. एकान्तदुःखसूत्र : : धातुओं के यथार्थ ज्ञान से मुक्ति

३६. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! यह पृथ्वीधातु यदि एकान्ततः दुःखमय ही होती तो यहाँ के समस्त प्राणी निरन्तर दुःख में पड़े हुए, दुःख से घिरे हुए, सुख से सदा दूर रहते! क्योंकि, भिक्षुओ! यह पृथ्वीधातु सुखमय भी है, यहाँ के प्राणी सुख का भी अनुभव करते रहते हैं, सुख से घिरे रहते हैं, दुःख से दूर भी रहते हैं अतः ये प्राणी इस पृथ्वीधातु में आसक्त रहते हैं।

''इस तरह, भिक्षुओ! अब्धातु....तेजोधातु....वायुधातु यदि एकान्ततः दुःखमय.... पूर्ववत्....अतः ये प्राणी वायुधातु में आसक्त रहते हैं।

''परन्तु, भिक्षुओ! यदि यह पृथ्वीधातु एकान्ततः सुखमय ही होती तो यहाँ के प्राणी सदा सुख से घिरे रहते, सुखमग्न रहते; ऐसी स्थिति में ये प्राणी इस धातु से कभी निर्विण्ण न होते। क्योंकि, भिक्षु, यह धातु दुःखमय भी है, दुःखाक्रान्त भी है अतः प्राणी इस पृथ्वीधातु से निर्विण्ण होते रहते हैं।

नयिदं सत्ता वायोधातुया निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, वायोधातु दुक्खा दुक्खानुपतिता दुक्खावक्कन्ता अनवक्कन्ता सुखेन, तस्मा सत्ता वायोधातुया निब्बिन्दन्ती'' ति॥

३५. अभिनन्दसुत्तं

३७. ...सावत्थियं विहरति। ''यो, भिक्खवे, पठवीधातुं अभिनन्दति, दुक्खं सो अभिनन्दति। यो दुक्खं अभिनन्दति, अपरिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि। यो आपोधातुं अभिनन्दति...पे०...यो तेजोधातुं...यो वायोधातुं अभिनन्दति, दुक्खं सो अभिनन्दति। यो दुक्खं अभिनन्दति, अपरिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि।

[N.148, B.384, R.175] ''यो च खो, भिक्खवे, पठवीधातुं नाभिनन्दति, दुक्खं सो नाभिनन्दति। यो दुक्खं नाभिनन्दति, परिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि। यो आपोधातुं...पे०... यो तेजोधातुं...यो वायोधातुं नाभिनन्दति, दुक्खं सो नाभिनन्दति। यो दुक्खं नाभिनन्दति, परिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामी'' ति॥

३६. उप्पादसुत्तं

३८. ...सावत्थियं विहरति। ''यो, भिक्खवे, पठवीधातुया उप्पादो ठिति

''इसी तरह, भिक्षुओ! अब्धातु....तेजोधातु....वायुधातु एकान्ततः सुखमय ही होती तो ये प्राणी सदा सुख से घिरे रहते....। क्योंकि यह वायुधातु दुःखमय भी है, अतः ये प्राणी इस वायुधातु से निर्विण्ण भी होते रहते हैं''॥

३५. अभिनन्दनसूत्र : : धातुओं में विरक्ति से दुःखमुक्ति

३७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! जो प्राणी इस पृथ्वीधातु का अभिनन्दन करता है (इस में सुख मानता है) वह एक प्रकार से दुःख का ही अभिनन्दन करता है। इस तरह जो दुःख का अभिनन्दन करता है वह इस दुःख से मुक्ति कभी नहीं पा सकता। जो अब्धातु का अभिनन्दन....तेजोधातु का अभिनन्दन....वायुधातु का अभिनन्दन करता है वह इस दुःख से कभी मुक्ति नहीं पा सकता—यह समझ लो।

''इसके विपरीत—जो इस पृथ्वीधातु का अभिनन्दन नहीं करता, उस को दुःख से मुक्त हुआ ही समझ लो। जो इस अब्धातु का....तेजोधातु का....वायुधातु का अभिनन्दन नहीं करता, वह वस्तुतः दुःख का ही अभिनन्दन नहीं करता। जो दुःख का अभिनन्दन नहीं करता उसे दुःख से पूर्णतः मुक्त (परिमुक्त) हुआ ही समझो। —ऐसा मैं कहता हूँ''॥

३६. उत्पादसूत्र : : धातुनिरोध से दुःखनिरोध

३८. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! यह जो पृथ्वीधातु की उत्पत्ति,

अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो रोगानं ठिति जरामरणस्स पातुभावो। यो आपोधातुया...पे०...यो तेजोधातुया...यो वायोधातुया उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो रोगानं ठिति जरामरणस्स पातुभावो।

''यो च खो, भिक्खवे, पठवीधातुया निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो रोगानं वूपसमो जरामरणस्स अत्थङ्गमो। यो आपोधातुया...पे०...यो तेजोधातुया...यो वायोधातुया निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो रोगानं वूपसमो जरामरणस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ •

३७. समणब्राह्मणसुत्तं

३९. ...सावत्थियं विहरति। ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, धातुयो। कतमा चतस्सो? पठवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातु। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा इमासं चतुन्नं धातूनं अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानन्ति, न मे ते, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु वा समण- [R.176] सम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मणसम्मता; न च पन ते आयस्मन्तो सामञ्ञत्थं वा ब्रह्मञ्ञत्थं वा दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति।

''ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा इमासं चतुन्नं धातूनं अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानन्ति, ते च खो मे, भिक्खवे, समणा वा

स्थिति, अभिनिर्वृत्ति एवं प्रादुर्भाव है यह वस्तुतः दुःख एवं रोगों की उत्पत्ति, स्थिति, अभिनिर्वृत्ति एवं जरामरण का प्रादुर्भाव है। यह जो अब्धातु का....तेजोधातु का....वायुधातु का उत्पाद, स्थिति....है वही वस्तुतः दुःख का उत्पाद, स्थिति एवं जरामरण का उत्पाद है....।

''इसके विपरीत—भिक्षुओ! यह जो पृथ्वीधातु का निरोध, व्युपशम एवं अस्त होना है वही दुःखों का निरोध रोगों का व्युपशम एवं जरामरण का निरोध है। जो अब्धातु का....तेजोधातु का....वायुधातु का....पूर्ववत्....जरामरण का नाश है''॥ •

३७. श्रमणब्राह्मणसूत्र : : चार धातु

३९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! ये चार धातु हैं। कौन सी चार? पृथ्वीधातु, अब्धातु, तेजोधातु एवं वायोधातु। भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण इन चारों धातुओं के आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः नहीं जानते, भिक्षुओ! वे श्रमण न श्रमणों में प्रतिष्ठा प्राप्त कर पाते हैं न ब्राह्मण ब्राह्मणों में। तथा न वे श्रामण्य तथा ब्राह्मण्य के विषय में वास्तविकता जान कर तद्विषयक साधना ही कर पाते हैं।

''अथ च, भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण इन चारों धातुओं के आस्वाद, आदीनव एवं

[B.385] ब्राह्मणा वा समणेसु चेव समणसम्मता ब्राह्मणेसु च ब्राह्मणसम्मता; ते च [N.149] पनायस्मन्तो सामञ्ञत्थं च ब्रह्मञ्ञत्थं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥ ●

३८. दुतियसमणब्राह्मणसुत्तं

४०. ...सावत्थियं विहरति। ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, धातुयो। कतमा चतस्सो? पठवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातु। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा इमासं चतुन्नं धातूनं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानन्ति...पे०...(वित्थारेतब्बं)।

पटिजानन्ति...पे०...सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥ ●

३९. ततियसमणब्राह्मणसुत्तं

४१. ...सावत्थियं विहरति। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा पठवीधातुं नप्पजानन्ति, पठवीधातुसमुदयं नप्पजानन्ति, पठवीधातुनिरोधं नप्पजानन्ति, पठवीधातुनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति...पे०...आपोधातुं नप्पजानन्ति...तेजोधातुं नप्पजानन्ति... वायोधातुं नप्पजानन्ति, वायोधातुसमुदयं नप्पजानन्ति, वायोधातुनिरोधं नप्पजानन्ति, वायोधातुनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति, न मे ते, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु वा समणसम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मणसम्मता; न च पन ते आयस्मन्तो सामञ्ञत्थं वा ब्रह्मञ्ञत्थं वा दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति।

निःसरण के विषय में यथार्थतः जानते हैं ऐसे श्रमण ब्राह्मण ही श्रमण एवं ब्राह्मणों के समूह में प्रतिष्ठा प्राप्त कर पाते हैं एवं वैसे ही श्रमण ब्राह्मण श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य के विषय में यथार्थतः जान कर तद्विषयक साधना करने में समर्थ होते हैं''॥ ●

३८. द्वितीयश्रमणब्राह्मणसूत्र : : चार धातु

४०. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! ये चार धातु होती हैं—१. पृथ्वीधातु, २. अब्धातु, ३. तेजोधातु एवं ४. वायुधातु। भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण इन चारों धातुओं का उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण नहीं जानते....पूर्ववत्....॥

[पूर्वसूत्रवत् विस्तार कर लें।] ●

३९. तृतीयश्रमणब्राह्मणसूत्र : : चार धातु

४१. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण पृथ्वीधातु को, पृथ्वीधातु के समुदय को, पृथ्वीधातु के निरोध को एवं पृथ्वीधातुनिरोधगामी मार्ग को नहीं जानते; अब्धातु को नहीं जानते....तेजोधातु को नहीं जानते....वायुधातु को नहीं जानते....ऐसे

"ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा पठवीधातुं पजानन्ति, पठवीधातुसमुदयं पजानन्ति, पठवीधातुनिरोधं पजानन्ति, पठवीधातुनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानन्ति...ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा...पे०...आपोधातुं पजानन्ति... तेजोधातुं पजानन्ति...वायोधातुं पजानन्ति, वायोधातुसमुदयं पजानन्ति, वायोधातुनिरोधं पजानन्ति, वायोधातुनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानन्ति, ते च खो मे, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु चेव समणसम्मता ब्राह्मणेसु [B.386, N.150] च ब्राह्मणसम्मता; ते च पनायस्मन्तो सामञ्ञत्थं च ब्रह्मञ्ञत्थं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती" ति॥ •

चतुत्थो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

चतस्सो पुब्बे अचरिं, नोचेदं च दुक्खेन च।
अभिनन्दं च उप्पादो, तयो समणब्राह्मणा ति॥

धातुसंयुत्तं समत्तं॥

श्रमण ब्राह्मण श्रमण ब्राह्मणों में कोई प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर पाते, न वे श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य के विषय में यथार्थतः जान कर इस जन्म में कोई विशिष्ट साधना ही कर पाते हैं।

"परन्तु, भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण पृथ्वीधातु के विषय में यथार्थतः जानते हैं....अब्धातु के विषय में यथार्थतः जानते हैं....तेजोधातु के विषय में यथार्थतः जानते हैं....वायुधातु के विषय में यथार्थतः जानते हैं, वायुधातु के समुदय....वायुधातु के निरोध....तथा वायुधातुनिरोधगामी मार्ग के विषय में यथार्थतः जानते हैं, भिक्षुओ! वे श्रमण ब्राह्मण श्रमणों तथा ब्राह्मणों में प्रतिष्ठा प्राप्त कर श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य के विषय में इसी जन्म में विशिष्ट साधना (ज्ञान एवं साक्षात्कार) करने में समर्थ होते हैं॥ •

चतुर्थ वर्ग समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. चतुर्धातुसूत्र, २. पूर्वसम्बोधिसूत्र, ३. अचरिं सूत्र, ४. नोचेदं सूत्र, ५. एकान्तदुःख सूत्र, ६. अभिनन्दन सूत्र, ७. उत्पादसूत्र, ८. प्रथम श्रमणब्राह्मणसूत्र, ९. द्वितीय श्रमणब्राह्मणसूत्र, एवं १०. तृतीय श्रमणब्राह्मणसूत्र॥ •

धातुसंयुक्त समाप्त॥

१५. अनमतग्गसंयुत्तं

१. पठमो वग्गो

१. तिणकट्ठसुत्तं

[N.151,B.387, R.178] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"अनमतग्गोयं भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो यं इमस्मिं जम्बुदीपे तिणकट्ठसाखापलासं तं छेत्वा एकज्झं संहरित्वा चतुरङ्गुलं घटिकं कत्वा निक्खिपेय्य—'अयं मे माता, तस्सा मे मातु अयं माता' ति, अपरियादिन्ना व, भिक्खवे, तस्स पुरिसस्स मातुमातरो अस्सु, अथ इमस्मिं जम्बुदीपे तिणकट्ठसाखापलासं परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य। तं किस्स हेतु? अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। एवं दीघरत्तं वो,

---

१५. अनमृताग्रसंयुक्त

१. प्रथम वर्ग

१. तृणकाष्ठसूत्र : : संसार के अनादित्व में तृणकाष्ठ की उपमा

१. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती में** अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनविहार में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ कभी भगवान् ने भिक्षुओं को यह उपदेश किया—

"भिक्षुओ! यह संसार अनमृताग्र (=अनादि) है। इस के आदि (आरम्भ) के किनारे का ज्ञान अविद्याबन्धन से बद्ध एवं तृष्णासंयोजनों के पीछे दौड़ने वाले प्राणियों को नहीं है। भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष अपने पूर्वजों (माता आदि) के बोधनहेतु जम्वुद्वीप के समस्त तृण काष्ठ शाखा एवं पत्रों को एकत्र कर 'यह मेरी माता है', 'यह मेरी माता की माता है'—ऐसा सङ्केत करते हुए उन तृष्ण काष्ठों की एक एक राशि बनावे तो एक दिन समग्र जम्बुद्वीप का समस्त तृण काष्ठ शाखा पलाश समाप्त हो जायगा, परन्तु वह तब भी अपने समस्त परिवार की गणना नहीं कर पायगा। वह किस कारण? वह इसलिये कि अविद्याबन्धन से बद्ध तृष्णा में जकड़े हुए प्राणियों के लिये इस संसार के आदि के किनारे

भिक्खवे, दुक्खं पच्चनुभूतं तिब्बं पच्चनुभूतं ब्यसनं पच्चनुभूतं, कटसी वड्ढिता। यावञ्चिदं, भिक्खवे, अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं अलं विरज्जितुं अलं विमुच्चितुं'' ति॥ ●

२. पठवीसुत्तं

२. ...सावत्थियं विहरति। ''अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न [R.179] पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो इमं महापठविं कोलट्ठिमत्तं कोलट्ठिमत्तं मत्तिकागुळिकं करित्वा निक्खिपेय्य—'अयं मे पिता, तस्स मे पितु अयं पिता' ति, अपरियादिन्ना व, भिक्खवे, तस्स पुरिसस्स पितुपितरो अस्सु, अथायं महापठवी परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य। तं किस्स हेतु? अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न [B.388] पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। एवं [N.152] दीघरत्तं वो, भिक्खवे, दुक्खं पच्चनुभूतं तिब्बं पच्चनुभूतं ब्यसनं पच्चनुभूतं, कटसी वड्ढिता। यावञ्चिदं, भिक्खवे, अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं'' ति॥ ●

३. अस्सुसुत्तं

३. ...सावत्थियं विहरति। ''अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न

का ज्ञान असम्भव है। भिक्षुओ! यों यह पुरुष इस कार्य के करने में दीर्घ काल तक दुःख का ही अनुभव करेगा, व्यसन को प्राप्त होगा; परन्तु श्मशानभूमि (कटसी) इस गणना को पूर्ण नहीं होने देगी। अत: उचित यही होगा कि विवेकशील पुरुष इन संस्कारों से विरक्त हो जाय, इन में किसी प्रकार की आसक्ति न रखे, उनसे मुक्त होने का प्रयास करे॥ ●

२. पृथ्वीसूत्र : :संसार के अनादित्व में पृथ्वी की उपमा

२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! यह संसार अनादि है, इसका आरम्भ अविद्याग्रस्त प्राणियों के लिये अज्ञात है। भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष अपने पूर्वजों (पिता आदि) के प्रज्ञापन हेतु इस पृथ्वी की मिट्टी से छोटी छोटी, बेर के बराबर गोली बना कर 'यह मेरे पिता हैं', 'यह मेरे पिता के पिता हैं'—यों सङ्केत कर रखता चले तो एक दिन इस समस्त पृथ्वी की मिट्टी समाप्त हो जायगी, परन्तु वह अपने पूर्व पिताओं की गणना का समस्त प्रज्ञापन नहीं कर पायगा; क्योंकि यह संसार अनादि है। ये अविद्याग्रस्त प्राणी इस संसार का आरम्भ नहीं जान सकते।....अत: विवेकशील प्राणी के लिये यही उचित होगा कि वह इन संस्कारों से विरक्त हो जाय। इन में किसी प्रकार की आसक्ति न रखे, उन से सर्वथा मुक्त होने का प्रयास करे॥ ●

पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, यं वा वो इमिना दीघेन अद्धुना सन्धावतं संसरतं अमनापसम्पयोगा मनापविप्पयोगा कन्दन्तानं रोदन्तानं अस्सु पस्सन्नं पग्घरितं, यं वा चतूसु महासमुद्देसु उदकं'' ति?

''यथा खो मयं, भन्ते, भगवता धम्मं देसितं आजानाम, एतदेव, भन्ते, बहुतरं यं नो इमिना दीघेन अद्धुना सन्धावतं संसरतं अमनापसम्पयोगा मनापविप्पयोगा कन्दन्तानं [R.180] रोदन्तानं अस्सु पस्सन्नं पग्घरितं, न त्वेव चतूसु महासमुद्देसु उदकं'' ति।

''साधु साधु, भिक्खवे, साधु खो मे तुम्हे, भिक्खवे, एवं धम्मं देसितं आजानाथ। एतदेव, भिक्खवे, बहुतरं यं वो इमिना दीघेन अद्धुना सन्धावतं संसरतं अमनापसम्पयोगा मनापविप्पयोगा कन्दन्तानं रोदन्तानं अस्सु पस्सन्नं पग्घरितं, न त्वेव चतूसु महासमुद्देसु उदकं। दीघरत्तं वो, भिक्खवे, मातुमरणं पच्चनुभूतं; तेसं वा मातुमरणं पच्चनुभोन्तानं अमनापसम्पयोगा मनापविप्पयोगा कन्दन्तानं रोदन्तानं अस्सु पस्सन्नं पग्घरितं, न त्वेव चतूसु महासमुद्देसु उदकं। दीघरत्तं वो, भिक्खवे, पितुमरणं पच्चनुभूतं ...पे०... भातुमरणं पच्चनुभूतं... भगिनिमरणं पच्चनुभूतं... पुत्तमरणं पच्चनुभूतं... धीतुमरणं पच्चनुभूतं... ञातिब्यसनं पच्चनुभूतं... भोगब्यसनं पच्चनुभूतं। दीघरत्तं वो, भिक्खवे,

---

३. अश्रुसूत्र : : **संसार के अनादित्व की आँसुओं से उपमा**

३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।''भिक्षुओ! यह संसार अनादि है। अविद्याग्रस्त एवं तृष्णा से आबद्ध प्राणियों के लिये इस संसार का आरम्भ अज्ञात ही रह जाता है। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! इन दोनों में कौन अधिक है? दीर्घकाल से इस संसार में दौड़ते, प्रिय से वियोग एवं अप्रिय से संयोग के कारण रोते कलपते प्राणियों के आँसू या इन चारों महासमुद्रों का जल?''

''भन्ते! हम तो आप के द्वारा बतायी बात ही जानते हैं। दीर्घकाल से इस संसार में....पूर्ववत्....आँसू ही इन चारों महासमुद्रों के जल से अधिक है।''

''भिक्षुओ! तुमने बहुत उचित कहा। मेरे बताये धर्म को तुमने उचित तरह से ही जाना है। भिक्षुओ! दीर्घ काल से इस संसार में....पूर्ववत्....न कि महासमुद्रों का जल। भिक्षुओ! इस संसार में आने वाले प्राणियों ने माताओं का मरण अनुभूत किया है। इस मातृमरण का अनुभव करने वाले प्राणियों के इस प्रियवियोग एवं अप्रियसंयोग से रोने कलपने के कारण बहते आँसू ही मात्रा (परिमाण) में अधिक हैं न कि इन चारों महासमुद्रों का जल। दीर्घकाल से इस संसार में प्राणियों ने अपने पिताओं का मरण अनुभूत किया है....भाई का मरण....बहन का मरण....पुत्र का मरण....पुत्री का मरण....अन्य

रोगब्यसनं पच्चनुभूतं, तेसं वो रोगब्यसनं पच्चनुभोन्तानं अमनापसम्पयोगा मना
विप्पयोगा कन्दन्तानं रोदन्तानं अस्सु पस्सन्नं पग्घरितं, न त्वेव चतूसु महासमुद्देसु उद
तं किस्स हेतु? अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो...पे०...यावञ्चिदं, भिक्खवे, अलं
सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं'' ति॥ [N.153, B.389

४. खीरसुत्तं

४. ...सावत्थियं विहरति। ''अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि
पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। तं किं मञ्ञ
भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, यं वा वो इमिना दीघेन अद्धुना सन्धावतं संसरतं [R.1
मातुथञ्ञं पीतं, यं वा चतूसु महासमुद्देसु उदकं'' ति?

''यथा खो मयं, भन्ते, भगवता धम्मं देसितं आजानाम, एतदेव, भन्ते, बहुतरं
नो इमिना दीघेन अद्धुना सन्धावतं संसरतं मातुथञ्ञं पीतं, न त्वेव चतूसु महासमु
उदकं'' ति।

''साधु साधु, भिक्खवे, साधु खो मे तुम्हे, भिक्खवे, एवं धम्मं देसि
आजानाथ। एतदेव, भिक्खवे, बहुतरं यं वो इमिना दीघेन अद्धुना सन्धावतं संस
मातुथञ्ञं पीतं, न त्वेव चतूसु महासमुद्देसु उदकं। तं किस्स हेतु? अनमतग्गो
भिक्खवे, संसारो...पे०...अलं विमुच्चितुं'' ति॥

सम्बन्धि जनों का मरण, वियोग बार बार अनुभव किया है नानाविध रोग तथा
अनुभव किये हैं वैसा अनुभव करते हुए प्रियवियोग एवं अप्रियसंयोग के कारण उन
आँखों से जो आँसू बहे हैं वे इन चारों महासमुद्रों के जल से परिमाण में अधिक ही
वह किस कारण? वह इस कारण, भिक्षुओ! कि, यह संसार अनादि है। अत: विवे
पुरुष के लिये यही उचित होगा कि वह इस संसार से....मुक्त होने का प्रयास करे॥

४. क्षीरसूत्र : : **संसार के अनादित्व में दूध की उप**

४. **श्रावस्ती में** साधना करते समय....। ''यह संसार अनादि है। इसका आर
जानना अविद्याग्रस्त अतएव सांसारिक बन्धनों से आबद्ध पृथग्जनों के लिये असम्भव
तुम्ही बताओ, भिक्षुओ! इन दोनों में कौन अधिक है—उन के द्वारा इतने समय तक
बार इस संसार में आ कर पीया हुआ माता के स्तनों का दूध? या इन चारों महासमुद्रों
जल?

''भन्ते! हम तो आपके द्वारा बताये....पूर्ववत्....महासमुद्रों का जल।''

''....माता के स्तन से पीया हुआ दूध ही अधिक है, न कि इन चारों महासमुद्रों
जल। अत: विवेकी पुरुष के लिये यही उचित है कि....मुक्त होने का प्रयास करे''॥

५. पब्बतसुत्तं

५. ...सावत्थियं विहरति...पे०...आरामे। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा
सङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो
सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''कीवदीघो नु खो, भन्ते, कप्पो'' ति?

''दीघो खो, भिक्खु, कप्पो। सो न सुकरो सङ्खातुं एत्तकानि वस्सानि इति वा,
कानि वस्ससतानि इति वा, एत्तकानि वस्ससहस्सानि इति वा, एत्तकानि
सतसहस्सानि इति वा'' ति।

''सक्का पन, भन्ते, उपमं कातुं'' ति?

''सक्का, भिक्खू'', ति भगवा अवोच, ''सेय्यथापि, भिक्खु, महासेलो पब्बतो
नं आयामेन योजनं वित्थारेन योजनं उब्बेधेन अच्छिन्नो असुसिरो एकग्घनो। तमेनं
54, B.390] पुरिसो वस्ससतस्स वस्ससतस्स अच्चयेन कासिकेन वत्थेन सकिं
न परिमज्जेय्य। खिप्पतरं खो सो, भिक्खु, महासेलो पब्बतो इमिना उपक्कमेन
खयं परियादानं गच्छेय्य, न त्वेव कप्पो। एवं दीघो, भिक्खु, कप्पो। एवं दीघानं
82] खो, भिक्खु, कप्पानं नेको कप्पो संसितो, नेकं कप्पसतं संसितं, नेकं कप्प-
स्सं संसितं, नेकं कप्पसतसहस्सं संसितं। तं किस्स हेतु? अनमतग्गोयं, भिक्खु,

---

र्वतसूत्र : : कल्प की दीर्घता

५. **श्रावस्ती में साधना के समय....।** उस समय कोई भिक्षु, जहाँ भगवान् विराजमान
हाँ पहुँच कर उन्हें प्रणाम कर, एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे उसने भगवान् से
—''भन्ते! यह कल्प कितना दीर्घ (लम्बा) होता है?''

''भिक्षु! कल्प तो बहुत लम्बा होता है। वह गणनापूर्वक नहीं समझाया जा सकता
इसमें इतने वर्ष होते हैं, या इतने सौ वर्ष, हजार वर्ष, या लाख वर्ष होते हैं।''

''भन्ते! इस बात को किसी उपमा (तुलनात्मक दृष्टान्त) द्वारा समझाया जा सकता
''

भगवान् बोले— '' हाँ, भिक्षु, समझाया जा सकता है। जैसे कोई विशाल पर्वत हो,
सका विस्तार (लम्बाई-चौड़ाई) एक योजन हो, ऊँचाई भी एक योजन हो। उस के
र में कोई रिक्त स्थान (=असुसिर) न हो, मानो एक ही पत्थर से उसका निर्माण हुआ
उसको कोई पुरुष सैंकड़ों वर्षों तक काशी में बने किसी चिकने वस्त्र से बार बार
। हो सकता है कभी वह पर्वत इस तरह घिसते घिसते समाप्त हो जाय; परन्तु कल्प
भी समाप्त नहीं होगा। भिक्षु! इतना लम्बा (दीर्घकाल वाला) होता है कल्प। यह
प इतनी लम्बी प्रतीक्षा कराता है। उसे सौ वर्ष, हजार वर्ष या लाख वर्षों से परिगणित

संसारो। पुब्बा कोटि...पे०...यावञ्चिदं, भिक्खु, अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं'' ति॥

६. सासपसुत्तं

६. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा...ते एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''कीवदीघो, नु खो, कप्पो'' ति?

''दीघो खो, भिक्खु, कप्पो। सो न सुकरो सङ्खातुं एत्तकानि वस्सानि वा...पे०...एत्तकानि वस्ससतसहस्सानि इति वा'' ति।

''सक्का पन, भन्ते, उपमं कातुं ति''?

''सक्का, भिक्खू,'' ति भगवा अवोच, ''सेय्यथापि, भिक्खु, आयसं नगरं य आयामेन योजनं वित्थारेन योजनं उब्बेधेन, पुण्णं सासपानं गुळिकाबद्धं। ततो पु वस्ससतस्स वस्ससतस्स अच्चयेन एकमेकं सासपं उद्धरेय्य। खिप्पतरं खो सो, भि महासासपरासि इमिना उपक्कमेन परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य, न त्वेव कप्पो। दीघो खो, भिक्खु, कप्पो। एवं दीघानं खो, भिक्खु, कप्पानं नेको कप्पो संसितो, कप्पसतं संसितं, नेकं कप्पसहस्सं संसितं, नेकं कप्पसतसहस्सं संसितं। तं किस्स हे अनमतग्गोयं, भिक्खु, संसारो...पे०...अलं विमुच्चितुं'' ति॥

नहीं किया जा सकता। वह क्यों? वह इसलिये कि यह संसार अनादि है। इस आरम्भ-समय....नहीं बताया जा सकता। अत: विवेकी पुरुष को चाहिये कि वह संस्कारों से विरत रहे, इन की उपेक्षा करे तथा इन से मुक्त होने का प्रयास करे॥

६. सर्षपसूत्र : : **कल्प की दी**

६. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''कोई अन्य भिक्षु....पूर्ववत्....भगवा पूछने लगा—''भन्ते! कल्प कितने लम्बे दीर्घ काल का होता है?''

''भिक्षु! कल्प में इतना लम्बा समय होता है कि उसे वर्षों की गणना में नहीं जा सकता कि इस में इतने वर्ष इतने सौ वर्ष या इतने हजार या लाख वर्ष होते हैं।

''भन्ते! क्या इस बात को किसी उपमा से समझाया जा सकता है?''

''हाँ, भिक्षु! कोई एक योजन लम्बा चौड़ा ऊँचा लौहनगर हो, उस में सरसों हुई हो। कोई पुरुष सौ सौ वर्ष के बाद उस में से एक एक सरसों निकाले। यों निका निकालते वह सर्षपराशि एक दिन समाप्त हो सकती है, परन्तु यह एक कल्प तब भी नहीं हो पाता। इतना दीर्घकाल वाला कल्प होता है। इसे एक वर्ष, सौ वर्ष, हजार वर्ष लाख वर्ष की गणना से नहीं नापा जा सकता। ....पूर्ववत्....इन से मुक्त होने का प्र करे॥

७. सावकसुत्तं

183] ७. सावत्थियं विहरति। अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा... ...एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—

"कीवबहुका नु खो, भन्ते, कप्पा अब्भतीता अतिक्कन्ता" ति?

155, B.391] "बहुका खो, भिक्खवे, कप्पा अब्भतीता अतिक्कन्ता। ते न सुकरा ङ्खातुं—'एत्तका कप्पा इति वा, एत्तकानि कप्पसतानि इति वा, एत्तकानि प्पसहस्सानि इति वा, एत्तकानि कप्पसतसहस्सानि इति वा''' ति? "सक्का पन, न्ते, उपमं कातुं''' ति?

"सक्का, भिक्खवे," ति भगवा अवोच, "इधस्सु, भिक्खवे, चत्तारो सावका ससतायुका वस्ससतजीविनो। ते दिवसे दिवसे कप्पसतसहस्सं कप्पसतसहस्सं नुस्सरेय्युं। अननुस्सरिता व, भिक्खवे, तेहि कप्पा अस्सु, अथ खो ते चत्तारो सावका ससतायुका वस्ससतजीविनो वस्ससतस्स अच्चयेन कालं करेय्युं। एवं बहुका खो, क्खवे, कप्पा अब्भतीता अतिक्कन्ता। ते न सुकरा सङ्खातुं—'एत्तका कप्पा इति वा, त्तकानि कप्पसतानि इति वा, एत्तकानि कप्पसहस्सानि इति वा, एत्तकानि कप्पसत-हस्सानि इति वा' ति। तं किस्स हेतु? अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो...पे०...अलं मुच्चितुं" ति॥

●

८. गङ्गासुत्तं

८. ...राजगहे विहरति वेळुवने। अथ खो अञ्ञतरो ब्राह्मणो येन भगवा

श्रावकसूत्र : : **बीते हुए कल्प अगणनीय**

७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। कभी बहुत से भिक्षु....पूर्ववत्....।

"भन्ते! आज तक कितने कल्प बीत चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं?"

"भिक्षुओ! आज तक बहुत से कल्प बीत चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं। इन्हें वर्षों की ाना से नहीं नापा जा सकता।

"भन्ते! इस बात को किसी उपमा से समझाया जा सकता है?"

"हाँ, भिक्षुओ! समझाया जा सकता है। भिक्षुओ! यहाँ कोई चार श्रावक सौ वर्ष ायु वाले हों। वे प्रतिदिन एक लाख कल्पों का स्मरण करें। यों वे चारों श्रावक इस तरह रण करते करते एक दिन मर जायँगें; परन्तु उस कल्प की गणना तब भी पूर्ण न होगी। नी वर्ष संख्या वाले कल्प बीत चुके हैं, उन्हें सङ्ख्यापूर्वक गणना से नहीं समझाया जा कता; क्योंकि यह संसार अनादि है। अतः विवेकी पुरुष को चाहिये....पूर्ववत्....मुक्त ने का प्रयास करे॥

●

तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच— ''कीवबहुका नु खो, भो गोतम, कप्पा अब्भतीता अतिक्कन्ता'' ति?

''बहुका खो, ब्राह्मण, कप्पा अब्भतीता अतिक्कन्ता। ते न सुकरा सङ्खातुं— 'एत्तका कप्पा इति वा, एत्तकानि कप्पसतानि इति वा, एत्तकानि कप्पसहस्सानि इति वा, एत्तकानि कप्पसतसहस्सानि इति वा''' ति।

''सक्का पन, भो गोतम, उपमं कातुं'' ति? [R.184]

''सक्का, ब्राह्मणा,'' ति भगवा अवोच, ''सेय्यथापि, ब्राह्मण, यतो चायं गङ्गा नदी पभवति यत्थ च महासमुद्दं अप्पेति, या एतस्मिं अन्तरे वालिका सा न सुकरा सङ्खातुं—'एत्तका वालिका इति वा, एत्तकानि वालिकसतानि इति वा, एत्तकानि वालिकसहस्सानि इति वा, एत्तकानि वालिकसतसहस्सानि इति वा' ति। ततो बहुतरा खो, ब्राह्मण, कप्पा अब्भतीता अतिक्कन्ता। ते न सुकरा सङ्खातुं—'एत्तका कप्पा इति वा, एत्तकानि कप्पसतानि इति वा, एत्तकानि कप्पसहस्सानि इति वा, एत्तकानि कप्पसतसहस्सानि इति वा' ति। तं किस्स हेतु? अनमतग्गोयं, ब्राह्मण, [N.156, B.392] संसारो। पुब्बा कोटि न पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। एवं दीघरत्तं खो, ब्राह्मण, दुक्खं पच्चनुभूतं तिब्बं पच्चनुभूतं ब्यसनं पच्चनुभूतं, कटसी वड्ढिता। यावञ्चिदं, ब्राह्मण, अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं'' ति।

---

८. गङ्गासूत्र : : व्यतीत कल्प सङ्ख्या से अगणनीय

८. **राजगृह के** वेणुवन में साधना के समय....। तब कोई ब्राह्मण....भगवान् से यों पूछने लगा—''भो गौतम! कितने कल्प, अब तक, बीत चुके हैं?''

''ब्राह्मण! बहुत से कल्प बीत चुके हैं। उन्हें सङ्ख्या से गिनना सरल नहीं है।''

''भो गौतम! क्या यह बात आप किसी उपमा द्वारा मुझे समझा सकते हैं?''

''हाँ, अवश्य, ब्राह्मण! जैसे, ब्राह्मण! जहाँ से यह गङ्गा नदी निकली है और जहाँ यह समुद्र में जा कर मिली है, इस अन्तराल में इस नदी में जितनी बालू (रेत) है, वह गिनी नहीं जा सकती कि इस में सौ हजार लाख या इससे कितने अधिक बालुका कण हैं। उन बालुकाकणों से भी अधिक संसार के कल्प बीत चुके हैं, उन्हें हजार या लाख की सङ्ख्या में गिन कर नहीं समझाया जा सकता; क्योंकि यह संसार अनादि है।....अत: विवेकी पुरुष को....पूर्ववत्....मुक्त होने का प्रयास करना चाहिये''।

एवं वुत्ते, सो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०...उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥●

९. दण्डसुत्तं

९. ...सावत्थियं विहरति। "अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। सेय्यथापि, भिक्खवे, दण्डो उपरिवेहासं खित्तो सकिं पि मूलेन निपतति, सकिं पि मज्झेन निपतति, [R.185] सकिं पि अन्तेन निपतति; एवमेव खो, भिक्खवे, अविज्जानीवरणा सत्ता तण्हासंयोजना सन्धावन्ता संसरन्ता सकिं पि अस्मा लोका परं लोकं गच्छन्ति, सकिं पि परस्मा लोका इमं लोकं आगच्छन्ति। तं किस्स हेतु? अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो...पे०...अलं विमुच्चितुं" ति॥ ●

१०. पुग्गलसुत्तं

१०. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो...पे०...एकपुग्गलस्स, भिक्खवे, कप्पं सन्धावतो संसरतो सिया एवं महा अट्ठिकङ्कलो अट्ठिपुञ्जो अट्ठिरासि यथायं वेपुल्लो

तब ब्राह्मण ने कहा—"बहुत अच्छा कहा, भो गौतम! ....पूर्ववत्....मैं अपने समस्त जीवनपर्यन्त आपकी शरण में रहूँगा॥ ●

९. दण्डसूत्र : : संसार के आरम्भ का ज्ञान नहीं

९. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को यों उपदेश किया—

"भिक्षुओ! यह संसार अनादि है। ....पूर्ववत्....जैसे आकाश में फेंका हुआ डण्डा कभी मूल से, कभी मध्य भाग से, कभी अग्रभाग से नीचे पृथ्वी पर आ कर गिरता है; वैसे ही अविद्याग्रस्त, तृष्णा से बद्ध संसार में जीते मरते ये प्राणी कभी इस लोक से उस लोक में या कभी उस लोक से इस लोक में आते जाते रहते हैं। वह क्यों? वह इसलिये कि यह संसार अनादि है।....अतः विवेकी पुरुष को....विमुक्त होने का प्रयास करना चाहिये॥ ●

१०. पुद्गलसूत्र : : संसार के आरम्भ का ज्ञान नहीं

१०. राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर....। भिक्षुओं को भगवान् ने यह देशना की—"भिक्षुओ! कल्पपर्यन्त भिन्न भिन्न योनियों में उत्पन्न होने वाले एक ही पुरुष की उस उस जन्म की अस्थियाँ एकत्र कर ली जायँ तो उन की वह राशि वैपुल्य पर्वत जितनी ऊँची हो

पब्बतो, सचे [B.393] संहारको अस्स, सम्भतं च न विनस्सेय्य। तं किस्स हेतु? अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो...पे०...अलं विमुच्चितुं'' ति।

११. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

''एकस्सेकेन कप्पेन, पुग्गलस्सट्ठिसञ्चयो। [N.157]
सिया पब्बतसमो रासि, इति वुत्तं महेसिना॥
''सो खो पनायं अक्खातो, वेपुल्लो पब्बतो महा।
उत्तरो गिज्झकूटस्स, मगधानं गिरिब्बजे॥
''यतो च अरियसच्चानि, सम्मप्पञ्ञाय पस्सति।
दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥
''स सत्तक्खत्तुंपरमं, सन्धावित्वान पुग्गलो।
दुक्खस्सन्तकरो होति, सब्बसंयोजनक्खया''ति॥ [R.186]●

पठमो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

तिणकट्ठं च पठवी, अस्सु खीरं च पब्बतं।
सासपा सावका गङ्गा, दण्डो च पुग्गलेन चा ति॥ ●

जाय। वह क्यों? इस लिये कि यह संसार अनादि है। ....पूर्ववत्....अत: विवेकी पुरुष को इस संसार से विरक्त एवं विमुक्त होने का प्रयास करना चाहिये।''

११. इतना कह कर पुन: भगवान् यों बोले—

''इस संसार में जनमने मरने वाले एक ही पुरुष के शरीरों की अस्थियों का सञ्चय किया जाय तो वह राशि एक कल्प में वैपुल्य पर्वत से ऊँची हो जायगी'—ऐसा महर्षि ने कहा।

''यह वैपुल्य पर्वत मगध राज्य के गिरव्रज जनपद में गृध्रकूट पर्वत के उत्तर में स्थित है॥

''जो (साधक) दु:ख, दु:खसमुदय, दु:खनिरोध एवं दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा—इस आर्यसत्यचतुष्टय को प्रज्ञा द्वारा सम्यक् प्रकार से जान लेता है॥

''इस संसार में तदनन्तर, वह अधिक से अधिक सात वार जन्म ले कर, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग द्वारा सभी बन्धन क्षीण कर दु:ख से मुक्त हो जाता है॥ ●

प्रथम वर्ग समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. तृणकाष्ठ, २. पृथ्वी, ३. अश्रु, ४. क्षीर, ५. पर्वत, ६. सर्षप, ७. श्रावक, ८. गङ्गा, ९. दण्ड एवं १०. पुद्गल सूत्र॥ ●

२. दुतियो वग्गो

११. दुग्गतसुत्तं

१२. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति। तत्र खो...पे०...अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। यं, भिक्खवे, पस्सेय्याथ दुग्गतं दुरूपेतं निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—अम्हेहि पि एवरूपं पच्चनुभूतं इमिना दीघेन अद्धुना' ति। तं किस्स हेतु...पे०...यावञ्चिदं, भिक्खवे, अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं अलं विरज्जितुं अलं विमुच्चितुं ति॥ ●

१२. सुखितसुत्तं

१३. ...सावत्थियं विहरति। ''अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो...पे०...यं, [B.394] भिक्खवे, पस्सेय्याथ सुखितं सुसज्जितं, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अम्हेहि पि [R.187] एवरूपं पच्चनुभूतं इमिना दीघेन अद्धुना' ति। तं किस्स हेतु? अनमतग्गोयं, [N.158] भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न पञ्ञायति...पे०...अलं विमुच्चितुं'' ति॥●

१३. तिंसमत्तसुत्तं

१४. ...राजगहे विहरति वेळुवने। अथ खो तिंसमत्ता पावेय्यका भिक्खू सब्बे

द्वितीय वर्ग

११. दुर्गतसूत्र : : दुःखी के प्रति सहानुभूति

१२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''यह संसार अनादि है। इस का आरम्भ साधारण जन के लिये जानना सरल नहीं है....। भिक्षुओ! जब तुम लोक में किसी दुर्गत (धनाभाव से दुःखी) किसी मनुष्य को देखो तो कल्पना कर लो कि किसी जन्म में ऐसी स्थिति तुम्हारे सामने भी आयी होगी। वह किस कारण? क्योंकि यह संसार अनादि है। अतः विवेकी पुरुष के लिये यही उचित है कि वह इस संसार से विरक्त एवं विमुक्त होने का प्रयास करे॥ ●

१२. सुखितसूत्र : : सुखी के प्रति सहानुभूति

१३. श्रावस्ती में साधना के समय....। ''भिक्षुओ! यह संसार अनादि है। ....पूर्ववत्....। भिक्षुओ! जब तुम इस लोक में सुखी देखो तो समझ लो कि ऐसी स्थिति कभी तुम्हारे सामने भी आयी होगी। वह क्यों? क्योंकि यह संसार अनादि है। अतः विवेकी पुरुष के लिये उचित है....विमुक्त होने का प्रयास करे॥ ●

१३. त्रिंशन्मात्रसूत्र : : समुद्रजल से मानव रक्त का आधिक्य

१४. **राजगृह के** वेणुवन में साधना के समय....। उस समय पावा नगरी के रहने

आरञ्ञिका सब्बे पिण्डपातिका सब्बे पंसुकूलिका सब्बे तेचीवरिका सब्बे ससंयोजना येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। अथ खो भगवतो एतदहोसि—"इमे खो तिंसमत्ता पावेय्यका भिक्खू सब्बे आरञ्ञिका सब्बे पिण्डपातिका सब्बे पंसुकूलिका सब्बे तेचीवरिका सब्बे ससंयोजना। यन्नूनाहं इमेसं तथा धम्मं देसेय्यं यथा नेसं इमस्मिं येव आसने अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चेय्युं" ति। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, यं वा वो इमिना दीघेन अद्धुना सन्धावतं संसरतं सीसच्छिन्नानं लोहितं पस्सन्नं पग्घरितं, यं वा चतूसु महासमुद्देसु उदकं" ति?

"यथा खो मयं, भन्ते, भगवता धम्मं देसितं आजानाम, एतदेव, भन्ते, बहुतरं, यं नो इमिना दीघेन अद्धुना सन्धावतं संसरतं सीसच्छिन्नानं लोहितं पस्सन्नं [R.188] पग्घरितं, न त्वेव चतूसु महासमुद्देसु उदकं" ति।

"साधु साधु, भिक्खवे, साधु खो मे तुम्हे, भिक्खवे, एवं धम्मं देसितं आजानाथ। एतदेव, भिक्खवे, बहुतरं, यं वो इमिना दीघेन अद्धुना सन्धावतं संसरतं सीसच्छिन्नानं लोहितं पस्सन्नं पग्घरितं, न त्वेव चतूसु महासमुद्देसु उदकं। दीघरत्तं वो,

---

वाले तीस भिक्षु, जो कि सभी आरण्यक, पिण्डपातिक, पांशुकूलिक एवं त्रैचीवरिक परन्तु संयोजनों से आबद्ध थे, भगवान् के दर्शनार्थ वहाँ आये। आकर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे उन भिक्षुओं को देख कर भगवान् के ध्यान में यह आया कि इन भिक्षुओं को ऐसी देशना की जाय कि इस आसन पर बैठे ही बैठे इन का चित्त निर्विकार हो जाय। तब भगवान् ने उन को यों उपदेश किया—

"भिक्षुओ! यह संसार अनादि है। साधारण जन अविद्याग्रस्त होने के कारण इस संसार का आरम्भ नहीं जानते। तो क्या मानते हो भिक्षुओ! इस संसार में परस्पर कलह या युद्ध करने पर मनुष्यों के कटे हुए शिरों से निकल कर बहा हुआ रक्त अधिक है या इन चारों महासमुद्रों का जल?"

"भन्ते! हम तो आप के बताये....पूर्ववत्....चारों महासमुद्रों का जल ही अधिक है।"

"भिक्षुओ! तुम उचित ही कह रहे हो। धर्मज्ञान का एकमात्र यही उपाय है।....पुरुषों के मस्तक कटने से बहा हुआ रक्त....चिरकाल से हजारों गायों के....भैंसों के....भेड़ों

[B.395] भिक्खवे, गुन्नं सत्तं गोभूतानं सीसच्छिन्नानं लोहितं पस्सन्नं पग्घरितं, न त्वेव चतूसु महासमुद्देसु उदकं। दीघरत्तं वो, भिक्खवे, महिंसानं सतं महिंसभूतानं सीसच्छिन्नानं लोहितं पस्सन्नं पग्घरितं...पे०...दीघरत्तं वो, भिक्खवे, उरब्भानं सतं उरब्भभूतानं...पे०...अजानं सतं अजभूतानं...मिगानं सतं मिगभूतानं... कुक्कुटानं सतं [N.159] कुक्कुटभूतानं...सूकरानं सतं सूकरभूतानं...दीघरत्तं वो, भिक्खवे, चोरा गामघातका ति गहेत्वा सीसच्छिन्नानं लोहितं पस्सन्नं पग्घरितं। दीघरत्तं वो, भिक्खवे, चोरा पारिपन्थिका ति गहेत्वा सीसच्छिन्नानं लोहितं पस्सन्नं पग्घरितं। दीघरत्तं वो, भिक्खवे, चोरा पारदारिका ति गहेत्वा सीसच्छिन्नानं लोहितं पस्सन्नं पग्घरितं, न त्वेव चतूसु महासमुद्देसु उदकं। तं किस्स हेतु? अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो...पे०...अलं विमुच्चितुं'' ति।

१५. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति। [R.189] इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने तिंसमत्तानं पावेय्यकानं भिक्खूनं अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसू'' ति॥ •

१४. मातुसुत्तं

१६. ...सावत्थियं विहरति। ''अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो...पे०...न सो, भिक्खवे, सत्तो सुलभरूपो यो नमाताभूतपुब्बो इमिना दीघेन अद्धुना। तं किस्स हेतु? अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो...पे०...अलं विमुच्चितुं'' ति॥ •

के....बकरियों के....मृगों के....मुर्गों के....सूअरों के....अपराधी के रूप में पकड़े गये चोरों के कटे हुए....व्यभिचारियों के मस्तकों से बहा हुआ रक्त ही अधिक है, न कि इन चारों महासमुद्रों का जल। इस में कारण यही है कि यह संसार अनादि है, अत: कह नहीं सकते कि कितने असंख्य प्राणियों के कटे मस्तकों से कितना रक्त बह चुका है। अत: विवेकी पुरुष के लिये यही उचित है कि वह इस संसार से विरक्त एवं विमुक्त होने का प्रयास करे।''

१५. भगवान् ने यह कहा। प्रसन्न होकर भिक्षुओं ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया। इस उपदेश को सुनते ही उन पावावासी भिक्षुओं का चित्त आश्रवों से विमुक्त हो गया॥ •

१४. मातृसूत्र : :जो माता न बना हो-ऐसा प्राणी असम्भव

१६. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! यह संसार अनादि है।....भिक्षुओ! यह सम्भव नहीं है कि इस संसार में जन्म ले कर कोई प्राणी कभी माता न बना हो। ....पूर्ववत्....विमुक्त होने का प्रयास करे''॥

१५. पितुसुत्तं

१७. ...सावत्थियं विहरति। ''अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो...पे०...न सो, भिक्खवे, सत्तो सुलभरूपो यो नपिताभूतपुब्बो...पे०...अलं विमुच्चितुं'' ति॥ ●

१६. भातुसुत्तं

१८. ...सावत्थियं विहरति...पे०...न सो, भिक्खवे, सत्तो सुलभरूपो यो नभाताभूतपुब्बो...पे०...अलं विमुच्चितुं ति॥ ●

१७. भगिनिसुत्तं

१९. ...सावत्थियं विहरति...पे०...न सो, भिक्खवे, सत्तो सुलभरूपो यो [B.396] नभगिनिभूतपुब्बो...पे०...अलं विमुच्चितुं ति॥ ●

१८. पुत्तसुत्तं

२०. ...सावत्थियं विहरति ...पे०... न सो, भिक्खवे, सत्तो [N.160,R.190] सुलभरूपो यो नपुत्तभूतपुब्बो ...पे०... अलं विमुच्चितुं ति॥ ●

१९. धीतुसुत्तं

२१. ...सावत्थियं विहरति। ''अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। न सो, भिक्खवे, सत्तो सुलभरूपो यो न धीताभूतपुब्बो इमिना दीघेन अद्धुना। तं किस्स हेतु?

---

१५. पितृसूत्र : **:जो पिता न बना हो-ऐसा प्राणी असम्भव**

१७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। भिक्षुओ! यह संसार अनादि है।....भिक्षुओ! यह सम्भव नहीं है कि इस संसार में जन्म ले कर कोई प्राणी कभी पिता न बना हो। ....पूर्ववत्....। विमुक्त होने का प्रयास करे॥ ●

१६. भ्रातृसूत्र : **:जो भ्राता न बना हो-ऐसा प्राणी असम्भव**

१८. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ....कोई प्राणी कभी भ्राता न बना हो.... ॥ ●

१७. भगिनिसूत्र : **:जो बहन न बना हो-ऐसा प्राणी असम्भव**

१९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ....कोई प्राणी कभी बहन न बना हो.... ॥ ●

१८. पुत्रसूत्र : **:जो पुत्र न बना हो-ऐसा प्राणी असम्भव**

२०. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ....कोई प्राणी पुत्र न बना हो.... ॥ ●

१९. धीता(पुत्री)सूत्र : : **जो कभी पुत्री न बना हो-यह असम्भव है**

२१. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। यह संसार अनादि है। अविद्याग्रस्त पुरुषों के

अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। एवं दीघरत्तं वो, भिक्खवे, दुक्खं पच्चनुभूतं तिब्बं पच्चनुभूतं ब्यसनं पच्चनुभूतं, कटसी वड्ढिता। यावञ्चिदं, भिक्खवे, अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं'' ति॥

२०. वेपुल्लपब्बतसुत्तं

२२. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। भूतपुब्बं, भिक्खवे, इमस्स वेपुल्लस्स पब्बतस्स 'पाचीनवंसो' त्वेव समञ्ञा उदपादि। तेन खो पन, भिक्खवे, समयेन [R.191] मनुस्सानं 'तिवरा' त्वेव समञ्ञा उदपादि। तिवरानं, भिक्खवे, मनुस्सानं चत्तारीस वस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। तिवरा, भिक्खवे, मनुस्सा पाचीनवंसं पब्बतं चतूहेन आरोहन्ति, चतूहेन ओरोहन्ति। तेन खो पन, भिक्खवे, समयेन ककुसन्धो [B.397] भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उप्पन्नो होति। ककुसन्धस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स विधुरसञ्जीवं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। [N.161] पस्सथ, भिक्खवे, सा चेविमस्स पब्बतस्स समञ्ञा अन्तरहिता, ते च मनुस्सा

लिये इस का आरम्भ जानना सरल नहीं है। भिक्षुओ! ऐसा प्राणी मिलना बहुत कठिन है जो कभी किसी जन्म में किसी की पुत्री न बना हो। वह क्यों? वह इस लिये कि यह संसार अनादि है। इस का आरम्भ जानना....पूर्ववत्....। अत: विवेकी पुरुष को इन संस्कारों से विरक्त एवं विमुक्त होने का प्रयास करना चाहिये॥ •

२०. वैपुल्यपर्वत : : वैपुल्य पर्वत की प्राचीनता

२२. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह** के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने उपस्थित भिक्षुओं को यह उपदेश किया था—

''यह संसार अनादि है। इस का आरम्भ साधारण जनों के लिये, जो कि अविद्याग्रस्त एवं तृष्णासक्त हैं, जानना असम्भव है। भिक्षुओ! पहले कभी इस वैपुल्य पर्वत की 'प्राचीनवंश' इस नाम से प्रसिद्धि थी। उस समय मनुष्य 'तिवर' कहे जाते थे। भिक्षुओ! इन तिवरों की आयु चालीस हजार वर्ष मानी जाती थी। वे तिवर इस प्राचीनवंश पर्वत पर चार दिन में चढ पाते थे तथा चार दिन में उतरते थे। भिक्षुओ! उस समय ककुसन्ध भगवान् (बुद्ध) इस लोक में अवतरित हुए थे। उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ककुसन्ध

कालङ्कता, सो च भगवा परिनिब्बुतो। एवं अनिच्चा, भिक्खवे, सङ्खारा; एवं अद्धुवा, भिक्खवे, सङ्खारा; एवं अनस्सासिका, भिक्खवे, सङ्खारा। यावञ्चिदं, भिक्खवे, अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं। (१)

"भूतपुब्बं, भिक्खवे, इमस्स वेपुल्लस्स पब्बतस्स 'वङ्कको' त्वेव समञ्ञा उदपादि। तेन खो पन, भिक्खवे, समयेन मनुस्सानं 'रोहितस्सा' त्वेव समञ्ञा उदपादि। रोहितस्सानं, भिक्खवे, मनुस्सानं तिंसवस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। रोहितस्सा, भिक्खवे, मनुस्सा वङ्ककं पब्बतं तीहेन आरोहन्ति, तीहेन ओरोहन्ति। तेन खो पन, भिक्खवे, समयेन कोणागमनो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उप्पन्नो होति। कोणागमनस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स भिय्योसुत्तरं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। पस्सथ, भिक्खवे, सा चेविमस्स पब्बतस्स समञ्ञा अन्तरहिता, ते च मनुस्सा कालङ्कता, सो च भगवा परिनिब्बुतो। एवं अनिच्चा [R.192] भिक्खवे सङ्खारा...पे०...अलं विमुच्चितुं। (२)

"भूतपुब्बं, भिक्खवे, इमस्स वेपुल्लस्स पब्बतस्स 'सुपस्सो' त्वेव समञ्ञा उदपादि। तेन खो पन, भिक्खवे, समयेन मनुस्सानं 'सुप्पिया' त्वेव समञ्ञा उदपादि। सुप्पियानं, भिक्खवे, मनुस्सानं वीसतिवस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि। सुप्पिया,

---

के विधुर एवं सञ्जीव नामक दो अग्रश्रावक थे। भिक्षुओ! देखो, उस समय का इस पर्वत नाम भी विलुप्त हो गया, उस समय के मनुष्य भी कालकवलित हो गये। वे भगवान् (ककुसन्ध) भी परिनिर्वृत हो गये। भिक्षुओ! देखा! ये संस्कार कितने अनित्य हैं, कितने विनाशशील (अध्रुव) तथा आश्वासरहित हैं। अत: विवेकी पुरुष को चाहिये कि वह सभी संस्कारों के प्रति उपेक्षा एवं वैराग्य अपने मन में लावे तथा इन से विमुक्त होने का प्रयास करे। (१)

भिक्षुओ! उस के बाद, पहले कभी इसी वैपुल्य पर्वत का नाम 'वङ्कक' प्रसिद्ध हुआ। उस समय मनुष्य 'रोहिताश्व' कहलाते थे। इन रोहिताश्व मनुष्यों की आयु तीस हजार वर्ष होती थी। ये मनुष्य उस वङ्कक पर्वत पर तीन दिन में चढते थे तथा तीन दिन में ही उतरते थे। उस समय कोणागमन नामक भगवान् बुद्ध इस लोक में अवतरित हुए थे। इनके अग्रश्रावकयुगल का नाम भिय्यो और सूत्तर था। देखो, भिक्षुओ! उस पर्वत का वह नाम भी समय पा कर विलुप्त हो गया, उस समय के लोग भी कालकवलित हो गये, यहाँ तक कि भगवान् कोणागमन सम्यक्सम्बुद्ध का भी परिनिर्वाण हो गया। भिक्षुओ! यह सब संस्कारों की अनित्यता की महिमा है....पूर्ववत्....विमुक्त होने का प्रयास करे। (२)

"भिक्षुओ! पहले कभी इसी वैपुल्य पर्वत का नाम 'सुपार्श्व' भी था। उस समय के

भिक्खवे, मनुस्सा सुपस्सं पब्बतं द्वीहेन आरोहन्ति, द्वीहेन ओरोहन्ति। तेन खो पन, भिक्खवे, समयेन कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उप्पन्नो होति। कस्सपस्स, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स तिस्सभारद्वाजं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। पस्सथ, भिक्खवे, सा चेविमस्स पब्बतस्स समञ्ञा अन्तरहिता, ते च मनुस्सा कालङ्कता, सो च भगवा परिनिब्बुतो। एवं अनिच्चा भिक्खवे सङ्खारा; एवं अद्धुवा, भिक्खवे, सङ्खारा...पे०...अलं विमुच्चितुं। (३)

[B.398, N.162] ''एतरहि खो पन, भिक्खवे, इमस्स वेपुल्लस्स पब्बतस्स 'वेपुल्लो' त्वेव समञ्ञा उदपादि। एतरहि खो पन, भिक्खवे, इमेसं मनुस्सानं 'मागधका' त्वेव समञ्ञा उदपादि। मागधकानं, भिक्खवे, मनुस्सानं अप्पकं आयुप्पमाणं परित्तं लहुकं; यो चिरं जीवति सो वस्ससतं अप्पं वा भिय्यो। मागधका, भिक्खवे, मनुस्सा वेपुल्लं पब्बतं मुहुत्तेन आरोहन्ति मुहुत्तेन ओरोहन्ति। एतरहि खो पनाहं, भिक्खवे, अरहं सम्मासम्बुद्धो लोके उप्पन्नो। मय्हं खो पन, भिक्खवे, सारिपुत्तमोग्गल्लानं नाम सावकयुगं अग्गं भद्दयुगं। भविस्सति, भिक्खवे, सो समयो या अयञ्चेविमस्स पब्बतस्स समञ्ञा [R.193] अन्तरधायिस्सति, इमे च मनुस्सा कालं करिस्सन्ति, अहं च परिनिब्बायिस्सामि। एवं अनिच्चा, भिक्खवे, सङ्खारा; एवं अद्धुवा, भिक्खवे, सङ्खारा; एवं

मनुष्य 'सुप्रिय' कहलाते थे। भिक्षुओ! इन सुप्रिय मनुष्यों की आयु बीस हजार वर्ष होती थी। भिक्षुओ! ये सुप्रिय मनुष्य इस सुपार्श्व पर्वत पर दो दिन में चढते थे, तथा दो दिन में ही उतर पाते थे। उस समय भगवान् काश्यप सम्यक्सम्बुद्ध थे, तथा इन के अग्रश्रावकयुगल तिष्य एवं भारद्वाज नाम से प्रसिद्ध थे। देखो, भिक्षुओ! इन संस्कारों के अनित्यत्व एवं अध्रुवत्व की महिमा कि इस पर्वत का वह सुपार्श्व नाम भी विलुप्त हो गया, वे सुप्रिय मनुष्य भी काल के गाल में समा गये, वे भगवान् काश्यप सम्यक्सम्बुद्ध भी समय आने पर परिनिर्वृत हो गये। ये संस्कार ऐसे अनित्य हैं! अध्रुव हैं! अतः विवेकी पुरुष को चाहिये वह इन संस्कारों के प्रति ग्लानि तथा वैराग्य युक्त रहे तथा वह इन से स्वयं को विमुक्त करने का सतत प्रयास करे। (३)

भिक्षुओ! आज कल इस वैपुल्य पर्वत का नाम 'वैपुल्य' है। इस समय यहाँ के मनुष्य 'मागध' कहलाते हैं। इन मागध मनुष्यों की आयु बहुत अल्प है। इन में कोई बहुत अधिक जीता है तो वह सौ वर्ष जीता है या उससे भी कम। ये मागधक मनुष्य इस वैपुल्य पर्वत पर मुहूर्त मात्र में चढ भी जाते हैं उतर भी जाते हैं। इस समय मैं सम्यक्सम्बुद्ध हूँ। मेरे भी सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन नामक दो अग्रश्रावक हैं। भिक्षुओ! एक समय आयगा कि इस पर्वत का यह नाम भी विलुप्त हो जायगा, ये मनुष्य भी कालकवलित हो जायँगे,

अनस्सासिका, भिक्खवे, सङ्खारा। यावञ्चिदं, भिक्खवे, अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं'' ति। (४)

२३. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

''पाचीनवंसो तिवरानं, रोहितस्सान वङ्कको।
सुप्पियानं सुपस्सो ति, मागधानं च वेपुल्लो॥
अनिच्चा वत सङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमे सुखो'' ति॥ •

दुतियो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

दुग्गतं सुखितञ्चेव, तिंस मातापितेन च।
भाता भगिनी पुत्तो च, धीता वेपुल्लपब्बतं॥

अनमतग्गसंयुत्तं समत्तं॥

मैं भी परिनिर्वृत हो जाऊँगा। यह है इन अनित्य, विनाशशील संस्कारों का माहात्म्य! अत: विवेकी पुरुष के लिये यही उचित होगा कि वह इन संस्कारों के प्रति निर्वेद (ग्लानि, उपेक्षा) रखे, वैराग्ययुक्त रहे तथा स्वयं इन से सर्वथा विमुक्त होने का प्रयास करे''॥ (४)

भगवान् ने ऐसा कहते हुए यह भी कहा—

''तिवरों के समय यह वैपुल्य पर्वत 'प्राचीनवंश' कहलाता था, रोहिताश्वों के समय 'वङ्कक'। सुप्रियों के समय 'सुपार्श्व' एवं मागधकों के समय 'वैपुल्य' कहलाने लगा॥

(क्यों कि) ''ये संस्कार अनित्य हैं जन्म (उत्पाद) एवं मरण (व्यय=नाश) स्वभाव वाले हैं। ये उत्पन्न हो हो कर निरुद्ध (नष्ट) होते रहते हैं। (अत:) इन का व्युपशम (शान्त रखना) ही सुखप्रद है''॥

द्वितीय वर्ग समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची— १. दुर्गत, २. सुखित, ३. त्रिशन्मात्र सूत्र, ४. मातृसूत्र, ५. पितृसूत्र, ६. भ्रातृसूत्र, ७. भगिनीसूत्र, ८. पुत्रसूत्र, ९. पुत्रीसूत्र, एवं १०. वैपुल्यसूत्र॥

अनमृताग्रसंयुक्त समाप्त॥

१६. कस्सपसंयुत्तं

१. सन्तुट्ठसुत्तं

[N.163, B.399, R.194] १. ...सावत्थियं विहरति। "सन्तुट्ठायं, भिक्खवे, कस्सपो इतरीतरेन चीवरेन, इतरीतरचीवरसन्तुट्ठिया च वण्णवादी; न च चीवरहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जति; अलद्धा च चीवरं न परितस्सति; लद्धा च चीवरं अगधितो अमुच्छितो अनज्झापन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति।

"सन्तुट्ठायं, भिक्खवे, कस्सपो इतरीतरेन पिण्डपातेन, इतरीतरपिण्डपात-सन्तुट्ठिया च वण्णवादी; न च पिण्डपातहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जति; अलद्धा च पिण्डपातं न परितस्सति; लद्धा च पिण्डपातं अगधितो अमुच्छितो अनज्झापन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति।

"सन्तुट्ठायं, भिक्खवे, कस्सपो इतरीतरेन सेनासनेन, इतरीतरसेनासनसन्तुट्ठिया च वण्णवादी; न च सेनासनहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जति; अलद्धा च सेनासनं न परितस्सति; लद्धा च सेनासनं अगधितो अमुच्छितो अनज्झापन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति।

---

१६. काश्यपसंयुक्त

१. सन्तुष्टसूत्र : : **प्राप्त चीवर आदि से ही सन्तोष**

श्रावस्ती में साधना के समय....। "भिक्षुओ! यह काश्यप जिस किसी प्राप्त चीवर से सन्तुष्ट रहता है, जिस किसी प्राप्त चीवर से सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करता है। किसी विशिष्ट चीवर की प्राप्तिहेतु अनुचित अन्वेषण में नहीं लगता; वैसा चीवर प्राप्त न होने पर परित्रस्त (खिन्न) नहीं होता, तथा वैसा चीवर मिलने पर, उस में किसी प्रकार का लोभ लालच किये विना, उस के आदीनव (दोष) देखते हुए उस के त्याग की भावना (प्रज्ञा) के साथ उस (चीवर) का उपभोग करता है। (१)

"भिक्षुओ! यह काश्यप जिस किसी प्राप्त पिण्डपात (भिक्षान्न) से सन्तुष्ट रहता है, जिस किसी प्राप्त पिण्डपात से सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करता है। किसी विशिष्ट पिण्डपात की प्राप्तिहेतु अनुचित अन्वेषण में नहीं लगता; वैसा पिण्डपात न प्राप्त होने पर परित्रस्त (खिन्न) नहीं होता तथा वैसा पिण्डपात प्राप्त हो जाने पर उसमें लोभ लालच किये विना, उस के आदीनव (दोष) देखते हुए, उस के त्याग की भावना (प्रज्ञा) के साथ उस पिण्डपात का उपभोग करता है। (२)

"सन्तुट्ठायं, भिक्खवे, कस्सपो इतरीतरेन गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेन, इतरीतरगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारसन्तुट्ठिया च वण्णवादी; न च गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जति; अलद्धा च गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं न परितस्सति; लद्धा च गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं अगधितो अमुच्छितो अनज्झापन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति।

"तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं- सन्तुट्ठा भविस्साम इतरीतरेन चीवरेन, इतरीतरचीवरसन्तुट्ठिया च वण्णवादिनो; न च चीवरहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं [R.195] आपज्जिस्साम; अलद्धा च चीवरं न च परितस्सिस्साम; लद्धा च चीवरं [N.164] अगधिता अमुच्छिता अनज्झापन्ना आदीनवदस्साविनो निस्सरणपञ्ञा परिभुञ्जिस्साम'।

(एवं सब्बं कातब्बं।)

"'सन्तुट्ठा भविस्साम इतरीतरेन पिण्डपातेन...पे०...सन्तुट्ठा भविस्साम [B.400] इतरीतरेन सेनासनेन...पे०...सन्तुट्ठा भविस्साम इतरीतरेन गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेन, इतरीतरगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारसन्तुट्ठिया च वण्णवादिनो; न च गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जिस्साम अलद्धा च गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं न परितस्सिस्साम; लद्धा च गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं अगधिता अमुच्छिता अनज्झापन्ना आदीनवदस्साविनो निस्सरणपञ्ञा परिभुञ्जिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं। कस्सपेन वा हि वो, भिक्खवे, ओवदिस्सामि यो वा पनस्स कस्सपसदिसो, ओवदितेहि च पन वो तथत्ताय पटिपज्जितब्बं" ति॥

●

"भिक्षुओ! यह काश्यप जिस किसी प्राप्त शयनासन (बिछौना) से ही सन्तुष्ट रहता है....पूर्ववत्....शयनासन का उपभोग करता है। (३)

"भिक्षुओ! यह काश्यप जिस किसी ग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कार (रोगनिवारक औषध) से सन्तुष्ट रहता है....पूर्ववत्....ग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कार का उपभोग करता है। (४)

"अत: भिक्षुओ! तुम्हें भी यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—हम जिस किसी प्राप्त चीवर से सन्तुष्ट रहेंगे तथा सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करेंगे। जिस किसी प्राप्त पिण्डपात से सन्तुष्ट रहेंगे तथा सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करेंगे। जिस किसी प्राप्त शयनासन से सन्तुष्ट रहेंगे तथा सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करेंगे। जिस किसी प्राप्त ग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कार से सन्तुष्ट रहेंगे तथा सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करेंगे। ....पूर्ववत्....*[ऊपर की तरह विस्तार कर लें।]* भिक्षुओ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये। भिक्षुओ! मैं तुम्हें यह उपदेश भले ही काश्यप

२. अनोत्तप्पीसुत्तं

२. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा च महाकस्सपो आयस्मा च सारिपुत्तो बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा महाकस्सपो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महाकस्सपेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं महाकस्सपं एतदवोच— "वुच्चति हिदं, आवुसो कस्सप, अनातापी अनोत्तप्पी अभब्बो सम्बोधाय अभब्बो निब्बानाय अभब्बो अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय; आतापी च खो ओत्तप्पी [R.196] भब्बो सम्बोधाय भब्बो निब्बानाय भब्बो अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाया ति।

"कित्तावता नु खो, आवुसो, अनातापी होति अनोत्तप्पी अभब्बो सम्बोधाय अभब्बो निब्बानाय अभब्बो अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय; कित्तावता च पनावुसो आतापी होति ओत्तप्पी भब्बो सम्बोधाय भब्बो निब्बानाय भब्बो अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाया" ति?

तथा काश्यप के समान दूसरे किसी भिक्षु के सङ्केत करते हुए कर रहा हूँ; परन्तु उपदेश करने के बाद तुम लोगों को इसे अपने लिये ही समझना चाहिये तथा इसका पालन करना चाहिये॥

२. अनवत्रपसूत्र : : उद्योगी एवं सङ्कोची को ज्ञानप्राप्ति

२. ऐसा मैने सुना है। एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप एवं आयुष्मान् सारिपुत्र वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब आयुष्मान् सारिपुत्र (किसी दिन) सायङ्काल ध्यानभावना से उठ कर आयुष्मान् महाकाश्यप के पास पहुँचे। पहुँच कर उन्होंने आयुष्मान् महाकाश्यप से कुशलक्षेम पूछा। तदनन्तर, वे एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे आयुष्मान् सारिपुत्र ने आयुष्मान् महाकाश्यप से यों पूछा—"आयुष्मन् महाकाश्यप! यह कहा जाता है कि अनुद्योगी (आलसी) तथा पाप करने में सङ्कोचरहित (निर्लज्ज) साधक सम्बोधि के लिये, निर्वाण के लिये तथा अद्वितीय योगक्षेम की प्राप्ति के लिये अयोग्य है। अपि तु उद्योगी तथा पापभीरु या निर्भय साधक ही सम्बोधि, निर्वाण एवं अनुत्तम योगक्षेम की अधिगति में समर्थ हो सकता है।

"यहाँ मेरी जिज्ञासा यही है कि कैसा साधक उक्त कर्मों के लिये अनुद्योगी तथा सङ्कोचरहित कहलाता है और कैसा साधक उक्त कर्मों की अधिगतिहेतु उद्योगी तथा पापभीरु कहलाता है?"

"इधावुसो, भिक्खु 'अनुप्पन्ना मे पापका अकुसला धम्मा उप्पज्जमाना [N.165] अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति न आतप्पं करोति, 'उप्पन्ना मे पापका अकुसला धम्मा अप्पहीयमाना अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति न आतप्पं करोति, 'अनुप्पन्ना मे कुसला [B.401] धम्मा नुप्पज्जमानाअनत्थाय संवत्तेय्युं' ति न आतप्पं करोति, 'उप्पन्ना मे कुसला धम्मा निरुज्झमाना अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति न आतप्पं करोति। एवं खो, आवुसो, अनातापी होति।

"कथं चावुसो, अनोत्तप्पी होति। इधावुसो, भिक्खु 'अनुप्पन्ना मे पापका अकुसला धम्मा उप्पज्जमाना अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति न ओत्तप्पति, 'उप्पन्ना मे पापका अकुसला धम्मा अप्पहीयमाना अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति न ओत्तप्पति, 'अनुप्पन्ना मे कुसला धम्मा नुप्पज्जमाना अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति न ओत्तप्पति, 'उप्पन्ना मे [R.197] कुसला धम्मा निरुज्झमाना अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति न ओत्तप्पति। एवं खो, आवुसो, अनोत्तप्पी होति। एवं खो, आवुसो, अनातापी अनोत्तप्पी अभब्बो सम्बोधाय अभब्बो निब्बानाय अभब्बो अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय।

"कथं चावुसो, आतापी होति? इधावुसो, भिक्खु 'अनुप्पन्ना मे पापका अकुसला धम्मा उप्पज्जमाना अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति आतप्पं करोति, 'उप्पन्ना मे पापका

(महा०—) "आयुष्मन्! यहाँ कोई भिक्षु—'मेरे अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हुए, मेरे लिये अनर्थ के हेतु न बन जायँ' एतदर्थ प्रयास नहीं करता; न 'उत्पन्न हुए पापमय अकुशल धर्म यदि प्रहीण न हुए तो ये मेरे लिये अनर्थ के कारण न बन जायँ' एतदर्थ ही प्रयास करता है; वह 'मेरे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न न होते हुए मेरे लिये अनर्थ के कारण न बन जायँ' एतदर्थ भी प्रयास नहीं करता; ऐसा साधक, आयुष्मन्! 'अनुद्योगी' (अनातापी) कहलाता है।

"और, आयुष्मन्! कोई साधक कैसे 'अनवत्रप' (पाप करने में निर्भय) होता है? आयुष्मन्! यहाँ कोई भिक्षु—'मेरे अनुत्पन्न पापमय अकुशल उत्पन्न होते हुए, मेरे लिये अनर्थ के हेतु न बन जायँ'—एतदर्थ भय नहीं मानता, या 'उत्पन्न पापमय अकुशल धर्म प्रहीण न हुए तो ये मेरे लिये अनर्थ के कारण न बन जायँ'—एतदर्थ भी भय नहीं मानता; तथा 'मेरे उत्पन्न कुशल धर्म यदि निरुद्ध हो गये तो मेरे लिये अनर्थ के कारण बन जायँगे' इसमें भी भय नहीं मानता—ऐसा साधक अनुद्योगी एवं पाप करने में निर्भय होता हुआ सम्बोधि, निर्वाण तथा अनुत्तर योगक्षेम की अधिगति के लिये अयोग्य ही होता है।

"अथ च, आयुष्मन्! कोई 'आतापी' (उद्योगी) कैसे कहलाता है? आयुष्मन्! यहाँ कोई भिक्षु 'मेरे अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हुए, मेरे लिये अनर्थ के

अकुसला धम्मा अप्पहीयमाना अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति आतप्पं करोति, अनुप्पन्ना मे कुसला धम्मा ...पे०...आतप्पं करोति। एवं खो, आवुसो, आतापी होति।

"कथं चावुसो, ओत्तप्पी होति? इधावुसो, भिक्खु 'अनुप्पन्ना मे पापका अकुसला धम्मा उप्पज्जमाना अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति ओत्तप्पति, 'उप्पन्ना मे पापका अकुसला धम्मा अप्पहीयमाना अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति ओत्तप्पति, 'अनुप्पन्ना मे कुसला धम्मा अनुप्पज्जमाना अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति ओत्तप्पति, 'उप्पन्ना मे कुसला धम्मा निरुज्झमाना अनत्थाय संवत्तेय्युं' ति ओत्तप्पति। एवं खो, आवुसो, ओत्तप्पी होति। एवं खो, आवुसो, आतापी ओत्तप्पी अभब्बो सम्बोधाय भब्बो निब्बानाय भब्बो अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाया" ति॥ •

३. चन्दूपमासुत्तं

३. सावत्थियं विहरति। "चन्दूपमा, भिक्खवे, कुलानि उपसङ्कमथ— [N.166, R.198, B.402] अपकस्सेव कायं, अपकस्स चित्तं, निच्चनवका कुलेसु अप्पगब्भा। सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो जरुदपानं वा ओलोकेय्य पब्बतविसमं वा

हेतु न बन जायँ'—एतदर्थ सतत उद्योग करता है; या 'उत्पन्न हुए अकुशल धर्म प्रहीण न होते हुए, मेरे लिये अनर्थ के हेतु न बन जायँ'—एतदर्थ सतत उद्योग करता है; या 'अनुत्पन्न मेरे कुशल धर्म निरुद्ध होते हुए मेरे लिये अनर्थ के कारण न बन जायँ'—एतदर्थ सतत उद्योग करता है—ऐसा साधक भिक्षु 'आतापी' कहलाता है।

"और आयुष्मन्! 'अवत्रपी' किसे कहते हैं? आयुष्मन्, यहाँ कोई भिक्षु 'मेरे अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हुए मेरे अनर्थ के हेतु न बन जायँ' एतदर्थ उन से भय मानता है; या 'उत्पन्न पापमय अकुशल धर्म प्रहीण न होते हुए मेरे लिये अनर्थ के कारण न बन जायँ'—एतदर्थ उन से भय मानता है; अथ वा 'मेरे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न न होते हुए मेरे अनर्थ के कारण न बन जायँ', या 'मेरे उत्पन्न कुशल धर्म निरुद्ध होते हुए मेरे अनर्थ के हेतु न बन जायँ'—एतदर्थ भय मानता है। आयुष्मन्! ऐसे भय मानने वाला साधक 'अवत्रपी' कहलाता है। आयुष्मन्! ऐसा उद्योगी एवं पापभीरु साधक ही सम्बोधि, निर्वाण एवं अद्वितीय योगक्षेम की प्राप्ति के योग्य (भव्य) होता है"॥ •

३. चन्द्रोपमसूत्र : : चन्द्रमा की तरह गृहस्थ घरों में गमन

३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! चन्द्रमा की तरह गृहस्थों के घरों में जाना चाहिये। अपने शरीर और चित्त पर नियन्त्रण रखते हुए सदा नवागन्तुक अतिथि की तरह अप्रगल्भ (निरभिमान) के समान वहाँ जाना चाहिये। भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष

नदीविदुग्गं वा अपकस्सेव कायं, अपकस्स चित्तं; एवमेव खो, भिक्खवे, चन्दूपमा कुलानि उपसङ्कमथअपकस्सेव कायं, अपकस्स चित्तं, निच्चनवका कुलेसु अप्पगब्भा।

"कस्सपो, भिक्खवे, चन्दूपमो कुलानि उपसङ्कमति—अपकस्सेव कायं, अपकस्स चित्तं, निच्चनवको कुलेसु अप्पगब्भो। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कथंरूपो भिक्खु अरहति कुलानि उपसङ्कमितुं" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा भगवंनेत्तिका भगवम्पटिसरणा। साधु वत, भन्ते, भगवन्तं येव पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती" ति।

अथ खो भगवा आकासे पाणिं चालेसि। "सेय्यथापि, भिक्खवे, अयं आकासे पाणि न सज्जति न गय्हति न बज्झति; एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि भिक्खुनो कुलानि उपसङ्कमतो कुलेसु चित्तं न सज्जति न गय्हति न बज्झति—'लभन्तु लाभकामा, पुञ्ञकामा करोन्तु पुञ्ञानी' ति; यथासकेन लाभेन अत्तमनो होति सुमनो, एवं परेसं लाभेन अत्तमनो होति सुमनो; एवरूपो खो, भिक्खवे, भिक्खु अरहति कुलानि उपसङ्कमितुं।

पुराने कूए, अपरिचित टेढी-मेढी नदी या विषम (ऊँचे नीचे) पर्वत पर अपने शरीर तथा चित्त पर नियन्त्रण रखते हुए जाता है; उसी तरह भिक्षु को चन्द्रमा के समान अपने शरीर तथा चित्त पर नियन्त्रण रखते हुए नवागन्तुक अपरिचित तथा निरभिमान के तुल्य बन कर गृहस्थ के घरों में जाना चाहिये।

"भिक्षुओ! मेरा यह शिष्य काश्यप गृहस्थों के घरों में, चन्द्रमा के तुल्य आचरण करता हुआ, प्रविष्ट होता है। वह उस समय नवागन्तुक अपरिचित एवं निरभिमान रहता हुआ अपने शरीर तथा चित्त पर नियन्त्रण रखता है। तो क्या मानते हो भिक्षुओ! भिक्षु को किस आचरण में गृहस्थों के घरों में प्रविष्ट होना चाहिये?"

"भन्ते! हम तो आप के बताने पर ही धर्म (कर्तव्य कर्म) को स्पष्ट रूप से समझ पाते है। अतः आप ही इस बात को भी हमें विशद रूप से समझावें।"

तब भगवान् ने अपना हाथ आकाश की तरफ उठाया और कहा—"जैसे भिक्षुओ! मेरा यह हाथ आकाश में न लगता है, न फँसता है, न उलझता है, उसी तरह गृहस्थों के घरों में जाता हुआ कोई भिक्षु उन घरों में न आसक्त हो, न अपना चित्त वहाँ कहीं लगावे, न उलझावे; अपि तु जिन गृहस्थों को लाभ करना होगा वे लाभ करेंगे, पुण्य करना होगा वे पुण्य करेंगे। जैसे वह अपने लाभ से सन्तुष्ट होता है, वैसे ही उस को दूसरों के लाभ से भी सन्तुष्ट रहना तथा प्रसन्न होना चाहिये। ऐसे विचारों वाला भिक्षु गृहस्थों के घरों में जाने के योग्य है।

"कस्सपस्स, भिक्खवे, कुलानि उपसङ्कमतो कुलेसु चित्तं न सज्जति न गय्हति न बज्झति—'लभन्तु लाभकामा, पुञ्ञकामा करोन्तु पुञ्ञानी' ति; यथासकेन लाभेन अत्तमनो होति सुमनो; एवं परेसं लाभेन अत्तमनो होति सुमनो।

[R.199] "तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कथंरूपस्स भिक्खुनो अपरिसुद्धा धम्मदेसना होति, कथंरूपस्स भिक्खुनो परिसुद्धा धम्मदेसना होती" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा भगवन्नेत्तिका भगवम्पटिसरणा। साधु वत, भन्ते, भगवन्तं येव पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती" ति।

"तेन हि, भिक्खवे, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति।

[N.167] "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु एवंचित्तो परेसं धम्मं देसेति—'अहो वत मे धम्मं सुणेय्युं, सुत्वा च पन धम्मं पसीदेय्युं, पसन्ना च मे पसन्नाकारं करेय्यु' ति; [B.403]
[B.403] एवरूपस्स खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अपरिसुद्धा धम्मदेसना होति।

"यो च खो, भिक्खवे, भिक्खु एवंचित्तो परेसं धम्मं देसेति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो

"भिक्षुओ! मेरे शिष्य काश्यप का चित्त गृहस्थों के घरों में जाते हुए न कहीं आसक्त होता है, न कहीं फँसता है, न कहीं बँधता (उलझता) है। 'लाभ चाहने वाले लाभ कमावें, पुण्य चाहने वाले पुण्य कमावें'—यही सोचता हुआ वह गृहस्थों के घरों में प्रविष्ट होता है। जैसे वह अपने यथाप्राप्त लाभ से सन्तुष्ट रहता है वैसे ही वह दूसरों के लाभ से प्रसन्न होता है।

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! कैसे भिक्षु द्वारा किया हुआ धर्मोपदेश कुछ भी शुद्ध नहीं होता? और कैसे भिक्षु का किया हुआ धर्मोपदेश सुपरिशुद्ध होता है?"

"भन्ते! हम तो आप के बताने पर ही.... पूर्ववत्.... आप ही विशद रूप से समझावें।"

"तो, भिक्षुओ! सुनो, ठीक से मन में बैठा लो। मैं बताता हूँ।"

"जैसी आज्ञा, भन्ते!" भिक्षुओं द्वारा ऐसा कहे जाने पर, भगवान् बोले—"भिक्षुओ! जो कोई भिक्षु ऐसा मन बना कर दूसरों को उपदेश देता है—'अरे! लोग मेरा धर्मोपदेश सुनें, सुन कर प्रसन्न हों, तथा अपनी प्रसन्नता मेरे सामने प्रकट करें।' ऐसे भिक्षु का धर्मोपदेश कुछ भी शुद्ध नहीं होता।

"और भिक्षुओ! जो भिक्षु ऐसा मन बना कर दूसरों को धर्मोपदेश करता है—

विञ्ञूही ति। अहो, वत मे धम्मं सुणेय्युं, सुत्वा च पन धम्मं आजानेय्युं, आजानित्वा च पन तथत्ताय पटिपज्जेय्युं' ति। इति धम्मसुधम्मतं पटिच्च परेसं धम्मं देसेति, कारुञ्ञं पटिच्च अनुद्दयं पटिच्च अनुकम्पं उपादाय परेसं धम्मं देसेति। एवरूपस्स खो, भिक्खवे, भिक्खुनो परिसुद्धा धम्मदेसना होति।

''कस्सपो, भिक्खवे, एवंचित्तो परेसं धम्मं देसेति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही ति। अहो, वत मे धम्मं सुणेय्युं, सुत्वा च पन धम्मं आजानेय्युं, आजानित्वा च पन [R.200] तथत्ताय पटिपज्जेय्युं' ति। इति धम्मसुधम्मतं पटिच्च परेसं धम्मं देसेति, कारुञ्ञं पटिच्च अनुद्दयं पटिच्च अनुकम्पं उपादाय परेसं धम्मं देसेति। कस्सपेन वा हि वो, भिक्खवे, ओवदिस्सामि यो वा पनस्स कस्सपसदिसो, ओवदितेहि च पन वो तथत्ताय पटिपज्जितब्बं'' ति॥

४. कुलूपकसुत्तं

४. ...सावत्थियं विहरति। ''तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कथंरूपो भिक्खु अरहति कुलूपको होतुं, कथंरूपो भिक्खु न अरहति कुलूपको होतुं'' ति?

भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...भगवा एतदवोच—

''यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु एवंचित्तो कुलानि उपसङ्कमति—'देन्तु येव

'भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म स्वाख्यात है, तत्काल फल देने वाला है, अकालिक है, प्रकट है, निर्वाण की तरफ ले जाने वाला है, विज्ञ जनों द्वारा अपने अन्तःकरण में जानने योग्य है। लोग मेरा धर्मोपदेश सुनें, सुन कर धर्म की गम्भीरता से परिचित हों, परिचित हो कर उसका अभ्यास (साधना) करें'। इस तरह वह धर्मोपदेश की उचित रीति से दूसरों को धर्मोपदेश करता है। करुणा से, दया से अनुकम्पा से दूसरों को धर्मबोधन करता है। ऐसे भिक्षु द्वारा कृत धर्मोपदेश ही वास्तविक एवं परिशुद्ध धर्मोपदेश करता है।

''भिक्षुओ! मेरा यह शिष्य काश्यप ऐसा ही मन बनाकर धर्मोपदेश करता है....पूर्ववत्....।

''भिक्षुओ! मैं तुम्हें यह उपदेश भले ही काश्यप या काश्यप के समान दूसरे किसी भिक्षु का सङ्केत करते हुए कर रहा हूँ, परन्तु उपदेश करने के बाद तुम लोगों को इसे अपने लिये ही समझना चाहिये तथा इसका पालन करना चाहिये॥

४. कुलोपगसूत्र : : गृहस्थ घरों में जाने योग्य भिक्षु

४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! कैसा भिक्षु गृहस्थों के घरों में जाने योग्य है?''

मे, मा नादंसु; बहुकञ्ञेव मे देन्तु, मा थोकं; पणीतञ्ञेव मे देन्तु, मा लूखं; सीघञ्ञेव मे देन्तु, मा दन्धं; सक्कच्चञ्ञेव मे देन्तु, मा असक्कच्चं' ति। तस्स चे, भिक्खवे, भिक्खुनो [N.168] एवंचित्तस्स कुलानि उपसङ्कमतो न देन्ति, तेन भिक्खु सन्दीयति; सो ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। थोकं देन्ति, नो बहुकं...पे०...लूखं देन्ति, नो पणीतं...दन्धं देन्ति, नो सीघं, तेन भिक्खु सन्दीयति; सो ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं [B.404] पटिसंवेदयति। असक्कच्चं देन्ति, नो सक्कच्चं; तेन भिक्खु सन्दीयति; सो [R.201] ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। एवरूपो खो, भिक्खवे, भिक्खु न अरहति कुलूपको होतुं।

''यो च खो, भिक्खवे, भिक्खु एवंचित्तो कुलानि उपसङ्कमति—'तं कुतेत्थ लब्भा परकुलेसु—देन्तु येव मे, मा नादंसु; बहुकञ्ञेव मे देन्तु, मा थोकं; पणीतञ्ञेव मे देन्तु, मा लूखं; दीघञ्ञेव मे देन्तु, मा दन्धं; सक्कच्चञ्ञेव मे देन्तु, मा असक्कच्चं' ति। तस्स चे, भिक्खवे, भिक्खुनो एवंचित्तस्स कुलानि उपसङ्कमतो न देन्ति; तेन भिक्खु न सन्दीयति; सो न ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। लूखं देन्ति, नो पणीतं; तेन भिक्खु न सन्दीयति; सो न ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। दन्धं देन्ति, नो सीघं; तेन भिक्खु न सन्दीयति; सो न ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। असक्कच्चं देन्ति, नो सक्कच्चं; तेन भिक्खु न सन्दीयति; सो न ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। एवरूपो खो, भिक्खवे, भिक्खु न अरहति कुलूपको होतुं।

''भन्ते! हम तो आप के द्वारा उद्बोधन किये जाने पर ही....पूर्ववत्....आप ही इस को स्पष्ट करने की कृपा करें।'' ....पूर्ववत्....।

भगवान् बोले—''भिक्षुओ! जो भिक्षु ऐसा मन बना कर गृहस्थों के घरों में प्रविष्ट होता है—'ये मुझे कुछ दान करें ही, ऐसा न हो कि ये मुझे कुछ भी न दें; मुझे अधिक से अधिक दें, ऐसा न हो कि ये मुझे अल्प मात्रा में ही दें। अच्छा रुचिकर ही मुझे दें, ऐसा न हो कि ये मुझे रुखा सूखा ही दे डालें; शीघ्रता से दें, ऐसा न हो कि धीरे धीरे अल्प मात्रा में दें; सत्कारपूर्वक दें, ऐसा न हो कि ये मुझे अपमान या उपेक्षापूर्वक कुछ देने लगें'। भिक्षुओ! ऐसा मन बना कर गृहस्थ के घरों में प्रविष्ट होने वाले उस भिक्षु को किसी घर से कुछ नहीं मिलता है तो वह खिन्न होता है, तथा उस खेद के कारण वह उन गृहस्थों के प्रति दुःख एवं दौर्मनस्य के भाव प्रकट करता है। इसी तरह अल्पमात्रा में देते हैं, अधिक नहीं, तो भी वह खिन्न....पूर्ववत्....। रूखा देते हैं, स्निग्ध (प्रणीत) नहीं देते तो भी....। धीरे धीरे देते हैं शीघ्रता से नहीं तो भी....। असत्कारपूर्वक देते हैं, सत्कारपूर्वक नहीं तो भी वह खिन्न होता है तथा उस खेद से वह उन (गृहस्थों) के प्रति दुःख एवं

"कस्सपो, भिक्खवे, एवंचित्तो कुलानि उपसङ्कमति—'तं कुतेत्थ लब्भा परकुलेसु—देन्तु येव मे, मा नादंसु; बहुकञ्ञेव मे देन्तु, मा थोकं; पणीतञ्ञेव मे देन्तु, मा लूखं; सीघञ्ञेव मे देन्तु, मा दन्धं; सक्कच्चञ्ञेव मे देन्तु, मा असक्कच्चं' ति। तस्स चे, भिक्खवे, कस्सपस्स एवंचित्तस्स कुलानि उपसङ्कमतो न देन्ति; तेन कस्सपो न सन्दीयति; सो न ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। थोकं देन्ति, नो बहुकं; तेन कस्सपो न सन्दीयति; सो न ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। लूखं देन्ति, नो पणीतं; तेन कस्सपो न सन्दीयति; सो न ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। दन्धं देन्ति, नो सीघं; तेन कस्सपो न सन्दीयति; सो न ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। असक्कच्चं देन्ति, नो सक्कच्चं; तेन कस्सपो न सन्दीयति; [N.169, R.202] सो न ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदयति। कस्सपेन वा हि वो, भिक्खवे, ओवदिस्सामि यो वा पनस्स कस्सपसदिसो। ओवदितेहि च पन वो तथत्ताय पटिपज्जितब्बं" ति॥ ●

५. जिण्णसुत्तं

५. एवं मे सुतं...पे०...राजगहे वेळुवने। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो [B.405]

दौर्मनस्य के भाव प्रकट करता है। ऐसा भिक्षु गृहस्थों के घरों में प्रवेश योग्य नहीं माना जाता।

"और भिक्षुओ! जो भिक्षु यह मन बना कर गृहस्थों के घरों में प्रविष्ट होता है—'दूसरे के घरों में जाने से क्या लाभ होगा! ये मुझे दें ही, ऐसा न हो कि ये मुझे न दें....पूर्ववत्....। इस तरह, भिक्षुओ! इस तरह का मन बना कर घरों में प्रविष्ट होने के बाद वे गृहस्थ उस भिक्षु को कुछ भी न दें तो भी यदि उस भिक्षु का चित्त खिन्न न हो तथा उस के कारण उसे दुःख दौर्मनस्य न हो तो ऐसा भिक्षु गृहस्थों के घरों में प्रवेशयोग्य होता है। रूखा देते हैं, स्निग्ध नहीं देते....पूर्ववत्....। ऐसा भिक्षु....प्रवेशयोग्य होता है।

"भिक्षुओ! (मेरा यह शिष्य) काश्यप गृहस्थों के घरों में प्रविष्ट होते समय यही मन बनाता है—'दूसरे के घरों में जाने से क्या लाभ होगा! गे इस घर के लोग ही मुझे दें, ऐसा न हो कि ये मुझे न दें....पूर्ववत्....। इस से काश्यप के मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता।

"भिक्षुओ! काश्यप या ऐसे ही किसी अन्य भिक्षु को सङ्केत कर मेरे द्वारा दिया गया उपदेश, उपदेश देने के बाद, वह भिक्षुमात्र के लिये भी मेरा आदेश (पालनीय) हो जाता है। अतः तुम सब को भी ऐसे आदेश का पालन करना चाहिये॥ ●

५. जीर्णसूत्र : : आरण्यक व्रत के लाभ

५. ऐसा मैंने सुना है....पूर्ववत्....**राजगृह** के वेणुवन में। तब आयुष्मान् महाकाश्यप....।

येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं महाकस्सपं भगवा एतदवोच—"जिण्णोसि दानि त्वं, कस्सप, गरुकानि च ते इमानि साणानि पंसुकूलानि निब्बसनानि। तस्मातिह त्वं, कस्सप, गहपतानि चेव चीवरानि धारेहि, निमन्तनानि च भुञ्जाहि, मम च सन्तिके विहराही" ति।

"अहं खो, भन्ते, दीघरत्तं आरञ्ञिको चेव आरञ्ञिकत्तस्स च वण्णवादी, पिण्डपातिको चेव पिण्डपातिकत्तस्स च वण्णवादी, पंसुकूलिको चेव पंसुकूलिकत्तस्स च वण्णवादी, तेचीवरको चेव तेचीवरिकत्तस्स च वण्णवादी, अप्पिच्छो चेव अप्पिच्छताय च वण्णवादी, सन्तुट्ठो चेव सन्तुट्ठिया च वण्णवादी, पविवित्तो चेव पविवेकस्स च वण्णवादी, असंसट्ठो चेव असंसग्गस्स च वण्णवादी, आरद्धविरियो चेव विरियारम्भस्स च वण्णवादी" ति।

"किं पन त्वं, कस्सप, अत्थवसं सम्पस्समानो दीघरत्तं आरञ्ञिको चेव आरञ्ञिकत्तस्स च वण्णवादी, पिण्डपातिको चेव...पे०...पंसुकूलिको चेव...तेचीवरिको चेव... अप्पिच्छो चेव...सन्तुट्ठो चेव...पविवित्तो चेव...असंसट्ठो चेव...आरद्धविरियो चेव विरियारम्भस्स च वण्णवादी" ति?

"द्वे ख्वाहं, भन्ते, अत्थवसे सम्पस्समानो दीघरत्तं आरञ्ञिको चेव आरञ्ञिकत्तस्स च वण्णवादी, पिण्डपातिको चेव...पे०...पंसुकूलिको चेव...तेचीवरिको चेव... [R.203] अप्पिच्छो चेव...सन्तुट्ठो चेव...पविवित्तो चेव...असंसट्ठो चेव...आरद्धविरियो चेव विरियारम्भस्स च वण्णवादी। अत्तनो च दिट्ठधम्मसुखविहारं सम्पस्समानो पच्छिमं

भगवान् यों बोले—"काश्यप! अब तुम वृद्ध हो चले हो, तुम्हारे द्वारा पहने हुए ये सण के वस्त्र तुम्हारे लिये भारी हैं। अत: अब तुम गृहस्थों के समान हल्के वस्त्र (चीवर) पहना करो, तथा उन के द्वारा दिये गये निमन्त्रण स्वीकार कर लिया करो और अब तुम चारिका न कर मेरे साथ ही रहा करो।"

"भन्ते! मैं तो बहुत समय से आरण्यकव्रती हूँ, तथा आरण्यक व्रत की प्रशंसा करता रहता हूँ। पिण्डपातिकव्रती....पांसुकूलिकव्रती....त्रैचीवरिक रहा हूँ....अल्पेच्छ (सन्तोषव्रती) रहा हूँ....एकान्तसेवी रहा हूँ....समाज से असंसृष्ट (दूर) रहा हूँ....साधना में सतत उद्योगी रहा हूँ साथ ही ऐसे उद्योग का प्रशंसक भी रहा हूँ"।

"काश्यप! तुम किस प्रयोजन को ले कर इतने समय आरण्यक....पिण्डपातिक....पांसुकूलिक....अल्पेच्छु....सन्तोषव्रत....एकान्तसेवाव्रत....उद्योगव्रत के प्रशंसक रहे हो?"

"भन्ते! मैं दो प्रयोजनों को लेकर आरण्यक....पूर्ववत्....उद्योगव्रत का प्रशंसक

च जनतं अनुकम्पमानो—'अप्पेव नाम पच्छिमा जनता दिट्ठानुगतिं [N.170] आपज्जेय्युं'। ये किर ते अहेसुं बुद्धानुबुद्धसावका ते दीघरत्तं आरञ्ञिका चेव अहेसुं आरञ्ञिकत्तस्स च वण्णवादिनो ...पे०...पिण्डपातिका चेव अहेसुं...पे०...पंसुकूलिका चेव अहेसुं...तेचीवरिका चेव अहेसुं...अप्पिच्छा चेव अहेसुं...सन्तुट्ठा चेव [B.406] अहेसुं...पविवित्ता चेव अहेसुं...असंसट्ठा चेव अहेसुं...आरद्धविरिया चेव अहेसुं विरियारम्भस्स च वण्णवादिनो' ति। ते तथत्ताय पटिपज्जिस्सन्ति, तेसं तं भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखाय।

"इमे ख्वाहं, भन्ते, द्वे अत्थवसे सम्पस्समानो दीघरत्तं आरञ्ञिको चेव आरञ्ञिकत्तस्स च वण्णवादी, पिण्डपातिको चेव...पे०...पंसुकूलिको चेव...तेचीवरिको चेव...अप्पिच्छो चेव...सन्तुट्ठो चेव...पविवित्तो चेव...असंसट्ठो चेव...आरद्धविरियो चेव विरियारम्भस्स च वण्णवादी" ति।

"साधु साधु, कस्सप। बहुजनहिताय किर त्वं, कस्सप, पटिपन्नो बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। तस्मातिह त्वं, कस्सप, साणानि चेव पंसुकूलानि धारेहि निब्बसनानि, पिण्डाय च चराहि, अरञ्ञे च विहराही" ति॥ ●

६. ओवादसुत्तं

६. ...राजगहे वेळुवने। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं महाकस्सपं भगवा एतदवोच—"ओवद, कस्सप, भिक्खू; करोहि, कस्सप, भिक्खूनं

रहा हूँ। उन में पहला यह है मैं इस जन्म में सुखपूर्वक साधना के लिये, तथा दूसरा आगे आनेवाली जनता के लिये तथा बुद्धश्रावकों के लिये मेरे ये शुभ कर्म आदर्श रूप में रहें....जिससे वे भी इन व्रतों का पालन करें, जिससे वह उन के लिये दीर्घकाल तक हितावह तथा सुखप्रद होगा। भन्ते! इन दो प्रयोजनों में इन आरण्यव्रतादि का साधक तथा प्रशंसक रहता आया हूँ।"

"साधु, साधु काश्यप! तुम ने इन सभी व्रतों का पालन बहुजनहित, बहुजनसुख तथा देवमनुष्यों के हित के लिये ही किया है। अत:, काश्यप! तुम्हारे लिये यही उचित होगा कि तुम आज की तरह आगे भी सण के बने पंशुकूल धारण करो, पिण्डपातव्रत धारण करो, तथा अरण्यव्रत की साधना करते रहो"॥ ●

६. अववादसूत्र : : धर्मोपदेशश्रवण में अयोग्य भिक्षु

६. **राजगृह के** वेणुवन में साधना के समय....। आयुष्मान् महाकाश्यप....भगवान् बोले—"काश्यप! तूँ भिक्षुओं को धर्मोपदेश किया कर। मैं इन्हें धर्मोपदेश करूँ या तुम

धम्मिं कथं। अहं वा, कस्सप, भिक्खू ओवदेय्यं त्वं वा; अहं वा भिक्खूनं धम्मिं कथं [R.204] करेय्यं त्वं वा'' ति।

''दुब्बचा खो, भन्ते, एतरहि भिक्खू, दोवचस्सकरणेहि धम्मेहि समन्नागता, अक्खमा, अप्पदक्खिणग्गाहिनो अनुसासनिं। इधाहं, भन्ते, अद्दसं भण्डं च नाम भिक्खुं आनन्दस्स सद्धिविहारिं अभिजिकं च नाम भिक्खुं अनुरुद्धस्स सद्धिविहारिं अञ्ञमञ्ञं [N.171] सुतेन अच्चावदन्ते—'एहि, भिक्खु, को बहुतरं भासिस्सति, को सुन्दरतरं भासिस्सति, को चिरतरं भासिस्सती'' ति।

[B.407] अथ खो भगवा अञ्ञतरं भिक्खुं आमन्तेसि—''एहि त्वं, भिक्खु, मम वचनेन भण्डं च भिक्खुं आनन्दस्स सद्धिविहारिं अभिजिकं च भिक्खुं अनुरुद्धस्स सद्धिविहारिं आमन्तेहि—'सत्था आयस्मन्ते आमन्तेती''' ति।

''एवं, भन्ते'' ति खो सो भिक्खु भगवतो पटिस्सुत्वा येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच—''सत्था आयस्मन्ते आमन्तेती'' ति।

''एवमावुसो'' ति खो ते भिक्खू तस्स भिक्खुनो पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो ते भिक्खू भगवा एतदवोच—''सच्चं किर तुम्हे, भिक्खवे, अञ्ञमञ्ञं सुतेन अच्चावदथ—'एहि, भिक्खु, को बहुतरं भासिस्सति, को सुन्दरतरं भासिस्सति, को चिरतरं भासिस्सती'' ति?

इन्हें धर्मोपदेश करो—इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता (क्यों कि तुम भी मेरी ही तरह प्रामाणिक धर्मोपदेश करते हो।)

(''नहीं, भन्ते! मैं ऐसा नहीं कर पाऊँगा; क्यों कि) आज कल भिक्षु उपदेश ग्रहण के योग्य नहीं रह गये, धर्मोपदेश का वे आदर एवं सत्कार भी नहीं कर पाते। भन्ते! मैंने आनन्द के सहविहारिक भण्ड एवं अनुरुद्ध के सहविहारिक अभिजिक भिक्षु को यों परस्पर बातचीत करते सुना है—'भिक्षु! देखें, कौन अधिक बोलता है, कौन अच्छा बोलता है या कौन अधिक काल तक बोलता है!'''

तब भगवान् ने किसी भिक्षु को बुला कर आदेश दिया—''जाओ, भिक्षु! मेरे आदेश से आनन्द के सहविहारिक भण्ड एवं अनुरुद्ध के सहविहारिक अभिजिक से जा कर कहो—'शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं!'''

उस भिक्षु ने भगवान् का आदेश स्वीकार उन दोनों भिक्षुओं के पास जा कर उनसे कहा—''शास्ता तुम दोनों आयुष्मानों को बुला रहे है।''

उस (भिक्षु) की बात मान कर वे दोनों भिक्षु शास्ता के सम्मुख आये तथा उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। भगवान् ने उन से पूछा—''भिक्षुओ! क्या तुम ने परस्पर

"एवं, भन्ते"।

"किं नु खो मे तुम्हे, भिक्खवे, एवं धम्मं देसितं आजानाथ—'एथ तुम्हे, भिक्खवे, अञ्ञमञ्ञं सुतेन अच्चावदथ—एहि, भिक्खु, को बहुतरं भासिस्सति, को सुन्दरतरं भासिस्सति, को चिरतरं भासिस्सती''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"। [R.205]

"नो चे किर मे तुम्हे, भिक्खवे, एवं धम्मं देसितं आजानाथ, अथ किं चरहि तुम्हे, मोघपुरिसा, किं जानन्ता किं पस्सन्ता एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजिता समाना अञ्ञमञ्ञं सुतेन अच्चावदथ—'एहि, भिक्खु, को बहुतरं भासिस्सति, को सुन्दरतरं भासिस्सति, को चिरतरं भासिस्सती''' ति?

अथ खो ते भिक्खू भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोचुं—"अच्चयो नो, भन्ते, अच्चगमा, यथाबाले यथामूळ्हे यथाअकुसले, ये मयं एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजिता समाना अञ्ञमञ्ञं सुतेन अच्चावदिम्ह—'एहि, भिक्खु, को बहुतरं भासिस्सति, को सुन्दरतरं भासिस्सति, को चिरतरं [N.172] भासिस्सती' ति। तेसं नो, भन्ते, भगवा अच्चयं अच्चयतो पटिग्गण्हातु आयतिं संवराया" ति।

"तग्घ तुम्हे, भिक्खवे, अच्चयो अच्चगमा यथाबाले यथामूळ्हे यथाअकुसले, ये

सत्य ही यह कहा है—'भिक्षु! देखें कौन अधिक बोलता है, कौन अच्छा बोलता है या कौन अधिक काल तक बोलता है?'''

"हाँ, भन्ते!"

"भिक्षुओ! क्या तुम को स्मरण है कि मैंने तुम को ऐसी देशना की है कि तुम परस्पर ऐसा संवाद (बातचीत) करो—'भिक्षु! देखें कौन अधिक बोलता है....पूर्ववत्.... ?"

"नहीं, भन्ते!"

"जब मैंने तुमको ऐसी देशना कभी नहीं की तो तुम ने क्या सोच कर, क्या समझ कर परस्पर यह संवाद किया—'भिक्षु! देखें कौन अधिक बोलता है!....''।

तब वे दोनों भिक्षु भगवान् के श्रीचरणों में गिर कर उन से यों क्षमायच्चा करने लगे—"भन्ते! हम से यह प्रमाद (भूल) वैसे ही हो गया जैसे कोई बालक, मूढ या गँवार किया करता है। हम से ऐसा प्रमाद नहीं होना चाहिये था; क्यों कि हमने आपके समान श्रेष्ठ शास्ता से प्रव्रज्यादीक्षा ली थी। भन्ते! हमारे इस अपराध को क्षमा कर दें, भविष्य में हमसे ऐसा प्रमाद कभी नहीं होगा।"

"भिक्षुओ! जब तुम इस स्वाख्यात धर्म में प्रव्रजित हो कर भी बालक, मूढ या

तुम्हे एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजिता समाना अञ्ञमञ्ञं सुतेन अच्चावदित्थ— [B.408] 'एहि, भिक्खु, को बहुतरं भासिस्सति, को सुन्दरतरं भासिस्सति, को चिरतरं भासिस्सती' ति। यतो च खो तुम्हे, भिक्खवे, अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोथ, तं वो मयं पटिग्गण्हाम। वुद्धि हेसा, भिक्खवे, अरियस्स विनये यो अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोति आयतिं च संवरं आपज्जती'' ति॥ •

७. दुतियओवादसुत्तं

७. ...राजगहे विहरति वेळुवने। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं महाकस्सपं भगवा एतदवोच— ''ओवद, कस्सप, भिक्खू; करोहि, कस्सप, भिक्खूनं धम्मिं कथं। अहं वा, कस्सप, [R.206] भिक्खू ओवदेय्यं त्वं वा; अहं वा भिक्खूनं धम्मिं कथं करेय्यं त्वं वा'' ति।

''दुब्बचा खो, भन्ते, एतरहि भिक्खू, दोवचस्सकरणेहि धम्मेहि समन्नागता अक्खमा अप्पदक्खिणग्गाहिनो अनुसासनिं। यस्स कस्सचि, भन्ते, सद्धा नत्थि कुसलेसु धम्मेसु, हिरी नत्थि कुसलेसु धम्मेसु, ओत्तप्पं नत्थि कुसलेसु धम्मेसु, विरियं नत्थि कुसलेसु धम्मेसु, पञ्ञा नत्थि कुसलेसु धम्मेसु, तस्स या रत्ति वा दिवसो वा आगच्छति, हानियेव पाटिकङ्खा कुसलेसु धम्मेसु, नो वुद्धि।

''सेय्यथापि, भन्ते, काळपक्खे चन्दस्स या रत्ति वा दिवसो वा आगच्छति, हायतेव वण्णेन, हायति मण्डलेन, हायति आभाय, हायति आरोहपरिणाहेन। एवमेव

गँवार की तरह प्रमाद कर के भी अपना दोष स्वीकार कर रहे हो तो मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। भिक्षुओ! 'मेरे इस आर्यविनय में यह वृद्धि की ही बात कहलायगी कि जो अपने दोष को स्वीकार कर क्षमायाच्ञा करे तथा भविष्य में ऐसा न करने की प्रतिज्ञा करे'''॥ •

७. द्वितीय अववादसूत्र : :धर्मोपदेश-श्रवण के लिये अयोग्य भिक्षु

७. **राजगृह के** वेणुवन में साधना के समय....पूर्ववत्....आयुष्मान् महाकाश्यप ने भगवान् से यों निवेदन किया—''भन्ते! भिक्षु धर्मोपदेश के योग्य नहीं रह गये ये दुर्वच हो गये। क्योंकि इन में बहुतों को कुशल धर्मों में श्रद्धा नहीं है, लज्जा....सङ्कोच (पापभीरुता)....उद्योग....प्रज्ञा में श्रद्धा नहीं है। यों रातदिन उनके कुशल धर्मों में अवनति ही हो रही है, उन्नति नहीं।

''इसके विपरीत—जिन भिक्षुओं की कुशल धर्मों में श्रद्धा है, लज्जा....सङ्कोच.... उद्योग....प्रज्ञा में श्रद्धा है उनकी रातदिन कुशल धर्मों में वृद्धि ही होगी, हानि (अवनति) नहीं।

''भन्ते! जैसे कृष्ण पक्ष का चन्द्रमा रात और दिन वर्ण, मण्डल, आरोहपरिणाह—

खो, भन्ते, यस्स कस्सचि सद्धा नत्थि कुसलेसु धम्मेसु...पे०...हिरी नत्थि...ओत्तप्पं नत्थि...विरियं नत्थि...पञ्ञा नत्थि कुसलेसु धम्मेसु तस्स या रत्ति वा दिवसो [N.173] वा आगच्छति, हानियेव पाटिकङ्खा कुसलेसु धम्मेसु, नो वुद्धि।

"'अस्सद्धो पुरिसपुग्गलो' ति, भन्ते, परिहानमेतं; अहिरिको पुरिसपुग्गलो' ति, भन्ते, परिहानमेतं; 'अनोत्तप्पी पुरिसपुग्गलो' ति, भन्ते, परिहानमेतं; 'कुसीतो पुरिसपुग्गलो' ति, भन्ते, परिहानमेतं; 'दुप्पञ्ञो पुरिसपुग्गलो' ति, भन्ते, परिहानमेतं; 'कोधनो पुरिसपुग्गलो ति, भन्ते, परिहानमेतं; 'उपनाही पुरिसपुग्गलो' ति, [B.409] भन्ते, परिहानमेतं; 'न सन्ति भिक्खू ओवादका' ति, भन्ते, परिहानमेतं। (१)

"यस्स कस्सचि, भन्ते, सद्धा अत्थि कुसलेसु धम्मेसु, हिरी अत्थि कुसलेसु धम्मेसु, ओत्तप्पं अत्थि कुसलेसु धम्मेसु, विरियं अत्थि कुसलेसु धम्मेसु, पञ्ञा अत्थि कुसलेसु धम्मेसु, तस्स या रत्ति वा दिवसो वा आगच्छति, वुद्धियेव पाटिकङ्खा कुसलेसु धम्मेसु, नो परिहानि।

"सेय्यथापि, भन्ते, जुण्हपक्खे चन्दस्स या रत्ति वा दिवसो वा आगच्छति, वड्ढतेव वण्णेन, वड्ढति मण्डलेन, वड्ढति आभाय, वड्ढति आरोहपरिणाहेन। एवमेव खो, भन्ते, यस्स कस्सचि सद्धा अत्थि कुसलेसु धम्मेसु...हिरी अत्थि...पे०... [R.207] ओत्तप्पं अत्थि...विरियं अत्थि...पञ्ञा अत्थि कुसलेसु धम्मेसु तस्स या रत्ति वा दिवसो वा आगच्छति, वुद्धियेव पाटिकङ्खा कुसलेसु धम्मेसु, नो परिहानि।

इन सभी अच्छाइयों से निरन्तर क्षीण होता जाता है, उसी तरह, भन्ते! जिसकी कुशल धर्मों में श्रद्धा....ह्री....अपत्राप्य....वीर्य....प्रज्ञा नहीं है, उसकी—आगे आने वाले समय में कुशल धर्मों में हानि ही समझनी चाहिये, वृद्धि नहीं।

("प्रव्रज्या प्राप्त कर के भी) साधक भिक्षु अश्रद्धावान् है, अह्रीक है, अनपत्रपी है, आलसी या पापी है, कुमति है, क्रोधी है, उपनाही (दूसरों से वैर भाव रखने वाला) है, तो यह उसकी हानि ही है। उपासक लोग भी उसे देख कर यही कहने लगेंगे—'अब सङ्घ में आज्ञाकारी नहीं रह गये'। (१)

"इस के विपरीत, जिस (साधक) की कुशल धर्मों में श्रद्धा है, ह्री है, अवत्राप्य (पापभीरुता) है, वीर्य है, प्रज्ञा है, उस के आगे आने वाले समय में वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।

"जैसे शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा, रात हो या दिन, वर्ण मण्डल आभा एवं आरोह परिणाह से बढता ही रहता है; उसी तरह, भन्ते! जिस साधक की कुशल धर्मों के प्रति श्रद्धा, ह्री, अपत्राप्य, वीर्य, प्रज्ञा है उस की, आगे आने वाले समय में, वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।

"'सद्धो पुरिसपुग्गलो' ति, भन्ते, अपरिहानमेतं; 'हिरिमा पुरिसपुग्गलो' ति, भन्ते, अपरिहानमेतं; 'ओत्तप्पी पुरिसपुग्गलो' ति, भन्ते, अपरिहानमेतं; 'आरद्धविरियो पुरिसपुग्गलो' ति, भन्ते, अपरिहानमेतं; 'पञ्ञवा पुरिसपुग्गलो' ति, भन्ते, अपरिहान- मेतं; 'अक्कोधनो पुरिसपुग्गलो' ति, भन्ते, अपरिहानमेतं; 'अनुपनाही पुरिसपुग्गलो' ति, भन्ते, अपरिहानमेतं; 'सन्ति भिक्खू ओवादका' ति, भन्ते, अपरिहानमेतं'' ति। (२)

"साधु साधु, कस्सप। यस्स कस्सचि, कस्सप, 'सद्धा नत्थि कुसलेसु धम्मेसु...पे०... हिरी नत्थि...ओत्तप्पं नत्थि...विरियं नत्थि...पञ्ञा नत्थि कुसलेसु धम्मेसु तस्स या रत्ति वा दिवसो वा आगच्छति, हानियेव पाटिकङ्खा कुसलेसु धम्मेसु, नो वुद्धि।

"सेय्यथापि, कस्सप, काळपक्खे चन्दस्स या रत्ति वा दिवसो वा आगच्छति, हायतेव वण्णेन...पे०...हायति आरोहपरिणाहेन। एवमेव खो, कस्सप, यस्स कस्सचि [N.174] सद्धा नत्थि कुसलेसु धम्मेसु...पे०...हिरी नत्थि...ओत्तप्पं नत्थि...विरियं नत्थि... पञ्ञा नत्थि कुसलेसु धम्मेसु तस्स या रत्ति वा दिवसो वा आगच्छति, हानियेव पाटिकङ्खा कुसलेसु धम्मेसु, नो वुद्धि। 'अस्सद्धो पुरिसपुग्गलो' ति, कस्सप, परिहानमेतं; अहिरिको...पे०...अनोत्तप्पी...कुसीतो...दुप्पञ्ञो...कोधनो...'उपनाही [B.410] पुरिसपुग्गलो' ति, कस्सप, परिहानमेतं; 'न सन्ति भिक्खू ओवादका' ति, कस्सप, परिहानमेतं।

"यस्स कस्सचि, कस्सप, सद्धा अत्थि कुसलेसु धम्मेसु...पे०...हिरी अत्थि... ओत्तप्पं अत्थि...विरियं अत्थि...पञ्ञा अत्थि कुसलेसु धम्मेसु तस्स या रत्ति वा दिवसो वा आगच्छति, वुद्धियेव पाटिकङ्खा कुसलेसु धम्मेसु, नो परिहानि।

[R.208] "सेय्यथापि, कस्सप, जुण्हपक्खे चन्दस्स या रत्ति वा दिवसो वा आगच्छति, वड्ढतेव वण्णेन, वड्ढति मण्डलेन, वड्ढति आभाय, वड्ढति आरोहपरिणाहेन। एवमेव खो, कस्सप, यस्स कस्सचि सद्धा अत्थि कुसलेसु धम्मेसु, हिरी अत्थि...ओत्तप्पं अत्थि... विरियं अत्थि...पञ्ञा अत्थि कुसलेसु धम्मेसु तस्स या रत्ति वा दिवसो वा आगच्छति, वुद्धियेव पाटिकङ्खा कुसलेसु धम्मेसु, नो परिहानि।

"'सद्धो पुरिसपुग्गलो' ति, कस्सप, अपरिहानमेतं; हिरिमा...पे०...ओत्तप्पी...

(''साधक के लिये कोई यह कहे—) 'यह श्रद्धावान् है', 'ह्रीमान् है', 'अवत्रापी है', 'उद्योगी है', 'प्रज्ञावान् है', 'अक्रोधी है', 'अनुपनाही (वैररहित) है', 'सङ्घ में आज्ञाकारी भिक्षु हैं' तो यह उस साधक की वृद्धि ही है, हानि नहीं।'' (२)

आरद्धविरियो...पञ्ञवा...अक्कोधनो...'अनुपनाही पुरिसपुग्गलो' ति, कस्सप, अपरिहानमेतं; 'सन्ति भिक्खू ओवादका' ति, कस्सप, अपरिहानमेतं'' ति॥ ●

८. ततियओवादसुत्तं

८. ...राजगहे कलन्दकनिवापे। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं महाकस्सपं भगवा एतदवोच—''ओवद, कस्सप, भिक्खू; करोहि, कस्सप, भिक्खूनं धम्मिं कथं। अहं वा, कस्सप, भिक्खूनं ओवदेय्यं त्वं वा; अहं वा भिक्खूनं धम्मिं कथं करेय्यं त्वं वा'' ति।

''दुब्बचा खो, भन्ते, एतरहि भिक्खू, दोवचस्सकरणेहि धम्मेहि [N.175] समन्नागता, अक्खमा, अप्पदक्खिणग्गाहिनो अनुसासनिं'' ति।

''तथा हि पन, कस्सप, पुब्बे थेरा भिक्खू आरञ्ञिका चेव अहेसुं आरञ्ञिकत्तस्स च वण्णवादिनो, पिण्डपातिका चेव अहेसुं पिण्डपातिकत्तस्स च वण्णवादिनो, पंसुकूलिका चेव अहेसुं पंसुकूलिकत्तस्स च वण्णवादिनो, तेचीवरिका चेव [B.411] अहेसुं तेचीवरिकत्तस्स च वण्णवादिनो, अप्पिच्छा चेव अहेसुं अप्पिच्छताय च वण्णवादिनो, सन्तुट्ठा चेव अहेसुं सन्तुट्ठिया च वण्णवादिनो, पविवित्ता चेव अहेसुं

(भगवान्—) ''साधु, साधु, काश्यप! तुम ने बहुत उचित कहा। जिस किसी साधक की....पूर्ववत्....हानि नहीं। ●

[महाकाश्यप के उक्त वचनों का ही यहाँ भी विस्तार कर लें।]

८. तृतीय अववादसूत्र : : धर्मोपदेशश्रवण में अयोग्य भिक्षु

८. राजगृह के कलन्दकनिवाप में साधना के समय.... ।....महाकाश्यप को भगवान् ने यह कहा—''काश्यप! तूँ भिक्षुओं को धर्मोपदेश किया कर। यह धर्मोपदेश तूँ करे या मैं करूँ—इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता; क्यों कि तेरे द्वारा किया गया धर्मोपदेश भी मेरी ही तरह प्रामाणिक है।''

''नहीं, भन्ते, मैं ऐसा नहीं कर पाऊँगा; क्यों कि अब भिक्षु बहुत दुर्वच हो गये हैं; अत: वे धर्मोपदेश के योग्य नहीं रह गये।''

''काश्यप! पूर्वकाल में भी स्थविर भिक्षु आरण्यकव्रती भी थे तथा इस आरण्यक व्रत के प्रशंसक भी थे, पांसुकूलिक भी थे....त्रैचीवरिक भी थे....अल्पेच्छ भी थे....सन्तोषवृत्ति भी थे....एकान्तसेवी भी थे....समाज से असम्पृक्त भी रहते थे....साधना में सतत उद्योगी भी थे तथा ऐसे उद्योग की प्रशंसा भी करते थे। उस समय जो भिक्षु आरण्यकव्रतधारी होता था....पैण्डपातिक....पांशुकूलिक....त्रैचीवरिक....अल्पेच्छ....

पविवेकस्स च वण्णवादिनो, असंसट्ठा चेव अहेसुं असंसग्गस्स च वण्णवादिनो, [R.209] आरद्धविरिया चेव अहेसुं विरियारम्भस्स च वण्णवादिनो।

''तत्र यो होति भिक्खू आरञ्ञिको चेव आरञ्ञिकत्तस्स च वण्णवादी, पिण्डपातिको चेव पिण्डपातिकत्तस्स च वण्णवादी, पंसुकूलिको चेव पंसुकूलिकत्तस्स च वण्णवादी, तेचीवरिको चेव तेचीवरिकत्तस्स च वण्णवादी, अप्पिच्छो चेव अप्पिच्छताय च वण्णवादी, सन्तुट्ठो चेव सन्तुट्ठिया च वण्णवादी, पविवित्तो चेव पविवेकस्स च वण्णवादी, असंसट्ठो चेव असंसग्गस्स च वण्णवादी, आरद्धविरियो चेव विरियारम्भस्स च वण्णवादी, तं थेरा भिक्खू आसनेन निमन्तेन्ति—'एहि, भिक्खु, को नामायं भिक्खु, भद्दको वतायं भिक्खु, सिक्खाकामो वतायं भिक्खु; एहि, भिक्खु, इदं आसनं निसीदाही' ति।

''तत्र, कस्सप, नवानं भिक्खूनं एवं होति—'यो किर सो होति भिक्खु आरञ्ञिको चेव आरञ्ञिकत्तस्स च वण्णवादी, पिण्डपातिको चेव...पे०...पंसुकूलिको चेव...तेचीवरिको चेव...अप्पिच्छो चेव...सन्तुट्ठो चेव...पविवित्तो चेव...असंसट्ठो चेव...आरद्धविरियो चेव विरियारम्भस्स च वण्णवादी, तं थेरा भिक्खू आसनेन निमन्तेन्ति—एहि, भिक्खु, को नामायं भिक्खु, भद्दको वतायं भिक्खु, सिक्खाकामो वतायं भिक्खु; एहि, भिक्खु, इदं आसनं निसीदाही' ति। ते तथत्ताय पटिपज्जन्ति; तेसं तं होति दीघरत्तं हिताय सुखाय।

''एतरहि पन, कस्सप, थेरा भिक्खू न चेव आरञ्ञिका न च आरञ्ञिकत्तस्स वण्णवादिनो, न चेव पिण्डपातिका न च पिण्डपातिकत्तस्स च वण्णवादिनो, न चेव पंसुकूलिका न च पंसुकूलिकत्तस्स च वण्णवादिनो, न चेव तेचीवरिका न च तेचीवरिकत्तस्स वण्णवादिनो, न चेव अप्पिच्छा न च अप्पिच्छताय वण्णवादिनो, न

सन्तुष्ट....एकान्तसेवी....समाज से असंसृष्ट....उद्योगी होता था उसका अन्य भिक्षु सम्मान करते थे, उसको अग्रासन देते थे, आदरपूर्वक उसका नाम तथा परिचय पूछते थे। तथा उसके विषय में यही कहते थे कि इस भिक्षु का आचरण बहुत भद्र है, यह शिक्षा के ग्रहण में तत्पर रहता है। उसके आने पर यही कहते थे-'आओ, भिक्षु! यह आसन ग्रहण करो'।

''काश्यप! तब यह देख कर नये प्रव्रजित भिक्षु को यह विचार होता था—'जो भिक्षु आरण्यकव्रती....पैण्डपातिक....पांसुकूलिक....त्रैचीवरिक....अल्पेच्छ....सन्तुष्ट.... एकान्त-सेवी....समाज से असम्पृक्त....उद्योगसम्पन्न....रहते हैं उन का स्थविर भिक्षु बहुत सम्मान करते हैं....। तथा वह आचरण इन साधकों के लिये दीर्घकाल के लिये हितकर एवं सुखकर होता है।

चेव सन्तुट्ठा न च सन्तुट्ठिया वण्णवादिनो, न चेव पविवित्ता न च पविवेकस्स [N.176] वण्णवादिनो, न चेव असंसट्ठा न च असंसग्गस्स वण्णवादिनो, न चेव आरद्धविरिया न च विरियारम्भस्स वण्णवादिनो। [R.210]

"तत्र यो होति भिक्खु ञातो यसस्सी लाभी चीवरपिण्डपातसेनासन- [B.412] गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं तं थेरा भिक्खू आसनेन निमन्तेन्ति—'एहि, भिक्खु, को नामायं भिक्खु, भद्दको वतायं भिक्खु, सब्रह्मचारिकामो वतायं भिक्खु; एहि, भिक्खु, इदं आसनं निसीदाही' ति।

"तत्र, कस्सप, नवानं भिक्खूनं एवं होति—'यो किर सो होति भिक्खु ञातो यसस्सी लाभी चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं तं थेरा भिक्खू आसनेन निमन्तेन्ति—एहि, भिक्खु, को नामायं भिक्खु, भद्दको वतायं भिक्खु, सब्रह्मचारिकामो वतायं भिक्खु; एहि, भिक्खु, इदं आसनं निसीदाही' ति। ते तथत्ताय पटिपज्जन्ति। तेसं तं होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय। यं हि तं, कस्सप, सम्मा वदमानो वदेय्य—'उपद्दुता ब्रह्मचारी ब्रह्मचारूपद्दवेन अभिपत्थना ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिअभिपत्थनेना' ति, एतरहि तं, कस्सप, सम्मावदमानो वदेय्य—'उपद्दुता ब्रह्मचारी ब्रह्मचारूपद्दवेन अभिपत्थना ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिअभिपत्थनेना''' ति॥

•

"परन्तु इस समय, काश्यप! स्थविर भिक्षु न आरण्यकव्रतधारी रह गये.... पूर्ववत्.... न उद्योगव्रत के प्रशंसक ही रह गये।

"आज कल तो जो स्थविर भिक्षु किसी अन्य कारण से समाज में प्रसिद्ध हो गया है यशःप्राप्त बन गया है, तथा किसी प्रकार से चीवर पिण्डपात शयनासन एवं ग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कार का अत्यधिक लाभ प्राप्त कर लेता है उसी को अन्य स्थविर भिक्षु भी आदर सम्मान तथा पूजा सत्कार एवं उत्सव आदि में अग्रासन देते हैं।

"इसे देख कर, काश्यप! नवप्रव्रजित भिक्षु को मन में यह होता है—'जो भिक्षु समाज में किसी कारण से प्रसिद्ध हो गया है.... उसी को सम्मान मिलता है'। अतः वह नवक भिक्षु भी उन स्थविरों को देखकर उसी तरह का आचरण करने लगता है। वह आचरण उस नवक भिक्षु के लिये दीर्घकाल तक अहितकर एवं कष्टप्रद होता है। ऐसे भिक्षुओं के विषय में कोई वस्तुसत्य कहना चाहे तो यही कहेगा—'वे ब्रह्मचारी (धर्मसाधक) ब्रह्मचर्य व्रत के उपद्रव (सङ्कट) से घिर गये, अतः इन का वास्तविक धर्मसाधना से पतन हो गया'। तथा आज इस नवक भिक्षु के विषय में वास्तविकता कहना चाहे तो भी यही कहेगा—'यह ब्रह्मचारी (नवक भिक्षु) ब्रह्मचर्यव्रत के उपद्रव से घिर गया, अतः इस का धर्मसाधना से पतन हो गया'''।

•

९. झानाभिञ्ञसुत्तं

९. ...सावत्थियं विहरति। "अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं [R.211] उपसम्पज्ज विहरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

"अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति वितक्कविचारानं [N.177] वूपसमा...पे०...दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

"अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरामि सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेमि, यं तं अरिया आचिक्खन्ति— 'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च [B.413] सम्पजानो, सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति— 'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

"अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं

---

९. ध्यानाभिज्ञासूत्र : : ध्यान-अभिज्ञा में काश्यप बुद्धतुल्य

९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।"भिक्षुओ! जब मैं कामों से दूर हो, अकुशल धर्मों का त्याग कर वितर्क विचार सहित प्रीतिसुख वाला प्रथम ध्यान प्राप्त कर साधना करता हूँ। भिक्षुओ! काश्यप भी....पूर्ववत्....साधना करता है।

"भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूँ, वितर्क विचारों के शान्त हो जाने से आध्यात्मिक सम्प्रसाद, चित्त की एकाग्रता से युक्त, समाधिजन्य प्रीतिसुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करता हूँ। भिक्षुओ! काश्यप भी....पूर्ववत्....साधना करता है।

"भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूँ, प्रीति से वैराग्य होने पर उपेक्षा के साथ साधना करता हूँ। स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ हो कर काया से सुख का अनुभव करते हुए, जिसे आर्यपुरुष कहते हैं—'उपेक्षा के साथ स्मृतिमान् हो कर सुख से विहार करता है'—इस तृतीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करता हूँ! भिक्षुओ! काश्यप भी....पूर्ववत्....साधना करता है।

"भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूँ, सुख एवं दुःख के प्रहाण से, सौमनस्य तथा दौर्मनस्य

झानं उपसम्पज्ज विहरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति सुखस्स च पहाना...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

"अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघ-सञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा अनन्तो आकासो ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा...पे०... आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति।

"अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म अनन्तं विञ्ञाणं ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म अनन्तं विञ्ञाणं [R.212] ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति।

"अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म नत्थि किञ्ची ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति...पे०...आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति।

"अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव [N.178] आकङ्खति ...पे०...नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति।

के पहले ही अस्त हो जाने से, अदुःख असुख एवं उपेक्षा से, स्मृतिपरिशुद्ध वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करता हूँ। भिक्षुओ! यह काश्यप भी.... पूर्ववत्.... साधना करता है।

"भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूँ, रूपसंज्ञाओं का सब तरफ से अतिक्रमण से, प्रतिघसंज्ञाओं के अस्त हो जाने से, नानात्वसंज्ञाओं के चिन्तन न करने (अमनसिकार) से 'आकाश अनन्त है'—ऐसी आकाशानन्त्यायतन भावना को प्राप्त कर साधना करता हूँ। भिक्षुओ! काश्यप भी.... पूर्ववत्.... साधना करता है।

"भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूँ, इस आकाशानन्त्यायतन भावना का भी सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है'—इस विज्ञानानन्त्यायतन भावना को प्राप्त कर साधना करता हूँ। भिक्षुओ! काश्यप भी.... पूर्ववत्.... साधना करता है।

"भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूँ, इस विज्ञानानन्त्यायतन भावना का भी सर्वथा समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है'—इस आकिञ्चन्यायतन भावना को प्राप्त कर साधना करता हूँ। भिक्षुओ! यह काश्यप भी.... पूर्ववत्.... साधना करता है।

"भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूँ, इस आकिञ्चन्यायतन भावना का भी सर्वथा समतिक्रमण

"अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि सब्बसो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे...पे०... सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति।

[B.414] "अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोमि— एको पि हुत्वा बहुधा होमि, बहुधा पि हुत्वा एको होमि; आविभावं, तिरोभावं, तिरोकुट्टं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानो गच्छामि, सेय्यथापि आकासे; पठविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोमि, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमाने गच्छामि, सेय्यथापि पठवियं; आकासे पि पल्लङ्केन कमामि, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे पाणिना परिमसामि परिमज्जामि; याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेमि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति...पे०...याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेति।

"अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणामि, दिब्बे च मानुसे च, ये दूरे सन्तिके च। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति दिब्बाय सोतधातुया...पे०...दूरे सन्तिके च।

"अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो [R.213] परिच्च पजानामिसरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानामि, वीतरागं वा चित्तं वीतरागं चित्तं ति पजानामि, सदोसं वा चित्तं...पे०...वीतदोसं वा चित्तं...समोहं वा चित्तं...वीतमोहं वा चित्तं...सङ्खित्तं वा चित्तं...विक्खित्तं वा चित्तं...महग्गतं वा चित्तं... अमहग्गतं वा चित्तं...सउत्तरं वा चित्तं...अनुत्तरं वा चित्तं...समाहितं वा चित्तं... असमाहितं वा चित्तं...विमुत्तं वा चित्तं...अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च [N.179] पजानाति—सरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानाति...पे०...अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानाति।

"अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि, अनेके पि

कर 'नैवसंज्ञानासंज्ञायतन' भावना को प्राप्त कर साधना करता हूँ।[१] भिक्षुओ! काश्यप भी....पूर्ववत्....साधना करता है।

संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुख- [B.415] दुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं...पे०...इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति।

"अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्त-मानुसकेन सत्ते पस्सामि चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते—'इमे वत, भोन्तो, सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता [R.214] वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना; ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना, इमे वा पन, भोन्तो, सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्म-समादाना; ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना' ति। इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सामि चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने...पे०...यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति।

"अहं, भिक्खवे, आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं [N.180] दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे,

---

"भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूँ, इस नैवसंज्ञानासंज्ञायतन भावना का भी सर्वथा समतिक्रमण कर 'संज्ञावेदयितनिरोध' भावना को प्राप्त कर साधना करता हूँ। भिक्षुओ! यह काश्यप भी....पूर्ववत्....साधना करता है।

"भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूँ, अनेक प्रकार की ऋद्धियों (अलौकिक चमत्कारों) का अनुभव करता हूँ....पूर्ववत्....। *[द्र०—इसी ग्रन्थ का सुसीमसूत्र]* भिक्षुओ! काश्यप भी ....पूर्ववत्....साधना करता है।

"भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूँ, दिव्य चक्षु से....पूर्ववत्....। भिक्षुओ! काश्यप भी....साधना करता है।

"भिक्षुओ! मैं आश्रवों के क्षय होने से, आश्रवरहित चेतोविभुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति

आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती'' ति॥

१०. उपस्सयसुत्तं

१०. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा महाकस्सपो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आयस्मा आनन्दो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा [B.416, R.215] पत्तचीवरमादाय येनायस्मा महाकस्सपो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकस्सपं एतदवोच—''आयाम, भन्ते कस्सप, येन अञ्ञतरो भिक्खुनुपस्सयो तेनुपसङ्कमिस्सामा'' ति।

''गच्छ त्वं, आवुसो आनन्द, बहुकिच्चो त्वं बहुकरणीयो'' ति। दुतियं पि खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं महाकस्सपं एतदवोच—''आयाम, भन्ते कस्सप, येन अञ्ञतरो भिक्खुनुपस्सयो तेनुपसङ्कमिस्सामा'' ति।

''गच्छ त्वं, आवुसो आनन्द, बहुकिच्चो त्वं बहुकरणीयो'' ति। ततियं पि खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं महाकस्सपं एतदवोच—''आयाम, भन्ते कस्सप, येन अञ्ञतरो भिक्खुनुपस्सयो तेनुपसङ्कमिस्सामा'' ति।

अथ खो आयस्मा महाकस्सपो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय आयस्मता आनन्देन पच्छासमणेन येन अञ्ञतरो भिक्खुनुपस्सयो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो सम्बहुला भिक्खुनियो येनायस्मा महाकस्सपो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकस्सपं अभिवादेत्वा

को इसी जन्म में अभिज्ञान एवं साक्षात् कर प्राप्त कर साधना करता हूँ। भिक्षुओ! यह काश्यप भी....साधना करता है॥

१०. उपाश्रयसूत्र : :थुल्लतिस्सा भिक्षुणी का सङ्घ से बहिष्कार

१०. ऐसा मैने सुना है। एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे।

तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्ण में वस्त्र ठीक कर, पात्र चीवर ले कर आयुष्मान् महाकाश्यप के यहाँ गये। वहाँ जा कर वे उन से बोले—''आइये, भन्ते काश्यप! किसी भिक्षुणीउपाश्रय चला जाय।''

''आयुष्मन् आनन्द! तुम ही चले जाओ, मुझे तो अन्य बहुत से कार्य हैं''। दूसरी बार भी....तीसरी बार भी....भिक्षुणी उपाश्रय चलें।

तब आयुष्मान् महाकाश्यप भी....एक श्रमण साथ लेकर आयुष्मान् आनन्द के सङ्ग भिक्षुणीउपाश्रय की तरफ चल दिये। वहाँ जा कर बिछे हुए आसन पर विराजे। तब वहाँ

एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ता भिक्खुनियो आयस्मा महाकस्सपो धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो ता भिक्खुनियो धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

अथ खो थुल्लतिस्सा भिक्खुनी अनत्तमना अनत्तमनवाचं निच्छारेसि— [N.181] "किं पन अय्यो महाकस्सपो अय्यस्स आनन्दस्स वेदेहमुनिनो सम्मुखा धम्मं [R.216] भासितब्बं मञ्ञति! सेय्यथापि नाम सूचिवाणिजको सूचिकारस्स सन्तिके सूचिं विक्केतब्बं मञ्ञेय्य; एवमेव अय्यो महाकस्सपो अय्यस्स आनन्दस्स वेदेहमुनिनो सम्मुखा धम्मं भासितब्बं मञ्ञती" ति।

अस्सोसि खो आयस्मा महाकस्सपो थुल्लतिस्साय भिक्खुनिया इमं वाचं भासमानाय। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"किं नु खो, आवुसो आनन्द, अहं सूचिवाणिजको, त्वं सूचिकारो; उदाहु अहं सूचिकारो, त्वं सूचिवाणिजको" ति?

"खम, भन्ते कस्सप, बालो मातुगामो" ति। [B.417]

"आगमेहि त्वं, आवुसो आनन्द, मा ते सङ्घो उत्तरि उपपरिक्खि। तं किं मञ्ञसि, आवुसो आनन्द, अपि नु त्वं भगवतो सम्मुखा भिक्खुसङ्घे उपनीतो—'अहं,

---

रहने वाली बहुत सी भिक्षुणियाँ आयुष्मान् महाकाश्यप के पास आयीं तथा उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठ गयीं। तब आयुष्मान् महाकाश्यप ने उन भिक्षुणियों को धार्मिक कथा द्वारा आश्वस्त, सन्दृष्ट, समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। इस के बाद आयुष्मान् महाकाश्यप वहाँ से उठ कर चले गये।

उसी समय थुल्लतिस्सा भिक्षुणी ने, आयुष्मान् महाकाश्यप के प्रवचन से असन्तुष्ट हो कर, ये असन्तोषवचन कहने आरम्भ किये—"आयुष्मान् महाकाश्यप ने आयुष्मान् विदेहमुनि आनन्द के रहते धर्मप्रवचन करना कैसे उचित समझा? अरे! यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे कोई एक सूई लेकर किसी सूचीकार को बेचने चला जाय।"

आयुष्मान् महाकाश्यप ने थुल्लतिस्सा भिक्षुणी द्वारा कथित उक्त वचन सुन लिये। तब उन्होंने आयुष्मान् आनन्द से पूछा— 'कहो, आयुष्मन् आनन्द! यहाँ तुम्हें सूचीकार (सूई बनाने वाला शिल्पी) तथा मुझे सूई बेचने वाला, या मुझ को सूचीकार और तुम्हें सूई बेचने वाला इङ्गित किया जा रहा है?"

(आनन्द—) "भन्ते काश्यप! क्षमा कीजिये, यह भिक्षुणी मूर्ख है!"

"आयुष्मन् आनन्द ठहरो! इस विषय में सङ्घ तुम से चर्चा नहीं करेगा। मैं तुम ही

भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। आनन्दो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरती'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''अहं खो, आवुसो, भगवतो सम्मुखा भिक्खुसङ्घे उपनीतो—'अहं, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खामि विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, यावदेव आकङ्खति विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि...पे०...पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरती' ति...पे०...। (**नवन्नं अनुपुब्बविहारसमापत्तीनं पञ्चन्नं च अभिञ्ञानं एवं वित्थारो वेदितब्बो।**)

[R.217] ''तं किं मञ्ञसि, आवुसो आनन्द, अपि नु त्वं भगवतो सम्मुखा भिक्खुसङ्घे उपनीतो—'अहं, भिक्खवे, आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामि। आनन्दो पि, भिक्खवे, आसवानं [N.182] खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती''' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''अहं खो, आवुसो, भगवतो सम्मुखा भिक्खुसङ्घे उपनीतो—'अहं, भिक्खवे, आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा

से पूछता हूँ—''आनन्द! तुम क्या मानते हो—क्या तुम्हारे विषय में कभी भगवान् ने सङ्घ के सम्मुख यह कहा है—'मैं जब चाहता हूँ....प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता हूँ, तथा यह आनन्द भी मेरे ही समान साधना करता है?'

''नहीं, भन्ते!''

''परन्तु मेरे लिये भगवान् ने ऐसा सङ्घ के सम्मुख कहा है। ....पूर्ववत्....।

[पूर्व सूत्र में वर्णित नौ अनुपूर्वविहार समापत्तियों का यहाँ भी विस्तार कर लें।]

''तो क्या मानते हो, आयुष्मन् आनन्द! क्या भगवान् ने तुम्हारे लिये सङ्घ के सम्मुख यह कहा है—'भिक्षुओ! मैं जब चाहता हूँ—आश्रवों के क्षय से आश्रवरहित चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में साक्षात्कार कर साधना करता हूँ। यह आनन्द भी मेरे ही समान साधना करता है?''

''नहीं, भन्ते!''

सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामि। कस्सपो पि, भिक्खवे, आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती' ति।

"सत्तरतनं वा, आवुसो, नागं अड्ढट्ठमरतनं वा तालपत्तिकाय छादेतब्बं मञ्ञेय्य, योमे छअभिञ्ञा छादेतब्बं मञ्ञेय्या" ति।

चवित्थ च पन थुल्लतिस्सा भिक्खुनी ब्रह्मचरियम्हा ति॥ •

११. चीवरसुत्तं

११. एकं समयं आयस्मा महाकस्सपो राजगहे विहरति वेळुवने [B.418] कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन आयस्मा आनन्दो दक्खिणागिरिस्मिं चारिकं चरति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं।

तेन खो पन समयेन आयस्मतो आनन्दस्स तिंसमत्ता सद्धिविहारिनो भिक्खू सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्ता भवन्ति येभुय्येन कुमारभूता। अथ खो आयस्मा [R.218] आनन्दो दक्खिणागिरिस्मिं यथाभिरन्तं चारिकं चरित्वा येन राजगहं वेळुवनं कलन्दकनिवापो येनायस्मा महाकस्सपो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकस्सपं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं आयस्मा महाकस्सपो एतदवोच—"कति नु खो, आवुसो आनन्द, अत्थवसे पटिच्च भगवता कुलेसु तिकभोजनं पञ्ञत्तं" ति?

"परन्तु, आयुष्मन् आनन्द! मेरे लिये भगवान् ने सङ्घ के सम्मुख कहा है।

[पूर्वसूत्र में वर्णित पाँचों अभिज्ञाओं का विस्तार यहाँ भी कर लें।]

"आयुष्मन् आनन्द! सात हाथ या साढे सात हाथ ऊँचा हाथी साधारण ताड़पत्र से छिपा (ढक) दिया जाय—यह तो सम्भव है, परन्तु यह सम्भव नहीं है कि मेरी छह अभिज्ञाओं की साधना किसी तरह छिपा दी जायँ।"

वह थुल्लतिस्सा भिक्षुणी धर्म से च्युत हो गयी॥ •

११. चीवरसूत्र : :महाकाश्यप ने आनन्द को 'कुमार' कहा

११. एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय आयुष्मान् आनन्द विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ दक्षिणागिरि में चारिका कर रहे थे।

उस समय आयुष्मान् आनन्द के तीस सहविहारिक भिक्षु धर्मानुशासन की उपेक्षा करते हुए गृहस्थों की तरह आचरण करते थे। वे प्राय: युवक ही थे। तब आयुष्मान् आनन्द दक्षिणागिरि में यथेच्छ चारिका कर राजगृह के वेणुवन में आयुष्मान् महाकाश्यप के पास गये तथा उन्हें प्रणाम अभिवादन कर एक तरफ बैठ गये। तब आयुष्मान्

"तयो खो, भन्ते कस्सप, अत्थवसे पटिच्च भगवता कुलेसु तिकभोजनं पञ्ञत्तं— दुम्मङ्कूनं पुग्गलानं निग्गहाय पेसलानं भिक्खूनं फासुविहाराय, मा पापिच्छा पक्खं निस्साय सङ्घं भिन्देय्युं, कुलानुद्दयताय च। इमे खो, भन्ते कस्सप, तयो अत्थवसे पटिच्च भगवता कुलेसु तिकभोजनं पञ्ञत्तं" ति।

[N.183] "अथ किञ्चरहि त्वं, आवुसो आनन्द, इमेहि नवेहि भिक्खूहि इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारेहि भोजने अमत्तञ्ञूहि जागरियं अननुयुत्तेहि सद्धिं चारिकं चरसि? सस्सघातं मञ्ञे चरसि, कुलूपघातं मञ्ञे चरसि। ओलुज्जति खो ते, आवुसो आनन्द, परिसा; पलुज्जन्ति खो ते, आवुसो, नवप्पाया। न वायं कुमारको मत्तमञ्ञासी" ति।

"अपि मे, भन्ते कस्सप, सिरस्मिं पलितानि जातानि। अथ च पन मयं अज्जा पि आयस्मतो महाकस्सपस्स कुमारकवादा न मुच्चामा" ति।

[R.219] "तथा हि पन त्वं, आवुसो आनन्द, इमेहि नवेहि भिक्खूहि इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारेहि भोजने अमत्तञ्ञूहि जागरियं अननुयुत्तेहि सद्धिं चारिकं चरसि, सस्सघातं मञ्ञे चरसि, कुलूपघातं मञ्ञे चरसि। ओलुज्जति खो ते, आवुसो आनन्द, परिसा; [B.419] पलुज्जन्ति खो ते, आवुसो, नवप्पाया। न वायं कुमारको मत्तमञ्ञासी" ति।

अस्सोसि खो थुल्लनन्दा भिक्खुनी—" अय्येन किर महाकस्सपेन अय्यो आनन्दो वेदेहमुनि कुमारकवादेन अपसादितो" ति।

महाकाश्यप ने उन से यों पूछा—"आयुष्मन् आनन्द! भगवान् ने किस उद्देश्य से भिक्षुओं को गृहस्थों के घरों में त्रिक भोजन की प्रज्ञप्ति की है?"

"भन्ते काश्यप! भगवान् ने तीन कारणों से त्रिक भोजन की प्रज्ञप्ति की है; १. दुष्ट जनों के निग्रह के लिये, २. शीलवान् भिक्षुओं की सुविधा के लिये कि पापेच्छु जन कहीं सङ्घभेद (फूट) न डाल दें, तथा ३. गृहस्थों पर कृपा के लिये। इन तीन कारणों से भगवान् ने यह प्रज्ञप्ति की है।"

"तो, आयुष्मन् आनन्द! आप इन नये (तरुण) भिक्षुओं के साथ गृहस्थों के घर जा कर भिक्षा करते हैं? ये सभी असंयमी, उदरम्भरी (पेटू), सतत असावधान तथा यथेच्छ निद्रालु हैं। आप भिक्षा नहीं करते, अपि तु शस्यघात (अन्न का नाश) ही कर रहे हो, तथा गृहस्थों के घरों की सुख शान्ति भी नष्ट कर रहे हो! आप की यह नयी मण्डली धर्मोपार्जन में क्षीण होती जा रही हैं, कम होती जा रही है। ज्ञात होता है, अभी तुम 'बालक' ही हो, भोजन में मात्रा को नहीं जानते!"

"भन्ते काश्यप! मेरे शिर के बाल श्वेत हो गये, परन्तु आप मुझे अब भी, जब चाहे तब, 'बालक' शब्द से सम्बोधित करते रहते हैं। इस से मुझ को छुटकारा नहीं मिलता!"

अथ खो थुल्लनन्दा भिक्खुनी अनत्तमना अनत्तमनवाचं निच्छारेसि—"किं पन अय्यो महाकस्सपो अञ्ञतित्थियपुब्बो समानो अय्यं आनन्दं वेदेहमुनिं कुमारकवादेन अपसादेतब्बं मञ्ञती" ति!

अस्सोसि खो आयस्मा महाकस्सपो थुल्लनन्दाय भिक्खुनिया इमं वाचं भासमानाय। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"तग्घावुसो आनन्द, थुल्लनन्दाय भिक्खुनिया सहसा अप्पटिसङ्खा वाचा भासिता। यत्वाहं, आवुसो, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो, नाभिजानामि अञ्ञं सत्थारं उद्दिसिता, अञ्ञत्र तेन भगवता अरहता सम्मासम्बुद्धेन। पुब्बे मे, आवुसो, अगारिकभूतस्स सतो एतदहोसि—'सम्बाधो घरावासो रजापथो, अब्भोकासो पब्बज्जा। नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, अपरेन समयेन पटिपिलोतिकानं सङ्घाटिं कारेत्वा ये [N.184, R.220]

"क्यों कि आयुष्मन् आनन्द! तुम इन नये भिक्षुओं के साथ....उपरिवत्....भोजन में मात्रा नहीं जानते, इसीलिये तुम्हें 'बालक' कहा जा रहा है।"

जब थुल्लतिस्सा भिक्षुणी ने उन दोनों का यह संवाद सुना तो वह अप्रसन्न हो कर बोल उठी—"आर्य महाकाश्यप, जो कि मूलत: अन्य सम्प्रदाय से इस सङ्घ में प्रव्रजित हुए हैं, वैदेहमुनि आर्य आनन्द को 'बालक' सम्बोधन कर कैसे अपमानित कर सकते हैं!"

जब आयुष्मान् महाकाश्यप ने थुल्लतिस्सा भिक्षुणी को ऐसा कहते सुना तो आयुष्मान् महाकाश्यप ने आयुष्मान् आनन्द को यों कहा—

"आयुष्मन् आनन्द! थुल्लनन्दा भिक्षुणी का सोचे समझे विना अकस्मात् ऐसा कहना उचित नहीं; क्यों कि जब से मैं दाढी मूँछ मुँडवा कर, काषाय वस्त्र पहन कर घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ हूँ तब से मैंने उन अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के अतिरिक्त किसी अन्य को अपना शास्ता (गुरु=धर्मोपदेष्टा) नहीं माना है। आयुष्मन्! पहले मैं जब गृहस्थ था, उस समय मेरे मन में यह विचार हुआ—'यह गृहस्थ धर्म बहुत जञ्जाल (झंझट) वाला है, मलिन है, जब कि प्रव्रज्याधर्म खुले आकाश के समान स्वच्छ एवं निर्मल है। इस प्रव्रज्या धर्म का, जो कि सर्वथा शुद्ध, पूर्ण, घिसे हुए शङ्ख के समान देदीप्यमान है, गृहस्थ में रह कर पालन करना सरल नहीं है, अपि तु बहुत कठिन है। तो क्यों न मैं दाढी मूँछ मुँडवा कर काषाय वस्त्र पहन कर, घर छोड़कर बेघर वाली प्रव्रज्या ग्रहण कर लूँ।' तब मैं,

लोके अरहन्तो ते उद्दिस्स केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिं। सो एवं पब्बजितो समानो अद्धानमग्गप्पटिपन्नो अद्दसं भगवन्तं अन्तरा च राजगहं अन्तरा च नाळन्दं बहुपुत्ते चेतिये निसिन्नं। दिस्वान मे एतदहोसि—'सत्थारं च वताहं पस्सेय्यं, भगवन्तमेव पस्सेय्यं; सुगतं च वताहं पस्सेय्यं, भगवन्तमेव पस्सेय्यं; सम्मासम्बुद्धं च वताहं पस्सेय्यं; भगवन्तमेव पस्सेय्यं' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, तत्थेव भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोचं—'सत्था [B.420] मे, भन्ते, भगवा, सावकोहमस्मि; सत्था मे, भन्ते, भगवा, सावकोहमस्मी' ति। एवं वुत्ते मं, आवुसो, भगवा एतदवोच—'यो खो, कस्सप, एवं सब्बचेतसा समन्नागतं सावकं अजानञ्ञेव वदेय्य जानामी ति, अपस्सञ्ञेव वदेय्य पस्सामी ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्य। अहं खो पन, कस्सप; जानञ्ञेव वदामि जानामी ति, पस्सञ्ञेव वदामि पस्सामी ति। तस्मातिह ते, कस्सप, एवं सिक्खितब्बं—तिब्बं मे हिरोत्तप्पं पच्चुपट्ठितं भविस्सति थेरेसु नवेसु मज्झिमेसू ति। एवं हि ते, कस्सप, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, कस्सप, एवं सिक्खितब्बं—यं किञ्चि धम्मं सुणिस्सामि कुसलूपसंहितं सब्बं तं अट्ठिं कत्वा मनसि करित्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोतो धम्मं सुणिस्सामी ति। एवं

आयुष्मन्, दाढी मूँछ मुँडवा कर, घर छोड़ कर पुराने चिथड़ों की एक सङ्घाटि (गुदड़ी) बना कर उसे पहन कर, लोक में जो ज्ञानी विद्यमान हैं उन्हें उद्देश्य मान कर प्रव्रजित हो गया। यों प्रव्रज्याग्रहण के बाद, जब मैं चारिका कर रहा था तो मैंने नालन्दा एवं राजगृह के बीच बहुपुत्र चैत्य में भगवान् को विराजमान देखा। उन के पवित्र दर्शनों के साथ ही मेरे मन में यह विचार उठा—'यदि मैं गुरु के रूप में किसी को देखूँ तो भगवान् को ही देखूँ; धर्मोपदेष्टा को देखूँ तो भगवान् को ही देखूँ; ज्ञानदाता (सम्यक्सम्बुद्ध) को देखूँ तो भगवान् को ही देखूँ'। आयुष्मन्! यों मैं उन भगवान् के दर्शन करते ही उन के श्रीचरणों में गिर पड़ा। और यों निवेदन करने लगा—''भन्ते! भगवान् (आप) ही मेरे गुरु हैं, मैं आपका शिष्य हूँ; आप ही मेरे गुरु हैं मैं आप का शिष्य हूँ।''

मेरे द्वारा ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मन्! भगवान् ने मुझको यों उपदेश किया—''१. काश्यप! जो इस प्रकार के चित्त से समन्वित श्रावक (शिष्य) को, विना जाने, यह कह दे कि—मैं जानता हूँ, विना देखे कह दे कि—मैं देखता हूँ, तो उस (ऐसा कहने वाले) का मस्तक शरीर से कट कर गिर जाय। परन्तु, काश्यप! मैं जान कर ही कहता हूँ—'जानता हूं', देख कर ही कहता हूँ—'देखता हूँ'। २. अतः, काश्यप! तुम्हें भी यह सीखना चाहिये—'स्थविर, मध्यम तथा नये भिक्षुओं को सम्मुख देख कर तुम में लज्जा (सङ्कोच) तथा अपत्रपा (पापभीरुता) आनी चाहिये—काश्यप! ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये।

हि ते, कस्सप, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, कस्सप, एवं सिक्खितब्बं—'सातसहगता च मे कायगतासति न विजहिस्सती ति। एवं हि ते, कस्सप, सिक्खितब्बं' ति।

"अथ खो मं, आवुसो, भगवा इमिना ओवादेन ओवदित्वा उट्ठायासना पक्कामि। सत्ताहमेव ख्वाहं आवुसो सरणो रट्ठपिण्डं भुञ्जिं। अट्ठमिया अञ्ञा उदपादि। [R.221]

"अथ खो, आवुसो, भगवा मग्गा ओक्कम्म येन अञ्ञतरं रुक्खमूलं तेनुपसङ्कमि। अथ ख्वाहं, आवुसो, पटपिलोतिकानं सङ्घाटिं चतुग्गुणं पञ्ञापेत्वा भगवन्तं एतदवोचं—'इध, भन्ते, भगवा निसीदतु, यं ममस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया' ति। निसीदि खो, आवुसो, भगवा पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज खो मं, आवुसो, [N.185] भगवा एतदवोच—'मुदुका खो त्यायं, कस्सप, पटपिलोतिकानं सङ्घाटी' ति।

'पटिग्गण्हातु मे, भन्ते, भगवा पटपिलोतिकानं सङ्घाटिं अनुकम्पं उपादाया' ति।

'धारेस्ससि पन मे त्वं, कस्सप, साणानि पंसुकूलानि निब्बसनानी' ति।

'धारेस्सामहं, भन्ते, भगवतो साणानि पंसुकूलानि निब्बसनानी' ति।

---

३. तथा, काश्यप! तुम्हें यह भी सीखना चाहिये—'मैं जो भी धर्मोपदेश सुनूँगा वह कुशलसम्पृक्त ही होगा, और उस को मन में स्थिर (बैठा) कर, समझ कर एकाग्रचित्त हो कर, कान खोल कर सुनूँगा। ४. तथा, काश्यप! तुम्हें यह भी सीखना चाहिये—'अतिशय लाभकारी कायगता स्मृति को मैं कभी न त्यागूँ।'''

तब, आयुष्मन्! भगवान् मुझे यों (उपर्युक्त) उपदेश कर आसन से उठ कर चले गये। तदनन्तर मैं सात दिन तक मुक्त हुए विना ही राष्ट्रपिण्ड (देश का अन्न) खाता रहा। आठवें दिन मुझ को दिव्य ज्ञान उत्पन्न हुआ।

"आयुष्मन्! तब भगवान् (वहाँ से चल कर कुछ दूर आगे, मार्ग से हट कर किसी वृक्ष के नीचे पहुँचे। वहाँ मैंने अपनी चिथड़ों बनी वह सङ्घाटि चौहरी कर विछा दी तथा भगवान् से निवेदन किया—'भन्ते! भगवान् (आप) यहाँ विराजें। यही मेरे लिये चिरकाल तक हितकर एवं सुखकर होगा।' भगवान् मेरा निवेदन स्वीकार कर उस सङ्घाटि पर विराज गये। बैठ कर भगवान् ने मुझ से कहा—'अरे काश्यप! तुम्हारी यह सङ्घाटि तो बहुत मृदु (मुलायम) है।'

"तो, भन्ते! आप मुझ पर कृपा करते हुए इस सङ्घाटि को ग्रहण कर लें।"

'तो क्या तूँ मेरी इस सङ्घाटि को धारण कर पायगा; क्यों कि यह सण की बनी कठोर एवं रूखी है।'

'हाँ, भन्ते! मैं इसे धारण कर लूँगा, भले ही यह कितनी भी रूखी या कठोर क्यों न हो!"

"सो ख्वाहं, आवुसो, पटपिलोतिकानं सङ्घाटिं भगवतो पादासिं। अहं पन भगवतो साणानि पंसुकूलानि निब्बसनानि पटिपज्जिं।

"यं हि तं, आवुसो, सम्मा वदमानो वदेय्य—'भगवतो पुत्तो ओरसो मुखतो जातो धम्मजो धम्मनिम्मितो धम्मदायादो, पटिग्गहितानि साणानि पंसुकूलानि निब्ब-[B.421] सनानी' ति, ममं तं सम्मा वदमानो वदेय्य—'भगवतो पुत्तो ओरसो मुखतो जातो धम्मजो धम्मनिम्मितो धम्मदायादो, पटिग्गहितानि साणानि पंसुकूलानि निब्ब-सनानी' ति।

"अहं खो, आवुसो, यावदेव आकङ्खामि विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज [R.222] विहरामि। अहं खो, आवुसो, यावदेव आकङ्खामि...पे०...।

(नवन्नं अनुपुब्बविहारसमापत्तीनं पञ्चन्नं च अभिञ्ञानं एवं वित्थारो वेदितब्बो।)

"अहं खो, आवुसो, आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामि; सत्तरतनं वा, आवुसो, नागं अड्ढट्ठमरतनं वा तालपत्तिकाय छादेतब्बं मञ्ञेय्य, योमे छ अभिञ्ञा छादेतब्बं मञ्ञेय्या" ति।

चवित्थ च पन थुल्लनन्दा भिक्खुनी ब्रह्मचरियम्हा ति॥ •

"यों, आयुष्मन्! मैने भगवान् को अपनी वह सङ्घाटि भेंट कर दी तथा उन के सण के बने चीवर मैने धारण कर लिये।

"अतः, आयुष्मन्! इस विषय में कोई ठीक से कहना चाहे कि धर्म से उत्पन्न, धर्म से निर्मित, धर्मदायाद भगवान् का पुत्र कौन है? तो वह मुझे ही इङ्गित कर कह सकता है—'भगवान् का पुत्र धर्म से उत्पन्न, धर्म से निर्मित, धर्म का उत्तराधिकारी काश्यप ही है जो भगवान् द्वारा दिये रुखे सूखे शण के चीवर धारण करता है।'

"आयुष्मन्! जब मैं चाहता हूँ कामभोगों को त्याग कर अकुशल धर्मों का त्याग कर, वितर्क विचार सहित विवेकजन्य प्रीति सुखमय प्रथम ध्यान की साधना करता हूँ। ....पूर्ववत्....।

[पीछे सूत्र में नव ध्यानभावनाओं एवं पाँच अभिज्ञाओं का विस्तार यहाँ भी कर लें।]

"आयुष्मन्! मैं आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात् कर साधना करता हूँ। (अतः) साढे सात या आठ हाथ ऊँचे हाथी को ताड़पत्र से छिपाना सम्भव है; परन्तु मेरी साधना को किसी भी उपाय से नहीं छिपाया जा सकता।"

थुल्लतिस्सा भिक्षुणी धर्मसाधना से च्युत हो गयी॥ •

१२. परम्मरणसुत्तं

१२. एकं समयं आयस्मा च महाकस्सपो आयस्मा च सारिपुत्तो बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो सायन्हसमयं [N.186] पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा महाकस्सपो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महाकस्सपेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं महाकस्सपं एतदवोच—"किं नु खो, आवुसो कस्सप, होति तथागतो परं मरणा" ति?

"अब्याकतं खो एतं, आवुसो, भगवता—'होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"किं पनावुसो, न होति तथागतो परं मरणा" ति?

"एवं पि खो, आवुसो, अब्याकतं भगवता—'न होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"किं नु खो, आवुसो, होति च न च होति तथागतो परं मरणा" ति? [R.223]

"अब्याकतं खो एतं, आवुसो, भगवता—'होति च न च होति तथागतो परं मरणा'" ति।

"किं पनावुसो, नेव होति, न न होति तथागतो परं मरणा" ति?

"एवं पि खो, आवुसो, अब्याकतं भगवता—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा'" ति।

---

१२. परम्मरणसूत्र : :अव्याकृत के विषय में; चार आर्य सत्य

१२. एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप एवं आयुष्मान् सारिपुत्र—दोनों ही वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब आयुष्मान् सारिपुत्र सायङ्काल ध्यानभावना से उठ कर आयुष्मान् महाकाश्यप के पास जाकर....एक ओर बैंठ कर यों पूछने लगे—

"क्या तथागत मरणानन्तर भी होते है?"

"आयुष्मन्! भगवान् ने तो इस प्रश्न को अव्याकरणीय कहा है।

"तो क्या तथागत मरणानन्तर नहीं होते?"

"आयुष्मन्! भगवान् यह प्रश्न भी अव्याकरणीय ही कहा है।"

"ऐसा तो नहीं होता कि तथागत मरणानन्तर होते भी हों या न भी होते हों?"

"आयुष्मन्! यह प्रश्न भी भगवान् द्वारा अव्याकरणीय ही कहा गया है।"

"क्या ऐसा तो नहीं है कि तथागत मरणानन्तर होते ही न हों?"

"आयुष्मन्! भगवान् ने यह प्रश्न भी अव्याकरणीय ही कहा गया है।"

"कस्मा चेतं, आवुसो, अब्याकतं भगवता" ति?

"न हेतं, आवुसो, अत्थसंहितं नादिब्रह्मचरियकं न निब्बिदाय न विरागाय न [B.422] निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति। तस्मा तं अब्याकतं भगवता" ति।

"अथ किञ्चरहावुसो, ब्याकतं भगवता" ति?

"इदं 'दुक्खं' ति खो, आवुसो, ब्याकतं भगवता; अयं 'दुक्खसमुदयो' ति ब्याकतं भगवता; अयं 'दुक्खनिरोधो' ति ब्याकतं भगवता; अयं 'दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति ब्याकतं भगवता" ति।

"कस्मा चेतं, आवुसो, ब्याकतं भगवता" ति?

"एतं हि, आवुसो, अत्थसंहितं एतं आदिब्रह्मचरियकं एतं निब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। तस्मा तं ब्याकतं भगवता" ति। ●

१३. सद्धम्मप्पतिरूपकसुत्तं

[N.187] १३. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो येन भगवा तेनुपसङ्कमि;

"तो आयुष्मन्! भगवान् ने यह प्रश्न अव्याकरणीय क्यों कहा है?"

"क्यों कि ऐसे प्रश्न निष्प्रयोजन, निरर्थक एवं धर्मसाधना में अनुपयोगी ही सिद्ध होते हैं। न इन प्रश्नों के समाधान से संसार के प्रति निर्वेद, वैराग्य, इन्द्रियनिरोध, चित्तशान्ति, ज्ञान, बोधि या निर्वाण की प्राप्ति में किसी प्रकार की सहायता ही मिल पाती है। अत: भगवान् ने ये प्रश्न अव्याकरणीय ही कहे।"

"तो, आयुष्मन्! भगवान् ने व्याकरणीय क्या कहा है?"

"आयुष्मन्! भगवान् ने 'यह दु:ख है'—यह व्याकरणीय कहा; 'यह दु:खसमुदय है'—यह व्याकरणीय कहा; 'यह दु:खनिरोध है'....'यह दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा है'—यह व्याकरणीय कहा।

"आयुष्मन्! इन बातों को व्याकरणीय क्यों कहा?"

"क्यों कि, आयुष्मन्! यह प्रश्न सप्रयोजन, सार्थक, धर्मसाधना में उपयोगी सिद्ध होता है। इन प्रश्नों के समाधान से संसार के प्रति निर्वेद.... पूर्ववत्। अत: भगवान् ने इसका व्याकरण (व्याख्यान=समाधान) किया"॥ ●

१३. सद्धर्मप्रतिरूपकसूत्र : : कृत्रिम धर्म से सद्धर्म का लोप

१३. एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम

उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा महाकस्सपो भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येन [R.224] पुब्बे अप्पतरानि चेव सिक्खापदानि अहेसुं बहुतरा च भिक्खू अञ्ञाय सण्ठहिंसु? को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येनेतरहि बहुतरानि चेव सिक्खापदानि अप्पतरा च भिक्खू अञ्ञाय सण्ठहन्ती" ति?

"एवं चेतं, कस्सप, होति सत्तेसु हायमानेसु सद्धम्मे अन्तरधायमाने, बहुतरानि चेव सिक्खापदानि होन्ति अप्पतरा च भिक्खू अञ्ञाय सण्ठहन्ति। न ताव, कस्सप, सद्धम्मस्स अन्तरधानं होति याव न सद्धम्मप्पतिरूपकं लोके उप्पज्जति। यतो च खो, कस्सप, सद्धम्मप्पतिरूपं लोके उप्पज्जति, अथ सद्धम्मस्स अन्तरधानं होति।

"सेय्यथापि, कस्सप, न ताव जातरूपस्स अन्तरधानं होति याव न जात-रूपप्पतिरूपकं लोके उप्पज्जति। यतो च खो, कस्सप, जातरूपप्पतिरूपकं लोके उप्पज्जति, अथ खो जातरूपस्स अन्तरधानं होति। एवमेव खो, कस्सप, न [B.423] ताव सद्धम्मस्स अन्तरधानं होति याव न सद्धम्मप्पतिरूपकं लोके उप्पज्जति। यतो च खो, कस्सप, सद्धम्मप्पतिरूपकं लोके उप्पज्जति, अथ सद्धम्मस्स अन्तरधानं होति।

में साधनाहेतुं विराजमान थे। तब आयुष्मान् महाकाश्यप....यों पूछने लगे—"भन्ते! क्या हेतु या क्या प्रत्यय है कि पुराकाल में अल्प शिक्षापद (अनुशासनसूत्र) होते थे तथा उन्हीं के सहारे अधिक से अधिक भिक्षु धर्मसाधना में लगे रहते थे? तथा, इसके विपरीत, आज अधिक शिक्षापद होने पर भी कम ही भिक्षु उन शिक्षापदों का आलम्बन ले पाते है? उसका परिणाम यह है कि बहुत कम भिक्षु अर्हत्पद (ज्ञानप्राप्ति) तक पहुँच पाते हैं?"

"काश्यप! यहाँ ऐसा होता है कि प्राणियों के हीनवृत्ति होने पर शास्ता को अधिक शिक्षापद प्रज्ञापित करने पड़ते हैं तथा अल्प भिक्षु ही अर्हत्पद में प्रतिष्ठित हो पाते हैं। काश्यप! सद्धर्म का लोप (अन्तर्धान) तब तक नहीं होता, जब तक उसकी प्रतिद्वन्द्विता में कोई कृत्रिम धर्म (सद्धर्मप्रतिरूपक) शिर नहीं उठाता। हाँ! जब कोई कृत्रिम धर्म उत्पन्न होने लगता है तो सद्धर्म का भी लोप आरम्भ हो जाता है।

"जैसे, काश्यप! सच्चा सोना बाजार में तब तक अपना वास्तविक महत्त्व (साख) बनाये रखता है जब तक कि उसके सामने कृत्रिम (नकली) सोना उस को टक्कर देने की स्थिति में नहीं आता। जब वह नकली सोना ज्यों ज्यों बाजार में अपना महत्त्व (स्थिति) बनाता चलता है त्यों त्यों वास्तविक सोना बाजार में अपना महत्त्व खोता चलता है। इसी तरह काश्यप! सद्धर्म का लोप तब तक असम्भव है जब तक कि उस का कोई प्रतिद्वन्द्वी

"न खो, कस्सप, पठवीधातु सद्धम्मं अन्तरधापेति, न आपोधातु सद्धम्मं अन्तरधापेति, न तेजोधातु सद्धम्मं अन्तरधापेति, न वायोधातु सद्धम्मं अन्तरधापेति; अथ खो इधेव ते उप्पज्जन्ति मोघपुरिसा ये इमं सद्धम्मं अन्तरधापेन्ति। सेय्यथापि, कस्सप, नावा आदिकेनेव ओपिलवति : न खो, कस्सप, एवं सद्धम्मस्स अन्तरधानं होति।

"पञ्च खोमे, कस्सप, ओक्कमनिया धम्मा सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? इध, कस्सप, भिक्खू भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो सत्थरि अगारवा विहरन्ति अप्पतिस्सा, धम्मे अगारवा विहरन्ति अप्पतिस्सा, सङ्घे अगारवा विहरन्ति अप्पतिस्सा, सिक्खाय अगारवा विहरन्ति अप्पतिस्सा, समाधिस्मिं [N.188, R.225] अगारवा बिहरन्ति अप्पतिस्सा—इमे खो, कस्सप, पञ्च ओक्कमनिया धम्मा सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति।

"पञ्च खोमे, कस्सप, धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? इध, कस्सप, भिक्खू भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो सत्थरि सगारवा विहरन्ति सप्पतिस्सा, धम्मे सगारवा विहरन्ति सप्पतिस्सा, सङ्घे सगारवा विहरन्ति सप्पतिस्सा, सिक्खाय सगारवा विहरन्ति सप्पतिस्सा, समाधिस्मिं

कृत्रिम धर्म उपस्थित न कर दिया जाय। ज्यों ही उस कृत्रिम धर्म की वृद्धि आरम्भ होगी सद्धर्म का क्षय भी आरम्भ हो जायगा।

"काश्यप! पृथ्वीधातु या अब्धातु, तेजोधातु एवं वायोधातु सद्धर्म को लुप्त नहीं करतीं; अपि तु यहीं कुछ ऐसे मूर्ख लोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिन के कारण यह सद्धर्म लुप्त होने लगता है। काश्यप! कोई नाव अधिक भार से ही जल में डूबती है, इस तरह सद्धर्म नहीं डूब पाता।

"काश्यप! ये पाँच अवक्रमणीय (प्रवेश करने योग्य) धर्म सद्धर्म को लुप्त होने के लिये बाध्य करते हैं। कौन से पाँच? काश्यप! जब सङ्घ के भिक्षु भिक्षुणियाँ उपासक एवं उपासिकाएँ— १. शास्ता का गौरव नहीं मानतीं, २. धर्म के प्रति....३. सङ्घ के प्रति....४. शिक्षा (धर्मशास्त्र) के प्रति....तथा ५. समाधि (धर्मसाधना) के प्रति गौरव नहीं करतीं, उन के सम्मान का ध्यान नहीं करतीं।

"इसके विपरीत, काश्यप! ये पाँच धर्म सद्धर्म की स्थिति, में लोप न होने में सहायक होते हैं। कौन से पाँच? १. भिक्षु भिक्षुणी उपासक उपासिकाएँ शास्ता के प्रति गौरव करती हैं, २. धर्म के प्रति...., ३. सङ्घ के प्रति....४. शिक्षा के प्रति....५. साधना के

सगारवा विहरन्ति सप्पतिस्साइमे खो, कस्सप, पञ्च धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तन्ती'' ति॥ ●

कस्सपसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

सन्तुट्ठं च अनोत्तप्पी, चन्दूपमं कुलूपकं।
जिण्णं तयो च ओवादा, झानाभिञ्ञा उपस्सयं।
चीवरं परम्मरणं, सद्धम्मप्पतिरूपकं ति॥

प्रति गौरव करती है, उनका सम्मान करती हैं तो ये पाँच कारण सद्धर्म की स्थायिता में, लोप न होने में तथा उस का नाश न होने में महत्त्वशाली होते हैं॥'' ●

काश्यपसंयुक्त समाप्त॥

इस काश्यपसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. सन्तुष्ट, २. अनवत्रपी, ३. चन्द्रोपम, ४. कुलोपग, ५. जीर्ण, ६.७.८. तीन अववादसूत्र, ९. ध्यानाभिज्ञा, १०. उपाश्रय, ११. चीवर, १२. परम्मरण एवं १३. सद्धर्मप्रतिरूपक सूत्र॥

१७. लाभसक्कारसंयुत्तं

पठमो वग्गो

१. दारुणसुत्तं

[N.189, B.424] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको कटुको फरुसो अन्तरायिको अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'उप्पन्नं लाभसक्कारसिलोकं पजहिस्साम, न च नो उप्पन्नो लाभसक्कारसिलोको चित्तं परियादाय ठस्सती' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥ •

२. बळिससुत्तं

२. ...सावत्थियं विहरति। "दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको कटुको फरुसो अन्तरायिको अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय। सेय्यथापि, भिक्खवे, बाळिसिको आमिसगतं बळिसं गम्भीरे उदकरहदे पक्खिपेय्य। तमेनं अञ्ञतरो

---

१७. लाभसत्कारसंयुक्त

१. प्रथम वर्ग

१. दारुणसूत्र : : **लाभ सत्कार दारुण है**

१. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती के** अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम विहार में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को....पूर्ववत्....यह उपदेश किया—

"भिक्षुओ! अद्वितीय एवं लोकोत्तर निर्वाण की प्राप्ति में जनता से मिलने वाला लाभ सत्कार भिक्षु के लिये दारुण (कठिन), कटुफलदायी, तीक्ष्ण, एवं साधना में विघ्नकारक है। अत:, भिक्षुओ! तुम्हें यह शिक्षा लेनी चाहिये—"उत्पन्न (प्राप्त) लाभ सत्कार को छोडेंगे, प्राप्त लाभ सत्कार को अपने मन में कोई महत्त्व न देंगे।" ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये॥ •

२. वडिशसूत्र : **:दारुण लाभ सत्कार में वंशी की उपमा**

२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! यह लाभसत्कार से प्राप्त प्रशंसा दु:खदायी, कटु, व्यवहार में कर्कश एवं साधना में विघ्नकारक एवं अनुत्तर योगक्षेम की अधिगति में बाधक है। अत: भिक्षुओ! तुम्हें यह समझ लेना चाहिये—"इस लाभ सत्कार

आमिसचक्खु मच्छो गिलेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, मच्छो गिलबळिसो बाळिसिकस्स अनयं आपन्नो ब्यसनं आपन्नो यथाकामकरणीयो बाळिसिकस्स।

"बाळिसिको ति खो, भिक्खवे, मारस्सेतं पापिमतो अधिवचनं। बळिसं ति खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोकस्सेतं अधिवचनं। यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु उप्पन्नं लाभसक्कारसिलोकं अस्सादेति निकामेति, अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु गिलबळिसो मारस्स अनयं आपन्नो ब्यसनं आपन्नो यथाकामकरणीयो पापिमतो। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको कटुको फरुसो अन्तरायिको [B.425] अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं— 'उप्पन्नं लाभसक्कारसिलोकं पजहिस्साम, न च नो उप्पन्नो लाभसक्कार- [N.190] सिलोको चित्तं परियादाय ठस्सती' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति। ●

३. कुम्मसुत्तं

३. सावत्थियं विहरति। "दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको [R.227] ...पे०...अधिगमाय। भूतपुब्बं, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं उदकरहदे महाकुम्मकुलं

से उत्पन्न प्रशंसा को त्याग देंगे, उत्पन्न लाभ सत्कार की बात को मन में घर नहीं करने देंगे"। जैसे कोई मत्स्यघाती वंसी (वडिश=काँटे) में मांसखण्ड लगा कर उस काँटे को गहरे जल में फैंक दे। वहाँ कोई मछली उस मांसखण्ड के लोभ में उस काँटे को निगलने का प्रयास करे; इस तरह, भिक्षुओ! वह मछली मांस के लोभ में काँटे को निगल कर सङ्कट (अनय) में पड़ जाती है, व्यसन में पड़ जाती है, और अन्त में वह मत्स्यघाती की पकड़ में आ जाती है।

"यहाँ (इस प्रकरण में) भिक्षुओ! मत्स्यघाती (वाडिशिक) मार को समझना चाहिये। सामाजिक लाभसत्कार को वडिश (वंसी) समझना चाहिये। भिक्षु द्वारा उस उत्पन्न लाभसत्कार का उपभोग करना ही मछली द्वारा काँटा निगलना समझना चाहिये। यह मांसखण्ड खाना ही मार द्वारा सङ्कट उत्पन्न करना है। इस के सहारे, वह मार उस का यथेच्छ उपयोग करता है। भिक्षुओ! यह लाभसत्कार की प्रशंसा किसी भी भिक्षु को सङ्कट एवं दु:ख में फँसाने वाली, परिणाम में कटु, कर्कश, साधना में विघ्नकारक तथा अनुत्तर योगक्षेम की प्राप्ति में बाधक है। अत: भिक्षुओ! इस से तुम को यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—"हम प्राप्त लाभसत्कार को त्याग देंगे तथा लाभसत्कार की प्राप्ति के विषय में अपने मन में कभी चिन्तन नहीं करेंगे।" भिक्षुओ! ऐसा ही तुम्हें सीखना चाहिये॥

●

३. कूर्मसूत्र : : लाभसत्कार-दारुणता में कूर्म की उपमा

३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! यह लाभ....पूर्ववत्....अधिगति

चिरनिवासि अहोसि। अथ खो, भिक्खवे, अञ्ञतरो कुम्मो अञ्ञतरं कुम्मं एतदवोच—'मा खो त्वं, तात कुम्म, एतं पदेसं अगमासी' ति। अगमासि खो, भिक्खवे, सो कुम्मो तं पदेसं। तमेनं लुद्दो पपताय विज्झि। अथ खो, भिक्खवे, सो कुम्मो येन सो कुम्मो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो, भिक्खवे, सो कुम्मो तं कुम्मं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान तं कुम्म एतदवोच—

"कच्चि त्वं, तात कुम्म, न तं पदेसं अगमासी' ति?

'अगमासिं ख्वाहं, तात कुम्म, तं पदेसं' ति।

'कच्चि पनासि, तात कुम्म, अक्खतो अनुपहतो' ति?

'अक्खतो खोम्हि, तात कुम्म, अनुपहतो, अत्थि च मे इदं सुत्तकं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धं' ति।

'तग्घसि, तात कुम्म, खतो, तग्घ उपहतो। एतेन हि ते, तात कुम्म, सुत्तकेन पितरो च पितामहा च अनयं आपन्ना ब्यसनं आपन्ना। गच्छ दानि त्वं, तात कुम्म, न दानि त्वं अम्हाकं' ति।

"लुद्दो ति खो, भिक्खवे, मारस्सेतं पापिमतो अधिवचनं। पपता ति खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोकस्सेतं अधिवचनं। सुत्तकं ति खो, भिक्खवे, नन्दि-रागस्सेतं अधिवचनं। यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु उप्पन्नं लाभसक्कारसिलोकं

में बाधक है। भिक्षुओ! किसी समय एक कछुअे ने किसी दूसरे कछुअे से कहा—'अमुक सरोवर में न जाना।' परन्तु वह दूसरा कछुआ न माना और वहाँ चला ही गया। वहाँ किसी व्याध ने उस के पाँव के पंजे में एक धागा बाँध दिया। तब, भिक्षुओ! वह कछुआ पुनः अपने पुराने स्थान पर पहले कछुअे के पास आया। उसे देखकर पहले कछुए ने पूछा—

"अरे भाई कछुए! तुम उस प्रदेश (सरोवर) में गये तो नहीं थे?"

"हाँ, भाई! मैं वहाँ गया था।"

"तुम को वहाँ किसी ने क्षत-विक्षित तो नहीं कर दिया?"

"क्षत-विक्षत तो नहीं किया, परन्तु तभी से यह धागा मेरे पीछे पीछे लगा आ रहा है।"

"तब तो तुम यथार्थ में क्षत विक्षत हो चुके हो। इसी धागे (सूत्र) के बन्धन से तुम्हारे पिता, पितामह भी सङ्कट में पड़े थे, मरणान्तक दुःख को प्राप्त हुए थे। अब, भाई! तुम वहीं जाओ, अब तुम हमारे नहीं रहे!"

"भिक्षुओ! यहाँ व्याध मार को समझना चाहिये। यह धागा लाभसत्कार के स्थान पर है। सूत (धागा) के स्थान पर नन्दी राग को समझो। भिक्षुओ! जो कोई भी लोभी

अस्सादेति निकामेति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु गिद्धो पपताय अनयं आपन्नो ब्यसनं आपन्नो यथाकामकरणीयो पापिमतो। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, [R.228] लाभसक्कारसिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

४. दीघलोमिकसुत्तं

४. सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कार- [N.191, B.426] सिलोको...पे०...अधिगमाय। सेय्यथापि, भिक्खवे, दीघलोमिका एळका कण्टक-गहनं पविसेय्य। सा तत्र तत्र सज्जेय्य, तत्र तत्र गय्हेय्य, तत्र तत्र बज्झेय्य, तत्र तत्र अनयब्यसनं आपज्जेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो भिक्खु लाभसक्कार-सिलोकेन अभिभूतो परियादिण्णचित्तो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसति। सो तत्र तत्र सज्जति, तत्र तत्र गय्हति, तत्र तत्र बज्झति, तत्र तत्र अनयब्यसनं आपज्जति। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कार-सिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति। ●

५. मीळ्हकसुत्तं

५. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०...

भिक्षु उत्पन्न लाभसत्कार के चक्र में फँस जाता है, उसका रसास्वाद लेना चाहता है वह सूत से बन्धे कछुए की तरह सङ्कट में पड़ जाता है। भिक्षुओ! यह लाभसत्कार की चाह....पूर्ववत्....सीखना चाहिये॥ ●

४. दीर्घलोमिकसूत्र : : लम्बे बाल वाली भेड़ की उपमा

४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! यह लाभसत्कार की चाह....पूर्ववत्....अनुत्तर योगक्षेम की प्राप्ति में बाधक है। जैसे, भिक्षुओ! लम्बे बालों वाली भेड़ किन्हीं कण्टकाकीर्ण झाड़ियों में चली जाय, तो वहाँ वह जहाँ जहाँ काँटों को अपने शरीर के किसी अङ्ग से स्पर्श करेगी, वहाँ वहाँ फँसती चली जायगी, सङ्कट में पड़ती जायगी। इसी तरह, भिक्षुओ! यहाँ जो भी कोई भिक्षु लाभसत्कार में आसक्त हो कर उसी की प्राप्ति में मन लगाता हुआ प्रात:काल वस्त्र व्यवस्थित कर, पात्र चीवर ले कर ग्राम या कस्बे में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हो। वहाँ उस की जिस जिस वस्तु में आसक्ति हो उसे लेता चले, उस से बन्धता चले तथा उस के कारण नये नये सङ्कटों तथा दु:खों से घिर जाय। ऐसी कष्ट कर तथा बन्धनों में डालने वाली है यह लाभसत्कार की चाह। ....पूर्ववत्....ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये॥'' ●

५. मीढघटसूत्र : : लाभसत्कार से प्रसन्न होना अहितकर

५. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! यह लाभसत्कार की लगन

अधिगमाय। सेय्यथापि, भिक्खवे, मीळ्हका गूथादी गूथपूरा पुण्णा गूथस्स। पुरतो चस्स महागूथपुञ्जो। सा तेन अञ्ञा मीळ्हका अतिमञ्ञेय्य—'अहम्हि गूथादी गूथपूरा पुण्णा गूथस्स, पुरतो च म्यायं महागूथपुञ्जो' ति। एवमेव खो, भिक्खवे, [R.229] इधेकच्चो भिक्खु लाभसक्कारसिलोकेन अभिभूतो परियादिण्णचित्तो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसति। सो तत्थ भुत्तावी च होति यावदत्थो, निमन्तितो च स्वातनाय, पिण्डपातो चस्स पूरो। सो आरामं गन्त्वा भिक्खुगणस्स मज्झे विकत्थति—'भुत्तावी चम्हि यावदत्थो, निमन्तितो चम्हि स्वातनाय, पिण्डपातो च म्यायं पूरो, लाभी चम्हि चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं, इमे पनञ्ञे भिक्खू अप्पपुञ्ञा अप्पेसक्खा न लाभिनो चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं' ति। सो तेन लाभसक्कारसिलोकेन अभिभूतो परियादिण्णचित्तो अञ्ञे पेसले भिक्खू अतिमञ्ञति। तं हि तस्स, भिक्खवे, मोघपुरिसस्स होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय। एवं दारुणो खो, [N.192] भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०...एवं हि वो भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति। •

६. असनिसुत्तं

६. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०...

....पूर्ववत्....अनुत्तर योगक्षेम की प्राप्ति में बाधक है। जैसे, भिक्षुओ! विष्ठा (मल) खाने वाला विष्ठा का कीड़ा विष्ठा से भरा हुआ तथा विष्ठा से लिपटा हुआ हो। उस के चारों ओर भी विष्ठासमूह एकत्र हो। तब वह कीड़ा दूसरे विष्ठा खाने वाले से अभिमान करे—'मैं इतना अधिक विष्ठा पाने वाला....विष्ठा से लिपटा हुआ हूँ।' इसी तरह, भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु लाभसत्कार की लगन में लगा हुआ प्रातःकाल वस्त्र ठीक से पहन कर पात्र चीवर ले कर ग्राम या निगम में जाय। वहाँ वह यथेच्छ भोजन प्राप्त कर दूसरे दिन के लिये भी निमन्त्रण प्राप्त कर ले भिक्षा भी उसे मनचाही मिले। तब वह विहार में आ कर दूसरे भिक्षुओं से गर्वपूर्वक यह प्रसङ्ग सुनावे।..."मुझे भिक्षा भी पूरी मिली, मुझे चीवर, पिण्डपात, शयनासन एवं ग्लानप्रत्यभैषज्यपरिष्कार चारों ही प्रत्यय अतिमात्रा में मिले। इन अन्य भिक्षुओं को मेरी अपेक्षा कुछ भी नहीं मिला समझो'। वह इस लाभसत्कार से अन्य सज्जन स्थविर भिक्षुओं की अवमानना करने लगे। यह अकर्म उस भिक्षु के लिये दीर्घकाल तक अहितकर एवं दुःखप्रद होगा। क्यों कि यह लाभसत्कार की लगन ऐसी ही दारुण....पूर्ववत्....ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये''॥ •

६. अशनिसूत्र : : लाभसत्कार की बिजली से उपमा

६. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! लाभसत्कार....पूर्ववत्....अनुत्तर

अधिगमाय। कं, भिक्खवे, असनिविचक्कं आगच्छतु, सेखं अप्पत्तमानसं [B.427] लाभसक्कारसिलोको अनुपापुणातु।

"असनिविचक्कं ति खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोकस्सेतं अधिवचनं। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥

●

७. दिद्धसुत्तं

७. ...सावत्थियं विहरति। "दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको [R.230] ...पे०... अधिगमाय। कं, भिक्खवे, दिद्धगतेन विसल्लेन सल्लेन विज्झतु, सेखं अप्पत्तमानसं लाभसक्कारसिलोको अनुपापुणातु।

"सल्लं ति खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोकस्सेतं अधिवचनं। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥

८. सिङ्गालसुत्तं

८. ...सावत्थियं विहरति। "दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको [B.428] ...पे०...अधिगमाय। अस्सुत्थ नो तुम्हे, भिक्खवे, रत्तिया पच्चूससमयं जरसिङ्गालस्स वस्समानस्सा" ति?

"एवं, भन्ते"।

योगक्षेम की प्राप्ति में बाधक है। किसी पर बिजली गिरे या किसी भिक्षु को लाभसत्कार की उपलब्धि हो—दोनों समान रूप से दुःखदायी हैं।

"भिक्षुओ! इस अशनि (बिजली) पात के स्थान पर लाभसत्कार को समझो। यों, भिक्षुओ! तुम्हें....पूर्ववत्....यह सीखना चाहिये"॥

●

७. दिग्धसूत्र : : विषयुक्त वाण की उपमा

७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! लाभसत्कार....पूर्ववत्....अनुत्तर योगक्षेम की प्राप्ति में बाधक है। किसी को विषसम्पृक्त बाण से बींध दिया जाय या किसी भिक्षु को लाभसत्कार मिलने लगे—दोनों ही बातें समान रूप से दुःखदायी हैं।

"भिक्षुओ! इस लाभसत्कार को विषदिग्ध बाण के समान समझो। यों, भिक्षुओ! तुम्हें....पूर्ववत्....सीखना चाहिये॥"

●

८. शृगालसूत्र : : लाभसत्कार की शृगाल से उपमा

८. श्रावस्ती में साधना के समय....। भिक्षुओ! लाभसत्कार....पूर्ववत्....अनुत्तर योगक्षेम की प्राप्ति में बाधक है। भिक्षुओ! क्या तुमने रात्रि के अन्तिम प्रहर में किसी शृगाल (गीदड़) को बोलते सुना है?"

''एसो खो, भिक्खवे, जरसिङ्गालो उक्कण्डकेन नाम रोगजातेन फुट्ठो नेव बिलगतो रमति, न रुक्खमूलगतो रमति, न अज्झोकासगतो रमति; येन येन गच्छति, [N.193] यत्थ यत्थ तिट्ठति, यत्थ यत्थ निसीदति, यत्थ यत्थ निपज्जति; तत्थ तत्थ अनयब्यसनं आपज्जति। एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो भिक्खु लाभसक्कार-सिलोकेन अभिभूतो परियादिण्णचित्तो नेव सुञ्ञागारगतो रमति, न रुक्खमूलगतो रमति, न अज्झोकासगतो रमति; येन येन गच्छति, यत्थ यत्थ तिट्ठति, यत्थ यत्थ [R.231] निसीदति, यत्थ यत्थ निपज्जति; तत्थ तत्थ अनयब्यसनं आपज्जति। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खि-तब्बं'' ति। ●

९. वेरम्भसुत्तं

९. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०... अधिगमाय। उपरि, भिक्खवे, आकासे वेरम्भा नाम वाता वायन्ति। तत्थ यो पक्खी गच्छति तमेनं वेरम्भा वाता खिपन्ति। तस्स वेरम्भवातक्खित्तस्स अञ्ञेनेव पादा गच्छन्ति, अञ्ञेन पक्खा गच्छन्ति, अञ्ञेन सीसं गच्छति, अञ्ञेन कायो गच्छति। एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो भिक्खु लाभसक्कारसिलोकेन अभिभूतो परिया-

---

''हाँ, भन्ते!''

''भिक्षुओ! उस समय इस को उत्कण्ठा रोग हो जाता है। तब इसका न तो बिल (माँद) में मन लगता है, न किसी वृक्ष के नीचे, न खुले आकाश (मैदान) में ही मन लगता है। वह जहाँ जहाँ जाता है, जहाँ खड़ा होता है, जहाँ बैठता है, जहाँ लेटता है, वहाँ वहाँ उसे कष्ट होता है; इसी तरह, भिक्षुओ! कोई भिक्षु लाभसत्कार के वश हो कर उसी की प्राप्ति में मन लगा कर न एकान्त स्थान में सुख पाता है, न किसी वृक्ष के नीचे, न खुले मैदान में ही सुख पाता है। वह जहाँ जहाँ जाता है, जहाँ खड़ा होता है....पूर्ववत्....वहाँ वहाँ उसे कष्ट होता है। भिक्षुओ! ऐसा कष्टदायी है यह लाभसत्कार का रोग? ....पूर्ववत्....ऐसा सीखना चाहिये''॥ ●

९. वेरम्भवातसूत्र : : लाभसत्कार की वेरम्भवात से उपमा

९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। भिक्षुओ! यह लाभसत्कार की लगन बहुत दुःखदायी....पूर्ववत्....अनुत्तर योगक्षेम की प्राप्ति में बाधक है। भिक्षुओ! ऊपर आकाश में वेरम्भ नामक वायु (पर्वतों में उठने वाली वायु के तेज झोंके) जब चलती है तो उस समय आकाश में उडने वाले किसी भी पक्षी को गिरा देती है। उस समय उस वेरम्भ वायु के झोकों से गिरने वाले पक्षी के पंख किधर ही जाते हैं, पैर किधर ही जाते हैं, शिर किधर ही जाता है तथा शरीर किधर ही जाता है। इसी तरह, भिक्षुओ! यहाँ कोई सामाजिक

दिण्णचित्तो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसति अरक्खितेनेव कायेन, अरक्खिताय वाचाय, अरक्खितेन चित्तेन, अनु-पट्ठिताय सतिया, असंवुतेहि इन्द्रियेहि। सो तत्थ पस्सति मातुगामं दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा। तस्स मातुगामं दिस्वा दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा रागो चित्तं अनुद्धंसेति। सो रागानुद्धंसितेन चित्तेन सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। तस्स अञ्ञे चीवरं हरन्ति, अञ्ञे पत्तं हरन्ति, अञ्ञे निसीदनं हरन्ति, अञ्ञे सूचिघरं हरन्ति, वेरम्भ-वातक्खित्तस्सेव सकुणस्स। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको ...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥

१०. सगाथकसुत्तं

१०. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको [B.429] ...पे०...अधिगमाय। इधाहं, भिक्खवे, एकच्चं पुग्गलं पस्सामि सक्कारेन अभिभूतं परियादिण्णचित्तं, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं [R.232, N.194] निरयं उपपन्नं। इध पनाहं, भिक्खवे, एकच्चं पुग्गलं पस्सामि असक्कारेन अभिभूतं परियादिण्णचित्तं, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्नं। इध पनाहं, भिक्खवे, एकच्चं पुग्गलं पस्सामि सक्कारेन च असक्कारेन च तदुभयेन अभिभूतं

लाभसत्कार के वश में हो कर....पूर्ववत्....काय, वाक्, मन, स्मृति एवं इन्द्रियों में चञ्चलता रखता हुआ ग्राम में प्रविष्ट होता है। वह वहाँ स्त्रियों को निर्वस्त्र देखता है, उन्हें निर्वस्त्र देख कर उस के चित्त में उनके प्रति राग उत्पन्न होने लगता है। वह उस चित्त के कारण धर्मानुशासन त्याग कर गृहस्थ धर्म की ओर झुकता है। उस समय उस के चीवर को कोई उठा ले जाता है, तो पात्र को कोई, तथा आसन को कोई तो उस के सूचीघर (झोले) को कोई उठा ले जाता है उसी वेरम्भ वायु से घिरे आकाशीय पक्षी के अङ्गों की तरह। ऐसा कष्टदायक होता है, भिक्षुओ! यह लाभसत्कार का मोह।....पूर्ववत्....भिक्षुओ! ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये॥''

१०. सगाथकसूत्र : : लाभसत्कार की दारुणता

१०. श्रावस्ती में साधना के समय....। ''भिक्षुओ! यह लाभसत्कार प्राप्ति का मोह बहुत कष्टदायक होता है।....पूर्ववत्....। भिक्षुओ! यहाँ मैं किसी पुद्गल को देखता हूँ जो इस देहपात के बाद दुर्गतिमय नरक में जा गिरता है। फिर वैसे ही दूसरे पुद्गल को देखता हूँ जो लौकिक लाभसत्कार से असत्कृत होता हुआ, चित्त को वश में कर ठीक से धर्मसाधना करने पर भी देहपात के बाद, दुर्गतिमय नरक में ही गिरते देखता हूँ। फिर मैं एक तीसरे पुद्गल को देखता हूँ जो उक्त सत्कार तथा असत्कार—दोनों के मध्य की स्थिति

परियादिण्णचित्तं, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्नं। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति।

११. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

''यस्स सक्करियमानस्स, असक्कारेन चूभयं।
समाधि न विकम्पति, अप्पमाणविहारिनो॥
''तं झायिनं साततिकं, सुखुमं दिट्ठिविपस्सकं।
उपादानक्खयारामं, आहु सप्पुरिसो इती'' ति॥

पठमो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

दारुणो बळिसं कुम्मं, दीघलोमि च मीळ्हकं।
असनि दिद्धं सिङ्गालं, वेरम्भेन सगाथकं ति॥

में रहता हुआ चित्त को निगृहीत कर साधना करता हुआ भी मरणानन्तर दुर्गतिमय नरक में ही गिरता है। भिक्षुओ! इस कष्टदायी लाभ की ऐसी कटुफलमय महिमा है। ....पूर्ववत्....भिक्षुओ! तुम्हें ऐसी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये''॥

११. भगवान् ने यह शिक्षा दी। यह कह कर भगवान् फिर इस गाथा के माध्यम से यों बोले—''जो सत्कार या असत्कार—दोनों के ही मिलने या न मिलने पर भी अप्रमादपूर्वक साधना करता हुआ समाधि को च्युत नहीं होने देता, उस ध्यान में तत्पर, सूक्ष्मद्रष्टा सत्पुरुष को 'उपादान क्षीण हो कर साधना में रत रहने वाला' कहते हैं॥''

प्रथम वर्ग समाप्त॥

इस प्रथम वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. दारुण, २. बडिश, ३. कूर्म, ४. दीर्घलोमिक, ५. मीळ्हक, ६. अशनि, ७. दिग्ध, ८. शृगाल, ९. वेरम्भ, एवं १०. सगाथकसूत्र॥

२. दुतियो वग्गो

११. सुवण्णपातिसुत्तं

१२. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कार-[B.430, R.233] सिलोको...पे०...अधिगमाय। इधाहं, भिक्खवे, एकच्चं पुग्गलं एवं चेतसा चेतो परिच्च पजानामि—'न चायमायस्मा सुवण्णपातिया पि रूपियचुण्णपरिपूराय हेतु सम्पजानमुसा भासेय्या' ति। तमेनं पस्सामि अपरेन समयेन लाभसक्कारसिलोकेन अभिभूतं परियादिण्णचित्तं सम्पजानमुसा भासन्तं। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभ-सक्कारसिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

१२. रूपियपातिसुत्तं

१३. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको [N.195] ...पे०...इधाहं, भिक्खवे, एकच्चं पुग्गलं एवं चेतसा चेतो परिच्च पजानामि—'न चायमायस्मा रूपियपातिया पि सुवण्णचुण्णपरिपूराय हेतु सम्पजानमुसा भासेय्या' ति। तमेनं पस्सामि अपरेन समयेन लाभसक्कारसिलोकेन अभिभूतं परियादिण्णचित्तं सम्पजानमुसा भासन्तं। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

१३-२०. सुवण्णनिक्खसुत्तादिअट्ठकं

१४-२१. सावत्थियं विहरति। ''इधाहं, भिक्खवे, एकच्चं पुग्गलं एवं

द्वितीय वर्ग

११. सुवर्णपातिसूत्र : : लाभ सत्कार की भयङ्करता

१२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! यह लाभसत्कार में लगाव बहुत कष्टदायक होता है। ....पूर्ववत्....। भिक्षुओ! यहाँ मैं एक ऐसे पुद्गल को जानता हूँ जो पहले चान्दी से भरी हुई सोने की थाली मिलने की आशा में भी जान बूझ कर झूठ नहीं बोलता था। आगे चल कर मैं उसी को देखता हूँ कि वह आज लाभसत्कार प्राप्ति की आशा में जान बूझ कर असत्य बोलता रहता है। भिक्षुओ! यह लाभसत्कार प्राप्ति की आशा ऐसी ही दुःखदायी है। ....पूर्ववत्....ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये॥ ●

१२. रूप्यपातिसूत्र : : लाभ सत्कार की भयङ्करता

१३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। भिक्षुओ! लाभ सत्कार-प्राप्ति की आशा ऐसी ही दुःखदायी होती है। भिक्षुओ! मैं आवर्जन द्वारा एक ऐसे पुद्गल को जानता हूँ जो पहले कभी सुवर्ण से भरी चाँदी की थाली की प्राप्ति की आशा में भी कभी जान बूझकर असत्य नहीं बोलता था....पूर्ववत्....सीखना चाहिये॥ ●

[R.234] चेतसा चेतो परिच्च पजानामि—'न चायमायस्मा सुवण्णनिक्खस्सा पि हेतु ...पे०... सुवण्णनिक्खसतस्सा पि हेतु...सिङ्गीनिक्खस्सा पि हेतु...सिङ्गीनिक्खसतस्सा पि हेतु...पठविया पि जातरूपपरिपूराय हेतु...आमिसकिञ्चिक्खहेतु पि... जीवितहेतु पि...जनपदकल्याणिया पि हेतु सम्पजानमुसा भासेय्या' ति। तमेनं पस्सामि अपरेन समयेन लाभसक्कारसिलोकेन अभिभूतं परियादिण्णचित्तं सम्पजानमुसा भासन्तं। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको ...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ •

दुतियो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

[B.431] द्वे पाति द्वे सुवण्णा च, सिङ्गीहि अपरे दुवे।
पठवी किञ्चिक्खजीवितं, जनपदकल्याणिया दसा ति॥ •

१३-२०. सुवर्णनिष्कसूत्रादि (अष्टक): : लाभ सत्कार की भयङ्करता

१४. ...सुवर्णनिष्क की प्राप्ति की आशा में भी जानबूझकर असत्य.... ॥ •
१५. ....एक सौ सुवर्णनिष्क प्राप्ति की आशा में भी जानबूझकर असत्य.... ॥ •
१६. ....शृङ्गीनिष्क प्राप्ति की आशा में भी जानबूझकर असत्य.... ॥ •
१७. ....सौ शृङ्गीनिष्कों की प्राप्ति की आशा में भी....पूर्ववत्.... ॥ •
१७. ....चाँदी से भरी समस्त पृथ्वी की प्राप्ति की आशा में भी....पूर्ववत्.... ॥ •
१८. ....किसी भी सांसारिक धन की प्राप्ति की आशा में भी....पूर्ववत्.... ॥ •
१९. ....प्राणसङ्कट होने पर भी....पूर्ववत्.... ॥ •
२०. ....सुन्दरतम नारी की प्राप्ति की आशा में भी....पूर्ववत्.... ॥ •

द्वितीय वर्ग समाप्त ॥

इस द्वितीय वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. सुवर्णपाती, २. रजतपाती, ३-४. सुवर्णनिष्क, ५-६. शृङ्गीनिष्क, ७. पृथ्वी, ८. सांसारिक धन, ९. प्राणसङ्कट एवं जनपदकल्याणी सूत्र ॥ •

३. ततियो वग्गो

२१. मातुगामसुत्तं

२२. ...सावत्थियं विहरति। "दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०... न तस्स, भिक्खवे, मातुगामो एको एकस्स चित्तं परियादाय तिट्ठति यस्स [R.235] लाभसक्कारसिलोको चित्तं परियादाय तिट्ठति। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, [N.196] लाभसक्कारसिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥

●

२२. कल्याणीसुत्तं

२३. ...सावत्थियं विहरति। "दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०... न तस्स, भिक्खवे, जनपदकल्याणी एका एकस्स चित्तं परियादाय तिट्ठति यस्स लाभसक्कारसिलोको चित्तं परियादाय तिट्ठति। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कार-सिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥

●

२३. एकपुत्तकसुत्तं

२४. ...सावत्थियं विहरति। "दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०... सद्धा, भिक्खवे, उपासिका एकपुत्तकं पियं मनापं एवं सम्मा आयाचमाना आयाचेय्य—'तादिसो, तात, भवाहि यादिसो चित्तो च गहपति हत्थको च आळवको' ति। एसा, भिक्खवे, तुला एतं पमाणं मम सावकानं उपासकानं, यदिदं चित्तो च गहपति हत्थको च आळवको। 'सचे खो त्वं, तात, अगारस्मा अनगारियं

तृतीय वर्ग

२१. मातृग्रामसूत्र : : लाभसत्कार का जञ्जाल

२२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ! लाभसत्कार का जञ्जाल दुःखदायक ही होता है। भिक्षुओ! कोई अकेली स्त्री भी उसके चित्त को लुभाने में समर्थ नहीं हो सकती जिस का चित्त लाभसत्कार की प्राप्ति के फन्दे में फँस जाता है। ....पूर्ववत्....ऐसा सीखना चाहिये॥

●

२२. कल्याणीसूत्र : : लाभसत्कार का जञ्जाल

२३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ....पूर्ववत्....कोई अकेली वेश्या (जनपदकल्याणी) भी उसके चित्त को....पूर्ववत्....ऐसा सीखना चाहिये॥

●

२३. एकपुत्रसूत्र : : लाभसत्कार का जञ्जाल

२४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "भिक्षुओ!....पूर्ववत्....कोई श्रद्धालु उपासिका अपने प्रिय तथा सुन्दर एकाकी पुत्र को यह शिक्षा दे—'पुत्र! तुम ऐसे धर्म के प्रति ऐसे श्रद्धावान् बनो जैसा चित्त गृहपति तथा हस्तक आळवक था।' क्यों कि मेरे गृहस्थ

पब्बजसि; तादिसो, तात, भवाहि यादिसा सारिपुत्तमोग्गल्लाना' ति। एसा, भिक्खवे, [B.432] तुला एतं पमाणं मम सावकानं भिक्खूनं, यदिदं सारिपुत्तमोग्गलाना। मा च खो त्वं, तात, सेखं अप्पत्तमानसं लाभसक्कारसिलोको अनुपापुणातू ति। तं चे, [R.236] भिक्खवे, भिक्खुं सेखं अप्पत्तमानसं लाभसक्कारसिलोको अनुपापुणाति, सो तस्स होति अन्तरायाय। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ •

२४. एकधीतुसुत्तं

२५. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०... सद्धा भिक्खवे उपासिका एकं धीतरं पियं मनापं एवं सम्मा आयाचमाना आयाचेय्य—'तादिसा, अय्ये, भवाहि यादिसा खुज्जुत्तरा च उपासिका वेळुकण्डकिया च नन्दमाता' ति। एसा, भिक्खवे, तुला एतं पमाणं मम सावकानं उपासकानं, यदिदं [N.197] खुज्जुत्तरा च उपासिका वेळुकण्डकिया च नन्दमाता। 'सचे खो त्वं, अय्ये, अगारस्मा अनगारियं पब्बजसि; तादिसा, अय्ये, भवाहि यादिसा खेमा च भिक्खुनी उप्पलवण्णा चा' ति। एसा, भिक्खवे, तुला एतं पमाणं मम साविकानं भिक्खुनीनं, यदिदं खेमा च भिक्खुनी उप्पलवण्णा च। मा च खो त्वं, अय्ये, सेखं अप्पत्तमानसं लाभसक्कारसिलोको अनुपापुणातू ति। तं चे, भिक्खवे, भिक्खुनिं सेखं अप्पत्तमानसं लाभसक्कारसिलोको अनुपापुणाति, सो तस्सा होति अन्तरायाय। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ •

उपासकों में ये दोनों ही आदर्श उपासक माने जाते हैं। अथवा 'तात! तुम यदि प्रव्रज्या लो तो ऐसे भिक्षु बनना, जैसे सारिपुत्र मौद्गल्यायन है।' क्यों कि मेरे समस्त भिक्षुसङ्घ में ये दो आदर्श (तुला, प्रमाण) भिक्षु है। 'तात! लाभ आदि के जञ्जाल में न फँस जाना, अपि तु अप्रमत्त हो कर शिक्षापालन में तत्पर रहना; क्यों कि इस लाभादि के जञ्जाल में फँसना तुम्हारे लिये विघ्नकारक ही होगा।' ....पूर्ववत्....ऐसा सीखना चाहिये''॥ •

२४. एकधीतासूत्र : : लाभसत्कार का जञ्जाल

२५. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।''भिक्षुओ! ....पूर्ववत्....कोई श्रद्धालु उपासिका अपनी पुत्री को यह शिक्षा दे—'पुत्रि! तुम धर्म के प्रति ऐसी श्रद्धावती बनो जैसी खुज्जुत्तरा उपासिका तथा वेणुकण्टकिया नन्दमाता हैं।' ये दोनों उपासिकाएं ही मेरे उपासिकासङ्घ में आदर्श उपासिका हैं। अथवा यह शिक्षा दे—'यदि तुम प्रव्रज्या लो तो ऐसी भिक्षुणी बनना, जैसी यह क्षेमा भिक्षुणी या उत्पलवर्णा भिक्षुणी हैं।' क्यों कि भिक्षुओ! मेरे भिक्षुणीसङ्घ में ये ही दो आदर्श (तुला या प्रमाण) भिक्षुणियाँ है। 'पुत्रि! तुम लाभ आदि

२५. पठमसमणब्राह्मणसुत्तं

२६. ...सावत्थियं विहरति। ''ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा [R.237] ब्राह्मणा वा लाभसक्कारसिलोकस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानन्ति, न मे ते, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु वा समणसम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मणसम्मता, न च पन ते आयस्मन्ता सामञ्ञत्थं वा ब्रह्मञ्ञत्थं वा दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति। ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा लाभसक्कारसिलोकस्स अस्सादं च आदीनवं [B.433] च निस्सरणं च यथाभूतं पजानन्ति, ते च खो मे, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु चेव समणसम्मता ब्राह्मणेसु च ब्राह्मणसम्मता, ते च पनायस्मन्तो सामञ्ञत्थं च ब्रह्मञ्ञत्थं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥

●

२६. दुतियसमणब्राह्मणसुत्तं

२७. सावत्थियं विहरति। ''ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा लाभसक्कारसिलोकस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानन्ति...पे०...पजानन्ति...पे०...सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥

●

के जञ्जाल में न फँसना; क्यों कि इस लाभादि के जञ्जाल में फँसना तुम्हारे लिये विघ्नकारक ही होगा।' ....पूर्ववत्....ऐसा सीखना चाहिये॥''

●

२५. श्रमणब्राह्मणसूत्र : : लाभसत्कार के यथार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति

२६. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! जो भी कोई श्रमण या ब्राह्मण लाभसत्कार के आस्वाद या दोष को सम्यक्तया नहीं जानते उन्हें मैं श्रमणों में प्रशस्त श्रमण या ब्राह्मणों में प्रशस्त ब्राह्मण नहीं मानता तथा न वे श्रामण्य या ब्राह्मण्य की प्राप्ति हेतु इसी जन्म में भली भाँति साधना ही कर पाते हैं। परन्तु, भिक्षुओ! जो श्रमण या ब्राह्मण लाभसत्कार के आस्वाद या दोष को भली भाँति जान लेते हैं वे प्रशस्त श्रमण या प्रशस्त ब्राह्मण कहलाते हैं। अथ च, श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य की प्राप्तिहेतु इस जन्म में भली भाँति साधना भी कर पाते हैं॥''

●

२६. द्वितीय श्रमणब्राह्मणसूत्र : : लाभसत्कार के यथार्थ ज्ञान से मुक्ति

२७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! जो भी कोई श्रमण या ब्राह्मण लाभसत्कार के उत्पाद एवं नाश को आस्वाद एवं दोष को भली भाँति नहीं जानते....पूर्ववत्.... साधना भी कर पाते हैं॥''

●

२७. ततियसमणब्राह्मणसुत्तं

२८. ...सावत्थियं विहरति। ''ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा [N.198] वा लाभसक्कारसिलोकं यथाभूतं नप्पजानन्ति लाभसक्कारसिलोकसमुदयं नप्पजानन्ति, लाभसक्कारसिलोकनिरोधं नप्पजानन्ति, लाभसक्कारसिलोकनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति ...पे०...पजानन्ति...पे०...सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥ •

२८. छविसुत्तं

२९. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको। लाभसक्कारसिलोको, भिक्खवे, छविं छिन्दति, छविं छेत्वा चम्मं छिन्दति, चम्मं छेत्वा [R.238] मंसं छिन्दति, मंसं छेत्वा न्हारु छिन्दति, न्हारुं छेत्वा अट्ठिं छिन्दति, अट्ठिं छेत्वा अट्ठिमिञ्जं आहच्च तिट्ठति। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको ...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ •

२९. रज्जुसुत्तं

३०. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको। लाभसक्कारसिलोको, भिक्खवे, छविं छिन्दति, छविं छेत्वा चम्मं छिन्दति, चम्मं छेत्वा

---

२७. तृतीय श्रमणब्राह्मणसूत्र : : लाभसत्कार के यथार्थ निरोधज्ञान से मुक्ति

२८. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! जो कोई भी श्रमण या ब्राह्मण लाभसत्कार को, लाभसत्कार की उत्पत्ति को, लाभसत्कार के निरोध को तथा लाभसत्कार के निरोधकारक मार्ग को नहीं जानते हैं....पूर्ववत्....जानते हैं....पूर्ववत्....स्वयं जान कर साक्षात्कार कर साधना करते हैं॥'' •

२८. छविसूत्र : : लाभसत्कार काया को कर देता है

२९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। भिक्षुओ! यह लाभसत्कार में लगाव साधक के लिये बहुत कष्टदायी होता है। भिक्षुओ! यह लाभसत्कार का लगाव सर्वप्रथम मनुष्य के बाह्य चर्म को छेदता है, तदनन्तर आन्तरिक चर्म को, फिर चर्म को छेद कर मांस को, मांस को छेद कर न्हारु (नसों) को, उसे छेद कर अस्थियों को, उन्हें छेद कर मेद तक को छिन्न भिन्न कर रुकता है। भिक्षुओ! इतना कष्टदायी है यह लाभसत्कार का लगाव। ....पूर्ववत्....ऐसा सीखना चाहिये॥'' •

२९. रज्जुसूत्र : : लाभसत्कार की रस्सी चर्म को छेद डालती है

३०. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ....भिक्षुओ! यह लाभ सत्कार का लगाव सर्वप्रथम मनुष्य के बाह्यचर्म को....उपरिसूत्रवत्....छिन्न भिन्न कर सकता है।

मंसं छिन्दति, मंसं छेत्वा न्हारु छिन्दति, न्हारुं छेत्वा अट्ठिं छिन्दति, अट्ठिं छेत्वा अट्ठिमिञ्जं आहच्च तिट्ठति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, बलवा पुरिसो दळ्हाय वाळरज्जुया जङ्घं [B.434] वेठेत्वा धंसेय्य। सा छविं छिन्देय्य, छविं छेत्वा चम्मं छिन्देय्य, चम्मं छेत्वा मंसं छिन्देय्य, मंसं छेत्वा न्हारु छिन्देय्य, न्हारुं छेत्वा अट्ठिं छिन्देय्य, अट्ठिं छेत्वा अट्ठिमिञ्जं आहच्च तिट्ठति। एवमेव खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको छविं छिन्दति, छविं छेत्वा चम्मं छिन्दति, चम्मं छेत्वा मंसं छिन्दति, मंसं छेत्वा न्हारु छिन्दति, न्हारुं छेत्वा अट्ठिं छिन्दति, अट्ठिं छेत्वा अट्ठिमिञ्जं आहच्च तिट्ठति। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥ •

३०. भिक्खुसुत्तं

३१. ...सावत्थियं विहरति। "यो पि सो, भिक्खवे, भिक्खु [N.199, R.239] अरहं खीणासवो तस्स पाहं लाभसक्कारसिलोको अन्तरायाय वदामी" ति। एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"किस्स पन, भन्ते, खीणासवस्स भिक्खुनो लाभसक्कारसिलोको अन्तरायाया" ति ?

"या हिस्स सा, आनन्द, अकुप्पा चेतोविमुत्ति नाहं तस्सा लाभसक्कारसिलोकं अन्तरायाय वदामि। ये 'च ख्वस्स, आनन्द, अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो दिट्ठधम्मसुखविहारा अधिगता तेसाहमस्स लाभसक्कारसिलोकं अन्तरायाय वदामि। एवं दारुणो खो, आनन्द, लाभसक्कारसिलोको कटुको फरुसो अन्तरायिको

"भिक्षुओ! जैसे कोई बलवान् पुरुष बालों से बनी रस्सी से अपनी जङ्घा को बाँध दे। बाँध कर उस रस्सी को दोनों ओर से दृढता से खींचे तो वह रस्सी मनुष्य के बाह्य चर्म को....छिन्न भिन्न कर सकती है। भिक्षुओ! इतना कष्टदायी है यह लाभसत्कार का लगाव....पूर्ववत्....ऐसा सीखना चाहिये"॥ •

३०. भिक्षुसूत्र : :लाभसत्कार अर्हत् के लिये विघ्नकारक

३१. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।"भिक्षुओ! जो भी कोई भिक्षु अर्हत् क्षीणास्रव भी हो चुका हो, उस को भी यह लाभसत्कार विघ्नप्रद ही होता है—ऐसा मेरा कथन है।" इतना कहने पर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! कैसे अर्हत् क्षीणास्रव भिक्षु के लिये यह लाभसत्कार विघ्नप्रद है ?

"आनन्द! जिस का चित्त आश्रवों से सर्वथा विमुक्त हो चुका है उसके लिये मैं इस लाभसत्कार को विघ्नकारक नहीं मानता; अपि तु, आनन्द! जो कुछ उद्योगी, सावधान इन्द्रियों वाले, इसी जन्म में सुखसाधना को प्राप्त कर लेने वालों के लिये मैं इस लाभसत्कार

अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय। तस्मातिहानन्द, एवं सिक्खितब्बं—'उप्पन्नं लाभसक्कारसिलोकं पजहिस्साम, न च नो उप्पन्नो लाभसक्कारसिलोको चित्तं परियादाय ठस्ससी' ति। एवं हि वो, आनन्द, सिक्खितब्बं'' ति॥

ततियो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

मातुगामो च कल्याणी, पुत्तो च एकधीतु च।
समणब्राह्मणा तीणि, छवि रज्जु च भिक्खुना ति॥

को उसकी साधना में विघ्नकारक मानता हूँ। ऐसा कष्टकारक है यह लाभसत्कार ....पूर्ववत्....आनन्द! तुम्हें ऐसी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये॥''!

तृतीय वर्ग समाप्त॥

इस तृतीय वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. मातृग्रामसूत्र, २. कल्याणी, ३. एकपुत्र, ४. एकधीता, ५-६-७. तीन श्रमणब्राह्मणसूत्र, ८. छवि, ९. रज्जु एवं १०. भिक्षुसूत्र॥

४. चतुत्थो वग्गो

३१. भिन्दिसुत्तं

३२. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कार-[B.435] सिलोको। लाभसक्कारसिलोकेन अभिभूतो परियादिण्णचित्तो, भिक्खवे, [R.240] देवदत्तो सङ्घं भिन्दि। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०... सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

३२. कुसलमूलसुत्तं

३३. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको। लाभसक्कारसिलोकेन अभिभूतस्स परियादिण्णचित्तस्स, भिक्खवे, देवदत्तस्स [N.200] कुसलमूलं समुच्छेदमगमा। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको ...पे०...सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

३३. कुसलधम्मसुत्तं

३४. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको। लाभ-सक्कारसिलोकेन अभिभूतस्स परियादिण्णचित्तस्स, भिक्खवे, देवदत्तस्स कुसलो धम्मो समुच्छेदमगमा। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०... सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

चतुर्थ वर्ग

३१. भिन्दि-सूत्र : : लाभसत्कार के कारण सङ्घभेद

३२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।''भिक्षुओ! लाभसत्कार से लगाव भिक्षु के लिये कष्टकर होता है। इस लाभसत्कार से अभिभूत हो कर ही देवदत्त ने सङ्घभेद का साहस किया था। भिक्षुओ! इसी से समझ लो, यह लाभसत्कार कितना दुःखप्रद एवं विघ्नकारक होता है।....ऐसा सीखना चाहिये॥'' ●

३२. कुशलमूलसूत्र : :लाभसत्कार के कारण पुण्यमूल का छेद

३३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।''भिक्षुओ! लाभसत्कार का मोह कष्टकर ही होता है। लाभसत्कार से अभिभूत एवं उसी में अपना मन लगाये हुए देवदत्त का कुशलमूल का उच्छेद हो गया था।....ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये॥'' ●

३३. कुशलधर्मसूत्र : : लाभसत्कार से कुशलधर्म का नाश

३४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।''भिक्षुओ! ....पूर्ववत्....लाभसत्कार से अभिभूत एवं उसी में अत्यधिक मन लगाये हुए देवदत्त का कुशलधर्म (पुण्य कर्म) उच्छिन्न हो गया था। अतः यह लाभसत्कार कष्टकर एवं विघ्नकारक ही है।....पूर्ववत्....ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये॥'' ●

३४. सुक्कधम्मसुत्तं

३५. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको। लाभ-सक्कारसिलोकेन अभिभूतस्स परियादिण्णचित्तस्स, भिक्खवे, देवदत्तस्स सुक्को धम्मो समुच्छेदमगमा। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको...पे०...सिक्खितब्बं'' ति।

३५. अचिरपक्कन्तसुत्तं

३६. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते अचिरपक्कन्ते [R.241] देवदत्ते। तत्र खो भगवा देवदत्तं आरब्भ भिक्खू आमन्तेसि—''अत्तवधाय, [B.436] भिक्खवे, देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि, पराभवाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, कदली अत्तवधाय फलं देति, पराभवाय फलं देति; एवमेव खो, भिक्खवे, अत्तवधाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि, पराभवाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, वेळु अत्तवधाय फलं देति, पराभवाय फलं देति; एवमेव खो, भिक्खवे, अत्तवधाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि, पराभवाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, नळो अत्तवधाय फलं देति, पराभवाय फलं देति;

---

३४. शुक्लधर्मसूत्र : : लाभसत्कार से शुक्ल धर्मों का नाश

३५. **श्रावस्ती में** साधना के समय....उपरिसूत्रवत्....देवदत्त के शुक्ल धर्म (पुण्यकर्म) उच्छिन्न हो गये थे। ....उपरिसूत्रवत्....सीखना चाहिये॥''

३५. अचिरप्रकान्तसूत्र : : देवदत्त के वध में सहायक लाभसत्कार

३६. एक समय भगवान् **राजगृह में** गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। देवदत्त उन से कुछ संवाद कर अभी लौटा ही था कि देवदत्त के ही विषय में कुछ विशेष बताने के लिये भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया और यों कहा—''भिक्षुओ! देवदत्त केवल आत्महत्या के लिये, अपने पराजय के लिये ही अपने लाभसत्कार की तरफ इतना आसक्त है।

''भिक्षुओ! जैसे केले का वृक्ष अपने नाश तथा पराभव के लिये फल देता है इसी तरह यह देवदत्त अपने नाश के लिये अपने लाभसत्कार में इतना अनुरक्त है।

''भिक्षुओ! जैसे बाँस के वृक्ष में फल लगने पर उस का नाश हो जाता है, उसी तरह देवदत्त का यह लाभसत्कार ही उसका नाश कर देगा।

एवमेव खो, भिक्खवे, अत्तवधाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि, पराभवाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, अस्सतरी अत्तवधाय गब्भं गण्हाति, परा-[N.201] भवाय गब्भं गण्हाति; एवमेव खो, भिक्खवे, अत्तवधाय देवदत्तस्स लाभसक्कार-सिलोको उदपादि, पराभवाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति।

३७. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"फलं वे कदलिं हन्ति, फलं वेळुं फलं नळं।
सक्कारो कापुरिसं हन्ति, गब्भो अस्सतरिं यथा ति"॥

३६. पञ्चरथसतसुत्तं

३८. ...राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन [R.242] समयेन देवदत्तस्स अजातसत्तुकुमारो पञ्चहि रथसतेहि सायं पातं उपट्ठानं [B.437] गच्छति, पञ्च च थालिपाकसतानि भत्ताभिहारो अभिहरीयति। अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"देवदत्तस्स, भन्ते,

---

"भिक्षुओ! जैसे नड़ के वृक्ष में फल लगने के बाद उस का नाश सुनिश्चित हो जाता है, उसी तरह अधिक लाभसत्कार मिलने से देवदत्त का नाश भी निश्चित है।

"जैसे खच्चरी बच्चा पैदा करते ही मर जाती है अर्थात् वह बच्चा उसकी मृत्यु का कारण बन जाता है, उसी तरह यह लाभसत्कार भी देवदत्त की मृत्यु का ही कारण बनेगा। भिक्षुओ! यह लाभसत्कार इसी तरह कष्टकारक होता है....पूर्ववत्....ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये"।

३७. भगवान् ने यह कहा। इसके बाद ही भगवान् यों बोले—

"केले के वृक्ष को अपने फल की उत्पत्ति के कारण ही नष्ट होना पड़ता है, वेणु (बांस) तथा नड़ वृक्षों का भी इसी कारण नाश हो जाता है। यह लाभसत्कार कापुरुषों (पापियों) को उसी तरह नष्ट कर देता है, जैसे कोई खच्चरी अपनी सन्तति के कारण मृत्यु को प्राप्त होती है॥"

३६. पञ्चशतरथसूत्र : :देवदत्त का लाभसत्कार उसी की हानि

३८. **राजगृह के** वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधना के समय....। उस समय राजकुमार अजातशत्रु देवदत्त के पास प्रतिदिन प्रातः सायं पाँच सौ रथों में बैठ कर जाता था, तथा उसके सङ्घ के लिये सुन्दर रुचिकर भोजन की पाँच सौ थालियाँ भी भेजा करता

अजातसत्तुकुमारो पञ्चहि रथसतेहि सायं पातं उपट्ठानं गच्छति, पञ्च च थालिपाक-सतानि भत्ताभिहारो अभिहरीयती'' ति।

''मा, भिक्खवे, देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोकं पिहयित्थ। यावकीवं च, भिक्खवे, देवदत्तस्स अजातसत्तुकुमारो पञ्चहि रथसतेहि सायं पातं उपट्ठानं गमिस्सति, पञ्च च थालिपाकसतानि भत्ताभिहारो आहरीयिस्सति. हानियेव. भिक्खवे, देवदत्तस्स पाटिकङ्खा कुसलेसु धम्मेसु, नो वुद्धि।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, चण्डस्स कुक्कुरस्स नासाय पित्तं भिन्देय्युं, एवं हि सो, भिक्खवे, कुक्कुरो भिय्योसोमत्ताय चण्डतरो अस्स; एवमेव, भिक्खवे, यावकीवं च देवदत्तस्स अजातसत्तुकुमारो पञ्चहि रथसतेहि सायं पातं उपट्ठानं गमिस्सति, पञ्च च थालिपाकसतानि भत्ताभिहारो आहरीयिस्सति, हानियेव, भिक्खवे, देवदत्तस्स [N.202] पाटिकङ्खा कुसलेसु धम्मेसु, नो वुद्धि। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कार-सिलोको...पे०...एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ •

३७. मातुसुत्तं

३९. ...सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको कटुको [R.243] फरुसो अन्तरायिको अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय। इधाहं, भिक्खवे, एकच्चं पुग्गलं एवं चेतसा चेतो परिच्च पजानामि—'न चायमायस्मा मातु पि हेतु

था। इसी प्रसङ्ग में, बहुत से भिक्षुओं ने भगवान् के पास आकर, उन्हें प्रणाम कर, एक ओर बैठ कर अजातशत्रु के ये कृत्य सुनाये।

भगवान् ने उन भिक्षुओं को यों समझाया—''भिक्षुओ! तुम देवदत्त के इस लाभसत्कार की स्पृहा (चाह) न करो। जब तक अजातशत्रु देवदत्त को यह लाभसत्कार देता रहेगा तब तक देवदत्त के कुशल धर्मों की हानि ही होती रहेगी; उनकी वृद्धि की आशा नहीं है।

''भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष किसी क्रोधी कुत्ते की नाक पर डण्डा मार दे तब वह कुत्ता और भी क्रुद्ध हो उठे; उसी तरह यह अजातशत्रु देवदत्त का ज्यों ज्यों सत्कार करेगा त्यों त्यों वह देवदत्त अपने कुशल धर्मों की हानि ही करता जायगा, वृद्धि नहीं; क्यों कि यह लाभसत्कार ऐसा कष्टदायक एवं विघ्नकारक है ही। ....पूर्ववत्....तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये॥'' •

३७. मातृसूत्र : : लाभसत्कार की दारुणता

३९. **श्रावस्ती में** साधना करते समय....। भिक्षुओ! यह लाभसत्कार कष्टदायक ही होता है। यहाँ भिक्षुओ! मैं एक ऐसे पुरुष को जानता हूँ जो कभी अपनी माता के कारण भी असत्यभाषण करने का साहस नहीं करता था। परन्तु आज वह लाभसत्कार में आसक्त

सम्पजानमुसा भासेय्या' ति। तमेनं पस्सामि अपरेन समयेन लाभसक्कारसिलोकेन अभिभूतं परियादिण्णचित्तं सम्पजानमुसा भासन्तं। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको कटुको फरुसो अन्तरायिको अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'उप्पन्नं लाभसक्कारसिलोकं पजहिस्साम। न च नो उप्पन्नो लाभसक्कारसिलोको चित्तं परियादाय ठस्सती' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

३८-४३. पितुसुत्तादिछक्कं

४०-४५. सावत्थियं विहरति। ''दारुणो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको कटुको फरुसो अन्तरायिको अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय। इधाहं, [B.438] भिक्खवे, एकच्चं पुग्गलं एवं चेतसा चेतो परिच्च पजानामि—'न चायमायस्मा मातु पि हेतु...पे०...भातु पि हेतु... भगिनिया पि हेतु...पुत्तस्स पि हेतु...धीतुया पि हेतु... पजापतिया पि हेतु सम्पजानमुसा भासेय्या' ति। तमेनं पस्सामि अपरेन समयेन लाभसक्कारसिलोकेन अभिभूतं परियादिण्णचित्तं सम्पजानमुसा भासन्तं। एवं दारुणो खो, भिक्खवे, लाभसक्कारसिलोको कटुको फरुसो अन्तरायिको अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'उप्पन्नं लाभ-सक्कारसिलोकं पजहिस्साम। न च नो उप्पन्नो लाभसक्कारसिलोको चित्तं परियादाय ठस्सती' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

चतुत्थो वग्गो॥

होकर जानबूझ कर असत्य बोलने में कोई सङ्कोच नहीं मानता। यह लाभसत्कार.... पूर्ववत्....भिक्षुओ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये॥ ●

३८-४३. पितृसूत्र आदिषट्क : : लाभसत्कार की दारुणता

४०. श्रावस्ती में....पूर्ववत्....अपने पिता के कारण....पूर्ववत्....॥ ●

४०. श्रावस्ती में....पूर्ववत्....अपने भ्राता के कारण....पूर्ववत्....॥ ●

४०. श्रावस्ती में....पूर्ववत्....अपनी बहन के कारण....पूर्ववत्....॥ ●

४०. श्रावस्ती में....पूर्ववत्....अपने पुत्र के कारण....पूर्ववत्....॥ ●

४०. श्रावस्ती में....पूर्ववत्....अपनी पुत्री के कारण....पूर्ववत्....॥ ●

४०. श्रावस्ती में....पूर्ववत्....अपनी पत्नी के कारण....पूर्ववत्....॥ ●

चतुर्थ वर्ग समाप्त॥

तस्सुद्दानं

भिन्दि मूलं दुवे धम्मा, पक्कन्तं रथ मातरि।
पिता भाता च भगिनी, पुत्तो धीता पजापती ति॥

लाभसक्कारसंयुत्तं समत्तं॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. भिन्दिसूत्र, २. कुशलमूल, ३. अकुशलधर्म, ४. शुक्लधर्म, ५. अचिरप्रकान्त, ६. पञ्चशतरथ, ७. मातृसूत्र, ८-१३. पितृसूत्र आदिषट्क (पिता, भ्राता आदि छह सूत्र)॥

१८. राहुलसंयुत्तं

१. पठमो वग्गो

१. चक्खुसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N.203, B.439] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आयस्मा राहुलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राहुलो भगवन्तं एतदवोच–"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु, यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं" ति।

"तं किं मञ्ञसि, राहुल, चक्खुं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं–'एतं [R.245] मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता" ति?

---

१८. राहुलसंयुक्त

प्रथम वर्ग

१. चक्षुःसूत्र : इन्द्रियों में अनित्यत्व अनात्मत्व, दुःखत्व

१. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् राहुल भगवान् के सम्मुख जा कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये तथा भगवान् से यों निवेदन किया– "अच्छा हो, भन्ते! कि आप मुझे धर्म का इस तरह उपदेश करें कि उसे सुन कर मैं एकान्त में, सर्वविषयों से अपना चित्त हटाता हुआ, सावधानीपूर्वक उद्योग करता हुआ साधना कर सकूँ।"

"तो क्या मानते हो, राहुल, चक्षुरिन्द्रिय नित्य है? या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"जो अनित्य होता है वह दुःखमय होता है या सुखमय?"

"दुःखमय होता है, भन्ते!"

"नो हेतं, भन्ते"।

"सोतं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"। ...पे०...।

"घानं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"जिव्हा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"कायो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति?

"अनिच्चो, भन्ते"।

"मनो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति?

"अनिच्चो, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, [N.204] एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तो जो अनित्य एवं दुःखमय तथा विनाशी है, उस के लिये क्या यह सोचना उचित है—'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है'?

"नहीं, भन्ते!"

"श्रोत्रेन्द्रिय नित्य है या अनित्य?" ....पूर्ववत्....।

"घ्राणेन्द्रिय नित्य है या अनित्य?" ....पूर्ववत्....।

"जिह्वेन्द्रिय नित्य है या अनित्य?" ....पूर्ववत्....।

"कायेन्द्रिय नित्य है या अनित्य?" ....पूर्ववत्....।

"मन इन्द्रिय नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"जो अनित्य है वह दुःखमय है? या सुखमय?

"दुःखमय, भन्ते!"

"तो जो अनित्य है, दुःखमय एवं विनाशी है, उस के विषय में क्या यह सोचना उचित है—'यह मेरा है', 'यहं मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है?'

"नहीं, भन्ते!"

"एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति ...पे०... सोतस्मिं पि निब्बिन्दति...घानस्मिं पि निब्बिन्दति...जिव्हाय पि निब्बिन्दति... कायस्मिं पि निब्बिन्दति...मनस्मिं पि निब्बिन्दति; निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति। (**एतेन पेय्यालेन दस सुत्तन्ता कातब्बा।**) ●

२. रूपसुत्तं

२. ...सावत्थियं विहरति। "तं किं मञ्जसि, राहुल, रूपा निच्चा वा [B.440] अनिच्चा वा" ति? "अनिच्चा, भन्ते"...पे०...सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा...[R.246] धम्मा निच्चा वा अनिच्चा वा ति? "अनिच्चा, भन्ते"।

"एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको रूपेसु पि निब्बिन्दति...सद्देसु पि निब्बिन्दति...गन्धेसु पि निब्बिन्दति...रसेसु पि निब्बिन्दति...फोट्ठब्बेसु पि निब्बिन्दति... धम्मेसु पि निब्बिन्दति; निब्बिन्दं विरज्जति...पे०...पजानाती" ति॥ ●

३. विञ्ञाणसुत्तं

३. ...सावत्थियं विहरति। "तं किं मञ्जसि, राहुल, चक्खुविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"ऐसा जानता हुआ तथा सुनता हुआ कोई आर्यश्रावक चक्षु के विषय में भी श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन के विषय में निर्वेद (ग्लानि=अनुत्सुकता) करने लगता है, इस ग्लानि से उसे (उन इन्द्रियों के विषय में) वैराग्य होने लगता है, वैराग्य के कारण वह (साधक) विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर उसे 'मैं विमुक्त हो गया'—ऐसा ज्ञान हो जाता है। 'मेरी जन्ममरणपरम्परा क्षीण हो गयी, मेरी धर्मसाधना भी पूर्ण हो गयी, मेरा कर्तव्य किया जा चुका, अब ऐसा कुछ अन्य करणीय अवशिष्ट नहीं है।' यह जान जाता है॥" ●

[यह समस्त पाठ आगे के दश सूत्रों में भी दुहराते चलें।]

२. रूपसूत्र : : रूप में अनित्य दुःख एवं अनात्म का मनन

२. श्रावस्ती में साधना के समय....। "तो क्या मानते हो, राहुल रूप नित्य हैं या अनित्य?" "अनित्य हैं भन्ते!" ....पूर्ववत्....शब्द....गन्ध....रस....स्प्रष्टव्य....धर्म नित्य हैं या अनित्य?" "अनित्य हैं, भन्ते!" ....पूर्ववत्.... ॥ ●

३. विज्ञानसूत्र : : विज्ञान में अनित्यत्व आदि का मनन

३. श्रावस्ती में साधना के समय....। "तो क्या मानते हो, राहुल! चक्षुर्विज्ञान नित्य है या अनित्य?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"सोतविञ्ञाणं ...पे०...घानविञ्ञाणं... जिव्हाविञ्ञाणं... कायविञ्ञाणं... मनोविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको चक्खुविञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति ...पे०... सोतविञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति...घानविञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति...जिव्हाविञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति...कायविञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति...मनोविञ्ञाणस्मिं पि [N.205] निब्बिन्दति; निब्बिन्दं विरज्जति...पे०...पजानाती" ति॥ •

४. सम्फस्ससुत्तं

४. ...सावत्थियं विहरति। "तं किं मञ्ञसि, राहुल, चक्खुसम्फस्सो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति?

"अनिच्चो, भन्ते"।

"सोतसम्फस्सो ...पे०...घानसम्फस्सो... जिव्हासम्फस्सो... कायसम्फस्सो... मनोसम्फस्सो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति?

"अनिच्चो, भन्ते"।

"एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको चक्खुसम्फस्सस्मिं पि निब्बिन्दति ...पे०...सोतसम्फस्सस्मिं पि निब्बिन्दति...घानसम्फस्सस्मिं पि निब्बिन्दति...जिव्हासम्फस्सस्मिं पि निब्बिन्दति...कायसम्फस्सस्मिं पि निब्बिन्दति...मनोसम्फस्सस्मिं पि [R.247] निब्बिन्दति; निब्बिन्दं विरज्जति...पे०...पजानाती" ति॥ •

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्....।

"श्रोत्रविज्ञान....घ्राणविज्ञान....जिह्वाविज्ञान....कायविज्ञान....मनोविज्ञान नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्.... ॥ •

४. संस्पर्शसूत्र : : संस्पर्श में अनित्यादि का मनन

४. श्रावस्ती में साधना के समय....।"तो क्या मानते हो, राहुल! चक्षुःसंस्पर्श नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्....।

"श्रोत्रसंस्पर्श...., घ्राणसंस्पर्श...., जिह्वासंस्पर्श...., कायसंस्पर्श...., मनःसंस्पर्श नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्.... ॥ •

५. वेदनासुत्तं

५. ...सावत्थियं विहरति। "तं किं मञ्ञसि, राहुल, चक्खुसम्फस्सजा वेदना निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"सोतसम्फस्सजा वेदना...पे०...घानसम्फस्सजा वेदना...जिव्हासम्फस्सजा वेदना...कायसम्फस्सजा वेदना...मनोसम्फस्सजा वेदना निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"। B.441]

"एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको चक्खुसम्फस्सजाय वेदनाय पि निब्बिन्दति...पे०...सोत...घान...जिव्हा...काय...मनोसम्फस्सजाय वेदनाय पि निब्बिन्दति...पे०...पजानाती" ति॥

●

६. सञ्ञासुत्तं

६. ...सावत्थियं विहरति। "तं किं मञ्ञसि, राहुल, रूपसञ्ञा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"। [N.206]

"सद्दसञ्ञा...पे०...गन्धसञ्ञा...रससञ्ञा...फोट्ठब्बसञ्ञा...धम्मसञ्ञा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

---

५. वेदनासूत्र : : वेदना में अनित्यत्वादि का मनन

५. श्रावस्ती में साधना के समय....। "तो क्या मानते हो, राहुल! चक्षुःसंस्पर्शज वेदना नित्य हैं या अनित्य?"

"अनित्य हैं, भन्ते!" ....पूर्ववत्....।

"श्रोत्रसंस्पर्शज वेदना...., घ्राणसंस्पर्शज वेदना...., जिह्वासंस्पर्शज वेदना...., कायसंस्पर्शज वेदना नित्य हैं या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्....॥

●

६. संज्ञासूत्र : : संज्ञा में अनित्यत्वादि का मनन

६. श्रावस्ती में साधना के समय....। "तो क्या मानते हो, राहुल! रूपसंज्ञा नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्....।

"शब्दसंज्ञा...., गन्धसंज्ञा...., रससंज्ञा...., स्प्रष्टव्यसंज्ञा...., धर्मसंज्ञा नित्य है या अनित्य?"

"एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको रूपसञ्ञाय पि निब्बिन्दति...पे०... सद्दसञ्ञाय पि निब्बिन्दति...गन्धसञ्ञाय पि निब्बिन्दति...रससञ्ञाय पि निब्बिन्दति ...फोट्ठब्बसञ्ञाय पि निब्बिन्दति...धम्मसञ्ञाय पि निब्बिन्दति...पे०...पजानाती" ति॥

●

७. सञ्चेतनासुत्तं

७. ...सावत्थियं विहरति। "तं किं मञ्ञसि, राहुल, रूपसञ्चेतना निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"सद्दसञ्चेतना...पे०...गन्धसञ्चेतना...रससञ्चेतना...फोट्ठब्बसञ्चेतना...धम्म-[R.248] सञ्चेतना निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको रूपसञ्चेतनाय पि निब्बिन्दति...पे०...सद्दसञ्चेतनाय पि निब्बिन्दति...गन्धसञ्चेतनाय पि निब्बिन्दति... रससञ्चेतनाय पि निब्बिन्दति ...फोट्ठब्बसञ्चेतनाय पि निब्बिन्दति...धम्मसञ्चेतनाय पि निब्बिन्दति...पे०...पजानाती" ति॥

८. तण्हासुत्तं

८. ...सावत्थियं विहरति। "तं किं मञ्ञसि, राहुल, रूपतण्हा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्.... ॥

●

७. सञ्चेतनासूत्र : : सञ्चेतना में अनित्यत्वादि का मनन

७. श्रावस्ती में साधना के समय....। "तो क्या मानते हो, राहुल! रूपसञ्चेतना नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्....।

"शब्दसञ्चेतना...., गन्धसञ्चेतना...., रससञ्चेतना...., स्प्रष्टव्यसञ्चेतना...., धर्मसञ्चेतना नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्.... ॥

●

८. तृष्णासूत्र : : तृष्णा में अनित्यत्वादि का मनन

८. श्रावस्ती में साधना के समय....। "तो क्या मानते हो, राहुल! रूपतृष्णा नित्य है या अनित्य?"

"सद्दतण्हा...पे०...गन्धतण्हा...रसतण्हा...फोट्ठब्बतण्हा...धम्मतण्हा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको रूपतण्हाय पि निब्बिन्दति...पे०... सद्दतण्हाय पि निब्बिन्दति...गन्धतण्हाय पि निब्बिन्दति...रसतण्हाय पि [N.207] निब्बिन्दति...फोट्ठब्बतण्हाय पि निब्बिन्दति...धम्मतण्हाय पि निब्बिन्दति...पे०... पजानाती" ति॥

●

९. धातुसुत्तं

९. सावत्थियं विहरति। "तं किं मञ्ञसि, राहुल, पठवीधातु निच्चा [B.442] वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"आपोधातु...पे०...तेजोधातु...वायोधातु...आकासधातु...विञ्ञाणधातु निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको पठवीधातुया पि निब्बिन्दति...पे०... आपोधातुया पि निब्बिन्दति...तेजोधातुया पि निब्बिन्दति...वायोधातुया पि [R.249] निब्बिन्दति...आकासधातुया पि निब्बिन्दति...विञ्ञाणधातुया पि निब्बिन्दति...पे०... पजानाती" ति॥

●

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्....।

"शब्दतृष्णा...., गन्धतृष्णा...., रसतृष्णा...., स्प्रष्टव्यतृष्णा...., धर्मतृष्णा नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्....॥

●

९. धातुसूत्र : : धातुओं में अनित्यत्वादि का मनन

९. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। "तो क्या मानते हो, राहुल! पृथ्वीधातु नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"अब्धातु...., तेजोधातु...., वायुधातु...., आकाशधातु...., विज्ञानधातु नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्....॥

●

१०. खन्धसुत्तं

१०. सावत्थियं विहरति। "तं किं मञ्ञसि, राहुल, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"वेदना...पे०...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति...पे०... वेदनाय पि निब्बिन्दति...सञ्ञाय पि निब्बिन्दति...सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति... विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति; निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति।

पठमो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

चक्खु रूपं च विञ्ञाणं, सम्फस्सो वेदनाय च।
सञ्ञा सञ्चेतना तण्हा, धातु खन्धेन ते दसा ति॥

---

१०. स्कन्धसूत्र : : स्कन्धों में अनित्यत्वादि का मनन

१०. श्रावस्ती में साधना के समय....। "तो क्या मानते हो, राहुल! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"वेदना....संज्ञा....संस्कार....विज्ञान....नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्.... ॥

प्रथम वर्ग समाप्त॥

इस प्रथम वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. चक्षुष्, २. रूप, ३. विज्ञान, ४. संस्पर्श, ५. वेदना, ६. संज्ञा, ७. सञ्चेतना, ८. तृष्णा, ९. धातु एवं १०. स्कन्ध सूत्र॥

२. दुतियो वग्गो

११. चक्खुसुत्तं

११. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति...। अथ खो [N.208] आयस्मा राहुलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा [R.250] एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राहुलं भगवा एतदवोच—"तं किं मञ्ञसि, राहुल, चक्खुं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"। [B.443]

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"सोतं...पे०...घानं...जिव्हा...कायो...मनो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति?

"अनिच्चो, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

द्वितीय वर्ग

११. चक्षुःसूत्र : :चक्षुरादि में अनित्यत्वादि भावना से मोक्ष

११. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् श्रावस्ती में साधनाहेतु अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में विराजमान थे। ....तब आयुष्मान् राहुल को भगवान् ने यों पूछा—"तो क्या मानते हो, राहुल! चक्षुरिन्द्रिय नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"जो अनित्य है वह दुःखमय है या सुखमय?"

"दुःखमय ही है, भन्ते!"

"तो जो अनित्य है, दुःखमय है, विनाशी है उस के विषय में यह सोचना उचित है—'यह मेरा है', या 'यह मेरा है', या 'यह मेरी आत्मा है?'

"नहीं, भन्ते!

"श्रोत्र....पूर्ववत्....घ्राण....जिह्वा....काय....मन नित्य है या अनित्य?"

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति ...पे०... सोतस्मिं पि निब्बिन्दति...घानस्मिं पि निब्बिन्दति...जिव्हाय पि निब्बिन्दति... कायस्मिं पि निब्बिन्दति...मनस्मिं पि निब्बिन्दति; निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति॥ (एतेन पेय्यालेन दस सुत्तन्ता कातब्बा।) ●

१२-२०. रूपादिसुत्तनवकं

१२-२०. ...सावत्थियं विहरति। "तं किं मञ्ञसि, राहुल, रूपा निच्चा वा [R.251] अनिच्चा वा" ति? "अनिच्चा, भन्ते"...पे०...सद्दा...गन्धा...रसा...फोट्ठब्बा ...धम्मा।

"चक्खुविञ्ञाणं...पे०...सोतविञ्ञाणं...घानविञ्ञाणं...जिव्हाविञ्ञाणं... [N.209] कायविञ्ञाणं...मनोविञ्ञाणं...।

"चक्खुसम्फस्सो...पे०...सोतसम्फस्सो...घानसम्फस्सो...जिव्हासम्फस्सो... कायसम्फस्सो...मनोसम्फस्सो...।

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्....।

"ऐसा जानने तथा सुनने वाले आर्यश्रावक को चक्षुरिन्द्रिय में भी....श्रोत्रेन्द्रिय में....घ्राणेन्द्रिय में....जिह्वेन्द्रिय में....कायेन्द्रिय में....मनइन्द्रिय में भी उपेक्षाभाव (ग्लानि) हो जाता है, वैराग्य हो जाता है, वैराग्य से मुक्ति हो जाती है। मुक्ति होने पर 'मैं मुक्त हूँ'—यह ज्ञान हो जाता है, तथा वह साधक—'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो गयी, मैं अपना कर्तव्य कर चुका, अब मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है'—ऐसा जान लेता है। ●

[यह समस्त पाठ आगे के १० सूत्रों में दुहरा लेना चाहिये।]

१२-२०. रूप आदि सूत्र (नवक) : :रूपादि में अनित्यत्वादि भावना से मुक्ति

१२. ...."तो क्या मानते हो, राहुल! रूप नित्य हैं या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्....।

....शब्द....गन्ध....रस....स्प्रष्टव्य....धर्म....।

१३. ....चक्षुर्विज्ञान....श्रोत्रविज्ञान....घ्राणविज्ञान....जिह्वाविज्ञान....कायविज्ञान.... मनोविज्ञान नित्य है या अनित्य?" ....पूर्ववत्....।

१४. "चक्षु:संस्पर्श....श्रोत्रसंस्पर्श....घ्राणसंस्पर्श....जिह्वासंस्पर्श....कायसंस्पर्श.... मन:संस्पर्श....पूर्ववत्....।

"चक्खुसम्फस्सजा वेदना...सोतसम्फस्सजा वेदना...घानसम्फस्सजा वेदना... जिव्हासम्फस्सजा वेदना...कायसम्फस्सजा वेदना...मनोसम्फस्सजा वेदना...।

"रूपसञ्ञा...पे०...सद्दसञ्ञा...गन्धसञ्ञा...रससञ्ञा...फोट्ठब्बसञ्ञा... धम्मसञ्ञा...।

"रूपसञ्चेतना...पे०...सद्दसञ्चेतना...गन्धसञ्चेतना...रससञ्चेतना...फोट्ठब्ब-सञ्चेतना...धम्मसञ्चेतना...।

"रूपतण्हा...पे०...सद्दतण्हा...गन्धतण्हा...रसतण्हा...फोट्ठब्बतण्हा... [B.444] धम्मतण्हा...।

"पठवीधातु...पे०...आपोधातु...तेजोधातु...वायोधातु...आकासधातु... विञ्ञाणधातु...।

"रूपं...पे०...वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं [R.252] वा" ति? अनिच्चं, भन्ते...पे०...एवं पस्सं राहुल...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती ति॥ ●

२१. अनुसयसुत्तं

२१. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो आयस्मा राहुलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राहुलो भगवन्तं एतदवोच—"कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं

---

१५. "चक्षु:संस्पर्शज वेदना.... श्रोत्रसंस्पर्शज वेदना.... घ्राणसंस्पर्शज वेदना.... जिह्वासंस्पर्शज वेदना.... कायसंस्पर्शज वेदना.... मन:संस्पर्शज वेदना....।

१६. "रूपसंज्ञा.... शब्दसंज्ञा.... गन्धसंज्ञा.... रससंज्ञा.... स्प्रष्टव्यसंज्ञा.... धर्मसंज्ञा....।

१७. "रूपसञ्चेतना.... शब्दसञ्चेतना.... गन्धसञ्चेतना.... रससञ्चेतना.... स्प्रष्टव्यसञ्चेतना .... धर्मसञ्चेतना....।

१८. "रूपतृष्णा.... शब्दतृष्णा.... गन्धतृष्णा.... रसतृष्णा.... स्प्रष्टतृष्णा.... धर्मतृष्णा....।

१९. "पृथ्वीधातु.... अब्धातु.... तेजोधातु.... वायोधातु.... आकाशधातु.... विज्ञानधातु....।

२०. "रूप.... पूर्ववत्.... वेदना.... संज्ञा.... संस्कार.... विज्ञान नित्य है या अनित्य?" "अनित्य है, भन्ते!" ....पूर्ववत्....।

यों जानता हुआ सुनता हुआ कोई आर्यश्रावक.... पूर्ववत्.... जानता है"॥ ●

२१. अनुशयसूत्र : : सम्यक् मनन से मानानुशय का नाश

२१. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ....आयुष्मान् राहुल ने भगवान् से पूछा— "भन्ते! कैसा जानते हुए कैसा देखते हुए साधक को इस विज्ञानसहित काय में तथा सभी

पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कार-मानानुसया न होन्ती'' ति?

''यं किञ्चि, राहुल, रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। या काचि वेदना...पे०...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागत-पच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे [N.210] सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। एवं खो, राहुल, जानतो एवं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ती'' ति॥

२२. अपगतसुत्तं

२२. ...सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा राहुलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; [R.253] उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राहुलो भगवन्तं एतदवोच—''कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो

बाह्य निमित्तों में अहङ्कार (यह मैं हूँ) या ममकार (यह मेरा है)-यह मानानुशय (चित्त की कुपथगामी) प्रवृत्ति नहीं होती?''

''राहुल! जो भी अतीत अनागत वर्तमान रूप है, फिर भले ही वह आध्यात्मिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, हीन हो या पुष्ट, दूर का हो या समीप का, वैसे सभी प्रकार के रूपों के विषय में 'वह न मेरा है', 'वह न मैं हूँ', या 'न वह मेरी आत्मा है'—ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार भली भाँति समझ कर जानना देखना चाहिये। जो भी अतीत अनागत वर्तमान वेदना है....पूर्ववत्....। जो भी अतीत अनागत वर्तमान संज्ञा है....पूर्ववत्....जो कोई भी संस्कार हैं....पूर्ववत्....जो कोई भी अतीत अनागत एवं वर्तमान विज्ञान हैं....पूर्ववत्....'न वह मेरी आत्मा है'—ऐसा भली भाँति समझना चाहिये, ऐसा भली भाँति देखना चाहिये। इस तरह, राहुल! देखते जानते हुए साधक को इस विज्ञानसहित काय में तथा सभी बाह्य निमित्तों में अहङ्कार, ममकार—ये मानानुशय नहीं होते॥''

२२. अपगतसूत्र : : ममत्वत्याग से मुक्ति

२२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। आयुष्मान् राहुल ने भगवान् से पूछा—''भन्ते! क्या जान लेने एवं देख लेने से कोई आर्यश्रावक विज्ञानसहित इस काय में, तथा

इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कार-[B.445] मानापगतं मानसं होति विधा समतिक्कन्तं सन्तं सुविमुत्तं'' ति?

''यं किञ्चि, राहुल, रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा अनुपादा विमुत्तो होति।

''या काचि वेदना...पे०...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा अनुपादा विमुत्तो होति। एवं खो, राहुल, जानतो एवं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानापगतं मानसं होति विधा समतिक्कन्तं सन्तं सुविमुत्तं'' ति॥ •

दुतियो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

चक्खु रूपं च विञ्ञाणं, सम्फस्सो वेदनाय च। [R.254]
सञ्ञा सञ्चेतना तण्हा, धातु खन्धेन ते दस।
अनुसयं अपगतं चेव, वग्गो तेन पवुच्चती ति।

राहुलसंयुत्तं समत्तं॥

सभी बाह्य निमित्तों में अहङ्कार ममकार तथा मान अपगत हो (हट) जाते हैं, एवं उस का चित्त शुद्ध शान्त एवं विमुक्त हो जाता है?''

''राहुल! जो भी अतीत अनागत वर्तमान के रूप हैं....पूर्वसूत्रवत्....जो भी वेदना....संज्ञा ....संस्कार....विज्ञान....। पूर्वसूत्रवत्....उसका चित्त शुद्ध, शान्त एवं विमुक्त हो जाता है॥

•

द्वितीय वर्ग समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. चक्षुष्, २. रूप, ३. विज्ञान, ४. संस्पर्श, ५. वेदना, ६. संज्ञा, ७. सञ्चेतना, ८. तृष्णा, ९. धातु, १०. स्कन्ध, ११. अनुशय एवं १२. अपगतसूत्र॥

राहुलसंयुक्त समाप्त॥

१९. लक्खणसंयुत्तं

१. पठमो वग्गो

१. अट्ठिसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे वेळुवने [N.211, B.446] कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन आयस्मा च लक्खणो आयस्मा च महा-मोग्गल्लानो गिज्झकूटे पब्बते विहरन्ति। अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो पुब्बण्ह-समयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येनायस्मा लक्खणो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं लक्खणं एतदवोच—"आयामावुसो लक्खण, राजगहं पिण्डाय पविसि-स्सामा" ति।

"एवमावुसो" ति खो आयस्मा लक्खणो आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स पच्चस्सोसि। अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अञ्ञतरस्मिं पदेसे सितं पात्वाकासि। अथ खो आयस्मा लक्खणो आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एतदवोच—"को नु खो, आवुसो मोग्गल्लान, हेतु को पच्चयो सितस्स पातुकम्माया" ति?

"अकालो खो, आवुसो लक्खण, एतस्स पञ्हस्स। भगवतो मं सन्तिके एतं पञ्हं पुच्छा" ति।

---

१९. लक्षणसंयुक्त

प्रथम वर्ग

१. अस्थिसूत्र : : अस्थिकङ्काल, गोहत्या का परिणाम

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् लक्षण एवं आयुष्मान् महामोग्गल्लान भी गृध्रकूट पर्वत पर साधना कर रहे थे। तब कभी आयुष्मान् महामोग्गल्लान प्रात:काल अपने वस्त्र शरीर पर सुव्यवस्थित कर पात्र चीवर ले कर आयुष्मान् लक्षण के पास गये। जा कर उन से यों बोले—"आओ, आयुष्मन् लक्षण! आज राजगृह में भिक्षाहेतु चलेंगे।" आयुष्मान् लक्षण ने आयुष्मान् महामोग्गल्लान की बात स्वीकार कर ली।

तब आयुष्मान् महामोग्गल्लान गृध्रकूट पर्वत से उतरते हुए एक स्थान पर आ कर मन्द हास्य कर बैठे। (यह देख कर) आयुष्मान् लक्षण ने उन से पूछा—"आयुष्मन् महामोग्गल्लान! किस कारण से आपने असमय में यह मन्द हास्य किया?"

अथ खो आयस्मा च लक्खणो आयस्मा च महामोग्गल्लानो राजगहे [R.255] पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा लक्खणो आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एतदवोच—"इधायस्मा महामोग्गल्लानो गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अञ्ञतरस्मिं पदेसे सितं पात्वाकासि। को नु खो, आवुसो मोग्गल्लान, हेतु को पच्चयो सितस्स पातुकम्माया" ति?

"इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं अट्ठिकसङ्खलिकं वेहासं गच्छन्तिं। तमेनं गिज्झा पि काका पि कुलला पि अनुपतित्वा अनुपतित्वा फासुळन्तरिकाहि वितुदेन्ति वितच्छेन्ति विराजेन्ति। सा सुदं अट्टस्सरं करोति। [B.447] तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—"अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो! [N.212] एवरूपो पि नाम सत्तो भविस्सति! एवरूपो पि नाम यक्खो भविस्सति! एवरूपो पि नाम अत्तभावपटिलाभो भविस्सती" ति!!

अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"चक्खुभूता वत, भिक्खवे, सावका विहरन्ति; ञाणभूता वत, भिक्खवे, सावका विहरन्ति, यत्र हि नाम सावको एवरूपं ञस्सति वा दक्खति वा सक्खिं वा करिस्सति। पुब्बेव मे सो, भिक्खवे, सत्तो दिट्ठो

(महामोग्गल्लान—) "तुम असमय में यह प्रश्न कर रहे हो। मैं जब भगवान् के सम्मुख बैठा रहूँ तब तुम मुझ से यह प्रश्न करना।"

तब आयुष्मान् लक्षण और आयुष्मान् महामोग्गल्लान राजगृह में भिक्षाचर्या कर, भोजन के बाद, पिण्डपात क्रिया से निवृत्त हो कर भगवान् के सम्मुख पहुँच कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। उस समय आयुष्मान् लक्षण ने आयुष्मान् महामोग्गल्लान से पुनः उन के उपर्युक्त मन्द हास्य का कारण पूछा।

(महामोग्गल्लान—) "आयुष्मन्! मैं वहाँ जब गृध्रकूट पर्वत से नीचे उतर रहा था तो मैने आकाश में उड़ते हुए एक अस्थिकङ्काल को देखा। तब कुछ गीध, कौए, कुरर तथा ऐसे ही अन्य मांसभोजी पक्षी उसके समीप आ आ कर उस की पंसुलियों में चोंच मार मार कर उस का मांस नोचते हुए चले जाते थे। वह उस वेदना से आर्त स्वर में चिल्लाता था। उसे देख कर तब मुझे यह विचार आया—"अरे! आश्चर्य है, अरे! अद्भुत है कि ऐसा भी प्राणी होता है! ऐसा भी यक्ष (प्रेत) होता है! प्राणी को ऐसा जन्म भी धारण करना पड़ता है।"

तब भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! मेरे शिष्य, आँखें खोलकर सावधान रहते हुए लोक में विचरण करते हैं। मेरे श्रावक ऐसी घटनाओं को भी देख लेते हैं, जान लेते हैं,

अहोसि, अपि चाहं न ब्याकासिं। अहं चेतं ब्याकरेय्यं, परे च मे न सद्दहेय्युं। ये मे न सद्दहेय्युं, तेसं तं अस्स दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय। एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे गोघातको अहोसि। सो तस्स कम्मस्स विपाकेन बहूनि वस्सानि बहूनि [R.256] वस्ससतानि बहूनि वस्ससहस्सानि बहूनि वस्ससतसहस्सानि निरये पच्चित्वा तस्सेव कम्मस्स विपाकावसेसेन एवरूपं अत्तभावपटिलाभं पटिसंवेदयती'' ति॥

(सब्बेसं सुत्तन्तानं एसेव पेय्यालो।) ●

२. पेसिसुत्तं

२. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं मंसपेसिं वेहासं गच्छन्तिं। तमेनं गिज्झा पि काका पि कुलला पि अनुपतित्वा अनुपतित्वा वितच्छेन्ति विराजेन्ति। सा सुदं अट्टसरं करोति...पे०...एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे गोघातको अहोसि ...पे०... ॥ ●

३. पिण्डसुत्तं

३. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं मंसपिण्डं वेहासं गच्छन्तं। तमेनं गिज्झा पि काका पि कुलला पि अनुपतित्वा अनुपतित्वा वितच्छेन्ति विराजेन्ति। सो सुदं अट्टस्सरं करोति...पे०...एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे साकुणिको अहोसि ...पे०... ॥ ●

समझ लेते हैं। भिक्षुओ! पहले कभी मैंने भी यह प्राणी देखा था, परन्तु उस समय मैंने किसी को भी इसलिये नहीं बताया कि कोई मेरे कथन का विश्वास (श्रद्धा) न करेगा तो उसका बहुत अधिक अहित हो जायगा जो उसके लिये कष्टकर ही होगा। भिक्षुओ! यह प्राणी पहले कभी इसी राजगृह नगर में गोघातक के रूप में पैदा हुआ था। वह अपने उस गोहत्या पाप के कारण बहुत वर्षों तक, सैंकड़ों हजारों लाखों वर्षों तक नरक में कष्ट भोग कर उसी कर्म का कुछ अवशिष्ट फल भोगने के लिये आज इस रूप में पैदा हुआ है॥●

[यह समस्त पाठ आगे के नौ सूत्रों में भी यथाप्रसङ्ग जोड़ लेना चाहिये।]

२. पेशीसूत्र : : गोहत्या का दुष्परिणाम

२. ....''यहाँ मैंने, गृध्रकूट पर्वत से उतरते हुए, केवल मांसपेशीधारी शरीर को आकाश में जाते देखा। ....पूर्ववत्....भिक्षुओ! यह प्राणी पहले कभी इसी राजगृह में गोघातक के रूप में पैदा हुआ था।.... ॥ ●

३. पिण्डसूत्र : : पक्षिहत्या का दुष्परिणाम

३. ....''यहाँ मैंने, गृध्रकूट पर्वत से उतरते हुए, एक मांस पिण्डमात्रधारी शरीर को आकाश में जाते देखा। ....पूर्ववत्.... । यह प्राणी भी इसी राजगृह में शाकुनिक (चिड़ीमार= पक्षिघातक) के रूप में पैदा हुआ था।.... ॥ ●

४. निच्छविसुत्तं

४. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं [N.213, B.448] निच्छविं पुरिसं वेहासं गच्छन्तं। तमेनं गिज्झा पि काका पि कुलला पि अनुपतित्वा अनुपतित्वा वितच्छेन्ति विराजेन्ति। सो सुदं अट्टस्सरं करोति...पे०...एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे ओरब्भिको अहोसि...पे०... ॥ ●

५. असिलोमसुत्तं

५. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं असिलोमं [R.257] पुरिसं वेहासं गच्छन्तं। तस्स ते असी उप्पतित्वा उप्पतित्वा तस्सेव काये निपतन्ति। सो सुदं अट्टस्सरं करोति...पे०...एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे सूकरिको अहोसि...पे०... ॥ ●

६. सत्तिसुत्तं

६. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं सत्तिलोमं पुरिसं वेहासं गच्छन्तं। तस्स ता सत्तियो उप्पतित्वा उप्पतित्वा तस्सेव काये निपतन्ति। सो सुदं अट्टस्सरं करोति...पे०...एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे मागविको अहोसि...पे०... ॥ ●

७. उसुलोमसुत्तं

७. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं उसुलोमं पुरिसं

---

४. निश्छविसूत्र : : मृगहत्या का दुष्परिणांम

४. "यहाँ मैंने, गृध्रकूट पर्वत से उतरते हुए, एक चर्मरहित शरीर को आकाश में जाते हुए देखा। ....पूर्ववत्....।" यह प्राणी भी इसी राजगृह में एक मागविक (=मृगयु, हरिणों का शिकारी) के रूप में पैदा हुआ था।.... ॥ ●

५. असिलोमसूत्र : : शूकरहत्या का दुष्परिणाम

५. ...."आयुष्मन्! एक बार मैने गृध्रकूट पर्वत से उतरते हुए तलवार की तरह शरीर के बालों वाले पुरुष को आकाश में उड़ते हुए देखा। उसके वे तलवार जैसे बाल उड़ उड़ कर तीक्ष्णता से उसी के शरीर पर गिरते थे। उन की चोट (आघात) से वह आर्तनाद करता था....पूर्ववत्....। भिक्षुओ! वह प्राणी कभी इसी राजगृह में शौकरिक (सूअरों का हत्यारा) के रूप में जन्मा था। ....पूर्ववत्...." ॥ ●

६. शक्तिसूत्र : : मृगहत्या का दुष्परिणाम

६. ...."आयुष्मन्! ....भाले जैसे बालों वाले पुरुष को देखा....पूर्ववत्....। भिक्षुओ! वह प्राणी कभी इसी राजगृह में बहेलिये (मृगयु=व्याध) के रूप में जन्मा था॥ ●

वेहासं गच्छन्तं। तस्स ते उसू उप्पतित्वा उप्पतित्वा तस्सेव काये निपतन्ति। सो सुदं अट्टस्सरं करोति...पे०...एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे कारणिको अहोसि...पे०... ॥

८. सूचिलोमसुत्तं

८. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं सूचिलोमं पुरिसं वेहासं गच्छन्तं। तस्स ता सूचियो उप्पतित्वा उप्पतित्वा तस्सेव काये निपतन्ति। सो [B.449] सुदं अट्टस्सरं करोति...पे०...एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे सूतो अहोसि...पे०... ॥

९. दुतियसूचिलोमसुत्तं

[N.214, R.258] ९. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं सूचिलोमं पुरिसं वेहासं गच्छन्तं। तस्स ता सूचियो सीसे पविसित्वा मुखतो निक्खमन्ति; मुखे पविसित्वा उरतो निक्खमन्ति; उरे पविसित्वा उदरतो निक्खमन्ति; उदरे पविसित्वा ऊरूहि निक्खमन्ति; ऊरूसु पविसित्वा जङ्घाहि निक्खमन्ति; जङ्घासु पविसित्वा पादेहि निक्खमन्ति; सो सुदं अट्टस्सरं करोति...पे०...एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे सूचको अहोसि...पे०... ॥

---

७. इषुलोमसूत्र : : अन्यायपूर्वक न्याय का दुष्परिणाम

७. ....''आयुष्मन्! ....बाणों जैसे बालों वाला पुरुष आकाश में उड़ते हुए देखा....पूर्ववत्.... । भिक्षुओ! वह इसी राजगृह में कभी अन्यायी न्यायाधीश (कारणिक) के रूप में जन्मा था....पूर्ववत्.... ॥

८. सूचिलोमसूत्र : : सूई जैसे बालों वाला क्रूर सूचक

८. ....''आयुष्मन्! ....सूई जैसे बालों वाला पुरुष....देखा। ....पूर्ववत्.... । भिक्षुओ! वह कभी इसी राजगृह में एक प्रसिद्ध चुगलखोर (एक दूसरे की चुगली कर परस्पर कलह कराने वाले) के रूप में जन्मा था। ....पूर्ववत्.... ॥

९. द्वितीय सूचिलोमसूत्र : : दुष्ट चुगलखोर

९. ....''आयुष्मन्! ....सूई जैसे बालों वाला पुरुष....देखा। ....पूर्ववत्.... । उसके वे सूई के समान उड़ उड़ कर उसी के शरीर में बार बार धँसते थे। वे उस के शिर से प्रविष्ट हो कर मुख से निकलते थे, मुख से निकल कर छाती में धँसते थे, छाती से निकल कर जाँघों में धँसते थे। उस वेदना से वह आर्त स्वर में चिल्लाता था। ....भिक्षुओ! यह पुरुष कभी इसी राजगृह में चुगलखोर के रूप में जन्मा था। ....पूर्ववत्.... ॥

१०. कुम्भण्डसुत्तं

१०. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं कुम्भण्डं पुरिसं वेहासं गच्छन्तं। सो गच्छन्तो पि तेव अण्डे खन्धे आरोपेत्वा गच्छति। निसीदन्तो पि तेस्वेव अण्डेसु निसीदति। तमेन गिज्झा पि काका पि कुलला पि अनुपतित्वा अनुपतित्वा वितच्छेन्ति विराजेन्ति। सो सुदं अट्टस्सरं करोति...पे०...एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे गामकूटको अहोसि...पे०... ॥ •

पठमो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

अट्ठि पेसि उभो गावघातका, पिण्डो साकुणियो निच्छवोरब्भि।
असि सूकरिको सत्तिमागवि, उसु कारणिको सूचि सारथि।
यो च सिब्बियति सूचको हि सो, अण्डभारि अहु गामकूटको ति॥ •

———

१०. कुम्भाण्डसूत्र : : ग्राम का दुष्ट सरपञ्च

१०. ''आयुष्मन्! गृध्रकूट पर्वत से उतरते हुए मैने आकाश में कुम्भाण्ड (घड़े की तरह गोल अण्डाकार शरीर वाला) पुरुष देखा। वह प्रतिक्षण उन घटाकार अण्डों को अपने कन्धों पर ढोता था। बैठते हुए उन्हीं अण्डों पर बैठता था। ....पूर्ववत्.... । भिक्षुओ! वह पहले कभी इसी राजगृह में एक ग्राम का दुष्ट पञ्च हुआ था। ....पूर्ववत्.... ॥ •

प्रथम वर्ग समाप्त॥

प्रथम वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. अस्थिसूत्र, २. पेशीसूत्र, ३. पिण्ड, ४. निश्छविसूत्र, ५. असिलोम, ६. शक्तिलोम, ७. इषुलोम, ८. सूचिलोम, ९. द्वितीय सूचिलोम, एवं १०. कुम्भाण्डसूत्र॥ •

दुतियो वग्गो

११. ससीसकसुत्तं

[B.450, R.259] ११. एवं मे सुतं। एकं समयं राजगहे वेळुवने...। इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं पुरिसं गूथकूपे ससीसकं निमुग्गं [N.215] ...पे०...एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे पारदारिको अहोसि ...पे०... ॥ •

१२. गूथखादसुत्तं

१२. ...इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं पुरिसं गूथकूपे निमुग्गं उभोहि हत्थेहि गूथं खादन्तं...पे०...एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे दुट्ठब्राह्मणो अहोसि। सो कस्सपस्स सम्मासम्बुद्धस्स पावचने भिक्खुसङ्घं भत्तेन निमन्तेत्वा दोणियो गूथस्स पूरापेत्वा एतदवोच—अहो भोन्तो, यावदत्थं भुञ्जन्तु चेव हरन्तु चा ति...पे०... ॥ •

१३. निच्छवित्थिसुत्तं

१३. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं निच्छविं इत्थिं वेहासं गच्छन्तिं। तमेनं गिज्झा पि काका पि कुलला पि अनुपतित्वा अनुपतित्वा

द्वितीय वर्ग

११. सशीर्षकसूत्र : : परस्त्रीगामिता का दुष्परिणाम

११. ऐसा मैंने सुना है। राजगृह के वेणुवन में साधना के समय... ''आयुष्मानो! मैंने यहाँ गृध्रकूट पर्वत से उतरते हुए, एक पुरुष को मल (विष्ठा) के एक गहरे गर्त में शिर तक डूबे हुए देखा। ....पूर्ववत्....। भिक्षुओ! यह पुरुष पूर्व जन्म में इसी राजगृह में परस्त्रीगामी था। ....पूर्ववत्.... ॥ •

१२. गूथखादसूत्र : : विष्ठा खाने वाला ब्राह्मण

१२. आयुष्मानो! यहाँ....मैंने एक पुरुष को दोनों हाथों से उठा उठा कर विष्ठा खाते हुए देखा। ....। भिक्षुओ! यह पुरुष इसी राजगृह में पूर्व जन्म में कोई दुष्ट ब्राह्मण हुआ था। उसने काश्यप सम्यक्सम्बुद्ध के समय भिक्षुसङ्घ को भोजनार्थ निमन्त्रित कर, बड़े बड़े भाण्डों में विष्ठा भरवा कर उस को दिखाते हुए भिक्षुओं से कहा—''आप लोग इसी को भोजनरूप में यथेच्छ ग्रहण करें। ....पूर्ववत्.... ॥ •

१३. निश्छविस्त्रीसूत्र : : व्यभिचारिणी स्त्री

१३. आयुष्मानो! यहाँ....मैंने चर्मविहीन किसी स्त्री को आकाशमार्ग से जाते हुए

वितच्छेन्ति विराजेन्ति। सा सुदं अट्टस्सरं करोति...पे०...एसा, भिक्खवे, इत्थी इमस्मिं येव राजगहे अतिचारिनी अहोसि...पे०... ॥ •

१४. मङ्गुलित्थिसुत्तं

१४. ...इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं इत्थिं [R.260] दुग्गन्धं मङ्गुलिं वेहासं गच्छन्तिं। तमेनं गिज्झा पि काका पि कुलला पि अनुपतित्वा अनुपतित्वा वितच्छेन्ति विराजेन्ति। सा सुदं अट्टस्सरं करोति...पे०...एसा, भिक्खवे, इत्थी इमस्मिं येव राजगहे इक्खणिका अहोसि...पे०... ॥ •

१५. ओकिलिनीसुत्तं

१५. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं इत्थिं [B.451] उप्पक्कं ओकिलिनिं ओकिरिनिं वेहासं गच्छन्तिं। सा सुदं अट्टस्सरं करोति [N.216] ...पे०... एसा, भिक्खवे, इत्थी कलिङ्गस्स रञ्ञो अग्गमहेसी अहोसि। सा इस्सापकता सपत्तिं अङ्गारकटाहेन ओकिरि ...पे०... ॥ •

१६. असीसकसुत्तं

१६. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं असीसकं कबन्धं वेहासं गच्छन्तं। तस्स उरे अक्खीनि चेव होन्ति मुखं च। तमेनं गिज्झा पि काका पि कुलला पि अनुपतित्वा अनुपतित्वा वितच्छेन्ति विराजेन्ति। सो सुदं अट्टस्सरं करोति

देखा। ....पूर्ववत्....। भिक्षुओ! यह स्त्री कभी इसी राजगृह में व्यभिचारिनी का कर्म करती थी। .... ॥ •

१४. मङ्गुरस्त्रीसूत्र : : मछली की गन्धवाली स्त्री

१४. आयुष्मानो! यहाँ....एक ऐसी स्त्री को देखा जिसके शरीर से मछली की तरह दुर्गन्ध आ रही थी। ....पूर्ववत्....। भिक्षुओ! यह स्त्री पूर्व जन्म में भोले पुरुषों को, झूठा सच्चा मुहूर्त (ज्यौतिष) बता कर ठगा करती थी॥ •

१५. अवकिरणीसूत्र : : सपत्नी (सौत) को अग्नि में फैंकने वाली स्त्री

१५. आयुष्मानो! यहाँ....एक ऐसी स्त्री को देखा जो बड़े बड़े जलते अग्नि के गोले फेंक रही थी। ....पूर्ववत्....यह पूर्व जन्म में कलिङ्गराज की पटरानी थी। उसने ईर्ष्यावश अपनी सपत्नी (स्त्री) को अङ्गारकटाह में फेंक दिया था। ....पूर्ववत्.... ॥ •

१६. अशीर्षकसूत्र : : शिरोविहीन डाकू

१६. आयुष्मानो! यहाँ मैंने....सिर कटे हुए शरीर को आकाश में उड़ते हुए देखा।

...पे०...एसो, भिक्खवे, सत्तो इमस्मिं येव राजगहे हारिको नाम चोरघातको अहोसि ...पे०... ॥ ●

१७. पापभिक्खुसुत्तं

१७. इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं भिक्खुं वेहासं गच्छन्तं। तस्स सङ्घाटि पि आदित्ता सम्पज्जलिता सजोतिभूता, पत्तो पि आदित्तो सम्पज्जलितो सजोतिभूतो, कायबन्धनं पि आदित्तं सम्पज्जलितं सजोतिभूतं, कायो पि [R.261] आदित्तो सम्पज्जलितो सजोतिभूतो। सो सुदं अट्टस्सरं करोति...पे०...एसो, भिक्खवे, भिक्खु कस्सपस्स सम्मासम्बुद्धस्स पावचने पापभिक्खु अहोसि...पे०... ॥●

१८. पापभिक्खुनीसुत्तं

१८. अद्दसं भिक्खुनिं वेहासं गच्छन्तिं। तस्सा सङ्घाटि पि आदित्ता...पे०... पापभिक्खुनी अहोसि...पे०... ॥ ●

१९. पापसिक्खमानसुत्तं

[B.452] १९. अद्दसं सिक्खमानं वेहासं गच्छन्तिं। तस्सा सङ्घाटि पि आदित्ता ...पे०...पापसिक्खमाना अहोसि...पे०... ॥ ●

२०. पापसामणेरसुत्तं

२०. अद्दसं सामणेरं वेहासं गच्छन्तं। तस्स सङ्घाटि पि आदित्ता...पे०... [N.217] पापसामणेरो अहोसि...पे०... ॥ ●

उस की छाती में आँखें और शिर था। ....पूर्ववत्....। यह प्राणी पूर्व जन्म में इसी राजगृह का निवासी चौरघातक (डाकू) था। .... ॥ ●

१७. पापभिक्षुसूत्र : : कोई पापकर्ता भिक्षु

१७. आयुष्मानो! यहाँ....किसी भिक्षु को आकाश में उड़ते देखा। उस की सङ्घाटी भी जल रही थी, पात्र भी जल रहा था, उस का कायबन्धन भी जल रहा था, शरीर भी जल रहा था। इस वेदना से....पूर्ववत्....। भिक्षुओ! यह भिक्षु काश्यप सम्यक्सम्बुद्ध के धर्मोपदेश में पापबुद्धि रखता था। ....पूर्ववत्.... ॥ ●

१८. पापभिक्षुणीसूत्र : : कोई पापकर्त्री भिक्षुणी

१८. आयुष्मानो! यहाँ....एक भिक्षुणी को देखा....पूर्वसूत्रवत्....। यह काश्यप सम्यक्सम्बुद्ध के धर्मोपदेश में पापबुद्धि रखती थी। .... ॥ ●

१९. पापशिक्ष्यमाणासूत्र : : कोई पापी शिक्ष्यमाणा

१९. आयुष्मानो! यहाँ....किसी शिक्ष्यमाणा को आकाश में जाते देखा। ....यह काश्यप सम्यक्सम्बुद्ध के धर्मोपदेश में पापबुद्धि रखती थी। .... ॥ ●

२१. पापसामणेरीसुत्तं

२१. "इधाहं, आवुसो, गिज्झकूटा पब्बता ओरोहन्तो अद्दसं सामणेरिं वेहासं गच्छन्तिं। तस्सा सङ्घाटि पि आदित्ता सम्पज्जलिता सजोतिभूता, पत्तो पि आदित्तो सम्पज्जलितो सजोतिभूतो, कायबन्धनं पि आदित्तं सम्पज्जलितं सजोतिभूतं, कायो पि आदित्तो सम्पज्जलितो सजोतिभूतो। सा सुदं अट्टस्सरं करोति। तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—"अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो! एवरूपो पि नाम सत्तो भविस्सतिं! एवरूपो पि नाम यक्खो भविस्सति! एवरूपो पि नाम अत्तभावपटिलाभो भविस्सती" ति!!

अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"चक्खुभूता वत, भिक्खवे, सावका विहरन्ति; ञाणभूता वत, भिक्खवे, सावका विहरन्ति, यत्र हि नाम सावको एवरूपं ञस्सति वा दक्खति वा सक्खिं वा करिस्सति। पुब्बेव मे सा, भिक्खवे, [R.262] सामणेरी दिट्ठा अहोसि। अपि चाहं न ब्याकासिं। अहं चेतं ब्याकरेय्यं, परे च मे न सद्दहेय्युं। ये मे न सद्दहेय्युं, तेसं तं अस्स दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय। एसा, भिक्खवे, सामणेरी कस्सपस्स सम्मासम्बुद्धस्स पावचने पापसामणेरी अहोसि। सा तस्स कम्मस्स विपाकेन बहूनि वस्सानि बहूनि वस्ससतानि बहूनि वस्ससहस्सानि बहूनि वस्ससतसहस्सानि निरये पच्चित्वा तस्सेव कम्मस्स विपाकावसेसेन एवरूपं अत्तभावपटिलाभं पटिसंवेदयती" ति॥

•

दुतियो वग्गो॥

---

२०. पापश्रामणेरसूत्र : : कोई पापी श्रामणेर

२०. आयुष्मानो! यहाँ....किसी श्रामणेर को....पापबुद्धि रखता था। .... ॥ •

२१. पापश्रामणेरीसूत्र : : कोई पापी श्रामणेरी

२१. "यहाँ मैंने आयुष्मानो! गृध्रकूट पर्वत से उतरते हुए, किसी श्रामणेरी को आकाश में उड़ते हुए देखा। उसकी सङ्घाटी....पात्र....कायबन्धन....शरीर भी जल रहा था। उसके कारण....पूर्ववत्....ऐसा भी प्रेत होगा! ऐसा भी प्राणी यहाँ पैदा होगा"!

तब भगवान् ने भिक्षुओं को बताया—मेरे शिष्य, आँखें खोल कर, सावधान रहते हुए लोक में विचरण करते हैं। मेरे श्रावक ऐसी साधारण पुरुषों के लिये दुर्गम घटनाओं को भी जान लेते हैं। भिक्षुओ ....पूर्ववत्....*[द्र० अस्थिसूत्र]* अवशिष्ट फल भोगने के लिये आज इस रूप में पैदा हुई है॥

•

द्वितीय वर्ग समाप्त॥

तस्सुद्दानं

कूपे निमुग्गो हि सो पारदारिको, गूथखादि अहु दुट्ठब्राह्मणो॥ [B.453]
निच्छवित्थि अतिचारिनी अहु, मङ्गुलित्थि अहु इक्खणित्थिका॥
ओकिलिनि सपत्तङ्गारोकिरि, सीसच्छिन्नो अहु चोरघातको॥
भिक्खु भिक्खुनी सिक्खमाना, सामणेरो अथ सामणेरिका॥
कस्सपस्स विनयस्मिं पब्बज्जं, पापकम्मं करिंसु तावदे ति॥

लक्खणसंयुत्तं समत्तं॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. सशीर्षकसूत्र, २. गूथखादीसूत्र, ३. निश्छविस्त्री, ४. मङ्गुर (मङ्गल) स्त्री, ५. अवकिरणीसूत्र, ६. अशीर्षकसूत्र, ७. पापभिक्षु, ८. पापभिक्षुणी, ९. पापशिक्ष्यमाणा, १०. पापश्रामणेर, ११. पापश्रामणेरीसूत्र॥

लक्षणसंयुक्त समाप्त॥

२०. ओपम्मसंयुत्तं

१. कूटसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [N.219, B.454, R.263] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा...पे०...एतदवोच— ''सेय्यथापि, भिक्खवे, कूटागारस्स या काचि गोपानसियो सब्बा ता कूटङ्गमा कूटसमोसरणा कूटसमुग्घाता सब्बा ता समुग्घातं गच्छन्ति; एवमेव खो, भिक्खवे, ये केचि अकुसला धम्मा सब्बे ते अविज्जामूलका अविज्जासमोसरणा अविज्जासमुग्घाता, सब्बे ते समुग्घातं गच्छन्ति। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'अप्पमत्ता विहरिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ •

२. नखसिखसुत्तं

२. सावत्थियं विहरति। अथ खो भगवा परित्तं नखसिखायं पंसुं आरोपेत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमं नु खो बहुतरं, यो चायं मया परित्तो नखखिायं पंसु आरोपितो या चायं महापठवी'' ति?

''एतदेव, भन्ते, बहुतरं यदिदं महापठवी। अप्पमत्तकोयं भगवता परित्तो

---

२०. औपम्यसंयुक्त

१. कूटसूत्र : : अकुशल धर्म अविद्यामूलक

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती में....पूर्ववत्....यों बोले—''भिक्षुओ! जैसे किसी शिखर वाले भवन के सभी शिखर उसी भवन पर आधृत हैं, उसी के सहारे से हैं, उसी पर उठे हुए हैं, उस के खड़े रहने से वे खड़े हुए दिखायी देते हैं। इसी तरह, भिक्षुओ! ये जितने भी अकुशल धर्म हैं वे सभी अविद्यामूलक हैं, अविद्या पर आधृत हैं, अविद्या के सहारे खड़े हैं। इसलिये, भिक्षुओ! तुम्हें इस उदाहरण से यह शिक्षा लेनी चाहिये—'हम अप्रमत्त (सावधान) रहते हुए साधनारत रहेंगे।'—ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये॥ •

२. नखशिखसूत्र : : प्रमाद न करना

२. श्रावस्ती में साधना के समय....। तब भगवान् ने अपने नख के अग्र भाग (शिखा) पर थोड़ा सा रज:कण (धूल) लगा कर भिक्षुओं से पूछा—''तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! यह जो मेरे नख के अग्रभाग पर जो धूल लगी हुई है वह अधिक है? या यह महापृथ्वी?''

''भन्ते! यह महापृथ्वी ही अधिक है। आप के नखाग्र भाग पर लगी धूल तो उसकी

नखसिखायं पंसु आरोपितो। सङ्खं पि न उपेति उपनिधिं पि न उपेति कलभागं पि न उपेति महापठविं उपनिधाय भगवता परित्तो नखसिखायं पंसु आरोपितो'' ति।

''एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये मनुस्सेसु पच्चाजायन्ति; अथ खो एतेयेव वहुतरा सत्ता ये अञ्ञत्र मनुस्सेहि पच्चाजायन्ति। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'अप्पमत्ता विहरिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

३. कुलसुत्तं

३. सावत्थियं विहरति। ''सेय्यथापि, भिक्खवे, यानि कानिचि कुलानि [R.264] बहुत्थिकानि अप्पपुरिसानि तानि सुप्पधंसियानि होन्ति चोरेहि कुम्भत्थेन- [N.220, B.455] केहि; एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि भिक्खुनो मेत्ता- चेतोविमुत्ति अभाविता अबहुलीकता सो सुप्पधंसियो होति अमनुस्सेहि। सेय्यथापि, भिक्खवे, यानि कानिचि कुलानि अप्पित्थिकानि बहुपुरिसानि तानि दुप्पधंसियानि होन्ति चोरेहि कुम्भत्थेनकेहि, एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि भिक्खुनो मेत्ताचेतोविमुत्ति भाविता बहुलीकता सो दुप्पधंसियो होति अमनुस्सेहि। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'मेत्ता नो चेतोविमुत्ति भाविता भविस्सति बहुलीकता

अपेक्षा बहुत अल्प है। यह अल्प सा रज:कण इस महापृथ्वी के किसी भी भाग (कला) में समानता नहीं करता।''

''भिक्षुओ! वैसे ही वे प्राणी भी बहुत अल्प हैं जो इस मानवयोनि में जन्म लेते हैं। इसलिये, भिक्षुओ! तुम्हें भी यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—''हम अप्रमत्त हो कर साधना करेंगे।'' भिक्षुओ! इस प्रकार तुम्हें सीखना चाहिये॥ ●

३. कुलसूत्र : : मैत्री-भावना

३. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''जैसे, भिक्षुओ! ऐसे गृहस्थों के घरों में चौर या डाकुओं द्वारा चौरी या डाका डालना सुगम होता है जिस घर में पुरुष कम हो और स्त्रियाँ अधिक; उसी प्रकार, भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु की मैत्रीयुक्त चेतोविमुक्ति अभावित या अनभ्यस्त हो वह साधक भिक्षु अमनुष्यों (दुष्ट देवताओं या प्रेतों) द्वारा सहज में ही पीड़ित किया जा सकता है।

''जैसे, भिक्षुओ! जिस घर में पुरुष अधिक हों तथा स्त्रियाँ कम, वह घर चौर डाकुओं द्वारा सहजता से नहीं लूटा जा सकता; वैसे ही भिक्षुओ! जिस भिक्षु की मैत्रीयुक्त चेतोविमुक्ति भलीभाँति साधित तथा अभ्यस्त है उसे देवता या प्रेत सहजतया साधना से च्युत करने में समर्थ नहीं हो सकते। अत: भिक्षुओ! तुम्हें इस उदाहरण से यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—'हम अपनी मैत्रीयुक्त चेतोविमुक्ति भावना को इतनी सुदृढ तथा

यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥

●

४. ओक्खासुत्तं

४. ...सावत्थियं विहरति। ''यो, भिक्खवे, पुब्बण्हसमयं ओक्खासतं दानं ददेय्य, यो मज्झन्हिकसमयं ओक्खासतं दानं ददेय्य, यो सायन्हसमयं ओक्खासतं दानं ददेय्य, यो वा पुब्बण्हसमयं अन्तमसो गद्दुहनमत्तं पि मेत्तचित्तं भावेय्य, यो वा मज्झन्हिकसमयं अन्तमसो गद्दुहनमत्तं पि मेत्तचित्तं भावेय्य, यो वा सायन्हसमयं अन्तमसो गद्दुहनमत्तं पि मेत्तचित्तं भावेय्य, इदं ततो महप्फलतरं। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'मेत्ता नो चेतोविमुत्ति भाविता भविस्सति बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥

●

५. सत्तिसुत्तं

५. ...सावत्थियं विहरति। ''सेय्यथापि, भिक्खवे, सत्ति तिण्हफला। [R.265] अथ पुरिसो आगच्छेय्य—'अहं इमं सत्तिं तिण्हफलं पाणिना वा मुट्ठिना वा पटिलेणिस्सामि पटिकोट्टिस्सामि पटिवट्टेस्सामी' ति; तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, भब्बो नु खो सो पुरिसो अमुं सत्तिं तिण्हफलं पाणिना वा मुट्ठिना वा पटिलेणेतुं पटिकोट्टेतुं पटिवट्टेतुं'' ति?

स्वभ्यस्त कर लेगें कि हमें वहाँ से कोई च्युत न कर पावे। भिक्षुओ! ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये॥

●

४. ओक्खासूत्र : : विपुल मैत्रीभावना

४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''भिक्षुओ! जो दानदाता प्रात:काल किसी बड़े पात्र (=ओक्खा) में भात बना कर, मध्याह्न में, सायङ्काल में वैसे ही किसी बड़े पात्र में भात बना कर दान करे तथा दूसरा कोई साधक प्रात: एक गौ के दुहने जितने समय तक, मध्याह्न में भी, सायङ्काल में भी एक गौ के दुहने जितने समय तक ही मैत्रीचित्त की भावना करे तो यह ऐसी भावना उपर्युक्त दान से अधिक फलदात्री होगी। अत:, भिक्षुओ! तुम्हें इस उदाहरण से भी यह सीखना चाहिये—'हम अपनी मैत्रीचित्तभावना को इतना अधिक से अधिक बढावें, विस्तृत करें, वृद्धिङ्गत करें, कि वहाँ से हम कभी च्युत न हो पावें।' भिक्षुओ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये॥''

●

५. शक्तिसूत्र : : विपुल मैत्रीभावना

५. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। ''जैसे, भिक्षुओ! भाले का अग्रभाग (फल) तीक्ष्ण होता है। वहाँ कोई पुरुष आ कर यह सोचे—'मैं इस भाले के अग्र भाग को हाथ

"नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु"?

[N.221] "असु हि, भन्ते, सत्ति तिण्हफला न सुकरा पाणिना वा मुट्ठिना वा पटिलेणेतुं पटिकोट्टेतुं पटिवट्टेतुं। यावदेव च पन सो पुरिसो किलमथस्स विघातस्स भागी अस्सा" ति।

"एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि भिक्खुनो मेत्ताचेतोविमुत्ति भाविता [B.456] बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, तस्स चे अमनुस्सो चित्तं खिपितब्बं मञ्ञेय्य; अथ खो स्वेव अमनुस्सो किलमथस्स विघातस्स भागी अस्स। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'मेत्ता नो चेतोविमुत्ति भाविता भविस्सति बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥ •

६. धनुग्गहसुत्तं

६. ...सावित्थियं विहरति। "सेय्यथापि, भिक्खवे, चत्तारो दळ्हधम्मा धनुग्गहा सुसिक्खिता कतहत्था कतूपासना चतुद्दिसा ठिता अस्सु। अथ पुरिसो [R.266] आगच्छेय्य— 'अहं इमेसं चतुन्नं दळ्हधम्मानं धनुग्गहानं सुसिक्खितानं कतहत्थानं कतूपासनानं चतुद्दिसा कण्डे खित्ते अप्पतिट्ठिते पठवियं गहेत्वा

के मुक्के से तोड़ दूँगा, कूट दूँगा, पीट दूँगा।' तो क्या समझते हो, भिक्षुओ! वह पुरुष ऐसा कर सकेगा?" "नहीं, भन्ते!" "वह क्यों?"

"वह इसलिये कि यह भाला तीक्ष्ण अग्रभाग वाला है, अत: वह हाथ या हाथ की मुट्ठी से टूटना कूटना या पीटना सरल नहीं है। अपि तु वैसा करने वाला पुरुष ऐसा कर के आहत हो जायगा या अन्य प्रकार का कष्ट भोगेगा।

इसी तरह, भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु की मैत्रीचित्तविमुक्ति भावना दृढ हो चुकी हो, अभ्यस्त हो चुकी हो, स्थिर हो चुकी हो, सुसमाहित हो चुकी हो, उस की उस भावना को यदि कोई अमनुष्य तोड़ना चाहे तो वह नहीं तोड़ पायगा, अपि तु स्वयं ही कष्ट पायगा। अत: इस उदाहरण से, भिक्षुओ! तुम्हें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—'मैत्रीयुक्त चित्तविमुक्ति इतनी सुदृढ सुसमारब्ध एवं सुभावित कर लेंगे कि कोई इसे विशृङ्खलित न कर पाये।' भिक्षुओ! तुम्हें यही सीखना चाहिये॥ •

६. धनुर्ग्रहसूत्र : : अप्रमादपूर्वक साधना

६. **श्रावस्ती में** साधना करते समय....।"जैसे, भिक्षुओ! चार दृढचित्त वीर धनुर्धर, शिक्षित, इस कला में सिद्धहस्त, चारों तरफ खडे हों, तब वहाँ कोई पुरुष आवे तथा यह कहे—'मैं इन चारों वीरों द्वारा छोडे गये वाणों को पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही ले आऊँगा।'

आहरिस्सामी' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, 'जवनो पुरिसो परमेन जवेन समन्नागतो' ति अलं वचनाया'' ति?

''एकस्स चे पि, भन्ते, दळ्हधम्मस्स धनुग्गहस्स सुसिक्खितस्स कतहत्थस्स कतूपासनस्स कण्डं खित्तं अप्पतिट्ठितं पठवियं गहेत्वा आहरेय्य—'जवनो पुरिसो परमेन जवेन समन्नागतो' ति अलं वचनाय, को पन वादो चतुन्नं दळ्हधम्मानं धनुग्गहानं सुसिक्खितानं कतहत्थानं कतूपासनानं'' ति?

''यथा च, भिक्खवे, तस्स पुरिसस्स जवो, यथा च चन्दिमसुरियानं जवो, ततो सीघतरो। यथा च, भिक्खवे, तस्स पुरिसस्स जवो यथा च चन्दिमसुरियानं जवो यथा च या देवता चन्दिमसुरियानं पुरतो धावन्ति तासं देवतानं जवो, ततो सीघतरं आयुसङ्खारा खिय्यन्ति। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'अप्पमत्ता विहरिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ [N.222] ●

७. आणिसुत्तं

७. ...सावत्थियं विहरति। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, दसारहानं आनको [B.457] नाम मुदिङ्गो अहोसि। तस्स दसारहा आनके घटिते अञ्ञं आणिं ओदहिंसु। अहु खो सो, भिक्खवे, समयो यं आनकस्स मुदिङ्गस्स पोराणं पोक्खरफलकं [R.267] अन्तरधायि। आणिसङ्घाटो व अवसिस्सि। एवमेव खो, भिक्खवे, भविस्सन्ति भिक्खू

तो, भिक्षुओ! क्या मानते हो भिक्षुओ! ऐसा जवन (फुर्ती) दिखाने से वह पुरुष श्रेष्ठ जवनयुक्त नहीं कहलायगा?''

''भन्ते! यदि वह एक द्वारा ही छोडे बाण को, पृथ्वी पर गिरने से पहले ले आवे तो भी श्रेष्ठ जवनयुक्त (फुर्तीला) कहलायगा, चारों की बात तो दूर रहे!''

''भिक्षुओ! उस पुरुष का जो यह जवन है सूर्य चन्द्रमा का जवन उससे बढ कर है। सूर्य चन्द्रमा के जवन की अपेक्षा अन्य उच्च देवताओं में अधिक जवन है। इन सब जवनों की अपेक्षा अधिक जवन से हमारा आयु:संस्कार क्षीण हो रहा है। अत: भिक्षुओ! तुम्हें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—'अप्रमत्त हो कर साधना करूँगा।' तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये॥ ●

७. आणिसूत्र : : गम्भीर धर्मों में मन लगाना

७. **श्रावस्ती में** साधना के समय....।''भिक्षुओ! पहले दशार्ह जनों के पास आनक नामक एक मृदङ्ग (नगाड़ा) था। उस आनक में जब कभी कोई छिद्र हो जाता तो दशार्ह जन उस में काष्ठ की एक खूँटी ठोक देते थे धीरे धीरे समय बीतने पर एक दिन ऐसा आ गया कि उस आनक मृदङ्ग का अपना समस्त काष्ठ समाप्त हो गया, उस के स्थान पर बाह्य काष्ठ की खूँटियाँ ही रह गयीं। इसीतरह, भिक्षुओ! भविष्य में ऐसे भी भिक्षु होंगे जो

अनागतमद्धानं, ये ते सुत्तन्ता तथागतभासिता गम्भीरा गम्भीरत्था लोकुत्तरा सुञ्ञतप्पटिसंयुत्ता, तेसु भञ्ञमानेसु न सुस्सूसिस्सन्ति न सोतं ओदहिस्सन्ति न अञ्ञा चित्तं उपट्ठापेस्सन्ति न च ते धम्मे उग्गहेतब्बं परियापुणितब्बं मञ्ञिस्सन्ति।

"ये पन मे सुत्तन्ता कविकता कावेय्या चित्तक्खरा चित्तब्यञ्जना बाहिरका सावकभासिता, तेसु भञ्ञमानेसु सुस्सूसिस्सन्ति, सोतं ओदहिस्सन्ति, अञ्ञा चित्तं उपट्ठापेस्सन्ति, ते च धम्मे उग्गहेतब्बं परियापुणितब्बं मञ्ञिस्सन्ति। एवमेव तेसं, भिक्खवे, सुत्तन्तानं तथागतभासितानं गम्भीरानं गम्भीरत्थानं लोकुत्तरानं सुञ्ञतप्पटि-संयुत्तानं अन्तरधानं भविस्सति। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'ये ते सुत्तन्ता तथागतभासिता गम्भीरा गम्भीरत्था लोकुत्तरा सुञ्ञतप्पटिसंयुत्ता, तेसु भञ्ञमानेसु सुस्सूसिस्साम, सोतं ओदहिस्साम, अञ्ञा चित्तं उपट्ठापेस्साम, ते च धम्मे उग्गहेतब्बं परियापुणितब्बं मञ्ञिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥ •

८. कलिङ्गरसुत्तं

८. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि "भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

तथागत द्वारा प्रोक्त गम्भीर एवं लोकोत्तर शून्यता के बोधक सूत्रों को नहीं सुनना चाहेंगे, उसके द्वारा बोधित ज्ञान पर कोई ध्यान नहीं देंगे, न वे उन धर्मों को सीखने या अभ्यास करने योग्य समझेंगे। इस के विपरीत, जो अन्य सम्प्रदायों के अनुयायियों द्वारा रचित काव्यप्रबन्ध हैं जो अर्थ और व्यञ्जन दोनों ही दृष्टियों से तात्कालिक चित्त के लिये लुभावने लगते हैं उन्हीं को सुनने के लिये कान देंगे, इच्छा करेंगे, तथा समझने का प्रयास करेंगे। भिक्षुओ! इस तरह तथागतप्रोक्त शून्यताबोधक गम्भीरार्थ एवं लोकोत्तर सूत्रों का लोप हो जायगा। अत: भिक्षुओ! इस दृष्टान्त के सहारे से तुम को यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—'ये जो तथागतप्रोक्त गम्भीर अर्थवाले लोकोत्तर शून्यताप्रतिपादक सूत्र हैं, उन का प्रवचन होने पर उन ही का श्रवण करेंगे, उन्हीं पर ध्यान लगायेंगे। उन के द्वारा ज्ञान प्राप्त करेंगे। उन्हीं तथागतप्रोक्त धर्मों को ग्रहण करने, सीखने तथा अभ्यास करने योग्य मानेंगे।' भिक्षुओ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये॥ •

८. कलिङ्गरसूत्र : : रूक्ष काष्ठ के तख्ते पर शयन

८. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **वैशाली** केमहावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को यों उपदेश किया—

"कलिङ्गरूपधाना, भिक्खवे, एतरहि लिच्छवी विहरन्ति [N.223, R.268] अप्पमत्ता आतापिनो उपासनस्मिं। तेसं राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो न लभति ओतारं न लभति आरम्मणं। भविस्सन्ति, भिक्खवे, अनागतमद्धानं लिच्छवी [B.458] सुखुमाला मुदुतलुनहत्थपादा ते मुदुकासु सेय्यासु तुलबिम्बोहनासु यावसुरियुग्गमना सेय्यं कप्पिस्सन्ति। तेसं राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो लच्छति ओतारं लच्छति आरम्मणं।

"कलिङ्गरूपधाना, भिक्खवे, एतरहि भिक्खू विहरन्ति अप्पमत्ता आतापिनो पधानस्मिं। तेसं मारो पापिमा न लभति ओतारं न लभति आरम्मणं। भविस्सन्ति, भिक्खवे, अनागतमद्धानं भिक्खू सुखुमाला मुदुतलुनहत्थपादा। ते मुदुकासु सेय्यासु तुलबिम्बोहनासु यावसुरियुग्गमना सेय्यं कप्पिस्सन्ति। तेसं मारो पापिमा लच्छति ओतारं लच्छति आरम्मणं। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'कलिङ्गरूपधाना विहरिस्साम अप्पमत्ता आतापिनो पधानस्मिं' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥ •

"भिक्षुओ! आजकल लिच्छविजन लकड़ी के तख्तों पर ही अपना शयनासन लगाते हैं। तथा उन्हीं पर बैठ कर अप्रमत्त हो कर उत्साहपूर्वक अपने समस्त कर्तव्य पूर्ण करते हैं। मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु उनके विरुद्ध कोई कूटनीतिक षड्यन्त्र नहीं रच पाते।

"परन्तु, कालान्तर (भविष्य) में ये ही लिच्छविजन सुकुमार हो जायँगे तथा इन के हाथ पैरों में कोमलता आ जायगी। ये लकड़ी के तख्तों के स्थान पर गुदगुदे गद्दे तकियों पर सूर्योदय के बाद तक सोने लगेंगे। इस तरह, उस समय मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु इन के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने में भी सफल हो जायँगे।

"इसी तरह, भिक्षुओ! आजकल भिक्षुजन भी सावधान हो कर अपनी धर्मसाधना में उद्योगपूर्वक लगे रहते हैं। अतः पापी मार उन के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र रचने में सफल नहीं हो पाता; परन्तु भविष्य में एक समय ऐसा भी आ सकता है, जब भिक्षु सुकुमार कोमल हाथ पैरों वाले हो कर गुदगुदे एवं मृदु गद्दे तकियों का उपयोग करते हुए सूर्योदय के बाद तक सोये रहेंगे। तब यह पापी मार भी अवसर पा कर इन की साधना में विघ्न डालने के लिये षड्यन्त्र रचने में सफल हो जायगा। अतः भिक्षुओ! तुम्हें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—'हम लकड़ी के तख्तों पर ही अपना शयनासन लगायेंगे। तथा सावधानतया उद्योगपूर्वक साधना में तत्पर रहेंगे; जिससे पापी मार, हमारे विरुद्ध हमारी साधना में विघ्न डालने हेतु कोई षड्यन्त्र न रच सके।' भिक्षुओ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये॥ •

९. नागसुत्तं

९. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो नवो भिक्खु अतिवेलं कुलानि उपसङ्कमति। तमेनं भिक्खू एवमाहंसु—"मायस्मा अतिवेलं कुलानि उपसङ्कमी" ति। सो भिक्खु भिक्खूहि वुच्चमानो एवमाह—"इमे हि नाम थेरा भिक्खू कुलानि उपसङ्कमितब्बं मञ्ञिस्सन्ति, किमङ्ग पनाहं" ति?

अथ खो सम्बहुला भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं [R.269] अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"इध, भन्ते, अञ्ञतरो नवो भिक्खु अतिवेलं कुलानि उपसङ्कमति। तमेनं भिक्खू एवमाहंसु—'मायस्मा अतिवेलं कुलानि उपसङ्कमी' ति। सो भिक्खु [N.224] भिक्खूहि वुच्चमानो एवमाह—'इमे हि नाम थेरा भिक्खू कुलानि उपसङ्कमितब्बं मञ्ञिस्सन्ति, किमङ्गं पनाहं'' ति।

[B.459] "भूतपुब्बं, भिक्खवे, अरञ्ञायतने महासरसी। तं नागा उपनिस्साय विहरन्ति। ते तं सरसिं ओगाहेत्वा सोण्डाय भिसमुळालं अब्बुहेत्वा सुविक्खलितं विक्खालेत्वा अकद्दमं सङ्खादित्वा अज्झोहरन्ति। तेसं तं वण्णाय चेव होति बलाय च, न च ततोनिदानं मरणं वा निगच्छन्ति मरणमत्तं वा दुक्खं। तेसं येव खो पन, भिक्खवे, महानागानं अनुसिक्खमाना तरुणा भिङ्कच्छापा तं सरसिं ओगाहेत्वा

---

९. नागसूत्र : : निरासक्त हो कर भोजन करना

९. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कोई नव प्रव्रजित भिक्षु बहुत काल तक गृहस्थों के घरों में घूमता रहता था। ऐसा करने पर उस को स्थविर भिक्षु निषेध करते थे—"भिक्षु ऐसा न किया करो।" स्थविर भिक्षुओं के ऐसा कहने पर वह नव भिक्षु यह उत्तर देता था—"ये स्थविर भिक्षु स्वयं भी गृहस्थों के घरों में जाते हैं, तो मेरे वहाँ जाने में क्या हानि है!"

तब बहुत से भिक्षुओं ने इस प्रसङ्ग को भगवान् के सम्मुख रखा....पूर्ववत्....।

(इस पर भगवान् ने भिक्षुओं को समझाया—) "बहुत पहले, भिक्षुओ! किसी जङ्गल में एक सरोवर था। उस में बहुत से हाथी समय समय पर जलक्रीड़ा करते थे। उस में से कमलनाल (मृणाल) उखाड़ कर, उसे जल से धो कर, कीचड़ रहित कर खाते रहते थे। इस तरह उन के शरीर की कान्ति एवं बल बढ़ता था। तथा वे इस से मृत्यु जैसे कष्ट न अनुभव कर सुखानुभव ही करते थे। उन वृद्ध हाथियों के सिखाने पर, नये तरुण हाथी

सोण्डाय भिसमुळालं अब्बुहेत्वा तं सुविक्खालितं विक्खालेत्वा सकद्दमं असङ्खादित्वा अज्झोहरन्ति। तेसं तं नेव वण्णाय होति न बलाय। ततोनिदानं मरणं वा निगच्छन्ति मरणमत्तं वा दुक्खं।

''एवमेव खो, भिक्खवे, इध थेरा भिक्खू पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसन्ति। ते तत्थ धम्मं भासन्ति। तेसं गिही पसन्नाकारं करोन्ति। ते तं लाभं अगधिता अमुच्छिता अनज्झोपन्ना आदीनव-दस्साविनो निस्सरणपञ्ञा परिभुञ्जन्ति। तेसं तं वण्णाय चेव होति बलाय च, न च ततोनिदानं मरणं वा निगच्छन्ति मरणमत्तं वा दुक्खं। तेसं येव खो पन, भिक्खवे, थेरानं भिक्खूनं अनुसिक्खमाना नवा भिक्खू पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसन्ति। ते तत्थ धम्मं भासन्ति। तेसं गिही पसन्नाकारं करोन्ति। ते तं लाभं गधिता मुच्छिता अज्झोपन्ना अनादीनवदस्साविनो [R.270] अनिस्सरणपञ्ञा परिभुञ्जन्ति। तेसं तं नेव वण्णाय होति न बलाय, ते ततोनिदानं मरणं वा निगच्छन्ति मरणमत्तं वा दुक्खं। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं— 'अगधिता अमुच्छिता अनज्झोपन्ना आदीनवदस्साविनो निस्सरणपञ्ञा तं लाभं परिभुञ्जिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ •

भी उस सरोवर में जलक्रीड़ा करने लगे। परन्तु वे उन कमलनालों को उखाड़ कर, उन्हें जल से धोये विना ही, उन का कीचड़ साफ किये विना ही, उन्हें खाने लगे। इस से उन की शरीरच्छवि एवं बल क्षीण होने लगे तथा उन्हें मरणान्तक कष्ट भी होने लगा।

"इसी तरह, भिक्षुओ! यहाँ स्थविर भिक्षु प्रातःकाल वस्त्र पहन कर पात्र चीवर ले कर ग्राम या कस्बे में भिक्षाहेतु प्रविष्ट होते हैं। वे वहाँ धर्मोपदेश करते हैं। इस से गृहस्थ प्रसन्न हो कर अच्छी अच्छी भिक्षा देते हैं। वे उस भिक्षा को लोभ के विना प्राप्त कर उसके दोषों को देखते हुए, त्याग का ध्यान करते हुए उसका उपभोग करते हैं। वह कार्य उन के वर्ण एवं बल की वृद्धि करता है।

''भिक्षुओ! तदनन्तर उन का अनुकरण करते हुए नये भिक्षु भी....पूर्ववत्....। वे उस भिक्षा को प्राप्त कर उस के दोषों पर विचार न करते हुए, उस के त्याग का ध्यान न करते हुए उस का उपभोग करने लगते हैं। इस कारण उनके वर्ण एवं बल की वृद्धि में हानि होने लगती है।

''अतः, भिक्षुओ! तुम्हें ऐसी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—'हम किसी लोभ लालच के विना, उस का आदीनव देखते हुए, उस के त्याग पर ध्यान देते हुए भिक्षा का उपयोग करेंगे।' तुम्हें ऐसे सीखना चाहिये॥ •

१०. बिळारसुत्तं

[N.225] १०. ...सावत्थियं विहरति। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु अतिवेलं कुलेसु चारित्तं आपज्जति। तमेनं भिक्खू एवमाहंसु—"मायस्मा अतिवेलं कुलेसु [B.460] चारित्तं आपज्जी" ति। सो भिक्खु भिक्खूहि वुच्चमानो न विरमति। अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"इध, भन्ते, अञ्ञतरो भिक्खु अतिवेलं कुलेसु चारित्तं आपज्जति। तमेन भिक्खु एवमाहंसु—'मायस्मा अतिवेलं कुलेसु चारित्तं आपज्जी' ति। सो भिक्खु भिक्खूहि वुच्चमानो न विरमती" ति।

"भूतपुब्बं, भिक्खवे, बिळारो सन्धिसमलसङ्कटीरे ठितो अहोसि मुदुमूसिं मग्गयमानो—'यदायं मुदुमूसि गोचराय पक्कमिस्सति, तत्थेव नं गहेत्वा खादिस्सामी' ति। अथ खो सो, भिक्खवे, मुदुमूसिया गोचराय पक्कामि। तमेनं बिळारो गहेत्वा सहसा सङ्खादित्वा अज्झोहरि। तस्स सो मुदुमूसि अन्तं पि खादि, अन्तगुणं पि खादि। [R.271] सो ततोनिदानं मरणं पि निगच्छि मरणमत्तं पि दुक्खं।

"एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो भिक्खु पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्त-चीवरमादाय गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसति अरक्खितेनेव कायेन अरक्खिताय वाचाय अरक्खितेन चित्तेन, अनुपट्ठिताय सतिया, असंवुतेहि इन्द्रियेहि। सो तत्थ पस्सति मातुगामं दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा। तस्स मातुगामं दिस्वा दुन्निवत्थं वा

---

१०. विडालसूत्र : : संयमपूर्वक भिक्षाटन

१०. श्रावस्ती में साधना करते समय....। उस समय कोई नवप्रव्रजित भिक्षु....पूर्वसूत्रवत्....। भगवान् ने यों उपदेश किया—

"भिक्षुओ! पहले कभी कोई विडाल ऐसे छिपने के स्थान में बैठ कर, जहाँ से चूहों के बिल स्पष्ट दिखायी देते थे, सोचने लगा—'इस बिल से जब कोई छोटी चुहिया अपना भोजन खोजने निकलेगी तो मैं उसे पकड़ कर खा लूँगा।' तब कोई छोटी चुहिया भोजन खोजने बाहर निकली, उस विलार ने उस को तत्काल पकड़ कर खा डाला। यहाँ तक कि उस ने उस चुहिया की छोटी या बड़ी आँतें भी नहीं छोड़ीं। इस से उस के उदर में मरणान्तक वेदनाएँ हुई, अन्त में वह मर गया।

"इसी तरह, भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु पूर्वाह्ण में....पूर्ववत्....। अरक्षित काय वाक् मन के साथ, अनुपस्थित स्मृति तथा असंयत इन्द्रियों के साथ ग्राम या निगम में भिक्षाचर्याहेतु प्रविष्ट हो। वहाँ वह किसी स्त्री को निर्वस्त्र देखे उसे इस अवस्था में देख कर उसका चित्त

दुप्पारुतं वा रागो चित्तं अनुद्धंसेति। सो रागानुद्धंसेन चित्तेन मरणं वा निगच्छति मरणमत्तं वा दुक्खं। मरणं हेतं, भिक्खवे, अरियस्स विनये यो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। मरणमत्तं हेतं, भिक्खवे, दुक्खं यदिदं अञ्ञतरं सङ्किलिट्ठं आपत्तिं आपज्जति। यथारूपाय आपत्तिया वुट्ठानं पञ्ञायति। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'रक्खितेनेव कायेन रक्खिताय वाचाय रक्खितेन चित्तेन, उपट्ठिताय सतिया, संवुतेहि इन्द्रियेहि गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥

११. सिङ्गालसुत्तं

११. ...सावत्थियं विहरति। "अस्सुत्थ नो तुम्हे, भिक्खवे, रत्तिया [N.226] पच्चूससमयं जरसिङ्गालस्स वस्समानस्सा" ति?

"एवं, भन्ते"।

"एसो खो, भिक्खवे, जरसिङ्गालो उक्कण्डकेन नाम रोगजातेन फुट्ठो। [B.461] सो येन येन इच्छति तेन तेन गच्छति; यत्थ यत्थ इच्छति तत्थ तत्थ तिट्ठति; [R.272] यत्थ यत्थ इच्छति तत्थ तत्थ निसीदति; यत्थ यत्थ इच्छति तत्थ तत्थ निपज्जति; सीतको पि नं वातो उपवायति। साधु ख्वस्स, भिक्खवे, यं इधेकच्चो सक्यपुत्तियपटिञ्ञो एवरूपं पि अत्तभावपटिलाभं पटिसंवेदियेथ। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं

उस के प्रति आसक्त हो जाय। वह उस आसक्त चित्त के कारण मृत्यु या मृत्यु के समीपतम कष्ट तक पहुँच सकता है। भिक्षुओ! इस धर्मविनय में उस भिक्षु का 'मरण' यही है कि वह किसी धार्मिक आपत्ति (दोष) से ग्रस्त हो जाय। मन का इस तरह रागानुषक्त होना ही मरणतुल्य कष्ट है। अत: भिक्षुओ! तुम्हें यह सीखना चाहिये—'काय वाक् एवं चित्त को संयत रखते हुए उपस्थित स्मृतिपूर्वक ही ग्राम या निगम में भिक्षाहेतु प्रविष्ट होऊँगा।' ऐसी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये॥"

११. शृगालसूत्र : : अप्रमादमयी साधना

११. श्रावस्ती में साधना के समय....।"भिक्षुओ! क्या तुमने कभी रात्रि के अन्तिम प्रहर में किसी बूढ़े शृगाल को चिल्लाते सुना है।"

"हाँ, भन्ते! सुना तो है।"

"भिक्षुओ! ऐसे बूढे शृगाल को 'उत्कण्ठक' रोग हो जाता है। वह जहाँ जहाँ जाता है, खड़ा होता है, बैठता है, सोता है वहाँ वहाँ बहुत ठण्ढी हवा चलती है।

"भिक्षुओ! कोई कोई अपने को शाक्यपुत्र कहलाने वाला भिक्षु इस योनि में भी

सिक्खितब्बं—'अप्पमत्ता विहरिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥

१२. दुतियसिङ्गालसुत्तं

१२. सावत्थियं विहरति। ''अस्सुत्थ नो तुम्हे, भिक्खवे, रत्तिया पच्चूससमयं जरसिङ्गालस्स वस्समानस्सा'' ति?

''एवं, भन्ते''।

''सिया खो, भिक्खवे, तस्मिं जरसिङ्गाले या काचि कतञ्ञुता कतवेदिता, न त्वेव इधेकच्चे सक्यपुत्तियपटिञ्ञे सिया या काचि कतञ्ञुता कतवेदिता। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'कतञ्ञुनो भविस्साम कतवेदिनो; न च नो अम्हेसु अप्पकं पि कतं नस्सिस्सती' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥

ओपम्मसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

कूटं नखसिखं कुलं, ओक्खा सत्ति धनुग्गहो।
आणि कलिङ्गरो नागो, बिळारो द्वे सिङ्गालका ति॥

जन्म ले सकता है! अतः तुम्हें चाहिये कि तुम यही शिक्षा ग्रहण करो—''हम सावधान हो कर साधना करेंगे। तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये॥''

१२. द्वितीय शृगालसूत्र : : कृतज्ञताज्ञापन

''भिक्षुओ! क्या तुमने कभी रात्रि में....पूर्वसूत्रवत्....। उस बूढ़े शृगाल में कृतज्ञता का भाव हो सकता है, परन्तु किसी किसी भिक्षु में यह कृतज्ञताभाव भी नहीं होता। अतः भिक्षुओ! तुम्हें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—'हम कृतज्ञ एवं कृतवेदी रहेंगे। ऐसा न हो कि हम में जो यह गुण थोड़ा बहुत है वह भी नष्ट हो जाय।' भिक्षुओ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये॥''

औपम्यसंयुक्त समाप्त॥

इस संयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. कूट, २. नखशिख, ३. कुल, ४. ओक्खा, ५. शक्ति, ६. धनुर्ग्रह, ७. आणि, ८. कलिङ्गर, ९. नाग, १०. विडाल एवं ११-१२. दो शृगालसूत्र॥

२१. भिक्खुसंयुत्तं

१. कोलितसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [N.227, B.462, R.273] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो आयस्मा महामोग्गल्लानो भिक्खू आमन्तेसि—"आवुसो भिक्खवे" ति। "आवुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा महामोग्गल्लानो एतदवोच—

"इध मय्हं, आवुसो, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'अरियो तुण्हीभावो, अरियो तुण्हीभावो ति वुच्चति। कतमो नु खो अरियो तुण्हीभावो' ति? तस्स मय्हं आवुसो, एतदहोसि—'इध भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीति-सुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति अरियो तुण्हीभावो' ति। सो ख्वाहं, आवुसो, वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरिं। तस्स मय्हं, आवुसो, इमिना विहारेन विहरतो वितक्कसहगता सञ्ञा मनसिकारा समुदाचरन्ति।

"अथ खो मं, आवुसो, भगवा इद्धिया उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'मोग्गल्लान, मोग्गल्लान, मा, ब्राह्मण, अरियं तुण्हीभावं पमादो, अरिये तुण्हीभावे चित्तं सण्ठपेहि,

---

२१. भिक्षुसंयुक्त

१. कोलितसूत्र : : आर्य मौनभाव

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् **श्रावस्ती के** जेतवन में भगवान् (बुद्ध) ....पूर्ववत्....। उस समय आयुष्मान् महामोग्गल्लान ने भिक्षुओं को यों बताया—

"आयुष्मानो! यहाँ मुझे कभी एकान्त में साधना करते हुए मेरे मन में यह विचार आया—'तूष्णीम्भाव (चुप रहना=मौन भाव) श्रेष्ठ है—ऐसा सत्पुरुष कहते हैं, यह तूष्णीम्भाव क्या है?' इस पर जब मैने विचार किया तो मेरे मन में यह आया—'भिक्षु (साधक) वितर्क विचार के शान्त होने से आध्यात्मिक प्रसाद एवं चित्त का एकाग्र हो कर वितर्क विचार रहित स्थिति में पहुँच कर द्वितीय ध्यान को प्राप्त होना ही यह आर्य तूष्णीम्भाव है। अत: मैं आयुष्मानो! ....पूर्ववत्....द्वितीय ध्यान की साधना करने लगा। इस तरह साधना करते हुए मेरे मन में वितर्कसहगत संज्ञाएँ उठने लगीं।

"आयुष्मानो! तब भगवान् ने, ऋद्धिबल से मेरे पास आ कर मुझ को यों सावधान किया—'मोग्गल्लान! मोग्गल्लान! ओ ब्राह्मण! आर्य तूष्णीम्भाव के ज्ञान में प्रमाद न करो।

अरिये तुण्हीभावे चित्तं एकोदिभावं करोहि, अरिये तुण्हीभावे चित्तं समादहा' ति। सो खाहं, आवुसो, अपरेन समयेन वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। [R.274] यं हि तं, आवुसो, सम्मा वदमानो वदेय्य—'सत्थारा अनुग्गहितो सावको [N.228] महाभिञ्ञतं पत्तो' ति, ममं तं सम्मा वदमानो वदेय्य—'सत्थारा अनुग्गहितो सावको महाभिञ्ञतं पत्तो''' ति॥

२. उपतिस्ससुत्तं

[B.463] २. ...सावत्थिनिदानं। तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि— "आवुसो भिक्खवे" ति। "आवुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—

"इध मय्हं, आवुसो, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'अत्थि नु खो तं किञ्चि लोकस्मिं यस्स मे विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा' ति? तस्स मय्हं, आवुसो, एतद-होसि—'नत्थि खो तं किञ्चि लोकस्मिं यस्स मे विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा''' ति।

एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"सत्थु पि खो ते, आवुसो सारिपुत्त, विपरिणामञ्ञथाभावा नुप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमन-स्सुपायासा" ति?

आर्य तूष्णीम्भाव में चित्त को लगाओ, एकाग्र करो, स्थिर करो।' अतः आयुष्मानो! मैने तब से चित्त को प्रसन्न तथा एकाग्र कर द्वितीय ध्यान की साधना ही दृढ की। यदि कोई उस के विषय में यह कहना चाहे—'शास्ता (गुरु) से प्रेरणा प्राप्त कर कोई साधक महाभिज्ञता तक पहुँचा' तो वह मेरे विषय में ही ऐसा कह सकता है—'गुरु से प्रेरित हो कर आयुष्मान् महामोग्गल्लान महाभिज्ञता तक पहुँच चुका है॥'''

: :

वीतशोक सारिपुत्र

२. उपतिष्यसूत्र

२. **श्रावस्ती में** साधना के समय.... ।....सारिपुत्र ने भिक्षुओं को अपने विषय में यों बताया—"आयुष्मानो! यहाँ मुझे कभी एकान्त में साधना करते समय मन में यह विचार उठा—"लोक में ऐसा कुछ भी नहीं है जिस को विपरिणत (नष्ट) होते या अन्यथाभाव को प्राप्त होते देख कर मेरे मन में उस के विनष्ट होने से किसी प्रकार का शोक....उपायास उत्पन्न हो!"

सारिपुत्र द्वारा ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् आनन्द ने उन से पूछा—"क्या आयुष्मन्

"सत्थु पि खो मे, आवुसो, विपरिणामञ्ञथाभावा नुप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा, अपि च मे एवमस्स—'महेसक्खो वत, भो, सत्था अन्तरहितो महिद्धिको महानुभावो। सचे हि भगवा चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्य तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं' ति। तथा हि पनायस्मतो सारिपुत्तस्स दीघरत्तं अहङ्कारममङ्कारमानानुसया [R.275] सुसमूहता। तस्मा आयस्मतो सारिपुत्तस्स सत्थु पि विपरिणामञ्ञथाभावा नुप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति॥ •

३. घटसुत्तं

३. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महामोग्गल्लानो राजगहे विहरन्ति वेळुवने कलन्दकनिवापे एकविहारे। अथ [N.229] खो आयस्मा सारिपुत्तो सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा [B.464] महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महामोग्गल्लानेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एतदवोच—

सारिपुत्र! शास्ता (बुद्ध) के विपरिणत (परिनिर्वृत) होने पर भी आप के मन में उन के वियोग में कोई शोक आदि उत्पन्न न होगा?"

(सारिपुत्र ने कहा—) "हाँ, आयुष्मन्! शास्ता के परिनिर्वृत होने पर भी मेरे मन में कोई शोक आदि उत्पन्न नहीं होगा। अपि तु, उस प्रसङ्ग में, मेरे मन में इतना ही विचार होगा—'शास्ता प्रतापी महर्द्धिक तथा महानुभाव हैं, ये अन्तर्धान न हों तो अच्छा रहे। यदि भगवान् चिरकाल इस लोक में विराजते तो उन का यह विराजना बहुजनहितकर एवं बहुजनसुखकर ही होता, देवता तथा मनुष्यों के लिये हितकर ही होता।' क्यों कि आयुष्मान् सारिपुत्र के चित्त से बहुत काल पूर्व ही अहङ्कार, ममकार आदि विकार विनष्ट हो चुके हैं, अतः सारिपुत्र के चित्त में शास्ता के परिनिर्वृत होने पर भी किसी प्रकार का शोक आदि उद्भूत नहीं होता॥" •

३. घटसूत्र : : अग्रश्रावकों की परस्पर स्तुति

३. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् **श्रावस्ती में** ....। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् महामोग्गल्लान—दोनों ही राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप महाविहार में साधना के प्रसङ्ग में ठहरे हुए थे। तब कभी आयुष्मान् सारिपुत्र सायङ्काल ध्यानभावना से निवृत्त हो कर आयुष्मान् महामोग्गल्लान के समीप गये। वहाँ जा कर वे उन से, कुशल क्षेम पूछ कर एक तरफ बैठने पर उन से यों पूछने लगे—

"विप्पसन्नानि खो ते, आवुसो मोग्गल्लान, इन्द्रियानि; परिसुद्धो मुखवण्णो परियोदातो, सन्तेन नूनायस्मा महामोग्गल्लानो अज्ज विहारेन विहासी" ति।

"ओळारिकेन ख्वाहं, आवुसो, अज्ज विहारेन विहासिं। अपि च, मे अहोसि धम्मी कथा" ति।

"केन सद्धिं पनायस्मतो महामोग्गल्लानस्स अहोसि धम्मी कथा" ति?

"भगवता खो मे, आवुसो, सद्धिं अहोसि धम्मी कथा" ति।

"दूरे खो, आवुसो, भगवा एतरहि सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। किन्नु खो, आयस्मा, महामोग्गल्लानो भगवन्तं इद्धिया उपसङ्कमि; उदाहु भगवा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं इद्धिया उपसङ्कमी" ति?

"न ख्वाहं, आवुसो, भगवन्तं इद्धिया उपसङ्कमिं; न पि मं भगवा इद्धिया [R.276] उपसङ्कमि। अपि च, मे यावता भगवा एत्तावता दिब्बचक्खु विसुज्झि दिब्बा च सोतधातु। भगवतो पि यावताहं एत्तावता दिब्बचक्खु विसुज्झि दिब्बा च सोतधातू" ति।

"यथाकथं पनायस्मतो महामोग्गल्लानस्स भगवता सद्धिं अहोसि धम्मी कथा" ति?

"आयुष्मन् महामोग्गल्लान! आज आप की मुखाकृति पर बहुत प्रसन्नता के भाव दिखायी दे रहे हैं, इन्द्रियाँ भी शान्त दिखायी दे रही हैं, क्या आज आपने कोई विशिष्ट साधना की है?"

"हाँ, आज मैने उदार साधना की है, साथ ही मेरा एक विशिष्ट धार्मिक संवाद हुआ है।"

"आयुष्मन् महामोग्गल्लान! विशिष्ट धार्मिक संवाद! परन्तु किस के साथ?"

"साक्षात् भगवान् के साथ ही विशिष्ट धार्मिक संवाद हुआ है।"

"आयुष्मन्! यह कैसे हो सकता है! भगवान् तो इस समय यहाँ से दूर श्रावस्ती के जेतवन में विराजमान हैं। क्या भगवान् अपने ऋद्धिप्रभाव से यहाँ पधारे थे? या आप ही अपने ऋद्धिप्रभाव से भगवान् की सेवा में पहुँचे थे?"

"नहीं, आयुष्मन्! न तो मैं ही अपने ऋद्धिप्रभाव से भगवान् के सम्मुख गया, न भगवान् ही अपने ऋद्धिप्रभाव से यहाँ पधारे। अपि तु जहाँ भगवान् विराजमान हैं, वहाँ तक मुझे दिव्य चक्षु एवं दिव्य श्रोत्र उत्पन्न हुए, उसी तरह जहाँ मैं हूँ वहाँ तक भगवान् को दिव्य चक्षु एवं दिव्य श्रोत्र उत्पन्न हुए।"

"तो आप की भगवान् से क्या धार्मिक कथा हुई?"

"इधाहं, आवुसो, भगवन्तं एतदवोचं—'आरद्धविरियो आरद्धविरियो ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, आरद्धविरियो होती' ति? एवं वुत्ते, मं, आवुसो, भगवा एतदवोच—'इध, मोग्गल्लान, भिक्खु आरद्धविरियो विहरति—कामं तचो च न्हारु च अट्ठी च अवसिस्सतु, सरीरे उपसुस्सतु मंसलोहितं, यं तं पुरिसथामेन पुरिसविरियेन पुरिसपरक्कमेन पत्तब्बं न तं अपापुणित्वा विरियस्स सण्ठानं भविस्सती ति। एवं खो, मोग्गल्लान, आरद्धविरियो होती' ति। एवं खो मे, आवुसो, भगवता सद्धिं अहोसि धम्मी कथा" ति।

"सेय्यथापि, आवुसो, हिमवतो पब्बतराजस्स परित्ता पासाणसक्खरा [N.230] यावदेव उपनिक्खेपनमत्ताय; एवमेव खो मयं आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स यावदेव उपनिक्खेपनमत्ताय। आयस्मा हि महामोग्गल्लानो महिद्धिको महानुभावो आकङ्खमानो कप्पं तिट्ठेय्या" ति।

"सेय्यथापि, आवुसो, महतिया लोणघटाय परित्ता लोणसक्खराय [B.465] यावदेव उपनिक्खेपनमत्ताय; एवमेव खो मयं आयस्मतो सारिपुत्तस्स यावदेव उपनिक्खेपनमत्ताय। आयस्मा हि सारिपुत्तो भगवता अनेकपरियायेन थोमितो वण्णितो पसत्थो— [R.277]

"सारिपुत्तो व पञ्ञाय, सीलेन उपसमेन च।
योपि पारङ्गतो भिक्खु, एतावपरमो सिया" ति॥

[थे० गा०, ३८८ पि०, ना०]

"इस प्रसङ्ग में भगवान् से मैने यह पूछा—'भन्ते! आरब्धवीर्य, आरब्धवीर्य—ऐसा कहा जाता है, यह आरब्धवीर्य कैसे होता है?' ऐसा पूछे जाने पर भगवान् ने बताया—'यहाँ, आयुष्मन् मोग्गल्लान, वह आरब्धवीर्य साधक यह चिन्तन करता है—भले ही मेरी त्वचा, न्हारु एवं अस्थि ही अवशिष्ट रह जाय, एवं शरीर में मांस एवं रक्त भी सूख जाय; किन्तु पुरुष के उत्साह, वीर्य एवं पराक्रम से जो प्राप्त किया जा सकता है उसे विना प्राप्त किये विश्राम नहीं लूँगा।' यों, भिक्षुओ! वह 'आरब्धवीर्य' कहलाता है।' "आयुष्मन्! भगवान् के साथ मेरा यही धार्मिक संवाद हुआ।"

(सारि०) "आयुष्मन्! जैसे पर्वतराज हिमालय के सम्मुख कोई छोटा सा पत्थरों का ढेर (राशि) हो, उसी तरह आप के सामने हमारी स्थिति है।"

(महा०) "आयुष्मन्! जैसे नमक से भरे एक घट के सामने एक नमक के छोटे से खण्ड की होती है, उसी तरह की स्थिति आपके सामने हमारी है। आप आयुष्मान् सारिपुत्र के विषय में भगवान् ने भी यह कहा है—

इति ह ते उभो महानागा अञ्ञमञ्ञस्स सुभासितं सुलपितं समनुमोदिंसू ति।

४. नवसुत्तं

४. ...सावत्थियं विहरति। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो नवो भिक्खु पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो विहारं पविसित्वा अप्पोस्सुक्को तुण्हीभूतो सङ्कसायति, न भिक्खूनं वेय्यावच्चं करोति चीवरकारसमये। अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"इध, भन्ते, अञ्ञतरो नवो भिक्खु पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो विहारं पविसित्वा अप्पोस्सुक्को तुण्हीभूतो सङ्कसायति, न भिक्खूनं वेय्यावच्चं करोति चीवरकारसमये" ति।

अथ खो भगवा अञ्ञतरं भिक्खुं आमन्तेसि—"एहि त्वं, भिक्खु, मम वचनेन तं भिक्खुं आमन्तेहि— 'सत्था तं, आवुसो, आमन्तेती'" ति।

"एवं भन्ते" ति खो सो भिक्खु भगवतो पटिस्सुत्वा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं एतदवोच—"सत्था तं, आवुसो, आमन्तेती" ति।

"एवमावुसो" ति खो सो भिक्खु तस्स भिक्खुनो पटिसुत्वा येन भगवा [N.231] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो तं भिक्खुं भगवा एतदवोच—"सच्चं किर त्वं, भिक्खु, [R.278] पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो विहारं पविसित्वा अप्पोसुक्को तुण्हीभूतो सङ्कसायसि, न भिक्खूनं वेय्यावच्चं करोसि चीवरकारसमये" ति?

'वह भिक्षु भी प्रज्ञाशील तथा उपशम में, सारिपुत्र की तरह ही पारङ्गत है। यही परम पद है।'''

इस तरह साधना में उन दोनों बलशालियों ने परस्पर एक दूसरे के सुभाषित का अनुमोदन किया॥ •

४. नवसूत्र : : शिथिलता से निर्वाणप्राप्ति असम्भव

४. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। उस समय कोई नवप्रव्रजित भिक्षु भिक्षाचर्या से भोजनकर्म पूर्ण कर विहार में आ कर, लोकव्यवहार के प्रति उपेक्षा दिखाता हुआ, चुपचाप बैठा रहता था। भिक्षुओं को चीवर बनाने में कोई सहायता नहीं करता था।

तब भिक्षुओं ने उस का यह कर्म भगवान् के सम्मुख निवेदन किया। भगवान् ने किसी अन्य भिक्षु को बुला कर उस से कहा—"अमुक नवप्रव्रजित भिक्षु को बुला कर लाओ।" यों वह भिक्षु भगवान् के आदेश से उस भिक्षु को बुला लाया। उस के आने पर,

"अहं पि खो, भन्ते, सकं किच्चं करोमी" ति।

"अथ खो भगवा तस्स भिक्खुनो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय [B.466] भिक्खू आमन्तेसि—"मा खो तुम्हे, भिक्खवे, एतस्स भिक्खुनो उज्झायित्थ। एसो खो, भिक्खवे, भिक्खु चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी, यस्स चत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती" ति।

५. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"नयिदं सिथिलमारब्भ, नयिदं अप्पेन थामसा।
निब्बानं अधिगन्तब्बं, सब्बदुक्खप्पमोचन॥
अयं च दहरो भिक्खु, अयमुत्तमपुरिसो।
धारेति अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहिनिं" ति॥

५. सुजातसुत्तं

६. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो आयस्मा सुजातो येन भगवा तेनुपसङ्कमि।

भगवान् ने उस से पूछा—"भिक्षु! क्या तुम वस्तुतः विहार के किसी कार्य में हाथ नहीं बटाते? भिक्षा कर विहार में आ कर क्यों पड़े रहते हो?"

"भन्ते! मैं भी अपना काम करता हूँ।"

तब भगवान् ने अपने चित्त से उस भिक्षु के चित्त की बात जान कर भिक्षुओं को बताया—"भिक्षुओ! तुम इस भिक्षु को कुछ न कहा करो; क्यों कि यह भिक्षु इसी जन्म में सुखपूर्वक विहार करने में सहायक चार ध्यानों की भावना कर जब जैसा चाहता है प्राप्त कर लेता है। वह इसी जन्म में धर्मसाधना के उस परम फल को जान कर साक्षात्कार कर उस साधना में लगा रहता है जिस के लिये कोई कुलपुत्र भलीभाँति घर से बेघर हो प्रव्रजित होते हैं।"

५. भगवान् ने यह कहा। यह कह कर वे पुनः बोले—

"शिथिलता से या अल्प शक्ति से वह निर्वाण प्राप्त नहीं होता जो सब दुःखों से छुटकारा दिला देता है॥

"यह भिक्षु नवयुवक अवश्य है, परन्तु श्रेष्ठ पुरुष है। यह मार को जीत कर अन्तिम देह धारण कर चुका है॥ (थेरगाथा, पृ० ३८७, ना०सं०)

•

५. सुजातसूत्र : : भगवान् द्वारा सुजात भिक्षु की प्रशंसा

६. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। तब आयुष्मान् सुजात भगवान् के सम्मुख

अद्दसा खो भगवा आयस्मन्तं सुजातं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान भिक्खू आमन्तेसि—"उभयेनेवायं, भिक्खवे, कुलपुत्तो सोभति—यं च अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो, यस्स चत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव [R.279] अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जन्ति तदनुत्तरं ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती" ति।

[N.232] ७. इदमवोच भगवा...पे०...सत्था—

"सोभति वतायं भिक्खु, उजुभूतेन चेतसा।
विप्पयुत्तो विसंयुत्तो, अनुपादाय निब्बुतो।
धारेति अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहिनिं" ति॥

६. लकुण्डकभद्दियसुत्तं

८. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो आयस्मा लकुण्डकभद्दियो येन भगवा [B.467] तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो भगवा आयस्मन्तं लकुण्डकभद्दियं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान भिक्खू आमन्तेसि—"पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, एतं भिक्खुं आगच्छन्तं दुब्बण्णं दुद्दसिकं ओकोटिमकं भिक्खूनं परिभूतरूपं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"एसो खो, भिक्खवे, भिक्खु महिद्धिको महानुभावो, न च सा समापत्ति

आये। भगवान् ने सुजात को दूर से आते हुए ही देख लिया। देख कर उस के विषय में भगवान् ने भिक्षुओं को यों बताया—"भिक्षुओ! यह सुजात कुलपुत्र दोनों ही प्रकार से प्रशस्त है। इस का शरीर भी दर्शनीय एवं मनोहारी है, तथा जिस के लिये कुलपुत्र घर छोड कर प्रव्रज्या लेते हैं, उस धर्मसाधना में भी यह बहुत ऊँची भूमिका तक पहुँच चुका है।"

७. भगवान् ऐसा कहने के बाद यों बोले—

"यह भिक्षु सभी को अच्छा लगता है; क्यों कि मृदु चित्त से सभी ब्रन्धनों को क्षीण कर मुक्त हो चुका है। इस ने, सब धर्मों से दूर रह कर अनुपादान के सहारे से निर्वाण प्राप्त कर लिया है। इस का यह अन्तिम देह है। इस ने सेनासहित मार पर भी विजय प्राप्त कर ली है॥"

६. लकुण्डकभद्दियसूत्र : : शरीर से नहीं, ज्ञान के कारण महान् है

८. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। पूर्वसूत्रवत्....भिक्षुओं से कहा—"इस वामन (छोटे) तथा कुरूप एवं उदास की तरह आते हुए लकुण्डकभद्दिय को देख रहे हो ना?"

"हाँ, भन्ते!"

सुलभरूपा या तेन भिक्खुना असमापन्नपुब्बा। यस्स चत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति।

९. इदमवोच भगवा...पे०...सत्था—

''हंसा कोञ्चा मयूरा च, हत्थयो पसदा मिगा।
सब्बे सीहस्स भायन्ति, नत्थि कायस्मिं तुल्यता॥
''एवमेव मनुस्सेसु, दहरो चे पि पञ्ञवा।
सो हि तत्थ महा होति, नेव बालो सरीरवा'' ति॥

७. विसाखसुत्तं

१०. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने [R.280] कूटागारसालायं। तेन खो पन समयेन आयस्मा विसाखो पञ्चालपुत्तो उपट्ठानसालायं भिक्खू धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति पोरिया वाचाय विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया परियापन्नाय अनिस्सिताय।

अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन उपट्ठानसाला [N.233] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू

''वस्तुत: यह भिक्षु अत्यधिक ऋद्धिसम्पन्न है। जिन साधनाओं को इस भिक्षु ने पूर्ण कर लिया है वे किसी को सरलता से प्राप्त नहीं होती। जिस के लिये कुलपुत्रजन घर छोड कर प्रव्रज्या लेते हैं, वह धर्मसाधना इसने इसी जन्म में पूर्ण कर, उस को जान कर, साक्षात्कार कर (अब भी यह) साधना में लगा रहता है।''

९. यह कह कर शास्ता ने पुन: यह भी कहा—

''हंस, क्रौञ्च एवं मयूर, हाथी तथा चितकबरे हरिण—ये सभी सिंह से डरते हैं। अत: किसी के शरीर से किसी की तुलना करना उचित नहीं॥

''इसी प्रकार यदि मनुष्यों में भी कोई अधिक प्रज्ञावान् हो तो वह वैसे ही महान् होता है। शरीर से कोई बालक (मूर्ख) नहीं कहलाता''॥

७. विशाखसूत्र : : धर्मोपदेश करना चाहिये

१०. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) **वैशाली के** महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् विशाख पञ्चालपुत्र वैशाली की उपस्थानशाला (सभाभवन) में भिक्षुओं को बहुत ही मधुर मनोहर मृदु मञ्जुल घोष से धर्मोपदेश कर रहे थे, जिस में परमार्थ का सार था।

तब भगवान् भी सायङ्काल ध्यानभावना से उठ कर उपस्थानशाला में गये। वहाँ वे

आमन्तेसि—"को नु खो, भिक्खवे, उपट्ठानसालायं भिक्खू धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति पोरिया वाचाय विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया परियापन्नाय अनिस्सिताया" ति?

"आयस्मा, भन्ते, विसाखो पञ्चालपुत्तो उपट्ठानसालायं भिक्खू धम्मिया [B.468] कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति पोरिया वाचाय विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया परियापन्नाय अनिस्सिताया" ति।

अथ खो भगवा आयस्मन्तं विसाखं पञ्चालपुत्तं आमन्तेसि—"साधु साधु, विसाख, साधु खो त्वं, विसाख, भिक्खू धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि...पे०...अत्थस्स विञ्ञापनिया परियापन्नाय अनिस्सिताया" ति।

११. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"नाभासमानं जानन्ति, मिस्सं बालेहि पण्डितं।
भासमानं च जानन्ति, देसेन्तं अमतं पदं॥
भासये जोतये धम्मं, पग्गण्हे इसिनं धजं।
सुभासितधजा इसयो, इम्मो हि इसिनं धजो" ति॥

८. नन्दसुत्तं

[R.281] १२. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो आयस्मा नन्दो भगवतो मातुच्छापुत्तो

प्रज्ञप्त (बिछे हुए) आसन पर विराजे। वहाँ विराज कर भिक्षुओं को यों पूछा—"भिक्षुओ! आज कल इस उपस्थानशाला में बैठ कर कौन धर्मोपदेश कर रहा है.... ?"

"भन्ते! आयुष्मान् विशाख पञ्चालपुत्र इस उपस्थानशाला में बहुत ही मृदुल मनोहर एवं प्रिय सुमधुर घोष से धर्मकथा सुना रहे हैं, जो परमार्थसार से पूर्ण रहती है।

"तब भगवान् ने आयुष्मान् विशाख को अपने पास बुला कर साधुवाद दिया, तथा कहा—"विशाख! तुम ऐसी धार्मिक कथा कह बहुत उचित कर रहे हो!"

११. इतना कहने के बाद अन्त में भगवान् ने यह भी कहा—

"मूर्खों में छिपे हुए पण्डित को भी विद्वान् लोग पहचान लेते हैं, धर्मासन पर बैठ कर धर्मकथा करने वाले की तो बात ही क्या है!॥

"जो धर्म का ज्ञान करावे, उसे समझावे, ऋषियों की ध्वजा को धारण करे। (वही पण्डित है)। 'सुभाषित' (धर्मकथन) ही ऋषियों ध्वजा है, तथा ऋषि ही 'धर्मध्वज' कहलाते हैं॥"

८. नन्दसूत्र : : नन्द को भगवान् का उपदेश

१२. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। तब भगवान् की मातृष्वसा (मौसी) का पुत्र

आकोटितपच्चाकोटितानि चीवरानि पारुपित्वा अक्खीनि अञ्जेत्वा अच्छं पत्तं गहेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं नन्दं भगवा एतदवोच—"न खो ते तं, नन्द, पतिरूपं कुलपुत्तस्स सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितस्स, यं त्वं [N.234] आकोटितपच्चाकोटितानि चीवरानि पारुपेय्यासि, अक्खीनि च अञ्जेय्यासि। अच्छं च पत्तं धारेय्यासि। एतं खो ते, नन्द, पतिरूपं कुलपुत्तस्स सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितस्स, यं त्वं आरञ्ञिको च अस्ससि, पिण्डपातिको च पंसुकूलिको च कामेसु च अनपेक्खो विहरेय्यासी" ति।

१३. इदमवोच भगवा...पे०...सत्था—

"कदाहं नन्दं पस्सेय्यं, आरञ्ञं पंसुकूलिकं।
अञ्ञातुञ्छेन यापेन्तं, कामेसु अनपेक्खिनं" ति॥

अथ खो आयस्मा नन्दो अपरेन समयेन आरञ्ञिको च पिण्ड- [B.469] पातिको च पंसुकूलिको च कामेसु च अनपेक्खो विहासी ति॥ ●

९. तिस्ससुत्तं

१४. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो आयस्मा तिस्सो भगवतो [R.282]

आयुष्मान् नन्द इस्तरी किये तथा चिकनाये चीवर पहन कर आँखों में अञ्जन डाल कर, स्वच्छ पात्र हाथ में ले कर भगवान् के पास गया। जा कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस आयुष्मान् नन्द को भगवान् ने कहा—"नन्द! तुम्हारा यह परिधान किसी श्रद्धालु कुलपुत्र के, जो कि घर से बेघर हो कर प्रव्रजित हुआ हो, अनुकूल नहीं है कि तूँ ऐसे साफ चिकने वस्त्र पहने हुए है, आँखों में आँजन भी डाले हुए है। स्वच्छ (चमकीला) पात्र हाथ में ले रखा है। तुम्हारे लिये तो अब यही अनुकूल है, जिसके लिये तूँ ने गृहस्थ छोड़ कर प्रव्रज्या ली है कि तूँ अरण्य में वास करे, ग्राम में घर घर भिक्षा करे, फटे पुराने चीवर पहने तथा कामभोगों की अपेक्षा ही न करता हुआ धर्मसाधना में लगा रहे।"

१३. यों कहते हुए, भगवान् ने उस को गाथा के माध्यम से यह भी कहा—

"मैं नन्द को अरण्यवासी जीर्ण वस्त्र (चीवर) धारी, भिक्षा से जीवननिर्वाह करते हुए तथा कामभोगों के प्रति अनपेक्षित रह कर धर्मसाधना करते हुए कब देखूँगा!"॥

तब (यह उपदेश सुन कर) आयुष्मान् नन्द कुछ समय बाद अरण्यवासी बन कर घर घर भिक्षा माँगता हुआ, पुराने चीवर धारण कर धर्मसाधना में ऐसा तत्पर हो गया कि उसे सांसारिक कामभोगों की कोई अपेक्षा न रह गयी॥ ●

पितुच्छापुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि दुक्खी दुम्मनो अस्सूनि पवत्तयमानो। अथ खो भगवा आयस्मन्तं तिस्सं एतदवोच—"किं नु खो त्वं, तिस्स, एकमन्तं निसिन्नो दुक्खी दुम्मनो अस्सूनि पवत्तयमानो" ति?

"तथा हि पन मं, भन्ते, भिक्खू समन्ता वाचायसन्नितोदकेन सञ्जम्भरिमकंसू" ति।

"तथाहि पन त्वं, तिस्स, वत्ता नो च वचनक्खमो; न खो ते तं, तिस्स, पतिरूपं कुलपुत्तस्स सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितस्स, यं त्वं वत्ता नो च वचनक्खमो। एतं खो ते, तिस्स, पतिरूपं कुलपुत्तस्स सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितस्स—'यं त्वं वत्ता च अस्स वचनक्खमो चा''' ति।

१५. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"किं नु कुज्झसि मा कुज्झि, अक्कोधो तिस्स ते वरं।
कोधमानक्खविनयत्थं हि, तिस्स ब्रह्मचरियं वुस्सती" ति॥ ●

---

९. तिष्यसूत्र : : कुपथगामी न होना ही उत्तम है

१४. श्रावस्ती में साधना के समय....। तब आयुष्मान् तिष्य, भगवान् के पितृश्वसुर का पुत्र (फुफेरा भाई), जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँच कर उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। उस समय वह बहुत दुःखी था, दुःख के कारण उस की आँखों से आँसू बह रहे थे। ऐसी स्थिति में बैठे उस आयुष्मान् तिष्य से भगवान् ने पूछा—"तिष्य! ऐसे एक ओर बैठ कर दुःखी मन से क्यों आँसू बहा रहे हो?"

"भन्ते! भिक्षुओं ने परस्पर मिल कर मुझे चिढाते हुए मेरी यह दशा बना दी है।"

"तिष्य! तुम भी तो दूसरों को कुछ का कुछ बोलते रहते हो! तो अब क्या तुम उन के व्यङ्गय वचनों को नहीं सह सकते! यह तो तुम्हारे लिये उचित नहीं है। अरे! तुम तो घर छोड़ कर प्रव्रजित हो चुके हो! अब तुम क्यों दूसरों को कुछ का कुछ कहते हो, जब तुम उन का बोला हुआ सहन नहीं कर सकते! तुम्हारे लिये तो अब यही उचित है कि तुम दूसरे द्वारा कहे उल्टे सीधे वचनों को स्वीकार करो तथा तुम उन के प्रति कुछ भी न बोलो!"

१५. भगवान् ने यह कह कर अन्त में गाथा के माध्यम से यह भी कहा—"हे तिष्य! तुम दूसरे द्वारा कथित व्यङ्गय वचन सुन कर क्यों क्रुद्ध होते हो! तुम्हारे लिये तो अक्रोध (क्षमा) करना ही उचित है। तुमने क्रोध एवं अभिमान को अपने से दूर हटाने के लिये ही तो यह प्रव्रज्या लेकर धर्मसाधना आरम्भ की है"॥

१०. थेरनामकसुत्तं

१६. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। [N.235] तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु थेरनामको एकविहारी चेव होति एकविहारस्स च वण्णवादी। सो एको गामं पिण्डाय पविसति एको पटिक्कमति एको रहो निसीदति एको चङ्कमं अधिट्ठाति। अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा [R.283] तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"इध, भन्ते, अञ्ञतरो भिक्खु [B.470] थेरनामको एकविहारी एकविहारस्स च वण्णवादी" ति ।

अथ खो भगवा अञ्ञतरं भिक्खुं आमन्तेसि—"एहि त्वं, भिक्खु, मम वचनेन थेरं भिक्खुं आमन्तेहि—'सत्था तं, आवुसो थेर, आमन्तेती'" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो सो भिक्खु भगवतो पटिस्सुत्वा येनायस्मा थेरो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं थेरं एतदवोच—"सत्था तं, आवुसो थेर, आमन्तेती" ति।

"एवमावुसो" ति खो आयस्मा थेरो तस्स भिक्खुनो पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं थेरं भगवा एतदवोच—"सच्चं किर त्वं, थेर, एकविहारी एकविहारस्स च वण्णवादी" ति?

"एवं, भन्ते"।

"यथा कथं पन त्वं, थेर, एकविहारी एकविहारस्स च वण्णवादी" ति?

---

१०. थेरनामकसूत्र : : एकाकी कौन रहता है?

१६. एक समय भगवान् (बुद्ध) **राजगृह के** वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कोई स्थविर नामक भिक्षु सर्वदा एकाकी ही रहता था तथा एकाकी (अकेला) रहने की प्रशंसा करता था। वह भिक्षा के लिये एकाकी ही जाता था, अकेला कहीं आता जाता था तथा साधना के समय भी एकाकी ही चंक्रमण करता था। तब बहुत से भिक्षुओं ने भगवान् के सम्मुख उस भिक्षु का यह व्यवहार बताया।

भगवान् ने किसी भिक्षु के द्वारा उस भिक्षु को बुलवाया....पूर्ववत्....भगवान् ने पूछा—"भिक्षु! क्या तुम वस्तुतः एकाकी रहते हो? तथा एकाकी रहने की प्रशंसा करते हो?"

भिक्षु ने कहा—"हाँ, भन्ते!"

"भिक्षु! कैसे तुम एकाकी रहते हो, तथा एकाकी रहने की प्रशंसा करते हो?"

"इधाहं, भन्ते, एको गामं पिण्डाय पविसामि एको पटिक्कमामि एको रहो निसीदामि एको चङ्कमं अधिट्ठामि। एवं ख्वाहं, भन्ते, एकविहारी एकविहारस्स च वण्णवादी" ति।

"अत्थेसो, थेर, एकविहारो, नेसो नत्थी ति वदामि। अपि च, थेर, यथा एकविहारो वित्थारेन परिपुण्णो होति तं सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो...पे०...।

[N.236] "कथं च, थेर, एकविहारो वित्थारेन परिपुण्णो होति। इध, थेर, यं अतीतं तं पहीनं, यं अनागतं तं पटिनिस्सट्ठं, पच्चुप्पन्नेसु च अत्तभावपटिलाभेसु छन्दरागो सुप्पटिविनितो। एवं खो, थेर, एकविहारो वित्थारेन परिपुण्णो होती" ति।

१७. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

[R.284] "सब्बाभिभुं सब्बविदुं सुमेधं, सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तं।
सब्बञ्जहं तण्हाक्खये विमुत्तं, तमहं नरं एकविहारी ति ब्रूमी' ति॥

[तु० ध० प०, ३५३ गा०]

११. महाकप्पिनसुत्तं

१८. ...सावत्थियं विहरति। अथ खो आयस्मा महाकप्पिनो येन भगवा

"भन्ते! मैं ग्राम में अकेला भिक्षाहेतु जाता हूँ, अकेला ही ग्राम में कोई कार्य होने पर जात. हूँ। यहाँ तक कि साधनाक्रम में एकाकी ही चंक्रमण भी करता हूँ। भन्ते! यों मैं एकाकी रहता हूँ, तथा एकाकी रहने की प्रशंसा करता हूँ।"

"स्थविर! यह भी 'एकविहार' ही है; यह 'एकविहार' नहीं है—ऐसा मैं नहीं कहता; परन्तु वास्तविक 'एकविह.र' कैसे होता है?—यह तुम्हें बताता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो तथा मन में बैठा लो। कहता हूँ, सुनो! ....पूर्ववत्....।

"कैसे, स्थविर! एकविहार विस्तारपूर्वक पूर्ण होता है? वास्तविक 'एकविहार' यह है—जो अतीत कर्म हैं उन्हें प्रहीण कर दिया जाय, जो अनागत हैं उन्हें उत्पन्न न होने दिया जाय, त्याग दिया जाय; वर्तमान में जो छन्दराग है, उसे भलीभाँति दबा दिया जाय। यों होगा वास्तविक एकाहार।"

१७. भगवान् ने उस भिक्षु को 'एकविहार' के विषय में यों बताया। अन्त में वे फिर गाथा के माध्यम से बोले—

"जो एकविहारी है वह सब को परास्त कर देता है, सब कुछ जानने वाला है, सभी धर्मों में अनुपलिप्त (असम्पृक्त) है, सब का त्याग करने वाला है, तृष्णानाश के कारण विमुक्त हो चुका है, उसी को मैं 'एकविहारी' कहता हूँ॥" [तु०—धम्मपद, गा० ३५३] ॥●

तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो भगवा आयस्मन्तं महाकप्पिनं दूरतो व आगच्छन्तं। [B.471] दिस्वान भक्खू आमन्तेसि—"पस्सथ नो तुम्हे भिक्खवे, एतं भिक्खुं आगच्छन्तं ओदातकं तनुकं तुङ्गनासिकं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"एसो खो, भिक्खवे, भिक्खु महिद्धिको महानुभावो। न च सा समापत्ति सुलभरूपा या तेन भिक्खुना असमापन्नपुब्बा। यस्स चत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती" ति।

१९. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मिं, ये गोत्तपटिसारिनो।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सो सेट्ठो देवमानुसे॥
"दिवा तपति आदिच्चो, रत्तिमाभाति चन्दिमा।
सन्नद्धो खत्तियो तपति, झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तिं, बुद्धो तपति तेजसा" ति॥ ●

---

११. महाकप्पिनसूत्र : : आयुष्मान् कप्पिन के गुणों की प्रशंसा

१८. **श्रावस्ती में** साधना के समय....। तब आयुष्मान् महाकप्पिन भगवान् की सेवा में पहुँचे। भगवान् ने आयुष्मान् महाकप्पिन को आते हुए दूर से ही देख लिया। उसे देख कर भगवान् ने भिक्षुओं से पूछा—"क्या भिक्षुओ! तुम इस लम्बी नासिका वाले, गौर वर्ण, शरीर की पूरी ऊँचाई वाले इधर आते हुए इस भिक्षु को देख रहे हो?"

"हाँ, भन्ते!"

"भिक्षुओ! यह भिक्षु अत्यधिक ऋद्धिसम्पन्न तथा अनुपम तेजस्वी है। इस के लिये ऐसी कोई साधना अवशिष्ट नहीं रह गयी है जो इसने पूर्ण न कर ली हो। इसने धर्मसाधना के अन्तिम पद (निर्वाण) को भी भली भाँति जान लिया है, साक्षात् कर लिया है।"

१९. यह कहते हुए भगवान् ने फिर कहा—

"मनुष्यों में जो गोत्र के अनुसार चलते हैं क्षत्रिय वर्ण वाला (मनुष्य) श्रेष्ठ है। परन्तु जो विद्या एवं आचरण से सम्पन्न है वह देवता एवं मनुष्य सभी में श्रेष्ठ है। (फिर भले ही वह किसी भी जाति का क्यों न हो!) [दी०नि०, पृ० १०७ (बौ०भा०सं०)]

"दिन में सूर्य प्रकाशित होता है, रात्रि को चन्द्रमा प्रकाशित करता है। युद्ध में क्षत्रिय शोभित होता है तथा ब्राह्मण ध्यानभावना से शोभित होता है। (भगवान्) बुद्ध तो समस्त दिन रात स्वकीय अनुपम तेज से शोभित होते रहते हैं॥" [ध०प० ३८७ गा०]॥●

१२. सहायकसुत्तं

[N.237, R.285] २०. सावत्थियं विहरति। अथ खो द्वे भिक्खू सहायका आयस्मतो महाकप्पिनस्स सद्धिविहारिनो येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु। अद्दसा खो भगवा ते भिक्खू दूरतो व आगच्छन्ते। दिस्वान भिक्खू आमन्तेसि—"पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, एते भिक्खू सहायके आगच्छन्ते कप्पिनस्स सद्धिविहारिनो" ति? "एवं, भन्ते"।

"एते खो ते भिक्खू महिद्धिका महानुभावा। न च सा समापत्ति सुलभरूपा या तेहि भिक्खूहि असमापन्नपुब्बा। यस्स चत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती" ति।

[B.472] २१. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"सहाया वतिमे भिक्खू, चिररत्तं समेतिका।
समेति नेसं सद्धम्मो, धम्मे बुद्धप्पवेदिते॥
सुविनीता कप्पिनेन, धम्मे अरियप्पवेदिते।
धारेन्ति अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहिनिं" ति॥

भिक्खुसंयुत्तं समत्तं॥

---

१२. सहायसूत्र : : दो ऋद्धिमान् साथी भिक्षु

२०. श्रावस्ती में साधना के समय....। आयुष्मान् महाकप्पिन के दो सहविहारी भिक्षु भगवान् के पास आये। भगवान् ने उन को दूर से ही आते हुए देख लिया। उन्हें देख कर भगवान् ने वहाँ उपस्थित भिक्षुओं से पूछा—"क्या तुम कप्पिन के इन दो सहविहारी भिक्षुओं को देख रहे हो?"

"हाँ, भन्ते!"

ये दोनों ही भिक्षु अत्यधिक ऋद्धिसम्पन्न तथा तेजस्वी हैं। ....पूर्वसूत्रवत्....।

२१. भगवान् ने यह कहा। तथा अन्त में इन दो गाथाओं के माध्यम से यों बोले—

"ये दोनों भिक्षु परस्पर मित्र हैं। बहुत समय से साथ रहते हैं। कप्पिन के द्वारा इन दोनों ने बुद्धप्रोक्त सद्धर्म को भी प्राप्त कर लिया है॥"

"बुद्ध-धर्म में प्रोक्त जो आर्यप्रवेदित धर्म हैं उन को भी इन्होंने कप्पिन से भली भाँति सीख लिया है। इन का यह अन्तिम देह है; क्यों कि इन्होंने सेनासहित मार को जीत लिया है"॥

भिक्षुसंयुक्त समाप्त॥

तस्सुद्दानं

कोलितो उपतिस्सो च, घटो चा पि पवुच्चति।
नवो सुजातो भद्दि च, विसाखो नन्दो तिस्सो च। [R.286]
थेरनामो च कप्पिनो, सहायेन च द्वादसा ति॥

निदानवग्गो दुतियो॥

तस्सुद्दानं

निदानाभिसमयधातु, अनमतग्गेन कस्सपं।
सक्काराहुललक्खणो, ओपम्म भिक्खुना वग्गो॥
दुतियो तेन पवुच्चती ति॥

॥ निदानवग्गसंयुत्तपालिनिट्ठिता॥

इस संयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. कोलित, २. उपतिष्य, ३. घट, ४. नव, ५. सुजात, ६. भद्दिय, ७. विशाख, ८. नन्द, ९. तिष्य, १०. थेरनाम, ११. महाकप्पिन एवं १२. सहायकसूत्र॥

निदानवर्ग द्वितीय समाप्त॥

इस वर्ग में व्याख्यात संयुक्तों की सूची—१. निदान, २. अभिसमय, ३. धातु, ४. अनमृताग्र, ५. काश्यप, ६. सत्कारलाभ, ७. राहुल, ८. लक्षण, ९. औपम्य एवं १०. भिक्षुसंयुक्त॥

॥ निदानवर्ग संयुक्तनिकायपालि समाप्त॥

सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहिता]

(३. खन्धवग्गो)

* नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स *

संयुत्तनिकायपालि

3. खन्धवग्गो

२२. खन्धसंयुत्तं

मूलपण्णासकं

१. नकुलपितुवग्गो पठमो

१. नकुलपितुसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा [N. vol. II, 241, B. vol. II, 1, R. vol. III, 1] भग्गेसु विहरति सुंसुमारगिरे भेसकळावने मिगदाये। अथ खो नकुलपिता गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो नकुलपिता गहपति भगवन्तं एतदवोच--

''अहमस्मि, भन्ते, जिण्णो वुड्ढो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो आतुरकायो अभिक्खणातङ्को। अनिच्चदस्सावी खो पनाहं, भन्ते, भगवतो मनोभावनीयानं च

---

* उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम *

संयुक्तनिकायपालि

3. स्कन्धवर्ग

२२. स्कन्धसंयुक्त

मूलपञ्चाशत्क

१. नकुलपितृवर्ग प्रथम

नकुलपितृसूत्र : : अनातुर चित्त

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) भर्गप्रदेश के सुंसुमारगिरि (चुनार) स्थित भेषकळावन के मृगदाव में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय नकुलपिता गृहपति ने भगवान् की सेवा में जाकर उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठते हुए यों निवेदन किया—

''भन्ते! मैं जीर्ण, वृद्ध, महल्लक (पुराना), जीवन का अत्यधिक दूर तक मार्ग पार किया हुआ एवं बहुत आयु भोग चुका हूँ। मेरा शरीर भी रोगग्रस्त रहता हुआ जर्जर हो

भिक्खूनं। ओवदतु मं, भन्ते, भगवा; अनुसासतु मं, भन्ते, भगवा; यं ममस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया'' ति।

''एवमेतं, गहपति, एवमेतं, गहपति! आतुरो हायं, गहपति, कायो अण्डभूतो [B.2] परियोनद्धो। यो हि गहपति, इमं कायं परिहरन्तो मुहुत्तं पि आरोग्यं पटिजानेय्य, किमञ्ञत्र बाल्या? तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'आतुरकायस्स मे सतो चित्तं अनातुरं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं'' ति।

[R.2] अथ खो नकुलपिता गहपति भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं सारिपुत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो नकुलपितरं गहपतिं आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—''विप्पसन्नानि खो ते, गहपति, इन्द्रियानि; परिसुद्धो मुखवण्णो परियोदातो। अलत्थ नो अज्ज भगवतो सम्मुखा धम्मिं [N.242] कथं सवनाया'' ति?

''कथं हि नो सिया, भन्ते! इदानाहं, भन्ते, भगवता धम्मिया कथाय अमतेन अभिसित्तो'' ति।

''यथा कथं पन त्वं, गहपति, भगवता धम्मिया कथाय अमतेन अभिसित्तो'' ति?

चुका है। अत एव भन्ते! मुझे आपके तथा आपके मनोभावनीय शिष्यों के दर्शन दुर्लभ हो गये हैं। भन्ते! इसलिये अब आप मुझे ऐसा उपदेश दें जो मेरे लिये चिर काल तक हितकर एवं सुखकर हो।''

''गृहपति! तुम्हारा कथन सत्य ही है। तुम्हारा शरीर थक गया है। तुम वृद्ध हो चुके हो। तुम्हारी आयु भी पूर्ण ही हो चली है। ऐसे जीर्ण शरीर के रहते जो मुहूर्तमात्र भी जीवन की आशा करता है उसे मूर्ख ही समझना चाहिये। अत: गृहपति! अब तुम्हें यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि भले ही मेरा शरीर व्याधिग्रस्त रहे, परन्तु मेरा चित्त आतुर (रोगी) नहीं होगा।''

भगवान् का यह अमृतोपम उपदेश सुन कर प्रसन्न होते हुए उन का अभिनन्दन अभिवादन कर नकुलपिता गृहपति वहाँ से चल कर आयुष्मान् सारिपुत्र के सम्मुख पहुँच कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने उक्त गृहपति से पूछा—''गृहपति! आज तुम बहुत प्रसन्नचित्त तथा प्रसन्नमुख दिखायी दे रहे हो! क्या तुम भगवान् से कुछ अधिक लाभप्रद धार्मिक उपदेश सुन कर आ रहे हो?''

''हाँ, भन्ते! यही बात है। मैं भगवान् से अभी अब जो धर्मोपदेश सुन कर आ रहा

"इधाहं, भन्ते, येन भगवा तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिं। एकमन्तं निसिन्नो ख्वाहं, भन्ते, भगवन्तं एतदवोचं—'अहमस्मि, भन्ते, जिण्णो वुड्ढो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो आतुरकायो अभिक्खणातङ्को। अनिच्चदस्सावी खो पनाहं, भन्ते, भगवतो मनोभावनीयानं च भिक्खूनं। ओवदतु मं, भन्ते, भगवा; अनुसासतु मं, भन्ते, भगवा; यं ममस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया' ति।

"एवं वुत्ते, मं, भन्ते, भगवा एतदवोच—'एवमेतं, गहपति, एवमेतं, गहपति! आतुरो हायं, गहपति, कायो अण्डभूतो परियोनद्धो। यो हि, गहपति, इमं कायं परिहरन्तो मुहुत्तं पि आरोग्यं पटिजानेय्य, किमञ्ञत्र बाल्या? तस्मातिह ते गहपति, एवं सिक्खितब्बं—आतुरकायस्स मे सतो चित्तं अनातुरं भविस्सती ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं' ति। एवं ख्वाहं, भन्ते, भगवता धम्मिया कथाय अमतेन अभिसित्तो" ति।

"न हि पन तं, गहपति, पटिभासि भगवन्तं उत्तरिं पटिपुच्छितुं—'कित्तावता नु खो, [B.3] भन्ते, आतुरकायो चेव होति आतुरचित्तो च, कित्तावता च पन आतुरकायो हि खो होति नो च आतुरचित्तो''' ति?

"दूरतो पि खो मयं, भन्ते, आगच्छेय्याम आयस्मतो सारिपुत्तस्स सन्तिके [R.3] एतस्स भासितस्स अत्थमञ्ञातुं। साधु वतायस्मन्तं येव सारिपुत्तं पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो" ति।

"तेन हि, गहपति, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो नकुलपिता गहपति आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसि। आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—

"कथं च, गहपति, आतुरकायो चेव होति आतुरचित्तो च? इध, गहपति,

हूँ, उस में उन्होंने मुझ को बताया है—भले ही तुम्हारा शरीर...पूर्ववत्...चित्त रोगी नहीं होना चाहिये।"

"गृहपति! इससे आगे की बात भगवान् से पूछने की तुम्हारे ध्यान में क्यों नहीं आयी! तुम्हें आगे पूछना चाहिये था, भन्ते! शरीर के व्याधिग्रस्त रहने पर भी चित्त कैसे रोगी नहीं होता?"

"भन्ते! मैं तो आप के पास इसी अमृतोपम धर्म के श्रवणहेतु बहुत दूर से चला आ रहा हूँ! कृपा कर आप ही अपनी इस बात को स्पष्टत: मुझ को समझा दें!"

"तो, गृहपति! ध्यानपूर्वक सुनो! सुन कर मन में बैठा लो। मैं बताता हूँ।"

"ठीक है, भन्ते!" तब आयुष्मान् सारिपुत्र यों बोले—

"गृहपति! कोई पुरुष शरीर तथा चित्त से कब और कैसे रोगग्रस्त कहलाता है?

[N.243] अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं। 'अहं रूपं, मम रूपं' ति परियुट्ठट्ठायी होति। तस्स 'अहं रूपं, मम रूपं' ति परियुट्ठट्ठायिनो तं रूपं विपरिणमति अञ्ञथा होति। तस्स रूपविपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा।

''वेदनं अत्ततो समनुपस्सति, वेदनावन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा वेदनं, वेदनाय वा अत्तानं। 'अहं वेदना, मम वेदना' ति परियुट्ठट्ठायी होति। तस्स 'अहं वेदना, मम वेदना' ति परियुट्ठट्ठायिनो सा वेदना विपरिणमति अञ्ञथा होति। तस्स वेदनाविपरिणा-मञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा।

''सञ्ञं अत्ततो समनुपस्सति, सञ्ञावन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा सञ्ञं, सञ्ञाय वा अत्तानं। 'अहं सञ्ञा, मम सञ्ञा' ति परियुट्ठट्ठायी होति। तस्स 'अहं सञ्ञा, मम सञ्ञा' ति परियुट्ठट्ठायिनो सा सञ्ञा विपरिणमति अञ्ञथा होति। तस्स सञ्ञा-विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा।

''सङ्खारे अत्ततो समनुपस्सति, सङ्खारवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा सङ्खारे, सङ्खारेसु वा अत्तानं। 'अहं सङ्खारा, मम सङ्खारा' ति परियुट्ठट्ठायी होति। तस्स 'अहं सङ्खारा, मम
[R.4] सङ्खारा' ति परियुट्ठट्ठायिनो ते सङ्खारा विपरिणमन्ति अञ्ञथा होन्ति। तस्स सङ्खारविपरिणाम-ञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा।
[B.4] ''विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा विञ्ञाणं,

---

गृहपति! कोई पृथग्जन, अज्ञ, आर्यों का सङ्ग (सत्सङ्ग) न करने वाला, आर्यधर्म को न जानने वाला, उस धर्म के प्रति श्रद्धा न रखने वाला, सत्पुरुषों के सान्निध्य में न बैठने वाला, सत्पुरुषों के धर्म को न जानने वाला, उस धर्म के प्रति श्रद्धा न रखने वाला—(१) **रूप** को अपना मान कर व्यवहार करता है या रूपवान् को अपना, या अपने में रूप को, या रूप में अपने को देखता है, 'मैं रूप हूँ' या 'यह मेरा रूप है'—ऐसा मन बना लेता है। वह जिस रूप को अपने में तथा अपना समझता है, वह विपरिणत (अन्यथा) हो जाता है, या बदल जाता है। उस रूप के अन्यथा होने या बदल जाने से उस (पृथग्जन) को शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास (पश्चात्ताप) होने लगते हैं।

(२) **वेदना** को अपना मान कर...पूर्ववत्...होने लगते हैं।

(३) **संज्ञा** को अपना मान कर...पूर्ववत्...होने लगते हैं।

(४) **संस्कारों** को अपना मान कर...पूर्ववत्...होने लगते हैं।

विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। 'अहं विञ्ञाणं, मम विञ्ञाणं' ति परियुट्ठट्ठायी होति। तस्स 'अहं विञ्ञाणं, मम विञ्ञाणं' ति परियुट्ठट्ठायिनो तं विञ्ञाणं विपरिणमति अञ्ञथा होति। तस्स विञ्ञाणविपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा। एवं, खो, गहपति, आतुरकायो चेव होति आतुरचित्तो च।

"कथं च, गहपति, आतुरकायो हि खो होति नो च आतुरचित्तो? इध, गहपति, सुतवा अरियसावको अरियानं दस्सावी अरियधम्मस्स कोविदो अरियधम्मे सुविनीतो सप्पुरिसानं दस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स कोविदो सप्पुरिसधम्मे सुविनीतो न रूपं [N.244] अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं वा अत्तानं; न अत्तनि वा रूपं, न रूपस्मिं वा अत्तानं। 'अहं रूपं, मम रूपं' ति न परियुट्ठट्ठायी होति। तस्स 'अहं रूपं, मम रूपं' ति अपरियुट्ठट्ठायिनो तं रूपं विपरिणमति अञ्ञथा होति। तस्स रूपविपरिणामञ्ञथाभावा नुप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा।

"न वेदनं अत्ततो समनुपस्सति, न वेदनावन्तं वा अत्तानं; न अत्तनि वा वेदनं, न वेदनाय वा अत्तानं। 'अहं वेदना, मम वेदना' ति न परियुट्ठट्ठायी होति। तस्स 'अहं वेदना, मम वेदना' ति अपरियुट्ठट्ठायिनो सा वेदना विपरिणमति अञ्ञथा होति। तस्स वेदनाविपरिणामञ्ञथाभावा नुप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा।

"न सञ्ञं अत्ततो समनुपस्सति, न सञ्ञावन्तं वा अत्तानं; न अत्तनि वा सञ्ञं, न सञ्ञाय वा अत्तानं। 'अहं सञ्ञा, मम सञ्ञा' ति न परियुट्ठट्ठायी होति। तस्स 'अहं

---

(५) **विज्ञान** को अपना मान कर...पूर्ववत्...होने लगते हैं।

"तथा कैसे, गृहपति! कोई शरीर से व्याधिग्रस्त होते हुए भी मन से रोगग्रस्त नहीं होता? गृहपति! यहाँ कोई विद्वान् आर्यश्रावक, आर्यों का सङ्ग करने वाला, आर्य धर्म का ज्ञाता, आर्य धर्म के प्रति श्रद्धालु, सत्पुरुषों के सान्निध्य में बैठने वाला, उन के धर्म का ज्ञाता, उनके धर्म के प्रति श्रद्धालु—(१) **रूप** को अपना न मान कर लोकव्यवहार करता है, या रूपवान् को अपना, या अपने में रूप को या रूप में अपने में नहीं देखता है, रूप के विषय में 'मैं रूप हूँ' या 'यह मेरा रूप है'—ऐसा मन नहीं बनाता। वह जिस रूप को अपने में या उसे अपना नहीं समझता वह रूप विपरिणत या अन्यथा हो जाता है। उस रूप के इस तरह बदल जाने तथा अन्यथा हो जाने पर भी उस विद्वान् आर्यश्रावक को किसी प्रकार के शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास नहीं सताते।

(२) **वेदना** को अपना न मान कर...पूर्ववत्...नहीं सताते।

(३) **संज्ञा** को अपना न मान कर...पूर्ववत्...नहीं सताते।

सञ्ञा, मम सञ्ञा' ति अपरियुट्ठट्ठायिनो सा सञ्ञा विपरिणमति अञ्ञथा होति। तस्स सञ्ञाविपरिणामञ्ञथाभावा नुप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा।

"न सङ्खारे अत्ततो समनुपस्सति, न सङ्खारवन्तं वा अत्तानं; न अत्तनि वा सङ्खारे, [R.5] न सङ्खारेसु वा अत्तानं। 'अहं सङ्खारा, मम सङ्खारा' ति न परियुट्ठट्ठायी होति। तस्स 'अहं सङ्खारा, मम सङ्खारा' ति अपरियुट्ठट्ठायिनो ते सङ्खारा विपरिणमन्ति अञ्ञथा होन्ति। तस्स सङ्खारविपरिणामञ्ञथाभावा नुप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा।

"न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, न विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं; न अत्तनि वा [B.5] विञ्ञाणं, न विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। 'अहं विञ्ञाणं, मम विञ्ञाणं' ति न परियुट्ठट्ठायी होति। तस्स 'अहं विञ्ञाणं, मम विञ्ञाणं' ति अपरियुट्ठट्ठायिनो तं विञ्ञाणं विपरिणमति अञ्ञथा होति। तस्स विञ्ञाणविपरिणामञ्ञथाभावा नुप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा। एवं खो, गहपति, आतुरकायो होति नो च आतुरचित्तो" ति।

२. इदमवोच आयस्मा सारिपुत्तो। अत्तमनो नकुलपिता गहपति आयस्मतो सारिपुत्तस्स भासितं अभिनन्दी ति। •

२. देवदहसुत्तं

[N.245] ३. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति देवदहं नाम सक्यानं निगमो। अथ खो सम्बहुला पच्छाभूमगामिका भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं

---

(४) **संस्कारों** को अपना न मान कर...पूर्ववत्...नहीं सताते।

(५) **विज्ञान** को अपना न मान कर...पूर्ववत्...नहीं सताते।

"यों, गृहपति! किसी के शरीर के व्याधिग्रस्त होने पर भी उसका चित्त व्याधिग्रस्त (आतुर) नहीं कहलाता।"

२. आयुष्मान् सारिपुत्र यों बोले। गृहपति नकुलपिता ने आयुष्मान् सारिपुत्र के इस उपदेश से सन्तुष्ट एवं प्रसन्नचित्त हो कर उनका अभिनन्दन किया॥ •

: :

२. देवदहसूत्र

गुरु की शिक्षा

३. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् बुद्ध शाक्य प्रदेश में देवदह नामक शाक्यों के निगम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस अवसर पर, पश्चिम दिशा की ओर जाने की इच्छा वाले कुछ भिक्षु भगवान् के पास आये तथा वे भगवान् को प्रणाम कर एक ओर

एतदवोचुं—"इच्छाम मयं, भन्ते, पच्छाभूमं जनपदं गन्तुं, पच्छाभूमे जनपदे निवासं कप्पेतुं" ति।

"अपलोकितो पन खो, भिक्खवे, सारिपुत्तो" ति?

"न खो नो, भन्ते, अपलोकितो आयस्मा सारिपुत्तो" ति।

"अपलोकेथ, भिक्खवे, सारिपुत्तं। सारिपुत्तो, भिक्खवे, पण्डितो, भिक्खूनं अनुग्गाहको सब्रह्मचारीनं" ति।

"एवं भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। तेन खो पन समयेन [R.6] आयस्मा सारिपुत्तो भगवतो अविदूरे अञ्ञतरस्मिं एळगलागुम्बे निसिन्नो होति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोचुं—"इच्छाम मयं, आवुसो सारिपुत्त, पच्छाभूमं जनपदं गन्तुं, पच्छाभूमे जनपदे निवासं कप्पेतुं। अपलोकितो नो सत्था" ति।

"सन्ति हावुसो, नानावेरज्जगतं भिक्खुं पञ्हं पुच्छितारो—खत्तियपण्डिता [B.6]

बैठ गये। एक ओर बैठ कर उन्होंने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! हम (साधनाहेतु) पश्चिम दिशा के जनपदों में जाना चाहते हैं तथा वहाँ निवास करते हुए वहीं साधना में तत्पर रहना चाहते हैं।"

"भिक्षुओ! इस विषय में सारिपुत्र से तुम लोगों ने परामर्श कर लिया है? उससे अनुमति ले लो। वह व्यवहारकुशल है तथा सब्रह्मचारियों को अनुग्रहपूर्वक सत्परामर्श ही देता है!"

"नहीं, भन्ते! अभी तक हमने उन से तो परामर्श नहीं किया है।"

"तो जाओ, पहले उससे परामर्श कर लो। वह...पूर्ववत्...देता है।"

"बहुत अच्छा, भन्ते!" कह कर, भगवान् के भाषण का अभिनन्दन करते हुए वे भिक्षु आयुष्मान् सारिपुत्र के पास पहुँचे जो समीप ही एळगळा नामक झाड़ियों के झुरमुट में साधना में लीन थे। वहाँ पहुँच कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ कर भिक्षुओं ने भगवान् के साथ हुए संवाद के अनुसार उन (सारिपुत्र) को यह निवेदन किया— "आयुष्मन् सारिपुत्र! हम पश्चिम दिशा के जनपदों में जा कर वहाँ निवास करते हुए साधना में तत्पर होना चाहते हैं। हम ने भगवान् से तो अनुमति प्राप्त कर ली है।"

(सारिपुत्र—) "आयुष्मानो! विविध देशों में घूमने वाले भिक्षुओं से लोग अनेक

पि ब्राह्मणपण्डिता पि गहपतिपण्डिता पि समणपण्डिता पि; पण्डिता हावुसो, मनुस्सा वीमंसका—'किंवादी पनायस्मन्तानं सत्था किमक्खायी ति, कच्चि वो आयस्मन्तानं धम्मा सुस्सुता सुग्गहिता सुमनसिकता सूपधारिता सुप्पटिविद्धा पञ्ञाय, यथा ब्याकरमाना आयस्मन्तो वुत्तवादिनो चेव भगवतो अस्सथ, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्याथ, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्याथ, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छेय्या''' ति?

[N.246] ''दूरतो पि खो मयं, आवुसो, आगच्छेय्याम आयस्मतो सारिपुत्तस्स सन्तिके एतस्स भासितस्स अत्थमञ्ञातुं। साधु वतायस्मन्तं येव सारिपुत्तं पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो'' ति।

''तेन हावुसो, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। ''एवमावुसो'' ति खो ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—

[R.7] ''सन्ति हावुसो, नानावेरज्जगतं भिक्खुं पञ्हं पुच्छितारो—खत्तियपण्डिता पि ...पे०... समणपण्डिता पि; पण्डिता हावुसो, मनुस्सा वीमंसका—'किंवादी पनायस्मन्तानं सत्था किमक्खायी' ति? एवं पुट्ठा तुम्हे, आवुसो, एवं ब्याकरेय्याथ—'छन्दरागविनयक्खायी खो नो, आवुसो, सत्था' ति।

प्रकार के प्रश्न करने वाले मिलते हैं; उन में क्षत्रिय एवं ब्राह्मण भी होते हैं, गृहपति एवं श्रमण भी होते हैं। वे पण्डितजन आप लोगों से पूछ सकते हैं—'आयुष्मानों के गुरु की तुम्हें क्या शिक्षा है? क्या उपदेश है? आयुष्मानों ने क्या धर्म का भली भाँति अध्ययन कर लिया है? उसे ग्रहण कर लिया है? उस का मनन कर लिया है? उस को मन में धारण कर लिया है कि जिससे आप लोग भगवान् के उपदेश का भली भाँति (यथातथ) प्रवचन कर सकें, उस में कुछ अन्यथा न कर दें, अपि तु धर्मानुकूल ही कहें। ऐसे संवाद में किसी सदोष स्थान में न पकड़े जायँ?'''

(भिक्षुजन—) ''ऐसी ही बातों का स्पष्टीकरण सुनने के लिये तो हम इतनी दूर से आप के पास आये हैं, कृपया आप ही इन प्रश्नों का विशदतया वर्णन करें, जिससे हम तदनुसार व्यवहार कर सकें।''

(सारिपुत्र—) ''तो, आयुष्मानो! सुनो! मैं इन सब प्रश्नों का विशदतया वर्णन करूँगा, उसे सुन कर मन में बैठा लो।''

भिक्षुओं ने सारिपुत्र का आदेश स्वीकार किया।

(सारिपुत्र—) ''आयुष्मानो! विविध देशों में घूमने वाले भिक्षुओं से क्षत्रिय गृहपति आदि...पूर्ववत्...प्रव्रजित पण्डित जन मीमांसाहेतु पूछ सकते हैं—'आयुष्मानो! आप के गुरु की क्या शिक्षा है? क्या उपदेश है?' तो तुम उत्तर दोगे—'छन्दराग का दमन

"एवं ब्याकते पि खो, आवुसो, अस्सु येव उत्तरिं पञ्हं पुच्छितारो—खत्तिय-पण्डिता पि...पे०...समणपण्डिता पि; पण्डिता हावुसो, मनुस्सा वीमंसका—'किस्मिं पनायस्मन्तानं छन्दरागविनयक्खायी सत्था' ति? एवं पुट्ठा तुम्हे, आवुसो, एवं ब्याकरेय्याथ—'रूपे खो, आवुसो, छन्दरागविनयक्खायी सत्था, वेदनाय...सञ्ञाय... सङ्खारेसु...विञ्ञाणे छन्दरागविनयक्खायी सत्था' ति।

"एवं ब्याकते पि खो, आवुसो, अस्सु येव उत्तरिं पञ्हं पुच्छितारो—खत्तियपण्डिता पि...पे०...समणपण्डिता पि; पण्डिता हावुसो, मनुस्सा वीमंसका—'किं पनायस्मन्तानं आदीनवं दिस्वा रूपे छन्दरागविनयक्खायी सत्था, वेदनाय... सञ्ञाय...सङ्खारेसु...विञ्ञाणे छन्दरागविनयक्खायी सत्था' ति? एवं पुट्ठा तुम्हे, आवुसो, एवं ब्याकरेय्याथ—'रूपे खो, आवुसो, अविगतरागस्स अविगतछन्दस्स [B.7] अविगतपेमस्स अविगतपिपासस्स अविगतपरिळाहस्स अविगततण्हस्स तस्स रूपस्स विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा। वेदनाय ...सञ्ञाय...सङ्खारेसु अविगतरागस्स...पे०...अविगततण्हस्स तेसं सङ्खारानं विपरिणा-मञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा। विञ्ञाणे अविगतरागस्स अविगतछन्दस्स अविगतपेमस्स अविगतपिपासस्स अविगतपरिळाहस्स अविगत-तण्हस्स तस्स विञ्ञाणस्स विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्ख-दोमनस्सुपायासा। इदं खो नो, आवुसो, आदीनवं दिस्वा रूपे छन्दराग- [N.247] विनयक्खायी सत्था, वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु...विञ्ञाणे छन्दरागविनयक्खायी सत्था' ति।

"एवं ब्याकते पि खो, आवुसो, अस्सु येव उत्तरिं पञ्हं पुच्छितारो—खत्तिय-

---

करना ही हमारे गुरु की शिक्षा है।' फिर वे प्रश्न करेंगे—'आयुष्मानों के गुरु इस छन्दराग के दमन का कैसे उपदेश करते हैं?' आप का उत्तर होगा—'आयुष्मानो! रूप में...वेदना में...संज्ञा में....संस्कारों में...विज्ञान में छन्दराग का दमन करना ही हमारे गुरु का उपदेश है।' तब उन का फिर प्रश्न होगा—'आयुष्मानो! आप के गुरु इन रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान में क्या दोष देख कर इन के छन्दराग के प्रहाण का उपदेश करते हैं?' तब तुम्हें यह उत्तर देना चाहिये—'जिस साधक को रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान में राग (आसक्ति) है, छन्द (कामना) है, प्रेम है, पिपासा है, लगन है, तृष्णा है, उस को उस रूप आदि के विपरिणत एवं अन्यथा हो जाने से शोक, परिदेव...उपायास होने लगते हैं।' हमारे गुरु रूप आदि में यह दोष देख कर ही उन में छन्दराग के दमन का उपदेश करते हैं।

[R.8] पण्डिता पि ब्राह्मणपण्डिता पि गहपतिपण्डिता पि समणपण्डिता पि; पण्डिता हावुसो, मनुस्सा वीमंसका—'किं पनायस्मन्तानं आनिसंसं दिस्वा रूपे छन्दराग-विनयक्खायी सत्था, वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु...विञ्ञाणे छन्दरागविनयक्खायी सत्था' ति? एवं पुट्ठा तुम्हे, आवुसो, एवं ब्याकरेय्याथ—'रूपे खो, आवुसो, विगतरागस्स विगतछन्दस्स विगतपेमस्स विगतपिपासस्स विगतपरिळाहस्स विगत-तण्हस्स तस्स रूपस्स विपरिणामञ्ञथाभावा नुप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमन-स्सुपायासा। वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु विगतरागस्स विगतछन्दस्स विगतपेमस्स विगतपिपासस्स विगतपरिळाहस्स विगततण्हस्स तेसं सङ्खारानं विपरिणामञ्ञथाभावा नुप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा। विञ्ञाणे विगतरागस्स विगतछन्दस्स विगतपेमस्स विगतपिपासस्स विगतपरिळाहस्स विगततण्हस्स तस्स विञ्ञाणस्स विपरिणामञ्ञथाभावा नुप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा। इदं खो नो, आवुसो, आनिसंसं दिस्वा रूपे छन्दरागविनयक्खायी सत्था, वेदनाय... सञ्ञाय... सङ्खारेसु...विञ्ञाणे छन्दरागविनयक्खायी सत्था' ति। अकुसले चावुसो, धम्मे उपसम्पज्ज विहरतो दिट्ठे चेव धम्मे सुखो विहारो अभविस्स अविघातो अनुपायासो अपरिळाहो, कायस्स च भेदा परं मरणा सुगति पाटिकङ्खा, नयिदं भगवा अकुसलानं [B.8] धम्मानं पहानं वण्णेय्य। यस्मा च खो, आवुसो, अकुसले धम्मे उपसम्पज्ज विहरतो दिट्ठे चेव धम्मे दुक्खो विहारो सविघातो सउपायासो सपरिळाहो, कायस्स च भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा, तस्मा भगवा अकुसलानं धम्मानं पहानं वण्णेति।

''तब वे क्षत्रिय गृहपति...प्रव्रजित मीमांसक पण्डित आप लोगों से यों पूछेंगे—'आप के गुरु ने क्या गुण (माहात्म्य=अच्छाई) देख कर रूप आदि में छन्दराग के प्रहाण का उपदेश किया है?' तब तुम्हें यों उत्तर देना चाहिये—'आयुष्मानो! हमारे गुरु का मानना है—रूप में...वेदना में...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान में जिस साधक के राग, छन्द, प्रेम, लगन, पिपासा, तृष्णा आदि दोष क्षीण हो चुके हैं उस के चित्त में इन रूप...विज्ञान के विपरिणाम तथा अन्यथाभाव होने से किसी प्रकार के शोक परिदेव...उपायास उद्भूत नहीं होते। अत: हमारे गुरु ने रूप आदि में छन्दराग के विप्रहाण का उपदेश किया है। आयुष्मानो! अकुशल धर्मों की साधना करने वाला साधक यदि इस जन्म में सुख से साधना कर पाता और उसे कोई विघात या परिडाह न होते, तथा शरीरत्याग के बाद उस की सुगति हो पाती तो हमारे गुरु अकुशल धर्मों में छन्दराग के प्रहाण का उपदेश न करते। परन्तु क्यों कि अकुशल धर्मों में छन्दराग होने से उस को शोक परिदेव...उपायास उद्भूत होते हैं, अत: हमारे गुरु ने अकुशल धर्मों में छन्दराग के प्रहाण का उपदेश किया है।

अरियसावको अतीतस्मिं विञ्ञाणस्मिं अनपेक्खो होति; अनागतं विञ्ञाणं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नस्स विञ्ञाणस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होती'' ति॥ ●

नकुलपितुवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

नकुलपिता देवदहा, द्वे पि हालिद्दिकानि च।
समाधिपटिसल्लाणा, उपादापरितस्सना दुवे। [R.21]
अतीतानागतपच्चुप्पन्ना, वग्गो तेन पवुच्चति॥ ●

अतीत विज्ञान के प्रति अनपेक्षभाव रखता है, अनागत विज्ञान का अभिनन्दन नहीं करता। तथा वर्तमान विज्ञान के प्रति निर्वेद वैराग्य एवं निरोध के भाव रखता है। ●

नकुलपितृवर्ग प्रथम सम्पन्न॥

इस वर्ग की सूची

इस नकुलपितृवर्ग में इन सूत्रों का व्याख्यान हुआ है—१. नकुलपितृसूत्र, २. देवदह, ३-४. हालिद्दियानी, ५. समाधि, ६. प्रतिसल्लायन, ७-८. उपादायपरितर्षणा, ९. काल-त्रयअनित्य, १०. कालत्रयदुःख एवं ११. कालत्रयअनात्मसूत्र॥ ●

२. अनिच्चवग्गो दुतियो

१२. अनिच्चसुत्तं

१४. एवं मे सुतं। सावत्थियं...पे०...तत्र खो...''रूपं, भिक्खवे, अनिच्चं, वेदना अनिच्चा, सञ्ञा अनिच्चा, सङ्खारा अनिच्चा, विञ्ञाणं अनिच्चं। एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति।'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ •

१३. दुक्खसुत्तं

१५. सावत्थिनिदानं। ''रूपं, भिक्खवे, दुक्खं, वेदना दुक्खा, सञ्ञा दुक्खा, सङ्खारा दुक्खा, विञ्ञाणं दुक्खं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥•

१४. अनत्तसुत्तं

१६. सावत्थिनिदानं। ''रूपं, भिक्खवे, अनत्ता, वेदना अनत्ता, सञ्ञा अनत्ता, [B.19] सङ्खारा अनत्ता, विञ्ञाणं अनत्ता। एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि

---

२. अनित्यवर्ग

१२. अनित्यसूत्र : : पञ्चस्कन्धों में अनित्यता

१४. ऐसा मैंने सुना है। ...**श्रावस्ती में** ...वहाँ...''भिक्षुओ! रूप अनित्य वेदना अनित्य है, संज्ञा अनित्य है, संस्कार अनित्य है, विज्ञान अनित्य है। भिक्षुओ! ऐसा जान कर श्रुतवान् आर्यश्रावक को रूप से निर्वेद होता है, वेदना से भी...संज्ञा से भी...संस्कारों से भी...विज्ञान से भी निर्वेद हो जाता है। निर्वेद होने से उस के प्रति वैराग्य होने लगता है। वैराग्य से साधक विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने से वह कृतकृत्य (पूर्ण साधना वाला) हो जाता है। तब वह—'मेरा जो कर्तव्य था, वह मैंने पूर्ण कर लिया, अब मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है'—ऐसा जान लेता है॥ •

१३. दुःखसूत्र : : पञ्चस्कन्ध दुःखमय

१५. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...।''भिक्षुओ! रूप दुःखमय है, वेदना दुःखमय है, संज्ञा...संस्कार...विज्ञान दुःखमय है। भिक्षुओ! ऐसा जान कर श्रुतवान् आर्यश्रावक...पूर्वसूत्रवत्...ऐसा जान लेता है॥ •

१४. अनात्मसूत्र : : पञ्चस्कन्धों में अनात्मता

१६. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...।''भिक्षुओ! रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है,

निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं [N.259] करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ ●

१५. यदनिच्चसुत्तं

१७. सावत्थिनिदानं। ''रूपं, भिक्खवे, अनिच्चं। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं [R.22] दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। वेदना अनिच्चा। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। सञ्ञा अनिच्चा...पे०...सङ्खारा अनिच्चा...विञ्ञाणं अनिच्चं। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ ●

१६. यंदुक्खसुत्तं

१८. सावत्थिनिदानं। ''रूपं, भिक्खवे, दुक्खं। यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। वेदना दुक्खा...सञ्ञा दुक्खा...सङ्खारा दुक्खा...विञ्ञाणं दुक्खं। यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं

संज्ञा...संस्कार...विज्ञान अनात्म है। भिक्षुओ! ऐसा जान कर श्रुतवान् आर्यश्रावक... पूर्वसूत्रवत्...ऐसा जान लेता है॥ ●

१५. यदनित्यसूत्र : : अनित्यता का माहात्म्य

१७. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! रूप अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःखमय होता है, जो दुःखमय है वह अनात्म होगा ही। जो अनात्म है वह न 'मेरा' न 'मैं' और न 'मेरा आत्मा' हो सकता है। इस बात को यथार्थतः जान लेना चाहिये॥

''इसी तरह वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःखमय है, जो दुःखमय है वह अनात्म पदार्थ होगा। भिक्षुओ! इसे जान कर कोई भी श्रुतवान् आर्यश्रावक... पूर्ववत्...मेरी जन्ममरण परम्परा क्षीण हो गयी...ऐसा जान लेता है''॥ ●

१६. यद्दुःखसूत्र : : दुःख के गुण

१८. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! रूप दुःख है, जो दुःख है, वह अनात्म है। तथा जो अनात्म है उस को 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा आत्मा नहीं है'—इस प्रकार भली भाँति प्रज्ञा द्वारा समझ लेना चाहिये। इसी तरह, वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान भी दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है

'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ •

१७. यदनत्तासुत्तं

१९. सावत्थिनिदानं। ''रूपं, भिक्खवे, अनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। वेदना अनत्ता... [R.23] सञ्ञा अनत्ता... सङ्खारा अनत्ता...विञ्ञाणं अनत्ता। यदनत्ता तं 'नेतं मम, [B.20] नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं, भिक्खवे...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥ •

१८. सहेतुअनिच्चसुत्तं

[N.260] २०. सावत्थिनिदानं। ''रूपं, भिक्खवे, अनिच्चं। यो पि हेतु यो पि पच्चयो रूपस्स उप्पादाय सो पि अनिच्चो। अनिच्चसम्भूतं, भिक्खवे, रूपं कुतो निच्चं भविस्सति! वेदना अनिच्चा। यो पि हेतु यो पि पच्चयो वेदनाय उप्पादाय सो पि अनिच्चो। अनिच्चसम्भूता, भिक्खवे, वेदना कुतो निच्चा भविस्सति! सञ्ञा अनिच्चा...सङ्खारा अनिच्चा। यो पि हेतु यो पि पच्चयो सङ्खारानं उप्पादाय सो पि अनिच्चो। अनिच्चसम्भूता, भिक्खवे, सङ्खारा कुतो निच्चा भविस्सन्ति! विञ्ञाणं अनिच्चं। यो पि हेतु यो पि पच्चयो विञ्ञाणस्स उप्पादाय सो पि अनिच्चो।

उसके विषय में—'यह मेरा नहीं है, मैं यह नहीं हूँ, यह मेरा आत्मा नहीं है'—यह प्रज्ञा द्वारा भली भाँति जान समझ लेना चाहिये। यह जानता हुआ साधक 'मेरी जाति क्षीण हो चुकी...इस से आगे कोई कर्तव्य शेष नहीं है'—यह जान लेता है''॥ •

१७. यदनात्मसूत्र : : अनात्म की अयथार्थता

१९. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! रूप अनात्म पदार्थ है। जो अनात्म होता है उस के विषय में 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा आत्मा नहीं है'—इस प्रकार, प्रज्ञा द्वारा इस की यथार्थता भली भाँति जान लेनी चाहिये। ऐसा जानकर साधक '...मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है'—ऐसा जान लेता है''॥ •

१८. सहेतुअनित्यसूत्र : : हेतुओं की अनित्यता

२०. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! रूप अनित्य है। इतना ही नहीं, इस रूप की उत्पत्ति में जो हेतु या कारण (प्रत्यय) है वह भी अनित्य है। इस तरह, अनित्य से उत्पन्न होता हुआ रूप नित्य कैसे हो सकेगा!

''वेदना अनित्य है...अनित्य से उत्पन्न होकर वेदना नित्य कैसे हो सकेगी!

''संज्ञा अनित्य है...संस्कार अनित्य है...अनित्य से उत्पन्न संस्कार नित्य कैसे माने

अनिच्चसम्भूतं, भिक्खवे, विञ्ञाणं कुतो निच्चं भविस्सति! एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥

•

१९. सहेतुदुक्खसुत्तं

२१. सावत्थिनिदानं। ''रूपं, भिक्खवे, दुक्खं। यो पि हेतु यो पि पच्चयो रूपस्स उप्पादाय सो पि दुक्खो। दुक्खसम्भूतं, भिक्खवे, रूपं कुतो सुखं भविस्सति! [R.24] वेदना दुक्खा... सञ्ञा दुक्खा...सङ्खारा दुक्खा...विञ्ञाणं दुक्खं। यो पि हेतु यो पि पच्चयो विञ्ञाणस्स उप्पादाय सो पि दुक्खो। दुक्खसम्भूतं, भिक्खवे, विञ्ञाणं कुतो सुखं भविस्सति! एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥

•

२०. सहेतुअनत्तसुत्तं

२२. सावत्थिनिदानं। ''रूपं, भिक्खवे, अनत्ता। यो पि हेतु यो पि पच्चयो रूपस्स उप्पादाय सो पि अनत्ता। अनत्तसम्भूतं, भिक्खवे, रूपं कुतो अत्ता भविस्सति! वेदना अनत्ता... सञ्ञा अनत्ता...सङ्खारा अनत्ता...विञ्ञाणं अनत्ता। यो पि हेतु यो पि पच्चयो विञ्ञाणस्स उप्पादाय सो पि अनत्ता। अनत्तसम्भूतं, भिक्खवे, विञ्ञाणं कुतो अत्ता भविस्सति! एवं पस्सं... पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति॥

•

जा सकते हैं! विज्ञान अनित्य है, विज्ञान का उत्पादकहेतु भी अनित्य है, तब अनित्य से उत्पन्न नित्य कैसे माना जा सकता है। इस तरह जानता हुआ साधक अनित्यता के विषय में यथार्थतः जान लेता है''॥

•

१९. सहेतुदुःखसूत्र : : हेतुओं का दुःखता का ज्ञान

२१. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! रूप दुःख है। जो इस रूप का उत्पादकहेतु है वह भी दुःखमय है। तो, भिक्षुओ! दुःख से सम्भूत (उत्पन्न) यह रूप 'सुख' कैसे हो सकता है। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान दुःख है। विज्ञान का उत्पादकहेतु भी दुःखमय ही है अतः दुःखोत्पन्न विज्ञान 'सुख' नहीं माना जा सकता। यों, इस दुःख की यथार्थता जान लेने के बाद '...आगे कोई मेरा कर्तव्य शेष नहीं है'—यह प्रज्ञा द्वारा भली भाँति जान लेता है''॥

•

२०. सहेतुअनात्मसूत्र : : हेतुओं की अनात्मता का ज्ञान

२२. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! यह रूप अनात्म पदार्थ है। तथा इस अनात्म रूप का कोई उत्पादकहेतु है वह भी अनात्म ही है। तब फिर अनात्म से जात पदार्थ आत्मवान् कैसे हो सकेगा! वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान अनात्म पदार्थ है। इस का उत्पादकहेतु भी अनात्म ही है, अतः अनात्मा से उद्भूत कोई वस्तु आत्मवान् कैसे कहला सकती है! ...पूर्ववत्...''॥

•

२१. आनन्दसुत्तं

[B.21] २३. सावत्थियं आरामे अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; [N.261] उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"'निरोधो निरोधो' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमेसानं खो, भन्ते, धम्मानं निरोधो 'निरोधो' ति वुच्चती" ति?

"रूपं खो, आनन्द, अनिच्चं सङ्खतं पटिच्चसमुप्पन्नं खयधम्मं वयधम्मं विरागधम्मं निरोधधम्मं। तस्स निरोधो 'निरोधो' ति वुच्चति। वेदना अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना खयधम्मा वयधम्मा विरागधम्मा निरोधधम्मा। तस्सा निरोधो 'निरोधो' [R.25] ति वुच्चति। सञ्ञा... सङ्खारा अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना खयधम्मा वयधम्मा विरागधम्मा निरोधधम्मा। तेसं निरोधो 'निरोधो' ति वुच्चति। विञ्ञाणं अनिच्चं सङ्खतं पटिच्चसमुप्पन्नं खयधम्मं वयधम्मं विरागधम्मं निरोधधम्मं। तस्स निरोधो 'निरोधो' ति वुच्चति। इमेसं खो, आनन्द, धम्मानं निरोधो 'निरोधो' ति वुच्चती" ति॥

अनिच्चवग्गो दुतियो॥

---

२१. आनन्दसूत्र : : किसका निरोध करना है?

२३. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनविहार में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर, भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठ कर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया— "भन्ते! आप उपदेश में 'निरोध' 'निरोध'—ऐसा कहते रहते हैं। भन्ते! किन धर्मों का निरोध वस्तुतः 'निरोध' कहलाता है?"

"आनन्द! (पञ्चस्कन्धों में) यह रूप अनित्य है, संस्कृत (कृत्रिम) है, प्रतीत्य-समुत्पन्न (सापेक्ष) है, यह विनाशशील है, यह निरन्तर क्षीण होने वाला है, यह विराग (अनासक्ति) धर्म वाला है तथा यही निरोध धर्म वाला है। इसी का निरोध वास्तविक 'निरोध' कहलाता है। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान अनित्य है...निरोध धर्मवाला है। इसी का निरोध वास्तविक निरोध कहलाता है। आनन्द! इन पाँचों धर्मों (स्कन्धों) का निरोध ही 'निरोध' कहलाता है॥

अनित्यवर्ग द्वितीय सम्पन्न॥

तस्सुद्दानं

अनिच्चं दुक्खं अनत्ता, यदनिच्चापरे तयो।
हेतुना पि तयो वुत्ता, आनन्देन च ते दसा ति॥

अनित्यवर्ग में व्याख्यात सूत्र

इस वर्ग में ये दश सूत्र व्याख्यात हुए हैं—१. अनित्यसूत्र, २. दु:ख, ३. अनात्म, ४. यदनित्य, ५. यद्दु:ख, ६. यदनात्म, ७. सहेतुअनित्य, ८. सहेतुदु:ख, ९. सहेतुअनात्म एवं १०. आनन्दसूत्र॥ ●

३. भारवग्गो ततियो

२२. भारसुत्तं

२४. सावत्थियं...तत्र खो...''भारं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि भारहारं च भारादानं च भारनिक्खेपनं च। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, भारो? पञ्चुपादानक्खन्धा तिस्स वचनीयं। कतमे पञ्च? रूपुपादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विञ्ञाणुपादानक्खन्धो; अयं वुच्चति, भिक्खवे, भारो।

''कतमो च, भिक्खवे, भारहारो? पुग्गलो तिस्स वचनीयं। य्वायं आयस्मा [B.22] एवंनामो एवंगोत्तो; अयं वुच्चति, भिक्खवे, भारहारो।

''कतमं च, भिक्खवे, भारादानं? यायं तण्हा पोनोभविका नन्दीरागसहगता [R.26] तत्रतत्राभिनन्दिनी, सेय्यथीदं—कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा। इदं वुच्चति, भिक्खवे, भारादानं।

''कतमं च, भिक्खवे, भारनिक्खेपनं? यो तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधो चागो पटिनिस्सग्गो मुत्ति अनालयो। इदं वुच्चति, भिक्खवे, भारनिक्खेपनं'' ति।

---

३. भारवर्ग

२२. भारसूत्र : : भार का उतारना

२४. ...**श्रावस्ती में** ही...। वहाँ...''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें 'भार' के विषय में बताऊँगा। साथ ही भारहार (भार ढोने वाले) के विषय में तथा उस भार को उठाने तथा उसे उतार फेंकने के विषय में भी बताऊँगा। उसे सुनो।

''भिक्षुओ! वह 'भार' क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में संक्षेप में यही कहा जा सकता है—'पाँच उपादानस्कन्धों को भार कहा जा सकता है। कौन से पाँच स्कन्ध? १. रूप उपादानस्कन्ध, २. वेदना उपादानस्कन्ध, ३. संज्ञा उपादानस्कन्ध, ४. संस्कार उपादानस्कन्ध एवं ५. विज्ञान उपादानस्कन्ध। भिक्षुओ! यह (पाँच उपादानस्कन्धों का समवाय ही) 'भार' कहलाता है।

''भिक्षुओ! 'भारहार' कौन कहलाता है? भारहार 'पुरुष' को ही कहना चाहिये। जो कि इस नाम वाला तथा इस गोत्र वाला हैं। उसी को 'भारहार' कहते हैं।

''भिक्षुओ! यह 'भार का उठाना' क्या है? यह पुनर्जन्म कराने वाली, आसक्ति एवं राग वाली, यहाँ वहाँ सम्पर्क कर लेने वाली तृष्णा; जैसे—कामतृष्णा, भवतृष्णा एवं विभवतृष्णा। भिक्षुओ! इसी (तृष्णा) को 'भार उठाना' कहते हैं।

२५. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था— [N.262]

"भारा हवे पञ्चक्खन्धा, भारहारो च पुग्गलो।
भारादानं दुखं लोके, भारनिक्खेपनं सुखं॥
निक्खिपित्वा गरुं भारं, अञ्ञं भारं अनादिय।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, निच्छातो परिनिब्बुतो" ति॥ •

२३. परिञ्ञसुत्तं

२६. सावत्थिनिदानं। "परिञ्ञेय्ये च, भिक्खवे, धम्मे देसेस्सामि परिञ्ञं च। तं सुणाथ। कतमे च, भिक्खवे, परिञ्ञेय्या धम्मा? रूपं, भिक्खवे, परिञ्ञेय्यो धम्मो, वेदना परिञ्ञेय्यो धम्मो, सञ्ञा परिञ्ञेय्यो धम्मो, सङ्खारा परिञ्ञेय्यो धम्मो, विञ्ञाणं परिञ्ञेय्यो धम्मो। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, परिञ्ञेय्या धम्मा। कतमा च, भिक्खवे, परिञ्ञा? यो, भिक्खवे, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, परिञ्ञा" ति॥ •

"भिक्षुओ! 'भार का उतार देना' किसे कहते हैं? इसी उपर्युक्त तृष्णा का सर्वथा त्याग, निरोध, प्रतिनिसर्ग, मुक्ति, अनालय (=असंसर्ग)—यही 'भार का उतार देना' कहलाता है।"

२५. भगवान् ने यों देशना करते हुए पुन: यों गाथाबद्ध उपदेश किया—

"ये पाँच (रूप आदि) स्कन्ध 'भार' हैं, पुरुष 'भारहार' है। लोक में 'भार का उठाना' 'दु:ख' (तृष्णा) है, उस तृष्णा का निरोध या त्याग ही 'भार का उतार फेंकना' 'सुख' कहलाता है॥

"जो इस गुरु (भारी) भार (बोझ) को उतार कर दूसरा भार नहीं उठाता, तथा इस (उपर्युक्त) तृष्णा को मूलत: उखाड़ फेंकता है वही दु:खमुक्त निर्वाण को प्राप्त करने का अधिकारी है"॥ •

२३. परिज्ञासूत्र : : 'परिज्ञेय' एवं 'परिज्ञा' की व्याख्या

२६. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें परिज्ञेय धर्मों तथा 'परिज्ञा' के विषय में बताऊँगा। उसे सुनों।

"भिक्षुओ! ये 'परिज्ञेय' धर्म क्या है? रूप परिज्ञेय धर्म है, वेदना...संज्ञा...संस्कार... विज्ञान परिज्ञेय धर्म हैं। भिक्षुओ! इन्हीं रूप आदि पाँच धर्मों को 'परिज्ञेय धर्म' कहते हैं।

"भिक्षुओ! यह 'परिज्ञा' क्या कहलाती है? भिक्षुओ! राग, द्वेष एवं मोह का यथार्थ ज्ञान कर उन का क्षय करना ही परिज्ञा है। भिक्षुओ! इसे ही 'परिज्ञा' कहते हैं॥ •

२४. अभिजानसुत्तं

२७. सावत्थिनिदानं। "रूपं, भिक्खवे, अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं [R.27] अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय; वेदनं अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खाय; सञ्ञं अनभिजानं...सङ्खारे अनभिजानं अपरिजानं [B.23] अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय; विञ्ञाणं अनभिजानं अपरिजानं अविराजयं अप्पजहं अभब्बो दुक्खक्खयाय। रूपं च खो, भिक्खवे, अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाय; वेदनं अभिजानं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं अभिजानं परिजानं विराजयं पजहं भब्बो दुक्खक्खयाया" ति॥ •

२५. छन्दरागसुत्तं

२८. सावत्थिनिदानं। "यो, भिक्खवे, रूपस्मिं छन्दरागो तं पजहथ। एवं तं रूपं [N.263] पहीनं भविस्सति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पाद-धम्मं। यो वेदनाय छन्दरागो तं पजहथ। एवं सा वेदना पहीना भविस्सति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। यो सञ्ञाय छन्दरागो तं पजहथ। एवं सा सञ्ञा पहीना भविस्सति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। यो सङ्खारेसु छन्दरागो तं पजहथ। एवं ते सङ्खारा पहीना भविस्सन्ति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। यो विञ्ञाणस्मिं छन्दरागो तं पजहथ। एवं तं विञ्ञाणं पहीनं भविस्सति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं" ति। •

---

२४. अभिजानसूत्र : :रूप आदि के ज्ञान विना दुःखक्षय नहीं

२७. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! रूप को विना जाने, विना समझे, विना उस का त्याग किये, विना उस से विरक्त हुए कोई भी साधक अपने दुःखों का क्षय कर सके—यह सम्भव नहीं। इसी तरह वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान को विना जाने...पूर्ववत्...क्षय नहीं कर सकता।

"भिक्षुओ! रूप को समझ कर, जान कर, उस का त्याग कर, उस से विरक्त होकर ही कोई साधक अपने दुःखों का क्षय कर सकता है। इसी तरह वेदना...संज्ञा... संस्कार...विज्ञान को जान कर, समझ कर...पूर्ववत्...दुःखों का क्षय कर सकता है॥ •

२५. छन्दरागसूत्र : : छन्दराग का त्याग

२८. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! रूप में जो छन्दराग (उत्तेजक कामना) है उस का त्याग कर दो। इस तरह वह रूप मूलतः नष्ट हो जायगा। कटे सिर वाले ताड़ वृक्ष के समान इस तरह विनष्ट हो जायगा कि उसका पुनः उत्पाद ही न हो पायगा। इसी प्रकार

२६. अस्सादसुत्तं

२९. सावत्थिनिदानं। "पुब्बेव मे, भिक्खवे, सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि—'को नु खो रूपस्स अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं? को वेदनाय अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं? को सञ्ञाय अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं? को सङ्खारानं अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं? को विञ्ञाणस्स अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं' ति? तस्स मय्हं, [R.28] भिक्खवे, एतदहोसि—'यं खो रूपं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं रूपस्स अस्सादो। यं रूपं अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अयं रूपस्स आदीनवो। यो रूपस्मि छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं रूपस्स निस्सरणं। यं वेदनं पटिच्च उप्पज्जति [B.24] सुखं सोमनस्सं, अयं वेदनाय अस्सादो। यं वेदना अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा, अयं वेदनाय आदीनवो। यो वेदनाय छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं वेदनाय निस्सरणं। यं सञ्ञं पटिच्च उप्पज्जति...पे०...यं सङ्खारे पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं सङ्खारानं अस्सादो। यं सङ्खारा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा, अयं सङ्खारानं आदीनवो। यो सङ्खारेसु छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं सङ्खारानं निस्सरणं। यं विञ्ञाणं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं विञ्ञाणस्स अस्सादो। यं विञ्ञाणं अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अयं विञ्ञाणस्स आदीनवो। यो विञ्ञाणस्मि छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं विञ्ञाणस्स निस्सरणं।

वेदना में...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान में जो छन्दराग है उसका त्याग कर दो। इस तरह वह विज्ञान मूलतः नष्ट हो जायगा, कटे सिर वाले...पूर्ववत्...पुनः कभी उत्पाद नहीं हो पायगा॥

●

२६. प्रथम आस्वादसूत्र : : रूप आदि का आस्वाद

२९. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! जब मैं सम्बोधि प्राप्ति से पूर्व बोधिसत्त्वावस्था में ही था, तब मुझे यह विचार आया—'इस रूप का आस्वाद (रस) क्या है? आदीनव (दुष्परिणाम) क्या है? तथा इस का निःसरण (दूर हटाना) क्या है? वेदना का...संज्ञा का...संस्कारों का...विज्ञान का...निःसरण क्या है?' तब मेरी प्रज्ञा (समझ) में यह आया—'यह जो रूप की अपेक्षा कर सुख सौमनस्य उत्पन्न होता है यही रूप का 'रस' है। यह रूप अनित्य, दुःखमय एवं विनाशी है--यही रूप का 'दुष्परिणाम' है। यह जो रूप की कामुक उत्तेजना का दबाना या विनाश करना है यही इस का निःसरण है। यह जो वेदना का...यह जो संज्ञा का...यह जो संस्कारों का...यह जो विज्ञान की कामुक उत्तेजना दबाना या विनाश करना है यही इस का 'निःसरण' है।

[N.264] ''यावकीवञ्चाहं, भिक्खवे, इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं एवं अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नाब्भञ्ञासिं, नेव तावाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेव-मनुस्साय अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति पच्चञ्ञासिं। यतो च ख्वाहं, भिक्खवे, इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं एवं अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्ञासिं; अथाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अनुत्तरं सम्मा-सम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति पच्चञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि—'अकुप्पा मे विमुत्ति; अयमन्तिमा जाति; नत्थि दानि पुनब्भवो''' ति॥ •

२७. दुतियअस्सादसुत्तं

३०. सावत्थिनिदानं। ''रूपस्साहं, भिक्खवे, अस्सादपरियेसनं अचरिं। यो [R.29] रूपस्स अस्सादो तदज्झगमं। यावता रूपस्स अस्सादो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। रूपस्साहं, भिक्खवे, आदीनवपरियेसनं अचरिं। यो रूपस्स आदीनवो तदज्झगमं। यावता रूपस्स आदीनवो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। रूपस्साहं, भिक्खवे, निस्सरण-परियेसनं अचरिं। यं रूपस्स निस्सरणं तदज्झगमं। यावता रूपस्स निस्सरणं पञ्ञाय मे

''भिक्षुओ! जब तक मैंने इन पाँचों (रूप आदि) उपादानस्कन्धों के आस्वाद को आस्वाद के यथार्थ रूप से, आदीनव को आदीनव के तथा निःसरण को निःसरण के यथार्थ रूप से नहीं जान लिया, तब तक मैंने इस देवताओं सहित सभी लोकधातुओं की प्रजा को यह नहीं बताया कि मैंने सम्बोधि प्राप्त कर ली है। तथा जब मैंने इन पाँचों उपादानस्कन्धों के इन आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण के विषय में यथार्थतः जान लिया तभी मैंने देवताओं सहित सभी मनुष्यों के बीच यह घोषणा की कि मैं सम्यक्सम्बोधि प्राप्त कर चुका हूँ। तब मुझे स्वयं भी यह समझ में आ गया कि—'अब यह मेरी विमुक्ति स्थिर (अकोप्य) हो गयी है, मेरा यह जन्म अन्तिम है, अब मेरा इस लोक में पुनर्जन्म नहीं होगा॥'' •

२७. द्वितीय आस्वादसूत्र : : आस्वाद की गवेषणा

३०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! (बोधिसत्त्वावस्था में) मैंने रूप की आस्वादविषयक गवेषणा की। जो रूप का आस्वाद है उस के विषय में गम्भीरता से सोचा, समझा। इसी तरह, रूप के आदीनव (दोष) के विषय में गवेषणा की। उस के विषय में गम्भीरता से विचार किया। तथा अन्त में, इस रूप के निःसरण (मुक्ति के उपाय) की भी गवेषणा की। एतद्विषयक जितने भी उपाय थे, सभी पर गम्भीरता से विचार किया।

तं सुदिट्ठं। वेदनायाहं, भिक्खवे...सञ्ञायाहं, भिक्खवे...सङ्खारानाहं, भिक्खवे... [B.25] विञ्ञाणस्साहं, भिक्खवे, अस्सादपरियेसनं अचरिं। यो विञ्ञाणस्स अस्सादो तदज्झगमं। यावता विञ्ञाणस्स अस्सादो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। विञ्ञाणस्साहं, भिक्खवे, आदीनवपरियेसनं अचरिं। यो विञ्ञाणस्स आदीनवो तदज्झगमं। यावता विञ्ञाणस्स आदीनवो पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। विञ्ञाणस्साहं, भिक्खवे, निस्सरण-परियेसनं अचरिं। यं विञ्ञाणस्स निस्सरणं तदज्झगमं। यावता विञ्ञाणस्स निस्सरणं पञ्ञाय मे तं सुदिट्ठं। यावकीवञ्चाहं, भिक्खवे, इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नाब्भञ्ञासिं ...पे०... अब्भञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि—'अकुप्पा मे विमुत्ति; [N.265] अयमन्तिमा जाति; नत्थि दानि पुनब्भवो''' ति॥ ●

२८. ततियअस्सादसुत्तं

३१. सावत्थिनिदानं। ''नो चेदं, भिक्खवे, रूपस्स अस्सादो अभविस्स नयिदं सत्ता रूपस्मिं सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि रूपस्स अस्सादो तस्मा [R.30] सत्ता रूपस्मिं सारज्जन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, रूपस्स आदीनवो अभविस्स नयिदं सत्ता रूपस्मिं निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि रूपस्स आदीनवो तस्मा सत्ता रूपस्मिं निब्बिन्दन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, रूपस्स निस्सरणं अभविस्स नयिदं सत्ता रूपस्मा निस्सरेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि रूपस्स निस्सरणं तस्मा सत्ता

इसी प्रकार, वेदना के आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण के विषय में गम्भीरता से विवेचना की, उन के विषय में यथार्थत: विचार किया। संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण के विषय में यथार्थत: विवेचना की, अन्त में उस को प्रज्ञापूर्वक समझा, जाना।

''भिक्षुओ! जब तक मैंने इन पाँचों उपादानस्कन्धों के आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण के विषय में नहीं जान लिया...पूर्वसूत्रवत्...पुनर्जन्म नहीं होगा॥'' ●

२८. तृतीय आस्वादसूत्र : : आस्वाद से ही आसक्ति

३१. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! यदि रूप में आस्वाद न होता तो ये प्राणी रूप में आसक्त न होते। क्यों कि रूप में आस्वाद है, अत: प्राणी इस में आसक्त होते हैं। तथा यदि इस में आदीनव न होता तो ये प्राणी इस से समय समय पर विरक्त न होते। क्यों कि इस में आदीनव है इसीलिये प्राणी समय समय पर इससे विरक्त होते रहते हैं। इसी तरह रूप में नि:सरण न होता तो प्राणी इस से मुक्ति का उपाय न खोजते। क्यों कि इस से नि:सरण हो सकता है इसीलिये मुमुक्षु प्राणी इस से मुक्ति का उपाय खोजते रहते हैं।

रूपस्मा निस्सरन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, वेदनाय...पे०...नो चेदं, भिक्खवे, सञ्ञाय...नो चेदं, भिक्खवे, सङ्खारानं निस्सरणं अभविस्स नयिदं सत्ता सङ्खारेहि निस्सरेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि सङ्खारानं निस्सरणं तस्मा सत्ता सङ्खारेहि निस्सरन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, विञ्ञाणस्स अस्सादो अभविस्स नयिदं सत्ता विञ्ञाणस्मिं सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि विञ्ञाणस्स अस्सादो तस्मा सत्ता विञ्ञाणस्मिं सारज्जन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, विञ्ञाणस्स आदीनवो अभविस्स नयिदं सत्ता विञ्ञाणस्मिं निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि विञ्ञाणस्स आदीनवो तस्मा सत्ता विञ्ञाणस्मिं निब्बिन्दन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, विञ्ञाणस्स निस्सरणं अभविस्स नयिदं सत्ता विञ्ञाणस्मा निस्सरेय्युं। यस्मा च खो भिक्खवे, अत्थि विञ्ञाणस्स निस्सरणं [B.26] तस्मा सत्ता विञ्ञाणस्मा निस्सरन्ति।

''यावकीवञ्च, भिक्खवे, सत्ता इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नाब्भञ्ञंसु; नेव [R.31] तावाहं, भिक्खवे, सत्ता सदेवका लोका समारका सब्रह्मका सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय निस्सटा विसंयुत्ता विप्पमुत्ता विमरियादीकतेन चेतसा विहरिंसु। [N.266] यतो च खो, भिक्खवे, सत्ता इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्ञंसु, अथ, भिक्खवे, सत्ता सदेवका लोका समारका सब्रह्मका सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय निस्सटा विसंयुत्ता विप्पमुत्ता विमरिया-दीकतेन चेतसा विहरन्ति''॥●

२९. अभिनन्दनसुत्तं

३२. सावत्थिनिदानं। ''यो, भिक्खवे, रूपं अभिनन्दति, दुक्खं सो अभिनन्दति।

''यदि, भिक्षुओ! वेदना में...पूर्ववत्...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान में आस्वाद न होता तो प्राणी इस में आसक्त न होते। ...पूर्ववत्...इसीलिये मुमुक्षु प्राणी इस से नि:सरणोपाय की गवेषणा करते रहते हैं।

''भिक्षुओ! जब तक प्राणी इन पाँचों रूप आदि उपादानस्कन्धों के आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण के विषय में यथार्थत: नहीं जान लेते, भिक्षुओ! तब तक इन लोकधातुओं की देवताओं सहित समस्त प्रजा न इन से दूर हो पायी, न इन से मुक्त हो पायी तथा यों ही मर्यादारहित चित्त से इस संसार में विचरण करती रही। हाँ, भिक्षुओ! जब इन में से कुछ प्राणियों ने इन पाँचों उपादानस्कन्धों के आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण के विषय में प्रज्ञापूर्वक यथार्थत: जान लिया तब देवताओं सहित इन लोकधातुओं के वे प्राणी भवबन्धन से मुक्त हो गये तथा निर्मर्याद चित्त से यहाँ साधना करते रहे॥'' ●

यो दुक्खं अभिनन्दति, अपरिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि। यो वेदनं अभिनन्दति...यो सञ्ञं अभिनन्दति...यो सङ्खारे अभिनन्दति...यो विञ्ञाणं अभिनन्दति, दुक्खं सो अभिनन्दति। यो दुक्खं अभिनन्दति, अपरिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि। यो च खो, भिक्खवे, रूपं नाभि-नन्दति, दुक्खं सो नाभिनन्दति। यो दुक्खं नाभिनन्दति, परिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामि। यो वेदनं नाभिनन्दति...यो सञ्ञं नाभिनन्दति...यो सङ्खारे नाभिनन्दति...यो विञ्ञाणं नाभिनन्दति, दुक्खं सो नाभिनन्दति। यो दुक्खं नाभिनन्दति, परिमुत्तो सो दुक्खस्मा ति वदामी'' ति॥ •

३०. उप्पादसुत्तं

३३. सावत्थिनिदानं। ''यो, भिक्खवे, रूपस्स उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो रोगानं ठिति जरामरणस्स पातुभावो। यो [R.32] वेदनाय...पे०...यो सञ्ञाय...यो सङ्खारानं...यो विञ्ञाणस्स उप्पादो ठिति [B.27] अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो रोगानं ठिति जरामरणस्स पातुभावो। यो च खो, भिक्खवे, रूपस्स निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो रोगानं वूपसमो

---

२९. अभिनन्दनसूत्र : : अभिनन्दन से दुःख की उत्पत्ति

३२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! जो रूप का अभिनन्दन करता है, उसके कारण आनन्दित होता है, वह एक तरह से दुःख का ही अभिनन्दन करता है। जो दुःख में आनन्द मानता है वह दुःख से कभी मुक्त नहीं हो सकता—ऐसा मेरा मानना है। जो वेदना का...विज्ञान का अभिनन्दन करता है, वह दुःख में ही लिप्त है—ऐसा मेरा कहना है।

हाँ, जो रूप का अभिनन्दन नहीं करता, वह दुःख का अभिनन्दन नहीं करता। जो दुःख का अभिनन्दन नहीं करता, उसे दुःख से मुक्त हुआ ही समझो—ऐसी मेरी मान्यता है। जो वेदना का...संज्ञा का...संस्कारों का...विज्ञान का अभिनन्दन नहीं करता वह दुःख का ही अभिनन्दन नहीं करता। जो दुःख का अभिनन्दन नहीं करता, वह एक न एक दिन दुःख से छुटकारा पा ही जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ॥ •

३०. उत्पादसूत्र : : रूप के उत्पाद आदि

३३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! रूप का जो उत्पाद, स्थिति, उद्भव या प्रादुर्भाव है वह वस्तुतः दुःख का ही उत्पाद, रोगों की स्थिति तथा जरामरण का ही प्रादुर्भाव है। जो वेदना का...जो संज्ञा का...जो संस्कारों का...जो विज्ञान का उत्पाद, स्थिति, उद्भव या प्रादुर्भाव है वह वस्तुतः दुःख का उत्पाद, रोगों की स्थिति तथा जरामरण का ही प्रादुर्भाव है।

जरामरणस्स अत्थङ्गमो। यो वेदनाय...पे०...यो सञ्ञाय...यो सङ्खारानं...यो विञ्ञाणस्स निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो रोगानं वूपसमो जरामरणस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ •

३१. अघमूलसुत्तं

३४. सावत्थिनिदानं। ''अघं च, भिक्खवे, देसेस्सामि अघमूलं च। तं सुणाथ। कतमं च भिक्खवे अघं? रूपं, भिक्खवे, अघं वेदना अघं सञ्ञा अघं सङ्खारा अघं विञ्ञाणं अघं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, अघं। कतमं च, भिक्खवे, अघमूलं? यायं तण्हा पोनोभविका नन्दीराग-सहगता तत्र तत्राभिनन्दिनी, सेय्यथीदं—कामतण्हा भवतण्हा विभवतण्हा। इदं वुच्चति, भिक्खवे, अघमूलं'' ति॥ •

३२. पभङ्गसुत्तं

३५. सावत्थिनिदानं। ''पभङ्गुं च, भिक्खवे, देसेस्सामि अप्पभङ्गुं च। तं [R.33] सुणाथ। किञ्च, भिक्खवे, पभङ्गु किं अप्पभङ्गुं? रूपं, भिक्खवे, पभङ्गु। यो

तथा जो, भिक्षुओ! रूप का निरोध है, व्युपशम (शान्ति) है, अस्त होना है, यह वस्तुतः दुःख का ही निरोध, रोगों का व्युपशम एवं जरामरण का अस्त होना है। जो वेदना का...संज्ञा का...संस्कारों का...विज्ञान का उत्पाद...पूर्ववत्...जरामरण का ही अस्तगमन है॥'' •

३१. अघमूलसूत्र : : दुःख का मूल

३४. ...**श्रावस्ती में** ही...।''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें अघ (=दुःख, पाप) के विषय में देशना करूँगा, साथ ही अघमूल (दुःखमूल, पापमूल) के विषय में भी बताऊँगा। उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

''भिक्षुओ! अघ किसे कहते हैं? तथा अघमूल किसे कहते हैं? भिक्षुओ! यह दृश्यमान समस्त रूप ही 'अघ' है, वेदना 'अघ' है, संज्ञा 'अघ' है, संस्कार 'अघ' हैं, विज्ञान 'अघ' है। भिक्षुओ! यों यह (पञ्चस्कन्ध) 'अघ' है।

''भिक्षुओ! यह 'अघमूल' क्या है? यह जो पुनः पुनः उत्पन्न होने वाली अनुरागसहगत वहाँ वहाँ (विषयों में) आनन्द मानने वाली तृष्णा है; जैसे—कामतृष्णा, भवतृष्णा एवं विभवतृष्णा। भिक्षुओ! इस (तृष्णा) को कहते हैं—अघमूल॥ •

३२. प्रभङ्गुरसूत्र : : क्षणभङ्गुरता

३५. ...**श्रावस्ती में** ही...।''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें प्रभङ्गुर (विनाशशील) पदार्थों के विषय में बताऊँगा, साथ ही अप्रभङ्गुर (नित्य, अविनाशी) पदार्थों के विषय में भी। उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

तस्स निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो इदं अप्पभङ्गु। वेदना पभङ्गु। यो तस्सा निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो इदं अप्पभङ्गु सञ्ञा पभङ्गु...सङ्खारा पभङ्गु। यो तेसं निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो इदं अप्पभङ्गु। विञ्ञाणं पभङ्गु। यो तस्स निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो इदं अप्पभङ्गू'' ति॥

भारवग्गो ततियो॥

तस्सुद्दानं

भारं परिञ्ञं अभिजानं, छन्दरागं चतुत्थकं।
अस्सादा च तयो वुत्ता, अभिनन्दनमट्ठमं।
उप्पादं अघमूलं च, एकादसमो पभङ्गू ति॥ •

''भिक्षुओ! यहाँ विनाशशील पदार्थ क्या है ? भिक्षुओ! रूप विनाशशील है तथा उस का निरोध, व्युपशम एवं अस्त होना—यही अविनाशी है। वेदना... संज्ञा... संस्कार... विज्ञान विनाशशील है तथा उस का निरोध, व्युपशमन एवं अस्तगमन ही अविनाशी है''॥

भारवर्ग तृतीय सम्पन्न॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची

इस वर्ग में इन ११ सूत्रों का व्याख्यान हुआ है—१. भारसूत्र, २. परिज्ञासूत्र, ३. अभिजानसूत्र, ४. छन्दरागसूत्र, ५-६-७. तीन आस्वादसूत्र, ८. अभिनन्दनसूत्र, ९. उत्पादसूत्र, १०. अघमूल एवं ११. प्रभङ्गुरसूत्र॥ •

४. नतुम्हाकवग्गो चतुत्थो

३३. नतुम्हाकसुत्तं

[B.28] ३६. सावत्थिनिदानं। "यं, भिक्खवे, न तुम्हाकं, तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। किञ्च, भिक्खवे, न तुम्हाकं? रूपं, भिक्खवे, न तुम्हाकं, तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। वेदना, न तुम्हाकं, तं पजहथ। सा वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सति। सञ्ञा न तुम्हाकं...सङ्खारा न तुम्हाकं, ते पजहथ। ते [R.34] वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सन्ति। विञ्ञाणं न तुम्हाकं, तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, यं इमस्मिं जेतवने तिणकट्ठसाखापलासं तं जनो हरेय्य वा डहेय्य वा यथापच्चयं वा करेय्य। अपि नु तुम्हाकं एवमस्स—'अम्हं जनो हरति वा डहति वा यथापच्चयं वा करोती''' ति?

[N.268] "नो हेतं, भन्ते"।

"तं किस्स हेतु"?

"न हि नो एतं, भन्ते, अत्ता वा अत्तनियं वा" ति।

---

४. नयुष्माकंवर्ग

३३. नयुष्माकंसूत्र : : जो तुम्हारा नहीं है उस का त्याग

३६. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! जो तुम्हारा नहीं है, उस को त्याग दो। उस के प्रहाण से तुम्हारा हित ही होगा, वह (प्रहाण) तुम्हारे लिये सुखदायक भी होगा। यहाँ भिक्षुओ! तुम्हारा क्या नहीं है? भिक्षुओ! (यहाँ) रूप तुम्हारा नहीं है, इस का परित्याग कर दो। उस के प्रहाण से तुम्हारा हित ही होगा, वह प्रहाण तुम्हारे लिये सुखदायी भी होगा। वेदना...संज्ञा... संस्कार...विज्ञान तुम्हारा नहीं है उसको त्याग दो। उस का त्याग तुम्हारे लिये हितकर तथा सुखकर ही होगा।

"जैसे, भिक्षुओ! कोई आदमी इस जेतवन से मनचाहा तृण, वृक्षों की शाखाएँ या पत्ते ले जाय, ले जा कर उन्हें जला दे या उस के मन में उस के प्रति जो हो वह करे। तो क्या उस समय तुम्हारे मन में यह विचार होगा—यह आदमी हमें ले जा रहा है या जला रहा है या यथेच्छ कर रहा है?"

"नहीं, भन्ते!"

"वह क्यों?"

"क्यों कि, भन्ते! वह तृण, शाखा या पलाश हमारा अपना या अपना कहने योग्य नहीं है।"

"एवमेव खो, भिक्खवे, रूपं न तुम्हाकं, तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। वेदना, न तुम्हाकं, तं पजहथ। सा वो पहीना हिताय सुखाय भविस्सति। सञ्ञा न तुम्हाकं...सङ्खारा न तुम्हाकं...विञ्ञाणं न तुम्हाकं, तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सती" ति॥

●

३४. दुतियनतुम्हाकसुत्तं

३७. सावत्थिनिदानं। "यं, भिक्खवे, न तुम्हाकं, तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। किञ्च, भिक्खवे, न तुम्हाकं? रूपं, भिक्खवे, न तुम्हाकं, तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। वेदना न तुम्हाकं...सञ्ञा न तुम्हाकं...सङ्खारा न तुम्हाकं...विञ्ञाणं न तुम्हाकं, तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सति। यं, भिक्खवे, न तुम्हाकं तं पजहथ। तं वो पहीनं हिताय सुखाय भविस्सती" ति॥

●

३५. अञ्ञतरभिक्खुसुत्तं

३८. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; [R.35] उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो [B.29] सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु; यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो, अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं" ति।

"यं खो, भिक्खु, अनुसेति तेन सङ्खं गच्छति; यं नानुसेति न तेन सङ्खं गच्छती" ति।

"इसी तरह, भिक्षुओ! रूप तुम्हारा नहीं है...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान तुम्हारा नहीं है, इस का त्याग कर दो। इस का त्याग तुम्हारे लिये हितकर एवं सुखकर ही होगा॥"

●

३४. द्वितीय नयुष्माकंसूत्र : : जो तुम्हारा नहीं है उसका त्याग

३७. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! यहाँ जो तुम्हारा नहीं है उस का परित्याग कर दो। यह त्याग ही तुम्हारे लिये हितकर एवं सुखकर होगा। ...पूर्वसूत्रवत्...। *(केवल पिछले सूत्र में वर्णित जेतवन का दृष्टान्त यहाँ न पढें।)*

●

३५. अन्यतर भिक्षुसूत्र : : अनुशय के अनुसार समझा जाना

३८. ...**श्रावस्ती में** ही...। तब कोई भिक्षु जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आया। आ कर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस ने भगवान् से यों निवेदन किया—"अच्छा हो, भन्ते! कि आप मुझे ऐसा कुछ संक्षेप में धर्मोपदेश करें, जिसे मैं अपने मन में भली भाँति बैठा कर एकाकी, सावधान हो कर एकान्त में विचरण करता हुआ उस के आधार पर इस धर्म साधना में सोत्साह लग सकूँ।"

"अञ्ञातं, भगवा; अञ्ञातं, सुगता" ति। "यथा कथं पन त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासी" ति?

"रूपं चे, भन्ते, अनुसेति तेन सङ्खं गच्छति। वेदनं चे अनुसेति तेन सङ्खं गच्छति। [N.269] सञ्ञं चे अनुसेति तेन सङ्खं गच्छति। सङ्खारे चे अनुसेति तेन सङ्खं गच्छति। विञ्ञाणं चे अनुसेति तेन सङ्खं गच्छति। रूपं चे, भन्ते, नानुसेति न तेन सङ्खं गच्छति। वेदनं चे...सञ्ञं चे...सङ्खारे चे...विञ्ञाणं चे नानुसेति न तेन सङ्खं गच्छति। इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी" ति।

"साधु साधु, भिक्खु! साधु खो त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासि। रूपं चे, भिक्खु, अनुसेति तेन सङ्खं गच्छति। वेदनं चे...सञ्ञं चे. .सङ्खारे चे...विञ्ञाणं चे अनुसेति तेन सङ्खं गच्छति। रूपं चे, भिक्खु, नानुसेति न तेन सङ्खं गच्छति। वेदनं चे...सञ्ञं चे...सङ्खारे चे...विञ्ञाणं चे नानुसेति न तेन सङ्खं गच्छति। इमस्स खो, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन, भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो" ति।

(भगवान् बोले—) "भिक्षु! भिक्षु (साधक) के चित्त का जिधर प्रवृत्ति (झुकाव) होता है वह (साधक) वैसा ही कहलाता है। जिधर उस के चित्त का झुकाव नहीं रहता तो वह वैसा नहीं कहलाता।"

(भिक्षु—) "मैं समझ गया, भन्ते! आप के उपदेश का सार समझ गया, सुगत!"

(भगवान्—) "तुम मेरे इस संक्षिप्त कथन का क्या तात्पर्य समझे?"

(भिक्षु—) "किसी साधक के चित्त का, भन्ते! रूप की ओर होगा तो वह रूपासक्त कहलायगा। किसी के चित्त का वेदना के प्रति...संज्ञा के प्रति...संस्कारों के प्रति...विज्ञान के प्रति झुकाव होगा तो वह विज्ञानासक्त कहलायगा। इसी प्रकार, भन्ते! जिस के चित्त का झुकाव रूप के प्रति नहीं होगा तो वह रूपासक्त नहीं कहला सकता। जिसके चित्त का झुकाव वेदना के प्रति...पूर्ववत्...संज्ञा के प्रति...संस्कारों के प्रति...विज्ञान के प्रति न होगा तो वह विज्ञानासक्त कथमपि नहीं कहलायगा। भन्ते! मैं आप के इस संक्षिप्त धर्मोपदेश का यही तात्पर्य समझ पाया हूँ।"

(भगवान्—) "साधु, भिक्षु! साधु,! तुमने मेरी उक्त संक्षिप्त देशना का बहुत उचित अर्थ समझा है। मेरे कथन का तात्पर्य भी यही था कि भिक्षु! यदि किसी का चित्त रूप की तरफ झुका हुआ है तो वह रूपासक्त कहलायगा।...पूर्ववत्...वेदना के प्रति...संज्ञा के प्रति...संस्कारों के प्रति...विज्ञान के प्रति जिसका चित्त नहीं झुका हुआ है वह विज्ञानासक्त नहीं कहलायगा। भिक्षु! मेरे कथन का यही तात्पर्य समझना चाहिये।"

अथ खो सो भिक्खु भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना [R.36] भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

अथ खो सो भिक्खु एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया'' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पन सो भिक्खु अरहतं अहोसी ति॥ •

३६. दुतियअञ्ञतरभिक्खुसुत्तं

३९. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन [B.30] धम्मं देसेतु यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं'' ति।

''यं खो, भिक्खु, अनुसेति तं अनुमीयति; यं अनुमीयति तेन सङ्खं गच्छति; यं नानुसेति न तं अनुमीयति; यं नानुमीयति न तेन सङ्खं गच्छती'' ति।

वह भिक्षु भगवान् के द्वारा उपदिष्ट उन धर्मवचनों का अभिनन्दन, अनुमोदन करता हुआ, आसन से उठ कर, भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा करता हुआ चला गया।

तब वह भिक्षु एकाकी, एकान्तचारी, सावधान, इन्द्रियों से उत्साहसम्पन्न रहता हुआ शीघ्र ही—जिस प्रयोजनसिद्धि के लिये सद्गृहस्थ जन (कुलपुत्र) भली भाँति घर से बेघर हो कर प्रव्रजित होते हैं उस अद्वितीय (अनुपम)—धर्मसाधना की अन्तिम सीमा इसी जन्म में प्राप्त कर, उस का साक्षात्कार कर, उपसम्पन्न हो कर साधनारत हो गया। अन्त में उस धर्मसाधना के प्रभाव से निश्चय हो गया—'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी है, मेरी धर्मसाधना भी पूर्ण हो चुकी है, मेरे सभी करणीय कृत्य भी पूर्ण हो चुके, अब मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है।' यों वह साधारण भिक्षु एक दिन अर्हत्त्व को प्राप्त हो गया॥ •

३६. द्वितीय अन्यतर भिक्षुसूत्र : :व्यक्ति का अनुशय के अनुसार अनुमान

३९. ...**श्रावस्ती में** ही...। तब कोई दूसरा भिक्षु...पूर्ववत्...भगवान् से यों निवेदन करने लगा—''अच्छा होगा, भन्ते! कि आप मुझे संक्षेप में ही ऐसा कुछ धर्मोपदेश करें कि मैं उसे मन में धारण कर उस के आश्रय से एकान्त में जा कर धर्मसाधना में सोत्साह मन लगा सकूँ।''

''भिक्षु! साधक का चित्त जिधर झुका रहता है उसी से उस के व्यक्तित्त्व का अनुमान लगाया जाता है तथा उस को वैसा ही समझा जाता है। जिसका चित्त किसी ओर

[N.270] ''अञ्ञातं, भगवा; अञ्ञातं, सुगता'' ति। ''यथा कथं पन त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासी'' ति?

''रूपं चे, भन्ते, अनुसेति तं अनुमीयति; यं अनुमीयति तेन सङ्खं गच्छति। वेदनं चे अनुसेति...सञ्ञं चे अनुसेति...सङ्खारे चे अनुसेति...विञ्ञाणं चे अनुसेति तं अनुमीयति; यं अनुमीयति तेन सङ्खं गच्छति। रूपं चे, भन्ते, नानुसेति न तं अनुमीयति; यं नानुमीयति न तेन सङ्खं गच्छति। वेदनं चे नानुसेति...सञ्ञं चे नानुसेति...सङ्खारे चे नानुसेति...विञ्ञाणं चे नानुसेति न तं अनुमीयति। यं नानुमीयति न तेन सङ्खं गच्छति। [R.37] इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी'' ति।

''साधु साधु, भिक्खु! साधु खो त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासि। रूपं चे, भिक्खु, अनुसेति तं अनुमीयति। यं अनुमीयति तेन सङ्खं गच्छति। वेदनं चे, भिक्खु...सञ्ञं चे, भिक्खु...सङ्खारे चे, भिक्खु...विञ्ञाणं चे, भिक्खु, अनुसेति तं अनुमीयति। यं अनुमीयति तेन सङ्खं गच्छति। रूपं चे, भिक्खु नानुसेति न तं अनुमीयति, यं नानुमीयति न तेन सङ्खं गच्छति। वेदनं चे नानुसेति...सञ्ञं चे नानुसेति...सङ्खारे चे नानुसेति...विञ्ञाणं चे नानुसेति न तं अनुमीयति। यं नानुमीयति न तेन सङ्खं गच्छति। इमस्स खो, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो'' ति। अञ्ञतरो च पन सो भिक्खु अरहतं अहोसी ति॥ •

नहीं रहता उस के विषय में कोई वैसा अनुमान भी नहीं लगाता, न उस के प्रति वैसे विचार ही बनाता है।''

(यह सुनकर वह भिक्षु बोला—) ''ठीक है, भन्ते! आपने जो यह कहा मैं उस का तात्पर्य समझ गया।''

(भगवान् ने पूछा—) ''मेरे कथन का तुम क्या तात्पर्य समझे, भिक्षु?''

(भिक्षु—) ''भन्ते! जिस का रूप की ओर झुकाव रहता है लोग उस के विषय में उस की रूपानुरागिता का अनुमान लगा लेते हैं तथा उस को वैसा ही समझने लगते हैं। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान की ओर जिसका झुकाव रहता है...पूर्ववत्...। भन्ते! मैंने आप के उक्त संक्षिप्त कथन का यही भाव समझा है।''

''ठीक है, भिक्षु! ठीक है! तुमने मेरे कथन का उचित अर्थ ही समझा है। रूप की ओर चित्त झुकाने वाले को...पूर्ववत्...। भिक्षु! मेरे कथन का यही भाव था। तुमने ठीक ही समझा है।''

वह भिक्षु कुछ समय साधनारत रह कर ही अर्हत्त्व प्राप्त कर गया॥ •

३७. आनन्दसुत्तं

४०. सावत्थिनिदानं। अथ खो...पे०...एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं [B.31] आनन्दं भगवा एतदवोच—

"सचे तं, आनन्द, एवं पुच्छेय्युं—'कतमेसं, आवुसो आनन्द, धम्मानं उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायती' ति। एवं पुट्ठो त्वं, आनन्द, किन्ति ब्याकरेय्यासी" ति?

"सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं—'कतमेसं, आवुसो आनन्द, धम्मानं [R.38] उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायती' ति? एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं—'रूपस्स खो, आवुसो, उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायति। वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारानं...विञ्ञाणस्स [N.271] उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायति। इमेसं खो, आवुसो, धम्मानं उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायती' ति। एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं" ति।

"साधु साधु, आनन्द! रूपस्स खो, आनन्द, उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायति। वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारानं...विञ्ञाणस्स उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायति। इमेसं खो, आनन्द, धम्मानं उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायती ति। एवं पुट्ठो त्वं, आनन्द, एवं ब्याकरेय्यासी" ति। ●

---

३७. प्रथम आनन्दसूत्र : : धर्म का उत्पाद, नाश एवं अन्यथाभाव

४०. ...**श्रावस्ती में** ही...। तब...पूर्ववत्...भगवान् आनन्द से यों बोले—"आनन्द! यदि तुम से कुछ लोग यह पूछें—'आयुष्मन् आनन्द! किन धर्मों का उत्पाद, किन धर्मों का विनाश एवं किन धर्मों का उन के स्थिर रहने पर उन का अन्यथाभाव (विपरिणाम) जाना जाता है?'—ऐसा पूछे जाने पर तुम इस प्रश्न का क्या उत्तर दोगे?"

(आनन्द—) "भन्ते! मुझ से कोई यह पूछे—...पूर्ववत्...मैं इस का यह उत्तर दूँगा—'आयुष्मानो! रूप (धर्म) का उत्पाद...विनाश...एवं विपरिणाम जाना जाता है। वेदना का...संज्ञा का...संस्कारों का...विज्ञान का...पूर्ववत्...विपरिणाम जाना जाता है। उक्त प्रश्न का मैं यह उत्तर दूँगा।"

"ठीक है, आनन्द! ठीक है! इस प्रश्न का यही उचित उत्तर होता है कि रूप का उत्पाद ...नाश...एवं विपरिणाम जाना जाता है। वेदना का...संज्ञा का...संस्कारों का...विज्ञान

३८. दुतियआनन्दसुत्तं

४१. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं भगवा एतदवोच—

"सचे तं, आनन्द, एवं पुच्छेय्युं—'कतमेसं, आवुसो आनन्द, धम्मानं उप्पादो पञ्ञायित्थ, वयो पञ्ञायित्थ, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायित्थ? कतमेसं धम्मानं उप्पादो पञ्ञायिस्सति, वयो पञ्ञायिस्सति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायिस्सति? कतमेसं धम्मानं उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायती' ति? एवं पुट्ठो त्वं, आनन्द, किन्ति ब्याकरेय्यासी" ति?

"सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं—'कतमेसं, आवुसो आनन्द, धम्मानं उप्पादो [B.32] पञ्ञायित्थ, वयो पञ्ञायित्थ, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायित्थ? कतमेसं धम्मानं [R.39] उप्पादो पञ्ञायिस्सति, वयो पञ्ञायिस्सति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायिस्सति? कतमेसं धम्मानं उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायती' ति? एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं—'यं खो, आवुसो, रूपं अतीतं निरुद्धं विपरिणतं तस्स उप्पादो पञ्ञायित्थ, वयो पञ्ञायित्थ, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायित्थ। या वेदना अतीता निरुद्धा विपरिणता तस्सा उप्पादो पञ्ञायित्थ, वयो पञ्ञायित्थ, ठिताय [N.272] अञ्ञथत्तं पञ्ञायित्थ। या सञ्ञा...ये सङ्खारा अतीता निरुद्धा विपरिणता तेसं उप्पादो पञ्ञायित्थ, वयो पञ्ञायित्थ, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायित्थ। यं विञ्ञाणं अतीतं निरुद्धं विपरिणतं तस्स उप्पादो पञ्ञायित्थ, वयो पञ्ञायित्थ, ठितस्स अञ्ञथत्तं

का उत्पाद ...नाश...एवं...विपरिणाम जाना जाता है। उक्त प्रश्न किये जाने पर यही उत्तर दिया जाना चाहिये। अत: तुमने उचित उत्तर ही दिया॥ •

३८. द्वितीय आनन्दसूत्र : **:धर्मों का उत्पाद, विनाश एवं विपरिणाम**

४१. ...**श्रावस्ती में** ही...। तब...एक तरफ बैठे आनन्द से भगवान् यों बोले— "यदि, आनन्द! तुम से कोई यह प्रश्न करे—'आयुष्मान् आनन्द! किन धर्मों का उत्पाद जाना गया, किन का विनाश तथा किन स्थित धर्मों का विपरिणाम जाना गया? या किन धर्मों का उत्पाद, विनाश एवं विपरिणाम जाना जायगा?' तो, आनन्द! इस प्रश्न का तुम क्या उत्तर दोगे?"

(आनन्द—) "भन्ते! मुझ से पूछे गये...पूर्ववत्...प्रश्न का मैं यह उत्तर दूँगा— 'आयुष्मानो! जो भी अतीतकालिक रूप निरुद्ध हो चुका है या अन्यथात्व को प्राप्त हो चुका है उसी का उत्पाद जाना गया, विनाश जाना गया या अन्यथात्व जाना गया'। जो अतीतकालिक वेदना...संज्ञा... संस्कार...विज्ञान निरुद्ध हो चुका है...अन्यथात्व जाना

पञ्ञायित्थ। इमेसं खो, आवुसो, धम्मानं उप्पादो पञ्ञायित्थ, वयो पञ्ञायित्थ, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायित्थ।

'यं खो, आवुसो, रूपं अजातं अपातुभूतं तस्स उप्पादो पञ्ञायिस्सति, वयो पञ्ञायिस्सति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायिस्सति। या वेदना अजाता अपातुभूता तस्सा उप्पादो पञ्ञायिस्सति, वयो पञ्ञायिस्सति, ठिताय अञ्ञथत्तं पञ्ञायिस्सति। या सञ्ञा...पे०...ये सङ्खारा अजाता अपातुभूता तेसं उप्पादो पञ्ञायिस्सति, वयो पञ्ञायिस्सति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायिस्सति। यं विञ्ञाणं अजातं अपातुभूतं तस्स उप्पादो पञ्ञायिस्सति, वयो पञ्ञायिस्सति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायिस्सति। इमेसं खो, आवुसो, धम्मानं उप्पादो पञ्ञायिस्सति, वयो पञ्ञायिस्सति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायिस्सति।

'यं खो, आवुसो, रूपं जातं पातुभूतं तस्स उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायति। या वेदना जाता पातुभूता...पे०...या सञ्ञा...ये सङ्खारा जाता पातुभूता तेसं उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायति। यं विञ्ञाणं जातं पातुभूतं तस्स उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायति। इमेसं खो, आवुसो, धम्मानं उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायती' ति। एवं पुट्ठोहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं''' ति।

"साधु, साधु, आनन्द! यं खो, आनन्द, रूपं अतीतं निरुद्धं विपरिणतं [B.33] तस्स उप्पादो पञ्ञायित्थ, वयो पञ्ञायित्थ, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायित्थ। [R.40] या वेदना...या सञ्ञा...ये सङ्खारा...विञ्ञाणं अतीतं निरुद्धं विपरिणतं तस्स उप्पादो पञ्ञायित्थ, वयो पञ्ञायित्थ, ठितस्स 'अञ्ञथत्तं पञ्ञायित्थ। इमेसं खो, आनन्द, धम्मानं उप्पादो पञ्ञायित्थ, वयो पञ्ञायित्थ, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायित्थ।

'यं खो, आनन्द, रूपं अजातं अपातुभूतं तस्स उप्पादो पञ्ञायिस्सति, [N.273] वयो पञ्ञायिस्सति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायिस्सति। या वेदना...या सञ्ञा...ये सङ्खारा...यं विञ्ञाणं अजातं अपातुभूतं तस्स उप्पादो पञ्ञायिस्सति, वयो

गया, विनाश जाना गया या अन्यथात्व जाना गया।" तथा, आयुष्मानो! जो रूपधर्म अजात है, अप्रादुर्भूत है उस का उत्पाद नाश एवं अन्यथात्व जाना जायगा...। जो वेदना...पूर्ववत्...। तथा, आयुष्मानो! जो रूप धर्म उत्पन्न एवं प्रादुर्भूत हो चुका है उस का उत्पाद, विनाश एवं अन्यथात्व जाना जाता है। जो वेदना...पूर्ववत्...। भन्ते! किसी के द्वारा मुझ से उक्त प्रश्न किये जाने पर मैं उस का यही विस्तृत उत्तर दूँगा।"

पञ्ञायिस्सति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायिस्सति। इमेसं खो, आनन्द, धम्मानं उप्पादो पञ्ञायिस्सति, वयो पञ्ञायिस्सति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायिस्सति।

''यं खो, आनन्द, रूपं जातं पातुभूतं तस्स उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायति। या वेदना जाता पातुभूता...या सञ्ञा...ये सङ्खारा...यं विञ्ञाणं जातं पातुभूतं तस्स उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायति। इमेसं खो, आनन्द, धम्मानं उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायती' ति। एवं पुट्ठो त्वं, आनन्द, एवं ब्याकरेय्यासी'' ति॥ •

३९. अनुधम्मसुत्तं

४२. सावत्थिनिदानं। ''धम्मानुधम्मप्पटिपन्नस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो अयमनुधम्मो होति यं रूपे निब्बिदाबहुलो विहरेय्य, वेदनाय निब्बिदाबहुलो विहरेय्य, सञ्ञाय निब्बिदाबहुलो विहरेय्य, सङ्खारेसु निब्बिदाबहुलो विहरेय्य, विञ्ञाणे निब्बिदाबहुलो विहरेय्य। यो रूपे निब्बिदाबहुलो विहरन्तो, वेदनाय...सञ्ञाय... सङ्खारेसु निब्बिदाबहुलो विहरन्तो, विञ्ञाणे निब्बिदाबहुलो विहरन्तो रूपं परिजानाति, वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं परिजानाति, सो रूपं परिजानं वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे... विञ्ञाणं परिजानं परिमुच्चति रूपम्हा, परिमुच्चति वेदनाय, परिमुच्चति सञ्ञाय, [B.34, R.41] परिमुच्चति सङ्खारेहि, परिमुच्चति विञ्ञाणम्हा, परिमुच्चति जातिया जरामरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, परिमुच्चति दुक्खस्मा ति वदामी'' ति॥ •

(भगवान्—) ठीक है, आनन्द! ठीक है! उक्त प्रश्न के उत्तर में...पूर्ववत्...तुम्हारा यह कहना पूर्णत: यथार्थ है। *(पिछले दोनों पैराग्राफों का यहाँ भी विस्तार कर लें।)* •

३९. अनुधर्मसूत्र : : **वैराग्यपूर्वक साधना**

४२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! जो साधक धर्मानुधर्म से युक्त हो कर साधना करना चाहता है उस के लिये यही धर्मोचित है कि वह रूप में वैराग्य की भावना करता हुआ साधना करे; वेदना में...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान में वैराग्य की भावना करता हुआ साधना करे। जो साधक वैराग्य की भावना के साथ रूप पर विचार करता है, वेदना पर...संज्ञा पर...संस्कारों पर...विज्ञान पर विचार करता है वह उस विज्ञान से छुटकारा पा कर मुक्त हो जाता है, जाति एवं जरामरण से, शोक से, परिदेव से, दु:ख से, दौर्मनस्य से, उपायास से छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है। इस तरह वह दु:ख से परिमुक्त हो जाता है—मैं ऐसा मानता हूँ॥ •

४०. दुतियअनुधम्मसुत्तं

४३. सावत्थिनिदानं। ''धम्मानुधम्मप्पटिपन्नस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो अयमनुधम्मो होति यं रूपे अनिच्चानुपस्सी विहरेय्य...पे०...परिमुच्चति दुक्खस्मा ति वदामी'' ति॥ ●

४१. ततियअनुधम्मसुत्तं

४४. सावत्थिनिदानं। ''धम्मानुधम्मप्पटिपन्नस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो [N.274] अयमनुधम्मो होति यं रूपे दुक्खानुपस्सी विहरेय्य...पे०...परिमुच्चति दुक्खस्मा ति वदामी'' ति॥ ●

४२. चतुत्थअनुधम्मसुत्तं

४५. सावत्थिनिदानं। ''धम्मानुधम्मप्पटिपन्नस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो अयमनुधम्मो होति यं रूपे अनत्तानुपस्सी विहरेय्य, वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु...विञ्ञाणे अनत्तानुपस्सी विहरेय्य। यो रूपे अनत्तानुपस्सी विहरन्तो...पे०...रूपं परिजानाति, वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं परिजानाति, सो रूपं परिजानं वेदनं...सञ्ञं... सङ्खारे...विञ्ञाणं परिजानं परिमुच्चति रूपम्हा, परिमुच्चति वेदनाय, परिमुच्चति सञ्ञाय, परिमुच्चति सङ्खारेहि, परिमुच्चति विञ्ञाणम्हा, परिमुच्चति जातिया जरामरणेन

---

४०. द्वितीय अनुधर्मसूत्र : : अनित्यानुपश्यनापूर्वक साधना

४३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! जो साधक धर्मानुधर्मयुक्त हो कर रूप में अनित्यानु-पश्यना की भावना के साथ साधना करता है, वेदना में...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान में अनित्यानुपश्यना की भावना के साथ साधना करता है, 'वह दुःख से परिमुक्त हो गया'—ऐसा मैं मानता हूँ॥ ●

४१. तृतीय अनुधर्मसूत्र : : दुःखानुपश्यनापूर्वक साधना

४४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! जो साधक धर्मानुधर्मयुक्त हो कर रूप में दुःखा-नुपश्यना की भावना के साथ साधना करता है..., 'वह दुःख से सर्वथा परिमुक्त हो जाता है'—ऐसा मैं मानता हूँ''॥ ●

४२. चतुर्थ अनुधर्मसूत्र : : अनात्मानुपश्यनापूर्वक साधना

४५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! जो साधक धर्मानुधर्मयुक्त हो कर रूप में अनात्मानुपश्यना की भावना करे, वेदना में...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान में अनात्मानुपश्यना की भावना करता है। ऐसा करता हुआ वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार को, विज्ञान को यथार्थतः जान जाता है तथा उस से मुक्त हो जाता है। इस तरह वह जाति, जरामरण,

सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, परिमुच्चति दुक्खस्मा ति वदामी''
ति ॥

नतुम्हाकवग्गो चतुत्थो ॥

तस्सुद्दानं

[R.42] नतुम्हाकेन द्वे वुत्ता, भिक्खूहि अपरे दुवे।
आनन्देन च द्वे वुत्ता, अनुधम्मेहि द्वे दुका ति ॥

शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास से मुक्त होता हुआ दुःख से सर्वथा परिमुक्त हो जाता है—ऐसा मैं मानता हूँ'' ॥

नयुष्माकं वर्ग चतुर्थ सम्पन्न ॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची

इस वर्ग में ये सूत्र व्याख्यात हुए हैं—१. प्रथम नयुष्माकंसूत्र, २. द्वितीय नयुष्माकंसूत्र, ३. प्रथम अन्यतर भिक्षुसूत्र, ४. द्वितीय अन्यतर भिक्षुसूत्र, ५. प्रथम आनन्दसूत्र, ६. द्वितीय आनन्दसूत्र, ७. प्रथम अनुधर्मसूत्र, ८. द्वितीय अनुधर्मसूत्र, ९. तृतीय अनुधर्मसूत्र एवं १०. चतुर्थ अनुधर्मसूत्र ॥

५. अत्तदीपवग्गो पञ्चमो

४३. अत्तदीपसुत्तं

४६. सावत्थिनिदानं। "अत्तदीपा, भिक्खवे, विहरथ अत्तसरणा अनञ्ञ- [B.35] सरणा, धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्ञसरणा। अत्तदीपानं, भिक्खवे, विहरतं अत्तसरणानं अनञ्ञसरणानं, धम्मदीपानं धम्मसरणानं अनञ्ञसरणानं योनि उपपरिक्खितब्बा। किंजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा किंपहोतिका ति?

"किंजातिका च, भिक्खवे, सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा किंपहोतिका? इध, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो [N.275] सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं। तस्स तं रूपं विपरिणमति अञ्ञथा च होति। तस्स रूपविपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा। वेदनं अत्ततो समनुपस्सति वेदनावन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा वेदनं, वेदनाय वा अत्तानं। तस्स सा वेदना विपरिणमति अञ्ञथा च होति। तस्स वेदनाविपरिणमञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा। सञ्ञं अत्ततो समनुपस्सति...सङ्खारे अत्ततो समनुपस्सति...विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, विञ्ञाणवन्तं वा [R.43] अत्तानं; अत्तनि

---

५. आत्मद्वीपवर्ग

१. आत्मद्वीपसूत्र : : अपना आधार स्वयं होना

४६. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! तुम अपना आधार स्वयं बनो, अपना शरणस्थल स्वयं बनो, किसी दूसरे की शरण में जाने का प्रयास न करो। या फिर धर्म ही तुम्हारा आधार है, धर्म ही तुम्हारा शरणस्थल है, इस के अतिरिक्त कोई दूसरा तुम्हारे लिये शरणस्थल नहीं है। भिक्षुओ! तुम लोग इस तरह आत्मद्वीप, आत्मशरण, धर्मद्वीप एवं धर्मशरण होकर साधना करते हुए इस बात की परीक्षा में तत्पर हो जाओ कि शोक, परिदेव, दु:ख, दौर्मनस्य एवं उपायास (पश्चात्ताप) का जाति एवं प्रभव (=जन्मस्थल) क्या है?

"भिक्षुओ! इन शोक, परिदेव आदि की जाति या प्रभवस्थल क्या है ? यहाँ, भिक्षुओ! कोई अज्ञ पृथग्जन...पूर्ववत्...सद्धर्म की साधना न करने वाला रूप को अपना समझता है, या अपने में रूप को समझता है, या अपने को रूपवान् समझता है, या रूप में अपने को समझता है; उस का वह रूप, समय आने पर विपरिणत तथा अन्यथा हो जाता है। उस के विपरिणत तथा अन्यथा होने से उस अज्ञ के चित्त में शोक, परिदेवादि

वा विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। तस्स तं विञ्ञाणं विपरिणमति, अञ्ञथा च होति। तस्स तं रूपं विपरिणमति अञ्ञथा च होति। तस्स विञ्ञाणविपरिणाम-ञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा।

"रूपस्स त्वेव, भिक्खवे, अनिच्चतं विदित्वा विपरिणामं विरागं निरोधं पुब्बे चेव रूपं एतरहि च सब्बं रूपं अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो ये सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा ते पहीयन्ति। तेसं पहाना न परितस्सति, अपरितस्सं सुखं विहरति, सुखविहारी भिक्खु 'तदङ्गनिब्बुतो' ति वुच्चति। वेदनाय त्वेव, भिक्खवे, अनिच्चतं विदित्वा विपरिणामं विरागं निरोधं पुब्बे चेव वेदना [B.36] एतरहि च सब्बा वेदना अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो ये सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा ते पहीयन्ति। तेसं पहाना न परितस्सति, अपरितस्सं सुखं विहरति, सुखविहारी भिक्खु 'तदङ्गनिब्बुतो' ति वुच्चति। सञ्ञाय... सङ्खारानं त्वेव, भिक्खवे, अनिच्चतं विदित्वा विपरिणामं विरागं निरोधं पुब्बे चेव सङ्खारा एतरहि च सब्बे सङ्खारा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो ये सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा ते पहीयन्ति। तेसं पहाना न परितस्सति, अपरितस्सं सुखं विहरति, सुखविहारी भिक्खु 'तदङ्गनिब्बुतो' ति वुच्चति। विञ्ञाणस्स त्वेव, भिक्खवे, अनिच्चतं विदित्वा विपरिणामं विरागं निरोधं पुब्बे चेव विञ्ञाणं एतरहि च सब्बं विञ्ञाणं अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं ति एवमेतं [N.276] यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो ये सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा ते पहीयन्ति। तेसं पहाना न परितस्सति, अपरितस्सं सुखं विहरति, सुखविहारी भिक्खु 'तदङ्गनिब्बुतो' ति वुच्चती" ति॥ ●

उत्पन्न होते हैं। वेदना को... संज्ञा को... संस्कारों को... विज्ञान को अपना समझता है... पूर्ववत्... शोक, परिदेवादि उत्पन्न होते हैं।

"भिक्षुओ! इस तरह रूप की अनित्यता जान कर उसके अन्यथात्व, त्याग एवं निरोध को अतीत एवं वर्तमान रूपों में भी समझ कर समस्त दुःखों को इसी तरह से अनित्य, दुःखमय एवं विपरिणामधर्मा (विनाशी) समझता हुआ पुरुष उन के कारण अपने में उद्भूयमान शोक परिदेवादि से मुक्त हो जाता है। उन के प्रहाण से उस में उत्तेजना नहीं आती है। इस सात्त्विक उत्तेजना के न होने से वह सुख का अनुभव करता है। ऐसी सुखसाधना वाला भिक्षु 'उतने अङ्ग से मुक्त हुआ' समझा जाता है। वेदना में भी, भिक्षुओ! ... संज्ञा में भी... संस्कारों में भी, भिक्षुओ! ... विज्ञान में भी, भिक्षुओ! अनित्यता जान कर... पूर्ववत्... उसके समस्त शोक, परिदेवादि नष्ट हो जाते हैं। उन के नष्ट हो जाने

४४. पटिपदासुत्तं

४७. सावत्थिनिदानं। "सक्कायसमुदयगामिनिं च वो, भिक्खवे, पटिपदं [R.44] देसेस्सामि सक्कायनिरोधगामिनिं च पटिपदं। तं सुणाथ। कतमा च, भिक्खवे, सक्कायसमुदयगामिनी पटिपदा? इध, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो, सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं। वेदनं अत्ततो...सञ्ञं... सङ्खारे...विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, 'सक्कायसमुदयगामिनी पटिपदा, सक्कायसमुदयगामिनी पटिपदा' ति। इति हिदं, भिक्खवे, वुच्चति—'दुक्खसमुदय-गामिनी समनुपस्सना' ति। अयमेवेत्थ अत्थो।

"कतमा च, भिक्खवे, सक्कायनिरोधगामिनी पटिपदा? इध, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अरियानं दस्सावी अरियधम्मस्स कोविदो अरियधम्मे सुविनीतो, सप्पुरिसानं दस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स कोविदो सप्पुरिसधम्मे सुविनीतो न रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं वा अत्तानं; न अत्तनि वा रूपं, न रूपस्मिं वा अत्तानं। न वेदनं

से एतत्सम्बन्धी उत्तेजना भी निवृत्त हो जाती है। इस से वह सुखपूर्वक साधना करता हुआ धर्मसाधना में आगे बढता है। ऐसा सुखविहारी भिक्षु 'उतने अङ्ग से मुक्त हुआ' समझा जाता है"॥

•

४४. प्रतिपदासूत्र : :सत्काय की उत्पत्ति एवं निरोध का मार्ग

४७. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! अब मैं सत्कायसमुदयगामी मार्ग के दुष्परिणाम समझाऊँगा, साथ ही सत्कायनिरोधगामी मार्ग के गुणों का भी वर्णन करूँगा। उन्हें ध्यान-पूर्वक सुनो।

"भिक्षुओ! यह सत्काय के समुदय (उत्पत्ति) का मार्ग तथा उस के निरोध का मार्ग कौन सा है? भिक्षुओ! कोई अज्ञ, पृथग्जन...रूप को अपना समझ बैठता है, अपने को रूपवान् समझता है, अपने में रूप को समझता है या रूप में अपने को समझता है। वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को अपना समझता है...पूर्ववत्। भिक्षुओ! यह कहलाता है सत्कायसमुदयगामी मार्ग। यही मार्ग 'दुःखसमुदयगामी समनुपश्यना' कहलाता है। यही यहाँ निष्कर्ष समझना चाहिये।

"भिक्षुओ! सत्काय के निरोध का मार्ग क्या है? भिक्षुओ! कोई विद्वान् आर्यश्रावक... रूप को अपना नहीं समझता, अपने को रूपवान् नहीं समझता, अपने में रूप को नहीं

[B.37] अत्ततो...न सञ्ञं...न सङ्खारे...न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, न विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं; न अत्तनि वा विञ्ञाणं, न विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, 'सक्कायनिरोधगामिनी पटिपदा, सक्कायनिरोधगामिनी पटिपदा' ति। इति हिदं, भिक्खवे, वुच्चति—'दुक्खनिरोधगामिनी समनुपस्सना' ति। अयमेवेत्थ अत्थो'' ति। •

४५. अनिच्चसुत्तं

४८. सावत्थिनिदानं। ''रूपं, भिक्खवे, अनिच्चं। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं [R.45] तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं [N.277] सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो चित्तं विरज्जति विमुच्चति अनुपादाय आसवेहि। वेदना अनिच्चा...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनिच्चं। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो चित्तं विरज्जति विमुच्चति अनुपादाय आसवेहि। रूपधातुया चे, भिक्खवे, भिक्खुनो चित्तं विरत्तं विमुत्तं होति अनुपादाय आसवेहि, वेदनाधातुया...पे०...सञ्ञाधातुया...सङ्खार-धातुया...विञ्ञाणधातुया चे, भिक्खवे, भिक्खुनो चित्तं विरत्तं विमुत्तं होति अनुपादाय आसवेहि। विमुत्तत्ता ठितं। ठितत्ता सन्तुसितं। सन्तुसितत्ता न परितस्सति। अपरितस्सं पच्चत्तञ्ञेव परिनिब्बायति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति। •

समझता, रूप में अपने को नहीं समझता। वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को अपना नहीं समझता... पूर्ववत्...। भिक्षुओ! इसी को सत्कायनिरोधगामी मार्ग कहते हैं। तथा यही 'दुःखनिरोधगामिसमनुपश्यना' कहलाती है—यही हमारे कथन का निष्कर्ष समझना चाहिये॥ •

४५. प्रथम अनित्यतासूत्र : : अनित्यता

४८. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! रूप अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्मा है। जो अनात्मा है वह 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, या यह मेरा आत्मा नहीं है'—ऐसा यथार्थतः प्रज्ञा द्वारा समझ लेना चाहिये। इस तरह इसे यथार्थतः जान कर साधना करने वाले का चित्त विरक्त हो जाता है, मुक्त हो जाता है, चित्तविकारों का ग्रहण नहीं करता। वेदना अनित्य है...संज्ञा अनित्य है...संस्कार अनित्य है...विज्ञान अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है...पूर्ववत्...चित्तविकारों का ग्रहण नहीं करता। इस तरह उस के चित्त की चञ्चलता समाप्त हो जाती है। इस से साधक को सन्तोष मिलता है। सन्तोष से परित्रास का उदय नहीं होता। परित्रास के न होने से वह आध्यात्मिक

४६. दुतियअनिच्चसुत्तं

४९. सावत्थिनिदानं। "रूपं, भिक्खवे, अनिच्चं। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। वेदना अनिच्चा...सञ्ञा अनिच्चा...सङ्खारा अनिच्चा...विञ्ञाणं अनिच्चं। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं।

"एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो पुब्बन्तानुदिट्ठियो न होन्ति। [B.38] पुब्बन्तानुदिट्ठीनं असति, अपरन्तानुदिट्ठियो न होन्ति। अपरन्तानुदिट्ठीनं असति, [R.46] थामसो परामासो न होति। थामसे परामासे असति, रूपस्मिं...वेदना...सञ्ञाय... सङ्खारेसु...विञ्ञाणस्मिं चित्तं विरज्जति विमुच्चति अनुपादाय आसवेहि। विमुत्तत्ता ठितं। ठितत्ता सन्तुसितं, सन्तुसितत्ता न परितस्सति। अपरितस्सं पच्चत्तञ्ञेव परिनिब्बायति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति। ●

४७. समनुपस्सनासुत्तं

५०. सावत्थिनिदानं। "ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा [N.278] अनेकविहितं अत्तानं समनुपस्समाना समनुपस्सन्ति, सब्बेते पञ्चुपादानक्खन्धे

रूप से परिनिर्वृत (शान्त) हो जाता है। और अन्त में वह समझ जाता है—"मेरी जाति क्षीण हो चुकी है, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो चुकी है, मेरा कर्तव्य भी पूरा हो चुका, अब कोई कर्तव्य शेष नहीं है॥" ●

४६. द्वितीय अनित्यतासूत्र : : अनित्यता

४९. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! रूप अनित्य है, जो अनित्य है वह दुःख है... पूर्ववत्...यह मेरी आत्मा नहीं है—ऐसा भली भाँति प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये। यों, प्रज्ञापूर्वक जानते हुए साधक की पूर्वान्तानुदृष्टि (द्र.दी.नि., ब्र.जा.सु., पृ.) समाप्त हो जाती है। इस पूर्वान्तानुदृष्टि के क्षीण हो जाने पर, अपरान्तानुदृष्टि भी धीरे धीरे क्षीण होने लगती है। इस अपरान्तानुदृष्टियों के न रहने पर (विषयों के साथ) वेगवान् स्पर्श (=परामास) नहीं होता। इस परामास के न होने पर साधक का रूप में, वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में चित्त विरक्त होने लगता है। यों चित्त के विरक्त होने से वह विकारों से मुक्त हो जाता है। विकारमुक्त होने पर अचञ्चल (स्थिर) होता हुआ सन्तुष्ट रहता है। सन्तुष्ट रहने से उसे परित्रास नहीं होता। इस तरह, परित्रास के अभाव में वह आध्यात्मिक रूप से परिनिर्वृत हो जाता है। इस प्रकार वह समझ लेता है—'मेरी जातिपरम्परा क्षीण हो चुकी...पूर्ववत्...मेरा कोई करणीय अवशिष्ट नहीं रह गया॥" ●

समनुपस्सन्ति, एतेसं वा अञ्ञतरं। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो, सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं। वेदनं...सञ्ञं... सङ्खारे...विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं।

''इति अयं चेव समनुपस्सना 'अस्मी' ति चस्स अविगतं होति। 'अस्मी' ति खो पन, भिक्खवे, अविगते पञ्चन्नं इन्द्रियानं अवक्कन्ति होति—चक्खुन्द्रियस्स सोतिन्द्रयस्स घानिन्द्रियस्स जिव्हिन्द्रियस्स कायिन्द्रियस्स। अत्थि, भिक्खवे, मनो, अत्थि धम्मा, अत्थि अविज्जाधातु। अविज्जासम्फस्सजेन, भिक्खवे, वेदयितेन फुट्ठस्स अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स 'अस्मी' ति पिस्स होति; 'अयमहमस्मी' ति पिस्स होति; 'भविस्सं' ति पिस्स होति; 'न भविस्सं' ति पिस्स होति; 'रूपी भविस्सं' ति पिस्स होति; 'अरूपी भविस्सं' ति पिस्स होति; 'सञ्ञी भविस्सं' ति पिस्स होति; 'असञ्ञी भविस्सं' ति पिस्स होति; 'नेवसञ्ञीनासञ्ञी भविस्सं' ति पिस्स होति।

---

४७. समनुपश्यनासूत्र : : आत्मा की स्वीकृति से अस्मिता (अविद्या)

५०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! यहाँ जो भी कोई श्रमण या ब्राह्मण आत्मा को जितने प्रकारों से जानते समझते हैं, वे केवल इन पाँच (रूप आदि) उपादानस्कन्धों को ही जानते समझते हैं। या उन पाँचों में से किसी एक को। कौन से पाँच? यहाँ, भिक्षुओ! कोई अज्ञ, पृथग्जन...पूर्ववत्...रूप को अपना समझता है, या अपने को रूपवान् समझता है, अपने में रूप को समझता है, या फिर रूप में अपने को समझता है। वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को अपना समझता है...पूर्ववत्...विज्ञान में अपने को समझता है।

''इस तरह समझने से उस साधक के चित्त को 'अस्मि' नामक अविद्या आवृत कर लेती है। भिक्षुओ! इस तरह उस अविद्या से आवृत हो जाने पर इस में ये पाँचों इन्द्रियाँ भी सम्मिलित हो जाती हैं—१. चक्षुरिन्द्रिय, २. श्रोत्रेन्द्रिय, ३. घ्राणेन्द्रिय, ४. रसनेन्द्रिय एवं ५. तगिन्द्रिय। ऐसा होने पर, मन, धर्म (विषय) एवं अविद्या भी वहाँ आ पहुँचते हैं। भिक्षुओ! इस अविद्या के स्पर्श से उत्पन्न वेदना से उस अविद्वान् पृथग्जन को 'अस्मिता' होती है। तव उसे 'यह मैं हूँ'—ऐसा होता है, 'होऊँगा'—ऐसा भी होता है, 'नहीं होऊँगा'—ऐसा भी होता है। 'रूपवान् होऊँगा'...'अरूपवान् होऊँगा'...'संज्ञी होऊँगा'...'असंज्ञी होऊँगा'...'नैव संज्ञी न असंज्ञी भी होऊँगा'—ऐसा भी होता है।

"तिट्ठन्तेव खो, भिक्खवे, तत्थेव पञ्चिन्द्रियानि। अत्थेत्थ सुतवतो [B.39, R.47] अरियसावकस्स अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति। तस्स अविज्जाविरागा विज्जुप्पादा 'अस्मी' ति पिस्स न होति; 'अयमहमस्मी' ति पिस्स न होति; 'भविस्सं' ति...न भविस्सं ति...रूपी...अरूपी...सञ्ञी...असञ्ञी...नेवसञ्ञीनासञ्ञी भविस्सं ति पिस्स न होती" ति। •

४८. खन्धसुत्तं

५१. सावत्थिनिदानं। "पञ्च, भिक्खवे, खन्धे देसेस्सामि पञ्चुपादानक्खन्धे च। तं सुणाथ। कतमे च, भिक्खवे, पञ्चक्खन्धा? यं किञ्चि, भिक्खवे, रूपं अतीतानागत-पच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा [N.279] यं दूरे सन्तिके वा, अयं वुच्चति रूपक्खन्धो। या काचि वेदना...पे०...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिका वा सुखुमा वा...पे०...अयं वुच्चति सङ्खारक्खन्धो। यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, अयं वुच्चति विञ्ञाणक्खन्धो। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, पञ्चक्खन्धा।

"कतमे च, भिक्खवे, पञ्चुपादनक्खन्धा? यं किञ्चि, भिक्खवे, रूपं अतीता-नागतपच्चुप्पन्नं...यं दूरे सन्तिके वा, सासवं उपादानियं, अयं वुच्चति रूपुपादानक्खन्धो।

"इस के विपरीत, जब उस साधक की उक्त पाँचों इन्द्रियाँ अचञ्चल (स्थिर) हो जाती हैं तो उस विद्वान् आर्यश्रावक की वह अविद्या (अस्मिता) प्रहीण हो जाती है। अविद्या के प्रहीण होने से विद्या उत्पन्न हो जाती है। तव उसे 'मैं हूँ', 'मैं होऊँगा', ऐसा भी नहीं होता। 'रूपवान्' ...'अरूपवान्' ...'संज्ञी' ...'असंज्ञी' ...'न संज्ञी न असंज्ञी होऊँगा'—ऐसा भी नहीं होता"॥ •

४८. स्कन्धसूत्र : : पाँच स्कन्ध

५१. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें पाँच उपादानस्कन्धों के विषय में देशना करूँगा। उसे ध्यानपूर्वक सुनो। भिक्षुओ! ये पाँच स्कन्ध कौन कौन हैं? भिक्षुओ! भूत, भविष्य एवं वर्तमान का रूप, फिर भले ही वह आध्यात्मिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, दूर का हो या समीप का, हीन हो या प्रणीत, यह सब 'रूपस्कन्ध' कहलाता है। जो भी कोई वेदना...जो भी कोई संज्ञा...जो भी कोई संस्कार...जो भी कोई विज्ञान, फिर भले ही वह... पूर्ववत्...'विज्ञानस्कन्ध' कहलाता है। भिक्षुओ! ये होते हैं पाँच स्कन्ध।

"भिक्षुओ! एक दूसरे प्रकार से भी इन पाँच स्कन्धों की गणना की जा सकती है।

या काचि वेदना...पे०...या दूरे सन्तिके वा, सासवा उपादानिया, अयं वुच्चति वेदनुपादानक्खन्धो। या काचि सञ्ञा...पे०...या दूरे सन्तिके वा, सासवा उपादानिया, अयं वुच्चति सञ्ञुपादानक्खन्धो। ये केचि सङ्खारा...पे०...सासवा उपादानिया, अयं वुच्चति [R.48] सङ्खारुपादानक्खन्धो। यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं...पे०...यं दूरे सन्तिके वा, सासवं उपादानियं, अयं वुच्चति विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, पञ्चुपादानक्खन्धा'' ति।

●

४९. सोणसुत्तं

५२. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो सोणो गहपतिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं निसिन्नं खो सोणं [B.40] गहपतिपुत्तं भगवा एतदवोच—

''ये हि केचि, सोण, समणा वा ब्राह्मणा वा अनिच्चेन रूपेन दुक्खेन विपरिणामधम्मेन 'सेय्योहमस्मी' ति वा समनुपस्सन्ति; 'सदिसोहमस्मी' ति वा समनुपस्सन्ति; 'हीनोहमस्मी' ति वा समनुपस्सन्ति; किमञ्ञत्र यथाभूतस्स अदस्सना? अनिच्चाय वेदनाय दुक्खाय विपरिणामधम्माय 'सेय्योहमस्मी' ति समनुपस्सन्ति; 'सदिसोहमस्मी' ति वा समनुपस्सन्ति; 'हीनोहमस्मी' ति वा समनुपस्सन्ति; किमञ्ञत्र [N.280] यथाभूतस्स अदस्सना? अनिच्चाय सञ्ञाय .... अनिच्चेहि सङ्खारेहि दुक्खेहि

वह कैसे? भिक्षुओ! जो कुछ भी अतीत, अनागत एवं वर्तमान रूप है, फिर भले ही वह...पूर्ववत्...दूर हो या समीप, साश्रव (मलिन चित्त) एवं उपादानीय (आसक्तियुक्त)—यह कहलाता है रूपोपादान-स्कन्ध। जो कुछ भी अतीत अनागत एवं प्रत्युत्पन्न वेदना, फिर भले ही...पूर्ववत्...उपादानीय—यह कहलाता है वेदनोपादानस्कन्ध। जो कुछ भी...संज्ञा, फिर भले ही...पूर्ववत्...उपादानीय—यह कहलाता है—संज्ञोपादानस्कन्ध। जो कुछ भी...संस्कार...पूर्ववत्...यह कहलाता है—संस्कारोपादानस्कन्ध। जो कुछ भी...विज्ञान ...पूर्ववत्...यह कहलाता है—विज्ञानोपादानस्कन्ध। भिक्षुओ! यों भी पाँच उपादानस्कन्ध कहलाते हैं''॥

●

४९. प्रथम सोणसूत्र : : यथार्थ का ज्ञान

५२. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् **राजगृह** के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। तब गृहपतिपुत्र सोण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आया, तथा भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसको भगवान् ने यों पूछा—'सोण! जो भी कोई श्रमण या ब्राह्मण अनित्य, दुःखमय एवं विनाशशील रूप के कारण अपने को (अन्यों की अपेक्षा) बड़ा, समान या हीन समझते हैं, उन का ऐसा

विपरिणामधम्मेहि 'सेय्योहमस्मी' ति समनुपस्सन्ति; 'सदिसोहमस्मी' ति वा समनुपस्सन्ति; 'हीनोहमस्मी' ति वा समनुपस्सन्ति; किमञ्ञत्र यथाभूतस्स अदस्सना? अनिच्चेन विञ्ञाणेन दुक्खेन विपरिणामधम्मेन 'सेय्योहमस्मी' ति समनुपस्सन्ति; 'सदिसोहमस्मी' ति वा समनुपस्सन्ति; 'हीनोहमस्मी' ति वा समनुपस्सन्ति; किमञ्ञत्र यथाभूतस्स अदस्सना?

"ये च खो केचि, सोण, समणा वा ब्राह्मणा वा अनिच्चेन रूपेन दुक्खेन विपरिणामधम्मेन 'सेय्योहमस्मी' ति पि न समनुपस्सन्ति; 'सदिसोहमस्मी' ति [R.49] पि न समनुपस्सन्ति; 'हीनोहमस्मी' ति पि न समनुपस्सन्ति; किमञ्ञत्र यथाभूतस्स दस्सना? अनिच्चाय वेदनाय...अनिच्चाय सञ्ञाय...अनिच्चेहि सङ्खारेहि...अनिच्चेन विञ्ञाणेन दुक्खेन विपरिणामधम्मेन 'सेय्योहमस्मी' ति पि न समनुपस्सन्ति; 'सदिसोहमस्मी' ति पि न समनुपस्सन्ति; 'हीनोहमस्मी' ति पि न समनुपस्सन्ति; किमञ्ञत्र यथाभूतस्स दस्सना?

"तं किं मञ्ञसि, सोण, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

समझना यथार्थ के अज्ञान से अतिरिक्त अन्य क्या है? इसी तरह वेदना... संज्ञा... संस्कार...विज्ञान के कारण स्वयं को (अन्यों की अपेक्षा) श्रेष्ठ, समान या हीन समझते हैं उन का भी ऐसा समझना यथार्थ के अज्ञान से अतिरिक्त अन्य क्या है?

"तथा, सोण! जो श्रमण या ब्राह्मण अनित्य, दुःखमय एवं अनात्म रूप के कारण स्वयं को न किसी से श्रेष्ठ समझते हैं, न उस के समान, न उस से हीन समझते हैं, उन का ऐसा समझना उन के यथार्थ ज्ञान से अतिरिक्त और क्या है?

"तो क्या मानते हो, सोण! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"जो अनित्य है वह दुःखमय होगा या सुखमय?"

"दुःखमय, भन्ते!"

"तो क्या जो अनित्य, दुःखमय एवं विनाशी है उस के विषय में यह मानना उचित होगा कि 'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ', या 'यह मेरी आत्मा है'"?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

[N.281, B.41] "तस्मातिह, सोण, यं किञ्चि रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। या काचि [R.50] वेदना...या काचि सञ्ञा... ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं।

"एवं पस्सं, सोण, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि

"नहीं, भन्ते!"

"वेदना नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...।

"संज्ञा...संस्कार...विज्ञान नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य, भन्ते!"

"जो अनित्य है...पूर्ववत्...'यह मेरी आत्मा है?"

"नहीं, भन्ते!"

"इसलिये, सोण! अतीत अनागत एवं वर्तमान, आध्यात्मिक, बाह्य, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूरस्थ या निकटस्थ रूप को यथार्थतः देख लेना चाहिये कि न यह मेरा है, न यह मैं हूँ तथा न यह मेरी आत्मा है।...जो भी वेदना...जो भी संज्ञा...जो भी संस्कार...जो भी विज्ञान...उस को यथार्थतः देख लेना चाहिये कि न यह मेरा है, न यह मैं हूँ तथा न यह मेरी आत्मा है।

निब्बिन्दति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ ●

५०. दुतियसोणसुत्तं

५३. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो सोणो गहपतिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो सोणं गहपतिपुत्तं भगवा एतदवोच—

''ये हि केचि, सोण, समणा वा ब्राह्मणा वा रूपं नप्पजानन्ति, रूपसमुदयं नप्पजानन्ति, रूपनिरोधं नप्पजानन्ति, रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति; वेदनं नप्पजानन्ति, वेदनासमुदयं नप्पजानन्ति, वेदनानिरोधं नप्पजानन्ति, वेदनानिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति; सञ्ञं नप्पजानन्ति...पे०...सङ्खारे नप्पजानन्ति, सङ्खारसमुदयं नप्पजानन्ति, सङ्खारनिरोधं नप्पजानन्ति, सङ्खारनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति; विञ्ञाणं नप्पजानन्ति, विञ्ञाणसमुदयं नप्पजानन्ति, विञ्ञाणनिरोधं नप्पजानन्ति, विञ्ञाणनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानन्ति, न मे ते, सोण, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु वा समणसम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मणसम्मता, न च पन ते आयस्मन्तो [N.282]

''सोण! इस तरह चिन्तन मनन (समनुपश्यना) करने वाला विद्वान् आर्यश्रावक उक्त रूप में, वेदना में, संज्ञा में, विज्ञान में वैराग्य का अनुभव करता है, तथा इस वैराग्य के कारण आस्रवों से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर उस को 'मैं विमुक्त हो चुका हूँ'—ऐसा ज्ञान हो जाता है। और अन्त में उसे प्रज्ञा द्वारा स्पष्ट समझ में आ जाता है—'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो गयी, मेरे सभी कर्तव्य पूर्ण हो चुके, अब कोई कर्तव्य शेष नहीं है॥'' ●

५०. द्वितीय सोणसूत्र : : श्रमण एवं ब्राह्मण कौन?

५३. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृहस्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप महाविहार में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय, सोण गृहपतिपुत्र भगवान् के सम्मुख आया तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस से भगवान् ने यह कहा—

''सोण! यहाँ जो भी कोई श्रमण या ब्राह्मण रूप, रूपसमुदय, रूपनिरोध एवं रूपनिरोधगामी मार्ग को नहीं जानते; वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान निरोधगामी मार्ग को नहीं जानते, सोण! ऐसे श्रमण या ब्राह्मण, मेरी दृष्टि में, न श्रमणों में श्रमणोचित स्थान

सामञ्ञत्थं वा ब्रह्मञ्ञत्थं वा दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति।

[B.42, R.51] ''ये च ख़ो केचि, सोण, समणा वा ब्राह्मणा वा रूपं पजानन्ति, रूपसमुदयं पजानन्ति, रूपनिरोधं पजानन्ति, रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानन्ति; वेदनं पजानन्ति... पे०...सञ्ञं पजानन्ति...सङ्खारे पजानन्ति...विञ्ञाणं पजानन्ति, विञ्ञाणसमुदयं पजानन्ति, विञ्ञाणनिरोधं पजानन्ति, विञ्ञाणनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानन्ति, ते च खो मे, सोण, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु चेव समणसम्मता ब्राह्मणेसु च ब्राह्मण-सम्मता, ते च पनायस्मन्तो सामञ्ञत्थं च ब्रह्मञ्ञत्थं वा दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥ •

५१. नन्दिक्खयसुत्तं

५४. सावत्थिनिदानं।''अनिच्चञ्ञेव, भिक्खवे, भिक्खु रूपं अनिच्चं ति पस्सति सास्स होति सम्मादिट्ठि। सम्मा पस्सं निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो, रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं विमुत्तं सुविमुत्तं ति वुच्चति। अनिच्चञ्ञेव, भिक्खवे, भिक्खु वेदनं अनिच्चं ति पस्सति। सास्स होति सम्मादिट्ठि। सम्मा पस्सं निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो, रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं विमुत्तं सुविमुत्तं ति वुच्चति। अनिच्चञ्ञेव, भिक्खवे, भिक्खु सञ्ञं अनिच्चं ति पस्सति...पे०...

पाने योग्य, न ब्राह्मणों में ब्राह्मणोचित स्थान पाने योग्य हैं। इतना ही नहीं, वे इस जन्म में श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य प्राप्त करने के भी अधिकारी नहीं है।

(इस के विपरीत,) सोण! जो श्रमण या ब्राह्मण रूप को, रूपसमुदय को, रूपनिरोध को, रूपनिरोधगामी मार्ग को, वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को...विज्ञाननिरोधगामी मार्ग को प्रज्ञा द्वारा भली भाँति जानते हैं वे ही श्रमण ब्राह्मण श्रमणों में श्रमणोचित एवं ब्राह्मणों में ब्राह्मणोचित स्थान पाने के अधिकारी हैं; तथा वे इसी जन्म में साधना के द्वारा श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य को भी स्वयं जान कर साक्षात्कार कर उपसम्पन्न होते हुए साधना में सफलता भी प्राप्त कर लेते हैं॥'' •

५१. प्रथम नन्दिक्षयसूत्र : आनन्द (आसक्ति) का क्षय कैसे हो?

५४. ...**श्रावस्ती में ही**...।''भिक्षुओ! जो साधक भिक्षु अनित्य रूप को अनित्य के रूप में ही देखता (मानता) है ती यहीं उस की 'सम्यग्दृष्टि' है। इस प्रकार भली भाँति समीक्षण करता हुआ ही वह समय आने पर, इस संसार में इस रूप के प्रति विरक्त हो पाता है। आनन्द लेने के इच्छा (नन्दिराग) क्षीण हो जाने से उसके प्रति राग (आसक्ति) नष्ट हो जाता है तथा राग के क्षय से नन्दिराग का क्षीण होना अवश्यम्भावी है। तदनन्तर,

अनिच्चञ्ञेव, भिक्खवे, भिक्खु सङ्खारे अनिच्चा ति पस्सति। सास्स होति सम्मादिट्ठि। सम्मा पस्सं निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो, रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दि-रागक्खया चित्तं विमुत्तं सुविमुत्तं ति वुच्चति। अनिच्चञ्ञेव, भिक्खवे, भिक्खु विञ्ञाणं अनिच्चं ति पस्सति। सास्स होति सम्मादिट्ठि। सम्मा पस्सं निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो, रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं विमुत्तं सुविमुत्तं ति वुच्चती'' ति॥

५२. दुतियनन्दिक्खयसुत्तं

५५. सावत्थिनिदानं। ''रूपं, भिक्खवे, योनिसो मनसि करोथ, [N.283, R.52] रूपानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सथ। रूपं, भिक्खवे, भिक्खु योनिसो मनसि करोन्तो, रूपानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सन्तो रूपस्मिं निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो, रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं विमुत्तं सुविमुत्तं ति वुच्चति। वेदनं, भिक्खवे, योनिसो मनसि करोथ, वेदनानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सथ। वेदनं, [B.43] भिक्खवे, भिक्खु योनिसो मनसि करोन्तो, वेदनानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सन्तो वेदनाय निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो, रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं विमुत्तं सुविमुत्तं ति वुच्चति। सञ्ञं, भिक्खवे...सङ्खारे, भिक्खवे, योनिसो मनसि करोथ, सङ्खारानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सथ। सङ्खारे, भिक्खवे, भिक्खु योनिसो मनसि करोन्तो, सङ्खारानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सन्तो सङ्खारेसु निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो, रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं विमुत्तं सुविमुत्तं

इस नन्दिरागक्षय के प्रभाव से उस साधक का चित्त दोषों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। अनित्य वेदना को...अनित्य संज्ञा को...अनित्य संस्कारों को...अनित्य विज्ञान को अनित्य के रूप में ही देखता है तो यही उसकी 'सम्यग्दृष्टि' कहलाती है। आनन्द लेने की इच्छा के क्षीण हो जाने से उस के प्रति उस की आसक्ति नष्ट हो जाती है...पूर्ववत्...। तदनन्तर उस साधक का चित्त दोषों से सर्वथा मुक्त हो जाता है॥

५२. द्वितीय नन्दिक्षयसूत्र : : रूप का यथार्थतः दमन

५५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! रूप का यथार्थतः समीक्षण करो, उस की अनित्यता पर यथार्थतः विचार करो। इस प्रकार, इस रूप की अनित्यता का निरन्तर समीक्षण करने से, मन में चिन्तन करने से, रूप के प्रति साधक को वैराग्य होने लगता है। नन्दिक्षय से रागक्षय, तथा रागक्षय से नन्दिक्षय होता है। अन्त में, इस नन्दी एवं राग के क्षय के कारण उस साधक का चित्त आश्रवों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

''भिक्षुओ! वेदना का...संज्ञा का...संस्कारों का...विज्ञान का यथार्थतः समीक्षण

ति वुच्चति। विञ्ञाणं, भिक्खवे, योनिसो मनसि करोथ, विञ्ञाणानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सथ। विञ्ञाणं, भिक्खवे, भिक्खु योनिसो मनसि करोन्तो, विञ्ञाणानिच्चतं च यथाभूतं समनुपस्सन्तो विञ्ञाणस्मिं निब्बिन्दति। नन्दिक्खया रागक्खयो, रागक्खया नन्दिक्खयो। नन्दिरागक्खया चित्तं विमुत्तं सुविमुत्तं ति वुच्चती'' ति॥ •

अत्तदीपवग्गो पञ्चमो॥

तस्सुद्दानं

अत्तदीपा पटिपदा, द्वे च होन्ति अनिच्चता।
समनुपस्सना खन्धा, द्वे सोणा द्वे नन्दिक्खयेन चा ति॥

मूलपण्णासकं समत्तं॥

तस्स मूलपण्णासकस्स वग्गुद्दानं

[R.53] नकुलपिता अनिच्चो च, भारो नतुम्हाकेन च।
अत्तदीपेन पञ्ञासो, पठमो तेन पवुच्चती ति॥ •

करो, उस की अनित्यता पर सूक्ष्मता से विचार करो...पूर्ववत्...। इस तरह नन्दीरागक्षय से साधक का चित्त आश्रवों (विकारों) से छुटकारा पा जाता है, पूर्णतः (सर्वथा) मुक्त हो जाता है॥'' •

आत्मद्वीपवर्ग पञ्चम सम्पन्न॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची

इस आत्मद्वीपवर्ग में इन सूत्रों का व्याख्यान हुआ है; जैसे—१. आत्मद्वीपसूत्र, २. प्रतिपदासूत्र, ३. प्रथम अनित्यतासूत्र, ४. द्वितीय अनित्यतासूत्र, ५. समनुपश्यनासूत्र, ६. स्कन्धसूत्र, ७. प्रथम सोपानसूत्र, ८. द्वितीय सोपानसूत्र, ९. प्रथम नन्दिक्षयसूत्र, १०. द्वितीय नन्दिक्षयसूत्र। इस तरह इस वर्ग में ये दश सूत्र व्याख्यात हुए हैं॥ •

मूलपञ्चाशत्क सम्पन्न॥

इस मूल पञ्चाशत्क में व्याख्यात वर्गों की सूची

इस स्कन्धसंयुक्त के प्रथम मूल पञ्चाशत्क में इन पाँच वर्गों का व्याख्यान हुआ है; जैसे—१. नकुलपितृवर्ग, २. अनित्यवर्ग, ३. भारवर्ग, ४. नयुष्माकंवर्ग एवं ५. आत्मद्वीपवर्ग। इस तरह (इन पाँच वर्गों में बावन (५२) सूत्रों के समूह के रूप में) मूलपञ्चाशद्वर्ग व्याख्यात हुआ॥ •

मज्झिमपण्णासकं—

१. उपयवग्गो पठमो

५३. उपयसुत्तं

५६. सावत्थिनिदानं। "उपयो, भिक्खवे, अविमुत्तो अनुपयो विमुत्तो। [N.284] रूपुपयं वा, भिक्खवे, विञ्ञाणं तिट्ठमानं तिट्ठेय्य, रूपारम्मणं रूपप्पतिट्ठं नन्दूप- [B.44] सेचनं वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्य। सङ्खारुपयं वा, भिक्खवे, विञ्ञाणं तिट्ठमानं तिट्ठेय्य, सङ्खारारम्मणं सङ्खारप्पतिट्ठं नन्दूपसेचनं वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्य।

"यो, भिक्खवे, एवं वदेय्य—'अहमञ्ञत्र रूपा अञ्ञत्र वेदनाय अञ्ञत्र सञ्ञाय अञ्ञत्र सङ्खारेहि विञ्ञाणस्स आगतिं वा गतिं वा चुतिं वा उपपत्तिं वा वुद्धिं वा विरूळ्हिं वा वेपुल्लं वा पञ्ञापेस्सामी' ति, नेतं ठानं विज्जति।

"रूपधातुया चे, भिक्खवे, भिक्खुनो रागो पहीनो होति। रागस्स पहाना वोच्छिज्जतारम्मणं पतिट्ठा विञ्ञाणस्स न होति। वेदनाधातुया चे भिक्खवे...सञ्ञा-धातुया चे, भिक्खवे...सङ्खारधातुया चे भिक्खवे...विञ्ञाणधातुया चे, भिक्खवे, भिक्खुनो रागो पहीनो [R.54] होति। रागस्स पहाना वोच्छिज्जतारम्मणं पतिट्ठा

मध्यमपञ्चाशत्क—

१. उपयवर्ग

५३. उपयसूत्र : : अनासक्त ही विमुक्त होता है

५६. **श्रावस्ती में** उपदेश। "भिक्षुओ! आसक्ति (उपय) अविमुक्त पुरुष का लक्षण है, तथा अनासक्ति (अनुपय) विमुक्त पुरुष का। भिक्षुओ! रूप में आसक्त होने से विज्ञान बना रहता है। तब वह रूप पर आलम्बित, प्रतिष्ठित, तथा उस (रूप) से आनन्द उठाने वाला, उस से बढता हुआ फैलता रहता है। संस्कारों पर आलम्बित...पूर्ववत्...फैलता रहता है।

"भिक्षुओ! जो कोई ऐसा कहे—'मैं रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारों के विना ही विज्ञान का संसार में आना जाना, उत्पाद एवं विनाश, वृद्धि एवं विस्तार सिद्ध कर दूँगा'—तो यह सम्भव नहीं है।

"भिक्षुओ! यदि साधक भिक्षु का रूप में राग प्रहीण हो जाता है तो विज्ञान का आलम्बन एवं प्रतिष्ठा भी प्रहीण हो जाती है। वेदनाधातु में, संज्ञाधातु में...संस्कारधातुओं में...विज्ञानधातुओं में साधक भिक्षु का राग प्रहीण हो जाता है। इस राग के प्रहीण होने से नष्ट हुए आलम्बन के कारण उस की प्रतिष्ठा भी प्रहीण हो जाती है। इस तरह वह

विञ्ञाणस्स न होति। तदप्पतिट्ठितं विञ्ञाणं अविरूळ्हं अनभिसङ्खच्च विमुत्तं। विमुत्तत्ता ठितं। ठितत्ता सन्तुसितं। सन्तुसितत्ता न परितस्सति। अपरितस्सं पच्चत्तञ्ञेव परिनिब्बायति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति॥ ●

५४. बीजसुत्तं

५७. सावत्थिनिदानं। ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, बीजजातानि। कतमानि पञ्च? मूलबीजं, खन्धबीजं, अग्गबीजं, फलुबीजं, बीजबीजञ्ञेव पञ्चमं। इमानि चस्सु, भिक्खवे, पञ्च बीजजातानि अखण्डानि अपूतिकानि अवातातपहतानि सारादानि सुखसयितानि, पठवी च नास्स, आपो च नास्स; अपि नुमानि, भिक्खवे, पञ्च बीजजातानि वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्युं'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

[N.285] ''इमानि चस्सु, भिक्खवे, पञ्च बीजजातानि अखण्डानि...पे०...सुखसयितानि, पठवी च अस्स, आपो च अस्स; अपि नुमानि, भिक्खवे, पञ्च बीजजातानि वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्युं'' ति?

अप्रतिष्ठित विज्ञान उभरने नहीं पाता, ऐसी स्थिति में वह (विज्ञान) विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने से स्थित हो ज्ञाता है। स्थित होने से शान्त हो जाता है। शान्त होने से साधक को त्रास नहीं हो पाता। त्रास न होने से वह व्यक्तिगत रूप से परिनिर्वाण को प्राप्त कर लेता है। तथा अन्त में वह यह समझ लेता है—'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी, धर्मसाधना पूर्ण हो गयी, मेरे कर्तव्य पूर्ण हो चुके, अब आगे मेरा कोई करणीय शेष नहीं है॥'' ●

५४. बीजसूत्र : : पञ्चविध बीज

५७. ...**श्रावस्ती में** उपदेश...। ''भिक्षुओ! बीजसमूह पाँच प्रकार के होते हैं। कौन से पाँच? १. मूलबीज, २. स्कन्धबीज, ३. अग्रबीज, ४. फलुबीज एवं ५. बीजबीज।

(क) भिक्षुओ! ये पाँच प्रकार के बीज अखण्डित हों, सड़े गले न हों, वायु या धूप से नष्ट न हो गये हों, सार (तत्त्व=बल) वाले हों, अनायास भूमि में रोपे जा सकने योग्य हों; किन्तु अनुकूल मिट्टी या जल न हो तो, भिक्षुओ! क्या ये बीज उत्पन्न हो पायँगे? बढ सकेंगे? या विस्तार को प्राप्त हो सकेंगे?''

''नहीं, भन्ते!''

''भिक्षुओ! इसके विपरीत, ये पञ्चविध बीज अखण्डित न हों, सड़ गल गये हों...पूर्ववत्...किन्तु अनुकूल मिट्टी भी न हो तथा जल भी न हो तो, भिक्षुओ! क्या ये बीज तब भी उत्पन्न हो पायँगे? बढ सकेंगे? या विस्तार पा सकेंगे?''

"एवं, भन्ते"।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, पठवीधातु, एवं चतस्सो विञ्ञाणट्ठितियो दट्ठब्बा। सेय्यथापि, भिक्खवे, आपोधातु, एवं नन्दिरागो दट्ठब्बो। सेय्यथापि, भिक्खवे, पञ्च बीजजातानि, एवं विञ्ञाणं साहारं दट्ठब्बं। रूपुपयं, भिक्खवे, विञ्ञाणं तिट्ठमानं तिट्ठेय्य, रूपारम्मणं रूपप्पतिट्ठं नन्दूपसेचनं वुड्ढिं विरूळ्हिं वेपुल्लं [B.45, R.55] आपज्जेय्य। वेदनुपयं वा, भिक्खवे, विञ्ञाणं तिट्ठमानं तिट्ठेय्य...पे०...नन्दूपसेचनं वुड्ढिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्य। सञ्ञुपयं वा...पे०...सङ्खारुपयं वा, भिक्खवे, विञ्ञाणं तिट्ठमानं तिट्ठेय्य, सङ्खारारम्मणं सङ्खारप्पतिट्ठं नन्दूपसेचनं वुड्ढिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्य।

"यो, भिक्खवे, एवं वदेय्य—'अहमञ्ञत्र रूपा अञ्ञत्र वेदनाय अञ्ञत्र सञ्ञाय अञ्ञत्र सङ्खारेहि विञ्ञाणस्स आगतिं वा गतिं वा चुतिं वा उपपत्तिं वा वुड्ढिं वा विरूळ्हिं वा वेपुल्लं वा पञ्ञापेस्सामी' ति, नेतं ठानं विज्जति। रूपधातुया चे, भिक्खवे, भिक्खुनो रागो पहीनो होति। रागस्स पहाना वोच्छिज्जतारम्मणं पतिट्ठा विञ्ञाणस्स न होति। वेदनाधातुया चे...सञ्ञाधातुया चे...सङ्खारधातुया चे...विञ्ञाणधातुया चे, भिक्खवे, भिक्खुनो रागो पहीनो होति। रागस्स पहाना वोच्छिज्जतारम्मणं पतिट्ठा विञ्ञाणस्स न होति। तदप्पतिट्ठितं विञ्ञाणं अविरूळ्हं अनभिसङ्खच्च विमुत्तं। विमुत्तत्ता ठितं। ठितत्ता सन्तुसितं। सन्तुसितत्ता न परितस्सति। अपरितस्सं पच्चत्तञ्ञेव परिनिब्बायति। 'खीणा जाति...पे०...नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति॥ •

"नहीं, भन्ते!"

(ख) "भिक्षुओ! ये पञ्चविध बीज अखण्डित हों...पूर्ववत्...तथा अनुकूल मिट्टी तथा जल भी हो तो, भिक्षुओ! क्या ये बीज ऐसी स्थिति में उग पायँगे? बढेंगे? फैलेंगे?"

"अवश्य, भन्ते!"

"भिक्षुओ! जैसे यहाँ (दृष्टान्त में) पृथ्वी धातु है वैसे ही अध्याता विचार में (रूप आदि की) चार विज्ञानस्थितियों को मानना चाहिये। जल के स्थान पर अनुराग को मानना चाहिये। पाँच बीजों के स्थान पर साहार विज्ञान को मानना चाहिये। भिक्षुओ! रूप में आसक्ति वाला विज्ञान जब अचञ्चल (स्थित) होगा तब वह रूप पर आलम्बित, प्रतिष्ठित, उस रूप में अनुराग रखने वाला हो कर उत्पन्न होता, बढता तथा फैलता रहता है। ...पूर्ववत्...मेरा कोई करणीय शेष नहीं है। *(पिछले **उपयसूत्र** के समान पाठ दुहरा लें।)*

•

५५. उदानसुत्तं

५८. सावत्थिनिदानं। तत्र खो भगवा उदानं उदानेसि—"'नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती' ति—एवं अधिमुच्चमानो भिक्खु छिन्देय्य [R.56] ओरम्भागियानि संयोजनानी" ति।

एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"यथा कथं पन, भन्ते, 'नो [N.286] चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती' ति—एवं अधिमुच्चमानो भिक्खु छिन्देय्य ओरम्भागियानि संयोजनानी" ति?

"इध, भिक्खु, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी...पे०...सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं। वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं।

"सो अनिच्चं रूपं 'अनिच्चं रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति, अनिच्चं वेदनं [B.46] 'अनिच्चा वेदना' ति यथाभूतं नप्पजानाति, अनिच्चं सञ्ञं 'अनिच्चा सञ्ञा' ति यथाभूतं नप्पजानाति, अनिच्चे सङ्खारे 'अनिच्चा सङ्खारा' ति यथाभूतं नप्पजानाति, अनिच्चं विञ्ञाणं 'अनिच्चं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति।

---

५५. उदानसूत्र : : आश्रवों का क्षय कैसे हो?

५८. ...**श्रावस्ती में** ही...। वहाँ भगवान् ने यह उदान (हृदयोद्गार) प्रकट किया—"'यह मेरा नहीं था, न मेरा हो सकता है, न यह मेरा हो पाता और न यह मेरा होगा'—ऐसे सङ्कल्पपूर्वक विचार करने वाला साधक भिक्षु नीचे के (=ओरम्भागीय) चित्त संयोजनों (बन्धनों) को काट देता है।"

भगवान् द्वारा ऐसा उद्गार प्रकट किये जाने पर, वहाँ उपस्थित किसी भिक्षु ने भगवान् से इस पर यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! आप के इस कथन का हम लोग क्या अभिप्राय समझें?"

(भगवान्—) "भिक्षु! यहाँ कोई अज्ञ पृथग्जन...पूर्ववत्...रूप को अपना समझता है, अपने को रूपवान् समझता है, अपने में रूप को समझता है, या रूप में अपने को समझता है। वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को अपना समझता है...पूर्ववत्...विज्ञान में अपने को समझता है।

"वह उस अनित्य रूप को 'यह रूप अनित्य है'—ऐसा यथार्थत: अनित्य रूप में नहीं पहचानता, अनित्य वेदना को...अनित्य संज्ञा को...अनित्य संस्कारों को...अनित्य विज्ञान को 'यह विज्ञान अनित्य है'—ऐसा यथार्थत: अनित्य के रूप में नहीं पहचानता।

"दुक्खं रूपं 'दुक्खं रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति, दुक्खं वेदनं...दुक्खं सञ्ञं... दुक्खे सङ्खारे...दुक्खं विञ्ञाणं 'दुक्खं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति।

"अनत्तं रूपं 'अनत्ता रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति, अनत्तं वेदनं 'अनत्ता वेदना' ति यथाभूतं नप्पजानाति, अनत्तं सञ्ञं 'अनत्ता सञ्ञा' ति यथाभूतं नप्पजानाति, अनत्ते सङ्खारे 'अनत्ता सङ्खारा' ति यथाभूतं नप्पजानाति, अनत्तं विञ्ञाणं 'अनत्ता विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति।

"सङ्खतं रूपं 'सङ्खतं रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति, सङ्खतं वेदनं...सङ्खतं सञ्ञं...सङ्खते सङ्खारे...सङ्खतं विञ्ञाणं 'सङ्खतं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। रूपं विभविस्सती ति यथाभूतं नप्पजानाति। वेदना विभविस्सति...सञ्ञा विभविस्सति... सङ्खारा विभविस्सन्ति... विञ्ञाणं विभविस्सती ति यथाभूतं नप्पजानाति।

"सुतवा च खो, भिक्खु, अरियसावको अरियानं दस्सावी अरियधम्मस्स [R.57] कोविदो अरियधम्मे सुविनीतो सप्पुरिसानं दस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स कोविदो सप्पुरिसधम्मे सुविनीतो न रूपं अत्ततो समनुपस्सति...पे०...न वेदनं...न [N.287] सञ्ञं...न सङ्खारे...न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति।

"सो अनिच्चं रूपं 'अनिच्चं रूपं' ति यथाभूतं पजानाति। अनिच्चं वेदनं... अनिच्चं सञ्ञं...अनिच्चे सङ्खारे...अनिच्चं विञ्ञाणं 'अनिच्चं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। दुक्खं रूपं...पे०...दुक्खं विञ्ञाणं...अनत्तं रूपं...पे०...अनत्तं विञ्ञाणं... सङ्खतं रूपं...पे०...सङ्खतं विञ्ञाणं 'सङ्खतं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं पजानाति। रूपं

"दुःखमय रूप को 'यह रूप दुःखमय है'—ऐसा यथार्थतः नहीं पहचानता, दुःखमय वेदना को...पूर्ववत्...दुःखमय विज्ञान को 'यह विज्ञान दुःखमय है'—ऐसा यथार्थतः नहीं पहचानता।

"अनात्म रूप को 'यह रूप अनात्म है'—ऐसा...अनात्म वेदना...पूर्ववत्...अनात्म विज्ञान को 'यह विज्ञान अनात्म है'—ऐसा यथार्थतः नहीं पहचानता।

"संस्कृत (कृत्रिम) रूप को 'यह रूप संस्कृत है'—ऐसा यथार्थतः नहीं पहचानता... संस्कृत वेदना को...पूर्ववत्...संस्कृत संज्ञा को...संस्कृत संस्कारों को...संस्कृत विज्ञान को 'यह विज्ञान संस्कृत है'—ऐसा यथार्थतः नहीं पहचानता। रूप...वेदना...संज्ञा...संस्कार... विज्ञान नष्ट होगा—ऐसा यथार्थतः नहीं पहचानता।

"इसके विपरीत, भिक्षु! कोई श्रुतवान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्...वह रूप को अपना नहीं समझता...पूर्ववत्...वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को अपना नहीं समझता...।

विभविस्सती ति यथाभूतं पजानाति। वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा... विञ्ञाणं विभविस्सती ति यथाभूतं पजानाति।

[B.47] ''सो रूपस्स विभवा, वेदनाय विभवा, सञ्ञाय विभवा, सङ्खारानं विभवा, विञ्ञाणस्स विभवा, एवं खो, भिक्खु, 'नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती' ति—एवं अधिमुच्चमानो भिक्खु छिन्देय्य ओरम्भागियानि संयोजनानी'' ति।

''एवं अधिमुच्चमानो, भन्ते, भिक्खु छिन्देय्य ओरम्भागियानि संयोजनानी ति। कथं पन, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो अनन्तरा आसवानं खयो होती'' ति?

''इध, भिक्खु, अस्सुतवा पुथुज्जनो अतसिताये ठाने तासं आपज्जति। तासो हेसो भिक्खु अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स—'नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती' ति।

''सुतवा च खो, भिक्खु, अरियसावको अतसिताये ठाने न तासं आपज्जति। न
[R.58] हेसो, भिक्खु, तासो सुतवतो अरियसावकस्स—'नो चस्सं, नो च मे सिया,

---

''वह अनित्य रूप को 'यह रूप अनित्य है'—ऐसा यथार्थतः जानता है...पूर्ववत्...।

''वह दुःखमय रूप को 'यह रूप दुःखमय है'—ऐसा यथार्थतः जानता है...पूर्ववत्...।

''वह अनात्म रूप को 'यह रूप अनात्म है'—ऐसा यथार्थतः जानता है...पूर्ववत्...।

''वह संस्कृत रूप को 'यह रूप संस्कृत है'—ऐसा यथार्थतः जानता है...पूर्ववत्...।

''वह रूप के विभव (नाश) को, वेदना...संज्ञा...संस्कारों...विज्ञान के नाश को यथार्थतः जानता है, भिक्षु! ऐसा साधक—'यह मेरा नहीं था, न मेरा हो सकताा है, न मेरा हो पाता, और न यह मेरा होगा' इस सङ्कल्पपूर्वक समीक्षा करने वाला अपने अवरभागीय (अधोभागीय) संयोजनों को नष्ट कर देता है॥ (१)

(भिक्षु—) ''भन्ते! ऐसा सङ्कल्पपूर्वक समीक्षक भिक्षु अपने अवरभागीय संयोजनों को काट देता है; परन्तु क्या जान लेने एवं देख लेने के बाद आगे के (ऊर्ध्वम्भागीय) संयोजनों का क्षय होता है?

(भगवान्—) यहाँ कोई अज्ञ पृथग्जन...त्रास न पाने के स्थान पर त्रास (भय) पाता है। उस अज्ञानी पृथग्जन का यही त्रास है कि वह इस बात पर सङ्कल्पपूर्वक विचार नहीं करता—'यह मेरा नहीं था, न मेरा हो सकता है, न मेरा हो पाता, न मेरा होगा।' परन्तु—

''भिक्षु! विद्वान् आर्यश्रावक ऐसा सोच कर त्रास न करने के स्थान पर त्रास नहीं

नाभविस्स, न मे भविस्सती' ति। रूपुपयं वा, भिक्खु, विञ्ञाणं तिट्ठमानं तिट्ठेय्य, रूपारम्मणं रूपप्पतिट्ठं नन्दूपसेचनं वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्य। वेदनुपयं वा, भिक्खु, सञ्ञुपयं वा, भिक्खु, सङ्खारुपयं वा, भिक्खु, विञ्ञाणं तिट्ठमानं तिट्ठेय्य, सङ्खारारम्मणं सङ्खारप्पतिट्ठं नन्दूपसेचनं वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्य।

''यो भिक्खु एवं वदेय्य—'अहमञ्ञत्र रूपा, अञ्ञत्र वेदनाय, अञ्ञत्र [N.288] सञ्ञाय, अञ्ञत्र सङ्खारेहि विञ्ञाणस्स आगतिं वा गतिं वा चुतिं वा उपपत्तिं वा वुद्धिं वा विरूळ्हिं वा वेपुल्लं वा पञ्ञापेस्सामी' ति, नेतं ठानं विज्जति।

''रूपधातुया चे, भिक्खु, भिक्खुनो रागो पहीनो होति। रागस्स पहाना वोच्छिज्जतारम्मणं पतिट्ठा विञ्ञाणस्स न होति। वेदनाधातुया चे, भिक्खु, भिक्खुनो... सञ्ञाधातुया चे, भिक्खु, भिक्खुनो...सङ्खारधातुया चे, भिक्खु, भिक्खुनो...विञ्ञाण-धातुया चे, भिक्खु, भिक्खुनो रागो पहीनो होति। रागस्स पहाना वोच्छिज्जतारम्मणं पतिट्ठा विञ्ञाणस्स न होति। तदप्पतिट्ठितं विञ्ञाणं अविरूळ्हं अनभिसङ्खच्च विमुत्तं। विमुत्तत्ता ठितं। ठितत्ता सन्तुसितं। सन्तुसितत्ता न परितस्सति। अपरितस्सं पच्चत्तञ्ञेव परिनिब्बायति। 'खीणा जाति... पे०...नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। एवं खो, [B.48] भिक्खु, जानतो एवं पस्सतो अनन्तरा आसवानं खयो होती'' ति। •

५६. उपादानपरिवत्तसुत्तं

५९. सावत्थिनिदानं। ''पञ्चिमे, भिक्खवे, उपादानक्खन्धा। कतमे पञ्च? रूपुपादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। यावकीवञ्चाहं, भिक्खवे, इमे पञ्चुपादानक्खन्धे [R.59] चतुपरिवट्टं यथाभूतं नाब्भञ्ञासिं, नेव तावाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो

प्राप्त करता। क्यों कि वैसे सङ्कल्प की वह प्रज्ञापूर्वक समीक्षा करता है। भिक्षु रूप में आसक्त रहने से विज्ञान बना रहता है। रूप पर आधृत, रूप पर प्रतिष्ठित...पूर्ववत्...*(पीछे व्याख्यात* **उपयसूत्र** *का सम्पूर्ण पाठ यहाँ भी दुहरा लें।)* यह जान लेता है। इस तरह भिक्षु, विद्वान् आर्यश्रावक के ऊर्ध्वम्भागीय संयोजन क्षीण हो जाते हैं॥'' (२) •

५६. उपादानपरिवर्तसूत्र : उपादानस्कन्धों की व्याख्या

५९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! उपादानस्कन्ध पाँच होते हैं। कौन से पाँच? रूपोपादानस्कन्ध, २. वेदनोपादानस्कन्ध, ३. संज्ञोपादानस्कन्ध, ४. संस्कारोपादान-स्कन्ध एवं ५. विज्ञानोपादानस्कन्ध।

''भिक्षुओ! जब तक मैंने इन पाँचों उपादानस्कन्धों पर चार प्रकार से घुमा फिरा

ति पच्चञ्ञासिं। यतो च ख्वाहं, भिक्खवे, इमे पञ्चुपादानक्खन्धे चतुपरिवट्टं यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अथाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके...पे०...सदेवमनुस्साय अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति पच्चञ्ञासिं।

''कथं च चतुपरिवट्टं ? रूपं अब्भञ्ञासिं, रूपसमुदयं अब्भञ्ञासिं, रूपनिरोधं अब्भञ्ञासिं, रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं अब्भञ्ञासिं; वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं अब्भञ्ञासिं, विञ्ञाणसमुदयं अब्भञ्ञासिं, विञ्ञाणनिरोधं अब्भञ्ञासिं, विञ्ञाणनिरोधगामिनिं पटिपदं अब्भञ्ञासिं।

''कतमं च, भिक्खवे, रूपं ? चत्तारो च महाभूता चतुन्नं च महाभूतानं उपादाय [N.289] रूपं, इदं वुच्चति, भिक्खवे, रूपं। आहारसमुदया रूपसमुदयो; आहारनिरोधा रूपनिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो रूपनिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि।

''ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं रूपं अभिञ्ञाय, एवं रूपसमुदयं अभिञ्ञाय, एवं रूपनिरोधं अभिञ्ञाय, एवं रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं

कर विचार नहीं कर लिया, यथार्थत: जान नहीं लिया, तब तक मैंने इस लोक में देवताओं सहित...पूर्ववत्...मैं सम्यक्सम्बुद्ध हो गया—ऐसी घोषणा जनता के सम्मुख की।

''भिक्षुओ ! ये चार प्रकार क्या हैं ? १. (क) रूप को जान लिया, (ख) रूपसमुदय को जान लिया, (ग) रूपनिरोध को जान लिया, (घ) रूपनिरोधगामी मार्ग को जान लिया।

२. (क) वेदना को जान लिया, (ख) वेदनासमुदय को जान लिया, (ग) वेदनानिरोध को जान लिया, (घ) वेदनानिरोधगामी मार्ग को जान लिया।

३. (क) संज्ञा को जान लिया, (ख) संज्ञासमुदय को जान लिया, (ग) संज्ञानिरोध को जान लिया, तथा (घ) संज्ञानिरोधगामी मार्ग को जान लिया।

४. (क) संस्कारों को जान लिया, (ख) संस्कारसमुदय को जान लिया...पूर्ववत्...।

५. (क) विज्ञान को जान लिया, (ख) विज्ञानसमुदय को जान लिया...पूर्ववत्...।

१. (क) भिक्षुओ ! यह रूप क्या है ? पृथ्वी आदि चारों महाभूत, तथा इन चारों महाभूतों से बनने वाले रूप—यही रूप है। (ख) आहार के समुदय से रूप का समुदय होता है। (ग) आहार के निरोध से रूप का निरोध होता है। (घ) यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही रूपनिरोधगामी मार्ग है; जैसे—सम्यग्दृष्टि...सम्यक्समाधि।

भिक्षुओ ! जो भी कोई श्रमण ब्राह्मण रूप का इस प्रकार अभिज्ञान कर, रूपसमुदय का, रूपनिरोध का, रूपनिरोधगामी मार्ग का इस प्रकार से अभिज्ञान कर रूप से वैराग्य,

अभिञ्ञाय रूपस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्ना ते सुप्पटिपन्ना। ये सुप्पटिपन्ना ते इमस्मिं धम्मविनये गाधन्ति।

''ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं रूपं अभिञ्ञाय ...पे०...एवं रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं अभिञ्ञाय, रूपस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्ता ते सुविमुत्ता। ये सुविमुत्ता ते केवलिनो। ये केवलिनो वट्टं तेसं नत्थि पञ्ञापनाय।

''कतमा च, भिक्खवे, वेदना? छयिमे, भिक्खवे, वेदनाकाया— [B.49, R.60] चक्खुसम्फस्सजा वेदना, सोतसम्फस्सजा वेदना, घानसम्फस्सजा वेदना, जिव्हा-सम्फस्सजा वेदना, कायसम्फस्सजा वेदना, मनोसम्फस्सजा वेदना। अयं वुच्चति, भिक्खवे, वेदना। फस्ससमुदया वेदनासमुदयो; फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो वेदनानिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०... सम्मासमाधि।

''ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं वेदनं अभिञ्ञाय, एवं वेदनासमुदयं अभिञ्ञाय, एवं वेदनानिरोधं अभिञ्ञाय, एवं वेदनानिरोधगामिनिं पटिपदं अभिञ्ञाय वेदनाय निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्ना ते सुप्पटिपन्ना। ये सुप्पटिपन्ना ते इमस्मिं धम्मविनये गाधन्ति।

निरोध की तरफ झुक चुके हैं वे ही सफल साधक हैं। वे ही मेरे इस धर्मविनय का भली भाँति अवगाहन कर सकते हैं।

"तथा, भिक्षुओ! जो भी कोई श्रमण ब्राह्मण रूप को इस प्रकार जान कर... पूर्ववत्...निरोध की ओर झुक चुके हैं वे ही अनुपादान के माध्यम से विमुक्त हो चुके हैं। भली भाँति विमुक्त हो चुके हैं। ये विमुक्त ही केवली (पूर्ण ज्ञानी) कहलाते हैं। ऐसे ज्ञानियों का संसार में आवागमन पूर्णतः समाप्त हो जाता है।

२. (क)"भिक्षुओ! यह वेदना क्या है? वेदना इन छह कायों (शरीरों) से पहचानी जाती है; जैसे—१. चक्षुःसंस्पर्शजा वेदना, २. श्रोत्रसंस्पर्शजना वेदना, ३. घ्राण-संस्पर्शजा वेदना, ४. जिह्वासंस्पर्शजा वेदना, ५. स्पर्शसंस्पर्शजा वेदना, एवं ६. मनःसंस्पर्शजा वेदना। यह छह कायों से सम्पन्न 'वेदना' कहलाती है। स्पर्शसमुदय से वेदनासमुदय होता है, स्पर्शनिरोध से वेदनानिरोध होता है। यह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही वेदनानिरोधगामिनी प्रतिपदा है, जैसे—सम्यग्दृष्टि...सम्यक्समाधि।

"भिक्षुओ! जो भी कोई श्रमण या ब्राह्मण वेदना का इस प्रकार अभिज्ञान कर वेदनासमुदय का, वेदनानिरोध का, वेदनानिरोधगामी मार्ग का इस प्रकार अभिज्ञान कर,

"ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं वेदनं अभिञ्ञाय ...पे०...एवं वेदनानिरोधगामिनिं पटिपदं अभिञ्ञाय...पे०...वट्टं तेसं नत्थि पञ्ञापनाय।

"कतमा च, भिक्खवे, सञ्ञा? छयिमे, भिक्खवे, सञ्ञाकाया—रूपसञ्ञा, [N.290] सद्दसञ्ञा, गन्धसञ्ञा, रससञ्ञा, फोट्ठब्बसञ्ञा, धम्मसञ्ञा। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सञ्ञा। फस्ससमुदया सञ्ञासमुदयो; फस्सनिरोधा सञ्ञानिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो सञ्ञानिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०... सम्मासमाधि...पे०...वट्टं तेसं नत्थि पञ्ञापनाय।

"कतमे च, भिक्खवे, सङ्खारा? छयिमे, भिक्खवे, चेतनाकाया—रूपसञ्चेतना, सद्दसञ्चेतना, गन्धसञ्चेतना, रससञ्चेतना, फोट्ठब्बसञ्चेतना, धम्मसञ्चेतना। इमे वुच्चति, भिक्खवे, सङ्खारा। फस्ससमुदया सङ्खारसमुदयो; फस्सनिरोधा सङ्खारनिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो सङ्खारनिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०... सम्मासमाधि।

"ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं सङ्खारे अभिञ्ञाय, एवं सङ्खारसमुदयं अभिञ्ञाय, एवं सङ्खारनिरोधं अभिञ्ञाय, एवं सङ्खारनिरोधगामिनिं [B.50, R.61] पटिपदं अभिञ्ञाय सङ्खारानं निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्ना ते सुप्पटिपन्ना। ये सुप्पटिपन्ना ते इमस्मिं धम्मविनये गाधन्ति।

"ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं सङ्खारे अभिञ्ञाय, एवं सङ्खारसमुदयं अभिञ्ञाय, एवं सङ्खारनिरोधं अभिञ्ञाय, एवं सङ्खारनिरोधगामिनिं

वेदना से वैराग्य तथा निरोध की ओर झुक चुके हैं वे ही सफल साधक हैं। वे सफल साधक ही मेरे इस धर्मविनय का सफलतापूर्वक अवगाहन भी कर सकते हैं।

"तथा, भिक्षुओ! जो कोई भी श्रमण ब्राह्मण वेदना का इस प्रकार से अभिज्ञान कर...पूर्ववत्...वेदनानिरोधगामी मार्ग का अभिज्ञान कर...पूर्ववत्...। ऐसे ज्ञानियों का संसार में आवागमन पूर्णत: समाप्त हो जाता है। उन के ज्ञान के लिये अब कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

(३) "भिक्षुओ! यह 'संज्ञा' क्या है? भिक्षुओ! इस संज्ञा के भी छह काय हैं; जैसे—१. रूपसंज्ञा, २. शब्दसंज्ञा, ३. गन्धसंज्ञा, ४. रससंज्ञा, ५. स्प्रष्टव्यसंज्ञा, एवं ६. धर्मसंज्ञा। भिक्षुओ! यह 'संज्ञा' कहलाती है। स्पर्श के समुदय से संज्ञासमुदय होता है, ...पूर्ववत्...। ज्ञान के लिये अब उन के सम्मुख कुछ भी शेष नहीं रह जाता'

(४) "भिक्षुओ! 'संस्कार' क्या है? (चेतना ही 'संस्कार' है।) भिक्षुओ! यह

पटिपदं अभिञ्ञाय सङ्खारानं निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्ता ते सुविमुत्ता। ये सुविमुत्ता ते केवलिनो। ये केवलिनो वट्टं तेसं नत्थि पञ्ञापनाय।

"कतमं च, भिक्खवे, विञ्ञाणं? छयिमे, भिक्खवे, विञ्ञाणकाया—चक्खुविञ्ञाणं, सोतविञ्ञाणं, घानविञ्ञाणं, जिव्हाविञ्ञाणं, कायविञ्ञाणं, मनोविञ्ञाणं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, विञ्ञाणं। नामरूपसमुदया विञ्ञाणसमुदयो; नामरूपनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो विञ्ञाणनिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि।

"ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं विञ्ञाणं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणसमुदयं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणनिरोधं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणनिरोधगामिनिं पटिपदं अभिञ्ञाय विञ्ञाणस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय [N.291] पटिपन्ना ते सुप्पटिपन्ना। ये सुप्पटिपन्ना ते इमस्मिं धम्मविनये गाधन्ति।

"ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं विञ्ञाणं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणसमुदयं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणनिरोधं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणनिरोधगामिनिं पटिपदं अभिञ्ञाय विञ्ञाणस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्ता ते सुविमुत्ता। ये सुविमुत्ता ते केवलिनो। ये केवलिनो वट्टं तेसं नत्थि पञ्ञापनाय" ति।

●

५७. सत्तट्ठानसुत्तं

६०. सावत्थिनिदानं। "सत्तट्ठानकुसलो, भिक्खवे, भिक्खु तिविधूपपरिक्खी इमस्मिं धम्मविनये केवली वुसितवा उत्तमपुरिसो ति वुच्चति। कथं च, भिक्खवे, [R.62]

चेतना छह प्रकार की होती है; जैसे—१. रूपसञ्चेतना...पूर्ववत्..., ६. धर्मसञ्चेतना। भिक्षुओ! ये 'संस्कार' कहलाते हैं। ...पूर्ववत्...।

(५) "भिक्षुओ! 'विज्ञान' क्या है? भिक्षुओ! ये छह विज्ञान काय होते हैं; जैसे—१. चक्षुर्विज्ञान, ...पूर्ववत्...६. मनोविज्ञान। भिक्षुओ! यह षड्विध काय 'विज्ञान' कहलाता है। ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! जो भी कोई श्रमण ब्राह्मण विज्ञान का इस प्रकार अभिज्ञान कर, विज्ञानसमुदय का...विज्ञाननिरोध का...विज्ञाननिरोधगामी मार्ग का इस तरह अभिज्ञान कर विज्ञान से वैराग्य एवं निरोध की ओर झुक चुके हैं वे ही अनुपादान के माध्यम से विमुक्त हो गये। वे ही वस्तुत: विमुक्त हुए हैं। ऐसे विमुक्त ही केवली (पूर्ण ज्ञानी) कहलाते हैं। जो केवली हो चुके, उन का यह सांसारिक मायाजाल कुछ भी बना विगाड़ नहीं सकता"॥

●

[R.62] भिक्खु सत्तट्ठानकुसलो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु रूपं पजानाति, रूपसमुदयं पजानाति, रूपनिरोधं पजानाति, रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानाति; [B.51] रूपस्स अस्सादं पजानाति, रूपस्स आदीनवं पजानाति, रूपस्स निस्सरणं पजानाति; वेदनं पजानाति...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं पजानाति, विञ्ञाणसमुदयं पजानाति, विञ्ञाणनिरोधं पजानाति, विञ्ञाणनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानाति; विञ्ञाणस्स अस्सादं पजानाति, विञ्ञाणस्स आदीनवं पजानाति, विञ्ञाणस्स निस्सरणं पजानाति।

"कतमं च, भिक्खवे, रूपं? चत्तारो च महाभूता, चतुन्नं च महाभूतानं उपादाय रूपं—इदं वुच्चति, भिक्खवे, रूपं। आहारसमुदया रूपसमुदयो; आहारनिरोधा रूपनिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो रूपनिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि... पे०...सम्मासमाधि।

"यं रूपं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं—अयं रूपस्स अस्सादो। यं रूपं अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं—अयं रूपस्स आदीनवो। यो रूपस्मिं छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं— इदं रूपस्स निस्सरणं।

---

५७. सप्तस्थानसूत्र : : सप्तस्थानकुशल ही ज्ञानी है

६०. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! सात स्थानों में कुशल (ज्ञाता) भिक्षु ही, तीन स्थानों (प्रकारों) से परीक्षा करने वाला ही (मेरे) इस धर्मविनय में केवली तथा सफल धर्माराधक एवं श्रेष्ठ पुरुष कहलाता है। भिक्षुओ! कोई साधक सात स्थानों में कुशल कैसे होता है? भिक्षु! यहाँ कोई साधक १. रूप को जानता है, २. रूपसमुदय को..., ३. रूपनिरोध को..., ४. रूपनिरोधगामी मार्ग को, ५. रूप के आस्वाद को, ६. रूप के आदीनव (दोष) को तथा ७. रूप के निःसरण को जानता है। वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को, विज्ञानसमुदय को, विज्ञाननिरोध को, विज्ञाननिरोधगामी मार्ग को, विज्ञान के आस्वाद को, विज्ञान के आदीनव को तथा विज्ञान के निःसरण को जानता है।

"भिक्षुओ! यह 'रूप' क्या है? चारों महाभूत एवं इन चारों से निर्मित रूप। भिक्षुओ! यह 'रूप' कहलाता है। आहारसमुदय से रूपसमुदय होता है। आहारनिरोध से रूपनिरोध होता है। तथा यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग रूपनिरोधगामी मार्ग है; जैसे—१. सम्यग्दृष्टि... ८. सम्यक्समाधि।

"रूप की अपेक्षा कर जो सुख सौमनस्य उद्भूत होता है वही 'रूप का आस्वाद' कहलाता है। रूप क्यों कि अनित्य, दुःखमय एवं अनात्म है—यही 'रूप का आदीनव है।' तथा रूप के प्रति छन्दराग का प्रहीण हो जाना ही उस का निःसरण है।

"ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं रूपं अभिञ्ञाय, एवं रूपसमुदयं अभिञ्ञाय, एवं रूपनिरोधं अभिञ्ञाय, एवं रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं अभिञ्ञाय; एवं रूपस्स अस्सादं अभिञ्ञाय, एवं रूपस्स आदीनवं अभिञ्ञाय, एवं रूपस्स निस्सरणं अभिञ्ञाय रूपस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्ना [N.292] ते सुप्पटिपन्ना। ये सुप्पटिपन्ना ते इमस्मिं धम्मविनये गाधन्ति।

"ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं रूपं अभिञ्ञाय, एवं रूपसमुदयं अभिञ्ञाय, एवं रूपनिरोधं अभिञ्ञाय, एवं रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं अभिञ्ञाय; एवं रूपस्स अस्सादं अभिञ्ञाय, एवं रूपस्स आदीनवं अभिञ्ञाय, एवं रूपस्स निस्सरणं अभिञ्ञाय रूपस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्ता [R.63] ते सुविमुत्ता। ये सुविमुत्ता ते केवलिनो। ये केवलिनो वट्टं तेसं नत्थि पञ्ञापनाय।

"कतमा च, भिक्खवे, वेदना? छयिमे, भिक्खवे, वेदनाकाया—चक्खुसम्फस्सजा वेदना...पे०...मनोसम्फस्सजा वेदना। अयं वुच्चति, भिक्खवे, वेदना। फस्ससमुदया वेदनासमुदयो; फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो वेदनानिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि।

"यं वेदनं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं—अयं वेदनाय अस्सादो। या [B.52] वेदना अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा—अयं वेदनाय आदीनवो। यो वेदनाय छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं—इदं वेदनाय निस्सरणं।

"ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं वेदनं अभिञ्ञाय, एवं वेदनासमुदयं अभिञ्ञाय, एवं वेदनानिरोधं अभिञ्ञाय, एवं वेदनानिरोधगामिनिं

"भिक्षुओ! जो भी श्रमण ब्राह्मण रूप को इस प्रकार जान कर, रूपसमुदय को, रूपनिरोध को, रूपनिरोधगामी मार्ग को, रूप के आस्वाद को, रूप के आदीनव को एवं रूप के निःसरण को जान कर उस के निर्वेद (वैराग्य) एवं निरोध के लिये तत्पर हो जाते हैं वे ही 'सुप्रतिपन्न' कहलाते हैं तथा वे ही इस धर्मविनय का भली भाँति अवगाहन करने में समर्थ हैं।

"भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण इस प्रकार रूप को जान कर...रूप के निःसरण को जान कर उन के अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही यथार्थ में विमुक्त कहलाते हैं। वे ही केवली (पूर्ण ज्ञानी) हैं। यह संसार का भ्रमणजाल उन का कुछ बना विगाड़ नहीं सकता।

"भिक्षुओ! वेदना क्या है? ...पूर्ववत्...। *(पूर्वसूत्रों के आधार पर रूपवाले पाठ की तरह यहाँ भी विस्तार कर लें।)*

पटिपदं अभिञ्ञाय; एवं वेदनाय अस्सादं अभिञ्ञाय, एवं वेदनाय आदीनवं अभिञ्ञाय, एवं वेदनाय निस्सरणं अभिञ्ञाय वेदनाय निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्ना ते सुप्पटिपन्ना। ये सुप्पटिपन्ना ते इमस्मिं धम्मविनये गाधन्ति।

''ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं वेदनं अभिञ्ञाय ...पे०...वट्टं तेसं नत्थि पञ्ञापनाय।

''कतमा च, भिक्खवे, सञ्ञा? छयिमे, भिक्खवे, सञ्ञाकाया—रूपसञ्ञा, सद्दसञ्ञा, गन्धसञ्ञा, रससञ्ञा, फोट्ठब्बसञ्ञा, धम्मसञ्ञा। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सञ्ञा। फस्ससमुदया सञ्ञासमुदयो; फस्सनिरोधा सञ्ञानिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो सञ्ञानिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०... सम्मासमाधि...पे०...वट्टं तेसं नत्थि पञ्ञापनाय।

[N.293] ''कतमे च, भिक्खवे, सङ्खारा? छयिमे, भिक्खवे, चेतनाकाया—रूपसञ्चेतना ...पे० ...धम्मसञ्चेतना। इमे वुच्चति, भिक्खवे, सङ्खारा। फस्ससमुदया सङ्खारसमुदयो; फस्सनिरोधा [R.64] सङ्खारनिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो सङ्खारनिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि...पे०...सम्मासमाधि।

''यं सङ्खारे पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं—अयं सङ्खारानं अस्सादो। ये सङ्खारा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा—अयं सङ्खारानं आदीनवो। यो सङ्खारेसु छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं—इदं सङ्खारानं निस्सरणं।

''ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं सङ्खारे अभिञ्ञाय, एवं सङ्खारसमुदयं अभिञ्ञाय, एवं सङ्खारनिरोधं अभिञ्ञाय, एवं सङ्खारनिरोधगामिनिं [B.53] पटिपदं अभिञ्ञाय...पे०...सङ्खारानं निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्ना ते सुप्पटिपन्ना। ये सुप्पटिपन्ना ते इमस्मिं धम्मविनये गाधन्ति...पे०...वट्टं तेसं नत्थि पञ्ञापनाय।

''कतमं च, भिक्खवे, विञ्ञाणं? छयिमे, भिक्खवे, विञ्ञाणकाया—चक्खुविञ्ञाणं, सोतविञ्ञाणं, घानविञ्ञाणं, जिव्हाविञ्ञाणं, कायविञ्ञाणं, मनोविञ्ञाणं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, विञ्ञाणं। नामरूपसमुदया विञ्ञाणसमुदयो; नामरूपनिरोधा

''भिक्षुओ! संज्ञा क्या है? ...पूर्ववत्...। *(रूप की तरह यहाँ भी विस्तार कर लें।)*

''भिक्षुओ! संस्कार क्या है? ...पूर्ववत्...। *(रूप की तरह यहाँ भी विस्तार कर लें।)*

विञ्ञाणनिरोधो। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो विञ्ञाणनिरोधगामिनी पटिपदा, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि... पे०...सम्मासमाधि।

"यं विञ्ञाणं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं—अयं विञ्ञाणस्स अस्सादो। यं विञ्ञाणं अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं—अयं विञ्ञाणस्स आदीनवो। यो विञ्ञाणस्मिं छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं—इदं विञ्ञाणस्स निस्सरणं।

"ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं विञ्ञाणं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणसमुदयं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणनिरोधं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाण-निरोधगामिनिं पटिपदं अभिञ्ञाय; एवं विञ्ञाणस्स अस्सादं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणस्स आदीनवं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणस्स निस्सरणं अभिञ्ञाय विञ्ञाणस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्ना ते सुप्पटिपन्ना। ये सुप्पटिपन्ना ते इमस्मिं धम्मविनये गाधन्ति।

"ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एवं विञ्ञाणं [N.294, R.65] अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणसमुदयं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणनिरोधं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणनिरोधगामिनिं पटिपदं अभिञ्ञाय; एवं विञ्ञाणस्स अस्सादं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणस्स आदीनवं अभिञ्ञाय, एवं विञ्ञाणस्स निस्सरणं अभिञ्ञाय विञ्ञाणस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्ता ते सुविमुत्ता। ये सुविमुत्ता ते केवलिनो। ये केवलिनो वट्टं तेसं नत्थि पञ्ञापनाय। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सत्तट्ठानकुसलो होति।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु तिविधूपपरिक्खी होति? इध भिक्खवे, भिक्खु धातुसो उपपरिक्खति, आयतनसो उपपरिक्खति, पटिच्चसमुप्पादसो उपपरिक्खति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु तिविधूपपरिक्खी होति। सत्तट्ठानकुसलो, भिक्खवे, [B.54] भिक्खु तिविधूपपरिक्खी इमस्मिं धम्मविनये केवली वुसितवा 'उत्तमपुरिसो' ति वुच्चती" ति। ●

"भिक्षुओ! विज्ञान क्या है? ...पूर्ववत्...यह संसार उन का कुछ हानि लाभ नहीं कर सकता।

"इस तरह भिक्षुओ! साधक 'सात स्थानों के ज्ञान में कुशल' कहलाता है।

"तथा कैसे, भिक्षुओ! कोई साधक 'तीन प्रकार से परीक्षा करने वाला' होता है? भिक्षुओ! वह साधक १. धातु के माध्यम से परीक्षा करता है, २. आयतन के माध्यम से परीक्षा करता है, तथा ३. प्रतीत्यसमुत्पाद के माध्यम से परीक्षा करता है। यों, भिक्षुओ! वह साधक 'तीन प्रकार से परीक्षा करने वाला' होता है। भिक्षुओ! इस प्रकार 'सात

५८. सम्मासम्बुद्धसुत्तं

६१. सावत्थिनिदानं। "तथागतो, भिक्खवे, अरहं सम्मासम्बुद्धो रूपस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो सम्मासम्बुद्धो ति वुच्चति; भिक्खु पि, भिक्खवे, पञ्ञाविमुत्तो रूपस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो पञ्ञाविमुत्तो ति वुच्चति।

"तथागतो, भिक्खवे, अरहं सम्मासम्बुद्धो वेदनाय निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो सम्मासम्बुद्धो ति वुच्चति; भिक्खु पि, भिक्खवे, पञ्ञाविमुत्तो वेदनाय निब्बिदा... पे०...पञ्ञाविमुत्तो ति वुच्चति।

"तथागतो, भिक्खवे, अरहं असम्मासम्बुद्धो सञ्ञाय...सङ्खारानं...विञ्ञाणस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो सम्मासम्बुद्धो ति वुच्चति; भिक्खु पि, भिक्खवे, पञ्ञाविमुत्तो विञ्ञाणस्स निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादा विमुत्तो पञ्ञा-[R.66] विमुत्तो ति वुच्चति।

"तत्र खो, भिक्खवे, को विसेसो को अधिप्पयासो किं नानाकरणं तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पञ्ञाविमुत्तेन भिक्खुना" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा भगवन्नेत्तिका भगवम्पटिसरणा। साधु वत,

---

स्थानों के ज्ञान में कुशल' एवं 'तीन तरह से परीक्षा करने वाला' साधक ही इस धर्मविनय में 'केवली' या 'उत्तम पुरुष' कहलाता है"॥ •

५८. सम्यक्सम्बुद्धसूत्र : : बुद्ध एवं प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में भेद

६१. ...**श्रावस्ती में ही**...।

प्रश्न : "भिक्षुओ! तथागत, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध रूप के निर्वेद, वैराग्य एवं निरोध से उपादानरहित हो कर विमुक्त सम्यक्सम्बुद्ध कहलाते हैं, जब कि प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु भी रूप के निर्वेद, वैराग्य एवं निरोध तथा अनुपादान से विमुक्त हो कर 'प्रज्ञाविमुक्त' कहलाता है।

भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के निर्वेद, विराग एवं निरोध से उपादानरहित हो विमुक्त सम्यक्सम्बुद्ध कहलाते हैं। भिक्षुओ! प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु भी वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के निर्वेद, वैराग्य एवं निरोध से उपादानरहित विमुक्त हो कर 'प्रज्ञाविमुक्त' कहा जाता है। भिक्षुओ! तब तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध एवं इस प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में भेद क्या है?"

(भिक्षुगण) "भन्ते! भगवान् ही हमारे धर्म के अधिष्ठाता हैं, आप ही हमारे नेता

भन्ते, भगवन्तञ्ञेव पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो। भगवतो सुत्वा [N.294] भिक्खू धारेस्सन्ती'' ति।

''तेन हि, भिक्खवे, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सस्सामी'' ति।

''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''तथागतो, भिक्खवे, अरहं सम्मासम्बुद्धो अनुप्पन्नस्स मग्गस्स उप्पादेता, असञ्जातस्स मग्गस्स सञ्जानेता, अनक्खातस्स मग्गस्स अक्खाता मग्गञ्ञू, मग्गविदू, मग्गकोविदो; मग्गानुगा च, भिक्खवे, एतरहि सावका विहरन्ति पच्छासमन्नागता। अयं खो, भिक्खवे, विसेसो, अयं अधिप्पयासो, इदं नानाकरणं तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पञ्ञाविमुत्तेन भिक्खुना'' ति। •

५९. अनत्तलक्खणसुत्तं

६२. एकं समयं भगवा बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। तत्र खो [B.55] भगवा पञ्चवग्गिये भिक्खू आमन्तेसि—''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''रूपं, भिक्खवे, अनत्ता। रूपं च हिदं, भिक्खवे, अत्ता अभविस्स, नयिदं रूपं

हैं, आप ही हमारे शरणस्थल हैं। अच्छा होता कि भगवान् ही इस प्रश्न का उत्तर अपने श्रीमुख से देते।''

''भिक्षुओ! तो सुनो, अच्छी तरह मेरी बात मन में धारण करो। मैं बताता हूँ—

''अच्छा, भन्ते'' कह कर भिक्षु भगवान् का वचन सुनने को तत्पर हो गये।

उत्तर—''भिक्षुओ! तथागत, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध अनुत्पन्न मार्ग के उत्पादक, अज्ञात मार्ग के उपदेष्टा, साधारण जन द्वारा यथातथ रूप से न जाने गये मार्ग के प्रदर्शक, मार्गविद्, मार्ग की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को जानने वाले (मार्गकोविद) होते हैं। परन्तु, भिक्षुओ! इस समय जो सम्यक्सम्बुद्ध के श्रावक हैं, वे केवल उन (बुद्ध) के मार्गानुगामी हैं। भिक्षुओ! सम्यक्सम्बुद्ध एवं प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में यही भेद है उन का यही तारतम्य है, यही अनेकता (पृथक्त्व) है''॥ •

५९. अनात्मलक्षणसूत्र[१] : : **अनित्य, दुःख अनात्म का उपदेश**

६२. एक समय भगवान् (बुद्ध) वाराणसीस्थित ऋषिपतन के मृगदाव में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को अपने सम्मुख बुलाया। वे भिक्षु भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। भगवान् ने उन को यह उपदेश किया—

---

१. यह सूत्र विनयपिटक के **महावग्ग** ग्रन्थ में (पृ. २३, बौ.भा.सं.) **अनात्मपर्यायसूत्र** नाम से अविकल व्याख्यात है। अतः वहाँ भी द्रष्टव्य है।

आबाधाय संवत्तेय्य, लब्भेथ च रूपे—'एवं मे रूपं होतु, एवं मे रूपं मा अहोसी' ति। यस्मा च खो, भिक्खवे, रूपं अनत्ता तस्मा रूपं आबाधाय संवत्तति, न च लब्भति रूपे—'एवं मे रूपं होतु, एवं मे रूपं मा अहोसी' ति।

''वेदना अनत्ता। वेदना च हिदं, भिक्खवे, अत्ता अभविस्स, नयिदं वेदना [R.67] आबाधाय संवत्तेय्य, लब्भेथ च वेदनाय—'एवं मे वेदना होतु, एवं मे वेदना मा अहोसी' ति। यस्मा च खो, भिक्खवे, वेदना अनत्ता तस्मा वेदना आबाधाय संवत्तति, न च लब्भति वेदनाय—'एवं मे वेदना होतु, एवं मे वेदना मा अहोसी' ति।

''सञ्ञा अनत्ता...पे०...सङ्खारा अनत्ता। सङ्खारा च हिदं, भिक्खवे, अत्ता [N.296] अभविस्संसु, नयिदं सङ्खारा आबाधाय संवत्तेय्युं, लब्भेथ च सङ्खारेसु—'एवं मे सङ्खारा होन्तु, एवं मे सङ्खारा मा अहेसुं' ति। यस्मा च खो, भिक्खवे, सङ्खारा अनत्ता तस्मा सङ्खारा आबाधाय संवत्तन्ति, न च लब्भति सङ्खारेसु—'एवं मे सङ्खारा होन्तुं, एवं मे सङ्खारा मा अहेसुं' ति।

''विञ्ञाणं अनत्ता। विञ्ञाणं च हिदं, भिक्खवे, अत्ता अभविस्स, नयिदं विञ्ञाणं आबाधाय संवत्तेय्य, लब्भेथ च विञ्ञाणे—'एवं मे विञ्ञाणं होतु, एवं मे विञ्ञाणं मा अहोसी' ति। यस्मा च खो, भिक्खवे, विञ्ञाणं अनत्ता तस्मा विञ्ञाणं आबाधाय संवत्तति, न च लब्भति विञ्ञाणे—'एवं मे विञ्ञाणं होतु, एवं मे विञ्ञाणं मा अहोसी' ति।

---

(१) ''भिक्षुओ! रूप (भौतिक पदार्थ) आत्मरहित (अनात्म) है। भिक्षुओ! रूप यदि आत्मवान् होता तो यह रूप पीड़ादायक न होता, तथा रूप में 'मेरा रूप ऐसा हो' या 'मेरा रूप ऐसा न हो'—ऐसी बात भी ज्ञात होती। क्योंकि, भिक्षुओ! रूप एक अनात्म पदार्थ है, अतः यह पीड़ादायक भी बनता है तथा उस रूप में यह बात भी नहीं मिलती कि 'मेरा रूप ऐसा हो' या 'मेरा रूप ऐसा न हो'।

(२) ''भिक्षुओ! वेदना आत्मरहित है। भिक्षुओ! यदि वेदना आत्मयुक्त होती तो यह वेदना पीड़ादायक न होती; न इस वेदना के विषय में—'मेरी वेदना ऐसी हो' या 'मेरी वेदना ऐसी न हो'—यह न होता। क्यों कि, भिक्षुओ! ...पूर्ववत्...'मेरी वेदना ऐसी न हो'।

(३) ''भिक्षुओ! संज्ञा आत्मरहित है। भिक्षुओ! यदि संज्ञा आत्मयुक्त होती तो... पूर्ववत्...'मेरी संज्ञा ऐसी न हो'।

(४) ''भिक्षुओ! संस्कार आत्मरहित है। भिक्षुओ! यदि संस्कार आत्मयुक्त होते... पूर्ववत्...'मेरे संस्कार ऐसे न हों'।

(५) ''भिक्षुओ! विज्ञान आत्मरहित है। भिक्षुओ! यदि विज्ञान आत्मवान् होता

"तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुख वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितं—'एतं [B.56] मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति? [R.68]

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति।

"नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिह, भिक्खवे, यं किञ्चि रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं—'नेतं मम,

---

तो यह पीड़ादायक न बनता। तथा विज्ञान में...'मेरा विज्ञान ऐसा हो' या 'मेरा विज्ञान ऐसा न हो'—ऐसा नहीं पाया जाता।

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ!, रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"जो अनित्य होता है वह सुखमय होता है या दु:खमय?"

"दु:खमय, भन्ते!"

"जो पदार्थ स्वयं अनित्य है, दु:खमय है, विनाशशील है उस के विषय में यह मान लेना उचित होगा—'यह मेरा है', या 'यह मैं हूँ', या 'यह मेरी आत्मा है?"

"नहीं, भन्ते!"

"वेदना नित्य है या अनित्य? ...संज्ञा नित्य है या अनित्य? ...संस्कार नित्य हैं या अनित्य? ...विज्ञान नित्य हैं या अनित्य? ...पूर्ववत्...।

"नहीं, भन्ते!"

(१) "इसलिये, भिक्षुओ! जो भी अतीत, अनागत या वर्तमान **रूप** है, फिर भले ही वह आध्यात्मिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, हीन हो या पुष्ट, दूरस्थ हो या

नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। या काचि वेदना अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्तं वा बहिद्धा वा...पे०...या दूरे सन्तिके वा, सब्बा [N.297] वेदना— 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं।

"या काचि सञ्ञा...पे०...ये केचि सङ्खारा अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्तं वा बहिद्धा वा...पे०...या दूरे सन्तिके वा, सब्बे सङ्खारा—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं।

"यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं।

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति।

निकटस्थ—ऐसे सभी रूपों के विषय में—'यह न मेरा है, न यह मैं हूँ, न यह मेरा आत्मा है'—ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार, भली भाँति समझ कर चिन्तन, मनन करना चाहिये।

(२) "जो भी अतीत, अनागत या वर्तमान **वेदना** है, फिर भले ही...पूर्ववत्...।

(३) "जो भी अतीत, अनागत या वर्तमान **संज्ञा** है, फिर भले ही...पूर्ववत्...।

(४) "जो भी अतीत, अनागत या वर्तमान **संस्कार** हैं, फिर भले ही...पूर्ववत्...।

(५) "जो भी अतीत, अनागत या वर्तमान **विज्ञान** है, फिर भले ही...विज्ञान के विषय में 'यह विज्ञान न मेरा है, न यह मैं हूँ' या 'न यह मेरा आत्मा है'—ऐसा समझना चाहिये। ऐसा समझ कर उस पर भली भाँति चिन्तन मनन करना चाहिये।

"भिक्षुओ! ऐसा देखते हुए, ऐसा चिन्तन मनन करते हुए ज्ञानी (विद्वान्) आर्यश्रावक रूपों के विषय में निर्वेद (वैराग्य=उदासीनता) प्राप्त करता है; वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के विषय में उदासीनता प्राप्त करता है, इस उदासीनता से उसे उस के प्रति वैराग्य होने लगता है। इस वैराग्य की दृढता से वह एक दिन 'मैं सभी दुःखों से मुक्त हो चुका हूँ'—ऐसी धारणा बना लेता है। तब वह जान जाता है—'मेरा इस संसार में आना जाना (=जन्मपरम्परा) समाप्त हो गया, मेरी धर्मसाधना भी सफल हो गयी, मैं कृतकृत्य हो गया, अब यहाँ मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है।'''

६३. इदमवोच भगवा। अत्तमना पञ्चवग्गिया भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं।

इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने पञ्चवग्गियानं भिक्खूनं अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसू ति। •

६०. महालिसुत्तं

६४. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागार- [B.57]
सालायं। अथ खो महालि लिच्छवि येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०...एकमन्तं [R.69]
निसिन्नो खो महालि लिच्छवि भगवन्तं एतदवोच—

"पूरणो, भन्ते, कस्सपो एवमाह—'नत्थि हेतु नत्थि पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय; अहेतू अप्पच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति। नत्थि हेतु नत्थि पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया; अहेतू अप्पच्चया सत्ता विसुज्झन्ती' ति। इध, भिक्खवे, भगवा किमाह" ति?

"अत्थि, महालि, हेतु अत्थि पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय; सहेतू सप्पच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति। अत्थि, महालि, हेतु अत्थि पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया; सहेतू सप्पच्चया सत्ता विसुज्झन्ती" ति।

"कतमो पन, भन्ते, हेतु कतमो पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय; कथं सहेतू [N.298]
सप्पच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति" ति।

भगवान् ने यह देशना की। वे पञ्चवर्गीय भिक्षु भगवान् की यह देशना सुन कर अत्यधिक प्रसन्नचित्त हुए तथा उन्होंने भगवान् की इस देशना का अभिनन्दन किया। अथ च, भगवान् के इस धर्मप्रवचन के साथ ही उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं का चित्त, आश्रवों का उपादान न करने के कारण उन आश्रवों से विमुक्त हो गया॥ •

६०. महालिसूत्र : : सत्त्वशुद्धि का हेतु, पूर्ण काश्यप का मत

६४. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। तब महालि लिच्छवि भगवान् की सेवा में पहुँचा। पहुँच कर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठते हुए उसने भगवान् से यह प्रश्न किया—"भन्ते! पूरण काश्यप ऐसा कहता है—'सत्त्वों के संक्लेश में कोई हेतु या प्रत्यय नहीं है। ये सत्त्व किसी हेतु या प्रत्यय के विना ही संक्लेश (दुःख) में पड़ते रहते हैं। सत्त्वों की विशुद्धि में भी कोई हेतु या प्रत्यय नहीं है। ये हेतु प्रत्यय के विना ही विशुद्ध होते रहते हैं।' इस पर भगवान् का क्या अभिमत है?"

(भगवान्—) "महालि! सत्त्वों के संक्लेश में हेतु या प्रत्यय है। हेतु एवं प्रत्यय से ही सत्त्व संक्लिष्ट होते हैं। सत्त्वों की विशुद्धि में भी हेतु प्रत्यय है, हेतु एवं प्रत्यय से ही सत्त्व विशुद्ध होते हैं।

"रूपं च हिदं, महालि, एकन्तदुक्खं अभविस्स दुक्खानुपतितं दुक्खावक्कन्तं अनवक्कन्तं सुखेन, नयिदं सत्ता रूपस्मिं सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, महालि, रूपं सुखं सुखानुपतितं सुखावक्कन्तं अनवक्कन्तं दुक्खेन, तस्मा सत्ता रूपस्मिं सारज्जन्ति; सारागा संयुज्जन्ति; संयोगा सङ्किलिस्सन्ति। अयं खो, महालि, हेतु अयं पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय; एवं सहेतू सप्पच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति।

"वेदना च हिदं, महालि, एकन्तदुक्खा अभविस्स दुक्खानुपतिता दुक्खावक्कन्ता अनवक्कन्ता सुखेन, नयिदं सत्ता वेदनाय सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, महालि, वेदना सुखा सुखानुपतिता सुखावक्कन्ता अनवक्कन्ता दुक्खेन, तस्मा सत्ता वेदनाय सारज्जन्ति; सारागा संयुज्जन्ति; संयोगा सङ्किलिस्सन्ति। अयं पि खो, महालि, हेतु अयं पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय। एवं पि सहेतू सप्पच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति।

"सञ्ञा च हिदं, महालि...पे०...सङ्खारा च हिदं, महालि, एकन्तदुक्खा [B.58] अभविस्संसु दुक्खानुपतिता दुक्खावक्कन्ता अनवक्कन्ता सुखेन, नयिदं सत्ता [R.70] सङ्खारेसु सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, महालि, सङ्खारा सुखा सुखानुपतिता सुखावक्कन्ता अनवक्कन्ता दुक्खेन, तस्मा सत्ता सङ्खारेसु सारज्जन्ति; सारागा संयुज्जन्ति; संयोगा सङ्किलिस्सन्ति। अयं पि खो, महालि, हेतु अयं पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय। एवं पि सहेतू सप्पच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति।

"विञ्ञाणं च हिदं, महालि, एकन्तदुक्खं अभविस्स दुक्खानुपतितं दुक्खावक्कन्तं अनवक्कन्तं सुखेन, नयिदं सत्ता विञ्ञाणस्मिं सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, महालि, विञ्ञाणं सुखं सुखानुपतितं सुखावक्कन्तं अनवक्कन्तं दुक्खेन, तस्मा सत्ता विञ्ञाणस्मिं

(महालि—) "भन्ते! इन प्राणियों के संक्लेश में कौन सा हेतु या प्रत्यय है ? या किन हेतु या प्रत्ययों से प्राणी संक्लिष्ट हो जाते हैं ?

(भगवान्—) "महालि! यदि रूप एकान्ततः दुःखमय ही होता एवं सुख से सर्वथा रहित होता तो प्राणी रूप में आसक्त ही न होते। क्यों कि, महालि! रूप में सुख का अधिक भाग दुःखमिश्रित रहता है, अतः प्राणी उस सुख के प्रलोभन से दुःखमिश्रित रूप में आसक्त होते रहते हैं। आसक्त होने से उस से सम्पर्क करते हैं। सम्पर्क के कारण वे संक्लेश में फँस जाते हैं। महालि! यह सम्पर्क (संयोग) भी हेतु है प्रत्यय है प्राणियों के संक्लिष्ट होते रहने का। इसलिये प्राणी हेतु और प्रत्यय के सहारे से रूप से संक्लिष्ट होते हैं।

"महालि! यदि वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...एकान्ततः दुःखमय ही होता ...पूर्ववत्...। ...प्रत्यय के सहारे से रूप से संक्लिष्ट होते हैं।

सारज्जन्ति; सारागा संयुज्जन्ति; संयोगा सङ्किलिस्सन्ति। अयं पि खो, महालि, हेतु अयं पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय। एवं पि सहेतू सप्पच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति'' ति।

''कतमो पन, भन्ते, हेतु कतमो पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया; कथं सहेतू सप्पच्चया सत्ता विसुज्झन्ती'' ति?

''रूपं च हिदं, महालि, एकन्तसुखं अभविस्स सुखानुपतितं सुखा- [N.299] वक्कन्तं अनवक्कन्तं दुक्खेन, नयिदं सत्ता रूपस्मिं निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, महालि, रूपं दुक्खं दुक्खानुपतितं दुक्खावक्कन्तं अनवक्कन्तं सुखेन, तस्मा सत्ता रूपस्मिं निब्बिन्दन्ति; निब्बिन्दं विरज्जन्ति; विरागा विसुज्झन्ति। अयं खो, महालि, हेतु अयं पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया; एवं सहेतू सप्पच्चया सत्ता विसुज्झन्ति।

''वेदना च हिदं, महालि, एकन्तसुखा अभविस्स...पे०...सञ्ञा च हिदं महालि ...पे०...सङ्खारा च हिदं, महालि, एकन्तसुखा अभविस्संसु...पे०...विञ्ञाणं च हिदं, महालि, एकन्तसुखं अभविस्स सुखानुपतितं सुखावक्कन्तं अनवक्कन्तं दुक्खेन, नयिदं सत्ता विञ्ञाणस्मिं निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, महालि, विञ्ञाणं दुक्खं दुक्खानुपतितं दुक्खावक्कन्तं अनवक्कन्तं सुखेन, तस्मा सत्ता विञ्ञाणस्मिं निब्बिन्दन्ति; निब्बिन्दं [R.71] विरज्जन्ति; विरागा विसुज्झन्ति। अयं खो, महालि, हेतु अयं पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया; एवं पि सहेतू सप्पच्चया सत्ता विसुज्झन्ति'' ति। •

६१. आदित्तसुत्तं

६५. सावत्थिनिदानं।''रूपं, भिक्खवे, आदित्तं, वेदना आदित्ता, सञ्ञा आदित्ता, सङ्खारा आदित्ता, विञ्ञाणं आदित्तं। एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं

(महालि—) ''फिर, भन्ते! प्राणियों की विशुद्धि का कौन हेतु, कौन प्रत्यय है, जिस के सहारे से प्राणी विशुद्ध होते हैं?''

(भगवान्—) ''महालि! यदि रूप एकान्ततः सुख ही सुख हो तथा दुःख से सर्वथा रहित होता तो प्राणी इस से वैराग्य न मानते। क्यों कि रूप में अधिक दुःख एवं अल्प सुख है अतः प्राणी रूप से वैराग्य मान बैठते हैं। इस वैराग्य के प्रभाव से उन के चित्त विशुद्ध हो जाते हैं। महालि! सत्त्वों की विशुद्धि का यही हेतु एवं प्रत्यय है। इस प्रकार हेतु, प्रत्यय के कारण प्राणी (सत्त्व) विशुद्ध होते हैं।

''वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के *व्याख्यान का विस्तार भी उपरिवत् कर लेना चाहिये*॥

•

६१. आदीप्तसूत्र : : रूप आदि प्रज्वलित है

६५. यह सूत्र भी श्रावस्ती में ही...। ''भिक्षुओ! रूप आदीप्त (जल रहा) है।

[B.59] पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि...सञ्ञाय पि...सङ्खारेसु पि...विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति। •

६२. निरुत्तिपथसुत्तं

६६. सावत्थिनिदानं। ''तयोमे, भिक्खवे, निरुत्तिपथा अधिवचनपथा पञ्ञत्ति-पथा असङ्किण्णा असङ्किण्णपुब्बा, न सङ्कीयन्ति, न सङ्कीयिस्सन्ति, अप्पटिकुट्ठा समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि। कतमे तयो ?

''यं, भिक्खवे, रूपं अतीतं निरुद्धं विपरिणतं 'अहोसी' ति तस्स सङ्खा, 'अहोसी' ति तस्स समञ्ञा, 'अहोसी' ति तस्स पञ्ञत्ति; न तस्स सङ्खा 'अत्थी' ति, न तस्स सङ्खा 'भविस्सती' ति।

''या वेदना अतीता निरुद्धा विपरिणता 'अहोसी' ति तस्सा सङ्खा, 'अहोसी' [N.300] ति तस्सा समञ्ञा, 'अहोसी' ति तस्सा पञ्ञत्ति; न तस्सा सङ्खा 'अत्थी' ति, न तस्सा सङ्खा 'भविस्सती' ति।

''या सञ्ञा...ये सङ्खारा अतीता निरुद्धा विपरिणता 'अहेसुं' ति तेसं सङ्खा,

---

...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान आदीप्त (जल रहा) है। भिक्षुओ! विद्वान् आर्यश्रावक ऐसा समझ कर रूप में...वेदना में...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान के प्रति विरक्त हो जाता है। तथा इस वैराग्य के प्रभाव से चित्ताश्रवों से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर उसे अपनी उस विमुक्ति का ज्ञान भी हो जाता है। तब उसे निश्चय हो जाता है—'मेरी जाति क्षीण हो गयी, मेरी धर्मसाधना सफल हो गयी, मेरे सभी कर्तव्य पूर्ण हो चुके, अब मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रहा'॥'' •

६२. निरुक्तिपथसूत्र : : ये तीन निरुक्तियाँ सभी के लिये समान हैं

६६. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! ये तीन निरुक्तिपथ (कथन की पद्धति) अधिवचनपथ (नामकरण की पद्धति) एवं प्रज्ञप्तिपथ (बोध की पद्धति) सृष्टि से आज तक यथापूर्व है, इन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। न आगे कभी हो पायगा, न आज ही कोई विद्वान् श्रमण या ब्राह्मण इन में कोई परिवर्तन करने का साहस कर पा रहा है। कौन से तीन ?

(१) जो रूप अतीत, निरुद्ध तथा विपरिणत (अन्यथात्वप्राप्त) हो गया, वह 'हुआ था'—ऐसा जाना जाता है। वह 'अभी है'—ऐसा नहीं जाना जाता, तथा वह 'होगा'—ऐसा भी नहीं जाना जाता।

'अहेसुं' ति तेसं समञ्ञा, 'अहेसुं' ति तेसं पञ्ञत्ति; न तेसं सङ्खा 'अत्थी' ति, न तेसं सङ्खा 'भविस्सन्ती' ति।

"यं विञ्ञाणं अतीतं निरुद्धं विपरिणतं 'अहोसी' ति तस्स सङ्खा, 'अहोसी' ति तस्स समञ्ञा, 'अहोसी' ति तस्स पञ्ञत्ति; न तस्स सङ्खा 'अत्थी' ति, न तस्स [R.72] सङ्खा 'भविस्सती' ति।

"यं, भिक्खवे, रूपं अजातं अपातुभूतं, 'भविस्सती' ति तस्स सङ्खा, 'भविस्सती' ति तस्स समञ्ञा, 'भविस्सती' ति तस्स पञ्ञत्ति; न तस्स सङ्खा 'अत्थी' ति, न तस्स सङ्खा 'अहोसी' ति।

"या वेदना अजाता अपातुभूता, 'भविस्सती' ति तस्सा सङ्खा, 'भविस्सती' ति तस्सा समञ्ञा, 'भविस्सती' ति तस्सा पञ्ञत्ति; न तस्सा सङ्खा 'अत्थी' ति, न तस्सा सङ्खा 'अहोसी' ति।

"या सञ्ञा...ये सङ्खारा अजाता अपातुभूता, 'भविस्सन्ती' ति तेसं सङ्खा, 'भविस्सन्ती' ति तेसं समञ्ञा, 'भविस्सन्ती' ति तेसं पञ्ञत्ति; न तेसं सङ्खा 'अत्थी' ति, न तेसं सङ्खा 'अहेसुं' ति।

"यं विञ्ञाणं अजातं अपातुभूतं, 'भविर्स्सती' ति तस्स सङ्खा, 'भविस्सती' ति तस्स समञ्ञा, 'भविस्सती' ति तस्स पञ्ञत्ति; न तस्स सङ्खा 'अत्थी' ति, न [B.60] तस्स सङ्खा 'अहोसी' ति।

"यं, भिक्खवे, रूपं अजातं पातुभूतं, 'अत्थी' ति तस्स सङ्खा, 'अत्थी' ति तस्स समञ्ञा, 'अत्थी' ति तस्स पञ्ञत्ति; न तस्स सङ्खा 'अहोसी' ति, न तस्स सङ्खा 'भविस्सती' ति।

"जो वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...ऐसा भी नहीं जाना जाता।

(२) "भिक्षुओ! जो रूप अभी (वर्तमान में) उत्पन्न नहीं हुआ है, अप्रादुर्भूत है, वह 'होगा'—ऐसा जाना जाता है। वह 'अभी है'—ऐसा नहीं कहा जा सकता और न 'था'—ऐसा कहलाता है।

"जो वेदना...संज्ञा...संस्कार...जो विज्ञान अजात है, अप्रादुर्भूत है, उस के विषय में 'होगा' यही कहा जा सकता है। न उसे 'है'—ऐसा, या 'था'—ऐसा कहा जा सकता है।

(३) "भिक्षुओ! जो रूप जात है, प्रादुर्भूत है, उसे 'है' ऐसा ही कहा जा सकता है, 'है'—ऐसा ही समझा जाता है। वह 'था' या 'होगा'—ऐसा नहीं कहला सकता।

"या वेदना जाता पातुभूता, 'अत्थी' ति तस्सा सङ्खा, 'अत्थी' ति तस्सा समञ्ञा, 'अत्थी' ति तस्सा पञ्ञत्ति; न तस्सा सङ्खा 'अहोसी' ति, न तस्सा सङ्खा 'भविस्सती' ति।

"या सञ्ञा...ये सङ्खारा जाता पातुभूता, 'अत्थी' ति तेसं सङ्खा, 'अत्थी' ति तेसं समञ्ञा, 'अत्थी' ति तेसं पञ्ञत्ति; न तेसं सङ्खा 'अहेसुं' ति, न तेसं सङ्खा 'भविस्सन्ती' ति।

[N.301] "यं विञ्ञाणं जातं पातुभूतं, 'अत्थी' ति तस्स सङ्खा, 'अत्थी' ति तस्स समञ्ञा, 'अत्थी' ति तस्स पञ्ञत्ति; न तस्स सङ्खा 'अहोसी' ति, न तस्स सङ्खा 'भविस्सती' ति।

"इमे खो, भिक्खवे, तयो निरुत्तिपथा अधिवचनपथा पञ्ञत्तिपथा असङ्किण्णा [R.73] असङ्किण्णपुब्बा, न सङ्कीयन्ति, न सङ्कीयिस्सन्ति, अप्पटिकुट्ठा समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि। ये पि ते, भिक्खवे, अहेसुं उक्कला वस्सभञ्ञा अहेतुकवादा अकिरियवादा नत्थिकवादा, ते पि मे तयो निरुत्तिपथे अधिवचनपथे पञ्ञत्तिपथे न गरहितब्बं नप्पटिक्कोसितब्बं अमञ्ञिसु। तं किस्स हेतु? निन्दाघट्टनब्यारोस-उपारम्भभया" ति॥ •

मज्झिमपण्णासकस्स उपयवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

उपयो बीजं उदानं, उपादानपरिवत्तं।

"जो वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान जात है, प्रादुर्भूत है...पूर्ववत्...।

भिक्षुओ! ये तीन कहने की पद्धतियाँ, समझाने की पद्धतियाँ सृष्टि से आज तक न बदली हैं, न आगे कभी बदलेंगी। यहाँ तक कि कोई भी विद्वान् श्रमण या ब्राह्मण इन का निर्वचन अन्यथा नहीं कर सकता।

भिक्षुओ! उत्कल (उड़ीसा प्रान्त) के निवासी वर्ष एवं भण्य नामक अहेतुवादी, अक्रियवादी एवं नास्तिक आचार्य भी इन उपर्युक्त तीनों निरुक्तिपथों के विषय में अन्यथा (हमारे कथन के विपरीत) कहने का साहस नहीं कर सकते, इस की कटु आलोचना या निन्दा नहीं कर सकते। वह किस कारण? वह इसलिये कि उन के ऐसा करने से उन को समाज में अपनी निन्दा, उपालम्भ एवं तिरस्कार का भय है"॥ •

मध्यमपञ्चाशत्क में उपयवर्ग प्रथम समाप्त॥

सत्तट्ठानं च सम्बुद्धो, पञ्चमहालि आदित्ता।
वग्गो निरुत्तिपथेन चा ति॥ ●

इस उपयवर्ग में अधोलिखित सूत्र व्याख्यात हुए हैं—१. उपयसूत्र, २. बीजसूत्र, ३. उदानसूत्र, ४. उपादानपरिवर्तसूत्र, ५. सप्तस्थानसूत्र, ६. सम्यक्सम्बुद्धसूत्र, ७. अनात्मलक्षणसूत्र, ८. महालिसूत्र, ९. आदीप्तसूत्र, एवं १०. निरुक्तिपथसूत्र॥ ●

२. अरहन्तवग्गो दुतियो

६३. उपादियमानसुत्तं

[B.61] ६७. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं" ति।

"उपादियमानो खो, भिक्खु, बद्धो मारस्स; अनुपादियमानो मुत्तो पापिमतो" ति।

[N.302, R.74] "अञ्ञातं भगवा, अञ्ञातं सुगता" ति।

"यथा कथं पन त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासी" ति?

"रूपं खो, भन्ते, उपादियमानो बद्धो मारस्स; अनुपादियमानो मुत्तो पापिमतो। वेदनं उपादियमानो बद्धो मारस्स; अनुपादियमानो मुत्तो पापिमतो। सञ्ञं...सङ्खारे...

---

२. द्वितीय अर्हद्वर्ग

६३. उपादीयमानसूत्र : : उपादान के त्याग से मुक्ति

६७. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती के** अनाथपिण्डिकश्रेष्ठी द्वारा निर्मापित, जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कोई भिक्षु भगवान् के सम्मुख उपस्थित होकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठते हुए उन से यों निवेदन करने लगा—"भन्ते! भगवान् मुझे, संक्षेप में, ऐसा उपदेश करें, जिसे सुन कर मैं एकान्त में, अप्रमत्त रहता हुआ सावधान हो कर उत्साहपूर्वक साधना कर सकूँ।"

"भिक्षु! उपादान (ग्रहण) के बन्धन में फँसा हुआ साधक मार के बन्धन में बँध जाता है, तथा उस उपादान को छोड़ देने वाला साधक उस पापी मार के बन्धन से मुक्त रहता है।"

"बस! भन्ते! मैंने आप के कथन का अर्थ जान लिया। मैं समझ गया!"

"भिक्षु! तुम मेरे इस संक्षिप्त कथन का क्या भाव समझे?"

"भन्ते! रूप के उपादान में फँसा हुआ साधक मार के बन्धन में बँध जाता है तथा उस (उपादान) से मुक्त साधक पापी मार के बन्धन से भी मुक्त रहता है।

"वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान के उपादान मे...पूर्ववत्...मुक्त रहता है।

विञ्ञाणं उपादियमानो बद्धो मारस्स; अनुपादियमानो मुत्तो पापिमतो। इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी'' ति।

''साधु साधु, भिक्खु! साधु खो एवं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासि। रूपं खो, भिक्खु, उपादियमानो बद्धो मारस्स; अनुपादियमानो मुत्तो पापिमतो। वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं उपादियमानो बद्धो मारस्स; अनुपादियमानो मुत्तो पापिमतो। इमस्स खो, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो'' ति।

अथ खो सो भिक्खु भगवता भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो सो भिक्खु एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया'' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पन सो भिक्खु अरहतं [B.62] अहोसी ति। ●

६४. मञ्ञमानसुत्तं

६८. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु ...पे०... भगवन्तं एतदवोच— ''साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु ...पे०... आतापी पहितत्तो [R.75] विहरेय्यं'' ति।

''मञ्ञमानो खो, भिक्खु, बद्धो मारस्स; अमञ्ञमानो मुत्तो पापिमतो'' ति।

''भन्ते! भगवान् के कथन का मैंने यही भाव समझा है।''

''ठीक है, भिक्षु! ठीक है! तुम ने मेरे कथन का बहुत ही उचित भाव समझा है। रूप के...बन्धन में...पूर्ववत्...मुक्त रहता है। मेरे संक्षिप्त कथन का यही विस्तृत अर्थ समझना चाहिये।''

फिर वह भिक्षु भगवान् के भाषण का अभिनन्दन, अनुमोदन कर, आसन से उठ कर, भगवान् को प्रणाम कर चला गया।

तब वह एकान्त में...साधना करता हुआ...पूर्ववत्...अर्हतों में एक हो गया॥ ●

६४. मन्यमानसूत्र : : मार से मुक्ति कैसे मिले ?

६८. ...**श्रावस्ती में** ही...। तब कोई भिक्षु...भगवान् से यों निवेदन करने लगा— ''भन्ते! मुझे संक्षेप में ऐसा धर्मोपदेश करें कि जिस के सहारे मैं एकान्त में बैठ कर धर्मसाधना कर सकूँ।''

"अञ्ञातं भगवा; अञ्ञातं सुगता" ति। "यथा कथं पन त्वं, भिक्खु, मया [N.303] सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासी" ति?

"रूपं खो, भन्ते, मञ्ञमानो बद्धो मारस्स; अमञ्ञमानो मुत्तो पापिमतो। वेदनं...सञ्ञं ...सङ्खारे...विञ्ञाणं मञ्ञमानो बद्धो मारस्स; अमञ्ञमानो मुत्तो पापिमतो। इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी" ति।

"साधु साधु, भिक्खु! साधु खो त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानसि। रूपं, भिक्खु, मञ्ञमानो बद्धो मारस्स; अमञ्ञमानो मुत्तो पापिमतो। वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं मञ्ञमानो बद्धो मारस्स; अमञ्ञमानो मुत्तो पापिमतो। इमस्स खो, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो" ति। अथ...पे०...अञ्ञतरो च पन सो भिक्खु अरहतं अहोसी ति। •

६५. अभिनन्दमानसुत्तं

६९. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन...पे०...पहितत्तो विहरेय्यं" ति।

"अभिनन्दमानो खो, भिक्खु, बद्धो मारस्स; अनभिनन्दमानो मुत्तो पापिमतो" ति।

"अञ्ञातं भगवा; अञ्ञातं सुगता" ति। "यथा कथं पन त्वं, भिक्खु, मया [B.63] सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासी" ति?

"भिक्षु! कोई (संसार को) अपना मानते हुए मार के बन्धन में बँधा रहता है, तथा कोई उसे अपना न मानते हुए मार के बन्धन से दूर रह पाता है।"

"जान गया, भन्ते! भगवन्! मैं आप के कथन का भाव समझ गया।" ...पूर्वसूत्रवत्...। ...एक अर्हत् हो गया॥ •

६५. अभिनन्दमानसूत्र : :अभिनन्दन मार के फन्दे में फँसाने वाला

६९. ...**श्रावस्ती में** ही...। कोई भिक्षु..."मुझे संक्षेप में ऐसा धर्मोपदेश करें कि मैं उस के सहारे से एकान्त में बैठ कर धर्मसाधना कर सकूँ।"

(भगवान्—) "भिक्षु! जो साधक मार के कार्य (संसार) का अभिनन्दन करता (सुख मानता) है वह मार के फन्दे में फँस जाता है तथा जो उस के इस कार्य का अभिनन्दन नहीं करता वह उस से मुक्त रह जाता है।"

"समझ गया, भन्ते! मैं आप के कथन का भाव समझ गया।"

"रूपं खो पन, भन्ते, अभिनन्दमानो बद्धो मारस्स; अनभिनन्दमानो मुत्तो पापिमतो। वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं अभिनन्दमानो बद्धो मारस्स; [R.76] अनभिनन्दमानो मुत्तो पापिमतो। इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी" ति।

"साधु साधु, भिक्खु! साधु खो त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासि। रूपं खो, भिक्खु, अभिनन्दमानो बद्धो मारस्स; अनभिनन्दमानो मुत्तो पापिमतो। वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं अभिनन्दमानो बद्धो मारस्स; [N.304] अनभिनन्दमानो मुत्तो पापिमतो। इमस्स खो, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो" ति। अथ...पे०...अञ्ञतरो च पन सो भिक्खु अरहतं अहोसी ति।

•

६६. अनिच्चसुत्तं

७०. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु...पे०...भगवन्तं एतदवोच— "साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु...पे०...आतापी पहितत्तो विहरेय्यं" ति।

"यं खो, भिक्खु, अनिच्चं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो" ति।

"अञ्ञातं भगवा; अञ्ञातं सुगता" ति। "यथा कथं पन त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासी" ति?

"रूपं खो, भन्ते, अनिच्चं; तत्र मे छन्दो पहातब्बो। वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा... विञ्ञाणं अनिच्चं; तत्र मे छन्दो पहातब्बो। इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी" ति।

"साधु साधु, भिक्खु! साधु खो त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासि। रूपं खो, भिक्खु, अनिच्चं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। वेदना अनिच्चा...सञ्ञा... सङ्खारा...विञ्ञाणं अनिच्चं; तत्र खो ते छन्दो पहातब्बो। इमस्स खो,

---

"क्या समझ गये... ?" ...पूर्वसूत्रवत्...। ...अर्हतों में एक अर्हत् हो गया॥ •

६६. अनित्यसूत्र : : छन्द का त्याग

७०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्...।

(भगवान्—) "भिक्षु! जो अनित्य है, उस में छन्द (कामना) का त्याग कर देना चाहिये।"

"समझ गया, भन्ते! मैं आप के कथन का भाव समझ गया।"

"क्या समझ गये... ?"

[R.77] भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो'' ति। अथ ...पे०... अञ्ञतरो च पन सो भिक्खु अरहतं अहोसी ति। •

६७. दुक्खसुत्तं

[B.64] ७१. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु ...पे०...आतापी पहितत्तो विहरेय्यं'' ति। ''यं खो, भिक्खु, दुक्खं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो'' ति।

''अञ्ञातं भगवा; अञ्ञातं सुगता'' ति। ''यथा कथं पन त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासी'' ति ?

[N.305] ''रूपं खो, भन्ते, दुक्खं; तत्र मे छन्दो पहातब्बो। वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा... विञ्ञाणं दुक्खं; तत्र मे छन्दो पहातब्बो। इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी'' ति।

''साधु साधु, भिक्खु! साधु खो त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासि। रूपं खो, भिक्खु, दुक्खं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। वेदना... सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं दुक्खं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। इमस्स खो, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो'' ति। अथ...पे०...अञ्ञतरो च पन सो भिक्खु अरहतं अहोसी ति। •

६८. अनत्तसुत्तं

७२. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो

भन्ते! रूप अनित्य है, उस में छन्द का प्रहाण कर देना चाहिये। ...पूर्ववत्...। ...वह भिक्षु अर्हतों में एक हो गया॥ •

६७. दुःखसूत्र : : कामना का त्याग

७१. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्...।

''भिक्षु! इस संसार में जो दुःख है उस की कामना नहीं करनी चाहिये।''

''क्या समझ गये?''

''भन्ते! रूप दुःख है, मुझे उस की कामना नहीं करनी चाहिये।'' ...पूर्ववत्...। ...वह भिक्षु अर्हतों में एक हो गया॥ •

६८. अनात्मसूत्र : : अनात्म पदार्थों में कामना का त्याग

७२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...कोई भिक्षु...।

सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु ...पे०...पहितत्तो विहरेय्यं" ति।

"यो खो, भिक्खु, अनत्ता; तत्र ते छन्दो पहातब्बो" ति।

"अञ्ञातं भगवा; अञ्ञातं सुगता" ति। "यथा कथं पन त्वं, भिक्खु, [R.78] मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासी" ति?

"रूपं खो, भन्ते, अनत्ता; तत्र मे छन्दो पहातब्बो। वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा... विञ्ञाणं अनत्ता; तत्र मे छन्दो पहातब्बो। इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी" ति।

"साधु साधु, भिक्खु! साधु खो त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासि। रूपं खो, भिक्खु, अनत्ता; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। वेदना... [B.65] सञ्ञा... सङ्खारा...विञ्ञाणं अनत्ता; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। इमस्स खो, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो" ति। अथ...पे०...अञ्ञतरो च पन सो भिक्खु अरहतं अहोसी ति। ●

६९. अनत्तनियसुत्तं

७३. सावत्थिनिदानं। अथ खो...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु [N.306] भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु...पे०...विहरेय्यं" ति।

"यं खो, भिक्खु, अनत्तनियं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो" ति।

"अञ्ञातं भगवा; अञ्ञातं सुगता" ति। "यथा कथं पन त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासी" ति?

(भगवान्—) "भिक्षु! जो यहाँ अनात्म पदार्थ है, उन की कामना नहीं करनी चाहिये।"

(भिक्षु—) "समझ गया, भन्ते! मैं आप के कथन का भाव समझ गया।"

(भगवान्—) "क्या समझ गये?"

(भिक्षु—) भन्ते! रूप अनात्म है, उस में पुझे किसी प्रकार की कामना नहीं करनी चाहिये। ...पूर्ववत्...। ...वह भिक्षु अर्हतों में एक हो गया॥ ●

६९. अनात्मीयसूत्र : : अनात्मीयों में कामना का त्याग

७३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...कोई भिक्षु...।

"जो कुछ भी आत्मीय पदार्थ लगते हों उन में कामना का त्याग कर देना चाहिये।" ...।

"रूपं खो, भन्ते, अनत्तनियं; तत्र मे छन्दो पहातब्बो। वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा... विञ्ञाणं अनत्तनियं; तत्र मे छन्दो पहातब्बो। इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी" ति।

"साधु साधु, भिक्खु! साधु खो त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासि। रूपं खो, भिक्खु, अनत्तनियं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। वेदना... [R.79] सञ्ञा... सङ्खारा...विञ्ञाणं अनत्तनियं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। इमस्स खो, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो" ति। अथ ...पे०...अञ्ञतरो च पन सो भिक्खु अरहतं अहोसी ति। ●

७०. रजनीयसण्ठितसुत्तं

७४. सावत्थिनिदानं। अथ खो...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु, यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा...पे०...विहरेय्यं" ति। "यं खो, भिक्खु, रजनीयसण्ठितं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो" ति।

"अञ्ञातं भगवा; अञ्ञातं सुगता" ति। "यथा कथं पन त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानासी" ति?

"रूपं खो, भन्ते, रजनीयसण्ठितं; तत्र मे छन्दो पहातब्बो। वेदना...सञ्ञा... सङ्खारा... विञ्ञाणं रजनीयसण्ठितं; तत्र मे छन्दो पहातब्बो। इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी" ति।

[N.307, B.66] "साधु साधु, भिक्खु! साधु खो त्वं, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स

"जान गया, भन्ते! जान गया। मैं आप के कथन का भाव समझ गया।"

"भिक्षु! तुम मेरे कथन का भाव क्या समझ गये?"

"इस संसार में, भन्ते! रूप आत्मीय लगता है, उस में कामना का प्रहाण कर देना चाहिये। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान आत्मीय लगता है...उस में भी कामना का प्रहाण कर देना चाहिये। ...पूर्वसूत्रवत्...। वह भिक्षु अर्हतों में एक हो गया॥ ●

७०. रजनीयसंस्थितसूत्र : :रागोत्पादक वस्तुओं में कामना का त्याग

७४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...कोई भिक्षु...।

"भिक्षु! इस संसार में जो राग उत्पादक वस्तुएँ हैं उन में कामना का त्याग कर देना चाहिये।"

"जान गया, भन्ते! मैं आपके कथन का भाव समझ गया।"

"तुम मेरे कथन का भाव क्या समझे?"

वित्थारेन अत्थं आजानासि। रूपं खो, भिक्खु, रजनीयसण्ठितं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं रजनीयसण्ठितं; तत्र ते छन्दो पहातब्बो। इमस्स खो, भिक्खु, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो'' ति। अथ...पे०... अञ्ञतरो च पन सो भिक्खु अरहतं अहोसी ति। •

७१. राधसुत्तं

७५. सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा राधो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; [R.80] उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—''कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ती'' ति?

''यं किञ्चि, राध, रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। या काचि वेदना...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागततपच्चुप्पन्नं...पे०...यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। एवं खो, राध, जानतो एवं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ती'' ति। अथ...पे०... अञ्ञतरो च पनायस्मा राधो अरहतं अहोसी ति। •

''भन्ते! संसार में रूप रागोत्पादक वस्तु है, उस में साधक को कामना का त्याग कर देना चाहिये। ...पूर्ववत्...। ...अन्त में वह भिक्षु अर्हतों में एक हो गया॥ •

७१. राधसूत्र : : अहङ्कार का नाश कैसे हो?

७५. ...**श्रावस्ती में** ही...। तब कभी आयुष्मान् राध भिक्षु भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ, तथा उन्हें प्रणाम कर यों बोला—''भन्ते! क्या जान और समझ कर इस विज्ञानसहित काय में तथा सभी बाह्य निमित्तों में अहङ्कार, ममत्व एवं मानानुशय (अभिमान में प्रवृत्ति) नहीं होते?''

(भगवान्—) ''राध! अतीत, अनागत, प्रत्युत्पन्न, आभ्यन्तर, बाह्य, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूरस्थ या समीपस्थ सभी रूप को—'मेरा नहीं है', 'मैं नहीं हूँ', 'मेरा नहीं है'—ऐसा यथार्थत: प्रज्ञापूर्वक देखता है। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...पूर्ववत्...। राध! इसे जान समझ कर साधक को इस विज्ञानयुक्त शरीर में तथा बाह्य सभी निमित्तों में, अहङ्कार, ममत्व एवं मानानुशय नहीं होते।'' तब...पूर्ववत्...राध...अर्हतों में एक हो गया॥ •

७२. सुराधसुत्तं

७६. सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा सुराधो भगवन्तं एतदवोच—"कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्ततेसु अहङ्कारममङ्कारमानापगतं मानसं होति, विधा समतिक्कन्तं सन्तं सुविमुत्तं" ति?

"यं किञ्चि, सुराध, रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं...पे०...यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा [N.308, R.81] अनुपादाविमुत्तो होति। या काचि वेदना...या काचि सञ्ञा...ये केचि [B.67] सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बा वेदना...सब्बा सञ्ञा...सब्बे सङ्खारा...सब्बं विञ्ञाणं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा अनुपादाविमुत्तो होति। एवं खो, सुराध, जानतो एव पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कार-ममङ्कारमानापगतं मानसं होति विधा समतिक्कन्तं सन्तं सुविमुत्तं" ति। अथ ...पे०...अञ्ञतरो च पनायस्मा सुराधो अरहतं अहोसी ति॥ ●

अरहन्तवग्गो दुतियो॥

तस्सुद्दानं

उपादियमञ्ञमाना, अथाभिनन्दमानो च।

---

७२. सुराधसूत्र : : अहङ्कार से चित्तविमुक्ति कैसे हो?

७६. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...तब आयुष्मान् सुराध भगवान् से निवेदन करने लगे—"भन्ते! क्या जान और देख कर इस विज्ञानयुक्त शरीर में तथा बाह्य निमित्तों में अहङ्कार, ममत्व एवं मानानुशय (अभिमान की प्रवृत्ति) रहित हो कर कोई विमुक्त होता है?"

"सुराध! जो कुछ भी अतीत, अनागत, प्रत्युत्पन्न...रूप हैं—सभी 'मेरा नहीं है', 'मैं नहीं हूँ' या 'मेरा आत्मा नहीं है'—ऐसा जान देख कर उपादानरहित हो कर कोई विमुक्त हो जाता है"। ...आयुष्मान् सुराध अर्हतों में एक हो गया॥ ●

अर्हद्वर्ग द्वितीय समाप्त॥

इस वर्ग में ये सूत्र व्याख्यात हैं—१. उपादीयमानसूत्र, २. मन्यमानसूत्र, ३.

अनिच्चं दुक्खं अनत्ता च, अनत्तनीयं रजनीयसण्ठितं।
राधसुराधेन ते दसा ति॥

अभिनन्दमानसूत्र, ४. अनित्यसूत्र, ५. दुःखसूत्र, ६. अनात्मसूत्र, ७. अनात्मीयसूत्र, ८. रजनीयसंस्थितसूत्र, ९. राधसूत्र, एवं १०. सुराधसूत्र॥

३. खज्जनीयवग्गो ततियो

७३. अस्सादसुत्तं

७७. सावत्थिनिदानं। ''अस्सुतवा, भिक्खवे, पुथुज्जनो रूपस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारानं... विञ्ञाणस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। सुतवा च खो, भिक्खवे, अरियसावको रूपस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं [R.82] पजानाति। वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारानं...विञ्ञाणस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाती'' ति। ●

७४. समुदयसुत्तं

७८. सावत्थिनिदानं। ''अस्सुतवा, भिक्खवे, पुथुज्जनो रूपस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। वेदनाय... सञ्ञाय...सङ्खारानं... विञ्ञाणस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च [N.309, B.68] निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। सुतवा च खो, भिक्खवे, अरियसावको रूपस्स समुंदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारानं...विञ्ञाणस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाती'' ति। ●

---

३. तृतीय खादनीयवर्ग

७३. आस्वादसूत्र : : आस्वाद का यथार्थ ज्ञान

७७. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! कोई अज्ञ, पृथग्जन रूप के आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण को यथार्थत: नहीं जानता है। वेदना के...संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण को यथार्थत: नहीं जानता है। परन्तु विद्वान् आर्यश्रावक रूप के आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण को यथार्थत: जानता है। वेदना के...संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण को यथार्थत: जानता है॥'' ●

७४. प्रथम समुदयसूत्र : : उत्पत्ति का ज्ञान

७८. ...**श्रावस्ती में** ही...।''भिक्षुओ! अज्ञ, पृथग्जन...रूप के समुदय (उत्पत्ति), अस्तगमन (नाश), आस्वाद, आदीनव (दोप) एवं नि:सरण (मुक्ति=छुटकारा) को यथार्थत: नहीं जानता। वेदना के...संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव, नि:सरण को यथार्थत: नहीं जानता है। परन्तु श्रुतवान्, आर्यश्रावक... रूप के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण को यथार्थत: जानता है।

७५. दुतियसमुदयसुत्तं

७९. सावत्थिनिदानं। "सुतवा, भिक्खवे, अरियसावको रूपस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। वेदना... सञ्ञाय... सङ्खारानं...विञ्ञाणस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाती" ति। ●

७६. अरहन्तसुत्तं

८०. सावत्थिनिदानं। "रूपं, भिक्खवे, अनिच्चं। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनिच्चं। यदनिच्चं तं [R.83] दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति...वेदनाय पि...सञ्ञाय पि...सङ्खारेसु पि...विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा

वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः जानता है"॥ ●

७५. द्वितीय समुदयसूत्र : : उत्पत्ति का ज्ञान

७९. ...**श्रावस्ती में** ही...। "विद्वान् आर्यश्रावक ही रूप के समुदय, अस्त, आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः जानता है। वेदना के, संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः जानता है"॥ ●

७६. प्रथम अर्हत्सूत्र : : अर्हत् की श्रेष्ठता

८०. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! रूप अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःखमय होता है। जो दुःखमय होगा वह निश्चय ही अनात्म होगा। अब जो अनात्म है वह 'न मेरा है', 'वह न मैं हूँ', 'न वह मेरी आत्मा है'—इस तथ्य को प्रज्ञा द्वारा यथार्थतः समझ लेना चाहिये। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान अनित्य है...पूर्ववत्...प्रज्ञा द्वारा यथार्थतः समझ लेना चाहिये। इस तरह समझ लेने के बाद, विद्वान् आर्यश्रावक रूप में, वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में उदासीन हो जाता है। उदासीनता से उन में वैराग्य अनुभव करता है। इस वैराग्य के प्रभाव से उस का चित्त आश्रवों से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर 'उसका चित्त विमुक्त हो गया'—उस को यह भान हो जाता है। तथा वह (इस अवस्था में पहुँचने पर) यह भी समझ लेता है—'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो गयी, मेरा कर्तव्य समाप्त हो चुका, अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है।

जाति, वुसित ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' पजानाति। यावता, भिक्खवे, सत्तावासा, यावता भवग्गं, एते अग्गा एते सेट्ठा लोकस्मिं यदिदं अरहन्तो'' ति।

८१. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

''सुखिनो वत अरहन्तो, तण्हा तेसं न विज्जति।
अस्मिमानो समुच्छिन्नो, मोहजालं पदालितं॥

[N.310, B.69] ''अनेजं ते अनुप्पत्ता, चित्तं तेसं अनाविलं।
लोके अनुपलित्ता ते, ब्रह्मभूता अनासवा॥

''पञ्चक्खन्धे परिञ्ञाय, सत्त सद्धम्मगोचरा।
पसंसिया सप्पुरिसा, पुत्ता बुद्धस्स ओरसा॥

''सत्तरतनसम्पन्ना, तीसु सिक्खासु सिक्खिता।
अनुविचरन्ति महावीरा, पहीनभयभेरवा॥

''दसहङ्गेहि सम्पन्ना, महानागा समाहिता।
एते खो सेट्ठा लोकस्मिं, तण्हा तेसं न विज्जति॥

भिक्षुओ! यहाँ इस संसार में जितने भी सत्त्वावास (लोक) हैं, जितने भी भवाग्र हैं, उन सब में अर्हत् ही श्रेष्ठ एवं अग्र (पूजनीय) है।

८१. भगवान् ने यह उपदेश किया। इसी के साथ भगवान् सुगत गाथाओं के माध्यम से यों बोले—

''संसार में अर्हत् (ज्ञानी) ही सर्वत: सुखी है; क्यों कि उन की कामादि में कोई तृष्णा अवशिष्ट नहीं रह गयी तथा उन का संसार के प्रति ममत्व एवं सर्वविध मोहजाल पूर्णत: विनष्ट हो चुका है॥

''उन का चित्त निश्चल (अनेज) एवं निर्विकार (दोषरहित) हो चुका है। लोक में वे पद्मपत्रवत् अनुपलिप्त हैं। वे शान्त (ब्रह्मभूत) तथा आश्रवरहित हो चुके हैं॥

''ये पाँचों स्कन्धों की यथार्थता जान चुके हैं, सात सद्धर्मों का भली भाँति अभ्यास कर चुके हैं। ये प्रशंसनीय सत्पुरुष भगवान् बुद्ध के प्रियपुत्र कहलाते हैं॥

''ये सातों रत्नों से समन्वित हैं, ये तीनों (शील, समाधि, प्रज्ञा) शिक्षाओं में शिक्षित महाबलशाली के रूप में विचरण करते रहते हैं; क्यों कि इन के समस्त भयभैरव विनष्ट हो चुके हैं॥

''ये दश अङ्गों से सम्पन्न हैं तथा पूर्णत: निष्पाप हैं (महानाग), ये ही लोक में श्रेष्ठ माने जाते हैं; क्यों कि इन में त्रिविध तृष्णा का लेशमात्र भी नहीं रह गया है॥

"असेखञाणमुप्पन्नं, अन्तिमोयं समुस्सयो।
यो सारो ब्रह्मचरियस्स, तस्मिं अपरपच्चया॥
"विधासु न विकम्पन्ति, विप्पमुत्ता पुनब्भवा। [R.84]
दन्तभूमिमनुप्पत्ता, ते लोके विजिताविनो॥
"उद्धं तिरियं अपाचीनं, नन्दी तेसं न विज्जति।
नदन्ति ते सीहनादं, बुद्धा लोके अनुत्तरा" ति॥ •

७७. दुतियअरहन्तसुत्तं,

८२. सावत्थिनिदानं। "रूपं, भिक्खवे, अनिच्चं। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तदनत्ता; यदनत्ता तं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं।

एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति...वेदनाय पि... सञ्ञाय पि... सङ्खारेसु पि...विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसित ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' पजानाति। यावता, भिक्खवे, सत्तावासा, यावता भवग्गं, एते अग्गा एते सेट्ठा लोकस्मिं यदिदं अरहन्तो" ति। •

"ये अशैक्ष्य पद प्राप्त कर चुके हैं। इस संसार में इन का यह जन्म अन्तिम है। धर्मसाधना के परम तत्त्व का भी ये स्वयं साक्षात्कार कर चुके हैं॥

"ये द्विविधा (संशयजनक परिस्थिति) में भी न घबराने वाले, पुनर्भव से सर्वथा मुक्त, दान्त भूमि को प्राप्त हैं अत एव लोकविजयी कहलाते हैं॥

"इन को इस संसार के ऊपर, नीचे, टेढे—कहीं भी आसक्ति (नन्दी) नहीं है। अत एव वे सभी परिषदों में सिंहनाद करते हैं। तथागत बुद्ध तो इन से भी श्रेष्ठ हैं॥" •

७७. द्वितीय अर्हत्सूत्र : : अर्हत् सर्वश्रेष्ठ

८२. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओं! रूप अनित्य है। जो पदार्थ अनित्य होता है वह दु:खमय होता है। जो दु:खमय होगा वह अनात्म होगा ही। वह अनात्म पदार्थ 'न वह मेरा है', 'न वह मैं हूँ', 'न वह मेरी आत्मा है'—इस बात को यथार्थत: प्रज्ञापूर्वक जान समझ लेना चाहिये।

वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान अनित्य है। ...पूर्ववत्...। इस बात को प्रज्ञाद्वारा यथार्थत: समझ लेना चाहिये।

भिक्षुओ! ऐसे समझता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार,

७८. सीहसुत्तं

[B.70] ८३. सावत्थिनिदानं। "सीहो, भिक्खवे, मिगराजा सायन्हसमयं आसया [N.311] निक्खमति; आसया निक्खमित्वा विजम्भति; विजम्भित्वा समन्ता चतुद्दिसा अनुविलोकेति; समन्ता चतुद्दिसा अनुविलोकेत्वा तिक्खत्तुं सीहनादं नदति; तिक्खत्तु [R.85] सीहनादं नदित्वा गोचराय पक्कमति। ये हि केचि, भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा सीहस्स मिगरञ्ञो नदतो सद्दं सुणन्ति; येभुय्येन भयं संवेगं सन्तासं आपज्जन्ति; बिलं बिलासया पविसन्ति; दकं दकासया पविसन्ति, वनं वनासया पविसन्ति; आकासं पक्खिनो भजन्ति। ये पि ते, भिक्खवे, रञ्ञो नागा गामनिगमराजधानीसु, दळ्हेहि वरत्तेहि बद्धा, ते पि तानि बन्धनानि सञ्छिन्दित्वा सम्पदालेत्वा भीता मुत्तकरीसं चजमाना येन वा तेन वा पलायन्ति। एवं महिद्धिको खो, भिक्खवे, सीहो मिगराजा तिरच्छानगतानं पाणानं एवं महेसक्खो एवं महानुभावो।

"एवमेव खो, भिक्खवे, तदा तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो धम्मं देसेति—'इति रूपं, इति रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो;

विज्ञान में उदासीनता...वैराग्य...तथा उस वैराग्य के प्रभाव से उस का चित्त आश्रवों से मुक्त हो जाता है। **विमुक्त होने पर**...पूर्ववत्...समस्त संसार में अर्हत् ही सर्वश्रेष्ठ हैं॥ •

७८. सिंहसूत्र : : बुद्धोपदेश से देवता भी भयभीत

८३. ...**श्रावस्ती में ही**...। "भिक्षुओ! मृगराज सिंह सायङ्काल में अपने स्थान (गुफा) से निकल कर जम्हाई लेता है। जम्हाई ले कर चारों दिशाओं का अवलोकन करता है। ऐसा करने के बाद वह तीन बार सिंहनाद करता है। इस सिंहनाद के बाद, अपने भोजन की खोज में निकलता है।

"भिक्षुओ! उस समय जितने भी पशु-पक्षी उस मृगराज सिंह की गर्जना सुनते हैं वे अत्यधिक उद्विग्न होते हुए भयभीत हो जाते हैं। उन में से बिलों में रहने वाले बिलों में जा कर छिप जाते हैं, जलचर पुनः जल में प्रविष्ट हो जाते हैं, जंगलों के झाड़ों में रहने वाले घोर जंगल में छिप जाते हैं, तथा पक्षी आकाश में उड़ जाते हैं। भिक्षुओ! उस समय राजाओं के हाथी भी, जो गाँवों, कस्बों या नगरों में सुदृढ़ शृङ्खलाओं से बन्धे रहते हैं वे उस मृगराज के भय से, अपने उन सुदृढ बन्धनों को तोड़ कर मल मूत्र त्यागते हुए इधर उधर, जहाँ भी शरणस्थल मिलता है वहाँ, जा कर छिप जाते हैं। भिक्षुओ! वह मृगराज सिंह उन पशुपक्षियों के लिये इतना भयोत्पादक एवं उद्वेगकारी तथा प्रतापी होता है।

"इसी तरह, भिक्षुओ! जब तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध...पूर्ववत्...देवमनुष्यों के

इति वेदना...इति सञ्ञा...इति सङ्खारा...इति विञ्ञाणं, इति विञ्ञाणस्स समुदयो, इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति। ये पि ते, भिक्खवे, देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला उच्चेसु विमानेसु चिरट्ठितिका ते पि तथागतस्स धम्मदेसनं सुत्वा येभुय्येन भयं संवेगं सन्तासं आपज्जन्ति—'अनिच्चा व किर, भो, मयं समाना धुवम्हा ति अमञ्ञिम्ह। असस्सता व किर, भो, मयं समाना सस्सतम्हा ति अमञ्ञिम्ह। मयं पि किर, भो, अनिच्चा अद्धुवा असस्सता सक्कायपरियापन्ना' ति। एवं महिद्धिको खो, भिक्खवे, तथागतो सदेवकस्स लोकस्स एवं महेसक्खो एवं महानुभावो'' ति।

८४. इदमवोच भगवा...पे०...एतदवोच सत्था—

''यथा बुद्धो अभिञ्ञाय, धम्मचक्कं पवत्तयि। [R.86]
सदेवकस्स लोकस्स, सत्था अप्पटिपुग्गलो॥

''सक्कायं च निरोधं च, सक्कायस्य च सम्भवं। [B.71]
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥

''ये पि दीघायुका देवा, वण्णवन्तो यसस्सिनो। [N.312]
भीता सन्तासमापादुं, सीहस्सेवितरे मिगा॥

शास्ता इस प्रकार धर्मोपदेश करने लगते हैं—'यह रूप है, यह रूप का उत्पाद है, यह रूप का नाश है; यह वेदना है...यह संज्ञा है...यह संस्कार है...यह विज्ञान है, यह उस का उत्पाद है, यह उस का विनाश है'। उस समय दीर्घायु (वृद्ध), रूपवान्, सर्वथा सुखी, ऊँचे ऊँचे विमानों (देवप्रासादों) में चिरकाल से रहने वाले देवता भी भगवान् के इस उदात्त धर्मोपदेश को सुन कर अपने विषय में भयविह्वल एवं उद्विग्न हो उठते हैं—'अरे! हम वस्तुतः अनित्य (विनाशशील) होते हुए भी, अपने अविवेक के कारण स्वयं को नित्य मान रहे थे, अध्रुव (अस्थायी) होते हुए भी अपने को ध्रुव (नित्य) मान रहे थे, अशाश्वत होते हुए भी अपने को शाश्वत मान रहे थे। अरे! हम भी, इतनी सुखसम्पदा एवं बलवीर्य से सम्पन्न होते हुए भी, अनित्य, अध्रुव एवं अशाश्वत ही हैं। हम तो सत्कायदृष्टि से आवृत हैं'। भिक्षुओ! तथागत का यह ओजःपूर्ण धर्मोपदेश देवताओं के लिये भी यों त्रासदायक ही होता है''॥

८४. भगवान् ने यह कहा। ...पूर्ववत्...शास्ता यों बोले—''जब अप्रतिद्वन्द्वी, शास्ता, तथागत बुद्ध ने स्वयं साक्षात्कार कर देवलोक सहित समस्त लोक के लिये धर्मचक्र का प्रवर्तन किया॥

''उसमें सत्कायदृष्टिनिरोध, एवं सत्कायोत्पाद, दुःखशान्ति की परा काष्ठा तक पहुँचाने वाले आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का उपदेश किया॥

अवीतिवत्ता सक्कायं, अनिच्चा किर भो मयं।
सुत्वा अरहतो वाक्यं, विप्पमुत्तस्स तादिनो'' ति॥ •

७९. खज्जनीयसुत्तं

८५. सावत्थिनिदानं। ''ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरमाना अनुस्सरन्ति सब्बे ते पञ्चुपादानक्खन्धे अनुस्सरन्ति एतेसं वा अञ्ञतरं। कतमे पञ्च? 'एवंरूपो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति— इति वा हि, भिक्खवे, अनुस्सरमानो रूपञ्ञेव अनुस्सरति। 'एवंवेदनो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति—इति वा हि, भिक्खवे, अनुस्सरमानो वेदनं येव अनुस्सरति। 'एवंसञ्ञी अहोसिं अतीतमद्धानं' ति...'एवंसङ्खारो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति... 'एवंविञ्ञाणो अहोसिं अतीतमद्धानं'—इति वा हि, भिक्खवे, अनुस्सरमानो विञ्ञाणमेव अनुस्सरति।

''किञ्च, भिक्खवे, रूपं वदेथ? रुप्पती ति खो. भिक्खवे, तस्मा 'रूपं' ति वुच्चति। केन रुप्पति? सीतेन पि रुप्पति, उण्हेन पि रुप्पति, जिघच्छाय पि रुप्पति, पिपासाय पि रुप्पति, डंसमकसवातातपसिरिंसपसम्फस्सेन पि रुप्पति; रुप्पती ति खो, भिक्खवे, तस्मा 'रूपं' ति वुच्चति।

''उसे सुन कर बहुत लम्बी आयु वाले (वरिष्ठ), रूपसम्पन्न, यशस्वी देवता भी उसी तरह उद्विग्न हो उठे जैसे जङ्गल में रहने वाले पशु-पक्षी, सिंहनाद सुन कर उत्त्रस्त हो जाते हैं॥

''उन्हें तब वैसे विमुक्त अर्हत् का वचन सुन कर यही चिन्ता सताने लगी—'अरे! हमारा चित्त तो सत्कायदृष्टि से आवृत है, हमारा शरीर विनाशवान् है'''॥ •

७९. खादनीयसूत्र : : देवता दूर से ही प्रणाम करते हैं

८५. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! जो भी कोई श्रमण या ब्राह्मण अपने अनेकविध पूर्व जन्मों का स्मरण करते हैं तो वे इन्हीं पाँचों उपादानस्कन्धों का ही स्मरण करता है। 'भूतकाल में मैं ऐसे रूप वाला था'—ऐसा स्मरण करते समय वह रूप का ही स्मरण करता है। 'भूतकाल में मैं ऐसी वेदना वाला था'—ऐसा स्मरण करते हुए वह वेदना का स्मरण करता है। 'भूतकाल में मैं ऐसी संज्ञा वाला...ऐसे संस्कारों वाला...ऐसे विज्ञान वाला था'—ऐसा स्मरण करते हुए वह विज्ञान का ही स्मरण करता है।

''भिक्षुओ! इसे 'रूप' क्यों कहा जाता है? क्यों कि, भिक्षुओ! यह प्रभावित होता है। किस से प्रभावित होता है? यह शीत से प्रभावित होता है, उष्ण (गर्मी) से, भूख से, प्यास से, डाँस मच्छर मक्खी वायु धूप, सर्प आदि कीड़ों मकोड़ों से प्रभावित होता है। अतः भिक्षुओ! इसे 'रूप' कहते हैं।

किञ्च, भिक्खवे, वेदनं वदेथ? वेदयती ति खो, भिक्खवे, तस्मा 'वेदना' ति वुच्चति। किञ्च वेदयति? सुखं पि वेदयति, दुक्खं पि वेदयति, अदुक्खमसुखं [R.87] पि वेदयति; वेदयती ति खो, भिक्खवे, तस्मा 'वेदना' ति वुच्चति।

"किञ्च, भिक्खवे, सञ्ञं वदेथ? सञ्जानाती ति खो, भिक्खवे, तस्मा 'सञ्ञा' ति वुच्चति। किञ्च सञ्जानाति? नीलं पि सञ्जानाति, पीतकं पि सञ्जानाति, लोहितकं पि सञ्जानाति, ओदातं पि सञ्जानाति। सञ्जानाती ति खो, भिक्खवे, तस्मा 'सञ्ञा' ति वुच्चति।

"किञ्च, भिक्खवे, सङ्खारे वदेथ? सङ्खतमभिसङ्खरोन्ती ति खो, [B.72, N.313] भिक्खवे, तस्मा 'सङ्खारा' ति वुच्चन्ति। किञ्च सङ्खतमभिसङ्खरोन्ति? रूपं रूपत्ताय सङ्खतमभिसङ्खरोन्ति, वेदनं वेदनत्ताय सङ्खतमभिसङ्खरोन्ति, सञ्ञं सञ्ञत्ताय सङ्खतमभिसङ्खरोन्ति, सङ्खारे सङ्खारत्ताय सङ्खतमभिसङ्खरोन्ति, विञ्ञाणं विञ्ञाणत्ताय सङ्खतमभिसङ्खरोन्ति। सङ्खतमभि-सङ्खरोन्ती ति खो, भिक्खवे, तस्मा 'सङ्खारा' ति वुच्चति।

"किञ्च, भिक्खवे, विञ्ञाणं वदेथ? विजानाती ति खो, भिक्खवे, तस्मा 'विञ्ञाणं' ति वुच्चति। किञ्च विजानाति? अम्बिलं पि विजानाति, तित्तकं पि विजानाति, कटुकं पि विजानाति, मधुरं पि विजानाति, खारिकं पि विजानाति,

---

"फिर, भिक्षुओ! वेदना को 'वेदना' क्यों कहा जाता है? क्यों कि, भिक्षुओ! यह अनुभव करता है अतः 'वेदना' कहा जाता है। क्या अनुभव करता है? यह सुख का भी अनुभव करता है, दुःख का भी अनुभव करता है, अदुःख-असुख का भी अनुभव करता है। भिक्षुओ! क्यों कि अनुभव करता है अतः इसे 'वेदना' कहा जाता है।

"फिर, भिक्षुओ! 'संज्ञा' क्यों कहा जाता है? क्यों कि जानता है, इसलिये 'संज्ञा' कहा जाता है। क्या जानता है? नील (वर्ण) को भी, पीत को भी, रक्त को भी, श्वेत (अवदात=शुभ्र) को भी जानता है। भिक्षुओ! क्यों कि जानता है, अतः इसे 'संज्ञा' कहा जाता है।

"फिर, भिक्षुओ! संस्कार क्यों कहा जाता है? भिक्षुओ! क्यों कि संस्कृत (कृत्रिम) का अभिसंस्करण करता (रचता) है इसलिये 'संस्कार' कहा जाता है। भिक्षुओ! किस संस्कृत का अभिसंस्करण करता है? रूपत्व के लिये संस्कृत रूप का...वेदनात्व के लिये संस्कृत वेदना का...संज्ञात्व के लिये संस्कृत संज्ञा का...संस्कारत्व के लिये संस्कृत संस्कारों का...विज्ञानत्व के लिये संस्कृत विज्ञान का अभिसंस्करण करता है। भिक्षुओ! संस्कृत का अभिसंस्करण करता है अतः 'संस्कार' कहा जाता है।

"फिर, भिक्षुओ! विज्ञान क्यों कहा जाता है? भिक्षुओ! क्यों कि पहचानता है,

अखारिकं पि विजानाति, लोणिकं पि विजानाति, अलोणिकं पि विजानाति। विजानाती ति खो, भिक्खवे, तस्मा 'विञ्ञाणं' ति वुच्चति।

"तत्र, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खो एतरहि रूपेन खज्जामि। अतीतम्पाहं अद्धानं एवमेव रूपेन खज्जिं, सेय्यथापि एतरहि पच्चुप्पन्नेन रूपेन खज्जामि। अहञ्चेव खो पन अनागतं रूपं अभिनन्देय्यं, अनागतम्पाहं अद्धानं एवमेव रूपेन खज्जेय्यं, सेय्यथापि एतरहि पच्चुप्पन्नेन रूपेन खज्जामी' ति। सो इति पटिसङ्खाय अतीतस्मिं रूपस्मिं अनपेक्खो होति; अनागतं रूपं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नस्स रूपस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति।

"अहं खो एतरहि वेदनाय खज्जामि अतीतम्पाहं अद्धानं एवमेव वेदनाय खज्जिं, [R.88] सेय्यथापि एतरहि पच्चुप्पन्नेन वेदनाय खज्जामी। अहञ्चेव खो पन अनागतं वेदनं अभिनन्देय्यं, अनागतम्पाहं अद्धानं एवमेव वेदनाय खज्जेय्यं, सेय्यथापि एतरहि पच्चुप्पन्नेन वेदनाय खज्जामी' ति। सो इति पटिसङ्खाय अतीताय वेदनाय अनपेक्खो होति; अनागतं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नस्स वेदनाय निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति।

अत: 'विज्ञान' कहा जाता है। क्या पहचानता है ? अम्ल रस को...तिक्त रस को...कटु रस को...मधुर रस को...क्षार (लवण) रस को...खारे के अतिरिक्त (फीके) रस को...नमकीन रस को भी पहचानता है। क्यों कि पहचानता है, अत: 'विज्ञान' कहलाता है।

"भिक्षुओ! वहाँ कोई विद्वान् आर्यश्रावक ऐसा मनन करता है—मैं इस 'समय रूप का भोग्य बना हुआ हूँ। अतीत काल में भी मैं रूप का भोग्य बना हुआ था, जैसे कि आज वर्तमान रूप का भोग्य बना हुआ हूँ। यदि मैं अपने अनागत रूप का अभिनन्दन करूँगा तो मैं भविष्य में रूप का भोग्य बना रहूँगा, जैसे कि आज के रूप का भोग्य बना हुआ हूँ।' वह आर्यश्रावक ऐसे मनन कर अपने अतीत रूप के प्रति अनपेक्ष (निश्चिन्त) हो जाता है तथा अनागत रूप का अभिनन्दन नहीं करता, तथा वर्तमान रूप के प्रति स्वचित्त में उपेक्षा तथा वैराग्य धारण कर लेता है जिस से उस के वृत्तिनिरोध की स्थिति बन जाती है।

"'मैं आज वेदनाओं का उपभोग्य बना हुआ हूँ। अतीत काल में भी मैं ऐसी वेदनाओं का उपभोग्य बना हुआ था, जैसे कि आज वर्तमान वेदनाओं का उपभोग्य बना हुआ हूँ। यदि मैं अब अनागत वेदनाओं का अभिनन्दन करूँगा तो भविष्य में भी इन वेदनाओं का उपभोग्य बना रहूँगा।' यह सोचकर वह आर्यश्रावक अतीत वेदनाओं की उपेक्षा करता है, अनागत वेदनाओं का अभिनन्दन नहीं करता तथा वर्तमान वेदनाओं की उपेक्षा करता हुआ उन में वैराग्य द्वारा निरोध की ओर अग्रसर हो जाता है।

"अहं खो एतरहि सञ्ञाय खज्जामि...पे०...अहं खो एतरहि सङ्खारेहि; अतीतम्पाहं अद्धानं एवमेव सङ्खारेहि खज्जिं, सेय्यथापि एतरहि पच्चुप्पन्नेहि [B.73] सङ्खारेहि खज्जामी ति। अहञ्चेव खो पन अनागते सङ्खारे अभिनन्देय्यं; [N.314] अनागतम्पाहं अद्धानं सङ्खारेहि खज्जेय्यं, सेय्यथापि एतरहि पच्चुप्पन्नेहि सङ्खारेहि खज्जामी' ति। सो इति सङ्खाय अतीतेसु अनपेक्खो होति; अनागते नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नानं सङ्खारानं निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति।

"अहं खो एतरहि विञ्ञाणेन खज्जामि अतीतं पि अद्धानं एवमेव विञ्ञाणेन खज्जिं, सेय्यथापि एतरहि पच्चुप्पन्नेन विञ्ञाणेन खज्जामि। अहञ्चेव खो पन अनागतं विञ्ञाणं अभिनन्देय्यं; अनागतम्पाहं अद्धानं एवमेव विञ्ञाणेन खज्जेय्यं, सेय्यथापि एतरहि पच्चुप्पन्नेन विञ्ञाणेन खज्जामी' ति। सो इति पटिसङ्खाय अतीतस्मिं विञ्ञाणस्मिं अनपेक्खो होति; अनागतं विञ्ञाणं नाभिनन्दति; पच्चुप्पन्नस्स विञ्ञाणस्स निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति।

"तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"'मैं आज संज्ञाओं का उपभोग्य बना हुआ हूँ...पूर्ववत्...संस्कारों का उपभोग्य बना हुआ हूँ। अतीत में भी मैं इन्हीं संस्कारों का उपभोग्य बना हुआ था, जैसे कि आज वर्तमान संस्कारों का उपभोग्य बना हुआ हूँ। यदि मैं अनागतकालीन संस्कारों का अभिनन्दन करूँगा तो भविष्य में भी इन संस्कारों का उपभोग्य बना रहूँगा, जैसे कि मैं आज वर्तमान संस्कारों का उपभोग्य बना हुआ हूँ।' यह सोच कर वह अतीत संस्कारों के प्रति निश्चिन्त (अनपेक्ष) हो जाता है, अनागत संस्कारों का अभिनन्दन नहीं करता तथा वर्तमान संस्कारों की उपेक्षा करता हुआ उन के प्रति वैराग्य से निरोध की ओर बढ जाता है।

"'मैं आज विज्ञान का उपभोग्य बना हुआ हूँ...पूर्ववत्...'। यह सोच कर वह अतीत विज्ञान की चिन्ता (अपेक्षा) नहीं करता, भविष्यगत विज्ञान का अभिनन्दन नहीं करता तथा वर्तमान विज्ञान की उपेक्षा करता हुआ उस के प्रति वैराग्य से निरोध की ओर अग्रसर हो जाता है।

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! —'रूप नित्य है या अनित्य?'

"अनित्य है, भन्ते!"

"जो अनित्य है वह दुःख है या सुख?"

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

[R.89] "वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिह, भिक्खवे, यं किञ्चि रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। या काचि वेदना...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं ...पे०...यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं।

[N.315] "अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको अपचिनाति, नो आचिनाति; पजहति, न उपादियति; विसिनेति, न उस्सिनेति; विधूपेति, न सन्धूपेति। किञ्च अपचिनाति, नो

"दुःख है, भन्ते!"

"जो अनित्य है, दुःख है, विनाशी है उस के विषय में यह सोचना उचित होगा—'यह मेरा है', या 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है'?"

"नहीं, भन्ते!"

"वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...पूर्ववत्....'यह मेरी आत्मा है'?"

"नहीं, भन्ते!"

"इसलिये, भिक्षुओ! जो भी अतीत अनागत प्रत्युत्पन्न रूप, फिर भले ही वह अध्यात्म हो या बाह्य...पूर्ववत्...। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान अतीत अनागत प्रत्युत्पन्न हैं...उन के विषय में—'यह मेरा है', या 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है'—आदि बातें प्रज्ञापूर्वक सोचना उचित ही होगा।

"भिक्षुओ! ऐसा आर्यश्रावक किसी को त्यागता ही है, किसी का परिग्रह करता है; किसी को छोड़ता ही है, किसी का ग्रहण नहीं करता; किसी को दूर हटाता ही है,

आचिनाति? रूपं अपचिनाति, नो आचिनाति; वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे... [B.74] विञ्ञाणं अपचिनाति, नो आचिनाति। किञ्च पजहति, न उपादियति? रूपं पजहति, न उपादियति; वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं पजहति, न उपादियति। किञ्च विसिनेति, न उस्सिनेति? रूपं विसिनेति, न उस्सिनेति; वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे... विञ्ञाणं विसिनेति, न उस्सिनेति। किञ्ञ विधूपेति, न सन्धूपेति? रूपं विधूपेति, न [R.90] सन्धूपेति; वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं विधूपेति, न सन्धूपेति।

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति...वेदनाय पि...सञ्ञाय पि...सङ्खारेसु पि...विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' पजानाति।

"अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु नेवाचिनाति न अपचिनाति, अपचिनित्वा ठितो नेव पजहति न उपादियति, पजहित्वा ठितो नेव विसिनेति न उस्सिनेति, विसिनेत्वा ठितो-नेव विधूपेति न सन्धूपेति। विधूपेत्वा ठिंतो किञ्च नेवाचिनाति न अपचिनाति, अपचिनित्वा ठितो रूपं नेवाचिनाति न अपचिनाति; अपचिनित्वा ठितो वेदनं...

किसी को समीप नहीं बुलाता; किसी को बुझाता ही है, किसी को सुलगाता नहीं है। भिक्षुओ! वह किस को त्यागता ही है, या किसका परिग्रह नहीं करता? वह रूप को, वेदना को, संस्कारों को, विज्ञान को त्यागता ही है, उन का परिग्रह नहीं करता। किस को छोड़ता ही है, ग्रहण नहीं करता? रूप को...विज्ञान को छोड़ता ही है, ग्रहण नहीं करता। किस को दूर हटाता ही है, समीप नहीं बुलाता? रूप को...विज्ञान को दूर हटाता ही है, समीप नहीं बुलाता। किस को बुझाता ही है, सुलगाता नहीं है? रूप को...विज्ञान को बुझाता ही है, सुलगाता नहीं है।

"भिक्षुओ! इस तरह चिन्तन मनन करता हुआ वह आर्यश्रावक रूप में भी...वेदना में भी...संज्ञा में भी...संस्कारों में भी...विज्ञान में भी निर्वेद को प्राप्त हो जाता है। इस निर्वेद से उस का वैराग्य वृद्धिङ्गत होता है तथा उस वैराग्य के प्रभाव से चित्ताश्रवों से मुक्त हो जाता है...पूर्ववत्...मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा—यह जान जाता है।

"भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु न किसी का आदान करता है न अपचय (निरोध); इस स्थिति में पहुँच कर यह न किसी का त्याग करता है न ग्रहण। तथा इस स्थिति में पहुँच कर न किसी को दूर हटाता है न समीप बुलाता है। तथा इस स्थिति में पहुँच कर न किसी को बुझाता है न किसी को सुलगाता ही है। इस स्थिति में पहुँच कर वह किस का आदान नहीं करता या किस का अपचय नहीं करता? इस स्थिति में पहुँच कर वह न रूप का

सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं नेवाचिनाति न अपचिनाति। अपचिनित्वा ठितो किञ्च नेव पजहति न उपादियति? पजहित्वा ठितो रूपं नेव पजहति न उपादियति; पजहित्वा ठितो वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं नेव पजहति न उपादियति। पजहित्वा ठितो किञ्च नेव विसिनेति न उस्सिनेति? विसिनेत्वा ठितो रूपं नेव विसिनेति न उस्सिनेति; विसिनेत्वा ठितो वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं नेव विसिनेति न उस्सिनेति। विसिनेत्वा ठितो किञ्च नेव विधूपेति न सन्धूपेति? विधूपेत्वा ठितो रूपं नेव विधूपेति न [N.316] सन्धूपेति; विधूपेत्वा ठितो वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं नेव विधूपेति न सन्धूपेति। विधूपेत्वा ठितो एवंविमुत्तचित्तं खो, भिक्खवे, भिक्खुं सइन्दा देवा सब्रह्मका सपजापतिका आरका व नमस्सन्ति—

[R.91] 'नमो ते पुरिसाजञ्ञ, नमो ते पुरिसुत्तम।
यस्स ते नाभिजानाम, यं पि निस्साय झायसी''' ति॥ •

८०. पिण्डोल्यसुत्तं

[B.75] ८६. एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे। अथ खो भगवा किस्मिञ्चिदेव पकरणे भिक्खुसङ्घं पणामेत्वा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवर-मादाय कपिलवत्थुं पिण्डाय पाविसि। कपिलवत्थुस्मिं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं

आदान करता है न अपचय; न वेदना का, न संज्ञा का, न संस्कारों का, न विज्ञान का...पूर्ववत्...अपचय नहीं करता। इस स्थिति में पहुँच कर वह क्या नहीं त्यागता, क्या नहीं ग्रहण करता? ...रूप को...वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को न त्यागता है, न ग्रहण ही करता है। इस स्थिति में पहुँच कर वह किस को दूर नहीं हटाता, न किसी को समीप ही बुलाता है? ...रूप को...पूर्ववत्...विज्ञान को न दूर ही हटाता है, न उसे समीप ही बुलाता है। इस स्थिति में पहुँच कर वह किस को नहीं बुझाता या किस को नहीं सुलगाता? ...रूप...पूर्ववत्...विज्ञान को न बुझाता ही है, न सुलगाता है। ऐसे विमुक्तचित्त साधक भिक्षु को (देवराज) इन्द्र सहित सभी देव तथा ब्रह्मा सहित सभी प्रजापति (उपब्रह्मा) देवता दूर से या समीप से उभयथा, यों प्रणाम ही करते हैं—

'हे पुरुषश्रेष्ठ! आप को नमस्कार है। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। वह इसलिये कि हम भी उस को जान पावें जिस के सहारे से आप सतत ध्यानमग्न रहते हैं'''॥

८०. पिण्डोल्यसूत्र : : श्मशान की जली लकड़ी से तुलना

८६. एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्य प्रदेश की राजधानी **कपिलवस्तु** के न्यग्रोधाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब भगवान् ने, किसी प्रसङ्ग में, भिक्षुसङ्घ को अपने पास से दूर हटाकर प्रातःकाल शरीर के वस्त्र व्यवस्थित कर अपना पात्रचीवर ले

पिण्डपातपटिक्कन्तो येन महावनं तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। महावनं अज्झोगाहेत्वा बेलुवलट्ठिकाय मूले दिवाविहारं निसीदि।

अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि— "मया खो भिक्खुसङ्घो पबाळ्हो। सन्तेत्थ भिक्खू नवा अचिरपब्बजिता अधुनागता इमं धम्मविनयं। तेसं ममं अपस्सन्तानं सिया अञ्ञथत्तं सिया विपरिणामो। सेय्यथापि नाम वच्छस्स तरुणस्स मातरं अपस्सन्तस्स सिया अञ्ञथत्तं सिया विपरिणामो, एवमेव सन्तेत्थ भिक्खू नवा अचिरपब्बजिता अधुनागता इमं धम्मविनयं तेसं ममं अपस्ससन्तानं सिया अञ्ञथत्तं सिया विपरिणामो। सेय्यथापि नाम बीजानं तरुणानं उदकं अलभन्तानं सिया अञ्ञथत्तं सिया विपरिणामो, एवमेव सन्तेत्थ...पे०...तेसं ममं अलभन्तानं दस्सनाय सिया अञ्ञथत्तं सिया विपरिणामो। यन्नूनाहं यथेव मया पुब्बे भिक्खुसङ्घो अनुग्गहितो, एवमेव एतरहि अनुग्गण्हेय्यं भिक्खुसङ्घं" ति।

अथ खो ब्रह्मा सहम्पति भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय— [R.92] सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य एवमेव—ब्रह्मलोके अन्तरहितो भगवतो पुरतो पातुरहोसि। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—

कर भिक्षाहेतु कपिलवस्तु में प्रविष्ट हुए। कपिलवस्तु में भिक्षा कर, उस से भोजन कर, उस कर्म से निवृत्त हो कर दैवसिक साधनाहेतु महावन में जा कर एक विल्ववृक्ष के नीचे जा कर विराजे।

तब भगवान् को एकान्त में चिन्तन करते हुए यह विचार प्रस्फुटित हुआ—"मैंने इस भिक्षुसङ्घ को दूर भगा दिया। उस सङ्घ में ऐसे भिक्षु भी होंगे जो धर्मदीक्षा ले कर अभी अब इस सङ्घ में प्रविष्ट हुए हैं। वे मुझे न देख पायँगे, मुझ से न मिल पायँगे तो, हो सकता है, इस बात का उन पर विपरीत प्रभाव पड़े। जैसे कोई गौ का बछड़ा अपनी माता (गौ) को न देखने से उदास हो जाता है, हो सकता है, इस बात का प्रभाव, वैसे ही उन नवप्रव्रजित भिक्षुओं पर भी पड़े। फिर दूसरी बात यह भी है कि जैसे नये रोपे हुए धान के पौधों को यदि निरन्तर जल न मिले तो वे म्लान हो जाते हैं, सूखने लगते हैं; उसी तरह ये अचिर प्रव्रजित भिक्षु मुझे न पा कर धर्म के प्रति उदासीन न हो जायँ। अतः मुझे यही करना चाहिये कि मैं जैसे पहिले इस भिक्षुसङ्घ पर अनुग्रह रखता था, वैसे ही अब भी इस पर अनुग्रह रखूँ॥"

तब, सहम्पति ब्रह्मा ने भगवान् के चिन्तन को स्वचित्त से जान कर...पूर्ववत्...भगवान् से यों निवेदन किया—"आप का चिन्तन, भन्ते! उचित ही है। आप ने भिक्षुसङ्घ को दूर

''एवमेतं, भगवा; एवमेतं, सुगत! भगवतो, भन्ते, भिक्खुसङ्घो पबाळ्हो। सन्तेत्थ [N.317] भिक्खू नवा अचिरपब्बजिता अधुनागता इमं धम्मविनयं। तेसं भगवन्तं अपस्सन्तानं सिया अञ्ञथत्तं सिया विपरिणामो। सेय्यथापि नाम वच्छस्स तरुणस्स मातरं अपस्सन्तस्स सिया अञ्ञथत्तं सिया विपरिणामो, एवमेव सन्तेत्थ भिक्खू नवा [B.76] अचिरपब्बजिता अधुनागता इमं धम्मविनयं तेसं भगवन्तं अपस्सन्तानं सिया अञ्ञथत्तं सिया विपरिणामो। सेय्यथापि नाम बीजानं तरुणानं उदकं अलभन्तानं सिया अञ्ञथत्तं सिया विपरिणामो, एवमेव सन्तेत्थ भिक्खू नवा अचिरपब्बजिता अधुनागता इमं धम्मविनयं तेसं भगवन्तं अलभन्तानं दस्सनाय सिया अञ्ञथत्तं सिया विपरिणामो। अभिनन्दतु, भन्ते, भगवा भिक्खुसङ्घं; अभिवदतु, भन्ते, भगवा भिक्खुसङ्घं। यथेव भगवता पुब्बे भिक्खुसङ्घो अनुग्गहितो, एवमेव एतरहि अनुग्गण्हातु भिक्खुसङ्घं'' ति।

अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति भगवतो अधिवासनं विदित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायि॥

अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन निग्रोधारामो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं अभिसङ्खासि यथा ते भिक्खू एकद्वीहिकाय सारज्जमानरूपा येनाहं तेनुपसङ्कमेय्युं। ते पि भिक्खू एकद्वीहिकाय सारज्जमानरूपा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं [R.93] अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो ते भिक्खू भगवा एतदवोच—

''अन्तमिदं, भिक्खवे, जीविकानं यदिदं पिण्डोल्यं। अभिसापोयं, भिक्खवे, लोकस्मिं पिण्डोलो विचरसि पत्तपाणी ति। तं च खो एतं, भिक्खवे, कुलपुत्ता उपेन्ति

तो अवश्य हटा दिया, परन्तु उस सङ्घ में ऐसे अचिर प्रव्रजित...पूर्ववत्...वैसे ही अब भी उस पर अनुग्रह रखें।''

भगवान् ने मौन भाव से ब्रह्मा का निवेदन स्वीकार कर लिया। यह जान कर वे सहम्पति ब्रह्मा भगवान् को प्रणाम कर पुन: अपने ब्रह्मलोक चले गये।

तब, भगवान् सायङ्काल समाधिभावना से उठ कर पुन: न्यग्रोधाराम में आ कर प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हुए तथा ऋद्धिबल से सङ्कल्प किया कि समस्त भिक्षुसङ्घ मेरे सम्मुख उपस्थित हो। इस ऋद्धिबल के प्रभाव से उसी समय अतीव श्रद्धा के साथ भगवान् के सम्मुख उपस्थित हो कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। उस समय भगवान् ने भिक्षुसङ्घ को यह धर्मोपदेश किया—

''भिक्षुओ! यह भिक्षा पर आश्रित जीवन समाज में सब से निकृष्ट (हीन) जीवन

अत्थवसिका, अत्थवसं पटिच्च; नेव राजाभिनीता न चोराभिनीता न इणट्टा न भयट्टा न आजीविकापकता; अपि च खो ओतिण्णाम्ह जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायसेहि दुक्खोतिण्णा दुक्खपरेता अप्पेव नाम इमस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा ति।

''एवं पब्बजितो चायं, भिक्खवे, कुलपुत्तो। सो च होति अभिज्झालु [N.318] कामेसु तिब्बसारागो ब्यापन्नचित्तो पदुट्ठमनसङ्कप्पो मुट्ठस्सति असम्पजानो असमाहितो विब्भन्तचित्तो पाकतिन्द्रियो। सेय्यथापि, भिक्खवे, छवालातं उभतोपदित्तं मज्झे [B.77] गूथगतं नेव गामे कट्ठत्थं फरति नारञ्ञे कट्ठत्थं फरति। तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि गिहिभोगा च परिहीनो सामञ्ञत्थं च न परिपूरेति।

''तयोमे, भिक्खवे, अकुसलवितक्का—कामवितक्को, ब्यापादवितक्को, विहिंसा-वितक्को। इमे च खो, भिक्खवे, तयो अकुसलवितक्का क्व अपरिसेसा निरुज्झन्ति ? चतूसु वा सतिपट्ठानेसु सुप्पतिट्ठितचित्तस्स विहरतो अनिमित्तं वा समाधिं भावयतो। यावञ्चिदं

कहलाता है। क्यों कि पात्र हाथ में ले कर गली गली भिक्षाहेतु घूमना—यह एक प्रकार का अभिशाप (लाञ्छन) ही है। परन्तु तुम लोग अपने समस्त मानापमान की उपेक्षा करते हुए भी यह भिक्षाटन करते रहते हो। भिक्षुओ! कोई कुलपुत्र यह निकृष्ट कर्म भी अपने किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही स्वीकार करता है; अन्यथा वह किसी राजा द्वारा दण्डित नहीं है, न किन्हीं चौर डाकुओं से भयत्रस्त ही है, न किसी का ऋण ले कर भागा है, न किसी अन्य से भयभीत है, न उसे अपनी आजीविका की ही चिन्ता है। अपि तु वह यह सोचता है—हम जन्म, जरा, मृत्यु, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास के जञ्जाल में फँसे हुए हैं, हम इन से कैसे मुक्त हों, हम इन का अन्त कैसे कर पायँगे!

''तब वह कुलपुत्र इस धर्मविनय में प्रव्रजित हो जाता है। यदि वह प्रव्रजित हो कर भी लोभी, कामभोगों में तीव्र राग रखने वाला, मलिन चित्त, कलुषित सङ्कल्पों वाला, मूढस्मृति, असम्प्रज्ञात (असावधान), असमाहित, विभ्रान्तचित्त एवं असंयतेन्द्रिय ही रहे तो, भिक्षुओ! ऐसा प्रव्रजित कुलपुत्र श्मशान में फेंके गये उस दग्ध काष्ठ के समान है जो दोनों ओर से जली हुई तथा बीच में रक्त मांस आदि से लिप्त हो। जो ग्राम या जङ्गल—कहीं भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं कर सकती। ऐसा कुलपुत्र मेरी दृष्टि में गृहस्थ के कामभोगों से भी विरत रह जाता है तथा अपने प्रव्रज्या के कर्म तो पूर्ण कर ही नहीं पाता।

''भिक्षुओ! ये तीन अकुशल (पापमय) वितर्क हैं—१. कामवितर्क, २. व्यापादवितर्क, ३. विहिंसावितर्क। ये तीनों अकुशल वितर्क कहाँ पहुँच कर सर्वथा निरुद्ध होते हैं ? जिस का चित्त चार स्मृतिप्रस्थानों में सुप्रतिष्ठित हो चुका हो, या फिर अनिमित्त

भिक्खवे, अलमेव अनिमित्तो समाधि भावेतुं। अनिमित्तो, भिक्खवे, समाधि भावितो बहुलीकतो महप्फलो होति महानिसंसो।

"द्वेमा, भिक्खवे, दिट्ठियो—भवदिट्ठि च विभवदिट्ठि च। तत्र खो, भिक्खवे, [R.94] सुतवा अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'अत्थि नु खो तं किञ्चि लोकस्मिं यमहं उपादियमानो न वज्जवा अस्सं' ति? सो एवं पजानाति—'नत्थि नु खो तं किञ्चि लोकस्मिं यमहं उपादियमानो न वज्जवा अस्सं। अहं हि रूपञ्ञेव उपादियमानो उपादियेय्यं वेदनञ्ञेव...सञ्ञञ्ञेव...सङ्खारे येव विञ्ञाणञ्ञेव उपादिमानो उपादियेय्यं तस्स मम अस्स उपादानपच्चया भवो; भवपच्चया जाति; जातिपच्चया जरामरणं सोक-परिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवेय्युं। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो अस्सा' ति।

"तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

समाधि में पूर्णत: अभ्यस्त हो चुका हो। अत:, भिक्षुओ! इस अनिमित्त समाधि की भावना करनी चाहिये; क्यों कि, भिक्षुओ! इस समाधि की साधना तथा इस का अभ्यास अत्यधिक शुभफलप्रद होता है।

(इसी तरह) "भिक्षुओ! दो मिथ्यादृष्टियाँ हैं; १. भवदृष्टि एवं २. विभवदृष्टि। उन के विषय में कोई श्रुतवान् आर्यश्रावक यों विचारने लगता है—'क्या लोक में ऐसी कोई वस्तु है जिसे पा कर मैं दोषों से बचा रह सकूँ।' तब उसे समझ में आता है—'इस लोक में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिस के सहारे दोषों से सर्वथा बचा जा सके। मैं उस को प्राप्त करने के प्रयास में रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार या विज्ञान को ही प्राप्त कर पाऊँगा। इन के कारण मुझे वैसे उपादान के कारण भव, भव के कारण जाति, जाति के कारण जरा, मरण, शोक, परिदेवादि प्राप्त होने लगेंगे। इस तरह मेरे लिये समग्र दु:खस्कन्ध की उत्पत्ति होने लगेगी।

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"जो अनित्य है वह दु:खमय होगा या सुखमय?"

"दु:खमय, भन्ते!"

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"। [N.319]

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं...पे०...। तस्मातिह भिक्खवे एवं पस्सं ...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती ति॥ ●

८१. पालिलेय्यसुत्तं

८७. एकं समयं भगवा कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय कोसम्बिं पिण्डाय पाविसि। कोसम्बियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो सामं सेनासनं संसामेत्वा [B.78, R.95] पत्तचीवरमादाय अनामन्तेत्वा उपट्ठाके अनपलोकेत्वा भिक्खुसङ्घं एको अदुतियो चारिकं पक्कामि।

अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु अचिरपक्कन्तस्स भगवतो येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"एसावुसो, आनन्द, भगवा सामं सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय अनामन्तेत्वा उपट्ठाके अनपलोकेत्वा भिक्खुसङ्घं एको अदुतियो चारिकं पक्कन्तो" ति।

"यस्मिं, आवुसो, समये भगवा सामं सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय

"तब फिर जो अनित्य है, दुःखमय है, विपरिणामधर्मा (विनाशी) है उस के विषय में यह सोचना उचित होगा—'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है'?"

"नहीं, भन्ते!"

"वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...पूर्ववत्...। इसलिये भिक्षुओ! ऐसा समझते हुए...पूर्ववत्...मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—ऐसा जान जाता है॥" ●

८१. पारिलेयसूत्र : : आश्रवक्षय का उपाय

८७. एक समय भगवान् (बुद्ध) कौशाम्बीस्थित घोषिताराम विहार में साधनाहेतु विराजमान थे। तब भगवान् प्रातःकाल, वस्त्र सुव्यवस्थित कर, पात्र चीवर ले कर कौशाम्बी में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। तदनन्तर, भोजनकर्म से निवृत्त हो कर अपना आसन स्वयं ही लपेट कर, पात्र चीवर ले कर, किसी भी सहायक को कुछ न बता कर तथा भिक्षुसङ्घ से कुछ कहे विना एकाकी ही चारिकाहेतु निकल पड़े।

तब किसी भिक्षु ने, भगवान् द्वारा चारिका पर जाने के कुछ ही समय बाद, आयुष्मान् आनन्द को यह घटना बतायी।

(घटना सुन कर आयुष्मान् आनन्द ने उस भिक्षु को समझाया—"भिक्षु!) भगवान्

अनामन्तेत्वा उपट्ठाके अनपलोकेत्वा भिखुसङ्घं एको अदुतियो चारिकं पक्कमति, एको व भगवा तस्मिं समये विहरितुकामो होति; न भगवा तस्मिं समये केनचि अनुबन्धितब्बो होती'' ति।

अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन पालिलेय्यकं तदवसरि। तत्र सुदं भगवा पालिलेय्यके विहरति भद्दसालमूले। अथ खो सम्बहुला भिक्खू येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो तो भिक्खू आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोचुं—''चिरस्सुता खो नो, आवुसो आनन्द, भगवतो सम्मुखा धम्मी कथा; इच्छाम मयं, आवुसो आनन्द, भगवतो सम्मुखा धम्मिं कथं सोतुं'' ति।

अथ खो आयस्मा आनन्दो तेहि भिक्खूहि सिद्धं येन पालिलेय्यकं भद्दसालमूलं येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। [N.320] एकमन्तं निसिन्ने खो ते भिक्खू भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि [R.96] समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—''कथं नु खो जानतो कथं पस्सतो अनन्तरा आसवानं खयो होती'' ति? अथ खो भगवा तस्स भिक्खुनो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय भिक्खू आमन्तेसि—''विचयसो

जब ऐसा करते हुए चारिकाहेतु निकलते हैं तो उस समय किसी भी भिक्षु द्वारा भगवान् का अनुगमन नहीं करना चाहिये; क्यों कि भगवान् उस समय एकाकी विचरण करना चाहते हैं।''

तब भगवान् क्रमशः चारिका करते हुए पारिलेयकवन में पहुँचे। वहाँ वे किसी छायायुक्त, सघन शालवृक्ष के नीचे साधनाहेतु विराजमान हुए। इसी अन्तराल में, बहुत से भिक्खु आयुष्मान् आनन्द के पास आये, तथा कुशलमङ्गल प्रश्नान्तर एक ओर बैठते हुए उन से पूछा—''आयुष्मन् आनन्द! भगवान् के श्रीमुख से धर्मोपदेश सुने हमें बहुत समय हो गया। हम आज भी उन के श्रीमुख से वैसा ही धर्मोपदेश सुनना चाहते हैं।''

यह सुन कर आयुष्मान् आनन्द उन भिक्षुओं को साथ ले कर पारिलेयकवन में, जहाँ भगवान् शालवृक्ष के नीचे साधनाहेतु विराजमान थे, पहुँचे। वहाँ भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठे उन भिक्षुओं को भगवान् ने धार्मिक कथा कह कर सन्तुष्ट, सम्प्रहृष्ट एवं समुत्तेजित किया। उस समय उन में से किसी एक भिक्षु के चित्त में यह सन्देह उठा—''कैसा जानते, कैसा समझते हुए भिक्षु के चित्त में स्थित आश्रवों का क्षय हो पाता है?''

देसितो, भिक्खवे, मया धम्मो; विचयसो देसिता चत्तारो सतिपट्ठाना; विचयसो देसिता चत्तारो सम्मप्पधाना; विचयसो देसिता चत्तारो इद्धिपादा; विचयसो देसितानि [B.79] पञ्चिन्द्रियानि; विचयसो देसितानि पञ्च बलानि; विचयसो देसिता सत्तबोज्झङ्गा; विचयसो देसितो अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो। एवं विचयसो देसितो, भिक्खवे, मया धम्मो। एवं विचयसो देसिते खो, भिक्खवे, मया धम्मे अथ च पनिधेकच्चस्स भिक्खुनो एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'कथं नु खो जानतो कथं पस्सतो अनन्तरा आसवानं खयो होती' ति?

"कथं च, भिक्खवे, जानतो कथं पस्सतो अनन्तरा आसवानं खयो होति? इध भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति। या खो पन सा, भिक्खवे, समनुपस्सना सङ्खारो हेसो। सो पन सङ्खारो किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो? अविज्जासम्फस्सजेन, भिक्खवे, वेदयितेन फुट्ठस्स अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स उप्पन्ना तण्हा; ततोजो सो सङ्खारो। इति खो, भिक्खवे, सो पि सङ्खारो अनिच्चो सङ्खतो पटिच्चसमुप्पन्नो। सा पि तण्हा अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना। सा पि वेदना...सो पि फस्सो अनिच्चो सङ्खतो पटिच्चसमुप्पन्नो। सा पि अविज्जा अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना। एवं पि खो, भिक्खवे, जानतो एवं पस्सतो अनन्तरा आसवानं खयो होति। [R.97]

तब भगवान् ने उस भिक्षु के चित्त में उठे सन्देह को जान कर भिक्षु को यों सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! मैंने तुम को धर्म का विश्लेषण कर दिया, इसी प्रकार चारों स्मृतिप्रस्थानों का भी विभागशः विश्लेषण कर दिया चारों सम्यक्प्रधानों का, चारों ऋद्धिपादों का, पाँचों इन्द्रियों तथा बलों का भी विश्लेषण कर दिया। इसी प्रकार सात बोध्यङ्गों तथा आठ अष्टाङ्गिक मार्गों का भी। यों मैंने धर्म के सभी अङ्गों का विश्लेषण कर दिया है। इस तरह मेरे द्वारा इस धर्म का विभागशः व्याख्यान कर दिये जाने के बाद भी भिक्षु! तुम्हारे मन में यह सन्देह क्यों उठ रहा है कि क्या जानने समझने के बाद आश्रवों का क्षय हो पाता है?

"भिक्षु! तेरे सन्देह का समाधान भी सुन ले, बता रहा हूँ। यहाँ कोई अज्ञ पृथग्जन...रूप को आत्मा समझता है। भिक्षुओ! ऐसा जानना या ऐसा समझना भी 'संस्कार' कहलाता है। इस संस्कार का निदान, समुदय, जाति या प्रभव क्या है? भिक्षुओ! अविद्या संस्पर्श से जो वेदना होती है उस से उस अज्ञ जन को तृष्णा उत्पन्न होती है। उसी से यह संस्कार उत्पन्न होता है। भिक्षुओ! वह संस्कार...वह तृष्णा...वह स्पर्श...वह अविद्या अनित्य, संस्कृत एवं प्रतीत्यसमुत्पन्न (सापेक्ष) है—ऐसा जान कर, ऐसा समझ कर साधक के आश्रवों का क्षय होता है। (१)

"न हेव खो रूपं अत्ततो समनुपस्सति; अपि च खो रूपवन्तं अत्तानं समनुपस्सति। या खो पन सा, भिक्खवे, समनुपस्सना सङ्खारो सो। सो पन सङ्खारो किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो? अविज्जासम्फस्सजेन, भिक्खवे, वेदयितेन फुट्ठस्स अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स उप्पन्ना तण्हा; ततोजो सो सङ्खारो। इति खो, भिक्खवे, सो पि सङ्खारो अनिच्चो सङ्खतो पटिच्चसमुप्पन्नो। सा पि तण्हा...सा पि [N.321] वेदना...सो पि फस्सो...सा पि अविज्जा अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना। एवं पि खो, भिक्खवे, जानतो एवं पस्सतो अनन्तरा आसवानं खयो होति।

"न हेव खो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं अत्तानं समनुपस्सति; अपि च खो अत्तनि रूपं समनुपस्सति। या खो पन सा, भिक्खवे, समनुपस्सना सङ्खारो सो। सो [B.80] पन सङ्खारो किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो? अविज्जा सम्फस्स-जेन, भिक्खवे, वेदयितेन फुट्ठस्स अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स उप्पन्ना तण्हा; ततोजो सो सङ्खारो। इति खो, भिक्खवे, सो पि सङ्खारो अनिच्चो सङ्खतो पटिच्चसमुप्पन्नो। सा पि तण्हा...सा पि वेदना...सो पि फस्सो...सा पि अविज्जा अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना। एवं पि खो, भिक्खवे, जानतो एवं पस्सतो अनन्तरा आसवानं खयो होति।

"न हेव खो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं अत्तानं समनुपस्सति, न अत्तनि रूपं समनुपस्सति; अपि च खो रूपस्मिं अत्तानं समनुपस्सति। या खो पन सा, भिक्खवे, समनुपस्सना सङ्खारो सो। सो पन सङ्खारो किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो? अविज्जासम्फस्सजेन, भिक्खवे, वेदयितेन फुट्ठस्स अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स उप्पन्ना तण्हा; ततोजो सो सङ्खारो। इति खो, भिक्खवे, सो पि सङ्खारो अनिच्चो सङ्खतो [R.98] पटिच्चसमुप्पन्नो। सा पि तण्हा...सा पि वेदना...सो पि फस्सो...सा पि अविज्जा

जब वह साधक रूप को अपना नहीं समझता, परन्तु अपने को रूपवान् समझता है। भिक्षुओ! ऐसा समझना भी 'संस्कार' ही कहलाता है। इस संस्कार का निदान, समुदय, जाति या प्रभव क्या है? अविद्यासंस्पर्शजन्य वेदना से स्पृष्ट अज्ञ जन को तृष्णा उत्पन्न होती है, उसी से उद्भूत (ततोजो) यह संस्कार है। यों, भिक्षुओ! वह संस्कार अनित्य, संस्कृत एवं प्रतीत्यसमुत्पन्न ही है। वह तृष्णा, वह वेदना, वह स्पर्श, वह अविद्या भी अनित्य संस्कृत एवं प्रतीत्यसमुत्पन्न ही है—ऐसा जानते ऐसा समझते हुए साधक के आश्रवों का क्षय होता है। (२)

"वही अज्ञ साधक जब रूप को अपना नहीं समझता, अपने को रूपवान् भी नहीं समझता, परन्तु अपने में रूप को समझता है। उस का यह ऐसा समझना उस का संस्कार

अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना। एवं पि खो, भिक्खवे, जानतो...पे०...आसवानं खयो होति।

"न हेव खो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं अत्तानं, न अत्तनि रूपं, न रूपस्मिं अत्तानं समनुपस्सति; अपि च खो वेदनं अत्ततो समनुपस्सति, अपि च खो वेदनावन्तं अत्तानं समनुपस्सति, अपि च खो अत्तनि वेदनं समनुपस्सति, अपि च खो वेदनाय अत्तानं समनुपस्सति; अपि च खो सञ्ञं...अपि च खो सङ्खारे अत्ततो समनुपस्सति, अपि च खो सङ्खारवन्तं अत्तानं समनुपस्सति, अपि च खो अत्तनि सङ्खारे समनुपस्सति, अपि च खो सङ्खारेसु अत्तानं समनुपस्सति; अपि च खो विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, अपि च खो विञ्ञाणवन्तं अत्तानं, अपि च खो अत्तनि विञ्ञाणं, [N.322] अपि च खो विञ्ञाणस्मिं अत्तानं समनुपस्सति। या खो पन सा, भिक्खवे, समनुपस्सना सङ्खारो सो। सो पन सङ्खारो किंनिदानो...पे०...किंपभवो? अविज्जासम्फस्सजेन, भिक्खवे, वेदयितेन फुट्ठस्स अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स उप्पन्ना तण्हा; ततोजो सो सङ्खारो। इति खो, भिक्खवे, सो पि सङ्खारो अनिच्चो सङ्खतो पटिच्चसमुप्पन्नो। सा पि [B.81] तण्हा...सा पि वेदना...सो पि फस्सो...सा पि अविज्जा अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना। एवं पि खो, भिक्खवे, जानतो एवं पस्सतो अनन्तरा आसवानं खयो होति।

"न हेव खो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न वेदनं अत्ततो समनुपस्सति...न सञ्ञं... न सङ्खारे...न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, अपि च खो एवंदिट्ठि होति—'सो अत्ता सो लोको, एसो पेच्च भविस्सामि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो' ति। या खो पन सा, भिक्खवे, सस्सतदिट्ठि सङ्खारो सो। सो पन सङ्खारो किंनिदानो ...पे०...एवं पि, भिक्खवे, जानतो एवं पस्सतो अनन्तरा आसवानं खयो होति।

"न हेव खो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न वेदनं...न सञ्ञं...न सङ्खारे...न [R.99] विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति; ना पि एवंदिट्ठि होति—'सो अत्ता सो लोको, सो पेच्च

ही है। ...पूर्ववत्...प्रतीत्यसमुत्पन्न ही है—ऐसा जानते समझते हुए साधक के आश्रवों का क्षय हो जाता है। (३)

"वही साधक जब रूप को अपना नहीं समझता, अपने को रूपवान् भी नहीं समझता तथा अपने में रूप को भी नहीं समझता, परन्तु रूप में अपने को समझ बैठता है। यह समझ भी, भिक्षुओ! उस का संस्कार ही है...पूर्ववत्...वह अविद्या भी अनित्य संस्कृत एवं प्रतीत्यसमुत्पन्न ही है—ऐसा समझते हुए साधक के आश्रवों का क्षय हो जाता है। (४)

भविस्सामि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो' ति। अपि च खो एवंदिट्ठि होति—'नो चस्सं नो च मे सिया नाभविस्सं न मे भविस्सती' ति। या खो पन सा, भिक्खवे, उच्छेददिट्ठि सङ्खारो सो। सो पन सङ्खारो किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो? अविज्जासम्फस्सजेन, भिक्खवे, वेदयितेन फुट्ठस्स अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स उप्पन्ना तण्हा; ततोजो सो सङ्खारो। इति खो, भिक्खवे, सो पि सङ्खारो अनिच्चो...पे०...एवं पि खो, भिक्खवे, जानतो एवं पस्सतो अनन्तरा आसवानं खयो होति।

"न हेव खो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न वेदनं...न सञ्ञं...न सङ्खारे...न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति...पे०...न विञ्ञाणस्मिं अत्ततो समनुपस्सति, ना पि एवंदिट्ठि होति—'सो अत्ता सो लोको, सो पेच्च भविस्सामि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो' ति; ना पि एवंदिट्ठि होति—'नो चस्सं नो च मे सिया नाभविस्सं न मे भविस्सती' ति; अपि च खो कङ्खी होति विचिकिच्छी अनिट्ठङ्गतो सद्धम्मे। या खो पन सा, भिक्खवे, कङ्खिता विचिकिच्छिता अनिट्ठङ्गतता सद्धम्मे सङ्खारो सो। सो पन [N.323] सङ्खारो किंनिदानो किंसमुदयो किंजातिको किंपभवो? अविज्जासम्फस्सजेन, भिक्खवे, वेदयितेन फुट्ठस्स अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स उप्पन्ना तण्हा; ततोजो सो सङ्खारो। इति खो, भिक्खवे, सो पि सङ्खारो अनिच्चो सङ्खतो पटिच्चसमुप्पन्नो। सा पि तण्हा

(रूप की तरह ही वेदना... संज्ञा... संस्कार... विज्ञान के **चतुष्क** *बना कर उन से आश्रवों के क्षय का विस्तार भी कर लें।)*

"वही साधक जब रूप को अपना...पूर्ववत्...विज्ञान में भी अपने को नहीं समझता, परन्तु वह ऐसे मत (सिद्धान्त) को मानने वाला होता है—'जो आत्मा है वही लोक है, अत: मैं, इस देहपात के बाद, नित्य, ध्रुव, शाश्वत एवं अविपरिणामधर्मा (परिवर्तनरहित) हो जाऊँगा'। भिक्षुओ! उस की यह शाश्वत दृष्टि ही 'संस्कार' है...पूर्ववत्...ऐसा समझते हुए साधक अपने आश्रवों का क्षय कर लेता है। (५)

(यहाँ भी रूप की तरह वेदनादि का चतुष्क बना कर पाठ का विस्तार कर लें।)

...पूर्ववत्...परन्तु वह ऐसी दृष्टि (मत) वाला होता है—'न मैं हुआ हूँ, न मेरा कुछ हो, न मैं होऊँगा, तथा न मेरा कुछ होगा'। भिक्षुओ! उस की यह जो उच्छेददृष्टि है, वह भी संस्कार ही है...पूर्ववत्...। (६)

...पूर्ववत्...परन्तु वह सन्देह करने वाला होता है, विचिकित्सा करने वाला होता है, सद्धर्म में उसकी निष्ठा नहीं रहती। भिक्षुओ! उस का यह सन्देह, यह विचिकित्सा, सद्धर्म के प्रति अनिष्ठा संस्कार ही है। उस संस्कार का क्या निदान, समुदय, जाति या

अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना। सो पि फस्सो अनिच्चो सङ्खतो पटिच्च- [B.82] समुप्पन्नो। सा पि अविज्जा अनिच्चा सङ्खता पटिच्चसमुप्पन्ना। एवं पि खो, भिक्खवे, जानतो एवं पस्सतो अनन्तरा आसवानं खयो होती'' ति। •

८२. पुण्णमसुत्तं

८८. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे [R.100] महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं। तेन खो पन समयेन भगवा तदहुपोसथे पन्नरसे पुण्णाय पुण्णमाय रत्तिया भिक्खुसङ्घपरिवुतो अज्झोकासे निसिन्नो होति।

अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—''पुच्छेय्याहं, भन्ते, भगवन्तं किञ्चिदेव देसं, सचे मे भगवा ओकासं करोति पञ्हस्स वेय्याकरणाया'' ति।

''तेन हि त्वं, भिक्खु, सके आसने निसीदित्वा पुच्छ यदाकङ्खसी'' ति।

''एवं, भन्ते'' ति खो सो भिक्खु भगवतो पटिस्सुत्वा सके आसने निसीदित्वा भगवन्तं एतदवोच—''इमे नु खो, भन्ते, पञ्चुपादानक्खन्धा, सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विञ्ञाणुपादानक्खन्धो'' ति?

प्रभव है? ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! इसे भी जान, समझ लेने से आश्रवों का क्षय होता है॥'' (७) •

८२. पूर्णिमासूत्र : : पञ्चस्कन्धों की व्याख्या

८८. एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती स्थित पूर्वाराम के मृगारमातृप्रासाद में बहुसङ्ख्य भिक्षुसङ्घ के साथ विराजमान थे। उस समय वे उपोसथ वाली पूर्णिमा की रात्रि में खुले आकाश के नीचे बैठे थे।

तब किसी भिक्षु ने अपने आसन से उठ कर, उत्तरासङ्ग एक कन्धे पर कर, जिधर भगवान् विराजमान थे उधर प्रणाम करते हुए भगवान् से यों निवेदन किया—''भन्ते! भगवन्! मैं श्रीमान् के सम्मुख अपनी कुछ जिज्ञासा प्रकट करूँ, यदि आप मुझे ऐसा करने के लिये आदेश दें!''

''तो, भिक्षु! तुम अपने आसन पर बैठ कर, यथेच्छ प्रश्न कर सकते हो।''

''ठीक है, भन्ते!''—कह कर वह भिक्षु यों बोला—''भन्ते! पाँच उपादानस्कन्ध ये ही हैं ना; जैसे—१. रूपोपादानस्कन्ध, २. वेदनोपादानस्कन्ध, ३. संज्ञोपादानस्कन्ध, ४. संस्कारोपादानस्कन्ध एवं ५. विज्ञानोपादानस्कन्ध?''

"इमे खो, भिक्खु, पञ्चुपादानक्खन्धा; सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो...पे०... विञ्ञाणुपादानक्खन्धो" ति।

"साधु, भन्ते" ति खो सो भिक्खु भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—

"इमे खो पन, भन्ते, पञ्चुपादानक्खन्धा किंमूलका" ति?

"इमे खो, भिक्खु, पञ्चुपादानक्खन्धा छन्दमूलका" ति।

"साधु...पे०...तञ्ञेव नु खो, भन्ते, उपादानं ते पञ्चुपादानक्खन्धा उदाहु अञ्ञत्र [N.324] पञ्चहि उपादानक्खन्धेहि उपादानं" ति?

"न खो, भिक्खु, तञ्ञेव उपादानं ते पञ्चुपादानक्खन्धा ना पि अञ्ञत्र पञ्चहि [R.101] उपादानक्खन्धेहि उपादानं, अपि च यो तत्थ छन्दरागो तं तत्थ उपादानं" ति।

"साधु, भन्ते" ति खो सो भिक्खु...पे०...उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—

[B.83] "सिया पन, भन्ते, पञ्चुपादानक्खन्धेसु छन्दरागवेमत्तता" ति?

"सिया, भिक्खू" ति भगवा अवोच, "इध, भिक्खु, एकच्चस्स एवं होति—'एवंरूपो सियं अनागतमद्धानं, एवंवेदनो सियं अनागतमद्धानं, एवंसञ्ञो सियं अनागतमद्धानं, एवंसङ्खारो सियं अनागतमद्धानं, एवंविञ्ञाणो सियं अनागतमद्धानं' ति। एवं खो, भिक्खु, सिया पञ्चुपादानक्खन्धेसु छन्दरागवेमत्तता" ति?

"हाँ, भिक्षु! ये ही पाँच उपादानस्कन्ध हैं...पूर्ववत्...।" (१)

तब उस भिक्षु ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन कर, पुनः प्रश्न किया—"भन्ते! इन उपादानस्कन्धों का मूल क्या है?"

"भिक्षु! पुद्गल का छन्द (इच्छा) ही इन का मूल (उत्पादकारण) है।" (२)

तब पुनः भिक्षु ने प्रश्न किया—"भन्ते! वह उपादान एवं ये पाँच उपादानस्कन्ध एक ही हैं या वह उपादान पृथक् है तथा ये पाँच उपादानस्कन्ध पृथक् हैं?"

"भिक्षु! तो वह उपादान इन पाँच उपादानस्कन्धों से पृथक् नहीं है; अपि तु वहाँ का छन्दराग ही उन का उपादान है।" (३)

भिक्षु ने पुनः भगवान् के कथन का अभिनन्दन कर पुनः प्रश्न किया—"भन्ते! इस छन्दराग में कोई नानात्व होता है कि नही?"

भगवान् ने उत्तर दिया—"होता है, भिक्षु! किसी के मन में ऐसा छन्दराग होता है कि 'मैं आगे चल कर मैं ऐसा रूपवान् बनूँगा'...'मैं...ऐसा वेदनावान् बनूँगा'...'मैं...ऐसा संज्ञावान् बनूँगा'...'मैं...ऐसा संस्कारवान् बनूँगा'...'मैं आगे चल कर ऐसा विज्ञानवान् बनूँगा। भिक्षु! इस तरह इन पाँच उपादानस्कन्धों में छन्दराग का नानात्व होता है।" (४-५)

"साधु, भन्ते" ति खो सो भिक्खु...पे०...उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—

"कित्तावता नु खो, भन्ते, खन्धानं खन्धाधिवचनं" ति?

"यं किञ्चि, भिक्खु, रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, अयं वुच्चति रूपक्खन्धो। या काचि वेदना...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, अयं वुच्चति विञ्ञाणक्खन्धो। एत्तावता खो, भन्ते, खन्धानं खन्धाधिवचनं" ति?

"साधु, भन्ते" ति खो सो भिक्खु...पे०...अपुच्छि—

"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो रूपक्खन्धस्स पञ्ञापनाय; को हेतु को पच्चयो वेदनाक्खन्धस्स पञ्ञापनाय; को हेतु को पच्चयो सञ्ञाक्खन्धस्स पञ्ञापनाय; को हेतु को पच्चयो सङ्खारक्खन्धस्स पञ्ञापनाय; को हेतु को पच्चयो विञ्ञाणक्खन्धस्स पञ्ञापनाय" ति?

"चत्तारो खो, भिक्खु, महाभूता हेतु चत्तारो महाभूता पच्चयो रूपक्खन्धस्स पञ्ञापनाय। फस्सो हेतु फस्सो पच्चयो वेदनाक्खन्धस्स पञ्ञापनाय। फस्सो हेतु फस्सो पच्चयो सञ्ञाक्खन्धस्स पञ्ञापनाय। फस्सो हेतु फस्सो [N.325, R.102] पच्चयो सङ्खारक्खन्धस्स पञ्ञापनाय। नामरूपं हेतु नामरूपं पच्चयो विञ्ञाणक्खन्धस्स पञ्ञापनाया" ति।

...भिक्षु ने पुनः प्रश्न किया—"भन्ते! इन स्कन्धों का 'स्कन्ध' ऐसा नाम क्यों पड़ा?"

"भिक्षु! जो कुछ भी अतीत अनागत या वर्तमान रूप है, फिर भले ही वह अध्यात्म हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, हीन हो प्रणीत, दूर हो या समीप—ऐसा रूप 'रूपस्कन्ध' कहलाता है। जो कुछ भी वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान, फिर भले ही वह अध्यात्म हो या बाह्य...पूर्ववत्...ऐसा विज्ञान 'विज्ञानस्कन्ध' कहलाता है। इस तरह, भिक्षु! इन स्कन्धों के पृथक् पृथक् नाम प्रज्ञप्त हुए हैं।" (६)

...भिक्षु ने पुनः प्रश्न किया—"भन्ते! रूपस्कन्ध की इस प्रज्ञप्ति का क्या हेतु क्या प्रत्यय है, वेदनास्कन्ध की...संज्ञास्कन्ध की...संस्कारस्कन्ध की...विज्ञानस्कन्ध की प्रज्ञप्ति का क्या हेतु, क्या प्रत्यय है?"

"भिक्षु! रूपस्कन्ध की प्रज्ञप्ति के हेतु या प्रत्यय यही चार महाभूत हैं। वेदनास्कन्ध

"साधु, भन्ते" ति खो सो भिक्खु...पे०...अपुच्छि—

"कथं नु खो, भन्ते, सक्कायदिट्ठि होती" ति?

"इध, भिक्खु, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं; वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं...अत्ततो समनुपस्सति, विञ्ञाण-[B.84] वन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। एवं खो, भिक्खु, सक्कायदिट्ठि होती" ति।

"साधु, भन्ते" ति खो सो भिक्खु...पे०...अपुच्छि—

"कथं पन, भन्ते, सक्कायदिट्ठि होती" ति?

"इध, भिक्खु, सुतवा अरियसावो अरियानं दस्सावी अरियधम्मस्स कोविदो अरियधम्मे सुविनीतो सप्पुरिसानं दस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स कोविदो सप्पुरिसधम्मे सुविनीतो न रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं वा अत्तानं; न अत्तनि वा रूपं, न रूपस्मिं वा अत्तानं; न वेदनं...न सञ्ञं...न सङ्खारे...न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं; न अत्तनि वा विञ्ञाणं, न विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। एवं खो, भिक्खु, सक्कायदिट्ठि होती" ति।

"साधु, भन्ते" ति खो सो भिक्खु...पे०...अपुच्छि—

"को नु खो, भन्ते, रूपस्स अस्सादो को आदीनवो किं निस्सरणं; को

की प्रज्ञप्ति का हेतु स्पर्श है। संज्ञास्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु स्पर्श है। संस्कारस्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु भी स्पर्श ही है। तथा विज्ञानस्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु नामरूप हैं। (७)

...भिक्षु ने पुनः प्रश्न किया—"भन्ते! सत्कायदृष्टि कैसे होती है?"

"भिक्षु! कोई अज्ञ, पृथग्जन...रूप को 'आत्मा' कर मानता है, या आत्मा को रूपवाला, या आत्मा में रूप या रूप में आत्मा मानता है। वेदना को...संज्ञा को...संस्कार को...विज्ञान को आत्मा...पूर्ववत्...मानता है। भिक्षु! इसी तरह 'सत्कायदृष्टि' होती है।

...भिक्षु ने भगवान् से यह प्रश्न किया—"भन्ते! साधक को यह 'सत्कायदृष्टि' न उद्भूत हो, इस का भी कोई उपाय है?"

यहाँ, भिक्षु! कोई विद्वान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्...न रूप को आत्मा (अपना) मानता है, न अपने को रूपवान् मानता है, न अपने में रूप मानता है, और न रूप में ही अपने को मानता है। न वेदना को...न संज्ञा को...न संस्कारों को...न विज्ञान को...भिक्षुओ! तब ऐसे पुद्गल को सत्कायदृष्टि नहीं होती।" (८)

वेदनाय...को सञ्ञाय...को सङ्खारानं...को विञ्ञाणस्स अस्सादो को आदीनवो किं निस्सरणं'' ति?

''यं खो, भिक्खु, रूपं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं—अयं रूपस्स अस्सादो। यं रूपं अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं—अयं रूपस्स आदीनवो। यो रूपस्मिं छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं—इदं रूपस्स निस्सरणं। यं वेदनं पटिच्च...यं [R.103] सञ्ञं पटिच्च...ये सङ्खारे पटिच्च...यं निस्सरणं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं—अयं विञ्ञाणस्स अस्सादो। यं विञ्ञाणं अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं—अयं विञ्ञाणस्स आदीनवो। यो विञ्ञाणस्मिं छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं—इदं विञ्ञाणस्स [N.326] निस्सरणं'' ति।

''साधु, भन्ते'' ति खो सो भिक्खु भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं अपुच्छि—

''कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ती'' ति?

''यं किञ्चि, भिक्खु, रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। या काचि वेदना...या काचि सञ्ञा... ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागत- [B.85] पच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे

...''भन्ते! इस रूप का आस्वाद क्या है? आदीनव क्या है? निःसरण क्या है?'' वेदना का...संज्ञा का...संस्कार का...विज्ञान का आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण क्या है?

''भिक्षु! रूप के कारण जो सुख सौमनस्य उत्पन्न होता है वह रूप का 'आस्वाद' है। रूप में जो अनित्यता, दुःखता एवं परिवर्तनशीलता है, वही रूप का 'आदीनव' है। रूप के प्रति जो छन्दरागप्रहाण है वही रूप का 'निःसरण' है। वेदना के कारण...संज्ञा के कारण... संस्कारों के कारण...विज्ञान के कारण जो सुख सौमनस्य...पूर्ववत्...छन्दरागप्रहाण ही विज्ञान का 'निःसरण' है। (९)

...पुनः भिक्षु ने भगवान् से पूछा—''भन्ते, क्या जान कर या क्या समझ कर इस विज्ञान वाले शरीर के आध्यात्मिक या बाह्य निमित्तों में अहङ्कार, ममकार या मान एवं अनुशय नहीं होते?''

''भिक्षु! अतीत अनागत वर्तमान, आध्यात्मिक या बाह्य, स्थूल एवं सूक्ष्म, हीन एवं प्रणीत, दूर या समीप जो रूप है, वह सभी 'न मेरा है', 'न मैं हूँ', 'न वह मेरी आत्मा

सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। एवं खो, भिक्खु, जानतो एवं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ती'' ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—''इति किर सो रूपं अनत्ता, वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनत्ता; अनत्तकतानि कम्मानि कथमत्तानं फुसिस्सन्ती'' ति।

अथ खो भगवा तस्स भिक्खुनो चेतसा चेतो परिवितक्कमञ्ञाय भिक्खू आमन्तेसि—

''ठानं खो पनेतं, भिक्खवे, विज्जति यं इधेकच्चो मोघपुरिसो अविद्वा अविज्जागतो तण्हाधिपतेय्येन चेतसा सत्थुसासनं अतिधावितब्बं मञ्ञेय्य। इति किर, भो, रूपं अनत्ता, वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनत्ता। अनत्तकतानि कम्मानि कथमत्तानं [R.104] फुसिस्सन्ती ति? पटिपुच्छाविनीता खो मे तुम्हे, भिक्खवे, तत्र तत्र तेसु तेसु धम्मेसु। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''।

[N.327] ''वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा'' ति?

''दुक्खं, भन्ते''।

है'—इस बात को जो यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेता है। भिक्षु! ऐसा जान लेने के बाद ही उसे इस विज्ञान वाले शरीर में या अध्यात्म एवं बाह्य निमित्तों में अहङ्कार, ममत्व एवं मान तथा अनुशय नहीं होते। जो वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...अनुशय नहीं होते''। (१०)

भिक्षु एवं भगवान् के इन प्रश्न एवं उत्तरों को सुन कर किसी अन्य भिक्षु के चित्त में यह वितर्क हुआ—''यदि रूप, वेदना आदि सभी अनात्म हैं तो अनात्म द्वारा कृत कर्म कैसे किसी को लगेंगे?''

तब भगवान् ने उस भिक्षु के इस चित्तवितर्क को स्वचित्त से जान कर उस भिक्षु को सम्बोधित किया—''हो सकता है, भिक्षु! यहाँ कोई अयोग्य, अविद्वान्...तृष्णा से अभिभूत हो स्वचित्त से बुद्धशासन को लङ्घनीय समझे कि यदि रूप अनात्म है तो...वेदना...संज्ञा...संस्कार... विज्ञान अनात्म है तो अनात्म से किये कर्म कैसे किसी को लगेंगे? भिक्षुओ! धर्मविचार में ऐसा प्रसङ्ग आने पर तुम्हें अपने से बड़ों से पूछ कर उन धर्मों के विषय में जान समझ लेना चाहिये।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिह...पे०...एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती ति।

"द्वे खन्धा तञ्ञेव सियं, अधिवचनं च हेतुना।
सक्कायेन दुवे वुत्ता, अस्सादविञ्ञाणकेन च।
एते दसविधा वुत्ता, होति भिक्खु पुच्छाया" ति॥ •

खज्जनीयवग्गो ततियो।

तस्सुद्दानं

अस्सादो द्वे समुदया, अरहन्तेहि अपरे द्वे। [B.86]
सीहो खज्जनी पिण्डोल्यं, पालिलेय्येन पुण्णमा ति॥ •

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है, या अनित्य?" ...पूर्ववत्...। ऐसा जानता हुआ साधक...मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—ऐसा जान लेता है"॥

इस सूत्र में भिक्षु ने दश प्रकार के प्रश्न किये हैं॥ •

खादनीयवर्ग समाप्त॥

इस खादनीयवर्ग में इन सूत्रों का व्याख्यान हुआ है—१. आस्वादसूत्र, २. प्रथम समुदयसूत्र, ३. द्वितीय समुदयसूत्र, ४. प्रथम अर्हत्सूत्र, ५. द्वितीय अर्हत्सूत्र, ६. सिंहसूत्र, ७. द्वितीय सिंहसूत्र, ८. पिण्डोल्यसूत्र, ९. पारिलेयसूत्र, एवं १०. पूर्णिमासूत्र॥ •

४. थेरवग्गो चतुत्थो

८३. आनन्दसुत्तं

[R.105] ८९. सावत्थिनिदानं। तत्र खो आयस्मा आनन्दो भिक्खू आमन्तेसि— ''आवुसो, भिक्खवे'' ति। ''आवुसो'' ति खो ते भिक्खू आयस्मतो आनन्दस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा आनन्दो एतदवोच—

''पुण्णो नाम, आवुसो, आयस्मा मन्ताणिपुत्तो अम्हाकं नवकानं सतं बहूपकारो होति। सो अम्हे इमिना ओवादेन ओवदति—'उपादाय, आवुसो आनन्द, अस्मी ति होति, नो अनुपादाय। किञ्च उपादाय अस्मी ति होति, नो अनुपादाय? रूपं उपादाय अस्मी ति होति, नो अनुपादाय। वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं उपादाय अस्मी ति [N.328] होति, नो अनुपादाय। सेय्यथापि, आवुसो आनन्द, इत्थी वा पुरिसो वा दहरो युवा मण्डनकजातिको आदासे वा परिसुद्धे परियोदाते अच्छे वा उदकपत्ते सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो उपादाय पस्सेय्य, नो अनुपादाय; एवमेव खो, आवुसो आनन्द, रूपं उपादाय अस्मी ति होति, नो अनुपादाय। वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं उपादाय अस्मी ति होति, नो अनुपादाय। तं किं मञ्ञसि, आवुसो आनन्द, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा' ति?

---

४. स्थविरवर्ग चतुर्थ

८३. आनन्दसूत्र : : उपादान से अहंभाव

८९. ...**श्रावस्ती में** ही...। वहाँ आयुष्मान् आनन्द ने भिक्षुओं को ''आयुष्मानो!'' कह कर सम्बोधित किया। ''हाँ, आयुष्मन्''—भिक्षुओं ने उत्तर दिया। तब आयुष्मान् आनन्द भिक्षुओं से यों बोले—

''आयुष्मानो! ये पूर्ण मन्त्राणीपुत्र हम नये भिक्षुओं के लिये बहुत उदार सिद्ध हो रहे हैं। वे हम लोगों को इस प्रकार धर्मोपदेश करते हैं—'आयुष्मन् आनन्द! उपादान (परिग्रह) के कारण ही मनुष्य के चित्त में अस्मिता आती है, अनुपादान के कारण नहीं। किस के उपादान के कारण यह अस्मिता आती है तथा किस के अनुपादान से नहीं आती? रूप के उपादान के कारण यह अस्मिता आती है तथा उस के अनुपादान से यह अस्मिता नहीं आती। वेदना के...संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के उपादान से...पूर्ववत्...अनुपादान से नहीं आती। आयुष्मन् आनन्द! जैसे कोई स्त्री या पुरुष, फिर भले ही वह बालक हो युवा, अलंकृत हो कर स्वच्छ (निर्मल) दर्पण में या स्वच्छ जलपात्र में अपना मुख प्रतिबिम्ब उपादान के साथ देखे, अनुपादान के साथ नहीं; इसी तरह आनन्द! रूप के उपादान से ही अस्मिता होती है, अनुपादान से नहीं। वेदना... संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...से ही अस्मिता होती है, अनुपादान से नहीं।

'अनिच्चं, आवुसो'।

'वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा' ति?

'अनिच्चं, आवुसो'।

'तस्मातिह...पे०...एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती' ति। पुण्णो [R.106, B.87] नाम आवुसो आयस्मा मन्ताणिपुत्तो अम्हाकं नवकानं सतं बहूपकारो होति। सो अम्हे इमिना ओवादेन ओवदति। इदं च पन मे आयस्मतो पुण्णस्स मन्ताणिपुत्तस्स धम्मदेसनं सुत्वा धम्मो अभिसमितो'' ति। •

८४. तिस्ससुत्तं

९०. सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन आयस्मा तिस्सो भगवतो पितुच्छापुत्तो सम्बहुलानं भिक्खूनं एवमारोचेति—''अपि मे, आवुसो, मधुरकजातो विय कायो; दिसा पि मे न पक्खायन्ति; धम्मा पि मं न पटिभन्ति; थीनमिद्धं च मे चित्तं परियादाय तिट्ठति; अनभिरतो च ब्रह्मचरियं चरामि; होति च मे धम्मेसु विचिकिच्छा'' ति।

अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं— ''आयस्मा, भन्ते, तिस्सो भगवतो पितुच्छापुत्तो सम्बहुलानं भिक्खूनं एवमारोचेति— 'अपि मे, आवुसो, मधुरकजातो विय कायो; दिसा पि मे न पक्खायन्ति; धम्मा पि मं न पटिभन्ति; थीनमिद्धं च मे चित्तं परियादाय तिट्ठति; अनभिरतो च ब्रह्मचरियं चरामि; होति च मे धम्मेसु विचिकिच्छा'' ति।

''आयुष्मन् आनन्द तुम क्या समझते हो—रूप नित्य है या अनित्य...पूर्ववत्...।''

''आयुष्मानो! यह पूर्ण मन्त्राणीपुत्र ऐसे धर्मोपदेश करता रहता है। इस के द्वारा कृत ऐसे धर्मोपदेशों को ही सुन कर मैं स्रोत आपत्तिफल में प्रतिष्ठित हो गया॥'' •

८४. तिष्यसूत्र : : रागरहित वीतशोक हो जाता है

९०. ...**श्रावस्ती में** ही...। उस समय भगवान् की पितृष्वसा (फूफी) के पुत्र आयुष्मान् तिष्य कुछ भिक्षुओं से ऐसा कह रहे थे—''आयुष्मानो! मुझे इस धर्मसाधना में कोई उत्साह नहीं रह गया है। मुझे दिशाएँ (सत्पथ) भी नहीं दीख रही हैं, धर्म पर भी मैं कुछ चिन्तन नहीं कर पा रहा हूँ। मेरे चित्त को आलस्य घेरे रहता है। मैं इस धर्म का पालन उदासीन चित्त से ही कर पा रहा हूँ। मुझे स्थान स्थान पर धर्मविचार में सन्देह होने लगता है।''

तब कुछ भिक्षुओं ने भगवान् के सम्मुख जा कर तिष्य की यह मानसिक स्थिति सुना दी। सुन कर भगवान् ने आयुष्मान् तिष्य को किसी भिक्षु के माध्यम से अपने पास

[N.329] अथ खो भगवा अञ्ञतरं भिक्खुं आमन्तेसि—''एहि त्वं, भिक्खु, मम वचनेन तिस्सं भिक्खुं आमन्तेहि ति—'सत्था तं, आवुसो तिस्स, आमन्तेती''' ति।

''एवं, भन्ते'' ति खो सो भिक्खु भगवतो पटिस्सुत्वा येनायस्मा तिस्सो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं तिस्सं एतदवोच—''सत्था तं, आवुसो तिस्स, आमन्तेती'' ति।

''एवमावुसो'' ति खो आयस्मा तिस्सो तस्स भिक्खुनो पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं तिस्सं भगवा एतदवोच—

[R.107] ''सच्चं किर त्वं, तिस्स, सम्बहुलानं भिक्खूनं एवमारोचेसि—'अपि मे, आवुसो, मधुरकजातो विय कायो...पे०...होति च मे धम्मेसु विचिकिच्छा''' ति?

''एवं, भन्ते''। ''तं किं मञ्ञसि, तिस्स, रूपे अविगतरागस्स अविगतच्छन्दस्स अविगतपेमस्स अविगतपिपासस्स अविगतपरिळाहस्स अविगततण्हस्स तस्स रूपस्स विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा'' ति?

''एवं, भन्ते''।

[B.88] ''साधु साधु, तिस्स! एवं हेतं, तिस्स, होति। यथा तं रूपे अविगतरागस्स वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु अविगतरागस्स...पे०...तेसं सङ्खारानंविपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा'' ति?

''एवं, भन्ते''।

''साधु साधु, तिस्स! एवं हेतं, तिस्स, होति। यथा तं सङ्खारेसु अविगतरागस्स,

---

बुलाया, एवं उस से पूछा—''तिष्य! क्या तुम्हें वस्तुतः धर्म में विचिकित्सा हो रही है?'' तिष्य के स्वीकार करने पर भगवान् ने उस से कहा—

''तो क्या मानते हो, तिष्य! जिस को रूप के प्रति राग, छन्द, प्रेम, पिपासा, परिदाह एवं तृष्णा—ये विकार बने हैं, उस को, उस रूप के विपरिणत एवं अन्यथा हो जाने से, क्या शोक परिदेव आदि नहीं होते?''

''हाँ, भन्ते! होते हैं।''

''ठीक है, तिष्य! ऐसी ही बात है। जैसे रूप के प्रति वैसे ही वेदना के प्रति, संज्ञा के प्रति, संस्कारों के प्रति तथा विज्ञान के प्रति रागादि विकार बने हैं, उस को उस विज्ञान के विपरिणत एवं अन्यथा हो जाने से क्या वे शोक परिदेव आदि नहीं होते?''

''होते हैं, भन्ते!''

''ठीक है, तिष्य! जिस साधक के रूप के प्रति सभी राग, छन्द आदि विकार नष्ट

विञ्ञाणे अविगतरागस्स अविगतच्छन्दस्स अविगतपेमस्स अविगतपिपासस्स अविगतपरिळाहस्स अविगततण्हस्स तस्स विञ्ञाणस्स विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा'' ति?

''एवं, भन्ते''। [N.330]

''साधु साधु, तिस्स! एवं हेतं, तिस्स, होति, यथा तं विञ्ञाणे अविगतरागस्स। तं किं मञ्ञसि, तिस्स, रूपे विगतरागस्स विगतच्छन्दस्स विगतपेमस्स विगतपिपासस्स विगतपरिळाहस्स विगततण्हस्स तस्स रूपस्स विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''साधु साधु, तिस्स! एवं हेतं, तिस्स, होति। यथा तं रूपे विगतरागस्स [R.108] वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु विगतरागस्स विञ्ञाणे विगतरागस्स विगतच्छन्दस्स विगतपेमस्सं विगतपिपासस्स विगतपरिळाहस्स विगततण्हस्स तस्स विञ्ञाणस्स विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''साधु साधु, तिस्स! एवं हेतं, तिस्स, होति यथा तं विञ्ञाणे विगतरागस्स। तं किं मञ्ञसि, तिस्स, रूपं, निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''।

''वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''।

''तस्मातिह...पे०...एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति।

हो चुके हैं, उसे उस रूप के विपरिणत एवं अन्यथा हो जाने से शोक, परिदेव आदि होंगे?''

''नहीं, भन्ते!''

''इसी तरह वेदना...विज्ञान के प्रति सभी राग छन्द आदि विकार नष्ट हो गये हों तो उसे उस विज्ञान के विपरिणत एवं अन्यथा हो जाने से शोक परिदेव आदि होंगे?''

''नहीं, भन्ते!''

''तो तुम क्या समझते हो, तिष्य! रूप नित्य है या अनित्य?''

''अनित्य, भन्ते!''

''वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान नित्य है या अनित्य?''

अनित्य, भन्ते!''

"सेय्यथापि, तिस्स, द्वे पुरिसा—एको पुरिसो अमग्गकुसलो, एको पुरिसो मग्गकुसलो। तमेनं सो अमग्गकुसलो पुरिसो अमुं मग्गकुसलं पुरिसं मग्गं पुच्छेय्य। सो एवं वदेय्य—'एहि, भो पुरिस, अयं मग्गो। तेन मुहुत्तं गच्छ। तेन मुहुत्तं गन्त्वा दक्खिस्ससि द्वेधापथं, तत्थ वामं मुञ्चित्वा दक्खिणं गण्हाहि। तेन मुहुत्तं गच्छ। तेन मुहुत्तं [B.89] गन्त्वा दक्खिस्ससि तिब्बं वनसण्डं। तेन मुहुत्तं गच्छ। तेन मुहुत्तं गन्त्वा दक्खिस्ससि महन्तं निन्नं पल्ललं। तेन मुहुत्तं गच्छ। तेन मुहुत्तं गन्त्वा दक्खिस्ससि सोब्भं पपातं। तेन मुहुत्तं गच्छ। तेन मुहुत्तं गन्त्वा दक्खिस्ससि समं भूमिभागं रमणीयं' ति।

[N.331] "उपमा खो म्यायं, तिस्स, कता अत्थस्स विञ्ञापनाय। अयं चेवेत्थ अत्थो—'पुरिसो अमग्गकुसलो' ति खो, तिस्स, पुथुज्जनस्सेतं अधिवचनं। 'पुरिसो मग्गकुसलो' ति खो, तिस्स, तथागतस्सेतं अधिवचनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। 'द्वेधापथो' ति खो, [R.109] तिस्स, विचिकिच्छायेतं अधिवचनं। 'वामो मग्गो' ति खो, तिस्स, अट्ठङ्गिकस्सेतं मिच्छामग्गस्स अधिवचनं, सेय्यथीदं मिच्छादिट्ठिया...पे०...मिच्छा-समाधिस्स। 'दक्खिणो मग्गो' ति खो, तिस्स, अरियस्सेतं अट्ठङ्गिकस्स मग्गस्स अधिवचनं, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठिया... पे०...सम्मासमाधिस्स। 'तिब्बो वनसण्डो' ति खो, तिस्स, अविज्जायेतं अधिवचनं। 'महन्तं निन्नं पल्ललं' ति खो, तिस्स, कामानमेतं

इसलिये...पूर्ववत्...मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा—यह जान लेता है।

"जैसे, तिष्य! दो पुरुष हों। एक अमार्गकुशल (मार्ग का अज्ञाता), दूसरा मार्गकुशल (मार्ग का ज्ञाता)। तब वह मार्गाकुशल पुरुष मार्गकुशल से मार्ग पूछे। तब वह (मार्गकुशल) पुरुष उस को मार्ग के विषय में यों बतावे—"हाँ, भाई! यह मार्ग है। इस पर कुछ दूर चलने पर यह मार्ग द्विमुख हो जायगा। उस पर वाम भाग छोड़ कर दक्षिण भाग की तरफ मुड़ जाना। उस पर कुछ दूर चलना। कुछ दूर चलने पर वहाँ एक गहन वनप्रदेश मिलेगा। उस में कुछ दूर अन्दर चलना। कुछ दूर चलने पर वहाँ दलदलवाली भूमि मिलेगी। उस पर कुछ दूर चलने पर वहाँ तुम्हें एक स्वच्छ झरने वाला जलाशय मिलेगा। उस से आगे कुछ दूर चलने पर तुम्हें रमणीय समतल भूमि प्रदेश मिलेगा।

तिष्य! मैंने तुम को यह दृष्टान्त (उपमा) अपनी ऊपर वाली बात को समझाने के लिये सुनाया है। मैं तुम्हें अपनी बात को उस के सहारे से यों समझाता हूँ—यहाँ जो 'पृथग्जन' कहा गया है उसी को तुम 'अमार्गकुशल' समझो। 'मार्गकुशल' से 'तथागत अर्हत्' सम्यक्सम्बुद्ध का तात्पर्य समझो। 'द्वेधापथ' से मेरा तात्पर्य 'विचिकित्सा' (सन्देह) से है। 'वाममार्ग' से तात्पर्य 'अष्टाङ्गिक मिथ्यामार्ग' से है; जैसे—मिथ्यादृष्टि...मिथ्यासमाधि। तथा 'दक्षिणमार्ग' मैं 'आर्य अष्टाङ्गिकमार्ग' को कहता हूँ। जैसे—सम्यग्दृष्टि...सम्यक्समाधि।

अधिवचनं। 'सोब्भो पपातो' ति खो, तिस्स, कोधूपायासस्सेतं अधिवचनं। 'समो भूमिभागो रमणीयो' ति खो, तिस्स, निब्बानस्सेतं अधिवचनं। अभिरम, तिस्स, अभिरम, तिस्स! अहमोवादेन अहमनुग्गहेन अहमनुसासनिया'' ति।

९१. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा तिस्सो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

•

८५. यमकसुत्तं

९२. एकं समयं आयस्मा सारिपुत्तो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ-पिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन यमकस्स नाम भिक्खुनो एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति—''तथाहं भगवता धम्मं देसितं आजानामि यथा खीणासवो भिक्खु कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति, न होति परं मरणा'' ति।

अस्सोसुं खो सम्बहुला भिक्खू यमकस्स किर नाम भिक्खुनो एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति—''तथाहं भगवता धम्मं देसितं आजानामि यथा खीणासवो भिक्खु कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति, न होति परं मरणा'' ति। अथ खो [B.90] ते भिक्खू येनायस्मा यमको तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मता यमकेन सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू आयस्मन्तं यमकं एतदवोचुं—

'तीव्र वनषण्ड' से मेरा तात्पर्य 'अविद्या' से है। 'महान् गहरा दलदल' मेरी दृष्टि में 'कामभोग' कहलाते हैं। 'श्वभ्र प्रपात' से मेरा अभिप्राय 'क्रोध' एवं 'उपायास' आदि से है। 'रमणीय समतल भूमिभाग' को, तिष्य! तुम 'निर्वाण' को समझो। तिष्य! तुम इसी निर्वाण रूप भूमिप्रदेश में श्रद्धापूर्वक साधना करो—यही मेरा उपदेश है, यही मेरा आदेश समझो तथा इसी को मेरा अनुग्रह (अनुकम्पा) समझो।

९१. भगवान् ने यह उपदेश किया। सन्तुष्टचित्त होकर आयुष्मान् तिष्य ने भगवान् के इस धर्मप्रवचन का अभिनन्दन किया॥

•

८५. यमक सूत्र : : देहपात के बाद अर्हत् की स्थिति ?

९२. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्ती के जेतवनस्थित अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय यमक नामक भिक्षु को ये पापमय विचार उत्पन्न हुए—''मैं भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म को इस प्रकार जानता हूँ कि क्षीणाश्रव भिक्षु इस देहपात के बाद विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद, वे नहीं रहते।''

अनेक भिक्षुओं ने यमक भिक्षु के ये पापमय विचार सुने...पूर्ववत्...। तब वे भिक्षु आयुष्मान् यमक के पास गये तथा उन से कुशलमङ्गल प्रश्नानन्तर पूछने लगे—''आयुष्मन्

"सच्चं किर ते, आवुसो यमक, एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं—'तथाहं [N.332] भगवता धम्मं देसितं आजानामि यथा खीणासवो भिक्खु कायस्स भेदा [R.110] उच्छिज्जति विनस्सति, न होति परं मरणा''' ति ?

"एवं ख्वाहं, आवुसो, भगवता धम्मं देसितं आजानामि—'खीणासवो भिक्खु कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति, न होति परं मरणा''' ति।

"मा, आवुसो यमक, एवं अवच, मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि। न हि साधु भगवतो अब्भाचिक्खनं। न हि भगवा एवं वदेय्य—'खीणासवो भिक्खु कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति, न होति परं मरणा''' ति।

एवं पि खो आयस्मा यमको तेहि भिक्खूहि वुच्चमानो तथेव तं पापकं दिट्ठिगतं थामसा परामासा अभिनिविस्स वोहरति—"तथाहं भगवता धम्मं देसितं आजानामि यथा खीणासवो भिक्खु कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति, न होति परं मरणा" ति।

यतो खो ते भिक्खू नासक्खिसु आयस्मन्तं यमकं एतस्मा पापका दिट्ठिगता विवेचेतुं, अथ खो ते भिक्खू उट्ठायासना येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोचुं—"यमकस्स नाम, आवुसो सारिपुत्त, भिक्खुनो एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं—'तथाहं भगवता धम्मं देसितं आजानामि यथा खीणासवो भिक्खु कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति, न होति परं मरणा' ति। साधायस्मा सारिपुत्तो येन यमको भिक्खु तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया" ति।

यमक! क्या वस्तुतः तुम को यह पापमय दृष्टि उत्पन्न हो गयी है कि मैं भगवान् द्वारा ...पूर्ववत्...वे नहीं रहते ?"

"हाँ, आयुष्मानो! मैं भगवान् द्वारा...पूर्ववत्...वे नहीं रहते।"

"आयुष्मन् यमक! ऐसा न कहो। भगवान् पर असत्य आरोप लगा कर उन की निन्दा न करो। भला, भगवान् ऐसा कैसे कह सकते हैं—'क्षीणाश्रव अर्हत् भिक्षु, इस देहपात के बाद, विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद वे नहीं रहते'''।

इतना समझाने पर उस समय भिक्षु ने भिक्षुओं की बात न मानी, तथा वह अपने ही दृढ आग्रह पर स्थिर रहा। ...।

जब वे भिक्षु आयुष्मान् यमक को किसी भी तरह न समझा पाये तो उन्होंने यमक का दुराग्रह आयुष्मान् सारिपुत्र के पास जा कर बताया। उन्होंने कहा—"आयुष्मन् सारिपुत्र! यह यमक भिक्षु अपने ऐसे पापमय विचार सबसे कहता फिर रहा है—'मैं भगवान् के उपदेश का...पूर्ववत्...मरणानन्तर नहीं होते। कृपया आप इस आयुष्मान् यमक को समझाइये।'''

अधिवासेसि खो आयस्मा सारिपुत्तो तुण्हीभावेन। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा यमको तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता यमकेन सद्धिं सम्मोदि...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं यमकं एतदवोच—"सच्चं किर ते, आवुसो यमक, एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति—'तथाहं भगवता धम्मं देसितं आजानामि यथा खीणासवो भिक्खु [R.111] कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति, न होति परं मरणा'" ति।

"एवं ख्वाहं, आवुसो, भगवता धम्मं देसितं आजानामि यथा खीणासवो [B.91] भिक्खु कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति, न होति परं मरणा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, आवुसो यमक, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति? [N.333]

"अनिच्चं, आवुसो"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, आवुसो"।

"तस्मातिह...पे०...एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति।

"तं किं मञ्ञसि, आवुसो यमक, रूपं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं की बात मौन भाव से स्वीकार कर ली। और वे सायङ्काल समाधिभावना से उठ कर आयुष्मान् यमक के पास गये। कुशलप्रश्न के बाद उन्होंने उस से पूछा—"आयुष्मन् यमक! क्या तुम्हें वस्तुतः ऐसे पापमय विचार उद्भूत हो गये हैं कि मैं भगवान् के उपदेश का...पूर्ववत्...मृत्यु के बाद नहीं होते?"

"हाँ, आयुष्मन्! मैं भगवान् के कथन का यही अभिप्राय समझा हूँ कि क्षीणाश्रव भिक्षु देहपातानन्तर, उच्छिन्न हो जाता है, विनष्ट हो जाता है, मृत्यु के बाद वह नहीं रहता।"

"तो तुम यहाँ क्या मानते हो, आयुष्मन् यमक! रूप नित्य है अनित्य?"

"अनित्य है, आयुष्मन्!"

"वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, आयुष्मन्!"

"इसलिये...पूर्ववत्...ऐसा जानते हुए...पूर्ववत्...इस से आगे कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है—ऐसा जान लेता है।

"तो क्या मानते हो, आयुष्मन् यमक! यह रूप ही तथागत (जीव) है?"

"नहीं, आयुष्मन्!"

"वेदनं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

"सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं...तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

"तं किं मञ्ञसि, आवुसो यमक, रूपस्मिं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

"अञ्ञत्र रूपा तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

"वेदनाय अञ्ञत्र वेदनाय...पे०...सञ्ञाय अञ्ञत्र सञ्ञाय...सङ्खारेसु अञ्ञत्र सङ्खारेहि...विञ्ञाणस्मिं...तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

"अञ्ञत्र विञ्ञाणा तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

"तं किं मञ्ञसि, आवुसो यमक, रूपं वेदनं सञ्ञं सङ्खारे विञ्ञाणं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, आवुसो"।

[N.334, R.112] "तं किं मञ्ञसि, आवुसो यमक, अयं सो अरूपी अवेदनो असञ्ञी असङ्खारो अविञ्ञाणो तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान ही तथागत (जीव) है?"

"नहीं, आयुष्मन्!"

"तो क्या मानते हो, आयुष्मन्! रूप में तथागत (जीव) है?"

"नहीं, आयुष्मन्!"

"तो क्या 'रूप से अन्यत्र (भिन्न) तथागत (जीव) है'—ऐसा मानते हो?"

"नहीं, आयुष्मन्!"

"तो क्या मानते हो—वेदना में या वेदना से अन्यत्र...संज्ञा में या संज्ञा से अन्यत्र...संस्कारों में या संस्कारों से अन्यत्र...विज्ञान में या विज्ञान से अन्यत्र जीव है?"

"नहीं, आयुष्मन्!"

"आयुष्मन् यमक! तो क्या मानते हो ये रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान जीव है?"

"नहीं, आयुष्मन्!"

"नो हेतं, आवुसो"।

"एत्थ च ते, आवुसो यमक, दिट्ठेव धम्मे सच्चतो थेततो तथागतो अनुपलब्भियमानो, कल्लं नु ते तं वेय्याकरणं—'तथाहं भगवता धम्मं देसितं आजानामि यथा खीणासवो भिक्खु कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति, न होति परं मरणा''' ति।

"अहु खो मे तं, आवुसो सारिपुत्त, पुब्बे अविद्दसुनो पापकं दिट्ठिगतं; इदं च पनायस्मतो सारिपुत्तस्स धम्मदेसनं सुत्वा तं चेव पापकं दिट्ठिगतं पहीनं, धम्मो च मे अभिसमितो" ति।

"सचे तं आवुसो यमक, एवं पुच्छेय्युं—'यो सो, आवुसो यमक, भिक्खु [B,92] अरहं खीणासवो सो कायस्स भेदा परं मरणा किं होती' ति? एवं पुट्ठो त्वं, आवुसो यमक, किन्ति ब्याकरेय्यासी" ति?

"सचे मं, आवुसो, एवं पुच्छेय्युं—'यो सो, आवुसो यमक, भिक्खु अरहं खीणासवो सो कायस्स भेदा परं मरणा किं होती' ति? एवं पुट्ठोहं, आवुसो, एवं ब्याकरेय्यं—'रूपं खो, आवुसो, अनिच्चं। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तं निरुद्धं तदत्थङ्गतं। वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा ...विञ्ञाणं अनिच्चं। यदनिच्चं तं दुक्खं; यं दुक्खं तं निरुद्धं तदत्थङ्गतं' ति। एवं पुट्ठोहं, आवुसो, एवं ब्याकरेय्यं" ति।

"तो क्या मानते हो, आयुष्मन् यमक! कोई अन्य अरूपी (रूपरहित) अवेदन, असंज्ञी, असंस्कारी या अविज्ञान ही जीव है?"

"यह बात भी नहीं है, आयुष्मन्!"

"आयुष्मन् यमक! जब यथार्थतः कोई जीव यहाँ उपलब्ध ही नहीं होता, तब क्या तुम्हारा ऐसा कहना उचित होगा—'मैं भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म को इस प्रकार जानता हूँ कि क्षीणाश्रव भिक्षु देहपात के बाद उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरणानन्तर वे नहीं रहते?'''

(यह सुन कर आयुष्मान् यमक को वास्तविकता का ज्ञान हुआ, तथा वह पश्चात्ताप की भाषा में यह बोला—) "आयुष्मन् सारिपुत्र! मुझ अज्ञ को पहले वस्तुतः ही वैसे पापमय विचार उद्भूत हो गये थे। अब आप आयुष्मान् सारिपुत्र के ये धर्ममय वचन सुन कर मेरी आँखें खुली हैं, अब मेरी वह मिथ्या धारणा विनष्ट हो गयी, और धर्म का यथातथ रूप समझ में आ गया"॥

"आयुष्मन् यमक! अब कोई (जिज्ञासु) तुम से यह पूछे—'आयुष्मन् यमक! क्षीणाश्रव भिक्षु मरणानन्तर क्या होता है?' तो तुम क्या उत्तर दोगे?"

"आयुष्मन् सारिपुत्र! कोई मुझ से यह पूछेगा तो मैं उस का यह उत्तर दूँगा— 'आयुष्मन्! रूप अनित्य है। तथा जो अनित्य है वह दुःखमय होता है। और जो दुःखमय

"साधु साधु, आवुसो यमक! तेन हावुसो, यमक, उपमं ते करिस्सामि एतस्सेव अत्थस्स भिय्योसोमत्ताय ञाणाय। सेय्यथापि, आवुसो यमक, गहपति वा गहपतिपुत्तो वा अड्ढो महद्धनो महाभोगो; सो च आरक्खसम्पन्नो। तस्स कोचिदेव पुरिसो उप्पज्जेय्य अनत्थकामो अहितकामो अयोगक्खेमकामो जीविता वोरोपेतुकामो। तस्स एवमस्स— [R.113] 'अयं खो गहपति वा गहपतिपुत्तो वा अड्ढो महद्धनो महाभोगो; सो च आरक्खसम्पन्नो; नायं सुकरो पसय्ह जीविता वोरोपेतुं। यन्नूनाहं अनुपखज्ज जीविता वोरोपेय्यं' ति। सो तं गहपतिं वा गहपतिपुत्तं वा उपसङ्कमित्वा एवं वदेय्य—'उपट्ठहेय्यं तं, भन्ते' ति। तमेनं सो गहपति वा गहपतिपुत्तो वा उपट्ठापेय्य। सो उपट्ठहेय्य पुब्बुट्ठायी [N.335] पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी। तस्स सो गहपति वा गहपतिपुत्तो मित्ततो पि नं सद्दहेय्य; सुहज्जतो पि नं सद्दहेय्य; तस्मिं च विस्सासं आपज्जेय्य। यदा खो, आवुसो, तस्स पुरिसस्स एवमस्स—'संविस्सत्थो खो म्यायं गहपति वा गहपतिपुत्तो वा' ति अथ नं रहोगतं विदित्वा तिण्हेन सत्थेन जीविता वोरोपेय्य।

होता है उस का एक न एक दिन निरोध (नाश) होगा ही!'—आयुष्मन्! वैसा पूछा जाने पर मैं यही उत्तर दूँगा।"

"ठीक है, आयुष्मन् यमक! तुम ने उचित ही कहा है; परन्तु तुम्हारी इस बात को कुछ अधिक स्पष्टीकरण के लिये, सरलता से समझाने के लिये एक उपमा (दृष्टान्त) देता हूँ—जैसे आयुष्मन् यमक! कोई आढ्य, धनवान् एवं वैभवशाली गृहपति या गृहपतिपुत्र हो। जो सर्वदा आरक्षकों से घिरा रहता हो। उस समय (किसी कारणवश) कोई पुरुष उस का ऐसा शत्रु बन जाय जो उस की हत्या करना चाहता हो; परन्तु उस की दृढ आरक्षाव्यवस्था देख कर यह विचार करे—'ऐसे तो इस की हत्या करना बहुत कठिन ज्ञात होता है, अत: क्यों न मैंइस का मित्र बन कर, अन्तरङ्ग बन कर इस की हत्या का प्रयास करूँ!' यह सोच कर वह दुष्ट पुरुष उस गृहपति या गृहपतिपुत्र के पास जा कर कहे—'देव! मैं आप के पास रह कर आप की सेवा करना चाहता हूँ। वह गृहपति, अनुकम्पावश, उस की बात को मान कर उसे अपनी सेवा में रख ले। तब वह मन लगा कर उस की सेवा आरम्भ करे। स्वामी के उठने से पूर्व वह उठ जाय, स्वामी के सोने के बाद सोवे, प्रतिक्षण आज्ञापालन हेतु हाथ जोड़ कर खड़ा रहे, सदा हितकर एवं प्रियवचन बोले। तब वह गृहपति...उस पर एक मित्र से भी अधिक विश्वास करने लगे। ऐसा होने पर जब उस दुष्ट पुरुष के समझ में आ जाय कि अब यह गृहपति मुझ पर पूर्ण विश्वास करने लग गया है, मुझे अपने सुहृत् से भी अधिक मानता है तो वह उस गृहपति की, किसी दिन एकान्त में, हत्या कर दे।

"तं किं मञ्ञसि, आवुसो यमक, यदा हि सो पुरिसो अमुं गहपतिं वा गहपतिपुत्तं वा उपसङ्कमित्वा एवं आह—'उपट्ठहेय्यं तं, भन्ते' ति, तदा पि सो वधको व। वधकं च पन सन्तं न अञ्ञासि—'वधको मे' ति। यदा पि सो उपट्ठहति पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी, तदा पि सो वधको व। वधकं च पन [B.93] सन्तं न अञ्ञासि—'वधको मे' ति। यदा पि नं रहोगतं विदित्वा तिण्हेन सत्थेन जीविता वोरोपेति, तदा पि सो वधको व। वधकं च पन सन्तं न अञ्ञासि—'वधको मे''' ति।

"एवमावुसो" ति।

"एवमेव खो, आवुसो, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं। वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, [R.114] विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं।

"सो अनिच्चं रूपं 'अनिच्चं रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। अनिच्चं वेदनं 'अनिच्चा वेदना' ति यथाभूतं नप्पजानाति। अनिच्चं सञ्ञं 'अनिच्चा सञ्ञा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। अनिच्चे सङ्खारे 'अनिच्चा सङ्खारा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। अनिच्चं विञ्ञाणं 'अनिच्चं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति।

"तो क्या मानते हो, आयुष्मन् यमक! जब यह दुष्ट पुरुष उस गृहपति के पास सेवाकर्म हेतु आया था, तब भी वह वधक (हत्यारा) ही था, ऐसा होते हुए भी गृहपति तब भी नहीं समझा था कि एक दिन यह मेरी हत्या करेगा। जब वह उस की मन लगा कर सेवा करता था तब भी गृहपति उसे वधक के रूप में नहीं पहचान पाया कि यह मेरा वधक है। वधक होने पर भी वह उसे वधक के रूप में कभी नहीं पहचान पाया। अब वह एकान्त पा कर उस की हत्या कर रहा था तब भी वह वधक ही था। वधक होने पर भी उस को वह वधक नहीं समझ पाया।"

"बात ऐसी ही है, आयुष्मन्!"

(सारिपुत्र—) "इसी तरह, आयुष्मन् यमक! कोई अज्ञ पृथग्जन...पूर्ववत्...रूप को आत्मा कर के जानता है, या आत्मा को रूप वाला, या आत्मा में रूप, या रूप में आत्मा। वेदना को...संज्ञा को...संस्कार को...विज्ञान को...पूर्ववत्...।

"वह उस अनित्य रूप के विषय में 'यह रूप अनित्य है'—यह बात यथार्थतः नहीं जानता; अनित्य वेदना को...अनित्य संज्ञा को...अनित्य संस्कार को...अनित्य विज्ञान को 'यह विज्ञान अनित्य है'—ऐसा यथार्थतः नहीं जानता।

"दुक्खं रूपं 'दुक्खं रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। दुक्खं वेदनं...दुक्खं सञ्ञं... दुक्खे सङ्खारे...दुक्खं विञ्ञाणं 'दुक्खं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति।

"अनत्तं रूपं 'अनत्तं रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। अनत्तं वेदनं...अनत्तं [N.336] सञ्ञं...अनत्ते सङ्खारे...अनत्तं विञ्ञाणं 'अनत्तं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति।

"सङ्खतं रूपं 'सङ्खतं रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। सङ्खतं वेदनं...सङ्खतं सञ्ञं... सङ्खतं सङ्खारे...सङ्खतं विञ्ञाणं 'सङ्खतं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति।

"वधकं रूपं 'वधकं रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। वधकं वेदनं 'वधका वेदना' ति...वधकं सञ्ञं 'वधका सञ्ञा' ति...वधके सङ्खारे 'वधका सङ्खारा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। वधकं विञ्ञाणं 'वधकं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति।

"सो रूपं उपेति उपादियति अधिट्ठाति 'अत्ता मे' ति। वेदनं...सञ्ञं... सङ्खारे...विञ्ञाणं उपेति उपादियति अधिट्ठाति 'अत्ता मे' ति। तस्सिमे पञ्चुपादानक्खन्धा उपेता उपादिन्ना दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ति।

[B.94] "सुतवा च खो, आवुसो, अरियसावको अरियानं दस्सावी...पे०...सप्पुरिसधम्मे

"वह उस दुःखमय रूप को 'यह रूप दुःखमय है'—ऐसा यथार्थतः नहीं जानता; दुःखा वेदना को...दुःखा संज्ञा को...दुःखमय संस्कारों को...दुःखमय विज्ञान को 'यह विज्ञान दुःखमय है'—ऐसा यथार्थतः नहीं जानता।

"वह उस अनात्म रूप को 'यह रूप अनात्म है'—ऐसा यर्थाथतः नहीं जानता; अनात्म वेदना को...अनात्म संज्ञा को...अनात्म संस्कारों को...अनात्म विज्ञान को 'यह विज्ञान अनात्म है'—ऐसा यथार्थतः नहीं जानता।

"वह उस संस्कृत रूप को 'यह रूप संस्कृत है'—ऐसा यथार्थतः नहीं जानता; संस्कृत वेदना को...पूर्ववत्...संस्कृत विज्ञान को 'यह विज्ञान संस्कृत है'—ऐसा यथार्थतः नहीं जानता।

"वह उस वधक रूप को 'यह रूप वधक है'—ऐसा यथार्थतः नहीं जानता; वधक वेदना को...वधक संज्ञा को...वधक संस्कारों को...वधक विज्ञान को 'यह विज्ञान वधक है'—ऐसा यथार्थतः नहीं जानता।

"वह रूप को प्राप्त होता है, रूप का उपादान करता है तथा यह निश्चय करता है कि रूप मेरा आत्मा है। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...वह इन पञ्चउपादानस्कन्ध को प्राप्त हो, उन का उपादान कर उस में दीर्घकाल तक अपना अहित और दुःख प्राप्त करता है।

सुविनीतो न रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं अत्तानं; न अत्तनि रूपं, न रूपस्मिं अत्तानं। न वेदनं...न सञ्ञं...न सङ्खारे...न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, न विञ्ञाण-वन्तं अत्तानं; न अत्तनि विञ्ञाणं, न विञ्ञाणस्मिं अत्तानं।

"सो अनिच्चं रूपं 'अनिच्चं रूपं' ति यथाभूतं पजानाति। अनिच्चं [R.115] वेदनं... अनिच्चं सञ्ञं...अनिच्चे सङ्खारे...अनिच्चं विञ्ञाणं 'अनिच्चं विञ्ञाणं' ति, यथाभूतं पजानाति।

"दुक्खं रूपं 'दुक्खं रूपं' ति यथाभूतं पजानाति। दुक्खं वेदनं...दुक्खं सञ्ञं... दुक्खे सङ्खारे...दुक्खं विञ्ञाणं 'दुक्खं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं पजानाति।

"अनत्तं रूपं 'अनत्तं रूपं' ति यथाभूतं पजानाति। अनत्तं वेदनं...अनत्तं सञ्ञं...अनत्ते सङ्खारे...अनत्तं विञ्ञाणं 'अनत्तं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं पजानाति।

"सङ्खतं रूपं 'सङ्खतं रूपं' ति यथाभूतं पजानाति। सङ्खतं वेदनं...सङ्खतं [N.337] सञ्ञं... सङ्खतं सङ्खारे...सङ्खतं विञ्ञाणं 'सङ्खतं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं पजानाति।

"वधकं रूपं 'वधकं रूपं' ति यथाभूतं पजानाति। वधकं वेदनं...वधकं सञ्ञं... वधके सङ्खारे 'वधका सङ्खारा' ति यथाभूतं पजानाति। वधकं विञ्ञाणं 'वधकं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं पजानाति।

"सो रूपं न उपेति न उपादियति नाधिट्ठाति 'अत्ता मे' ति। वेदनं...सञ्ञं... सङ्खारे...विञ्ञाणं न उपेति न उपादियति नाधिट्ठाति 'अत्ता मे' ति। तस्सिमे पञ्चु-पादानक्खन्धा अनुपेता अनुपादिन्ना दीघरत्तं हिताय सुखाय संवत्तन्ती" ति।

"इसके विपरीत, कोई विद्वान् आर्यश्रावक न रूप को अपना समझता है, न अपने को रूपवान् समझता है, न अपने में रूप को या रूप में अपने को समझता है। न वेदना को, न संज्ञा को, न संस्कार को, न विज्ञान को अपना...पूर्ववत्... समझता है।

"वह अनित्य रूप को यथार्थतः जानता है, अनित्य वेदना को...अनित्य संज्ञा को, अनित्य संस्कार को, अनित्य विज्ञान को जानता है...पूर्ववत्...।

"वह दुःखमय रूप को...पूर्ववत्...।

"वह अनात्म रूप को...पूर्ववत्...।

"वह संस्कृत रूप को...पूर्ववत्...।

"वह वधक रूप को...पूर्ववत्...।

"वह न रूप को प्राप्त होता है, न उस का उपादान करता है, न यह निश्चय करता है कि रूप मेरा आत्मा है...पूर्ववत्...। उस के ये पाँचों उपादानस्कन्ध उस को न प्राप्त होते

"एवमेतं, आवुसो सारिपुत्त, होति येसं आयस्मन्तानं तादिसा सब्रह्मचारिनो अनुकम्पका अत्थकामा ओवादका अनुसासका। इदं च पन मे आयस्मतो सारिपुत्तस्स धम्मदेसनं सुत्वा अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं" ति॥ •

८६. अनुराधसुत्तं

[R.116] ९३. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागार-[B.95] सालायं। तेन खो पन समयेन आयस्मा अनुराधो भगवतो अविदूरे अरञ्ञकुटिकायं विहरति। अथ खो सम्बहुला अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका येन आयस्मा अनुराधो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मता अनुराधेन सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका आयस्मन्तं अनुराधं एतदवोचुं—"यो सो, आवुसो अनुराध, तथागतो उत्तमपुरिसो परमपुरिसो परमपत्तिपत्तो तं तथागतो इमेसु चतूसु ठानेसु पञ्ञापयमानो पञ्ञापेति—'होति तथागतो परं मरणा' ति वा, 'न होति तथागतो परं मरणा' ति वा, 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति वा, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति वा" ति?

हुए, उस के द्वारा न ग्रहण किये जाते हुए दीर्घकाल तक उस के लिये हितावह एवं सुखावह होते हैं।"

(आयुष्मान् यमक—) "ऐसा ही है, आयुष्मन् सारिपुत्र! ऐसा ही होता है। जिन आयुष्मानों के ऐसे करुणशील, हितार्थी, अनुशासक, सदुपदेशक गुरुभाई होते हैं। उन का उपदेश सुन कर साधक सत्पथ पर लग जाता है। आयुष्मन्! आप के इस उपदेश को सुन कर मेरा चित्त भी उपादानरहित हो गया है। तथा वह आश्रवों से मुक्त हो गया है॥ •

८६. अनुराधसूत्र : : दुःख का निरोध

९३. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। उसी समय आयुष्मान् अनुराध भगवान् के समीप ही (वैशाली के पास) अरण्य में कुटी बनवा कर वहाँ साधना में लगे थे। उस समय अन्य सम्प्रदाय के कुछ परिव्राजक आयुष्मान् अनुराध के पास आये। आ कर, कुशलमङ्गल पूछने के बाद उन्होंने आयुष्मान् अनुराध से यह प्रश्न किया—"आयुष्मन्! आप के तथागत लोक में श्रेष्ठ पुरुष हैं, प्रथम गणनीय पुरुष हैं, परम लक्ष्य को प्राप्त कर चुके हैं। वे तथागत (जीव) के विषय में चार स्थान बताते हैं—'१. मरणानन्तर तथागत रहते हैं, २. मरणानन्तर तथागत नहीं रहते, ३. मरणानन्तर तथागत रहते भी हैं, नहीं भी रहते, या ४. मरणानन्तर तथागत न रहते हैं, न नहीं रहते हैं?'"

एवं वुत्ते, अनुराधो ते अञ्ञतित्थिये परिब्बाजके एतदवोच—"यो सो, आवुसो अनुराध, तथागतो उत्तमपुरिसो परमपुरिसो परमपत्तिपत्तो तं तथागतो अञ्ञत्र [N.338] इमेहि चतूहि ठानेहि पञ्ञापयमानो पञ्ञापेति—'होति तथागतो परं मरणा' ति वा, 'न होति तथागतो परं मरणा' ति वा, 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति वा, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति वा" ति ?

एवं वुत्ते, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका आयस्मन्तं अनुराधं एतदवोचुं—"सो चायं भिक्खु नवो भविस्सति अचिरपब्बजितो, थेरो वा पन बालो अब्यत्तो" ति।

अथ खो अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका आयस्मन्तं अनुराधं नववादेन च बालवादेन च अपसादेत्वा उट्ठायासना पक्कमिंसु।

अथ खो आयस्मतो अनुराधस्स अचिरपक्कन्तेसु तेसु अञ्ञतित्थियेसु [R.117] परिब्बाजकेसु एतदहोसि—"सचे खो मं ते अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका उत्तरिं पञ्हं पुच्छेय्युं, कथं ब्याकरमानो नु ख्वाहं तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं वुत्तवादी चेव भगवतो अस्सं, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्यं, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्यं, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छेय्या" ति ?

अथ खो आयस्मा अनुराधो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा अनुराधो भगवन्तं एतदवोच—"इधाहं, भन्ते, भगवतो अविदूरे अरञ्ञकुटिकायं विहरामि। अथ खो, भन्ते, सम्बहुला अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका येनाहं तेनुपसङ्कमिंसु...पे०...मं एतदवोचुं—'यो सो, आवुसो [B.96] अनुराध, तथागतो उत्तमपुरिसो परमपुरिसो परमपत्तिपत्तो तं तथागतो इमेसु चतूसु ठानेसु पञ्ञापयमानो पञ्ञापेति—होति तथागतो परं मरणा ति वा, न होति...होति च न च होति, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा' ति ? एवं वुत्ताहं, भन्ते, ते अञ्ञतित्थिये परिब्बाजके एतदवोचं...पे०...।

उनके ऐसा कहने पर, अनुराध ने उन परिव्राजकों से कहा—"आयुष्मानो ! हाँ, तथागत इन चार स्थानों में से कोई एक बताते हैं...पूर्ववत्...।"

आयुष्मान् अनुराध द्वारा ऐसा कहे जाने पर, उस के विषय में ऐसा सोचने लगे—"हो सकता है, यह भिक्षु अभी नया हो, इस ने इस धर्म में अभी दीक्षा ली हो, या फिर स्थविर (पुराना भिक्षु) हो तो भी क्या हुआ ! है यह मूर्ख एवं धर्म के विषय में अज्ञ ही।" यह कह कर, यह सोच कर वे परिव्राजक आयुष्मान् अनुराध की अवहेलना कर उस को बुरा भला कहते हुए वहाँ से चल दिये।

"तस्स मय्हं, भन्ते, अचिरपक्कन्तेसु तेसु अञ्ञतित्थियेसु परिब्बाजकेसु [R.118] एतदहोसि—'सचे खो मं ते अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका उत्तरिं पञ्हं पुच्छेय्युं, कथं ब्याकरमानो नु ख्वाहं तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं वुत्तवादी चेव भगवतो अस्सं, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खेय्यं, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरेय्यं, न च कोचि [N.339] सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छेय्या" ति?

"तं किं मञ्ञसि, अनुराध, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं भन्ते"...पे०...तस्मातिह ...पे०...एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति।

"तं किं मञ्ञसि, अनुराध, रूपं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

[B.97] "तं किं मञ्ञसि, अनुराध, रूपस्मिं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

तब उन परिव्राजकों के चले जाने के बाद, आयुष्मान् अनुराध के मन में ये विचार उठे—"यदि ये परिव्राजक मुझ से इस से आगे का प्रश्न पूछें तो मेरे किस प्रकार कहने से भगवान् के सिद्धान्तों का यथार्थ प्रतिपादन होगा, भगवान् पर मिथ्या भाषण के आरोप भी न लगें, उत्तर भी धर्मानुकूल हो, तथा कोई अपने धार्मिक-वाद के विषय में निन्दित स्थान को भी न प्राप्त हो!"

तब वह आयुष्मान् अनुराध भगवान् की सेवा में पहुँचे, तथा उन को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् अनुराध ने भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! मैं भगवान् के पास ही अरण्य में एक कुटी में बैठ कर साधना कर रहा था। इसी समय कुछ परिव्राजक मेरे पास आये...पूर्ववत्...निन्दित स्थान को भी प्राप्त न हो।"

"अञ्ञत्र रूपा तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदनाय...पे०...अञ्ञत्र वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...अञ्ञत्र सञ्ञाय...सङ्खारेसु ...अञ्ञत्र सङ्खारेहि...विञ्ञाणस्मि...अञ्ञत्र विञ्ञाणा तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, अनुराध, रूप...वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, अनुराध, अयं सो अरूपी अवेदनो असञ्ञी असङ्खारो अविञ्ञाणो तथागतो ति समनुपस्ससी" ति?

"नो हेतं, भन्ते"। [N.340]

"एत्थ च ते, अनुराध, दिट्ठेव धम्मे सच्चतो थेततो तथागतो अनुपलब्भियमानो कल्लं नु ते तं वेय्याकरणं—'यो सो, आवुसो, तथागतो उत्तमपुरिसो परमपुरिसो परमपत्तिपत्तो तं तथागतो अञ्ञत्र इमेहि चतूहि ठानेहि पञ्ञापयमानो [R.119] पञ्ञापेति— होति तथागतो परं मरणा ति वा, न होति...होति च न च होति, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"साधु साधु, अनुराध! पुब्बे चाहं, अनुराध, एतरहि च दुक्खं चेव पञ्ञापेमि दुक्खस्स च निरोधं" ति॥

●

(भगवान्—) "तो क्या मानते हो, अनुराध! रूप नित्य है या अनित्य?" "अनित्य है, भन्ते!"...पूर्ववत्...*(यमकसूत्र की तरह सारिपुत्र वचन का यहाँ भी विस्तार कर लें।)*

"अनुराध! इतने संवाद से तुमने स्वयं देख, समझ लिया कि यथार्थ में सत्यत: किसी जीव की उपलब्धि नहीं होती, तो तुम्हारा उन परिव्राजकों को यह उत्तर देना उचित था—'आयुष्मानो! हाँ, वे उत्तमपुरुष, परमपुरुष, परम लक्ष्य प्राप्त तथागत पूछने पर जीव के विषय में चार स्थानों में किसी एक को बताते हैं—१. मरणानन्तर जीव रहता है, २. मरणानन्तर जीव नहीं भी रहता, ३. मरणानन्तर जीव रहता भी है और नहीं भी रहता है, तथा ४. मरणानन्तर जीव न रहता है और न नहीं ही रहता है?" "नहीं, भन्ते!"

(भगवान्—) "ठीक है, अनुराध! मैं पहले भी तथा आज भी सब को दु:ख एवं दु:खनिरोध का ही उपदेश करता हूँ।"

●

८७. वक्कलिसुत्तं

९४. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन आयस्मा वक्कलि कुम्भकारनिवेसने विहरति आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। अथ खो आयस्मा वक्कलि उपट्ठाके आमन्तेसि—''एथ तुम्हे, आवुसो, येन भगवा तेनुपसङ्कमथ; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दथ—'वक्कलि, भन्ते, भिक्खु आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो, सो भगवतो पादे सिरसा वन्दती' ति। एवं च वदेथ—'साधु किर, भन्ते, भगवा येन वक्कलि भिक्खु तेनुपसङ्कमतु; अनुकम्पं उपादाया''' ति।

''एवमावुसो'' ति खो ते भिक्खू आयस्मतो वक्कलिस्स पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं [B.98] निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—''वक्कलि, भन्ते, भिक्खु आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो भगवतो पादे सिरसा वन्दति; एवं च पन वदेति—'साधु किर, भन्ते, भगवा येनं वक्कलि भिक्खु तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया''' ति।

अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो भगवा निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय [R.120] येनायस्मा वक्कलि तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो आयस्मा वक्कलि भगवन्तं दूरतो च आगच्छन्तं। दिस्वान मञ्चके समधोसि। अथ खो भगवा आयस्मन्तं वक्कलिं

---

८७. वक्कलिसूत्र : : धर्मद्रष्टा ही बुद्ध का द्रष्टा है

९४. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृहस्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् वक्कलि किसी कुम्भकार के घर में अत्यधिक रुग्ण हो कर शय्या पर पड़े थे। तब आयुष्मान् वक्कलि ने अपने भिक्षुपरिचारकों को बुलाया, तथा कहा—''आयुष्मानो! सुनो, तुम में से कोई जहाँ भगवान् विराजमान हैं, वहाँ जाय, तथा उन से मेरी ओर से प्रणाम करते हुए यह निवेदन करे—'भन्ते! वक्कलि भिक्षु इस समय अत्यधिक रुग्ण है, वह भगवान् को श्रीचरणों में प्रणाम करता है, तथा यह निवेदन करता है—अच्छा हो, भन्ते! आप कृपा कर वक्कलि भिक्षु को आश्वस्त करने के लिये वहाँ पधारें।'''

उन परिचारक भिक्षुओं ने आयुष्मान् वक्कलि की बात मान कर वे भगवान् के सम्मुख गये तथा उन को प्रणाम कर यों निवेदन करने लगे—...पूर्ववत्...।

भगवान् ने मौन भाव से उन की बात स्वीकार कर ली। तब भगवान् अपने शरीर के वस्त्र ठीक कर पात्र चीवर ले कर वक्कलि के आवास पर पहुँचे। वक्कलि ने भगवान् को आते हुए, दूर से ही, देख लिया। देख कर, वक्कलि, भगवान् के बैठने के लिये खाट ठीक

एतदवोच—"अलं, वक्कलि, मा त्वं मञ्चके समधोसि। सन्तिमानि आसनानि पञ्ञत्तानि; तत्थाहं निसीदिस्सामी" ति। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। [N.341] निसज्ज खो भगवा आयस्मन्तं वक्कलिं एतदवोच—"कच्चि ते, वक्कलि, खमनीयं कच्चि यापनीयं कच्चि दुक्खा वेदना पटिक्कमन्ति, नो अभिक्कमन्ति; पटिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो अभिक्कमो" ति?

"न मे, भन्ते, खमनीयं न यापनीयं; बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति; अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो" ति।

"कच्चि ते, वक्कलि, न किञ्चि कुक्कुच्चं न कोचि विप्पटिसारो" ति?

"तग्घ मे, भन्ते, अनप्पकं कुक्कुच्चं अनप्पको विप्पटिसारो" ति।

"कच्चि पन तं, वक्कलि, अत्ता सीलतो न उपवदती" ति?

"न खो मं, भन्ते, अत्ता सीलतो उपवदती" ति।

"नो चे किर तं, वक्कलि, अत्ता सीलतो उपवदति; अथ किञ्च ते कुक्कुच्चं को च विप्पटिसारो" ति?

"चिरपटिकाहं, भन्ते, भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुकामो, नत्थि च मे कायस्मिं तावतिका बलमत्ता यावताहं भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमेय्यं" ति।

"अलं, वक्कलि, किं ते इमिना पूतिकायेन दिट्ठेन? यो खो, वक्कलि, धम्मं पस्सति

करने लगा। भगवान् ने उस को निषेध करते हुए कहा—"इस की आवश्यकता नहीं है, अन्य आसन बिछे हुए हैं, वहीं मैं बैठ जाऊँगा।" तब भगवान् एक आसन पर विराजमान हो कर वक्कलि से पूछने लगे—"कहो, वक्कलि! तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है, रोग तथा रोगजन्य पीड़ा बढ तो नहीं रही है! वे घट रही हैं या घटने की स्थिति में हैं?"

"नहीं, भन्ते! मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है, शरीर में पीड़ा बढती ही जा रही है"।

"वक्कलि! तुम्हें अपने जीवन की किसी घटना के कारण कोई विषाद, खेद या पश्चात्ताप तो नहीं है?"

"भन्ते! मुझ को बहुत विषाद खेद तथा पश्चात्ताप हो रहा है।"

"क्या तुम्हें शील न पालन करने का पश्चात्ताप है?"

"नहीं, भन्ते! वह पश्चात्ताप नहीं है।"

"फिर तुम्हें किस बात का पश्चात्ताप है?"

"भन्ते, मैं बहुत समय से रुग्ण था, अत: चाहते हुए भी सामर्थ्यविहीन होने के कारण, आप के दर्शन करने नहीं आ सका—यही पश्चात्ताप है।"

सो मं पस्सति; यो मं पस्सति सो धम्मं पस्सति। धम्मं हि, वक्कलि, पस्सन्तो मं पस्सति; मं पस्सन्तो धम्मं पस्सति। तं किं मञ्ञसि, वक्कलि, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

[R.121] ''अनिच्चं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा'' ति?

''दुक्खं, भन्ते''।

[B.99] ''यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

[N.342] ''अनिच्चं भन्ते'' ...पे०... एसो मे अत्ता ति।

''नो हेतं, भन्ते''। ''तस्मातिह...पे०...एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति।

अथ खो भगवा आयस्मन्तं वक्कलिं इमिना ओवादेन ओवदित्वा उट्ठायासना येन गिज्झकूटो पब्बतो तेन पक्कामि। अथ खो आयस्मा वक्कलि अचिरपक्कन्तस्स भगवतो उपट्ठाके आमन्तेसि—''एथ मं, आवुसो, मञ्चकं आरोपेत्वा येन इसिगिलिपस्सं काळसिला तेनुपसङ्कमथ। कथं हि नाम मादिसो अन्तरघरे कालं कत्तब्बं मञ्ञेय्या'' ति?

''एवमावुसो'' ति खो ते भिक्खू आयस्मतो वक्कलिस्स पटिस्सुत्वा आयस्मन्तं वक्कलिं मञ्चकं आरोपेत्वा येन इसिगिलिपस्सं काळसिला तेनुपसङ्कमिंसु। अथ खो भगवा तं च रत्तिं तं च दिवावसेसं गिज्झकूटे पब्बते विहासि। अथ खो द्वे देवतायो

''अरे! वक्कलि! इस मलिनाक्त शरीर (पूति काय) के दर्शन से क्या मिलेगा? वक्कलि! सत्य तो यह है जो मेरे धर्म को देखता (साधना करता) है वह मुझे ही देखता है तथा जो मुझे देखता है वह धर्म को देखता है। तो क्या मानते हो, वक्कलि! रूप नित्य है या अनित्य?''

''अनित्य, भन्ते!'' ...पूर्ववत्...। कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया—यह जान जाता है''।

भगवान् आयुष्मान् वक्कलि को यों उपदेश दे कर, आसन से उठ कर गृध्रकूट पर्वत की ओर चले गये।

तब (भगवान् के चले जाने के बाद) आयुष्मान् वक्कलि ने अपने परिचारक भिक्षुओं से कहा—''मुझे खाट पर लेटा कर ऋषिगिलि के पार्श्व में कालशिला पर ले चलो। मेरे जैसा त्यागी भिक्षु किसी गृहस्थ के घर में कैसे देहत्याग कर सकता है!''

अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं गिज्झकूटं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु...पे०...एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवन्तं एतदवोच—"वक्कलि, भन्ते, भिक्खु विमोक्खाय चेतेती" ति। अपरा देवता भगवन्तं एतदवोच—"सो हि नून, भन्ते, सुविमुत्तो विमुच्चिस्सती" ति।

९५. इदमवोचुं ता देवतायो। इदं वत्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायिंसु।

अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन भिक्खू आमन्तेसि—"एथ तुम्हे, भिक्खवे, येन वक्कलि भिक्खु तेनुपसङ्कमथ; उपसङ्कमित्वा वक्कलिं भिक्खुं एवं [R.122] वदेथ—'सुणावुसो त्वं, वक्कलि, भगवतो वचनं द्विन्नं च देवतानं। इमं, आवुसो, रत्तिं द्वे देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं गिज्झकूटं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो, आवुसो, एका देवता भगवन्तं एतदवोच—वक्कलि, भन्ते, भिक्खु विमोक्खाय चेतेती ति। अपरा देवता भगवन्तं एतदवोच—सो हि नून, भन्ते, सुविमुत्तो विमुच्चिस्सती ति। भगवा च तं, आवुसो वक्कलि, एवमाह—मा भायि, वक्कलि; मा भायि, वक्कलि! अपापकं ते मरणं भविस्सति, अपापिका कालकिरिया' " ति।

परिचारकों ने उन की बात स्वीकार कर उन्हें खाट पर लिटा कर कालशिला पर पहुँचा दिया।

उस दिन भगवान् ने समस्त रात्रि तथा दिन का अवशेष (सन्ध्याकाल तक) गृध्रकूट पर्वत पर साधना में ही बिताया। तब उस ज्योत्स्नामयी (चान्दनी) रात्रि में ज्योतिर्मय दो देवता समस्त गृध्रकूट को आलोकित करते हुए भगवान् के सम्मुख आये। ...पूर्ववत्...। एक ओर बैठे उन देवताओं में से एक ने भगवान् को बताया—"भन्ते! वक्कलि विमोक्ष में ध्यान लगा रहा है।" दूसरे देवता ने बताया—"वह अवश्य विमुक्तचित्त हो कर ही परिनिर्वृत होगा।"

९५. उन देवताओं ने यह कहा। तथा यह कह कर वे भगवान को प्रणाम प्रदक्षिणा कर अपने स्थान पर लौट गये।

तब भगवान् ने, उस रात्रि के बीतने पर, कुछ भिक्षुओं को बुलाया तथा उन से कहा—"जाओ, भिक्षुओ, तुम वक्कलि भिक्षु के पास जा कर वक्कलि से यों कहो—'वक्कलि तुम वे बातें सुनो जो दो देवताओं ने भगवान् से कही हैं। आज रात्रि में, भगवान् के पास दो देवता आये... पूर्ववत्...। उन्होंने भगवान् से ये बातें कहीं। उधर भगवान् ने भी तुम को आश्वासन दिया है—'वक्कलि! डरना नहीं, तुम्हारा मरण निष्पाप (निष्कलङ्क) होगा, तुम्हारी मृत्यु पापरहित होगी।'''

[N.343, B.100] "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पटिस्सुत्वा येनायस्मा वक्कलि तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं वक्कलिं एतदवोचुं—"सुणावुसो वक्कलि, भगवतो वचनं द्विन्नं च देवतानं" ति।

अथ खो आयस्मा वक्कलि उपट्ठाके आमन्तेसि—"एथ मं, आवुसो, मञ्चका ओरोपेथ। कथं हि नाम मादिसो उच्चे आसने निसीदित्वा तस्स भगवतो सासनं सोतब्बं मञ्ञेय्या" ति!

"एवमावुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो वक्कलिस्स पटिस्सुत्वा आयस्मन्तं वक्कलिं मञ्चका ओरोपेसुं। "इमं, आवुसो, रत्तिं द्वे देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया ...पे०...एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो, आवुसो, एका देवता भगवन्तं एतदवोच—'वक्कलि, भन्ते, भिक्खु विमोक्खाय चेतेती' ति। अपरा देवता भगवन्तं एतदवोच—'सो हि नून, भन्ते, सुविमुत्तो विमुच्चिस्सती' ति। भगवा च तं, आवुसो वक्कलि, एवमाह—'मा भायि, वक्कलि; मा भायि, वक्कलि! अपापकं ते मरणं भविस्सति, अपापिका कालकिरिया''' ति।

"तेन हावुसो, मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दथ—'वक्कलि, भन्ते, भिक्खु आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो भगवतो पादे सिरसा वदन्ती' ति। एवं च वदेथ—'रूपं अनिच्चं। ताहं, भन्ते, न कङ्खामि। यदनिच्चं तं दुक्खं ति न विचिकिच्छामि। यदनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं नत्थि मे तत्थ छन्दो वा रागो वा पेमं

भिक्षुओं ने "ठीक है, भन्ते!" —कहते हुए भगवान् के आदेश से आयुष्मान् वक्कलि के पास जा कर वे उन से यों बोले—"वक्कलि! तुम उन दो देवताओं की बातें तथा भगवान् की तुम्हारे प्रति आश्वासनमयी वाणी सुनो।"

तब आयुष्मान् वक्कलि ने अपने परिचारकों से कहा—"मुझे खाट से उतार कर नीचे लेटा दो; क्यों कि मेरे लिये खाट पर लेटे हुए भगवान् की वाणी (उपदेश) सुनना उचित नहीं होगा।" परिचारकों ने वक्कलि को, उस के कथनानुसार, खाट से नीचे उतार दिया।

तब भगवान् द्वारा प्रेषित उन भिक्षुओं ने वक्कलि से यों कहा—"आयुष्मन्! आज रात्रि में दो ज्योतिर्मय देवता...पूर्ववत्...तुम्हारा देहावसान निष्पाप (निष्कलङ्क) ही होगा।" यह सुन कर वक्कलि ने भी भगवान् द्वारा प्रेषित उन भिक्षुदूतों से कहा—"आयुष्मानो! मेरी ओर से भगवान् के श्रीचरणों में प्रणाम कर उन से निवेदन करना—'भन्ते! वक्कलि भिक्षु तीव्र रोग से पीड़ित है। वह आप के श्रीचरणों में प्रणाम करता है। तथा यह भी कहना—'भन्ते! रूप अनित्य है, अत: मैं उस की आकांक्षा नहीं करता; क्यों कि जो अनित्य है वह

वा ति न विचिकिच्छामि। वेदना अनिच्चा। ताहं, भन्ते, न कङ्खामि। यदनिच्चं तं दुक्खं ति न विचिकिच्छामि। यदनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, नत्थि मे तत्थ छन्दो [R.123] वा रागो वा पेमं वा ति न विचिकिच्छामि। सञ्ञा...सङ्खारा अनिच्चा। ताहं, भन्ते, न कङ्खामि। यदनिच्चं तं दुक्खं ति न विचिकिच्छामि। यदनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, नत्थि मे तत्थ छन्दो वा रागो वा पेमं वा ति न विचिकिच्छामि। विञ्ञाणं अनिच्चं। ताहं, भन्ते, न कङ्खामि। यदनिच्चं तं दुक्खं ति न विचिकिच्छामि। यदनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, नत्थि मे तत्थ छन्दो वा रागो वा पेमं वा ति न विचिकिच्छामी''' ति।

''एवमावुसो'' ति खो ते भिक्खू आयस्मतो वक्कलिस्स पटिस्सुत्वा पक्कमिंसु। अथ खो आयस्मा वक्कलि अचिरपक्कन्तेसु तेसु भिक्खूसु सत्थं आहरेसि। अथ खो ते भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं [N.343] निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—''वक्कलि, भन्ते, भिक्खु आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो; सो भगवतो पादे सिरसा वन्दति; एवं च वदेति—'रूपं अनिच्चं। ताहं, भन्ते, न कङ्खामि। यदनिच्चं तं दुक्खं ति न विचिकिच्छामि। [B.101] यदनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं नत्थि मे तत्थ छन्दो वा रागो वा पेमं वा ति न विचिकिच्छामि। वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनिच्चं। ताहं, भन्ते, न कङ्खामि। यदनिच्चं तं दुक्खं ति न विचिकिच्छामि। 'यदनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, नत्थि मे तत्थ छन्दो वा रागो वा पेमं वा ति न विचिकिच्छामी''' ति।

अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''आयाम, भिक्खवे, येन इसिगिलिपस्सं काळसिला तेनुपसङ्कमिस्साम; यत्थ वक्कलिना कुलपुत्तेन सत्थमाहरितं'' ति। ''एवं,

---

दुःख है—इस में मुझे सन्देह नहीं। जो अनित्य दुःख एवं अनात्म है उस के प्रति न मुझे कोई छन्दराग (कामना, आसक्ति) है वेदना...संज्ञा...संस्कार...पूर्ववत्...। जो अनित्य दुःख एवं अनात्म है उस के प्रति मेरा न कोई छन्द है, न राग, न कोई प्रेम है न उस के प्रति कोई सन्देह।''

''ठीक है, आयुष्मन्''—यह कह कर वे भिक्षु (भगवान् के पास) लौट गये। तब उन भिक्षुओं के चले जाने के कुछ ही देर बाद आयुष्मान् वक्कलि ने कोई शस्त्र उठाया (तथा उस से आत्महत्या कर ली)। उधर वे भिक्षु पुनः भगवान् के सम्मुख पहुँचे तथा आयुष्मान् वक्कलि का निवेदन...पूर्ववत्...अक्षरशः सुना दिया।

तब भगवान् ने भिक्षुओं से कहा—''आओ, भिक्षुओ! हम लोग तत्काल ऋषिगिलि पर्वत के पास कालशिला चलें, जहाँ वक्कलि ने अभी अब स्वयं पर शस्त्रप्रयोग कर लिया है।'' भिक्षुओं ने भगवान् का आदेश स्वीकार किया। तब भगवान् बहुत से भिक्षुओं के

भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। अथ खो भगवा सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं येन इसिगिलिपस्सं काळसिला तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो भगवा आयस्मन्तं वक्कलिं दूरतो व मञ्चके विवत्तक्खन्धं सेमानं।

तेन खो पन समयेन धूमायितत्तं तिमिरायितत्तं गच्छतेव पुरिमं दिसं, गच्छति [R.124] पच्छिमं दिसं, गच्छति उत्तरं दिसं, गच्छति दक्खिणं दिसं, गच्छति उद्धं दिसं, गच्छति अधो दिसं, गच्छति अनुदिसं। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, एतं धूमायितत्तं तिमिरायितत्तं गच्छतेव पुरिमं दिसं...पे०...गच्छति अनुदिसं'' ति ?

''एवं, भन्ते''।

''एसो खो, भिक्खवे, मारो पापिमा वक्कलिस्स कुलपुत्तस्स विञ्ञाणं समन्वेसति—'कत्थ वक्कलिस्स कुलपुत्तस्स विञ्ञाणं पतिट्ठितं' ति ? अप्पतिट्ठितेन च, भिक्खवे, विञ्ञाणेन वक्कलि कुलपुत्तो परिनिब्बुतो'' ति॥ ●

८८. अस्सजिसुत्तं

९६. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन [N.345] समयेन आयस्मा अस्सजि कस्सपकारामे विहरति आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। अथ खो आयस्मा अस्सजि उपट्ठाके आमन्तेसि—''एथ तुम्हे, आवुसो, येन भगवा तेनुपसङ्कमथ; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दथ—

साथ कालशिला पहुँचे। वहाँ भगवान् ने दूर से ही खाट पर पड़े आयुष्मान् वक्कलि के शस्त्र से क्षत विक्षत शरीर को देख लिया।

उस समय कुछ धूएँ तथा अन्धकार के समान एक काला आकार वहाँ कभी पूर्व दिशा की तरफ, कभी पश्चिम दिशा की तरफ, कभी उत्तर...दक्षिण...ऊपर या नीचे आता जाता दिखायी दिया। भगवान् ने उस आकार की ओर देखने का भिक्षुओं को सङ्केत किया तथा उस आकार के विषय में उन को बताया—''यह पापी मार आयुष्मान् वक्कलि के विज्ञान को खोज रहा है कि उस का विज्ञान अब कहाँ जा कर प्रतिष्ठित हुआ है। परन्तु वक्कलि कुलपुत्र तो, विज्ञान के कहीं प्रतिष्ठित हुए विना परिनिर्वृत हो गया है॥'' ●

८८. अश्वजित्सूत्र : : वेदनाओं के प्रति अनासक्ति

९६. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृहस्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् अश्वजित् किसी भयङ्कर रोग से ग्रस्त हो कर काश्यपकाराम में ठहरे हुए थे। उस समय उन्होंने अपने परिचारक भिक्षुओं से कहा—'आयुष्मानो! आप लोग मेरे कहने से भगवान् के पास जाओ, तथा उन से मेरा

'अस्सजि, भन्ते, भिक्खु आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो भगवतो पादे सिरसा वन्दती' ति। एवं च वदेथ—'साधु किर, भन्ते, भगवा येन अस्सजि भिक्खु [B.102] तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया''' ति।

"एवमावुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो अस्सजिस्स पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"अस्सजि, भन्ते, भिक्खु आबाधिको ...पे०...साधु किर, भन्ते, भगवा येन अस्सजि भिक्खु तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया" ति।

अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो भगवा सायन्हसमयं [R.125] पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा अस्सजि तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो आयस्मा अस्सजि भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान मञ्चके समधोसि। अथ खो भगवा आयस्मन्तं अस्सजिं एतदवोच—"अलं, अस्सजि, मा त्वं मञ्चके समधोसि। सन्तिमानि आसनानि पञ्ञत्तानि, तत्थाहं निसीदिस्सामी" ति। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज खो भगवा आयस्मन्तं अस्सजिं एतदवोच—"कच्चि ते, अस्सजि, खमनीयं कच्चि यापनीयं ...पे०...पटिक्कमोसानं पञ्ञायति नो अभिक्कमो" ति?

"न मे, भन्ते, खमनीयं...पे०...अभिक्कमोसानं पञ्ञायति नो पटिक्कमो" ति।

"कच्चि ते, अस्सजि, न किञ्चि कुक्कुच्चं न कोचि विप्पटिसारो" ति?

"तग्घ मे, भन्ते, अनप्पकं कुक्कुच्चं अनप्पको विप्पटिसारो" ति।

"कच्चि पन तं, अस्सजि, अत्ता सीलतो न उपवदती" ति?

"न खो मं, भन्ते, अत्ता सीलतो उपवदती" ति।

"नो चे किर तं, अस्सजि, अत्ता सीलतो उपवदति, अथ किञ्च ते कुक्कुच्चं को च विप्पटिसारो" ति?

रोगाक्रान्त होना बता कर निवेदन करना कि भन्ते! अश्वजित् बहुत अधिक रुग्ण है...अतः आप कृपया स्वयं पधार कर उसे आश्वस्त करें।"

भिक्षुओं ने आयुष्मान् अश्वजित् की बात स्वीकार कर भगवान् के सम्मुख जा कर अश्वजित् का निवेदन प्रस्तुत कर दिया। भगवान् ने मौन भाव से यह निवेदन स्वीकार कर लिया।

तब भगवान् सायङ्काल...पूर्ववत्...(वक्कलिसूत्र में आगत पाठ के समान)। "अश्वजित् तुम्हें शील-पालन का खेद या पश्चात्ताप नहीं है तो किस बात का पश्चात्ताप है?"

"पुब्बे ख्वाहं, भन्ते, गेलञ्ञे पस्सम्भेत्वा पस्सम्भेत्वा कायसङ्खारे विहरामि, सोहं [N.346] समाधिं नप्पटिलभामि। तस्स मय्हं, भन्ते, तं समाधिं अप्पटिलभतो एवं होति—'नो चस्साहं परिहायामी''' ति।

"ये ते, अस्सजि, समणब्राह्मणा समाधिसारका समाधिसामञ्ञा तेसं तं समाधिं अप्पटिलभतं एवं होति—'नो चस्सु मयं परिहायामा' ति। तं किं मञ्ञसि, अस्सजि, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

[R.126] "अनिच्चं, भन्ते"...पे०...विञ्ञाणं...पे०...तस्मातिह...पे०...एवं पस्सं...पे० [B.103] ... नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति। सो सुखं चे वेदनं वेदयति, सा 'अनिच्चा' ति पजानाति। 'अनज्झोसिता' ति पजानाति। 'अनभिनन्दिता' ति पजानाति। दुक्खं चे वेदनं वेदयति, सा 'अनिच्चा' ति पजानाति। 'अनज्झोसिता' ति पजानाति। 'अनभिनन्दिता' ति पजानाति। अदुक्खमसुखं चे वेदनं वेदयति, सा 'अनिच्चा' ति पजानाति ...पे०...'अनभिनन्दिता' ति पजानाति। सो सुखं चे वेदनं वेदयति, विसंयुत्तो नं वेदयति; दुक्खं चे वेदनं वेदयति, विसंयुत्तो नं वेदयति; अदुक्खमसुखं चे वेदनं वेदयति, विसंयुत्तो नं वेदयति। सो कायपरियन्तिकं चे वेदनं वेदयमानो 'कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। जीवितपरियन्तिकं चे वेदनं वेदयमानो 'जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। 'कायस्स भेदा उद्धं जीवितपरियादाना इधेव सब्ब-वेदयितानि अनभिनन्दितानि सीतीभविस्सन्ती' ति पजानाति।

"भन्ते! इस रोगोत्पत्ति से पूर्व मैं अपने आश्वास-प्रश्वास पर ध्यान का अभ्यास करता था, परन्तु मुझे उस अभ्यास-समाधि का लाभ नहीं हुआ। अत: मेरे मन में यह विचार आया कि कहीं मैं इस धर्मसाधना (समाधि) से च्युत तो नहीं हो जाऊँगा!"

"अश्वजित्! जो श्रमण ब्राह्मण समाधि को ही साधना का चरम लक्ष्य मानते हैं कि उस के विना मुक्ति असम्भव है, वे भी ऐसा ही समझते हैं कि कहीं हम धर्म से च्युत तो नहीं हो जायँगे! तो क्या मानते हो, अश्वजित्! रूप नित्य है या अनित्य? ...पूर्ववत्...वह मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया—ऐसा जान लेता है।

"यदि उसे सुखा वेदना होती है तो वह जानता है कि यह वेदना अनित्य है। वह यह भी जानता है कि इस में आसक्त नहीं होना चाहिये। इस का अभिनन्दन नहीं करना चाहिये। यदि उसे दु:खा वेदना...अदु:खा असुखा वेदना...पूर्ववत्...।

"यदि उसे सुखा वेदना होती है तो वह अनासक्त रहता हुआ उसे अनुभव करता है। यदि उसे दु:खा वेदना...अदु:खा असुखा वेदना...पूर्ववत्..। "वह कायपर्यन्त वेदना का अनुभव करते हुए जानता है कि यह वेदना कायपर्यन्त ही है। जीवितपर्यन्त वेदना का

"सेय्यथापि, अस्सजि, तेलं च पटिच्च वट्टिं च पटिच्च तेलप्पदीपो झायेय्य; तस्सेव तेलस्स च वट्टिया च परियादाना अनाहारो निब्बायेय्य। एवमेव खो, अस्सजि, भिक्खु कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो 'कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो 'जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। 'कायस्स भेदा उद्धं जीवितपरियादाना इधेव सब्बवेदयितानि अनभिनन्दितानि सीतीभविस्सन्ती' ति पजानाती" ति। ●

८९. खेमकसुत्तं

९७. एकं समयं सम्बहुला थेरा भिक्खू कोसम्बियं विहरन्ति घोसितारामे। तेन खो पन समयेन आयस्मा खेमको बदरिकारामे विहरति आबाधिको [N.347, R.127] दुक्खितो बाळ्हगिलानो। अथ खो थेरा भिक्खू सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठिता आयस्मन्तं दासकं आमन्तेसुं—"एहि त्वं, आवुसो दासक, येन खेमको भिक्खु तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा खेमकं भिक्खु एवं वदेहि—'थेरा तं, आवुसो खेमक, एवमाहंसु—कच्चि ते, आवुसो, खमनीयं कच्चि यापनीयं कच्चि दुक्खा वेदना पटिक्कमन्ति नो अभिक्कमन्ति, पटिक्कमोसानं पञ्ञायति नो अभिक्कमो''' ति?

अनुभव करते हुए जानता है कि यह वेदना जीवितपर्यन्त है। इस देहपात के बाद, ये सभी वेदनाएँ यहीं शान्त हो जायँगी। तथा उन के प्रति कोई आसक्ति न रहेगी।

"अश्वजित्! जैसे बत्ती एवं तैल की अपेक्षा से दीपक जलता है, तथा उस बत्ती या तैल के न रहने पर वही दीपक नहीं जलता, बुझ जाता है; वैसे ही यह साधक भिक्षु कायपर्यन्त वेदना का अनुभव करते हुए जानता है कि मैं कायपर्यन्त वेदना का अनुभव कर रहा हूँ; जीवितपर्यन्त वेदना का...अनुभव कर रहा हूँ। देहपात के बाद, जीवनक्षय होने पर ये सभी अनुभव की जाने वाली वेदनाएँ यहीं शान्त हो जायँगी, ठण्ढी पड़ जायँगी तथा तब उन के प्रति कोई आसक्ति न रह जायगी॥" ●

८९. क्षेमकसूत्र : : उत्पत्ति एवं नाश के मनन से मुक्ति

९७. एक समय अनेक स्थविर भिक्षु **कौशाम्बी के** घोषिताराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय आयुष्मान् क्षेमक भी बदरिकाराम में रोगाक्रान्त हो कर ठहरे हुए थे। तब उन भिक्षुओं ने सायङ्काल समाधिभावना से उठ कर आयुष्मान् दासक से कहा— "आयुष्मन् दासक! तुम क्षेमक भिक्षु के पास जाओ, जा कर उस से यह कहो—"तुम्हारा रोग कैसा है? तुम्हें अधिक वेदना तो नहीं हो रही है? रोग में कुछ कमी है कि नहीं है?" आयुष्मान् दासक स्थविर भिक्षुओं की बात मान कर आयुष्मान् क्षेमक के पास गये और उन से स्थविर भिक्षुओं के कथनानुसार पूछा—"आप का स्वास्थ्य कैसा है? ..."

"एवमावुसो" ति खो आयस्मा दासको थेरानं भिक्खूनं पटिस्सुत्वा येनायस्मा खेमको तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं खेमकं एतदवोच—"थेरा तं, आवुसो [B.104] खेमक, एवमाहंसु—'कच्चि ते, आवुसो, खमनीयं...पे०...नो अभिक्कमो''' ति?

"न मे, आवुसो, खमनीयं न यापनीयं...पे०...अभिक्कमोसानं पञ्ञायति नो पटिक्कमो" ति?

अथ खो आयस्मा दासको येन थेरा भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा थेरे भिक्खु एतदवोच—"खेमको, आवुसो, भिक्खु एवमाह—'न मे, आवुसो, खमनीयं...पे०...अभिक्कमोसानं पञ्ञायति नो पटिक्कमो''' ति?

"एहि त्वं, आवुसो दासक, येन खेमको भिक्खु तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा खेमकं भिक्खुं एवं वदेहि—'थेरा तं, आवुसो खेमक, एवमाहंसु—पञ्चिमे, आवुसो, उपादानक्खन्धा वुत्ता भगवता, सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। इमेसु आयस्मा खेमको पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु किञ्चि अत्तं वा अत्तनियं वा समनुपस्सती''' ति?

"एवमावुसो" ति खो आयस्मा दासको थेरानं भिक्खूनं पटिस्सुत्वा येनायस्मा खेमको तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा...पे०...थेरा तं, आवुसो खेमक, एवमाहंसु—"पञ्चिमे, आवुसो, उपादानक्खन्धा वुत्ता भगवता, सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो ...पे०...विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। इमेसु आयस्मा खेमको पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु किञ्चि अत्तं वा अत्तनियं वा समनुपस्सती" ति?

[R.128] "पञ्चिमे, आवुसो, उपादानक्खन्धा वुत्ता भगवता, सेय्यथीदं—रूपुपादान-[N.348] क्खन्धो...पे०...विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। इमेसु ख्वाहं, आवुसो पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु न किञ्चि अत्तं वा अत्तनियं वा समनुपस्सामी" ति।

उस ने उत्तर दिया—"मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है...मेरा रोग दिनानुदिन बढता ही जा रहा है।"

आयुष्मान् दासक ने पुनः लौट कर स्थविर भिक्षुओं को आयुष्मान् क्षेमक की रोगवृद्धि का समाचार सुना दिया। तब उन स्थविर भिक्षुओं ने दासक से पुनः कहा—

"आयुष्मन् दासक! तुम पुनः क्षेमक भिक्षु के पास जाओ, तथा उन से यह कहो—आयुष्मन्! आप से स्थविर भिक्षुओं ने पूछा है—भगवान् ने ये पाँच उपादानस्कन्ध कहे हैं—१. रूपोपादानस्कन्ध...५. विज्ञानोपादानस्कन्ध। आयुष्मान् क्षेमक इन पाँचों में से किसी को अपना या अपने में तो नहीं मान बैठे हैं?"

अथ खो आयस्मा दासको येन थेरा भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा थेरे भिक्खू एतदवोच—"खेमको, आवुसो, भिक्खु एवमाह—'पञ्चिमे, आवुसो, उपादानक्खन्धा वुत्ता भगवता, सेय्यथीदं रूपुपादानक्खन्धो...पे०...विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। इमेसु ख्वाहं, आवुसो पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु न किञ्चि अत्तं वा अत्तनियं वा समनुपस्सामी''' ति।

"एहि त्वं, आवुसो दासक, येन खेमको भिक्खु तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा खेमकं भिक्खुं एवं वदेहि—'थेरा तं, आवुसो खेमक, एवमाहंसु—पञ्चिमे, आवुसो, उपादानक्खन्धा वुत्ता भगवता, सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो...पे०...विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। नो चे किरायस्मा खेमको इमेसु पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु किञ्चि अत्तं [B.105] वा अत्तनियं वा समनुपस्सति। तेनहायस्मा खेमको अरहं खीणासवो''' ति।

"एवमावुसो" ति खो आयस्मा दासको थेरानं भिक्खूनं पटिस्सुत्वा येनायस्मा खेमको...पे०...थेरा तं, आवुसो खेमक, एवमाहंसु—"पञ्चिमे, आवुसो, उपादानक्खन्धा वुत्ता भगवता, सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो...पे०...विञ्ञाणुपादानक्खन्धो; नो चे किरायस्मा खेमको इमेसु पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु किञ्चि अत्तं वा अत्तनियं वा समनुपस्सति, तेनहायस्मा खेमको अरहं खीणासवो" ति।

"पञ्चिमे, आवुसो, उपादानक्खन्धा वुत्ता भगवता, सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो...पे०...विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। इमेसु ख्वाहं, आवुसो पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु न किञ्चि अत्तं वा अत्तनियं वा समनुपस्सामि, 'अस्मी' ति अधिगतं, 'अयमहमस्मी' ति न च समनुपस्सामी" ति।

अथ खो आयस्मा दासको येन थेरा भिक्खू ...पे०... थेरे भिक्खू [R.129] एतदवोच—"खेमको, आवुसो, भिक्खु एवमाह—'पञ्चिमे, आवुसो, उपादानक्खन्धा

आयुष्मान् दासक ने उन स्थविर भिक्षुओं का यह सन्देश आयुष्मान् क्षेमक को पुन: जा कर सुनाया। तब क्षेमक ने उत्तर दिया—"आयुष्मन्! मैं इन पाँचों उपादानस्कन्धों में से किसी को भी अपना या अपने में नहीं मानता हूँ।"

यह सुन कर भिक्षु बोले—"आयुष्मन् दासक! एक बार तुम, हमारे कहने से, पुन: आयुष्मान् क्षेमक के पास जाओ, तथा हमारा मन्तव्य उस से कहो—'यदि तुम उन पाँचों उपादानस्कन्धों में से किसी को भी अपना या अपने में नहीं मानते हो तो, तुम आयुष्मन् क्षेमक अर्हत् क्षीणाश्रव की स्थिति में पहुँच चुके हो।'"

आयुष्मान् दासक ने स्थविर भिक्षुओं का यह सन्देश आयुष्मान् क्षेमक के पास जा कर उस को सुना दिया। तब आयुष्मान् क्षेमक ने उक्त सन्देश का यह उत्तर दिया—

वुत्ता भगवता, सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो...पे०...विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। इमेसु ख्वाहं, आवुसो पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु न किञ्चि अत्तं वा अत्तनियं वा समनुपस्सामि, न [N.349] चम्हि अरहं खीणासवो; अपि च मे, आवुसो, पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु 'अस्मी' ति अधिगतं, 'अयमहमस्मी' ति न च समनुपस्सामी'' ति।

''एहि त्वं, आवुसो दासक, येन खेमको भिक्खु तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा खेमकं भिक्खुं एवं वदेहि—'थेरा तं, आवुसो खेमक, एवमाहंसु—यमेतं, आवुसो खेमक, अस्मी ति वदेसि, किमेतं अस्मी ति वदेसि? रूपं अस्मी ति वदेसि, अञ्ञत्र रूपा अस्मी ति वदेसि, वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं अस्मी ति वदेसि, अञ्ञत्र विञ्ञाणा अस्मी ति वदेसि। यमेतं, आवुसो खेमक, अस्मी ति वदेसि। किमेतं अस्मी ति वदेसी'' ति?

''एवमावुसो'' ति खो आयस्मा दासको थेरानं भिक्खूनं पटिस्सुत्वा येनायस्मा [B.106] खेमको तेनुपसङ्कमि...पे०...।

''अलं, आवुसो दासक, किं इमाय सन्धावनिकाय! आहरावुसो, दण्डं; अहमेव येन थेरा भिक्खू तेनुपसङ्कमिस्सामी'' ति।

अथ खो आयस्मा खेमको दण्डमोलुब्भ येन थेरा भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उप-

---

''मैं, यद्यपि उन पाँचों उपादानस्कन्धों में से किसी एक को भी अपना या अपने में नहीं समझता, परन्तु अभी मैं क्षीणाश्रव अर्हत् की स्थिति में नहीं पहुँचा हूँ; क्यों कि उन पाँचों उपादानस्कन्धों में 'अस्मि' (मैं हूँ) की बुद्धि है ही, यद्यपि मैं नहीं जानता कि मैं यह हूँ ही।''

यह सुन कर वे भिक्षु फिर बोले—''आयुष्मन् दासक! एक बार हमारे कहने से तुम पुनः आयुष्मान् क्षेमक के पास जाओ, तथा हमारी ओर से उन से पूछो—...यह जो आप कह रहे हैं कि अभी मुझे 'अस्मि' (मैं हूँ) की बुद्धि है ही, यह 'अस्मि' क्या है? क्या तुम रूप को, वेदना को, संज्ञा को, संस्कारों को...विज्ञान को 'मैं हूँ' कह रहे हो?'' या यह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान से अन्यत्र किसी 'अस्मि' को कह रहे हो? यह 'अस्मि' क्या है?''

आयुष्मान् दासक ने भिक्षुओं की बात स्वीकार की तथा वह आयुष्मान् क्षेमक के पास गया तथा उस से भिक्षुओं का उपर्युक्त प्रश्न पूछा। यह सुन कर आयुष्मान् क्षेमक कुछ व्यग्र से हो कर बोले—''आयुष्मन् दासक! तुम्हारे इस तरह बार बार आने जाने से क्या लाभ होगा! मेरी लाठी लाओ! मैं स्वयं स्थविर भिक्षुओं के पास चलूँगा।''

तब वह रुग्ण आयुष्मान् क्षेमक लाठी टेकता हुआ उस के सहारे से उन स्थविर

सङ्कमित्वा थेरेहि भिक्खूहि सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं खेमकं थेरा भिक्खू एतदवोचुं— ''यमेतं, आवुसो खेमक, 'अस्मी' ति वदेसि, किमेतं 'अस्मी' ति वदेसि? [R.130] रूपं 'अस्मी' ति वदेसि, अञ्ञत्र रूपा 'अस्मी' ति वदेसि? वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे... विञ्ञाणं 'अस्मी' ति वदेसि, अञ्ञत्र विञ्ञाणा 'अस्मी' ति वदेसि? यमेतं, आवुसो खेमक, 'अस्मी' ति वदेसि। किमेतं 'अस्मी' ति वदेसी'' ति?

''न ख्वाहं, आवुसो, रूपं 'अस्मी' ति वदामि; न पि अञ्ञत्र रूपा 'अस्मी' ति वदामि। न वेदनं...न सञ्ञं...न सङ्खारे...न विञ्ञाणं 'अस्मी' ति वदामि; न पि अञ्ञत्र विञ्ञाणा 'अस्मी' ति वदामि। अपि च मे, आवुसो, पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु 'अस्मी' ति अधिगतं 'अयमहमस्मी' ति न च समनुपस्सामि।

''सेय्यथापि, आवुसो, उप्पलस्स वा पदुमस्स वा पुण्डरीकस्स वा गन्धो। यो नु खो एवं वदेय्य—'पत्तस्स गन्धो' ति वा 'वण्णस्स गन्धो' ति वा 'किञ्जक्खस्स गन्धो' ति वा सम्मा नु खो सो वदमानो वदेय्या'' ति?

''नो हेतं, आवुसो''। [N.350]

''यथा कथं, पनावुसो, सम्मा ब्याकरमानो ब्याकरेय्या'' ति?

'''पुप्फस्स गन्धो' ति खो, आवुसो, सम्मा ब्याकरमानो ब्याकरेय्या'' ति।

''एवमेव ख्वाहं, आवुसो, न रूपं 'अस्मी' ति वदामि, न पि अञ्ञत्र रूपा

भिक्षुओं के पास आया, तथा कुशलक्षेमप्रश्नानन्तर, एक ओर बैठ गया। तब उस एक ओर बैठे आयुष्मान् क्षेमक से उन स्थविरों ने अपना उपर्युक्त प्रश्न ('रूप में या रूप से अन्यत्र' वाला) पुनः दोहराया।

(आयुष्मान् क्षेमक—) ''आयुष्मानो! मैं रूप को या रूप से अन्यत्र...पूर्ववत्...नहीं कह रहा, परन्तु पाँच उपादानस्कन्धों में मेरी अहम्बुद्धि है। यद्यपि मैं यह नहीं जानता कि यह 'मैं हूँ'—है क्या चीज?

''आयुष्मानो! जैसे उत्पल या पद्म या पुण्डरीक (कमल) की गन्ध होती है। यहाँ यदि कोई कहे—'यह पत्र का गन्ध है', ...'रंग का गन्ध है', ...'पराग का गन्ध है' तो क्या यह ठीक समझा जायगा?''

''नहीं, आयुष्मन्!''

''तो आप बतावें—क्या ठीक समझा जायगा?''

''आयुष्मन्! 'फूल का गन्ध है'—यही ठीक समझा जायगा।''

''आयुष्मानो! इसी तरह मैं रूप को 'मैं हूँ' नहीं कहता, तथा न 'मैं हूँ' को रूप

'अस्मी' ति वदामि। न वेदनं...न सञ्ञं...न सङ्खारे...न विञ्ञाणं 'अस्मी' ति वदामि; न पि अञ्ञत्र विञ्ञाणा 'अस्मी' ति वदामि। अपि च मे, आवुसो, पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु 'अस्मी' ति अधिगतं 'अयमहमस्मी' ति न च समनुपस्सामि। किञ्चापि, आवुसो, अरियसावकस्स पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि भवन्ति, अथ ख्वस्स होति— [B.107] 'यो च पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु अनुसहगतो 'अस्मी' ति मानो, 'अस्मी' ति छन्दो, 'अस्मी' ति अनुसयो असमूहतो, सो अपरेन समयेन पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु उदयब्बयानुपस्सी विहरति—'इति रूपं, इति रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो; [R.131] इति वेदना...इति सञ्ञा...इति सङ्खारा...इति विञ्ञाणं, इति विञ्ञाणस्स समुदयो, इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति। तस्सिमेसु पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु उदयब्बयानुपस्सिनो विहरतो यो पिस्स होति पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु अनुसहगतो 'अस्मी' ति, मानो 'अस्मी' ति, छन्दो 'अस्मी' ति अनुसयो असमूहतो, सो पि समुग्घातं गच्छति।

''सेय्यथापि, आवुसो, वत्थं सङ्किलिट्ठं मलग्गहितं। तमेनं सामिका रजकस्स अनुप्पदज्जुं। तमेन रजको ऊसे वा खारे वा गोमये वा सम्मद्दित्वा अच्छे उदके विक्खालेति। किञ्चापि तं होति वत्थं परिसुद्धं परियोदातं, अथ ख्वस्स होति यो च अनुसहगतो ऊसगन्धो वा खारगन्धो वा गोमयगन्धो वा असमूहतो। तमेन रजको

के बाहर की वस्तु ही बताता हूँ। न वेदना को, न संज्ञा को, न संस्कार को, न विज्ञान को ही 'मैं हूँ' कहता हूँ। आयुष्मानो! यद्यपि पाँच उपादानस्कन्धों में मुझ को 'मैं हूँ' बुद्धि होती है, तथापि मैं नहीं जानता कि मैं यह हूँ।

''आयुष्मानो! आर्यश्रावक के पाँच अवरभागीय (नीचे के) बन्धन कट जाने पर भी उसे पाँच ऊर्ध्वभागीय उपादानस्कन्धों के साथ होने वाले 'मैं हूँ' का मान, छन्द (कामना) तथा अनुशय लगा ही रहता है। वह आगे चल कर पाँच उपादानस्कन्धों में उत्पत्ति एवं नाश को देखता हुआ साधना करता है—यह रूप है, यह रूप की उत्पत्ति है, यह रूप का विनाश है; यह वेदना...यह संज्ञा...यह संस्कार...यह विज्ञान है, यह विज्ञान की उत्पत्ति है, यह विज्ञान का विनाश है। उस के इस प्रकार पाँच उपादानस्कन्धों में उत्पत्ति विनाश देखते हुए साधना करने से उस के पाँच उपादानस्कन्धों के साथ होने वाले 'मैं हूँ' का मान, छन्द एवं अनुशय नष्ट हो जाता है।

''आयुष्मानो! जैसे कोई मलिन वस्त्र हो, उसे उस का स्वामी, स्वच्छ करने के लिये रजक (धोबी) को दे दे। उस को वह धोबी राख, खार या गोबर में मल मल कर धोये तथा जल से स्वच्छ कर दे। उस समय वह वस्त्र स्वच्छ तो अवश्य हो जाता है, परन्तु

सामिकानं देति। तमेनं सामिका गन्धपरिभाविते करण्डके निक्खिपन्ति। यो पिस्स होति अनुसहगतो ऊसगन्धो वा खारगन्धो वा गोमयगन्धो वा असमूहतो सो पि समुग्घातं गच्छति। एवमेव खो, आवुसो, किञ्चापि अरियसावकस्स पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि भवन्ति, अथ ख्वस्स होति यो च पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु अनुसहगतो 'अस्मी' ति, मानो 'अस्मी' ति, छन्दो 'अस्मी' ति अनुसयो असमूहतो। सो [N.351] अपरेन समयेन पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु उदयब्बयानुपस्सी विहरति। 'इति रूपं, इति रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो। इति वेदना...इति सञ्ञा...इति सङ्खारा...इति विञ्ञाणं, इति विञ्ञाणस्स समुदयो, इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति तस्स इमेसु पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु उदयब्बयानुपस्सिनो विहरतो यो पिस्स होति पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु अनुसहगतो 'अस्मी' ति, मानो 'अस्मी' ति, छन्दो 'अस्मी' ति अनुसयो असमूहतो सो पि समुग्घातं गच्छती'' ति।

एवं वुत्ते, थेरा भिक्खू आयस्मन्तं खेमकं एतदवोचुं—''न खो मयं आयस्मन्तं खेमकं विहेसापेक्खा पुच्छिम्ह, अपि चायस्मा खेमको पहोसि तस्स भगवतो [R.132] सासनं वित्थारेन आचिक्खितुं देसेतुं पञ्ञापेतुं पट्ठपेतुं विवरितुं विभजितुं [B.108] उत्तानीकातुं। तयिदं आयस्मता खेमकेन तस्स भगवतो सासनं वित्थारेन आचिक्खितं देसितं पञ्ञापितं पट्ठपितं विवरितं विभजितं उत्तानीकतं'' ति।

उस में, राख, खार या गोबर की गन्ध रह ही जाती है। उसे धोबी पुन: स्वामी को लौटा दे। तब उस वस्त्र को स्वामी सुगन्धित जल से धोवे। उस स्थिति में उस वस्त्र की उक्त गन्ध दूर हो जाय। इसी तरह, आयुष्मानो! उस आर्यश्रावक के वे पाँच अधोभागीय संयोजन क्षीण हो जाने पर अवशिष्ट पाँच ऊर्ध्वभागीय संयोजनों में 'मैं हूँ'—यह मान, छन्द एवं अनुशय क्षीण नहीं हो पाते। अत: आगे चल कर वह उन पाँचों स्कन्धों की उत्पत्ति एवं विनाश विषयक साधना करता है—'यह रूप है', 'यह रूप की उत्पत्ति है'...पूर्ववत्...तब उस का उन पाँच उपादानस्कन्धों में 'मैं हूँ'—यह मान, छन्द एवं अनुशय भी क्षीण हो जाते हैं।''

आयुष्मान् क्षेमक द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वे स्थविर भिक्षु आयुष्मान् क्षेमक को यों बोले—''आयुष्मन् क्षेमक! हम ने आप से ये प्रश्नोत्तर, आप की अवहेलना या आप को अपमानित करने के लिये नहीं किये, अपि तु आप भगवदुपदिष्ट धर्म की विस्तार से व्याख्या कर सकते हैं, उस को समझा सकते हैं, सिद्ध कर सकते हैं, स्पष्ट कर सकते हैं, उस का विश्लेषण कर सकते हैं, अत: हमने ऐसा किया है। आप ने हमारी आशा के अनुरूप उस धर्म का वैसा ही व्याख्यान कर दिखाया।''

९८. इदमवोच आयस्मा खेमको। अत्तमना थेरा भिक्खू आयस्मतो खेमकस्स भासितं अभिनन्दुं। इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने सट्ठिमत्तानं थेरानं भिक्खूनं अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसु, आयस्मतो खेमकस्स चा ति॥ ●

१०. छन्नसुत्तं

९९. एकं समयं सम्बहुला थेरा भिक्खू बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये। अथ खो आयस्मा छन्नो सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो अवापुरणं आदाय विहारेन विहारं उपसङ्कमित्वा थेरे भिक्खू एतदवोच—"ओवदन्तु मं आयस्मन्तो थेरा, अनुसासन्तु मं आयस्मन्तो थेरा, करोन्तु मे आयस्मन्तो थेरा धम्मिं कथं, यथाहं धम्मं पस्सेय्यं" ति।

एवं वुत्ते, थेरा भिक्खू आयस्मन्तं छन्नं एतदवोचुं—"रूपं खो, आवुसो छन्न, अनिच्चं; वेदना अनिच्चा; सञ्ञा अनिच्चा; सङ्खारा अनिच्चा; विञ्ञाणं अनिच्चं। रूपं [N.352] अनत्ता; वेदना... सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनत्ता। सब्बे सङ्खारा अनिच्चा; सब्बे धम्मा अनत्ता" ति।

अथ खो आयस्मतो छन्नस्स एतदहोसि—"मय्हं पि खो एतं एवं होति—'रूपं अनिच्चं, वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनिच्चं; रूपं अनत्ता, वेदना...सञ्ञा... [R.133] सङ्खारा... विञ्ञाणं अनत्ता; सब्बे सङ्खारा अनिच्चा, सब्बे धम्मा अनत्ता' ति।

---

९८. आयुष्मान् क्षेमक यों बोले। उस से सन्तुष्ट हो कर स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् क्षेमक के कथन का अभिनन्दन किया।

इस धर्मालाप के अनन्तर उन साठ (६०) स्थविर भिक्षुओं तथा आयुष्मान् क्षेमक के चित्त उपादानरहित हो आश्रवों से मुक्त हो गये॥ ●

१०. छन्नसूत्र : : बुद्धोपदिष्ट मध्यम मार्ग

९९. एक समय कुछ स्थविर भिक्षु वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाव में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय आयुष्मान् छन्न सन्ध्यासमय ध्यानभावना से उठ कर चाभी (=अवापुरण) ले कर एक विहार से दूसरे विहार जा कर स्थविर भिक्षुओं से कह रहे थे—"आप स्थविर भिक्षुजन मुझे धर्मोपदेश करें, धार्मिक आचरण सिखावें, धर्म की बातें कहें, जिस से मुझे धर्मविषयक ज्ञान हो।"

तब उन स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् छन्न को यों उपदेश किया—"आयुष्मन् छन्न! रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है...विज्ञान अनित्य है। रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है...विज्ञान अनात्म है। सभी संस्कार अनित्य हैं। सभी धर्म अनित्य हैं।"

तब आयुष्मान् छन्न को यह विचार आया—"मुझ को भी यही समझ में आता है

अथ च पन मे सब्बसङ्खारसमये सब्बूपधिपटिनिस्सग्गे तण्हाक्खये विरागे निरोधे निब्बाने चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति नाधिमुच्चति। परितस्सना उपादानं उप्पज्जति; पच्चुदावत्तति मानसं—'अथ खो चरहि मे अत्ता' ति? न खो पनेवं धम्मं पस्सतो होति। को नु खो मे तथा धम्मं देसेय्य यथाहं धम्मं पस्सेय्यं'' ति।

अथ खो आयस्मतो छन्नस्स एतदहोसि—''अयं खो आयस्मा आनन्दो कोसम्बियं विहरति घोसितारामे सत्थु चेव संवण्णितो सम्भावितो च विञ्ञूनं [B.109] सब्रह्मचारीनं, पहोति च मम आयस्मा आनन्दो तथा धम्मं देसेतुं यथाहं धम्मं पस्सेय्यं; अत्थि च मे आयस्मन्ते आनन्दे तावतिका विस्सट्ठि। यन्नूनाहं येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमेय्यं'' ति।

अथ खो आयस्मा छन्नो सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय येन कोसम्बी घोसितारामो येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन सद्धिं सम्मोदि...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा छन्नो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच— ''एकमिदाहं, आवुसो आनन्द, समयं बाराणसियं विहरामि इसिपतने मिगदाये। अथ ख्वाहं, आवुसो, सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो अवापुरणं आदाय विहारेन विहारं उपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा थेरे भिक्खू एतदवोचं—'ओवदन्तु मं आयस्मन्तो थेरा, अनुसासन्तु मं आयस्मन्तो थेरा, करोन्तु मे आयस्मन्तो थेरा धम्मिं कथं यथाहं धम्मं

कि रूप अनित्य है...पूर्ववत्...सभी धर्म अनात्म हैं; परन्तु मेरे सभी संस्कारों के शान्त हो जाने, सभी उपाधियों के अन्त हो जाने, तृष्णा के क्षय हो जाने पर भी वैराग्य, निरोध, निर्वाण में चित्त शान्त शुद्ध स्थिर तथा परित्रास से मुक्त नहीं हो पाता। इस परित्रास से उपादान उत्पन्न होता है तथा यह चित्त को आच्छादित कर लेता है कि तब कौन आत्मा है? इस तरह धर्म को नहीं जाना जाता। मुझे ऐसा उपदेश कौन करे जिस से मुझे धर्म के विषय में कोई सन्देह न रहे''।

एतदनन्तर आयुष्मान् छन्न को यह विचार आया—''ये आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी के घोषिताराम में रहते हैं। उन की शास्ता भी प्रशंसा करते हैं तथा उन के अन्य सहाध्यायी सब्रह्मचारी भी उन का सम्मान करते हैं। हो सकता है, ये आयुष्मान् आनन्द मुझ को ऐसा धर्मोपदेश कर दें जिस से मैं धर्म के विषय में असन्दिग्ध ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। मुझे आयुष्मान् पर इतना विश्वास है। अत: क्यों न मैं धर्मश्रवण हेतु आयुष्मान् आनन्द के पास चलूँ''।

तब आयुष्मान् छन्न अपना शयनासन समेट कर, पात्र चीवर ले कर, कौशाम्बी के घोषिताराम की ओर चल दिया। वहाँ पहुँच कर आयुष्मान् आनन्द के साथ कुशलमङ्गल

पस्सेय्यं' ति। एवं वुत्ते मं, आवुसो, थेरा भिक्खू एतदवोचुं—'रूपं खो, आवुसो छन्न, अनिच्चं; वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनिच्चं; रूपं अनत्ता...पे०...विञ्ञाणं अनत्ता सब्बे सङ्खारा अनिच्चा, सब्बे धम्मा अनत्ता' ति।

[R.134] "तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—'मय्हं पि खो एतं एवं होति—रूपं अनिच्चं...पे०...विञ्ञाणं अनिच्चं, रूपं अनत्ता, वेदना...सञ्ञा...विञ्ञाणं अनत्ता, [N.353] सब्बे सङ्खारा अनिच्चा, सब्बे धम्मा अनत्ता' ति। अथ च पन मे सब्ब-सङ्खारसमथे सब्बूपधिपटिनिस्सग्गे तण्हाक्खये विरागे निरोधे निब्बाने चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति नाधिमुच्चति। परितस्सना उपादानं उप्पज्जति; पच्चुदावत्तति मानसं—'अथ को चरहि मे अत्ता' ति ? न खो पनेतं धम्मं पस्सतो होति। को नु खो मे तथा धम्मं देसेय्य यथाहं धम्मं पस्सेय्यं ति!

"तस्स मय्हं आवुसो एतदहोसि—'अयं खो आयस्मा आनन्दो कोसम्बियं विहरति घोसितरामे सत्थु चेव संवण्णितो सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं, पहोति च मे आयस्मा आनन्दो तथा धम्मं देसेतुं यथाहं धम्मं पस्सेय्यं। अत्थि च मे आयस्मन्ते [B.110] आनन्दे तावतिका विस्सट्ठि। यन्नूनाहं येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमेय्यं' ति। ओवदतु मं, आयस्मा आनन्दो; अनुसासतु मं, आयस्मा आनन्दो; करोतु मे, आयस्मा आनन्दो धम्मिं कथं यथाहं धम्मं पस्सेय्यं" ति।

"एत्तकेन पि मयं आयस्मतो छन्नस्स अत्तमना, अपि नाम तं आयस्मा छन्नो आवि अकासि खीलं छिन्दि। ओदहावुसो, छन्न, सोतं; भब्बोसि धम्मं विञ्ञातुं" ति।

अथ खो आयस्मतो छन्नस्स तावतकेनेव उळारं पीतिपामोज्जं उप्पज्जि—"भब्बो किरस्मि धम्मं विञ्ञातुं" ति।

"सम्मुखा मेतं, आवुसो छन्न, भगवतो सुतं, सम्मुखा च पटिग्गहितं कच्चानगोत्तं भिक्खुं ओवदन्तस्स—'द्वयनिस्सितो ख्वायं, कच्चान, लोको येभुय्येन अत्थितं चेव

पूछ कर उन से यों बोला—"आयुष्मन् आनन्द! एक समय मैं वाराणसी के समीप ऋषिपतन मृगदाव में...पूर्ववत्...आयुष्मान् आनन्द के पास चलूँ।"

"आयुष्मन् छन्न! हम इतने से ही प्रसन्न हैं कि आप ने अपने हृदय की बात हमारे सामने प्रकट कर दी। आयुष्मन् छन्न! अपना सन्देह दूर कर लो, तुम अवश्य स्रोतआपत्ति फल प्राप्त कर लोगे, क्यों कि तुम धर्मश्रवण के अधिकारी बन चुके हो।"

इतना सुनते ही आयुष्मान् छन्न को अत्यधिक हार्दिक उल्लास होने लगा कि मुझे आयुष्मान् आनन्द धर्मश्रवण का अधिकारी समझ रहे हैं।

(आनन्द—) "आयुष्मन् छन्न! मैंने अपने सामने भगवान् को यह कहते सुना है,

नत्थितं च। लोकसमुदयं खो, कच्चान, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो या [R.135] लोके नत्थिता सा न होति; लोकनिरोधं खो, कच्चान, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो या लोके अत्थिता सा न होति। उपयुपादानाभिनिवेसविनिबन्धो ख्वायं, कच्चान, लोको येभुय्येन तं चायं उपयुपादानं चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसयं न उपेति न उपादियति नाधिट्ठाति 'अत्ता मे' ति। दुक्खमेव उप्पज्जमानं उप्पज्जति, दुक्खं निरुज्झमानं निरुज्झती ति न कङ्खति न विचिकिच्छति। अपरप्पच्चया ञाणमेवस्स एत्थ होति। [N.354] एत्तावता खो, कच्चान, सम्मादिट्ठि होति। सब्बमत्थी ति खो, कच्चान, अयमेको अन्तो। सब्बं नत्थी ति अयं दुतियो अन्तो। एते ते, कच्चान, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति—अविज्जापच्चया सङ्खारा; सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं... पे०... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविराग-निरोधा सङ्खारनिरोधो...पे०...एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती''' ति।

''एवमेतं, आवुसो आनन्द, होति येसं आयस्मन्तानं तादिसा सब्रह्मचारयो

एक दिन वे कात्यायनगोत्र भिक्षु को यों उपदेश कर रहे थे—'कात्यायन! यह संसार (लोक) द्विविध अज्ञानों से भरा पड़ा है जिस के कारण अस्तिता एवं नास्तिता की भ्रान्ति होती है। कात्यायन! संसार के समुदय को जान लेने पर संसार के प्रति नास्तित्व बुद्धि विनष्ट हो जाती है तथा संसार के निरोध को यथार्थतः जान लेने पर इस के प्रति अस्तित्व बुद्धि नहीं रह पाती। कात्यायन! इस संसार के प्राणी आसक्ति, परिग्रह एवं मूढाग्रह (अभिनिवेश)—इन त्रिविध भ्रमविकारों से जकड़ा हुआ है। इसे 'भ्रान्ति' कहते हैं। इसे जान लेने से चित्त में अधिष्ठान, अभिनिवेश एवं अनुशय नहीं लगते, तथा न उसे 'आत्मा' की भ्रान्ति ही होती है। 'उत्पन्न होने पर दुःख ही उत्पन्न होता है, तथा निरुद्ध होने पर दुःख ही निरुद्ध होता है'—इस में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता। इसे प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त का ज्ञान यथार्थतः हो जाता है। कात्यायन! इसी को 'सम्यग्दृष्टि' कहते हैं। कात्यायन 'यह सब कुछ है'—यह बात का एक अन्त (किनारा) है, तथा 'सब कुछ नहीं है'—यह बात का दूसरा किनारा (अन्त)। कात्यायन! इन दो अन्तों को सर्वथा त्याग कर मध्यम मार्ग स्वीकार कर तथागत उपदेश किया करते हैं—अविद्या के कारण...पूर्ववत्...यों इस समस्त दुःखस्कन्ध की उत्पत्ति होती है। तथा अविद्या के अशेष त्याग एवं निरोध के कारण संस्कारों का निरोध होता है...पूर्ववत्...यों, इस समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध होता है।''

(आयुष्मान् छन्न—) ''हाँ, आयुष्मन् आनन्द! जिन भाग्यशाली साधकों के पास

अनुकम्पका अत्थकामा ओवादका अनुसासका। इदं च पन मे आयस्मतो आनन्दस्स धम्मदेसनं सुत्वा धम्मो अभिसमितो'' ति॥ •

९१. पठमराहुलसुत्तं

[B.111] १००. सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा राहुलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि [R.136] ...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राहुलो भगवन्तं एतदवोच—''कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया' न होन्ती'' ति?

''यं किञ्चि, राहुल, रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। या काचि वेदना...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा...पे०...सब्बं विञ्ञाणं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। एवं खो, राहुल, जानतो एवं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ती'' ति॥ •

९२. दुतियराहुलसुत्तं

१०१. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राहुलो भगवन्तं

आप जैसे विद्वान् साथी, मार्गदर्शक, धर्मानुशासक एवं हितचिन्तक हों, उन का ऐसा ही होता है। आयुष्मान् आनन्द इस उपदेश को सुन कर मुझ को यथार्थतः धर्मज्ञान हो गया है॥'' •

९१. प्रथम राहुलसूत्र : : स्कन्धज्ञान से अहङ्कार का नाश

१००. ...**श्रावस्ती में** ही...। तब आयुष्मान् राहुल, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये...पूर्ववत्...राहुल ने भगवान् से यह पूछा—''भन्ते! क्या जान कर तथा समझ कर मनुष्य को विज्ञान वाले इस शरीर में या बाह्य निमित्तों में अहन्त्व, ममत्व एवं अनुशय (कुपथ में प्रवृत्ति) नहीं होते?''

(भगवान्—) राहुल! जो कुछ अतीत, अनागत एवं वर्तमान...पूर्ववत्...रूप है वह सब न तो मेरा है, न मैं हूँ तथा न वह मेरी आत्मा है। इसी को यथार्थतः, पूर्णतः जान लेने से शरीर में या बाह्य निमित्तों में अहन्त्व, ममत्व आदि नहीं होते।

जो कुछ वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...पूर्ववत्...अहन्त्व, ममत्व नहीं होते॥'' •

९२. द्वितीय राहुलसूत्र : : किस के ज्ञान से मुक्ति होती है?

१०१. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्...एक ओर बैठे आयुष्मान् राहुल भगवान्

एतदवोच—"कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके [N.355] काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानापगतं मानसं होति विधास-मतिक्कन्तं सन्तं सुविमुत्तं" ति?

"यं किञ्चि, राहुल, रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा...पे०...यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा अनुपादा विमुत्तो होति। या काचि वेदना...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा अनुपादा विमुत्तो होति। एवं खो, राहुल, जानतो एवं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानापगतं मानसं होति विधा समतिक्कन्तं सन्तं सुविमुत्तं" ति॥ ●

थेरवग्गो चतुत्थो॥

तस्सुद्दानं

आनन्दो तिस्सो यमको, अनुराधो च वक्कलि।
अस्सजि खेमको छन्नो, राहुला अपरे दुवे॥ ●

से यों बोले—"भन्ते! कैसे जानते, कैसे देखते कोई मनुष्य अपने इस विज्ञानमय शरीर में तथा बाह्य निमित्तों में अहङ्कार, ममकार एवं मानरहित मन वाला हो कर द्वन्द्वों से परे, शान्त एवं भली भाँति विमुक्त होता है?"

"राहुल! जो कुछ रूप...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...पूर्ववत्...शान्त एवं सुविमुक्त हो जाता है॥" ●

स्थविरवर्ग चतुर्थ सम्पन्न॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची इस प्रकार है— १. आनन्दसूत्र, २. तिष्यसूत्र, ३. यमकसूत्र, ४. अनुराधसूत्र, ५. वक्कलिसूत्र, ६. अश्वजित्सूत्र, ७. क्षेमकसूत्र, ८. छन्नसूत्र, ९. प्रथम राहुलसूत्र, एवं १०. द्वितीय राहुलसूत्र॥ ●

५. पुप्फवग्गो पञ्चमो

९३. नदीसुत्तं

१०२. सावत्थिनिदानं। "सेय्यथापि, भिक्खवे, नदी पब्बतेय्या ओहारिनी दूरङ्गमा सीघसोता। तस्सा उभोसु तीरेसु कासा चे पि जाता अस्सु, ते नं अज्झोलम्बेय्युं; कुसा चे पि जाता अस्सु, ते नं अज्झोलम्बेय्युं; बब्बजा चे पि जाता अस्सु, ते नं अज्झोलम्बेय्युं; बीरणा चे पि जाता अस्सु, ते नं अज्झोलम्बेय्युं; रुक्खा चे पि जाता अस्सु, ते नं अज्झोलम्बेय्युं। तस्सा पुरिसो सोतेन वुय्हमानो कासे चे पि गण्हेय्य, ते पलुज्जेय्युं। सो ततोनिदानं अनयब्यसनं आपज्जेय्य। कुसे चे पि गण्हेय्य, बब्बजे चे पि गण्हेय्य, बीरणे चे पि गण्हेय्य, रुक्खे चे पि गण्हेय्य ते पलुज्जेय्युं। सो ततोनिदानं [R.138] अनयब्यसनं आपज्जेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं [N.356] अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो, सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं। तस्स तं रूपं पलुज्जति। सो ततोनिदानं अनयब्यसनं आपज्जति। वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा [B.113] अत्तानं। तस्स तं विञ्ञाणं पलुज्जति। सो ततोनिदानं अनयब्यसनं आपज्जति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

---

५. पञ्चम पुष्पवर्ग

९३. नदीसूत्र : : अनित्यता ज्ञान से पुनर्जन्मनिरोध

१०२. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! जैसे पर्वत से निकल कर नाले के रूप में बहती कोई नदी आगे चल कर प्रवाहमयी हो जाती हो। उस के दोनों किनारों पर काश कुश, बब्बज, वीरण, तथा छोटे छोटे वृक्ष भी खड़े हों जो सब नदी की ओर झुके हों। उस नदी की धारा में बहता कोई पुरुष काश को पकड़े तो वे बह जायँ, कुश को...बब्बज को...वीरण को पकड़े तो वे भी बह जायँ, यदि वृक्षों को पकड़े तो वे भी बह जायँ।

"भिक्षुओ! ऐसे ही अज्ञ पृथग्जन...रूप को आत्मा जानता है, रूप में आत्मा जानता है...उस का वह रूप नष्ट हो जाता है, इस कारण वह घोर सङ्कट में फँस जाता है। वेदना...संज्ञा... संस्कार...विज्ञान...पूर्ववत्...।

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनिच्चं भन्ते"।

"तस्मातिह...पे०...एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

९४. पुप्फसुत्तं

१०३. सावत्थिनिदानं। "नाहं, भिक्खवे, लोकेन विवदामि, लोको व मया विवदति। न, भिक्खवे, धम्मवादी केनचि लोकस्मिं विवदति। यं, भिक्खवे, नत्थि-सम्मतं लोके पण्डितानं, अहं पि तं 'नत्थी' ति वदामि। यं, भिक्खवे, अत्थिसम्मतं लोके पण्डितानं, अहं पि तं 'नत्थी' ति वदामि। किञ्च, भिक्खवे, नत्थिसम्मतं लोके पण्डितानं, यमहं 'नत्थी' ति वदामि? रूपं, भिक्खवे, निच्चं धुवं सस्सतं [R.139] अविपरिणामधम्मं नत्थिसम्मतं लोके पण्डितानं; अहं पि तं 'नत्थी' ति वदामि। वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं नत्थिसम्मतं लोके पण्डितानं; अहं पि तं 'नत्थी' ति वदामि। इदं खो, भिक्खवे, नत्थिसम्मतं लोके पण्डितानं; अहं पि तं 'नत्थी' ति वदामि।

"किञ्च, भिक्खवे, अत्थिसम्मतं लोके पण्डितानं, यमहं 'अत्थी' ति वदामि? रूपं, भिक्खवे, अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं अत्थिसम्मतं लोके पण्डितानं; [N.357] अहं पि तं 'अत्थी' ति वदामि। वेदना अनिच्चा...पे०...विञ्ञाणं अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं अत्थिसम्मतं लोके पण्डितानं; अहं पि तं 'अत्थी' ति वदामि। इदं खो, भिक्खवे, अत्थिसम्मतं लोके पण्डितानं; अहं पि तं 'अत्थी' ति वदामि।

"अनित्य है, भन्ते!"

वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...पूर्ववत्...ऐसा जान लेता है॥" •

९४. पुष्पसूत्र : : बुद्ध संसार से अनुपलिप्त हैं

१०३. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! मैं संसार से विवाद नहीं करता, संसार ही मुझ से विवाद करता है। भिक्षुओ! कोई भी धर्मवादी संसार से विवाद नहीं करता।

"भिक्षुओ! लोक में जिसे विद्वज्जन 'नहीं है' कहते हैं, उसे मैं भी 'नहीं है' कहता हूँ। तथा वे जिसे 'है' कहते हैं, मैं भी उसे 'है' कहता हूँ।

"भिक्षुओ! लोक में विद्वज्जन सम्मत क्या नहीं है, जिसे वे लोग 'नहीं है' कहते हैं? भिक्षुओ! वे लोक में रूप को अनित्य, अध्रुव, अशाश्वत, विपरिणामधर्मा मानते हैं, मैं भी ऐसा ही मानता हूँ। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान को...मैं भी ऐसा ही मानता हूँ। भिक्षुओ! लोक में विद्वज्जन इसी को 'नहीं है' कहते हैं, मैं भी ऐसा ही कहता हूँ।

"भिक्षुओ! वह क्या है जिसे लोक में पण्डितजन 'है' कहते हैं, मैं भी उसे 'है'

''अत्थि, भिक्खवे, लोके लोकधम्मो, तं तथागतो अभिसम्बुज्झति अभिसमेति; अभिसम्बुज्झित्वा अभिसमेत्वा तं आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति विभजति उत्तानीकरोति।

''किञ्च, भिक्खवे, लोके लोकधम्मो, यं तथागतो अभिसम्बुज्झति अभिसमेति; अभिसम्बुज्झित्वा अभिसमेत्वा आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति विभजति उत्तानीकरोति? रूपं, भिक्खवे, लोके लोकधम्मो, तं तथागतो अभि- [B.114] सम्बुज्झति अभिसमेति। अभिसम्बुज्झित्वा अभिसमेत्वा आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति विभजति उत्तानीकरोति।

''यो, भिक्खवे, तथागतेन एवं आचिक्खियमाने देसियमाने पञ्ञापियमाने [R.140] पट्ठपियमाने विवरियमाने विभजियमाने उत्तानीकरियमाने न जानाति न पस्सति तमहं, भिक्खवे, बालं पुथुज्जनं अन्धं अचक्खुकं अजानन्तं अपस्सन्तं किन्ति करोमि! वेदना, भिक्खवे, लोके लोकधम्मो...पे०...सञ्ञा, भिक्खवे...सङ्खारा, भिक्खवे... विञ्ञाणं, भिक्खवे, लोके लोकधम्मो, तं तथागतो अभिसम्बुज्झति अभिसमेति; अभिसम्बुज्झित्वा अभिसमेत्वा आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति विभजति उत्तानीकरोति।

''यो, भिक्खवे, तथागतेन एवं आचिक्खियमाने देसियमाने पञ्ञापियमाने पट्ठपियमाने विवरियमाने विभजियमाने उत्तानीकरियमाने न जानाति न पस्सति तमहं, भिक्खवे, बालं पुथुज्जनं अन्धं अचक्खुकं अजानन्तं अपस्सन्तं किन्ति करोमि!

कहता हूँ?'' भिक्षुओ! संसार में पण्डितजन 'रूप अनित्य, दुःख एवं विनाशी है'—ऐसा कहते हैं। मैं भी ऐसा ही कहता हूँ। वेदना...विज्ञान...पूर्ववत्...मैं भी ऐसा ही कहता हूँ।

''भिक्षुओ! संसार का जो यथार्थ धर्म है उसे तथागत भली भाँति जानते हैं, समझते हैं, जान, समझ कर उस के विषय में बोलते हैं, उस का उपदेश करते हैं, उसे स्थापित करते हैं, स्पष्ट करते हैं, विस्तरशः विभक्त करते हैं।

''भिक्षुओ! तथागत ऐसे किस लोकधर्म को जानते समझते हैं...पूर्ववत्... ? भिक्षुओ! रूप नाम लोकधर्म को...विस्तरशः विभक्त करते हैं। भिक्षुओ! तथागत द्वारा उस (रूप) के विषय में यथार्थतः बताये जाने पर भी...जो अज्ञ पृथग्जन उसे नहीं समझ पाता उसे मैं 'अन्धा, मूर्ख, नेत्रविहीन एवं अज्ञानी' ही समझता हूँ। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के विषय में यथार्थतः बताये जाने पर भी...पूर्ववत्...अज्ञानी ही समझता हूँ।

''भिक्षुओ! जो मूर्ख समझाने पर भी नहीं समझता, उस के विषय में तथागत इस से अधिक और क्या कर सकते हैं!

"सेय्यथापि, भिक्खवे, उप्पलं वा पदुमं वा पुण्डरीकं वा उदके जातं उदके संवड्ढं उदका अच्चुग्गम्म ठाति अनुपलित्तं उदकेन; एवमेव खो, भिक्खवे, तथागतो लोके जातो लोके संवड्ढो लोकं अभिभुय्य विहरति अनुपलित्तो लोकेना'' ति॥ •

९५. फेणपिण्डूपमसुत्तं

१०४. एकं समयं भगवा अयुज्झायं विहरति गङ्गाय नदिया तीरे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"सेय्यथापि, भिक्खवे, अयं गङ्गा नदी महन्तं फेणपिण्डं आवहेय्य। तमेनं चक्खुमा पुरिसो पस्सेय्य निज्झायेय्य योनिसो उपपरिक्खेय्य। तस्स तं पस्सतो निज्झायतो योनिसो उपपरिक्खतो रित्तकञ्ञेव खायेय्य, तुच्छकञ्ञेव खायेय्य, असारकञ्ञेव खायेय्य। किं हि सिया, भिक्खवे, फेणपिण्डे सारो! एवमेव खो, भिक्खवे, यं किञ्चि रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं...पे०...यं दूरे सन्तिके वा तं [R.141] भिक्खु पस्सति निज्झायति योनिसो उपपरिक्खति। तस्स तं पस्सतो निज्झायतो [B.115] योनिसो उपपरिक्खतो रित्तकञ्ञेव खायति, तुच्छकञ्ञेव खायति, असारकञ्ञेव खायति। किं हि सिया, भिक्खवे, रूपे सारो!

"सेय्यथापि, भिक्खवे, सरदसमये थुल्लफुसितके देवे वस्सन्ते उदके उदकबुब्बुलं उप्पज्जति चेव निरुज्झति च। तमेनं चक्खुमा पुरिसो पस्सेय्य निज्झायेय्य योनिसो उपपरिक्खेय्य। तस्स तं पस्सतो निज्झायतो योनिसो उपपरिक्खतो रित्तकञ्ञेव खायेय्य, तुच्छकञ्ञेव खायेय्य, असारकञ्ञेव खायेय्य। किं हि सिया, भिक्खवे,

---

"भिक्षुओ! जैसे उत्पल, पुण्डरीक या पद्म (कमल) जल में पैदा हो कर, उस से वृद्धि प्राप्त कर के उस से अनुपलिप्त रहता है, वैसे ही तथागत भी संसार में रह कर भी, उसे पराजित (उपेक्षा) कर उस से अनुपलिप्त ही रहते हैं॥'' •

९५. फेनपिण्डोपमसूत्र : : यह शरीर निःस्सार है

१०४. एक समय भगवान् अयोध्या में गङ्गा नदी के तट पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय उन्होंने भिक्षुओं को यों उपदेश किया—"भिक्षुओ! इस गङ्गा नदी में बहुत अधिक फेन (झाग) बह रहा है। इस को कोई विवेकी पुरुष देखे, इस पर सूक्ष्मता से विचार करे तो उस के ऐसा करने पर उसे यही ज्ञात होगा कि यह फेन निस्सार है, तुच्छ है, अनुपयोगी है। बात भी ठीक है, भिक्षुओ! इस फेन में क्या सार हो सकता है! इसी तरह, भिक्षुओ! लोक में जो कुछ भी अतीत, अनागत या वर्तमान रूप दिखायी देता है...पूर्ववत्...वह सब निःसार है। वस्तुतः भिक्षुओ! रूप में सार हो भी क्या सकता है!

"भिक्षुओ! जैसे शरदृतु के मेघों से गिरने वाले मोटी मोटी विन्दुओं वाले जल में बुलबुले उठते रहते हैं, फूटते रहते हैं। उन को देखकर कोई भी विवेकी पुरुष, सूक्ष्मतया

उदकबुब्बुले सारो? एवमेव खो, भिक्खवे, या काचि वेदना अतीतानागतपच्चुप्पन्नं ...पे०...यं दूरे सन्तिके वा तं भिक्खु पस्सति निज्झायति योनिसो उपपरिक्खति। तस्स तं पस्सतो निज्झायतो योनिसो उपपरिक्खतो रित्तकञ्ञेव खायति, तुच्छकञ्ञेव खायति, असारकञ्ञेव खायति। किं हि सिया, भिक्खवे, वेदनाय सारो!

''सेय्यथापि, भिक्खवे, गिम्हानं पच्छिमे मासे ठिते मज्झन्हिके काले मरीचिका फन्दति। तमेनं चक्खुमा पुरिसो पस्सेय्य निज्झायेय्य योनिसो उपपरिक्खेय्य। तस्स तं पस्सतो निज्झायतो योनिसो उपपरिक्खतो रित्तकञ्ञेव खायेय्य, तुच्छकञ्ञेव खायेय्य ...पे०...किं हि सिया, भिक्खवे, मरीचिकाय सारो! एवमेव खो, भिक्खवे, या काचि सञ्ञा...पे०...।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो सारत्थिको सारगवेसी सारपरियेसनं चरमानो [N.359] तिण्हं कुठारिं आदाय वनं पविसेय्य। सो तत्थ पस्सेय्य महन्तं कदलिक्खन्धं उजुं नवं अकुक्कुकजातं। तमेनं मूले छिन्देय्य; मूले छेत्वा अग्गे छिन्देय्य, अग्गे छेत्वा पत्तवट्टिं विनिब्भुजेय्य। सो तस्स पत्तवट्टिं विनिब्भुजन्तो फेग्गुं पि नाधिगच्छेय्य, कुतो सारं! तमेनं चक्खुमा पुरिसो पस्सेय्य निज्झायेय्य योनिसो उपपरिक्खेय्य। तस्स तं पस्सतो निज्झायतो योनिसो उपपरिक्खतो रित्तकञ्ञेव खायेय्य, तुच्छकञ्ञेव खायेय्य, [R.142] असारकञ्ञेव खायेय्य। किं हि सिया, भिक्खवे, कदलिक्खन्धे सारो! एवमेव खो, भिक्खवे, ये केचि सङ्खारा अतीतानागतपच्चुप्पन्ना...पे०...ये दूरे सन्तिके वा तं [B.116] भिक्खु पस्सति निज्झायति योनिसो उपपरिक्खति। तस्स तं पस्सतो निज्झायतो योनिसो उपपरिक्खतो रित्तकञ्ञेव खायति, तुच्छकञ्ञेव खायति, असारकञ्ञेव खायति। किं हि सिया, भिक्खवे, सङ्खारेसु सारो!

निरीक्षण करते हुए उन्हें नि:सार एवं तुच्छ ही समझता है; उन में कोई सार हो भी क्या सकता है! उसी तरह भिक्षुओ! लोक में जो कुछ भी अतीत अनागत वर्तमान वेदना है...वह नि:सार ही है, उस में सार हो भी क्या सकता है!

''भिक्षुओ! जैसे ग्रीष्मर्तु के मध्याह्नकाल में बालू रेत में मृगमरीचिका दिखायी देती है, उन्हें कोई भी विवेकी पुरुष देख कर नि:सार ही समझता है; उसी तरह अनागत वर्तमान संज्ञा भी नि:सार ही है...।

''भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष सारमय (घन) काष्ठ लेने के लिये तीक्ष्ण कुठारी ले कर जङ्गल में जाय, वहाँ उसे केले का वृक्ष मिले। उसे वह जड़ से काट कर गिरा दे। फिर आगे काटते काटते उसे छिलका छिलका (त्वक्) कर पृथक् कर दे तो भी उसे उस में दृढ काष्ठ नहीं मिलेगा। भला, केले में कहीं दृढ काष्ठ हुआ करता है! इसी तरह, भिक्षुओ!

"सेय्यथापि, भिक्खवे, मायाकारो वा मायाकारन्तेवासी वा चातुम्महापथे मायं विदंसेय्य। तमेनं चक्खुमा पुरिसो पस्सेय्य निज्झायेय्य योनिसो उपपरिक्खेय्य। तस्स तं पस्सतो निज्झायतो योनिसो उपपरिक्खतो रित्तकञ्ञेव खायेय्य, तुच्छकञ्ञेव खायेय्य, असारकञ्ञेव खायेय्य। किं हि सिया, भिक्खवे, मायाय सारो? एवमेव खो, भिक्खवे, यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं...पे०...यं दूरे सन्तिके वा, तं भिक्खु पस्सति निज्झायति योनिसो उपपरिक्खति। तस्स तं पस्सतो निज्झायतो योनिसो उपपरिक्खतो रित्तकञ्ञेव खायति, तुच्छकञ्ञेव खायति, असारकञ्ञेव खायति। किं हि सिया, भिक्खवे, विञ्ञाणे सारो!

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति...वेदनाय पि...सञ्ञाय पि...सङ्खारेसु पि...विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति"।

१०५. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"फेणपिण्डूपमं रूपं, वेदना बुब्बुलूपमा। [N.360]
मरीचिकूपमा सञ्ञा, सङ्खारा कदलूपमा।
मायूपमञ्च विञ्ञाणं, देसितादिच्चबन्धुना॥

जितने भी अतीत अनागत एवं वर्तमान संस्कार भी...असार ही हैं; क्यों कि इन संस्कारों में सार हो भी क्या सकता है!

"भिक्षुओ! जैसे कोई जादूगर या उसका शिष्य लोगों को, चौराहे पर खड़ा हो कर, अनेक प्रकार के जादू के खेल दिखाता है; उस जादू में कोई यथार्थता नहीं होती; इसी तरह, भिक्षुओ! जो कुछ भी अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्न विज्ञान है वह सब भी नि:सार ही है। उस में सार हो भी क्या सकता है!

"इसी तरह, भिक्षुओ! कोई भी श्रुतवान् आर्यश्रावक रूप में, वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में निर्वेद तथा वैराग्य प्राप्त कर उस से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर...इस से आगे मुझे कुछ कर्तव्य नहीं है—ऐसा जान जाता है।"

१०५. भगवान् ने यों उपदेश किया। यह उपदेश कर वे गाथाओं के माध्यम से यह भी बोले—

"रूप फेन की राशि के समान नि:सार हैं तथा वेदना जल के बुलबुलों के समान; संज्ञा मृगमरीचिका के तुल्य एवं संस्कार केले के वृक्ष के समान नि:सार हैं; विज्ञान को भी जादूगर के जादू की तरह भ्रम (धोखा) ही समझो—यही बात तथागत बुद्ध ने कही है॥

"यथा यथा निज्झायति, योनिसो उपपरिक्खति।
रित्तकं तुच्छकं होति, यो नं पस्सति योनिसो।

[R.143] "इमञ्च कायं आरब्भ, भूरिपञ्ञेन देसितं।
पहानं तिण्णं धम्मानं, रूपं पस्सथ छड्डितं॥

[B.117] "आयु उस्मा च विञ्ञाणं, यदा कायं जहन्तिमं।
अपविद्धो तदा सेति, परभत्तं अचेतनं॥

"एतादिसायं सन्तानो, मायं बाललापिनी।
वधको एस अक्खातो, सारो एत्थ न विज्जति॥

"एवं खन्धे अवेक्खेय्य, भिक्खु आरद्धवीरियो।
दिवा वा यदि वा रत्तिं, सम्पजानो पटिस्सतो॥

"जहेय्य सब्बसंयोगं, करेय्य सरणत्तनो।
चरेय्यादित्तसीसो व, पत्थयं अच्चुतं पदं" ति॥ •

९६. गोमयपिण्डसुत्तं

१०६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—

"जैसे जैसे कोई विवेकी पुरुष इन के विषय में सूक्ष्मता से विचार करता है, त्यों त्यों ये सब उसे निःसार एवं तुच्छ ही समझ में आते हैं॥

"इस काया के विषय में भूरिप्रज्ञ भगवान् तथागत ने हम को यही समझाया है यह (काया) अनित्य, दुःख एवं अनात्म—इन तीन धर्मों से युक्त है; अतः इस रूप को त्यागने योग्य ही समझो।

"आयु, ऊष्मा एवं विज्ञान—ये तीन धर्म जब इस शरीर का साथ छोड़ देते हैं, तब यह (शरीर) निरर्थक चेतनाहीन हो कर भूमि पर गिर जाता है, उस समय दूसरे ही इस को हटाते बढाते हैं।

"यह रूप आदि की परम्परा ऐसी ही निरर्थक है, यह माया है, यह बालों (मूर्खों) को भ्रम में डालने वाली है। इसीलिये इस को विद्वान् लोग वधक (नृशंस) कहते हैं। इस में कोई सार नहीं है।

"इसी तरह साधना में उद्यम करते हुए भिक्षु को (रूप आदि) स्कन्धों के विषय में चिन्तन मनन करना चाहिये। तथा दिन एवं रात्रि—सभी समय निरन्तर प्रज्ञावान् एवं सानहितचित्त रहना चाहिये।

साधक को सभी तरह के संयोगों (बन्धनों) से मुक्त रहना चाहिये। अपना सहायक स्वयं को बनना चाहिये। इतना सावधान हो कर साधना में लगे रहना चाहिये मानो सिर पर अग्नि लगी हो और निरन्तर निर्वाण की ओर बढने का प्रयास करे॥" •

"अत्थि नु खो, भन्ते, किञ्चि रूपं यं रूपं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सति? अत्थि नु खो, भन्ते, काचि वेदना या वेदना निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा सस्सतिसमं तथेव ठस्सति? अत्थि नु खो, भन्ते, काचि सञ्ञा या सञ्ञा...पे०...अत्थि नु खो, भन्ते, केचि सङ्खारा ये सङ्खारा निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा सस्सतिसमं तथेव ठस्सन्ति? अत्थि नु खो, भन्ते, [R.144] किञ्चि विञ्ञाणं, यं विञ्ञाणं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सती" ति?

"नत्थि खो, भिक्खु, किञ्चि रूपं, यं रूपं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सति। नत्थि खो, भिक्खु, काचि वेदना...काचि सञ्ञा... [N.361] केचि सङ्खारा...किञ्चि विञ्ञाणं, यं विञ्ञाणं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणाम-धम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सती" ति।

अथ खो भगवा परित्तं गोमयपिण्डं पाणिना गहेत्वा तं भिक्खुं एतदवोच— "एत्तको पि खो, भिक्खु, अत्तभावपटिलाभो नत्थि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणाम-धम्मो सस्सतिसमं तथेव ठस्सति। एत्तको चे पि, भिक्खु, अत्तभावपटिलाभो अभविस्स निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो, नयिदं ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायेथ [B.118] सम्मा दुक्खक्खयाय। यस्मा च खो, भिक्खु, एत्तको पि अत्तभावपटिलाभो नत्थि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो, तस्मा ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायति सम्मा दुक्ख-क्खयाय।

---

९६. गोमयपिण्डसूत्र : : सभी संस्कार अनित्य हैं

१०६. ...**श्रावस्ती में** ही...। एक ओर बैठे भिक्षु ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! ऐसा भी कोई रूप है जो नित्य, ध्रुव, शाश्वत एवं अविनाशी रहता हुआ यहाँ निरन्तर स्थिर रहे। भन्ते! ऐसी कोई वेदना, ...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान है जो नित्य...निरन्तर स्थिर रहे?"

"भिक्षु! ऐसा कोई रूप नहीं है जो नित्य...निरन्तर स्थिर रहे। न कोई ऐसी वेदना है...न संज्ञा है...न संस्कार है...न विज्ञान है जो नित्य...निरन्तर स्थिर रहे।"

तब भगवान् ने सामने पड़े हुए गोमय (गोबर) का कुछ भाग उठा कर उसे दिखाते हुए कहा—"भिक्षु! इतना भी आत्मभाव का प्रतिलाभ नित्य, ध्रुव...स्थिर नहीं है। यदि यह आत्मभाव का प्रतिलाभ इतना भी नित्य, ध्रुव...होता तो दुःखक्षयहेतु धर्मसाधना की आवश्यकता ही क्या रह जाती! अतः, भिक्षु! यह धर्मसाधना दुःखक्षयहेतु सार्थक मानी जाती है।

'भूतपुब्बाहं, भिक्खु, राजा अहोसिं खत्तियो मुद्धावसित्तो। तस्स मय्हं, भिक्खु, रञ्ञो सतो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स चतुरासीति नगरसहस्सानि अहेसुं कुसावती नाम राजधानिप्पमुखानि। तस्स मय्हं, भिक्खु, रञ्ञो सतो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स चतुरासीति पासादसहस्सानि अहेसुं धम्मपासादप्पमुखानि। तस्स मय्हं, भिक्खु, रञ्ञो सतो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स चतुरासीति कूटागारसहस्सानि अहेसुं महाब्यूहकूटागारप्पमुखानि। तस्स मय्हं, भिक्खु, रञ्ञो सतो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स चतुरासीति पल्लङ्कसहस्सानि अहेसुं दन्तमयानि सारमयानि सोवण्णमयानि रूपियमयानि गोणकत्थतानि पटिकत्थतानि पटलिकत्थतानि कदलिमिगपवरपच्चत्थरणानि सउत्तरच्छदानि उभतो- [R.145] लोहितकूपधानानि। तस्स मय्हं, भिक्खु, रञ्ञो सतो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स चतुरासीति नागसहस्सानि अहेसुं सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णद्धजानि हेमजालपटिच्छन्नानि उपोसथनागराजप्पमुखानि। तस्स मय्हं, भिक्खु, रञ्ञो सतो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स चतुरासीति अस्ससहस्सानि अहेसुं सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णद्धजानि हेमजालपटिच्छन्नानि वलाहकअस्सराजप्पमुखानि। तस्स मय्हं, भिक्खु, रञ्ञो सतो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स चतुरासीति रथसहस्सानि अहेसुं सोवण्णालङ्कारानि सोवण्णद्धजानि हेमजालपटिच्छन्नानि वेजयन्तरथप्पमुखानि। तस्स मय्हं, भिक्खु, रञ्ञो [N.362] सतो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स चतुरासीति मणिसहस्सानि अहेसुं मणिरतनप्पमुखानि। तस्स मय्हं, भिक्खु...पे०... चतुरासीति इत्थिसहस्सानि अहेसुं सुभद्दादेविप्पमुखानि। तस्स मय्हं, भिक्खु...पे०... चतुरासीति खत्तियसहस्सानि अहेसुं अनुयन्तानि परिणायकरतनप्पमुखानि। तस्स मय्हं, भिक्खु...पे०... चतुरासीति धेनुसहस्सानि

भिक्षु! मैं अपने किसी पूर्वजन्म में मूर्धाभिषिक्त राजा था। उस समय कुशावती राजधानी जैसे चौरासी हजार नगर मेरे अधीन थे, उन पर मेरा एकछत्र अधिकार था। (उन सभी नगरों में) मेरे लिये धर्मप्रासाद जैसे चौरासी हजार राजप्रासाद बने हुए थे, जिन में मैं समय समय पर सुखसुविधाओं के साथ रहता था। इसी तरह मेरे लिये उन नगरों में चौरासी हजार बुर्ज (ऊँचे निरीक्षणस्थल) बने हुए थे जिन में रह कर मैं उन नगरों का निरीक्षण करता था। उस समय मेरे पास चौरासी हजार पलंग थे, जिन पर हाथी दाँत का, उन में हीरा, सोना, चाँदी का काम हुआ था. जिन पर सफेद कम्बल तथा मृदु (श्लक्ष्ण) मृगचर्म बिछे हुए थे। उस समय मेरे पास उपोसथ मृगराज जैसे चौरासी हजार हाथी थे, जो सभी सोने के अलङ्कारों से, सोने की ध्वजाओं से युक्त थे। उस समय अश्वराज बलाहक जैसे तीव्र गति वाले चौरासी हजार घोड़े थे। वैजयन्त रथ जैसे चौरासी हजार सोने चाँदी से अलंकृत रथ थे। मणिरत्न प्रमुख जैसे, मेरे पास, चौरासी हजार रत्न थे। सुभद्रा

अहेसुं दुकूलसन्दानानि कंसूपधारणानि। तस्स मय्हं, भिक्खु...पे०...चतुरासीति वत्थकोटिसहस्सानि अहेसुं खोमसुखुमानि कोसेय्यसुखुमानि कम्बलसुखुमानि कप्पासिकसुखुमानि। तस्स मय्हं, भिक्खु...पे०...चतुरासीति थालिपाक- [B.119] सहस्सानि अहेसुं; सायं पातं भत्ताभिहारो अभिहरियित्थ।

"तेसं खो पन, भिक्खु, चतुरासीतिया नगरसहस्सानं एकञ्ञेव तं नगरं होति यमहं तेन समयेन अज्झावसामि—कुसावती राजधानी। तेसं खो पन, भिक्खु, चतुरासीतिया पासादसहस्सानं एको येव सो पासादो होति यमहं तेन समयेन [R.146] अज्झावसामि—धम्मो पासादो। तेसं खो पन, भिक्खु, चतुरासीतिया कूटागारसहस्सानं एकञ्ञेव तं कूटागारं होति यमहं तेन समयेन अज्झावसामि—महाब्यूहं कूटागारं। तेसं खो पन, भिक्खु, चतुरासीतिया पल्लङ्कसहस्सानं एको येव सो पल्लङ्को होति यमहं तेन समयेन परिभुञ्जामि—दन्तमयो वा सारमयो वा सोवण्णमयो वा रूपियमयो वा। तेसं खो पन, भिक्खु, चतुरासीतिया नागसहस्सानं एको येव सो नागो होति यमहं तेन समयेन अभिरुहामि—उपोसथो नागराजा। तेसं खो पन, भिक्खु, चतुरासीतिया अस्ससहस्सानं एको येव सो अस्सो होति यमहं तेन समयेन अभिरुहामि—वलाहको अस्सराजा। तेसं खो पन, भिक्खु, चतुरासीतिया रथसहस्सानं एको येव सो रथो होति यमहं तेन समयेन अभिरुहामि—वेजयन्तो रथो। तेसं खो पन, भिक्खु, चतुरासीतिया इत्थिसहस्सानं एको येव सा इत्थी होति या मं तेन समयेन पच्चुपट्ठाति—खत्तियानी वा वेलामिका वा। तेसं खो पन, भिक्खु, चतुरासीतिया वत्थकोटिसहस्सानं एकञ्ञेव तं वत्थयुगं होति यमहं तेन समयेन परिदहामि—खोमसुखुमं वा कोसेय्यसुखुमं [N.363] वा कम्बलसुखुमं वा कप्पासिकसुखुमं वा। तेसं खो पन, भिक्खु, चतुरासीतिया थालिपाकसहस्सानं एको येव सो थालिपाको होति यतो नाळिकोदनपरमं भुञ्जामि

देवी आदि चौरासी हजार रानियाँ थी। मेरे अधीन परिणायक रत्न जैसे चौरासी हजार राजा थे। चौरासी हजार दुधारू गौएँ थीं। चौरासी हजार वस्त्र थे। चौरासी हजार पात्र थे, जिन में पाचक (रसोइया) भोजन परोस कर दोनों समय मेरे सम्मुख लाता था।

"भिक्षु! उस समय मैं उन चौरासी हजार नगरों में से कुशावती राजधानी में ही रहता था, उन प्रासादों में धर्मप्रासाद में, कूटागारों (बुर्जों) में महाव्यूह कूटागार में। मैं उन में से एक ही पलंग का उपभोग करता था, जिस पर हाथी दाँत, सोने, चाँदी का काम हुआ था, हाथियों में से केवल उपोसथ हाथी का, घोड़ों में केवल बलाहक अश्व का, रथों में वैजयन्त रथ का। उस समय मैं एक ही स्त्री के साथ अभिरमण करता था, जो क्षत्रिय जाति की होती थी। एक ही वस्त्र का उपयोग करता था जो क्षोम का हो, रेशम का हो या मृदु

तदुपियं च सूपेय्यं। इति खो, भिक्खु, सब्बे ते सङ्खारा अतीता निरुद्धा विपरिणता। एवं [R.147] अनिच्चा खो, भिक्खु, सङ्खारा। एवं अद्धुवा खो, भिक्खु, सङ्खारा। एवं अनस्सासिका खो, भिक्खु, सङ्खारा। यावञ्चिदं, भिक्खु, अलमेव सब्बसङ्खारेसु निब्बिन्दितुं, अलं विरज्जितुं, अलं विमुच्चितुं'' ति॥ •

९७. नखसिखासुत्तं

[B.120] १०७. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच– ''अत्थि नु खो, भन्ते, किञ्चि रूपं यं रूपं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सति? अत्थि नु खो, भन्ते, काचि वेदना या वेदना निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा सस्सतिसमं तथेव ठस्सति? अत्थि नु खो, भन्ते, काचि सञ्ञा...पे०...केचि सङ्खारा, ये सङ्खारा निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा सस्सतिसमं तथेव ठस्सन्ति? अत्थि नु खो, भन्ते, किञ्चि विञ्ञाणं, यं विञ्ञाणं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सती'' ति?

''नत्थि खो, भिक्खु, किञ्चि रूपं, यं रूपं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सति। नत्थि खो, भिक्खु, काचि वेदना...काचि सञ्ञा...केचि सङ्खारा ...पे०...किञ्चि विञ्ञाणं, यं विञ्ञाणं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सती'' ति।

अथ खो भगवा परित्तं नखसिखायं पंसुं आरोपेत्वा तं भिक्खुं एतदवोच– ''एत्तकं पि खो, भिक्खु, रूपं नत्थि निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सति। एत्तकं चे पि, भिक्खु, रूपं अभविस्स निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणाम-

---

ऊन का कम्बल हो। उन चौरासी हजार भोजनपात्रों में आये भोजन में से केवल एक नाड़ी भर चावल या उस के साथ उस के योग्य दाल आदि का उपयोग करता था।

भिक्षु! मेरे ये सभी संस्कार अतीत हो गये, निरुद्ध हो गये, विनष्ट हो गये। क्यों कि, भिक्षु! सभी संस्कार अनित्य हैं, आश्वासनरहित है। अत: इन ऐसे संस्कारों से विरक्त रहना ही अच्छा है, मुक्त रहना ही अच्छा है॥'' •

९७. नखशिखसूत्र : : सभी संस्कार अनित्य हैं

१०७. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे भिक्षु ने भगवान् से जिज्ञासा प्रकट की–''क्या, भन्ते! ऐसा कोई रूप है जो नित्य, ध्रुव, शाश्वत...पूर्ववत्...*(गोमयपिण्डसूत्र में आगत पाठ का यहाँ भी तथैव विस्तार कर लें।)*

तब भगवान् ने अपनी अंगुलि के नख पर थोड़ी सी धूल रख कर उस भिक्षु से कहा–''भिक्षु! रूप तो इतना भी नित्य, ध्रुव, अविनाशी या शाश्वत (स्थायी) नहीं है।

धम्मं नयिदं ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायेथ सम्मा दुक्खक्खयाय। यस्मा च खो, [N.364] भिक्खु, एत्तकं पि रूपं नत्थि निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं, तस्मा ब्रह्मचरिय-वासो पञ्ञायति सम्मा दुक्खक्खयाय।

"एत्तका पि खो, भिक्खु, वेदना नत्थि निच्चा धुवा सस्सता [R.148] अविपरिणामधम्मा सस्सतिसमं तथेव ठस्सति। एत्तका चे पि, भिक्खु, वेदना अभविस्स निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा, नयिदं ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायेथ सम्मा दुक्खक्खयाय। यस्मा च खो, भिक्खु, एत्तका पि वेदना नत्थि निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा, तस्मा ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायति सम्मा दुक्खक्खयाय।

"एत्तका पि खो, भिक्खु, सञ्ञा नत्थि...पे०...एत्तका पि ख़ो, भिक्खु, सङ्खारा नत्थि निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा सस्सतिसमं तथेव ठस्सन्ति। एत्तका चे पि, भिक्खु, सङ्खारा अभविस्संसु निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा, नयिदं ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायेथ सम्मा दुक्खक्खयाय। यस्मा च खो, भिक्खु, एत्तका पि सङ्खारा नत्थि निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा, तस्मा ब्रह्मचरियवासो [B.121] पञ्ञायति सम्मा दुक्खक्खयाय।

"एत्तकं पि खो, भिक्खु, विञ्ञाणं नत्थि निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सति। एत्तकं पि खो, भिक्खु, विञ्ञाणं अभविस्स निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं, नयिदं ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायेथ सम्मा दुक्खक्खयाय। यस्मा च खो, भिक्खु, एत्तकं पि विञ्ञाणं नत्थि निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं, तस्मा ब्रह्मचरियवासो पञ्ञायति सम्मा दुक्खक्खयाय।

"तं किं मञ्ञसि, भिक्खु, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

यदि यह रूप इतना भी नित्य, ध्रुव...होता तो साधकों को दुःखक्षय के लिये धर्मसाधना की आवश्यकता ही न पड़ती! क्यों कि भिक्षु, यह रूप इतना भी नित्य ध्रुव नहीं है, इसलिये साधक दुःखक्षय के लिये धर्मसाधना करता है।

"वेदना इतनी भी नित्य, ध्रुव...पूर्ववत्...।

"संज्ञा इतनी भी नित्य, ध्रुव...पूर्ववत्...।

"संस्कार इतने भी नित्य, ध्रुव...पूर्ववत्...।

"विज्ञान इतने भी नित्य, ध्रुव...पूर्ववत्...। *(गोमयपिण्डसूत्र की तरह।)*

"तो, क्या मानते हो, भिक्षु रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं भन्ते"। ...पे०...तस्मातिह एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति [R.149] पजानाती ति॥

९८. सुद्धिकसुत्तं

१०८. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच— [N.365] "अत्थि नु खो, भन्ते, किञ्चि रूपं, यं रूपं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सति? अत्थि नु खो, भन्ते, काचि वेदना...पे०...काचि सञ्ञा... केचि सङ्खारा...किञ्चि विञ्ञाणं, यं विञ्ञाणं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सती" ति?

"नत्थि खो, भिक्खु, किञ्चि रूपं यं रूपं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सति। नत्थि खो, भिक्खु, काचि वेदना...पे०...काचि सञ्ञा... केचि सङ्खारा...किञ्चि विञ्ञाणं, यं विञ्ञाणं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं सस्सतिसमं तथेव ठस्सती" ति।

९९. गद्दुलबद्धसुत्तं

१०९. सावत्थिनिदानं। "अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। होति सो, भिक्खवे, समयो यं महासमुद्दो उस्सुस्सति विसुस्सति न भवति; न त्वेवाहं, भिक्खवे, अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं दुक्खस्स अन्तकिरियं

"वेदना...विज्ञान...। इसलिये ऐसा देखता हुआ...पूर्ववत्...मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—ऐसा जान लेता है।"

९८. शुद्धिकसूत्र : : सभी संस्कार अनित्य हैं

१०८. ...**श्रावस्ती में** ही...। एक ओर बैठे किसी भिक्षु ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! ऐसा भी कोई रूप है जो नित्य, ध्रुव, शाश्वत...वेदना...संज्ञा...संस्कार... विज्ञान है जो नित्य, ध्रुव, शाश्वत...पूर्ववत्...हो?"

"नहीं, भिक्षु! ऐसा कोई रूप...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान नहीं है जो नित्य, ध्रुव, शाश्वत...पूर्ववत्...॥"

९९. गद्दुलबद्धसूत्र : :अविद्याग्रस्त प्राणी का कोई अन्त नहीं

१०९. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! इस संसार का आदि कहाँ है? —यह ज्ञात नहीं। अविद्यान्धकार में पतित, एवं तृष्णाबन्धनों से बद्ध इन सांसारिक प्राणियों को इस का पहला किनारा ज्ञात नहीं। भिक्षु! यह तो होता है कि एक समय आ जाय कि इस

वदामि। होति सो, भिक्खवे, समयो यं सिनेरु पब्बतराजा डय्हति विनस्सति न भवति; न त्वेवाहं, भिक्खवे, अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं [B.122] संसरतं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामि। होति सो, भिक्खवे, समयो यं महापठवी [R.150] डय्हति विनस्सति न भवति; न त्वेवाहं, भिक्खवे, अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हा-संयोजनानं सन्धावतं संसरतं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामि।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, सा गद्दुलबद्धो दळ्हे खीले वा थम्भे वा उपनिबद्धो तमेव खीलं वा थम्भं वा अनुपरिधावति अनुपरिवत्तति; एवमेव खो, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी...पे०...सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति ...पे०...वेदनं अत्ततो समनुपस्सति...सञ्ञं अत्ततो समनुपस्सति...सङ्खारे अत्ततो समनु-पस्सति...विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। सो रूपञ्ञेव अनुपरिधावति अनुपरिवत्तति, वेदनञ्ञेव ...पे०...सञ्ञञ्ञेव...सङ्खारेयेव...विञ्ञाणञ्ञेव अनुपरिधावति अनुपरिवत्तति। सो रूपं अनुपरिधावं अनुपरिवत्तं, वेदनं... पे०...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं अनुपरिधावं [N.366] अनुपरिवत्तं न परिमुच्चति रूपम्हा, न परिमुच्चति वेदनाय, न परिमुच्चति सञ्ञाय, न परिमुच्चति सङ्खारेहि, न परिमुच्चति विञ्ञाणम्हा, न परिमुच्चति जातिया जरामरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि। 'न परिमुच्चति दुक्खस्मा' ति वदामि।

समस्त महासमुद्र में एक बूँद जल न रहे; यह भी हो सकता है कि एक समय यह सुमेरु पर्वतराज जल जाय, नष्ट हो जाय; एक समय यह भी आ सकता है कि यह समस्त महापृथ्वी जल जाय, नष्ट हो जाय, लुप्त हो जाय; परन्तु मैं इन अविद्यान्धकारग्रस्त एवं तृष्णाबन्धनों से बद्ध सांसारिक प्राणियों के दुःखसमूह का कोई अन्त नहीं बता सकता।

"भिक्षुओ! जैसे कोई मनुष्य या पशु चमड़े के पट्टे (=गद्दुल) से किसी स्तम्भ में बँधा हुआ उसी स्तम्भ के चारों ओर चक्कर काटता रहता है; इसी तरह, भिक्षुओ! अज्ञ, पृथग्जन...रूप को अपना समझता है...पूर्ववत्...वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को अपना समझता है...पूर्ववत्...वह उस विज्ञान के ही चारों ओर चक्कर लगाता रहता है। वह उन (रूपादि) के पीछे चक्कर लगाता हुआ, उन के पीछे दौड़ता हुआ न कभी रूप से छुटकारा पा सकता है, न वेदना से, न संज्ञा से, न संस्कारों से, न विज्ञान से छुटकारा पा सकता है। इस तरह वह जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव आदि से कभी छुटकारा नहीं पा सकता। अर्थात् वह सदा सदा के लिये दुःखबन्धन में ही बँधा रहता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

"सुतवा च खो, भिक्खवे, अरियसावको अरियानं दस्सावी...पे०...सप्पुरिस-धम्मे सुविनीतो, न रूपं अत्ततो समनुपस्सति...पे०...न वेदनं...न सञ्ञं...न सङ्खारे...न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, न विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं; न अत्तनि वा विञ्ञाणं, न विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। सो रूपं नानुपरिधावति नानुपरिवत्तति, वेदनं...सञ्ञं... सङ्खारे...विञ्ञाणं नानुपरिधावति नानुपरिवत्तति। सो रूपं अननुपरिधावं अननुपरिवत्तं, वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं अननुपरिधावं अननुपरिवत्तं परिमुच्चति रूपम्हा, परिमुच्चति वेदनाय, परिमुच्चति सञ्ञाय, परिमुच्चति सङ्खारेहि, परिमुच्चति विञ्ञाणम्हा, परिमुच्चति जातिया जरामरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि। 'परिमुच्चति दुक्खस्मा' ति वदामी" ति॥ •

१००. दुतियगद्दुलबद्धसुत्तं

[B.123, R.151] ११०. सावत्थिनिदानं। "अनमतग्गोयं, भिक्खवे, संसारो। पुब्बा कोटि न पञ्ञायति अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं सन्धावतं संसरतं। सेय्यथापि, भिक्खवे, सा गद्दुलबद्धो दळ्हे खीले वा थम्भे वा उपनिबद्धो। सो गच्छति ते पि तमेव खीलं वा थम्भं वा उपगच्छति; तिट्ठति चे पि तमेव खीलं वा थम्भं वा उपतिट्ठति; निसीदति चे पि तमेव खीलं वा थम्भं वा उपनिसीदति; निपज्जति चे पि तमेव खीलं वा थम्भं वा उपनिपज्जति। एवमेव खो, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो रूपं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सति। वेदनं...सङ्खारे...विञ्ञाणं 'एतं मम,

---

(इसके विपरीत) कोई श्रुतवान् आर्यश्रावक...न रूप को अपना समझता है, न वेदना को, न संज्ञा को, न संस्कारों को...न विज्ञान को अपना समझता है, न आत्मा को विज्ञान वाला समझता है, न अपने में विज्ञान को समझता है, न विज्ञान में अपने को। वह न रूप के पीछे दौड़ता है, न वेदना के पीछे, न संज्ञा के पीछे, न संस्कारों के पीछे, न विज्ञान के पीछे। वह उन (रूपादि) के पीछे न दौड़ते हुए उन से छुटकारा पा जाता है, जाति जरा मरण शोक परिदेव एवं दौर्मनस्य से छुटकारा पा जाता है। यों 'वह एक दिन समस्त दुःखों से छुटकारा पा जाता है'—ऐसा मैं कहता हूँ॥" •

१००. द्वितीय गद्दुलबद्धसूत्र : : निरन्तर आत्मचिन्तन ही श्रेयस्कर है

११०. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! इस संसार का आदि कोई नहीं जानता। अविद्यानीवरणों तथा तृष्णासंयोजनों से बद्ध प्राणियों के लिये इस संसार का पहला किनारा जानना सम्भव नहीं है। भिक्षुओ! जैसे कोई चर्मपट्ट (=गद्दुल) के सहारे किसी स्तम्भ से बँधा हुआ हो। वह चलता है तो, खड़ा होता है तो, बैठता है तो, लेटता है तो उसी स्तम्भ के आसपास ही चलता है, खड़ा होता है, बैठता है या लेटता है। इसी तरह,

एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सति। सो गच्छति चे पि इमे [N.367] पञ्चुपादानक्खन्धे उपगच्छति; तिट्ठति चे पि इमे पञ्चुपादानक्खन्धे उपतिट्ठति; निसीदति चे पि इमे पञ्चुपादानक्खन्धे उपनिसीदति; निपज्जति चे पि इमे पञ्चुपादानक्खन्धे उपनिज्जति। तस्मातिह, भिक्खवे, अभिक्खणं सकं चित्तं पच्चवेक्खितब्बं— 'दीघरत्तमिदं चित्तं सङ्किलिट्ठं रागेन दोसेन मोहेना' ति। चित्तसङ्किलेसा, भिक्खवे, सत्ता सङ्किलिस्सन्ति; चित्तवोदाना सत्ता विसुज्झन्ति।

"दिट्ठं वो, भिक्खवे, चरणं नाम चित्तं" ति?

"एवं, भन्ते"।

"तं पि खो, भिक्खवे, चरणं नाम चित्तं चित्तेनेव चित्तितं। तेन पि खो, भिक्खवे, चरणेन चित्तेन चित्तञ्ञेव चित्ततरं। तस्मातिह, भिक्खवे, अभिक्खणं सकं चित्तं पच्चवेक्खितब्बं—'दीघरत्तमिदं चित्तं सङ्किलिट्ठं रागेन दोसेन मोहेना' ति। चित्त-सङ्किलेसा, भिक्खवे, सत्ता सङ्किलिस्सन्ति; चित्तवोदाना सत्ता विसुज्झन्ति।

"नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकनिकायं पि समनुपस्सामि एवं चित्तं। यथयिदं,

---

भिक्षुओ! अज्ञ, पृथग्जन...रूप को 'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है'— ऐसा समझता रहता है। वेदना को, संज्ञा को, संस्कारों को, विज्ञान को 'यह मेरा है'...ऐसा समझता रहता है। वह अपना चलना, खड़े होना, बैठना या लेटना आदि क्रियाएँ इन्हीं पाँचों उपादानस्कन्धों के आसपास ही करता रहता है। अत: भिक्षुओ! साधक को प्रतिक्षण यह प्रत्यवेक्षण करते रहना चाहिये—'मेरा चित्त बहुत समय से राग, द्वेष, मोह से कलुषित है।' भिक्षुओ! यह अच्छी तरह समझ लो कि ये चित्तविकार ही प्राणी को दु:ख एवं सङ्कट में डालते हैं तथा उसकी चित्तशुद्धि ही प्राणियों को शुद्ध (विकाररहित) करती है।

"भिक्षुओ! तुमने पटहारियों के चित्रित वस्त्रों को देखा है[१]?"

"हाँ, भन्ते!"

"भिक्षुओ! पटहारियों द्वारा बनाये गये वे चित्र भी स्वचित्त से ही चित्रित किये जाते हैं। वे पटहारी उन चित्रों को, स्वचित्त से सोच सोच कर उन वस्त्रों पर चित्रित करते हैं। अत:, भिक्षुओ! निरन्तर आत्मचिन्तन में रत रहना चाहिये कि बहुत समय से मेरा चित्त...पूर्ववत्...।

---

१. **चरणं नाम चित्तं**—एक विशिष्ट जाति वाले वस्त्र-व्यापारी, कपड़ों पर अनेक तरह के चित्र बनवा कर उन्हें बेचते हैं; जैसे सुगति दुर्गति के चित्र, या सम्पत्ति विपत्ति के चित्र, तथा 'यह कर्म करने से मनुष्य यह (सुगति) पाता है' तथा 'यह कर्म करने से यह (दुर्गति) पाता है' यह कहते हुए उन चित्रों को दिखा कर उन वस्त्रों को बेचते हैं—**अट्ठकथा**।

[R.152] भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा, ते पि खो, भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा चित्तेनेव चित्तिता, ते हि पि खो, भिक्खवे, तिरच्छानगतेहि पाणेहि चित्तञ्ञेव चित्ततरं। तस्मातिह, भिक्खवे, अभिक्खणं सकं चित्तं पच्चवेक्खितब्बं—'दीघरत्तमिदं चित्तं सङ्किलिट्ठं रागेन दोसेन मोहेना' ति! चित्तसङ्किलेसा, भिक्खवे, सत्ता सङ्किलिस्सन्ति; चित्तवोदाना सत्ता विसुज्झन्ति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, रजको वा चित्तकारको वा रजनाय वा लाखाय वा [B.124] हलिद्दिया वा नीलिया वा मञ्जिट्ठाय वा सुपरिमट्ठे फलके वा भित्तिया वा दुस्सपट्टे वा इत्थिरूपं वा पुरिसरूपं वा अभिनिम्मिनेय्य सब्बङ्गपच्चङ्गिं; एवमेव खो, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो रूपञ्ञेव अभिनिब्बत्तेन्तो अभिनिब्बत्तेति। वेदनञ्ञेव ...सञ्ञञ्ञेव...सङ्खारे येव... विञ्ञाणञ्ञेव अभिनिब्बत्तेन्तो अभिनिब्बत्तेति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं...पे०...तस्मातिह, भिक्खवे,...पे०...एवं [N.368] पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

१०१. वासिजटसुत्तं

१११. सावत्थिनिदानं। "जानतो अहं, भिक्खवे, पस्सतो आसवानं खयं वदामि, नो अजानतो नो अपस्सतो। किञ्च, भिक्खवे, जानतो किं पस्सतो आसवानं खयो

"भिक्षुओ! चित्त के समान दूसरा कोई एक धर्म नहीं है। पशु पक्षी भी अपने चित्त के कारण ऐसे हुए हैं। इन तिरश्चीन (पशुपक्षी) प्राणियों में भी चित्त ही प्रधान है। अत: साधक को निरन्तर आत्मचिन्तन करते रहना चाहिये कि मेरा चित्त बहुत काल से राग, द्वेष, मोह...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! जैसे कोई रंगरेज या चित्रकार रंग भर कर, या लेखनी द्वारा, या हल्दी, मजीठ से भली भाँति स्वच्छ किये फलक (काष्ठपट्ट) या दीवार या किसी वस्त्र पर स्त्री या पुरुष का सर्वाङ्गसम्पन्न चित्र बना दे; इसी तरह, भिक्षुओ! कोई अज्ञ पृथग्जन रूप में ही आसक्त रह कर वेदना में ही, संज्ञा में ही, संस्कारों में ही, विज्ञान में ही आसक्त रह कर उसी में रमा रहता है। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?" "अनित्य है, भन्ते!" "...वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान नित्य है या अनित्य?" "अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नही है—ऐसा जान जाता है॥" •

१०१. वासिजटसूत्र : : भावना द्वारा आश्रवों का क्षय

१११. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! मैं स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर आश्रवों

होति ? 'इति रूपं, इति रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो; इति वेदना...पे०...इति सञ्ञा...इति सङ्खारा...इति विञ्ञाणं, इति विञ्ञाणस्स समुदयो, इति [R.153] विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति—एवं खो, भिक्खवे, जानतो एवं पस्सतो आसवानं खयो होति।

''भावनानुयोगं अननुयुत्तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो विहरतो किञ्चापि एवं इच्छा उप्पज्जेय्य—'अहो वत मे अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चेय्या' ति, अथ ख्वस्स नेव अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चति। तं किस्स हेतु ? 'अभावितत्ता' तिस्स वचनीयं। किस्स अभावितत्ता ? अभावितत्ता चतुन्नं सतिपट्ठानानं, अभावितत्ता चतुन्नं सम्मप्पधानानं, अभावितत्ता चतुन्नं इद्धिपादानं, अभावितत्ता पञ्चन्नं इन्द्रियानं, अभावितत्ता पञ्चन्नं बलानं, अभावितत्ता सत्तन्नं बोज्झङ्गानं, अभावितत्ता अरियस्स अट्ठङ्गिकस्स मग्गस्स।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, कुक्कुटिया अण्डानि अट्ठ वा दस वा द्वादस वा। तानस्सु कुक्कुटिया न सम्मा अधिसयितानि, न सम्मा परिसेदितानि, न सम्मा परिभावितानि। किञ्चापि तस्सा कुक्कुटिया एवं इच्छा उप्पज्जेय्य—'अहो, वत मे कुक्कुटपोतका [B.125] पादनखसिखाय वा मुखतुण्डकेन वा अण्डकोसं पदालेत्वा सोत्थिना अभिनिब्भिज्जेय्युं' ति, अथ खो अभब्बा व ते कुक्कुटपोतका पादनखसिखाय वा मुखतुण्डकेन

के क्षय का उपदेश करता हूँ, स्वयं विना जाने या विना साक्षात्कार किये नहीं। जान कर, समझ कर, भिक्षुओ! आश्रवों का क्षय कैसे होता है ? 'यह रूप है', 'यह रूपों का समुदय है', 'यह रूपों का निरोध है', 'यह रूपनिरोधगामी मार्ग है'—ऐसा जान कर समझ कर, यह वेदना, यह संज्ञा, यह संस्कार, यह विज्ञान...ऐसा जान कर समझ कर आश्रवों का क्षय होता है।

''भिक्षुओ! गुरुजनानुमोदित साधना м भली भाँति न लगे हुए भिक्षु की यह इच्छा भी हो सकती है—'अरे! यह मेरा चित्त उपादानरहित आश्रवों से विमुक्त हो जाय', परन्तु उस का चित्त विमुक्त होता नहीं। वह क्यों ? वह इसलिये कि उस की साधना उचित रूप से नहीं हुई है, उस ने उस का अभ्यास उचित रीति से नहीं किया है। किस का अभ्यास ? चार स्मृतिप्रस्थानों का, चार सम्यक्प्रधानों का, चार ऋद्धिपादों का, पाँच इन्द्रियों का, पाँच बलों का, सात बोध्यङ्गों का तथा आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अभ्यास।

पहली उपमा—''भिक्षुओ! जैसे किसी मुर्गी के आठ दश या बारह अण्डे हों, वह मुर्गी उन अण्डों की न ठीक से देखभाल करे, न ठीक से उन्हें सेवे। फिर भी उस की यह इच्छा हो—'मेरे ये बच्चे अपने पैरों के नखाग्रभाग से या अपनी चोंच से अण्डे फोड़ कर बाहर निकल आवें।' परन्तु वे बच्चे ऐसा न कर पावें; क्यों कि उन अण्डों की मुर्गी द्वारा

वा अण्डकोसं पदालेत्वा सोत्थिना अभिनिब्भिज्जितुं। तं किस्स हेतु? तथा हि पन, भिक्खवे, कुक्कुटिया अण्डानि अट्ठ वा दस वा द्वादस वा; तानि कुक्कुटिया न सम्मा अधिसयितानि, न सम्मा परिसेदितानि, न सम्मा परिभावितानि। एवमेव खो, भिक्खवे, [N.369] भावनानुयोगं अननुयुत्तस्स भिक्खुनो विहरतो किञ्चापि एवं इच्छा उप्पज्जेय्य— 'अहो, वत मे अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चेय्या' ति, अथ ख्वस्स नेव अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चति। तं किस्स हेतु? 'अभावितत्ता' तिस्स वचनीयं। किस्स अभावितत्ता? अभावितत्ता चतुन्नं सतिपट्ठानानं...पे०...अट्ठङ्गिकस्स मग्गस्स।

[R.154] "भावनानुयोगं अनुयुत्तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो विहरतो किञ्चापि न एवं इच्छा उप्पज्जेय्य—'अहो, वत मे अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चेय्या' ति, अथ ख्वस्स अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चति। तं किस्स हेतु? 'भावितत्ता' तिस्स वचनीयं। किस्स भावितत्ता? भावितत्ता चतुन्नं सतिपट्ठानानं, भावितत्ता चतुन्नं सम्मप्पधानानं, भावितत्ता चतुन्नं इद्धिपादानं, भावितत्ता पञ्चन्नं इन्द्रियानं, भावितत्ता पञ्चन्नं बलानं, भावितत्ता सत्तन्नं बोज्झङ्गानं, भावितत्ता अरियस्स अट्ठङ्गिकस्स मग्गस्स।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, कुक्कुटिया अण्डानि अट्ठ वा दस वा द्वादस वा, तानस्सु कुक्कुटिया सम्मा अधिसयितानि, सम्मा परिसेदितानि, सम्मा परिभावितानि। किञ्चापि तस्सा कुक्कुटिया न एवं इच्छा उप्पज्जेय्य—'अहो वत मे कुक्कुटपोतका पादनखसिखाय वा मुखतुण्डकेन वा अण्डकोसं पदालेत्वा सोत्थिना अभिनिब्भिज्जेय्युं' ति, अथ खो भब्बा व ते कुक्कुटपोतका पादनखसिखाय वा मुखतुण्डकेन वा अण्डकोसं पदालेत्वा सोत्थिना अभिनिब्भिज्जितुं। तं किस्स हेतु? तथा हि पन, भिक्खवे, कुक्कुटिया अण्डानि अट्ठ वा दस वा द्वादस वा; तानस्सु कुक्कुटिया सम्मा अधिसयितानि, सम्मा परिसेदितानि, सम्मा परिभावितानि। एवमेव खो, भिक्खवे, भावनानुयोगं अननुयुत्तस्स भिक्खुनो विहरतो किञ्चापि न एवं इच्छा उप्पज्जेय्य—'अहो वत मे अनुपादाय आसवेहि चित्तं [B.126] विमुच्चेय्या' ति, अथ ख्वस्स अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चति। तं किस्स हेतु? 'भावितत्ता' तिस्स वचनीयं। किस्स भावितत्ता? भावितत्ता चतुन्नं सतिपट्ठानानं ...पे०...भावितत्ता अरियस्स अट्ठङ्गिकस्स मग्गस्स।

भली भाँति देखभाल नहीं हुई है। इसी तरह, भिक्षुओ! गुरुजनानुमोदित साधना में भली भाँति न लगे हुए भिक्षु को ऐसी इच्छा...पूर्ववत्...आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अभ्यास।

(इसके विपरीत) किसी मुर्गी के आठ, दश या बारह अण्डे हों, उन्हें वह मुर्गी भली भाँति सेवे। फिर उस को यह इच्छा हो—'मेरे ये बच्चे...पूर्ववत्...आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का भली भाँति अभ्यास किया है।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, पलगण्डस्स वा पलगण्डन्तेवासिस्स वा वासिजटे दिस्सन्ते अङ्गुलिपदानि दिस्सन्ति अङ्गुट्ठपदं। नो च ख्वस्स एवं ञाणं होति—'एत्तकं वत मे अज्ज वासिजटस्स खीणं, एत्तकं हिय्यो, एत्तकं परे' ति। एवमेव [N.370, R.155] खो, भिक्खवे, भावनानुयोगं अनुयुत्तस्स भिक्खुनो विहरतो किञ्चापि न एवं ञाणं होति—'एत्तकं वत मे अज्ज आसवानं खीणं, एत्तकं हिय्यो, एत्तकं परे' ति, अथ ख्वस्स खीणे खीणन्त्वेव ञाणं होति। सेय्यथापि, भिक्खवे, सामुद्दिकाय नावाय वेत्तबन्धन-बन्धाय वस्समासानि उदके परियादाय हेमन्तिकेन थलं उक्खित्ताय वातातपपरेतानि वेत्तबन्धनानि तानि पावुसकेन मेघेन अभिप्पवुट्ठानि अप्पकसिरेनेव पटिप्पस्सम्भन्ति पूतिकानि भवन्ति; एवमेव खो, भिक्खवे, भावनानुयोगं अनुयुत्तस्स भिक्खुनो विहरतो अप्पकसिरेनेव संयोजनानि पटिप्पस्सम्भन्ति पूतिकानि भवन्ती" ति। •

१०२. अनिच्चसञ्ञासुत्तं

११२. सावत्थिनिदानं। "अनिच्चसञ्ञा, भिक्खवे, भाविता बहुलीकता सब्बं कामरागं परियादियति, सब्बं रूपरागं परियादियति, सब्बं भवरागं परियादियति, सब्बं अविज्जं परियादियति, सब्बं अस्मिमानं समूहनति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, सरदसमये कस्सको महानङ्गलेन कस्सन्तो सब्बानि

दूसरी उपमा—जैसे भिक्षुओ! निरन्तर कार्य करते रहने से किसी बढई (मिस्त्री) या उस के किसी शिष्य के हाथ की छाप या अंगुलियों के चिह्न उस के वसुले के हत्थे पर पड़े हुए दिखायी देते हैं, परन्तु उस को यही ज्ञात नहीं होता है कि आज मेरे इस वसुले का हत्था (डण्डा) इतना घिस गया है, इतना कल या इतना पहले। इसी तरह, भिक्षुओ! साधना में यथोचित रीति से लगे हुए साधक को यह ज्ञात नहीं होता कि साधना के कारण आज मेरे आश्रव इतने क्षीण हो गये हैं, कल इतने क्षीण हुए थे, परसों इतने हुए थे। परन्तु इनके क्षीण होने पर ही 'मेरे आश्रव क्षीण हो गये'—ऐसा ज्ञान हो पाता है।

तीसरी उपमा—जैसे कोई बेंत के बन्धनों से बँधी हुई, वर्षा ऋतु में समुद्र में चलने वाली नौका, हेमन्त ऋतु आने पर, भूमि पर डाल देने पर वायु एवं धूप से सूख कर बेंत के बन्धन ढीले हो जाने पर पुनः वर्षा ऋतु में पहली वर्षा के होते ही सड़ गल कर नष्ट हो जाते हैं; भिक्षुओ! वैसे ही भावनायुक्त भिक्षु के सभी १० संयोजन नष्ट हो जाते हैं॥" •

१०२. अनित्यसंज्ञासूत्र : : अनित्य संज्ञा की भावना

११२. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! अनित्य संज्ञा की भावना करने से कामराग, रूपराग, भवराग एवं अविद्या का प्रहाण हो जाता है, सर्वविध अहङ्कार एवं ममत्व प्रहीण हो जाता है।

मूलसन्तानकानि सम्पदालेन्तो कसति; एवमेव खो भिक्खवे, अनिच्चसञ्ञा भाविता बहुलीकता सब्बं कामरागं परियादियति, सब्बं रूपरागं परियादियति, सब्बं भवरागं परियादियति, सब्बं अविज्जं परियादियति, सब्बं अस्मिमानं समूहनति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, बब्बजलायको बब्बजं लायित्वा अग्गे गहेत्वा ओधुनाति निद्धुनाति निच्छोटेति; एवमेव खो, भिक्खवे, अनिच्चसञ्ञा भाविता बहुलीकता सब्बं कामरागं परियादियति...पे०...सब्बं अस्मिमानं समूहनति।

[B.127, R.156] "सेय्यथापि, भिक्खवे, अम्बपिण्डिया वण्टच्छिन्नाय यानि तत्थ अम्बानि वण्टपटिबन्धानि सब्बानि तानि तदन्वयानि भवन्ति; एवमेव खो, भिक्खवे, [N.371] अनिच्चसञ्ञा भाविता...पे०...सब्बं अस्मिमानं समूहनति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, कूटागारस्स या काचि गोपानसियो सब्बा ता कूटङ्गमा कूटनिन्ना कूटसमोसरणा, कूटं तासं अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, अनिच्चसञ्ञा भाविता... पे०...सब्बं अस्मिमानं समूहनति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, ये केचि मूलगन्धा काळानुसारिगन्धो तेसं अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, अनिच्चसञ्ञा...पे०...सब्बं अस्मिमानं समूहनति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, ये केचि सारगन्धा, लोहितचन्दनं तेसं अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, अनिच्चसञ्ञा...पे०...सब्बं अस्मिमानं समूहनति।

"भिक्षुओ! जैसे शरदृतु के समय कोई कृषक किसी खेत को अच्छे हल से जोतता हुआ उस में पैदा हुए झाड़ झङ्खाड़ को मूलतः विनष्ट करता हुआ जोतता है; उसी प्रकार साधक अनित्य संज्ञा की भावना को बढाता हुआ, उस का विस्तार करता हुआ सभी तरह के कामराग, रूपराग, भवराग एवं अविद्या का प्रहाण करता हुआ अपने अहङ्कार एवं ममत्व को छिन्न भिन्न कर डालता है।

"भिक्षुओ! जैसे कोई घास खोदने वाला खेत के निरर्थक घास को मूलतः खोद कर इधर उधर खेत से बाहर निकाल फेंक देता है; उसी तरह भिक्षुओ! अनित्य संज्ञा की भावना शनैः शनैः बढाते रहने से उस के सभी कामराग...पूर्ववत्...छिन्न भिन्न हो जाते हैं।

"भिक्षुओ! जैसे किसी आम के गुच्छे की टहनी (वृन्त) कट जाने से उस में लगे सभी आम के फल नीचे गिर जाते हैं; भिक्षुओ! वैसे ही अनित्य संज्ञा की भावना...।

"भिक्षुओ! जैसे किसी कूटागार के सभी धरण (शहतीर) कूट की तरफ ही आलम्बित रहते हैं, कूट की ओर ही झुके रहते हैं; उसी प्रकार अनित्य संज्ञा की भावना...।

"भिक्षुओ! जैसे सभी गन्धवृक्षों में रक्तचन्दन उत्तम समझा जाता है; वैसे ही अनित्य संज्ञा की भावना...।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, ये केचि पुप्फगन्धा, वस्सिकं तेसं अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, अनिच्चसञ्ञा...पे०...सब्बं अस्मिमानं समूहनति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, ये केचि कुट्टराजानो सब्बेते रञ्ञो चक्कवत्तिस्स अनुयन्ता भवन्ति, राजा तेसं चक्कवत्ति अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, अनिच्चसञ्ञा ...पे०... सब्बं अस्मिमानं समूहनति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, या काचि तारकरूपानं पभा सब्बा ता चन्दिमप्पभाय कलं नाग्घन्ति सोळसिं, चन्दप्पभा तासं अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, अनिच्चसञ्ञा...पे० ...सब्बं अस्मिमानं समूहनति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, सरदसमये विद्धे विगतवलाहके देवे आदिच्चो नभं अब्भुस्सक्कमानो सब्बं आकासगतं तमगतं अभिविहच्च भासते च तपते च विरोचते च; एवमेव खो, भिक्खवे, अनिच्चसञ्ञा भाविता बहुलीकता सब्बं कामरागं परियादियति, सब्बं रूपरागं परियादियति, सब्बं भवरागं परियादियति, सब्बं अविज्जं परियादियति, सब्बं अस्मिमानं समूहनति'।

"कथं भाविता च, भिक्खवे, अनिच्चसञ्ञा कथं बहुलीकता सब्बं [R.157] कामरागं परियादियति...सब्बं अस्मिमानं समूहनति। 'इति रूपं, इति [N.372, B.128] रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो; इति वेदना...इति सञ्ञा...इति सङ्खारा...इति

"भिक्षुओ! जैसे सभी गन्धपुष्पों में जूही का पुष्प उत्तम समझा जाता है, उसी प्रकार अनित्य संज्ञा की भावना...।

"जैसे छोटे बड़े सभी राजा चक्रवर्ती सम्राट् के अधीन होते हैं तथा वही उन का प्रधान समझा जाता है; वैसे ही अनित्य संज्ञा की भावना...।

"जैसे समस्त सम्मिलित तारागण का प्रकाश चन्द्रमा के प्रकाश के सोलहवें भाग की भी समानता नहीं करता तथा चन्द्रमा ही तारागण में प्रधान समझा जाता है; वैसे ही अनित्य संज्ञा की भावना...।

"भिक्षुओ! जैसे शरदृतु में, मेघों के हट जाने पर स्वच्छ आकाश में सूर्य के उदित होने पर, लोक का समस्त अन्धकार नष्ट हो जाता है, प्रकाश फैल जाता है, इस तरह उस की शोभा में वृद्धि होने लगती है; उसी प्रकार अनित्य संज्ञा की भावना करने से साधक के सभी कामराग, रूपराग, भवराग, एवं अविद्या आदि विकार क्षीण हो जाते हैं, मूलतः नष्ट हो जाते हैं।

"भिक्षुओ! यह अनित्य संज्ञा की भावना कैसे भावित होती है? कैसे बढायी जाती है तथा इससे कैसे सभी कामराग आदि नष्ट हो जाते हैं?

विञ्ञाणं, इति विञ्ञाणस्स समुदयो, इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति—एवं भाविता खो, भिक्खवे, अनिच्चसञ्ञा एवं बहुलीकता सब्बं कामरागं परियादियति, सब्बं रूपरागं परियादियति, सब्बं भवरागं परियादियति, सब्बं अविज्जं परियादियति, सब्बं अस्मिमानं समूहनती'' ति॥

पुप्फवग्गो पञ्चमो॥

तस्सुद्दानं

नदी पुप्फं च फेणं च, गोम यं च नखासिखं।
सुद्धिकं द्वे च गद्दुला, वासीजटं अनिच्चता ति॥

मज्झिमपण्णासको समत्तो॥

तस्स मज्झिमपण्णासकस्स वग्गुद्दानं

उपयो अरहन्तो च, खज्जनी थेरसव्हयं।
पुप्फवग्गेन पण्णास, दुतियो तेन वुच्चती ति॥

''भिक्षुओ! 'यह रूप है', 'यह रूप की उत्पत्ति है', 'यह रूप का निरोध (अस्तगमन) है'; 'यह वेदना है'...'यह संज्ञा है'...'यह संस्कार है'...'यह विज्ञान है'...पूर्ववत्...इस तरह, भिक्षुओ! इस अनित्य संज्ञा की भावना करने से साधक का समस्त कामराग, समस्त रूपराग, भवराग, समस्त अविद्या एवं समस्त अहन्त्व तथा ममत्व मूलतः उच्छिन्न हो जाते हैं॥

पञ्चम पुष्पवर्ग सम्पन्न॥

इस (पुष्प) वर्ग में इन सूत्रों का व्याख्यान हुआ है—१. नदीसूत्र, २. पुष्पसूत्र, ३. फेण पिण्डसूत्र, ४. गोमयसूत्र, ५. नखशिखसूत्र, ६. शुद्धिकसूत्र, ७-८. प्रथम द्वितीय गद्दुलबद्धसूत्र, ९. वासिजटसूत्र, एवं १०. अनित्यतासूत्र॥

मध्यमपञ्चाशत्क सम्पन्न॥

इस मध्यमपञ्चाशत्क में इन पाँच वर्गों का व्याख्यान हुआ है—१. उपयवर्ग, २. अर्हद्वर्ग, ३. खादनीयवर्ग, ४. स्थविरवर्ग एवं ५. पुष्पवर्ग॥

उपरिपण्णासकं—

१. अन्तवग्गो पठमो

१०३. अन्तसुत्तं

११३. सावत्थिनिदानं। "चत्तारोमे, भिक्खवे, अन्ता। कतमे चत्तारो? सक्कायन्तो, सक्कायसमुदयन्तो, सक्कायनिरोधन्तो, सक्कायनिरोधगामिनिप्पटिपदन्तो। कतमो [R.158] च, भिक्खवे, सक्कायन्तो? पञ्चुपादानक्खन्धा तिस्स वचनीयं। कतमे पञ्च? सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विञ्ञाणुपादानक्खन्धो—अयं वुच्चति, भिक्खवे, सक्कायन्तो। कतमो च, भिक्खवे, सक्कायसमुदयन्तो? यायं तण्हा पोनोभविका नन्दिरागसहगता [B.129] तत्रतत्राभिनन्दिनी, सेय्यथीदं—कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सक्कायसमुदयन्तो। कतमो च, भिक्खवे, सक्कायनिरोधन्तो? यो [N.373] तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधो चागो पटिनिस्सग्गो मुत्ति अनालयो—अयं वुच्चति, भिक्खवे, सक्कायनिरोधन्तो। कतमो च, भिक्खवे, सक्कायनिरोधगामिनिप्पटिपदन्तो? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो। सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि ...पे०... सम्मासमाधि। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सक्कायनिरोधगामिनिप्पटिपदन्तो। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अन्ता" ति॥

●

उपरिपञ्चाशत्क—

१. अन्तवर्ग

१०३. अन्तसूत्र : : **अन्तचतुष्टय**

११३. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! ये चार अन्त (सीमा=कोटि, परिधि) होते हैं। कौन से चार? १. सत्काय अन्त, २. सत्कायसमुदय अन्त, ३. सत्कायनिरोध अन्त, एवं ४. सत्कायनिरोधगामी निरोधमार्ग अन्त। १. भिक्षुओ! यहाँ यह 'सत्काय अन्त' क्या है? इस के विषय में कहना चाहिये कि ये पाँच उपादानस्कन्ध ही 'सत्काय अन्त' हैं। कौन से पाँच? रूपोपादानस्कन्ध...पूर्ववत्...विज्ञानोपादानस्कन्ध। यह, भिक्षुओ! सत्काय अन्त कहलाता है। २. भिक्षुओ! यह 'सत्कायसमुदय अन्त' क्या है? यह पुनः पुनः जन्म कराने वाली, आनन्द एवं राग से सम्पृक्त तथा उस उस में अभिनन्दन करने वाली तृष्णा ही सत्कायसमुदय अन्त है; जैसे—कायतृष्णा, भवतृष्णा एवं विभवतृष्णा। ३. फिर, भिक्षुओ! यह 'सत्कायनिरोध अन्त' क्या है? इसी पूर्वोक्त तृष्णा का पूर्णतः त्याग तथा निरोध तथा मुक्ति अर्थात् उसका न होना। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—सत्कायनिरोध अन्त। ४. पुनश्च, भिक्षुओ! यह 'सत्कायनिरोधगामी मार्ग का अन्त' क्या है? शास्त्र में कथित

१०४. दुक्खसुत्तं

११४. सावत्थिनिदानं। "दुक्खं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि दुक्खसमुदयं च दुक्खनिरोधं च दुक्खनिरोधगामिनिं पटिपदं च। तं सुणाथ। कतमं च, भिक्खवे, दुक्खं? 'पञ्चुपादाक्खन्धा' तिस्स वचनीयं। कतमे पञ्च? सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो...पे०... विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। इदं वुच्चति, भिक्खवे, दुक्खं। कतमो च, भिक्खवे, दुक्खसमुदयो? यायं तण्हा पोनोभविका...पे०...विभवतण्हा—अयं वुच्चति, भिक्खवे, दुक्खसमुदयो। कतमो च, भिक्खवे, दुक्खनिरोधो? यो तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधो चागो पटिनिस्सग्गो मुत्ति अनालयो—अयं वुच्चति, भिक्खवे, [R.159] दुक्खनिरोधो। कतमा च, भिक्खवे, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो। सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि... पे०...सम्मासमाधि। अयं वुच्चति, भिक्खवे, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा" ति॥

●

१०५. सक्कायसुत्तं

११५. सावत्थिनिदानं। "सक्कायं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि सक्कायसमुदयं च सक्कायनिरोधं च सक्कायनिरोधगामिनिं च पटिपदं। तं सुणाथ। कतमो च, भिक्खवे, सक्कायो? 'पञ्चुपादानक्खन्धा' तिस्स वचनीयं। कतमे पञ्च? सेय्यथीदं—रूपु-पादान-क्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विञ्ञाणु-पादानक्खन्धो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सक्कायो। कतमो च, भिक्खवे, सक्काय-

---

आर्य अष्टाङ्गमार्ग ही यह सत्कायनिरोधगामी मार्ग है; जैसे—सम्यग्दृष्टि...पूर्ववत्... सम्यक्समाधि। भिक्षुओ! यही सत्कायनिरोधगामी मार्ग कहलाता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! ये चार अन्त कहलाते हैं॥

●

१०४. दुःखसूत्र : : आर्यसत्यचतुष्टय

११४. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! मैं तुम्हें 'दुःख' के विषय में उपदेश करूँगा, साथ ही दुःखसमुदय, दुःखनिरोध एवं दुःखनिरोधगामी मार्ग के विषय में भी बताऊँगा। उसे सुनो। भिक्षुओ! यह 'दुःख' क्या है? ये लोकविश्रुत पाँच उपादानस्कन्ध ही 'दुःख' हैं—ऐसा कहना चाहिये। कौन से पाँच? रूपोपादानस्कन्ध...विज्ञानोपादानस्कन्ध ...पूर्ववत्..."। *(पूर्वोक्त अन्तसूत्र में वर्णित 'सत्काय' शब्द हटा कर, वहाँ 'दुःख' शब्द लगा कर तद्वत् इस समस्त सूत्र का भी विस्तार कर लें।)*

●

१०५. सत्कायसूत्र : : सत्कायदृष्टि

११५. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें 'सत्काय' के विषय में देशना करूँगा। साथ ही 'सत्कायसमुदय', 'सत्कायनिरोध' एवं 'सत्कायनिरोधगामी मार्ग'

समुदयो? यायं तण्हा पोनोभविका...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, सक्कायसमुदयो। कतमो च, भिक्खवे, सक्कायनिरोधो? यो तस्सा येव तण्हाय...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, सक्कायनिरोधो। कतमा च, भिक्खवे, सक्कायनिरोधगामिनी [B.130, N.374] पटिपदा? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो। सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि ...पे०... सम्मासमाधि। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सक्कायनिरोधगामिनी पटिपदा'' ति॥ •

१०६. परिञ्ञेय्यसुत्तं

११६. सावत्थिनिदानं। ''परिञ्ञेय्ये च, भिक्खवे, धम्मे देसेस्सामि परिञ्ञं च परिञ्ञाताविं च पुग्गलं। तं सुणाथ। कतमे च, भिक्खवे, परिञ्ञेय्या धम्मा? रूपं, भिक्खवे, परिञ्ञेय्यो धम्मो। वेदना...पे०...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं परिञ्ञेय्यो धम्मो। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, परिञ्ञेय्या धम्मा। कतमा च, भिक्खवे, परिञ्ञा? रागक्खयो, दोसक्खयो, मोहक्खयो—अयं वुच्चति, भिक्खवे, परिञ्ञा। [R.160] कतमो च, भिक्खवे, परिञ्ञातावी पुग्गलो? 'अरहा' तिस्स वचनीयं। य्वायं आयस्मा एवंनामो एवंगोत्तो—अयं वुच्चति, भिक्खवे, परिञ्ञातावी पुग्गलो'' ति॥ •

१०७. पठमसमणसुत्तं

११७. सावत्थिनिदानं। ''पञ्चिमे, भिक्खवे, उपादानक्खन्धा। कतमे पञ्च? सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो...पे०...विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं

के विषय में भी बताऊँगा। भिक्षुओ! यह 'सत्काय' क्या है? ...पूर्ववत्...''। *('दुःख' शब्द हटा कर 'सत्काय' शब्द लगाकर विस्तार करें।)* •

१०६. परिज्ञेयसूत्र : : परिज्ञेय धर्म

११६. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें परिज्ञेय धर्मों के विषय में देशना करूँगा, साथ ही परिज्ञा, एवं परिज्ञाता के विषय में भी देशना करूँगा। भिक्षुओ! ये परिज्ञेय धर्म कौन हैं? रूप परिज्ञेय धर्म है, वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान परिज्ञेय धर्म है। भिक्षुओ! इन्हीं को 'परिज्ञेय धर्म' कहते हैं। भिक्षुओ! यह 'परिज्ञा' क्या है? भिक्षुओ! राग, द्वेष एवं मोह के क्षय को 'परिज्ञा' कहते हैं। तथा भिक्षुओ! 'परिज्ञाता पुद्गल' कौन कहलाता है? अर्हत् (ज्ञानी) को ही 'परिज्ञाता' कहना चाहिये। जो कि आयुष्मान् इस नाम वाला तथा इस गोत्र वाला होता है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—परिज्ञाता पुद्गल॥'' •

१०७. श्रमणसूत्र : : पञ्च उपादानस्कन्ध

११७. ...**श्रावस्ती में ही**...। ''भिक्षुओ! ये पाँच उपादानस्कन्ध होते हैं। कौन से पाँच? रूपोपादानस्कन्ध...विज्ञानोपादानस्कन्ध। भिक्षुओ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच

च यथाभूतं नप्पजानन्ति...पे०...पजानन्ति, सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥

१०८. दुतियसमणसुत्तं

११८. सावत्थिनिदानं। ''पञ्चिमे, भिक्खवे, उपादानक्खन्धा। कतमे पञ्च? सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं [N.375] च यथाभूतं नप्पजानन्ति... पे०...पजानन्ति, सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥

१०९. सोतापन्नसुत्तं

[B.131] ११९. सावत्थिनिदानं। ''पञ्चिमे, भिक्खवे, उपादानक्खन्धा। कतमे पञ्च? सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो...पे०...विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। यतो खो, भिक्खवे, [R.161] अरिय सावको इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो'' ति॥

उपादानस्कन्धों के आस्वाद, आदीनव एवं निस्सरण को यथार्थतः नहीं जानते हैं...पूर्ववत्... जानते हैं, वे स्वयं ज्ञान का साक्षात्कार कर, ज्ञान को प्राप्त कर धर्मानुसार साधना करते हैं॥

१०८. द्वितीय श्रमणसूत्र : : पञ्च उपादानस्कन्ध

११८. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! ये पाँच उपादानस्कन्ध कहलाते हैं; जैसे—रूपोपादानस्कन्ध...विज्ञानोपादानस्कन्ध। भिक्षुओ! जो भी कोई श्रमण या ब्राह्मण इन पाँचों उपादानस्कन्धों के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव तथा निस्सरण के विषय में यथार्थतः नहीं जानते...पूर्ववत्...जानते हैं, वे स्वयं जान कर, इन का साक्षात्कार कर धर्मपूर्वक साधना करते हैं॥

१०९. स्रोतआपन्नसूत्र : : स्रोतआपन्न को परम ज्ञान

११९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! ये पाँच उपादानस्कन्ध कहलाते हैं—रूपोपादानस्कन्ध...विज्ञानोपादानस्कन्ध। भिक्षुओ! ज्यों ही कोई श्रमण ब्राह्मण इन पाँचों उपादानस्कन्धों के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव तथा निस्सरण को यथार्थतः जान लेता है त्यों ही वह स्रोतआपन्न हो जाता है। यह आर्यश्रावक स्रोतआपन्न होने के साथ ही धर्ममार्ग से च्युत न होने की स्थिति में पहुँच जाता है। तथा स्थिर साधना करता हुआ वह, समय आने पर, परम ज्ञान (सम्बोधि) को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है॥''

११०. अरहन्तसुत्तं

१२०. सावत्थिनिदानं। "पञ्चिमे, भिक्खवे, उपादानक्खन्धा। कतमे पञ्च? सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो...पे०...विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खु इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा अनुपादाविमुत्तो होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभव-संयोजनो सम्मदञ्ञाविमुत्तो" ति॥ •

१११. पठमछन्दप्पहानसुत्तं

१२१. सावत्थिनिदानं। "रूपे, भिक्खवे, यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा, तं पजहथ। एवं तं रूपं पहीनं भविस्सति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं। वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...सङ्खारेसु...विञ्ञाणे यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा, तं पजहथ। एवं तं विञ्ञाणं पहीनं भविस्सति उच्छिन्नमूलं ताला-वत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं" ति॥ •

११२. दुतियछन्दप्पहानसुत्तं

१२२. सावत्थिनिदानं। "रूपे, भिक्खवे, यो छन्दो यो रागो या नन्दी या [N.376]
तण्हा ये उपयुपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया, ते पजहथ। एवं तं रूपं [R.162]

---

११०. अर्हत्सूत्र : : अर्हत् ज्ञानी

१२०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्...। क्यों कि भिक्षुओ! यह अर्हत् इन पाँच उपादानस्कन्धों के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं निस्सरण को यथार्थतः जान लेता है, विमुक्त हो जाता है, इसी से वह तब अर्हत्, क्षीणास्रव (निर्विकारचित्त), धर्मसाधना का पूरक (वुसितवा), कृतकृत्य, भारमुक्त, अनुप्राप्तसदर्थ (भवबन्धनमुक्त), परम ज्ञानी एवं विमुक्तक हो जाता है॥" •

१११. प्रथम छन्दप्रहाणसूत्र : : छन्दराग का त्याग

१२१. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! रूप में जो छन्दराग (तीव्र कामना) है, जो अभिनन्दन है, जो तृष्णा है उस का त्याग कर दो। इस तरह वह रूप प्रहीण हो जायगा, मूलतः उच्छिन्न (नष्ट) हो जायगा, शिर कटे ताड़ वृक्ष के समान उस की अवस्था हो जायगी, वह ऐसा विनष्ट हो जायगा कि पुनः कभी उत्पन्न न हो सकेगा। वेदना...संज्ञा... संस्कार...विज्ञान में जो छन्दराग...पूर्ववत्...॥" •

११२. द्वितीय छन्दरागप्रहाणसूत्र : : कामनाओं का त्याग

१२२. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! रूप में जो छन्द है राग है...पूर्ववत्...विज्ञान

पहीनं भविस्सति उच्छिन्नमूलं...पे०...वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु यो छन्दो...पे०...एवं [B.132] ते सङ्खारा पहीना भविस्सन्ति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। विञ्ञाणे यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा ये उपयुपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया, ते पजहथ। एवं तं विञ्ञाणं पहीनं भविस्सति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं'' ति॥ •

अन्तवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दान

अन्तो दुक्खं च सक्कायो, परिञ्ञेय्या समणा दुवे।
सोतापन्नो अरहा च, दुवे च छन्दप्पहाना ति॥ •

में जो छन्द, राग, नन्दी, तृष्णा, आसक्ति तथा ग्रहण है वे सब चित्त के अभिनिवेश के कारण हुई प्रवृत्ति से उद्भूत हैं, उन्हें त्याग दो। यों, वह विज्ञान मूलत: उच्छिन्न हो जायगा, तथा भविष्य में कभी उसके उत्पाद की आशा नहीं होगी॥'' •

प्रथम अन्तवर्ग सम्पन्न॥

इस अन्तवर्ग में इतने सूत्र व्याख्यात हुए हैं—१. अन्तसूत्र, २. दुःखसूत्र, ३. सत्कायसूत्र, ४. परिज्ञेयसूत्र, ५. प्रथम श्रमणसूत्र, ६. द्वितीय श्रमणसूत्र, ७. स्रोतआपन्नसूत्र, ८. अर्हत्सूत्र, ९. प्रथम छन्दप्रहाणसूत्र, १०. द्वितीय छन्दरागप्रहाणसूत्र॥ •

२. धम्मकथिकवग्गो दुतियो

११३. अविज्जासुत्तं

१२३. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि ...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"'अविज्जा अविज्जा' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमा नु खो, भन्ते, अविज्जा, कित्तावता च अविज्जागतो होती" ति?

"इध, भिक्खु, अस्सुतवा पुथुज्जनो रूपं नप्पजानाति, रूपसमुदयं नप्पजानाति, रूपनिरोधं नप्पजानाति, रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानाति; वेदनं नप्पजानाति... सञ्ञं... सङ्खारे नप्पजानाति...पे०...विञ्ञाणनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानाति। अयं [R.163] वुच्चति, भिक्खु, अविज्जा। एत्तावता च अविज्जागतो होती" ति। •

११४. विज्जासुत्तं

१२४. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"'विज्जा विज्जा' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमा नु खो, भन्ते, विज्जा, कित्तावता च विज्जागतो होती" ति?

"इध, भिक्खु, सुतवा अरियसावको रूपं पजानाति, रूपसमुदयं पजानाति, रूपनिरोधं पजानाति, रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानाति। वेदनं...सञ्ञं... [N.377]

---

२. धर्मकथिकवर्ग

११३. अविद्यासूत्र : : यह अविद्या क्या है?

१२३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...तब कोई भिक्षु भगवान् के सम्मुख पहुँचा तथा भगवान् से यों निवेदन करने लगा—"भन्ते! विद्वान् लोग 'अविद्या' 'अविद्या'—ऐसा अपने उपदेशप्रसङ्गों में कहते रहते हैं। भन्ते! यह अविद्या क्या है, तथा यह कैसे होती है?"

"यहाँ, भिक्षु! कोई अज्ञ पृथग्जन रूप को, रूपसमुदय को, रूपनिरोध को तथा रूपनिरोधगामी मार्ग को नहीं जानता, वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को...नहीं जानता। इसी को, भिक्षु! 'अविद्या' कहते हैं॥" •

११४. विद्यासूत्र : : यह विद्या क्या है?

१२४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...भिक्षु ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! 'विद्या' 'विद्या'—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। भन्ते! यह विद्या क्या है? तथा यह कैसे होती है?"

"भिक्षु! यहाँ कोई विद्वान् आर्यश्रावक...रूप को, रूपसमुदय को, रूपनिरोध को,

सङ्खारे पजानाति...पे०...विञ्ञाणनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खु, विज्जा। एत्तावता च विज्जागतो होती'' ति। •

११५. पठमधम्मकथिकसुत्तं

१२५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—
[B.133] '''धम्मकथिको धम्मकथिको' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, धम्मकथिको होती'' ति?

''रूपस्स चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय धम्मं देसेति 'धम्मकथितो भिक्खू' ति अलं वचनाय। रूपस्स चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति, 'धम्मनुधम्मप्पटिपन्नो भिक्खू' ति अलं वचनाय। रूपस्स चे, भिक्खु, निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादाविमुत्तो होति, 'दिट्ठधम्मनिब्बानप्पत्तो भिक्खू' ति अलं वचनाय। वेदनाय चे भिक्खु...पे०...सञ्ञाय चे भिक्खु...सङ्खारानं चे भिक्खु... विञ्ञाणस्स चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय धम्मं देसेति 'धम्मकथितो भिक्खू' ति अलं वचनाय। विञ्ञाणस्स चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति, 'धम्मनुधम्मप्पटिपन्नो भिक्खू' ति अलं वचनाय। विञ्ञाणस्स चे,
[R.164] भिक्खु, निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादाविमुत्तो होति, 'दिट्ठधम्म निब्बानप्पत्तो भिक्खू' ति अलं वचनाया'' ति॥ •

११६. दुतियधम्मकथिकसुत्तं

१२६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—

रूपनिरोधगामी मार्ग को जानता है। वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को...जानता है, भिक्षु! इसे कहते हैं—'विद्या'। इसी से विद्याप्राप्त कहलाता है''॥ •

११५. प्रथम धर्मकथिकसूत्र : : धर्मकथिक कैसे कहलाता है?

१२५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...भिक्षु ने भगवान् से अपनी जिज्ञासा प्रकट की— ''भन्ते! विद्वज्जन (प्रायः अपने उपदेशप्रसङ्गों में) धर्मकथिक का नाम लेते हैं। यह 'धर्मकथिक' कैसे होता है?

''भिक्षु! यदि कोई (उपदेशक) रूप से उपरत रहने के लिये, उस से विरक्त रहने के लिये, उस के निरोध (त्याग) के लिये उपदेश करता है तो वह उपदेशक उतने मात्र से भी 'धर्मकथिक' कहला सकता है...विशिष्ट धर्म एवं साधारण धर्मों से युक्त होता है...तथा भिक्षु! कोई रूप से उपरति, वैराग्य एवं निरोध से उपादानरहित होकर विमुक्त हो गया हो तो उस के लिये यही कहा जायगा कि वह इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त कर चुका है। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान...पूर्ववत्...इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त कर चुका है॥'' •

"'धम्मकथिको धम्मकथिको' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, धम्मकथिको होति, कित्तावता धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति, कित्तावता दिट्ठधम्मनिब्बानप्पत्तो होती'' ति?

''रूपस्स चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय धम्मं देसेति 'धम्मकथितो भिक्खू' ति अलं वचनाय। रूपस्स चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय [N.378] पटिपन्नो होति, 'धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो भिक्खू' ति अलं वचनाय। रूपस्स चे, भिक्खु, निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादाविमुत्तो होति, 'दिट्ठधम्मनिब्बानप्पत्तो भिक्खू' ति अलं वचनाय। वेदनाय चे भिक्खु...पे०...सञ्ञाय चे भिक्खु...सङ्खारानं चे भिक्खु... विञ्ञाणस्स चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय धम्मं देसेति 'धम्मकथितो भिक्खू' ति अलं वचनाय। विञ्ञाणस्स चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय धम्मं देसेति, 'धम्मकथितो भिक्खू' ति अलं वचनाय। विञ्ञाणस्स चे, भिक्खु, निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति, 'धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो भिक्खू' ति अलं [B.134] वचनाय। विञ्ञाणस्स चे, भिक्खु, निब्बिदा विरागा निरोधा अनुपादाविमुत्तो होति, 'दिट्ठधम्मनिब्बानप्पत्तो भिक्खू' ति अलं वचनाया'' ति॥ ●

११७. बन्धनसुत्तं

१२७. सावत्थिनिदानं। ''इध भिक्खवे अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी...पे०...सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं; अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो रूपबन्धनबद्धो सन्तरबाहिरबन्धनबद्धो अतीरदस्सी अपारदस्सी, बद्धो जीयति

---

११६. द्वितीय धर्मकथिकसूत्र : : धर्मकथिक कैसे होता है?

१२६. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...किसी भिक्षु ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की–''भन्ते! विद्वान् लोग प्राय: धर्मकथिक का नाम लेते हैं। भन्ते! यह धर्मकथिक कौन कहलाता है?''

''भिक्षु! यदि कोई (उपदेशक) रूप से उपरत रहने के लिये...पूर्वसूत्रवत्...उस के लिये 'वह इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त कर चुका है'—ऐसा कहा जा सकता है॥'' ●

११७. बन्धनसूत्र : : बद्ध कौन होता है?

१२७. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! कोई अज्ञ पृथग्जन...रूप को आत्मा समझता है, आत्मा को रूपवान् समझता है, या रूप में आत्मा समझता है या आत्मा में रूप समझता है। भिक्षुओ! कहा जाता है कि ऐसा अज्ञ जन उस रूप के बन्धन में बँधा हुआ, बाह्य एवं आन्तरिक जञ्जालों में जकड़ा हुआ है, वह न आर (इस तीर) को न पार (उस

[R.165] बद्धो मीयति बद्धो अस्मा लोका परं लोकं गच्छति। वेदनं अत्ततो समनुपस्सति ...पे०...वेदनाय वा अत्तानं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो वेदनाबन्धन-बद्धो सन्तरबाहिरबन्धनबद्धो अतीरदस्सी अपारदस्सी, बद्धो जीयति बद्धो मीयति बद्धो अस्मा लोका परं लोकं गच्छति। सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति ...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो विञ्ञाणबन्धनबद्धो सन्तरबाहिर-बन्धनबद्धो अतीरदस्सी अपारदस्सी, बद्धो जीयति बद्धो मीयति बद्धो अस्मा लोका परं लोकं गच्छति।

"सुतवा च खो, भिक्खवे, अरियसावको अरियानं दस्सावी...पे०... सप्पुरिस-धम्मे सुविनीतो न रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं वा अत्तानं; न अत्तनि वा रूपं, न रूपस्मिं वा अत्तानं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको न रूपबन्धनबद्धो, [N.379] न सन्तरबाहिर बन्धनबद्धो, तीरदस्सी, पारदस्सी; 'परिमुत्तो सो दुक्खस्मा' ति वदामि। न वेदनं अत्ततो...पे०...न सञ्ञं अत्ततो...पे०...न सङ्खारे अत्ततो...पे०...न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति...पे०...अयं वुच्चति, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको न विञ्ञाणबन्धनबद्धो, न सन्तरबाहिरबन्धनबद्धो, तीरदस्सी, पारदस्सी, 'परिमुत्तो सो दुक्खस्मा' ति वदामी" ति॥

●

११८. पठमपरिपुच्छितसुत्तं

१२८. सावत्थिनिदानं। "तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सथा" ति?

तीर) को देख पाता है। वह बद्ध ही उत्पन्न होता है तथा बद्ध ही मर जाता है। तथा इसी बद्धावस्था में इस लोक से परलोक में प्रयाण करता है। वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को...पूर्ववत्...परलोक में प्रयाग करता है।

(इसके विपरीत) "भिक्षुओ! कोई श्रुतवान् आर्यश्रावक रूप को आत्मा नहीं समझता, आत्मा को रूपवान् नहीं समझता, आत्मा में रूप है या रूप में आत्मा है—ऐसा नहीं समझता। इसके विषय में, भिक्षुओ! कहा जाता है कि यह पण्डित आर्यश्रावक रूप के बन्धन से नहीं बँधा है, बाह्य एवं आन्तरिक जञ्जालों में...पूर्ववत्...पार को देखने वाला है। वह दुःख से मुक्त हो गया है—ऐसा मैं मानता हूँ। वेदना के...संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के बन्धन से नहीं बँधा है, बाह्य एवं आभ्यन्तर जञ्जालों में...पूर्ववत्..., वह दुःख से मुक्त हो गया है—ऐसा मैं मानता हूँ"॥

●

११८. प्रथम परिपृष्टसूत्र : : रूप के यथार्थ ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं

१२८. ...**श्रावस्ती में** ही...। "तो, भिक्षुओ! रूप के विषय में क्या तुम यह मानते हो—'यह रूप मेरा है, यह मैं रूप हूँ, या रूप मेरी आत्मा है?'"

"नो हेतं, भन्ते"।

"साधु, भिक्खवे! रूपं, भिक्खवे, 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो [B.135] अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं।

"वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे [R.166] अत्ता' ति समनुपस्सथा" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"साधु, भिक्खवे! विञ्ञाणं, भिक्खवे, 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं...पे०...एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥

११९. दुतियपरिपुच्छितसुत्तं

१२९. सावत्थिनिदानं। "तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, 'रूपं नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सथा" ति?

"एवं, भन्ते"।

"साधु, भिक्खवे! रूपं, भिक्खवे, 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। "वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे...विञ्ञाणं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सथा" ति?

"नहीं, भन्ते!"

"ठीक ही है, भिक्षुओ! तुम उचित ही कह रहे हो; क्यों कि रूप के विषय में यह नहीं कहा जा सकता है यह मेरा है, या यह मैं हूँ, या यह मेरी आत्मा है।

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! यह वेदना...यह संज्ञा...ये संस्कार...यह विज्ञान मेरा है, या यह मैं हूँ, या यह मेरी आत्मा है?"

"नहीं, भन्ते!"

"भिक्षुओ! यह भी तुम उचित ही कह रहे हो; क्यों कि यह विज्ञान न मेरा है, न यह मैं हूँ, न यह मेरी आत्मा है। इस को इसी तरह यथार्थतः जान कर देखना चाहिये। ऐसा जानता हुआ...इस से आगे मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता—ऐसा जान जाता है॥"

११९. द्वितीय परिपृष्टसूत्र : : रूप के यथार्थ ज्ञान से पुनर्जन्म निवृत्ति

१२९. ...**श्रावस्ती में** ही...। "तो क्या तुम यह मानते हो, भिक्षुओ! 'यह रूप न मेरा है', 'न यह मैं रूप हूँ', 'न यह मेरी आत्मा है'?"

"हाँ, भन्ते!"

"ठीक है, भिक्षुओ! यह बात ऐसी ही है। यह रूप न मेरा है...न मेरी आत्मा है';

"एवं, भन्ते"।

"साधु, भिक्खवे! विञ्ञाणं, भिक्खवे, 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥

१२०. संयोजनियसुत्तं

१३०. सावत्थिनिदानं। "संयोजनिये च, भिक्खवे, धम्मे देसेस्सामि संयोजनं [N.380] च। तं सुणाथ। कतमे च, भिक्खवे, संयोजनिया धम्मा, कतमं संयोजनं? रूपं, भिक्खवे, संयोजनियो धम्मो; यो तत्थ छन्दरागो, तं तत्थ संयोजनं। वेदना...पे०... [R.167] सञ्ञा... सङ्खारा...विञ्ञाणं संयोजनियो धम्मो; यो तत्थ छन्दरागो, तं तत्थ संयोजनं। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, संयोजनिया धम्मा, इदं संयोजनं" ति॥

१२१. उपादानियसुत्तं

१३१. सावत्थिनिदानं। "उपादानिये च, भिक्खवे, धम्मे देसेस्सामि उपादानं च। तं सुणाथ। कतमे च, भिक्खवे, उपादानिया धम्मा, कतमं संयोजनं? रूपं, भिक्खवे, उपादानियो धम्मो, यो तत्थ छन्दरागो, तं तत्थ उपादानं। वेदना...पे०...सञ्ञा... सङ्खारा...विञ्ञाणं उपादानियो धम्मो; यो तत्थ छन्दरागो, तं तत्थ उपादानं। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, उपादानिया धम्मा, इदं उपादानं" ति॥

इसे ऐसे ही समझना चाहिये। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! यह वेदना...यह संज्ञा...ये संस्कार...यह विज्ञान 'न मैं हूँ'...'न मेरी आत्मा है'?"

"हाँ, भन्ते!"

"ठीक है, भिक्षुओ! यह विज्ञान...ऐसा ही समझना चाहिये। ऐसे समझने वाले...अब आगे मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है—यह समझ में आ जाता है॥"

१२०. संयोजनीयसूत्र : : संयोजन धर्म

१३०. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें संयोजनीय (भवबन्धनकारक) धर्मों का उपदेश करूँगा। उन्हें सुनो। भिक्षुओ! ये संयोजनीय धर्म कौन से हैं? तथा यह 'संयोजन' क्या है? भिक्षुओ! रूप संयोजनीय धर्म है। रूप में तीव्र उत्तेजना (आसक्ति) ही संयोजन है। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान संयोजनीय धर्म है, विज्ञान में तीव्र आसक्ति ही संयोजन है। भिक्षुओ! यों ये संयोजनीय धर्म कहलाते हैं तथा संयोजन कहलाता है॥"

१२१. उपादानीयसूत्र : : उपादानीय धर्म

१३१. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें उपादानीय धर्मों की देशना करूँगा...। *[पूर्वसूत्र (संयोजनीयसूत्र) की तरह ही विस्तार कर लें।]*

१२२. सीलवन्तसुत्तं

१३२. एकं समयं आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाकोट्ठिको [B.136] बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये। अथ खो आयस्मा महाकोट्ठिको सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि...पे०...एतदवोच—"सीलवतावुसो सारिपुत्त, भिक्खुना कतमे धम्मा योनिसो मनसिकातब्बा" ति?

"सीलवतावुसो कोट्ठिक, भिक्खुना पञ्चुपादानक्खन्धा अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गण्डतो सल्लतो अघतो आबाधतो परतो पलोकतो सुञ्ञतो अनत्ततो योनिसो मनसि कातब्बा। कतमे पञ्च? सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। सीलवतावुसो कोट्ठिक, भिक्खुना इमे पञ्चुपादानक्खन्धा अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गण्डतो सल्लतो अघतो आबाधतो परतो पलोकतो सुञ्ञतो अनत्ततो योनिसो मनसि कातब्बा। [N.381, R.168] ठानं खो पनेतं, आवुसो, विज्जति यं सीलवा भिक्खु इमे पञ्चुपादानक्खन्धे अनिच्चतो ...पे०...अनत्ततो योनिसो मनसि करोन्तो सोतापत्तिफलं सच्छिकरेय्या" ति।

"सोतापन्नेन पनावुसो सारिपुत्त, भिक्खुना कतमे धम्मा योनिसो मनसि कातब्बा" ति?

"सोतापन्नेन पि खो, आवुसो कोट्ठिक, भिक्खुना इमे पञ्चुपादानक्खन्धा

---

१२२. शीलवान्सूत्र : : शीलवान् के लिये मननीय धर्म

१३२. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् महाकौष्ठिक **वाराणसी** के ऋषिपतन मृगदाव में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उसी समय कभी आयुष्मान् महाकौष्ठिक किसी दिन सायङ्काल समाधि भावना से उठ कर आयुष्मान् सारिपुत्र के पास पहुँचे...पूर्ववत्...यों बोले—"आयुष्मन् सारिपुत्र! शीलवान् भिक्षु को कितने और कौन से धर्मों का मन से सूक्ष्मतया चिन्तन करना चाहिये?"

(सारि०—) "आयुष्मन् कौष्ठिक! शीलवान् भिक्षु को पाँच उपादानस्कन्धों के विषय में यों सूक्ष्मतः मनन करना चाहिये—'ये पाँचों उपादानस्कन्ध अनित्य दुःखमय, रोगोत्पादक, दुर्गन्धमय, व्रण के समान, पापमय, पीड़ादायक, पराये, मिथ्या, शून्य एवं अनात्म हैं। कौन से पाँच? रूपोपादानस्कन्ध...पूर्ववत्...विज्ञानोपादानस्कन्ध। आयुष्मन् कौष्ठिक! हो सकता है कि शीलवान् भिक्षु इन का यों सूक्ष्मतया मनन करते हुए समय आने पर स्रोतआपत्तिफल प्राप्त कर लें।"

(आ० कौ०—) "तब, आयुष्मन् सारिपुत्र! उस स्रोतआपत्तिमार्ग में पहुँचे हुए शीलवान् भिक्षु को किन धर्मों का मनन करना चाहिये?"

अनिच्चतो... पे०...अनत्ततो योनिसो मनसि कातब्बा। ठानं खो पनेतं, आवुसो, विज्जति यं सोतापन्नो भिक्खु इमे पञ्चुपादानक्खन्धे अनिच्चतो...पे०...अनत्ततो योनिसो मनसि करोन्तो सकदागामिफलं सच्छिकरेय्या'' ति।

''सकदागामिना पनावुसो सारिपुत्त, भिक्खुना कतमे धम्मा योनिसो मनसि कातब्बा'' ति?

''सकदागामिना पि खो, आवुसो कोट्ठिक, भिक्खुना इमे पञ्चुपादानक्खन्धा अनिच्चतो ...पे०...अनत्ततो योनिसो मनसि कातब्बा। ठानं खो पनेतं, आवुसो, विज्जति यं सकदागामी भिक्खु इमे पञ्चुपादानक्खन्धे अनिच्चतो...पे०...अनत्ततो योनिसो मनसि करोन्तो अनागामिफलं सच्छिकरेय्या'' ति।

[B.137] ''अनागामिना पनावुसो सारिपुत्त, भिक्खुना कतमे धम्मा योनिसो मनसि कातब्बा'' ति?

''अनागामिना पि खो, आवुसो कोट्ठिक, भिक्खुना इमे पञ्चुपादानक्खन्धा अनिच्चतो...पे०...अनत्ततो योनिसो मनसि कातब्बा। ठानं खो पनेतं, आवुसो, विज्जति यं अनागामी भिक्खु इमे पञ्चुपादानक्खन्धे अनिच्चतो...पे०...अनत्ततो योनिसो मनसि करोन्तो अरहत्तं सच्छिकरेय्या'' ति।

''अरहता पनावुसो सारिपुत्त, भिक्खुना कतमे धम्मा योनिसो मनसि कातब्बा'' ति?

(आ० सारि०—) ''उस स्रोतआपन्न भिक्षु को भी, आयुष्मन् कौष्ठिक! इन्हीं पाँच उपादानस्कन्धों का पूर्वोक्त अनित्यादि रूप से ही सूक्ष्मतः मनन करना चाहिये। आयुष्मन् कौष्ठिक! ऐसा करने से हो सकता है कि वह स्रोतआपन्न भिक्षु आगे चल कर अनागामिमार्ग में प्रतिष्ठित हो जाय।

(आ० कौ०—) ''तब उस अनागामिमार्गापन्न भिक्षु को, आयुष्मन् सारिपुत्र! किन धर्मों का मनन करना चाहिये?''

(आ० सारि०—) ''अनागामिमार्गापन्न भिक्षु को भी, आयुष्मन् कौष्ठिक! इन्हीं पाँचों उपादानस्कन्धों का और भी अधिक सूक्ष्मता से गम्भीर चिन्तन मनन पूर्वोक्त रीति से करना चाहिये। आयुष्मन् कौष्ठिक! हो सकता है कि ऐसा करते करते एक दिन वह अनागामिमार्गापन्न साधक अर्हत् की कोटि में पहुँच जाय।

(आ० कौ०—) ''आयुष्मन् सारिपुत्र! तब उस अर्हत्-मार्गापन्न भिक्षु को किन धर्मों का योनिशः प्रत्यवेक्षण करना चाहिये?''

(आ० सारि०—) ''आयुष्मन् कौष्ठिक! उस अर्हन्मार्गापन्न भिक्षु को भी इन्हीं

"अरहता पि खो, आवुसो कोट्ठिक, इमे पञ्चुपादानक्खन्धे अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गण्डतो सल्लतो अघतो आबाधतो परतो पलोकतो सुञ्ञतो [N.382, R.169] अनत्ततो योनिसो मनसि कातब्बा। नत्थि, ख्वावुसो, अरहतो उत्तरि करणीयं कतस्स वा पतिचयो; अपि च इमे धम्मा भाविता बहुलीकता दिट्ठधम्मसुखविहाराय चेव संवत्तन्ति सतिसम्पजञ्ञाय चा" ति॥ •

१२३. सुतवन्तसुत्तं

१३३. एकं समयं आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाकोट्ठिको बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये। अथ खो आयस्मा महाकोट्ठिको सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा...पे०...एतदवोच—

"सुतवतावुसो सारिपुत्त, भिक्खुना कतमे धम्मा योनिसो मनसि कातब्बा" ति?

"सुतवतावुसो कोट्ठिक, भिक्खुना पञ्चुपादानक्खन्धा अनिच्चतो...पे०...अनत्ततो योनिसो मनसि कातब्बा। कतमे पञ्च? सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो...पे०... विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। सुतवतावुसो कोट्ठिक, भिक्खुना इमे पञ्चुपादानक्खन्धा अनिच्चतो...पे०...अनत्ततो योनिसो मनसि कातब्बा। ठानं खो पनेतं, आवुसो, विज्जति—यं सुतवा भिक्खु इमे पञ्चुपादानक्खन्धे अनिच्चतो...पे०...अनत्ततो योनिसो मनसि करोन्तो सोतापत्तिफलं सच्छिकरेय्या" ति।

"सोतापन्नेन पनावुसो सारिपुत्त, भिक्खुना कतमे धम्मा योनिसो मनसि कातब्बा" ति?

"सोतापन्नेन पि खो आवुसो कोट्ठिक, भिक्खुना इमे पञ्चुपादानक्खन्धा [B.138] अनिच्चतो... पे०...अनत्ततो योनिसो मनसि कातब्बा। ठानं खो पनेतं, आवुसो, विज्जति यं सोतापन्नो भिक्खु इमे पञ्चुपादानक्खन्धे अनिच्चतो...पे०...अनत्ततो योनिसो मनसि करोन्तो सकदागामिफलं...पे०...अनागामिफलं...पे०...अरहत्तफलं सच्छिकरेय्या" ति।

"अरहता पनावुसो सारिपुत्त, भिक्खुना कतमे धम्मा योनिसो मनसि कातब्बा" ति?

"अरहता पि ख्वावुसो कोट्ठिक, इमे पञ्चुपादानक्खन्धा अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गण्डतो सल्लतो अघतो आबाधतो परतो पलोकतो सुञ्ञतो अनत्ततो योनिसो

पाँचों उपादानस्कन्धों का...पूर्ववत्...करना चाहिये। आयुष्मन् कौष्ठिक! अर्हत् के लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता, अतः उस के लिये इन धर्मों की भावना करते हुए सुखपूर्वक साधना द्वारा स्मृतिमान् तथा सम्प्रज्ञ रहना ही मुख्य रह जाता है"॥ •

मनसि कातब्बा। नत्थि, ख्वावुसो, अरहतो उत्तरि करणीयं, कतस्स वा पतिचयो; अपि [N.383] च खो इमे धम्मा भाविता बहुलीकता दिट्ठधम्मसुखविहाराय चेव संवत्तन्ति सतिसम्पजञ्ञाय चा'' ति॥ ●

१२४. पठमकप्पसुत्तं

१३४. सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा कप्पो येन भगवा तेनुपसङ्कमि...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा कप्पो भगवन्तं एतदवोच—''कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारम-मङ्कारमानानुसया न होन्ती'' ति?

''यं किञ्चि, कप्प, रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। या काचि वेदना...पे०...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। एवं खो, कप्प, जानतो एवं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ती'' ति॥ ●

---

१२३. श्रुतवान्सूत्र : : श्रुतवान् के लिये मननीय धर्म

१३३. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् कौष्ठिक...**वाराणसी के**...पूर्ववत्... इस जन्म में सूखपूर्वक साधना तथा स्मृतिसम्प्रजन्य के लिये होता है॥

(इस सूत्र का विस्तार पूर्व शीलवान्सूत्र के पाठ की तरह, 'शीलवान्' के स्थान पर 'श्रुतवान्' शब्द लगा कर, कर लिया जाय।) ●

१२४. प्रथम कल्पसूत्र : : अहङ्कार का त्याग

१३४. ...**श्रावस्ती में** ही...। तब आयुष्मान् कल्प कभी भगवान् की सेवा में पहुँचे।...यह निवेदन किया—''भन्ते! क्या जानते हुए या क्या समझते हुए इस विज्ञानमय शरीर में तथा बाह्य निमित्तों में अहङ्कार, ममत्व, मान एवं अनुशय (चित्त की कुपथगामी प्रवृत्ति) नहीं होती?''

''कल्प! जो भी अतीत, अनागत एवं वर्तमान रूप है, फिर भले ही वह अध्यात्म हो या बाह्य...पूर्ववत्...ऐसे समस्त रूप को 'यह मेरा नहीं है', 'यह मैं नहीं हूँ', 'यह मेरी आत्मा नहीं है'—ऐसा यथार्थतः जान कर समझता है। जो भी वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान

१२५. दुतियकप्पसुत्तं

१३५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा कप्पो [B.139, R.170] भगवन्तं एतदवोच—"कथं नु खो, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानापगतं मानसं होति विधा समतिक्कन्तं सन्तं सुविमुत्तं" ति?

"यं किञ्चि, कप्प, रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं...पे०...सब्बं रूपं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा अनुपादाविमुत्तो होति। या काचि वेदना...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति [N.384] एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा अनुपादाविमुत्तो होति। एवं खो, कप्प, जानतो एवं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कार-ममङ्कारमानापगतं मानसं होति विधा समतिक्कन्तं सन्तं सुविमुत्तं" ति॥ ●

धम्मकथिकवग्गो दुतियो॥

तस्सुद्दानं

अविज्जा-विज्जा द्वे कथिका, बन्धना परिपुच्छिता दुवे।
संयोजनं उपादानं, सीलं सुतवा द्वे च कप्पेना ति॥ ●

...पूर्ववत्...समझता है। कल्प! ऐसा समझ लेने वाले साधक को इस विज्ञानमय काय में तथा अन्य बाह्य निमित्तों में किसी भी प्रकार का अहन्त्व, ममत्व, मान या अनुशय नहीं होते"॥ ●

१२५. द्वितीय कल्पसूत्र : : अहङ्कारत्याग से मुक्ति

१३५. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भन्ते! क्या जान कर या समझ कर साधक इस विज्ञानमय शरीर में तथा बाह्य निमित्तों में अहन्त्व, ममत्व, मान तथा अनुशय से रहित होकर निःसंशयभाव से शान्त एवं विमुक्त हो पाता है?"

"कल्प! जो भी अतीत, अनागत, वर्तमान रूप है...पूर्ववत्...शान्त एवं विमुक्त हो जाता है।

...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान है...पूर्ववत्...शान्त एवं विमुक्त हो जाता है"॥ ●

धर्मकथिकवर्ग द्वितीय सम्पन्न॥

इस धर्मकथिकवर्ग में व्याख्यात सूत्र इस प्रकार हैं— १. अविद्यासूत्र, २. विद्यासूत्र, ३. प्रथम धर्मकथिकसूत्र, ४. द्वितीय धर्मकथिकसूत्र, ५. बन्धनसूत्र, ६. प्रथम परिपृष्टसूत्र, ७. द्वितीय परिपृष्टसूत्र, ८. संयोजनीयसूत्र, ९. उपादानीयसूत्र, १०. शीलवान्सूत्र, ११. श्रुतवानसूत्र, १२. प्रथम कल्पसूत्र, एवं १३. द्वितीय कल्पसूत्र ॥ •

३. अविज्जावग्गो ततियो

१२६. पठमसमुदयधम्मसुत्तं

१३६. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा [R.171] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"'अविज्जा अविज्जा' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमा नु खो, भन्ते, अविज्जा, कित्तावता च अविज्जागतो होती" ति?

"इध, भिक्खु, अस्सुतवा पुथुज्जनो समुदयधम्मं रूपं 'समुदयधम्मं [B.140] रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति; वयधम्मं रूपं 'वयधम्मं रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति; समुदयवयधम्मं रूपं 'समुदयवयधम्मं रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। समुदयधम्मं वेदनं 'समुदयधम्मा वेदना' ति यथाभूतं नप्पजानाति; वयधम्मं वेदनं 'वयधम्मा वेदना' ति यथाभूतं नप्पजानाति; समुदयवयधम्मं वेदनं 'समुदयवयधम्मा वेदना' ति यथाभूतं नप्पजानाति। समुदयधम्मं सञ्ञं...पे०...समुदयधम्मे सङ्खारे 'समुदयधम्मा सङ्खारा' ति यथाभूतं नप्पजानाति; वयधम्मे सङ्खारे 'वयधम्मा सङ्खारा' ति यथाभूतं नप्पजानाति; समुदयवयधम्मे सङ्खारे 'समुदयवयधम्मा सङ्खारा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। समुदय-धम्मं विञ्ञाणं 'समुदयधम्मं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति; वयधम्मं विञ्ञाणं 'वयधम्मं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति; समुदयवयधम्मं विञ्ञाणं [N.385] 'समुदयवयधम्मं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खु, अविज्जा; एत्तावता च अविज्जागतो होती" ति।

---

३. अविद्यावर्ग

१२६. प्रथम समुदयधर्मसूत्र : : अविद्या क्या है?

१३६. ...**श्रावस्ती में** ही। तब कोई भिक्षु भगवान् के सम्मुख...अपनी जिज्ञासा यों प्रकट करने लगा—"भन्ते! बहुत लोग 'अविद्या' 'अविद्या'—ऐसा बोलते रहते हैं, भन्ते! यह 'अविद्या' क्या है? तथा कौन इस 'अविद्या' से ग्रस्त होता है?"

"यहाँ, भिक्षु! कोई अज्ञ पृथग्जन उत्पादस्वभाव वाले रूप को उत्पादस्वभाव वाले धर्म के रूप में भली भाँति नहीं पहचान पाता, नाशस्वभाव वाले धर्म रूप को नाशस्वभाव वाले धर्म के रूप में..., उत्पादनाशस्वभाव वाले धर्म को उत्पादनाशस्वभाव वाले धर्म के रूप में..., उत्पादस्वभाव वाली वेदना को...उत्पादस्वभाव वाली संज्ञा को..., उत्पादस्वभाव वाले संस्कारों को..., उत्पादस्वभाव वाले विज्ञान को उत्पादस्वभाव वाले विज्ञान के रूप में नहीं पहचानता... पूर्ववत्...यह इस तरह न पहचानना ही 'अविद्या' है। तथा इस तरह न पहचानने वाला अज्ञ पुरुष ही 'अविद्याग्रस्त' कहलाता है।

एवं वुत्ते, सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"'विज्जा विज्जा' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमा नु खो, भन्ते, विज्जा, कित्तावता च विज्जागतो होती" ति?

"इध, भिक्खु, सुतवा अरियसावको समुदयधम्मं रूपं 'समुदयधम्मं रूपं' ति यथाभूतं पजानाति; वयधम्मं रूपं 'वयधम्मं रूपं' ति यथाभूतं पजानाति; समुदय- [R.172] वयधम्मं रूपं 'समुदयवयधम्मं रूपं' ति यथाभूतं पजानाति। समुदयधम्मं वेदनं 'समुदयधम्मा वेदना' ति यथाभूतं पजानाति; वयधम्मं वेदनं 'वयधम्मा वेदना' ति यथाभूतं पजानाति; समुदयवयधम्मं वेदनं 'समुदयवयधम्मा वेदना' ति यथाभूतं पजानाति। समुदयधम्मं सञ्ञं...समुदयधम्मे सङ्खारे 'समुदयधम्मा सङ्खारा' ति यथाभूतं पजानाति; वयधम्मे सङ्खारे 'वयधम्मा सङ्खारा' ति यथाभूतं पजानाति; समुदयवयधम्मे सङ्खारे 'समुदयवयधम्मा सङ्खारा' ति यथाभूतं पजानाति। समुदयधम्मं विञ्ञाणं 'समुदयधम्मं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं पजानाति; वयधम्मं विञ्ञाणं 'वयधम्मं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं पजानाति; समुदयवयधम्मं विञ्ञाणं 'समुदयवयधम्मं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खु, विज्जा; एत्तावता च विज्जागतो होती" ति। •

१२७. दुतियसमुदयधम्मसुत्तं

[B.141] १३७. एकं समयं आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाकोट्ठिको बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये। अथ खो आयस्मा महाकोट्ठिको सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा महाकोट्ठिको आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"'अविज्जा अविज्जा' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, अविज्जा, कित्तावता च अविज्जागतो होती" ति?

(इसके विपरीत—) "भिक्षु! जो विद्वान् आर्यश्रावक उत्पादस्वभाव वाले रूप को उत्पादस्वभाव वाला रूप...पूर्ववत्...वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को उत्पाद-स्वभाव वाले विज्ञान के रूप में यथार्थतः पहचानता है, ...पूर्ववत्...भिक्षु! इसे कहते हैं—'विद्या'। इस विद्या से सम्पृक्त साधक ही 'विद्यासम्पन्न' कहलाता है"॥ •

१२७. द्वितीय समुदयधर्मसूत्र : : 'अविद्या' क्या है?

१३७. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् महाकौष्ठिक—दोनों ही वाराणसी के **ऋषिपतन मृगदाव** में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब आयुष्मान् महाकौष्ठिक, सायङ्काल समाधि भावना से निवृत्त हो कर...सारिपुत्र से यों पूछने लगे—"आयुष्मन् सारिपुत्र! ये (उपदेशक) लोग 'अविद्या' 'अविद्या' ऐसा शब्द बहुत बोलते रहते हैं। यह 'अविद्या' क्या है? तथा इस 'अविद्या' से ग्रस्त कौन होता है?"

"इधावुसो अस्सुतवा पुथुज्जनो समुदयधम्मं रूपं 'समुदयधम्मं रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति; वयधम्मं रूपं...पे०...'समुदयवयधम्मं रूपं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। समुदयधम्मं वेदनं...पे०...वयधम्मं वेदनं...पे०...'समुदयवयधम्मा वेदना' ति [N.386] यथाभूतं नप्पजानाति। समुदयधम्मं सञ्ञं...पे०...समुदयधम्मे सङ्खारे...पे०...वयधम्मे सङ्खारे...पे०...समुदयवयधम्मे सङ्खारे 'समुदयवयधम्मा सङ्खारा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। समुदयधम्मं विञ्ञाणं...पे०...समुदयवयधम्मं विञ्ञाणं 'समुदयवयधम्मं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खु, आवुसो, अविज्जा; एत्तावता च अविज्जागतो होती'' ति॥ •

१२८. ततियसमुदयधम्मसुत्तं

१३८. एकं समयं आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाकोट्ठिको [R.173] बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा महाकोट्ठिको आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"''विज्जा विज्जा' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, विज्जा, कित्तावता च विज्जागतो होती'' ति?

"इधावुसो, सुतवा अरियसावको समुदयधम्मं रूपं 'समुदयधम्मं रूपं' ति यथाभूतं पजानाति; वयधम्मं रूपं...पे०...समुदयवयधम्मं रूपं 'समुदयवयधम्मं रूपं' ति यथाभूतं पजानाति; समुदयधम्मं वेदनं...पे०...समुदयवयधम्मा वेदना...समुदयधम्मं सञ्ञं...पे०...समुदयधम्मे सङ्खारे...वयधम्मे सङ्खारे...समुदयवयधम्मे सङ्खारे 'समुदयवयधम्मा सङ्खारा' ति यथाभूतं पजानाति। समुदयधम्मं विञ्ञाणं...वयधम्मं विञ्ञाणं...समुदयवयधम्मं विञ्ञाणं 'समुदयवयधम्मं विञ्ञाणं' ति यथाभूतं पजानाति। अयं वुच्चतावुसो, विज्जा; एत्तावता च विज्जागतो होती'' ति॥ •

"आयुष्मन्! यहाँ कोई अज्ञ, पृथग्जन उत्पत्तिधर्मक रूप को यथार्थतः उत्पत्तिधर्मक वाला रूप नहीं जानता, नाशधर्मक रूप को...उत्पत्तिनाशधर्मक रूप को..., ...वेदना को... संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को उत्पत्तिधर्मक विज्ञान के रूप में यथार्थतः नहीं जानता ...पूर्ववत्... आयुष्मन्! इसे कहते हैं—'अविद्या'। तथा इस अविद्या से ग्रस्त को ही 'अविद्याग्रस्त' कहते हैं''॥ •

१२८. तृतीय समुदयधर्मसूत्र : : 'विद्या' क्या है?

१३८. एक समय...**ऋषिपतन मृगदाव** में...''आयुष्मन्! यह 'विद्या' क्या होती है? तथा विद्यासम्पन्न कौन होता है? ...उपरिवर्णितसूत्रवत्...।

(अनुपद में ऊपर वर्णित द्वितीय समुदयधर्मसूत्र को 'अविद्या' के स्थान पर 'विद्या' शब्द लगा कर इस सूत्र का यथावत् विस्तार कर लें।) •

१२९. पठमअस्सादसुत्तं

१३९. बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो [B.142] आयस्मा महाकोट्ठिको आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"'अविज्जा अविज्जा' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, अविज्जा, कित्तावता च अविज्जागतो होती" ति?

"इधावुसो अस्सुतवा पुथुज्जनो रूपस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...सङ्खारानं...विञ्ञाणस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। अयं वुच्चतावुसो, अविज्जा; एत्तावता च [N.387] अविज्जागतो होती" ति॥ •

१३०. दुतियअस्सादसुत्तं

१४०. बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये...पे०...। "'विज्जा विज्जा' [R.174] ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, विज्जा, कित्तावता चविज्जागतो होती" ति?

"इधावुसो, सुतवा अरियसावको रूपस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...सङ्खारानं...विञ्ञाणस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। अयं वुच्चतावुसो, विज्जा; एत्तावता च विज्जागतो होती" ति॥ •

---

१२९. आस्वादसूत्र : : अविद्या क्या है?

१३९. एक समय...**ऋषिपतन मृगदाव** में..."आयुष्मन्! यह 'अविद्या' क्या है? तथा इस अविद्या से ग्रस्त कौन होता है?"

"आयुष्मन्! यहाँ कोई अज्ञ पृथग्जन रूप के आस्वाद को आदीनव को, निस्सरण को यथार्थतः नहीं जानता। वेदना के...संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के आस्वाद, आदीनव एवं निस्सरण को यथार्थतः नहीं जानता। आयुष्मन्! ऐसा न जानना ही 'अविद्या' कहलाता है, तथा इस अविद्या से सम्पन्न को 'अविद्यागत' कहते हैं"॥ •

१३०. द्वितीय आस्वादसूत्र : : 'विद्या' क्या है?

१४०. ...**वाराणसी** स्थित ऋषिपतन मृगदाव में साधनाहेतु ठहरे हुए थे।"आयुष्मन् सारिपुत्र! 'विद्या' 'विद्या'—ऐसा बहुत लोग बोलते रहते हैं? यह विद्या क्या है? तथा इस विद्या से सम्पन्न कौन होता है?"

"यहाँ कोई विद्वान् आर्यश्रावक रूप के आस्वाद, आदीनव तथा निःसरण को यथार्थतः जानता है, वेदना के...संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के आस्वाद को, आदीनव

१३१. पठमसमुदयसुत्तं

१४१. बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये...पे०...। "'अविज्जा अविज्जा' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, अविज्जा, कित्तावता च अविज्जागतो होती" ति?

"इधावुसो, अस्सुतवा पुथुज्जनो रूपस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...सङ्खारानं... विञ्ञाणस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। अयं वुच्चतावुसो, अविज्जा; एत्तावता च अविज्जागतो होती" ति॥ ●

१३२. दुतियसमुदयसुत्तं

१४२. बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये...पे०...एकमन्तं निसिन्नो [B.143] खो आयस्मा महाकोट्ठिको आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"'विज्जा विज्जा' ति, आवुसो सारिपुत्त, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, विज्जा, कित्तावता च विज्जागतो होती" ति?

"इधावुसो सुतवा अरियसावको रूपस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...सङ्खारानं...

को, निस्सरण को यथार्थतः जानता है, आयुष्मन्! ऐसा यथार्थ ज्ञान ही 'विद्या' कहलाता है तथा इस विद्या से युक्त को 'विद्यासम्पन्न' कहते हैं"॥ ●

१३१. प्रथम समुदयसूत्र : : अविद्या क्या है?

१४१. ...**वाराणसी के** ऋषिपतन मृगदाव में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। "आयुष्मन् सारिपुत्र! बहुत से लोग 'अविद्या', 'अविद्या'—ऐसा कहते रहते हैं, इन की यह 'अविद्या' क्या है? तथा इस अविद्या से ग्रस्त कौन होता है?"

(आ० सारि०—) "यहाँ कोई अज्ञ पृथग्जन रूप की उत्पत्ति, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः नहीं जानता। वेदना के...संज्ञा के...संस्कार के...विज्ञान के उत्पत्ति, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः नहीं जानता। यह अज्ञान ही 'अविद्या' कहलाता है, तथा इस अविद्या से सम्पृक्त को 'अविद्यागत' कहते हैं"॥ ●

१३२. द्वितीय समुदयसूत्र : : विद्या क्या है?

१४१. ...**वाराणसी के** ऋषिपतन मृगदाव में...। "आयुष्मन् सारिपुत्र! 'विद्या', 'विद्या'—ऐसा भी लोग बोलते रहते हैं, यह 'विद्या' क्या है? तथा 'विद्यासम्पन्न' कौन होता है?"

"आयुष्मन्! यहाँ कोई विद्वान् आर्यश्रावक रूप के उत्पाद, विनाश, आस्वाद,

[N.388] विञ्ञाणस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। अयं वुच्चतावुसो, विज्जा; एत्तावता च विज्जागतो होती'' ति॥ ●

१३३. पठमकोट्ठिकसुत्तं

[R.175] १४३. बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो सायन्हसमयं...पे०...एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं महाकोट्ठिकं एतदवोच—"'अविज्जा अविज्जा' ति, आवुसो कोट्ठिक, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, अविज्जा, कित्तावता च अविज्जागतो होती'' ति?।

"इधावुसो, अस्सुतवा पुथुज्जनो रूपस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...सङ्खारानं...विञ्ञाणस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। अयं वुच्चतावुसो, अविज्जा; एत्तावता च अविज्जागतो होती'' ति॥

एवं वुत्ते, आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं महाकोट्ठिकं एतदवोच—"'विज्जा विज्जा' ति, आवुसो कोट्ठिक, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, विज्जा, कित्तावता च विज्जागतो होती'' ति?

आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः जानता है...वेदना के...संज्ञा के...संस्कार के...विज्ञान के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः जानता है, इस का यह यथार्थ ज्ञान ही 'विद्या' कहलाता है। तथा ऐसी विद्या से युक्त को 'विद्यासम्पन्न' कहते हैं''॥ ●

१३३. कौष्ठिकसूत्र : : 'अविद्या' क्या है?

१४३. ...**वाराणसी के** ऋषिपतन मृगदाव में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब किसी दिन सायङ्काल ध्यानभावना से उठ कर आयुष्मान् महाकौष्ठिक से यों बोले—"आयुष्मन् कौष्ठिक! लोग इस अविद्या के विषय में बहुत कुछ बोलते रहते हैं। यहाँ यह 'अविद्या' क्या है? और अविद्याग्रस्त कैसे माना जाता है?''

"आयुष्मन्! यहाँ कोई अज्ञ पृथग्जन रूप के आस्वाद को...वेदना के आस्वाद को...संज्ञा के आस्वाद को...संस्कारों के आस्वाद को...विज्ञान के आस्वाद को...आदीनव को, निस्सरण को यथार्थतः नहीं जानता। यह अज्ञान ही 'अविद्या' कहलाता है इस अविद्या से संलिप्त को 'अविद्यागत' कहते हैं।''

ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् सारिपुत्र ने पुनः प्रश्न किया—"तथा, आयुष्मन् कौष्ठिक! यह जो 'विद्या' 'विद्या'—ऐसा कहा जाता है, यह विद्या क्या है? तथा 'विद्यासम्पन्न' कौन होता है?''

"इधावुसो सुतवा अरियसावको रूपस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...सङ्खारानं...विञ्ञाणस्स अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। अयं वुच्चतावुसो, विज्जा; एत्तावता च विज्जागतो होती" ति॥

१३४. दुतियकोट्ठिकसुत्तं

१४४. बाराणसियं विहरन्ति इसिपतने मिगदाये...पे०...। "'अविज्जा अविज्जा' ति, आवुसो कोट्ठिक, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, अविज्जा, कित्तावता च अविज्जागतो होती" ति? [B.144]

"इधावुसो, अस्सुतवा पुथुज्जनो रूपस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...सङ्खारानं... विञ्ञाणस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। अयं वुच्चतावुसो, अविज्जा; एत्तावता च अविज्जागतो होती" ति॥[R.176]

एवं वुत्ते, आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं महाकोट्ठिकं एतदवोच— [N.389] "'विज्जा विज्जा' ति, आवुसो कोट्ठिक, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, विज्जा, कित्तावता च विज्जागतो होती" ति?

"इधावुसो सुतवा अरियसावको रूपस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...सङ्खारानं...

"आयुष्मन्! यहाँ कोई विद्वान् आर्यश्रावक रूप के...वेदना के...संज्ञा के...संस्कारों के... विज्ञान के आस्वाद को, आदीनव को, निःसरण को यथार्थतः जानता है। यह यथार्थ ज्ञान ही 'विद्या' कहलाता है। तथा इस विद्या से युक्त साधक को 'विद्यासम्पन्न' कहते हैं"॥

१३४. द्वितीय कौष्ठिकसूत्र : : 'विद्या' क्या है?

१४४. ...**वाराणसी के** ऋषिपतन मृगदाव में...।" आयुष्मन् कौष्ठिक!...'अविद्या' क्या है? तथा अविद्यागत क्या है?"

"आयुष्मन्! यहाँ कोई अज्ञ पृथग्जन रूप के...वेदना के...संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के उत्पाद एवं विनाश को, आस्वाद आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः नहीं जानता; यह अज्ञान ही अविद्या है...।

ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् सारिपुत्र ने पुनः प्रश्न किया—...यह 'विद्या' क्या है?"

विञ्ञाणस्स समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। अयं वुच्चतावुसो, विज्जा; एत्तावता च विज्जागतो होती'' ति॥

१३५. ततियकोट्ठिकसुत्तं

१४५. तञ्ञेव निदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं महाकोट्ठिकं एतदवोच—'''अविज्जा अविज्जा' ति, आवुसो कोट्ठिक, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, अविज्जा, कित्तावता च अविज्जागतो होती'' ति?

''इधावुसो, अस्सुतवा पुथुज्जनो रूपं नप्पजानाति, रूपसमुदयं नप्पजानाति, रूपनिरोधं नप्पजानाति, रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानाति। वेदनं नप्पजानाति... सञ्ञं...सङ्खारे... विञ्ञाणं नप्पजानाति, विञ्ञाणसमुदयं नप्पजानाति, विञ्ञाणनिरोधं नप्पजानाति, विञ्ञाणनिरोधगामिनिं पटिपदं नप्पजानाति। अयं वुच्चतावुसो, अविज्जा; एत्तावता च अविज्जागतो होती'' ति॥

एवं वुत्ते, आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं महाकोट्ठिकं एतदवोच—'''विज्जा [B.145] विज्जा' ति, आवुसो कोट्ठिक, वुच्चति। कतमा नु खो, आवुसो, विज्जा, कित्तावता च विज्जागतो होती'' ति?

[R.177] ''इधावुसो, सुतवा अरियसावको रूपं पजानाति, रूपसमुदयं पजानाति, रूपनिरोधं पजानाति, रूपनिरोधगामिनिं पटिपदं पजानाति। वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे... विञ्ञाणं पजानाति, विञ्ञाणुसमुदयं पजानाति, विञ्ञाणनिरोधं पजानाति, विञ्ञाण-

---

''आयुष्मन्! जो विद्वान् आर्यश्रावक...पूर्ववत्...इतने से वह 'विद्यासम्पन्न' कहलाता हैं''॥

१३५. तृतीय कौष्ठिकसूत्र : : विद्या एवं अविद्या

१४५. ...**वाराणसी के** ऋषिपतन मृगदाव में ही... । ...आयुष्मन् सारिपुत्र ने आयुष्मान् महाकौष्ठिक से पूछा—'' ...यह 'अविद्या' क्या है? तथा 'अविद्यागत' क्या है?''

''आयुष्मन्! यहाँ कोई अज्ञ पृथग्जन रूप को, रूपसमुदय को, रूपनिरोध को, रूपनिरोधगामी मार्ग को नहीं जानता; वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को, विज्ञानसमुदय को, विज्ञाननिरोध को, विज्ञाननिरोधगामी मार्ग को यथार्थतः नहीं जानता। इस अज्ञान को ही 'अविद्या' कहते हैं। ... ।''

ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् सारिपुत्र ने पुनः प्रश्न किया—...यह 'विद्या' क्या है? 'अविद्यागत' क्या है?''

''यहाँ कोई विद्वान् आर्यश्रावक रूप को, रूपसमुदय को, रूपनिरोध को, रूपनिरोधगामी मार्ग को जानता है। वेदना को...संज्ञा को...संस्कारों को...विज्ञान को,

निरोधगामिनिं पटिपदं पजानाति। अयं वुच्चतावुसो, विज्जा; एत्तावता च विज्जागतो होती'' ति॥ ●

अविज्जावग्गो ततियो॥

तस्सुदानं

समुदयधम्मे तीणि, अस्सादो अपरे दुवे। [N.390]
समुदये च द्वे वुत्ता, कोट्ठिके अपरे तयो ति॥ ●

विज्ञानसमुदय को, विज्ञाननिरोध को, विज्ञाननिरोधगामी मार्ग को यथार्थतः जानता है। ऐसा ज्ञान ही, आयुष्मन्! 'विद्या' कहलाता है, तथा इस विद्या से युक्त को विद्यासम्पन्न कहलाता है''॥ ●

अविद्यावर्ग तृतीय सम्पन्न॥

इस वर्ग में ये सूत्र क्रमशः व्याख्यात हुए हैं—तीन समुदयधर्मसूत्र, **दो** आस्वाद सूत्र, **दो** समुदयसूत्र एवं **तीन** कौष्ठिकसूत्र॥ ●

४. कुक्कुळवग्गो चतुत्थो

१३६. कुक्कुळसुत्तं

१४६. सावत्थिनिदानं। "रूपं, भिक्खवे, कुक्कुळं, वेदना कुक्कुळा, सञ्ञा कुक्कुळा, सङ्खारा कुक्कुळा, विञ्ञाणं कुक्कुळं। एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति॥ •

१३७. पठमअनिच्चसुत्तं

१४७. सावत्थिनिदानं। "यं, भिक्खवे, अनिच्चं; तत्र वो छन्दो पहातब्बो। किञ्च, [R.178] भिक्खवे, अनिच्चं? रूपं, भिक्खवे, अनिच्चं; तत्र वो छन्दो पहातब्बो। वेदना अनिच्चा...पे०...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनिच्चं; तत्र वो छन्दो पहातब्बो। यं, भिक्खवे, अनिच्चं; तत्र वो छन्दो पहातब्बो" ति॥ •

---

४. कुकूलवर्ग

१३६. कुकूलसूत्र : : रूप धधक रहा है

१४६. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! ये रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान उष्ण भस्म के समान हैं। (जैसे उष्ण भस्म का स्पर्श बहुत अधिक काल तक सहन नहीं होता, उसी प्रकार इन रूप आदि विषयों का स्पर्श भी बहुत अधिक समय तक निरन्तर सहन नहीं होता।) इन रूपादि के विषय में यों विचार करता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक की रूप में अरुचि उत्पन्न हो जाती है, वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में अरुचि उत्पन्न हो जाती है। इस अरुचि के कारण पुरुष को इन से वैराग्य हो जाता है। वैराग्य होने से एक दिन इस को इन के विषय में वास्तविकता ज्ञात (यथार्थ ज्ञान) हो जाती है। तब इन का यथार्थ ज्ञान होने पर उसे 'मैं विमुक्त हो गया हूँ'—ऐसा समझ में आ जाता है। तथा वह 'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो चुकी, मेरा कर्त्तव्य सम्पन्न हो गया, अव मेरा कोई कर्त्तव्य शेष नहीं है'—यह भी जान लेता है॥ •

१३७. प्रथम अनित्यसूत्र : : अनित्य में आसक्ति न रखो

१४७. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! जो पदार्थ अनित्य है, उस में तुम आसक्ति न रखो। भिक्षुओ! अनित्य क्या है? भिक्षुओ! रूप अनित्य है, उस में तुम्हें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान अनित्य है उस में, भिक्षुओ! तुम्हें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। कहने का भाव यह है कि इस संसार में जो कुछ भी अनित्य है उस के प्रति आसक्ति न रखनी चाहिये॥" •

१३८. दुतियअनिच्चसुत्तं

१४८. सावत्थिनिदानं। "यं, भिक्खवे, अनिच्चं; तत्र वो रागो पहातब्बो। [B.146] किञ्च, भिक्खवे, अनिच्चं? रूपं, भिक्खवे, अनिच्चं; तत्र वो रागो पहातब्बो। वेदना अनिच्चा... सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनिच्चं; तत्र वो रागो पहातब्बो। यं, भिक्खवे, अनिच्चं; तत्र वो रागो पहातब्बो" ति॥ ●

१३९. ततियअनिच्चसुत्तं

१४९. सावत्थिनिदानं। "यं, भिक्खवे, अनिच्चं; तत्र वो छन्दरागो [N.391] पहातब्बो। किञ्च, भिक्खवे, अनिच्चं? रूपं, भिक्खवे, अनिच्चं; तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो। वेदना अनिच्चा...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनिच्चं; तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो। यं, भिक्खवे, अनिच्चं; तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो" ति॥ ●

१४०. पठमदुक्खसुत्तं

१५०. सावत्थिनिदानं। "यं, भिक्खवे, दुक्खं; तत्र वो छन्दो पहातब्बो...पे०...यं, भिक्खवे, दुक्खं; तत्र वो छन्दो पहातब्बो" ति॥ ●

१४१. दुतियदुक्खसुत्तं

१५१. सावत्थिनिदानं। "यं, भिक्खवे, दुक्खं; तत्र वो रागो पहातब्बो...पे०...यं, भिक्खवे, दुक्खं; तत्र वो रागो पहातब्बो" ति॥ ●

---

१३८. द्वितीय अनित्यसूत्र : : अनित्य में राग न रखो

१४८. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! जो अनित्य है उस में र ाग न रखो। ...पूर्ववत्... ॥ *(ऊपर के सूत्र की तरह इस का विस्तार कर लें।)* ●

१३९. तृतीय अनित्यसूत्र : : अनित्य से छन्दराग हटाओ

१४९. ...**श्रावस्ती में** ही...।"भिक्षुओ! जो अनित्य है उस की कामना नहीं करनी चाहिये। ...पूर्वसूत्रवत्... ॥ ●

१४०. प्रथम दुःखसूत्र : : दुःख की कामना का त्याग

१५०. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! जो दुःख है, उस की कामना त्याग दो... पूर्ववत्... ॥ ●

१४१. द्वितीय दुःखसूत्र : : दुःख में आसक्ति का त्याग

१५१. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! जो दुःख है उस में राग (आसक्ति) न रखो। ...पूर्ववत्... ॥ ●

१४२. ततियदुक्खसुत्तं

१५२. सावत्थिनिदानं। "यं, भिक्खवे, दुक्खं; तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो ...पे०...यं, भिक्खवे, दुक्खं; तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो" ति॥ •

१४३. पठमअनत्तसुत्तं

१५३. सावत्थिनिदानं। "यो, भिक्खवे, अनत्ता; तत्र वो छन्दो पहातब्बो। को च भिक्खवे, अनत्ता? रूपं, भिक्खवे, अनत्ता; तत्र वो छन्दो पहातब्बो। वेदना अनत्ता...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनत्ता; तत्र वो छन्दो पहातब्बो। यो, भिक्खवे, अनत्ता; तत्र वो छन्दो पहातब्बो" ति॥ •

१४४. दुतियअनत्तसुत्तं

[B.147, R.179] १५४. सावत्थिनिदानं। "यो, भिक्खवे, अनत्ता; तत्र वो रागो पहातब्बो। को च भिक्खवे, अनत्ता? रूपं, भिक्खवे, अनत्ता; तत्र वो रागो पहातब्बो। वेदना अनत्ता...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनत्ता; तत्र वो रागो पहातब्बो। यो, [N.392] भिक्खवे, अनत्ता; तत्र वो रागो पहातब्बो" ति॥ •

१४५. ततियअनत्तसुत्तं

१५५. सावत्थिनिदानं। "यो, भिक्खवे, अनत्ता; तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो। को च भिक्खवे, अनत्ता? रूपं, भिक्खवे, अनत्ता; तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो। वेदना

---

१४२. तृतीय दुःखसूत्र : :दुःख में कामना एवं आसक्ति का त्याग

१५२. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! जो दुःख है, उस में कामना एवं आसक्ति न रखो। ...पूर्ववत्... ॥ •

१४३. प्रथम अनात्मसूत्र : : अनात्म पदार्थों में कामना का त्याग

१५३. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! (संसार में) जो कुछ भी अनात्म पदार्थ हैं, उन की कामना का त्याग कर देना चाहिये। ...पूर्ववत्... ॥ •

१४४. द्वितीय अनात्मसूत्र : : अनात्म पदार्थों में आसक्ति का त्याग

१५४. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! यहाँ जो अनात्म पदार्थ हैं उन में आसक्ति का त्याग कर देना चाहिये। अनात्म पदार्थ क्या हैं? रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान। इन में साधक को राग (आसक्ति) नहीं रखना चाहिये। ...पूर्ववत्... ॥ •

१४५. तृतीय अनात्मसूत्र : : अनात्म में कामना एवं आसक्ति का त्याग

१५५. ...**श्रावस्ती में** ही...। "जो भी, भिक्षुओ! अनात्म पदार्थ हैं, उन में कामना एवं आसक्ति—दोनों का ही त्याग कर देना चाहिये। ...पूर्ववत्... ॥ •

अनत्ता... सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं अनत्ता; तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो। यो, भिक्खवे, अनत्ता; तत्र वो छन्दरागो पहातब्बो'' ति॥ •

१४६. निब्बिदाबहुलसुत्तं

१५६. सावत्थिनिदानं।''सद्धापब्बजितस्स, भिक्खवे, कुलपुत्तस्स अयमनुधम्मो होति—यं रूपे निब्बिदाबहुलो विहरेय्य। वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...सङ्खारेसु...विञ्ञाणे निब्बिदाबहुलो विहरेय्य। यो रूपे निब्बिदाबहुलो विहरन्तो, वेदनाय...सञ्ञाय... सङ्खारेसु...विञ्ञाणे निब्बिदाबहुलो विहरन्तो रूपं परिजानाति। वेदनं...सञ्ञं...सङ्खारे... विञ्ञाणं परिजानाति। सो रूपं परिजानं वेदनं परिजानं सञ्ञं परिजानं सङ्खारे परिजानं विञ्ञाणं परिजानं परिमुच्चति रूपम्हा, परिमुच्चति वेदना, परिमुच्चति सञ्ञाय, परिमुच्चति सङ्खारेहि, परिमुच्चति विञ्ञाणम्हा, परिमुच्चति जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि; 'परिमुच्चति दुक्खस्मा' ति वदामी'' ति॥ •

१४७. अनिच्चानुपस्सीसुत्तं

१५७. सावत्थिनिदानं।''सद्धापब्बजितस्स, भिक्खवे, कुलपुत्तस्स अयमनुधम्मो होति—यं रूपे अनिच्चानुपस्सी विहरेय्य। वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु...विञ्ञाणे अनिच्चानुपस्सी विहरेय्य। ...पे०...परिमुच्चति दुक्खस्मा ति वदामी'' ति॥ •

---

१४६. निर्वेदबहुलसूत्र : : वैराग्यपूर्वक साधना

१५६. ...**श्रावस्ती में** ही...। धर्म में श्रद्धा से प्रव्रजित हुए कुलपुत्र का यह धर्म (कर्तव्य) हो जाता है कि वह रूप में वैराग्ययुक्त होकर साधनारत रहे। वेदना, संज्ञा, संस्कारों तथा विज्ञान में वैराग्ययुक्त हो कर साधनारत रहे। इस प्रकार वैराग्ययुक्त साधना करते हुए वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान को जान लेता है। यह इन रूप आदि को जान कर मुक्त हो जाता है। जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास से मुक्त हो जाता है—ऐसी मेरी मान्यता है''॥ •

१४७. अनित्यानुपश्यीसूत्र : : पदार्थों में अनित्यबुद्धि से साधना

१५७. ...**श्रावस्ती में** ही...।''भिक्षुओ! धर्म में श्रद्धा से प्रव्रजित हुए कुलपुत्र का यह धर्म (कर्तव्य) है कि वह रूप के प्रति अनित्य बुद्धि रखता हुआ स्वसाधनारत रहे। वेदना के प्रति, संज्ञा के प्रति, संस्कार के प्रति, विज्ञान के प्रति अनित्यबुद्धि रखता हुआ स्वसाधनारत रहे। ...पूर्ववत्...वह दुःख से मुक्त हो जाता है—ऐसी मेरी मान्यता है''॥ •

१४८. दुक्खानुपस्सीसुत्तं

[N.393, B.148] १५८. सावत्थिनिदानं। ''सद्धापब्बजितस्स, भिक्खवे, कुलपुत्तस्स अयमनुधम्मो होति—यं रूपे दुक्खानुपस्सी विहरेय्य। वेदनाय...सञ्ञाय... सङ्खारेसु...विञ्ञाणे दुक्खानुपस्सी विहरेय्य...पे०...परिमुच्चति दुक्खस्मा ति वदामी'' [R.180] ति॥

•

१४९. अनत्तानुपस्सीसुत्तं

१५९. सावत्थिनिदानं।''सद्धापब्बजितस्स, भिक्खवे, कुलपुत्तस्स अयमनुधम्मो होति—यं रूपे अनत्तानुपस्सी विहरेय्य। वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु...विञ्ञाणे अनत्तानुपस्सी विहरेय्य। अनत्तानुपस्सी विहरन्तो वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु... विञ्ञाणे अनत्तानुपस्सी विहरन्तो रूपं परिजानाति। वेदनं...पे०...सञ्ञं...सङ्खारे... विञ्ञाणं परिजानाति। सो रूपं परिजानं वेदनं परिजानं सञ्ञं परिजानं सङ्खारे परिजानं विञ्ञाणं परिजानं परिमुच्चति रूपम्हा, परिमुच्चति वेदना, परिमुच्चति सञ्ञाय, परिमुच्चति सङ्खारेहि, परिमुच्चति विञ्ञाणम्हा, परिमुच्चति जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि; 'परिमुच्चति दुक्खस्मा' ति वदामी'' ति॥

•

कुक्कुळवग्गो चतुत्थो॥

---

१४८. दुःखानुपश्यीसूत्र : : पदार्थों में दुःखबुद्धि से साधना

१५८. ...**श्रावस्ती में** ही... ।''भिक्षुओ! धर्म में श्रद्धा से प्रव्रजित हुए कुलपुत्र का यह कर्तव्य है कि वह रूप में दुःखबुद्धि रखता हुआ स्वसाधना में लगा रहे। वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में दुःखबुद्धि रखता हुआ साधनारत रहे। इस तरह, वह रूप आदि को दुःखमय जान कर वह इन सब से छुटकारा (मुक्ति) पा जाता है। इस के फलस्वरूप वह जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास से भी छुटकारा पा जाता है। निष्कर्ष यह है कि वह सर्वविध दुःखों से मुक्त हो जाता है—ऐसी मेरी मान्यता है''॥

•

१४९. अनात्मानुपश्यीसूत्र : : पदार्थों में अनात्मबुद्धि से साधना

१५९. ...**श्रावस्ती में** ही... ।''भिक्षुओ! धर्म में श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित कुलपुत्र के लिये यह परम आवश्यक है कि वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान में अनात्मबुद्धि रखता हुआ साधनारत रहे। इस तरह वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान से मुक्ति पा जाता है। ...पूर्ववत्... । ऐसी मेरी मान्यता है''॥

•

कुकूलवर्ग चतुर्थ सम्पन्न॥

तस्सुद्दानं

कुक्कुळा तयो अनिच्चेन, दुक्खेन अपरे तयो।
अनत्तेन तयो वुत्ता, कुलपुत्तेन द्वे दुका ति॥ ●

—— ⁂ ——

इस कुकूलवर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची यह है—१. कुकूलसूत्र, २. प्रथम अनित्यसूत्र, ३. द्वितीय अनित्यसूत्र, ४. तृतीय अनित्यसूत्र, ५-६-७. तीन दुःखसूत्र, ८-९-१०. तीन अनात्मसूत्र, ११. निर्वेदबहुलसूत्र, १२. अनित्यानुपश्यीसूत्र, एवं १३. दुःखानुपश्यीसूत्र॥ ●

—— ⁂ ——

५. दिट्ठिवग्गो पञ्चमो

१५०. अज्झत्तसुत्तं

१६०. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं" ति?

[R.181] भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति रूपं उपादाय उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। वेदनाय [B.149, N.394] सति...पे०...सञ्ञाय इति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति विञ्ञाणं उपादाय उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय उप्पज्जेय्य अज्झत्तं सुखदुक्खं" ति?।

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...पे०...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

---

५. दृष्टिवर्ग

१५०. आध्यात्मिकसूत्र : : आध्यात्मिक सुख दुःख

१६०. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! यह आध्यात्मिक सुख दुःख किस के होने पर तथा किस का सहारा ले कर उत्पन्न होता है?"

(भिक्षु—) "भन्ते! हमारे धर्मज्ञान के मूल तो आप ही हैं...अतः आप ही इस प्रश्न पर प्रकाश डालें।"

(भगवान्—) "भिक्षुओ! रूप के होने पर, रूप का सहारा ले कर, वेदना के, संज्ञा के, संस्कारों के, विज्ञान के होने पर, विज्ञान का सहारा ले कर ये आध्यात्मिक सुख दुःख उत्पन्न होते हैं। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! यह रूप नित्य है या अनित्य?"

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय उप्पज्जेय्य अज्झत्तं सुखदुक्खं" ति ?।

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

१५१. एतंममसुत्तं

१६१. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सती" ति ?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स...पे०... [R.182] विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ?

"अनिच्चं, भन्ते" ...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता ति समनुपस्सेय्या ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? [N.395]

"अनिच्चं भन्ते"...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय—एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता ति समनुपस्सेय्या ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...ऐसा जानता हुआ वह साधक...अब आगे मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—यह समझ लेता है॥" ●

१५१. 'यह मेरा है'-सूत्र : : 'यह मेरा है'-ऐसी भावना क्यों ?

१६१. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! कोई साधक किस के होने पर या किस का सहारा ले कर ऐसा अभिनिवेश करता है—'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है'?" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने पर, रूप का सहारा ले कर कोई साधक रूप में ऐसा अभिनिवेश करता है—'यह मेरा है'...। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर विज्ञान का सहारा ले कर कोई साधक यह अभिनिवेश करता है—'यह मेरा है', 'यह मैं

१५२. सोअत्तासुत्तं

१६२. सावत्थिनिदानं। "किस्मि नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'सो अत्ता सो लोको, सो पेच्च भविस्सामि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो'" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'सो अत्ता सो लोको, सो पेच्च भविस्सामि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो' ति। वेदनाय...पे०...सञ्ञाय...सङ्खारेसु...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं [B.150] उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'सो अत्ता सो लोको, [R.183] सो पेच्च भविस्सामि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो' ति।

तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'सो अत्ता सो लोको, सो पेच्च भविस्सामि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है'? तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! यह रूप नित्य है या अनित्य। ...पूर्ववत्...।"

●

१५२. 'वह आत्मा'-सूत्र : : 'आत्मा ही लोक है'—ऐसी मिथ्यादृष्टि क्यों?

१६२. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने से, किस के उपादान से, किस के अभिनिवेश से साधक को ऐसी मिथ्या धारणा (दृष्टि) उत्पन्न होती है कि जो आत्मा है वही लोक है, अत: मैं मरणानन्तर भी नित्य, ध्रुव, शाश्वत एवं अविनाशी ही रहूँगा?" ...पूर्ववत्...।

"रूप के होने पर, रूप का सहारा ले कर, रूप में अभिनिवेश करने पर...वेदना के...संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के होने पर, विज्ञान का सहारा ले कर, विज्ञान में अभिनिवेश कर साधक को ऐसी मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'जो आत्मा है वही लोक

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"। [N.396]

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'सो अत्ता सो लोको, सो पेच्च भविस्सामि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

१५३. नो च मे सियासुत्तं

१६३. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती''' ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं [R.184] दिट्ठि उप्पज्जति—'नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती' ति। वेदनाय सति...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स, एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती' ति।

तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

है, अत: मैं मरणानन्तर भी नित्य, ध्रुव, शाश्वत एवं अविनाशी रहूँगा। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...॥ •

१५३. 'न च मे स्यात्'-सूत्र : : 'न मैं होता'-यह मिथ्या धारणा क्यों?

१६३. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने पर, किस का सहारा ले कर, किस का अभिनिवेश कर किसी साधक को यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'न मैं होता, न मेरा हो, न मैं होऊँगा, न मेरा होगा?''' ...पूर्ववत्...।

"रूप के होने पर, रूप का सहारा ले कर, रूप में अभिनिवेश कर साधक को यह

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

[N.397] "यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

१५४. मिच्छादिट्ठिसुत्तं

[B.151] १६४. सावत्थिनिदानं। "किस्मि नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स मिच्छादिट्ठि उप्पज्जती" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स मिच्छादिट्ठि उप्पज्जति। वेदनाय सति...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स मिच्छादिट्ठि उप्पज्जति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है—'न मैं होता, न मेरा हो, न मैं होऊँगा, न मेरा होगा'। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्... ॥ •

१५४. मिथ्यादृष्टिसूत्र : : मिथ्यादृष्टि क्यों उत्पन्न होती है?

१६४. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने पर, किस का सहारा ले कर, किस का अभिनिवेश करने पर साधक को यह मिथ्यादृष्टि बनती है?" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने पर, रूप का सहारा ले कर, रूप में अभिनिवेश करने से साधक को यह मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर...पूर्ववत्...यह मिथ्यादृष्टि होती है। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं...पे०...अपि नु तं अनुपादाय मिच्छादिट्ठि उप्पज्जेय्या" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति? [R.185]

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भंन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय मिच्छादिट्ठि उप्पज्जेय्या" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

१५५. सक्कायदिट्ठिसुत्तं

१६५. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, [N.398] किं अभिनिविस्स सक्कायदिट्ठि उप्पज्जती" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स सक्कायदिट्ठि उप्पज्जति। वेदनाय सति...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स सक्कायदिट्ठि उप्पज्जति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्... ॥ •

१५५. सत्कायदृष्टिसूत्र : : सत्कायदृष्टि क्यों होती है?

१६५. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने पर, किस का सहारा ले कर, किस में अभिनिवेश कर साधक को यह सत्कायदृष्टि (शरीर को शाश्वत मान कर उसी को आत्मा के रूप में समझ लेना) होती है?" ...पूर्ववत्...।

"रूप के होने पर, रूप का सहारा ले कर, रूप में अभिनिवेश करने पर ही साधक को यह सत्कायदृष्टि उत्पन्न होती है। वेदना के...संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के होने पर...यह सत्कायदृष्टि उत्पन्न होती है। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?"

"यं पनानिच्चं...पे०...अपि नु तं अनुपादाय सक्कायदिट्ठि उप्पज्जेय्या" ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं...पे०...अपि नु तं अनुपादाय सक्कायदिट्ठि उप्पज्जेय्या" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥

१५६. अत्तानुदिट्ठिसुत्तं

१६६. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स अत्तानुदिट्ठि उप्पज्जती" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स अत्तानुदिट्ठि उप्पज्जति। वेदनाय सति...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं [R.186] उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स अत्तानुदिट्ठि उप्पज्जति। तं किं मञ्ञथ, [B.152] भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं...पे०...अपि नु तं अनुपादाय अत्तानुदिट्ठि उप्पज्जेय्या" ति?

[N.399] "नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...॥

१५६. आत्मानुदृष्टिसूत्र : : आत्मानुदृष्टि क्यों होती है?

१६६. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! क्या होने पर, किस का सहारा ले कर, किस में अभिनिवेश करने से साधक को यह आत्मानुदृष्टि (आत्मा का अस्तित्व मानना) उद्भूत होती है?" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने पर, रूप का सहारा ले कर, रूप में अभिनिवेश कर साधक को यह आत्मानुदृष्टि उद्भूत होती है। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर, विज्ञान का सहारा ले कर, विज्ञान में अभिनिवेश कर साधक को यह आत्मानुदृष्टि उद्भूत होती है। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?"

"यं पनानिच्चं...पे०...अपि नु तं अनुपादाय अत्तानुदिट्ठि उप्पज्जेय्या" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

१५७. अभिनिवेससुत्तं

१६७. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स उप्पज्जन्ति संयोजनाभिनिवेसविनिबन्धा" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स उप्पज्जन्ति संयोजनाभिनिवेसविनिबन्धा। वेदनाय सति...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स उप्पज्जन्ति संयोजनाभिनिवेसविनिबन्धा। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं...पे०...अपि नु तं अनुपादाय उप्पज्जेय्युं संयोजनाभिनिवेसविनिबन्धा" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

१५८. दुतियअभिनिवेससुत्तं

१६८. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, [R.187] किं अभिनिविस्स उप्पज्जन्ति संयोजनाभिनिवेसविनिबन्धाज्झोसाना" ति?

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...॥ •

१५७. प्रथम अभिनिवेशसूत्र : : संयोजन क्यों होते हैं?

१६७. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने पर, किस का सहारा ले कर, किस में अभिनिवेश कर लेने पर ये संयोजन (बन्धन), अभिनिवेश (प्रवृत्ति) एवं विनिबन्धन (आसक्ति) उद्भूत होते हैं?" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने पर, रूप का सहारा ले कर, रूप में अभिनिवेश कर ये संयोजन, अभिनिवेश एवं विनिबन्धन उद्भूत होते हैं। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर...पूर्ववत्...। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...॥ •

१५८. द्वितीय अभिनिवेशसूत्र : : संयोजन क्यों होते हैं?

१६८. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! क्या होने पर...ये संयोजन आदि उद्भूत

[N.400] "भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स उप्पज्जन्ति संयोजनाभिनिवेसविनिबन्धाज्झोसाना। वेदनाय सति...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति... विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स उप्पज्जन्ति संयोजनाभिनिवेसविनिबन्धाज्झोसाना। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं...पे०...अपि नु तं अनुपादाय उप्पज्जेय्युं संयोजनाभिनिवेसविनिबन्धाज्झोसाना" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

१५९. आनन्दसुत्तं

[B.153] १६९. सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा...पे०...भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु, यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं" ति?

"तं किं मञ्ञसि, आनन्द, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

होते हैं?" ..."रूप के होने पर...वेदना के होने पर...संज्ञा के होने पर...संस्कारों के होने पर...विज्ञान के होने पर, विज्ञान का सहारा ले कर, विज्ञान में अभिनिवेश कर साधक के चित्त में ये संयोजन, अभिनिवेश एवं विनिबन्धन उद्भूत होते हैं। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...॥ •

१५९. आनन्दसूत्र : : सभी संस्कार अनित्य एवं दुःखमय हैं

१६९. ...**श्रावस्ती में** ही...। नब आयुष्मान् आनन्द भगवान् के सम्मुख...पूर्ववत्...यों बोले—"भन्ते! भगवान् मुझे ऐसा संक्षिप्त धर्मोपदेश करने का कष्ट करें, जिसे धारण कर मैं एकान्त में बैठ कर सावधानीपूर्वक इन्द्रियों पर संयम रखता हुआ साधना में लगा रह सकूँ।"

"तो क्या मानते हो, आनन्द! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं [N.401] मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"। [R.188]

"एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

दिट्ठिवग्गो पञ्चमो॥

तस्सुद्दानं

अज्झत्तिकं एतंमम, सोअत्ता नोचमेसिया।
मिच्छासक्कायत्तानु द्वे, अभिनिवेसा आनन्देना ति॥ •

उपरिपण्णासको समत्तो॥

"जो अनित्य है वह दुःखमय होता या सुखमय?"

"दुःखमय, भन्ते!"

"तब जो पदार्थ अनित्य है, दुःखमय है, विनाशी है, उस के विषय में यह कहना उचित होगा—'यह मेरा है', या 'यह मैं हूँ', या 'यह मेरी आत्मा है'?"

"ऐसा नहीं है, भन्ते!"

"वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"जो अनित्य है...पूर्ववत्...मेरी आत्मा है?"

"ऐसा नहीं है, भन्ते!" •

दृष्टिवर्ग पञ्चम समाप्त॥

इस दृष्टिवर्ग में ये सूत्र व्याख्यात हैं—१. आध्यात्मिकसूत्र, २. एतन्ममसूत्र, ३. एष आत्मासूत्र, ४. न च मे स्यात्-सूत्र, ५. मिथ्यादृष्टिसूत्र, ६. सत्कायसूत्र, ७. आत्मानुदृष्टिसूत्र, ८-९. प्रथम द्वितीय अभिनिवेशसूत्र एवं १०. आनन्दसूत्र॥ •

उपरिपञ्चाशत्क सम्पन्न॥

तस्स उपरिपण्णासकस्स वग्गुद्दानं

अन्तो धम्मकथिका विज्जा, कुक्कुळं दिट्ठिपञ्चमं।
ततियो पण्णासको वुत्तो, निपातो ति पवुच्चती ति॥

खन्धसंयुत्त समत्तं॥

इस उपरिपञ्चाशत्क में ये वर्ग व्याख्यात हुए हैं—१. अन्तवर्ग, २. धर्मकथिकवर्ग, ३. विद्यावर्ग, ४. कुकूलवर्ग एवं ५. दृष्टिवर्ग॥

स्कन्धसंयुक्त सम्पन्न॥

२३. राधसंयुत्तं

१. पठमो वग्गो

१. मारसुत्तं

१. सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा राधो येन भगवा [N.402, B.154, R.189] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच–

"'मारो मारो' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, मारो" ति?

"रूपे खो, राध, सति मारो वा अस्स मारेता वा यो वा पन मीयति। तस्मातिह त्वं, राध, रूपं मारो ति पस्स, मारेता ति पस्स, रोगो ति पस्स, गण्डो ति पस्स, सल्लं ति पस्स, अघं ति पस्स, अघभूतं ति पस्स। ये नं एवं पस्सन्ति ते सम्मा पस्सन्ति। वेदनाय सति...पे०...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति मारो वा अस्स मारेता वा यो वा पन मीयति। तस्मातिह त्वं, राध, विञ्ञाणं मारो ति पस्स, मारेता ति पस्स, मीयती ति पस्स, रोगो ति पस्स, गण्डो ति पस्स, सल्लं ति पस्स, अघं ति पस्स, अघभूतं ति पस्स। ये नं एवं पस्सन्ति ते सम्मा पस्सन्ती" ति।

---

२३. राधसंयुक्त

१. प्रथम वर्ग

१. मारसूत्र : : **मार क्या है?**

१. ...**श्रावस्ती में** ही...। तब आयुष्मान् राध जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर उन्हें अभिवादन प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् राध ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की–

"भन्ते! लोक में 'मार' 'मार'–ऐसा कहा जाता है, भन्ते! यह 'मार' क्या है?"

"राध! रूप (में आसक्ति) के होने पर 'मार' उद्भूत होता है। यही उस प्राणी को मारने वाला होता है, या वह प्राणी उस से मरने वाला होता है। अतः, राध! तुम रूप को ही मार समझो, मारने वाला समझो, या मरता है–ऐसा समझो। इसे रोग समझो, व्रण समझो, घाव समझो, पीड़ा समझो, पाप समझो। जो रूप को ऐसा समझते हैं वही रूप का यथार्थ समझते हैं। वेदना... संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर मार उद्भूत होता है। ...अतः, राध! तुम विज्ञान को ही मार समझो, मारने वाला समझो...पूर्ववत्...। जो विज्ञान को इस तरह जान लेते हैं वे ही इस विज्ञान का यथार्थ समझने वाले कहलाते हैं।"

"सम्मादस्सनं पन, भन्ते, किमत्थियं" ति?

"सम्मादस्सनं खो, राध, निब्बिदत्थं"।

"निब्बिदा पन, भन्ते, किमत्थिया" ति?

"निब्बिदा खो, राध, विरागत्था"।

"विरागो पन, भन्ते, किमत्थियो" ति?

"विरागो खो, राध, विमुत्तत्थो"।

"विमुत्ति पन, भन्ते, किमत्थिया" ति?

"विमुत्ति खो, राध, निब्बानत्था"।

"निब्बानं पन, भन्ते, किमत्थियं" ति?

"अच्चयासि, राध, पञ्हं, नासक्खि पञ्हस्स परियन्तं गहेतुं। निब्बानोगधं हि, [N.403] राध, ब्रह्मचरियं वुस्सति, निब्बानपरायनं निब्बानपरियोसानं" ति॥ ●

२. सत्तसुत्तं

२. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच— [R.190] "'सत्तो सत्तो' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, सत्तो ति वुच्चती" [B.155] ति?

"भन्ते! सम्यग्दृष्टि की देशना किसलिये की जाती है?"

"राध! सम्यग्दृष्टि की देशना लोक में अरुचि उत्पादन हेतु की गयी है।"

"भन्ते! यह अरुचि किसलिये उत्पन्न की जाती है?"

"राध! लोक के प्रति वैराग्य-उत्पाद के लिये।"

"भन्ते! यह वैराग्य क्यों उपदिष्ट किया जाता है?"

"राध! यह वैराग्योपदेश विमुक्ति के लिये किया जाता है।"

"भन्ते! यह विमुक्ति-उपदेश किसलिये?"

"राध! यह विमुक्ति-उपदेश निर्वाण की ओर प्रवृत्ति के लिये किया जाता है।"

"तो, भन्ते! इस निर्वाण का उपदेश किसलिये किया जाता है?"

"अब, राध! तुम प्रश्न की सीमा का उल्लङ्घन कर रहे हो। अरे! यह समस्त धर्मसाधना निर्वाणप्राप्ति पर पूर्ण मान ली गयी। निर्वाणप्राप्ति ही साधक की धर्मसाधना का पर्यवसान (अन्त) है"॥ ●

२. सत्तसूत्र : : आसक्ति कैसे होती है?

२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे आयुष्मान् राध ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! लोक में 'सत्त' 'सत्त' ऐसा बहुत कहा जाता है। भन्ते! यह सत्त्व क्या है?"

"रूपे खो, राध, यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा तत्र सत्तो तत्र विसत्तो, तस्मा सत्तो ति वुच्चति। वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु...विञ्ञाणे यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा तत्र सत्तो तत्र विसत्तो, तस्मा सत्तो ति वुच्चति।

"सेय्यथापि, राध, कुमारका वा कुमारिकायो वा पंस्वागारकेहि कीळन्ति। यावकीवञ्च तेसु पंस्वागारकेसु अविगतरागा होन्ति अविगतच्छन्दा अविगतपेमा अविगतपिपासा अविगतपरिळाहा अविगततण्हा ताव तानि पंस्वागारकानि अल्लीयन्ति केळायन्ति धनायन्ति ममायन्ति। यतो च खो, राध, कुमारका वा कुमारिकायो वा तेसु पंस्वागारकेसु विगतरागा होन्ति विगतच्छन्दा विगतपेमा विगतपिपासा विगतपरिळाहा विगततण्हा, अथ खो तानि पंस्वागारकानि हत्थेहि च पादेहि च विकिरन्ति विधमन्ति विद्धंसेन्ति विकीळनियं करोन्ति। एवमेव खो, राध, तुम्हे पि रूपं विकिरथ विधमथ विद्धंसेथ विकीळनियं करोथ तण्हाक्खयाय पटिपज्जथ। वेदनं विकिरथ विधमथ विद्धंसेथ विकीळनियं करोथ तण्हाक्खयाय पटिपज्जथ। सञ्ञं...सङ्खारे विकिरथ विधमथ विद्धंसेथ विकीळनियं करोथ तण्हाक्खयाय पटिपज्जथ। विञ्ञाणं विकिरथ विधमथ विद्धंसेथ विकीळनियं करोथ तण्हाक्खयाय पटिपज्जथ। तण्हाक्खयो हि, राध, निब्बानं" ति॥ •

३. भवनेत्तिसुत्तं

३. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच—

"राध! रूप में कामना, राग, अभिनन्दन, अथवा तृष्णा में प्राणी की आसक्ति होती रहती है, वैराग्य होता रहता है, अतः प्राणी 'सक्त' कहलाता है। वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में कामना, राग...पूर्ववत्...प्राणी 'सक्त' कहलाता है।

"राध! जैसे बचपन में बालक मट्टी के घरोंदे बना कर खेलते हैं, जब तक उन का उन मट्टी के घरोंदों में मन लगा रहता है, तब तक उन से वे खेलते रहते हैं, उन को विविध रूपों में बढ़ाते-बनाते रहते हैं, उन में ममत्व बनाये रखते हैं; परन्तु जब उन का मन उन से विरक्त (वितृष्ण) हो जाता है तो वे उन मट्टी के घरोंदों को अपने ही हाथों से, पैरों से विनष्ट कर धूलिसात् कर देते हैं। इसी तरह, राध! तुम भी इन रूपों को विखेर दो, इधर उधर कर दो, नष्ट कर दो, न खेलने योग्य (अनुपभोग्य) बना दो, तृष्णाक्षय के योग्य कर दो। इसी तरह वेदना को, संज्ञा को, संस्कारों को, विज्ञान को विखेर दो...तृष्णाक्षय के योग्य कर दो। क्यों कि, राध! यह तृष्णाक्षय ही वस्तुतः 'निर्वाण' कहलाता है॥" •

३. भवनेत्रीसूत्र : : भवसूत्र (संसार की डोर)

३. ...**श्रावस्ती में** ही...। एक ओर बैठे आयुष्मान् राध ने भगवान् से यों पूछा—

'''भवनेत्तिनिरोधो भवनेत्तिनिरोधो' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमा नु खो, भन्ते, भवनेत्ति, कतमो भवनेत्तिनिरोधो'' ति ?

[N.404, R.191] ''रूपे खो, राध, यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा ये उपयुपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया—अयं वुच्चति भवनेत्ति। तेसं निरोधो भवनेत्ति-[B.156] निरोधो। वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु...विञ्ञाणे यो छन्दो...पे०... अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया—अयं वुच्चति भवनेत्ति। तेसं निरोधो भवनेत्तिनिरोधो'' ति॥

४. परिञ्ञेय्यसुत्तं

४. सावत्थिनिदानं। आयस्मा राधो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राधं भगवा एतदवोच—''परिञ्ञेय्ये च, राध, धम्मे देसेस्सामि परिञ्ञं च परिञ्ञाताविं पुग्गलं च। तं सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी'' ति।

''एवं, भन्ते'' ति खो आयस्मा राधो भगवतो पच्चस्सोसि।

भगवा एतदवोच—''कतमे च, राध, परिञ्ञेय्या धम्मा? रूपं खो, राध, परिञ्ञेय्यो धम्मो, वेदना परिञ्ञेय्यो धम्मो, सञ्ञा परिञ्ञेय्यो धम्मो, सङ्खारा परिञ्ञेय्यो धम्मो, विञ्ञाणं परिञ्ञेय्यो धम्मो। इमे वुच्चन्ति, राध, परिञ्ञेय्या धम्मा।

''भन्ते! धर्मोपदेशक 'भवनेत्री का निरोध करना चाहिये', 'भवनेत्री का निरोध करना चाहिये'—ऐसा कहते रहते हैं। भन्ते! यहाँ यह 'भवनेत्री' क्या है? तथा इस का निरोध कैसे होता है?''

''राध! यहाँ रूप में जो छन्द, राग, अभिनन्दन या तृष्णा है, ये आसक्ति एवं परिग्रह तथा चित्त के अधिष्ठान, अभिनिवेश तथा अनुशय हैं—यही 'भवनेत्री' (संसार को बाँधने के लिये रस्सी) कहलाती है। उस का निरोध (त्याग) ही 'भवनेत्रीनिरोध' है। वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में जो छन्द...पूर्ववत्...भवनेत्रीनिरोध है॥'' •

४. परिज्ञेयसूत्र : : परिज्ञेय, परिज्ञाता एवं परिज्ञा

४. ...**श्रावस्ती में** ही...। आयुष्मान् राध जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् राध को भगवान् ने यह धर्मोपदेश किया—''राध! मैं तुम्हें परिज्ञेय धर्मों के विषय में बताऊँगा, परिज्ञा के विषय में भी तथा परिज्ञाता पुद्गल के विषय में भी बताऊँगा। तूँ उसे सावधानीपूर्वक सुन। मैं बताता हूँ।

''अच्छा, भन्ते'' कह कर आयुष्मान् राध ने स्वीकार किया। भगवान् बोले—''राध! वे परिज्ञेय (भली भाँति जानने योग्य) धर्म कौन से हैं? राध! रूप परिज्ञेय धर्म है,

कतमा च, राध, परिञ्ञा? यो खो, राध, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो—अयं वुच्चति, राध, परिञ्ञा। कतमो च, राध, परिञ्ञातावी पुग्गलो? 'अरहा' तिस्स वचनीयं। य्वायं आयस्मा एवंनामो एवंगोत्तो—अयं वुच्चति, राध, परिञ्ञातावी पुग्गलो'' ति॥ ●

५. पठमसमणसुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राधं भगवा एतदवोच—''पञ्चिमे, राध, उपादानक्खन्धा। कतमे पञ्च? रूपुपादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। ये हि केचि, राध, समणा वा ब्राह्मणा वा इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं अस्सादं च आदीनवं च [R.192] निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानन्ति। न मे ते, राध, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु वा समणसम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मणसम्मता, न च पन ते आयस्मन्तो सामञ्ञत्थं [N.405] वा ब्रह्मञ्ञत्थं वा दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति। ये च खो केचि, राध, समणा वा ब्राह्मणा वा इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानन्ति; न खो मे, राध, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु चेव समणसम्मता ब्राह्मणेसु च ब्राह्मणसम्मता, ते च पनायस्मन्तो [B.157]

वेदना...संज्ञा... संस्कार...विज्ञान परिज्ञेय धर्म हैं। अथ च, राध! यह 'परिज्ञा' (स्थायी ज्ञान) क्या है? राध! यह रागक्षय, दोषक्षय एवं मोहक्ष? ही 'परिज्ञा' है। तथा, राध! 'परिज्ञाता पुद्गल' कौन कहलाता है? अर्हत् (ज्ञानी) ही 'परिज्ञाता पुद्गल' है। जो कि इस नाम वाला या इस गोत्र वाला (भिन्न भिन्न नाम वाला) हो सकता है। राध यह 'परिज्ञाता पुद्गल' कहलाता है''॥ ●

५. श्रमणसूत्र : : उपादानस्कन्धों का ज्ञाता श्रमण

५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे आयुष्मान् राध को भगवान् ने यह उपदेश किया—''राध! ये पाँच उपादानस्कन्ध होते हैं—कौन से पाँच? १. रूपोपादानस्कन्ध, २. वेदनोपादानस्कन्ध, ३. संज्ञोपादानस्कन्ध, ४. संस्कारोपादानस्कन्ध एवं ५. विज्ञानोपादान-स्कन्ध। राध! जो भी श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच उपादानस्कन्धों के आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण के विषय में यथार्थत: नहीं जानते; राध! उन श्रमण ब्राह्मणों को मैं वास्तविक श्रमण या ब्राह्मण नहीं मानता, क्यों कि वे न श्रमणों में श्रमण कहलाने योग्य हैं, न ब्राह्मणों में ब्राह्मण कहलाने योग्य। न वे इस जन्म में श्रामण्य या ब्राह्मण्य का स्वयं साक्षात्कार कर भली भाँति साधना के ही अधिकारी हैं। (इसके विपरीत) जो श्रमण ब्राह्मण इन उपर्युक्त पाँचों स्कन्धों के आस्वाद, आदीनव या नि:सरण के विषय में भली भाँति जान चुके हैं,

सामञ्ञत्थं वा ब्रह्मञ्ञत्थं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥ •

६. दुतियसमणसुत्तं

६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राधं भगवा एतदवोच— ''पञ्चिमे, राध, उपादानक्खन्धा। कतमे पञ्च? रूपुपादानक्खन्धो...पे०...विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। ये हि केचि, राध, समणा वा ब्राह्मणा वा इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानन्ति ...पे०...सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥ •

७. सोतापन्नसुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राधं भगवा एतदवोच— ''पञ्चिमे, राध, उपादानक्खन्धा। कतमे पञ्च? रूपुपादानक्खन्धो...पे०...विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। यतो खो, राध, अरियसावको इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं समुदयं च [R.193] अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानन्ति—अयं वुच्चति, राध, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो'' ति॥

८. अरहन्तसुत्तं

८. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राधं भगवा एतदवोच— ''पञ्चिमे, राध, उपादानक्खन्धा। कतमे पञ्च? रूपुपादानक्खन्धो...पे०...विञ्ञाणु-

---

वे ही मेरी दृष्टि में वास्तविक श्रमण ब्राह्मण हैं, तथा वे इसी जन्म में श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य का स्वयं साक्षात्कार कर धर्मसाधना के अधिकारी हैं''॥ •

६. द्वितीय श्रमणब्राह्मणसूत्र : : उपादानस्कन्धों का ज्ञाता ही श्रमण

६. ...**श्रावस्ती में** ही...।...एक ओर बैठे आयुष्मान् राध को भगवान् यों बोले— ''राध! ये पाँच उपादानस्कन्ध हैं...पूर्ववत्...। राध! जो श्रमण ब्राह्मण इन पाँच उपादानस्कन्धों के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण को यथार्थत: नहीं जानते हैं...पूर्ववत्...धर्मसाधना के अधिकारी हैं''॥ •

७. स्रोतआपन्नसूत्र : : स्रोतआपन्न निश्चय ही ज्ञानी बनेगा

७. ...**श्रावस्ती में** ही...।...एक ओर बैठे आयुष्मान् राध को भगवान् यों बोले— ''राध! ये पाँच उपादानस्कन्ध हैं...पूर्ववत्...। राध! जो आर्यश्रावक इन पाँच उपादानस्कन्धों के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण को यथार्थत: जानता है, राध! ऐसा आर्यश्रावक स्रोतआपन्न, धर्म से च्युत न होने वाला, निर्वाण मार्ग से इधर उधर न भटकने वाला, तथा निश्चयपूर्वक परम ज्ञान को प्राप्त करने वाला होता है''॥ •

पादानक्खन्धो। यतो खो, राध, भिक्खु इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा अनुपादा- [N.406] विमुत्तो होति—अयं वुच्चति भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहित-भारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभवसंयोजनो सम्मदञ्ञाविमुत्तो'' ति॥ ●

९. पठमछन्दरागसुत्तं

९. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राधं भगवा एतदवोच— ''रूपे खो, राध, यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा, तं पजहथ। एवं तं रूपं पहीनं भविस्सति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं। वेदनाय यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा, तं पजहथ। एवं सा वेदना पहीना भविस्सति [B.158] उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। सञ्ञाय...सङ्खारेसु यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा, तं पजहथ। एवं ते सङ्खारा पहीना भविस्सन्ति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। विञ्ञाणे यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा, तं पजहथ। एवं तं विञ्ञाणं पहीनं भविस्सति [R.194] ...पे०...अनुप्पादधम्मं'' ति॥ ●

१०. दुतियछन्दरागसुत्तं

१०. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राधं भगवा एतदवोच—

---

८. अर्हत्सूत्र : : स्कन्धों के यथार्थ ज्ञान से अर्हत्त्वप्राप्ति

८. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे आयुष्मान् राध को भगवान् ने यह उपदेश किया—''राध! ये पाँच उपादानस्कन्ध हैं...पूर्ववत्...। जो साधक भिक्षु इन पाँच उपादानस्कन्धों के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः जानता हुआ उपादानरहित हो कर विमुक्त हो जाता है, ऐसा साधक ही अर्हत्, क्षीणाश्रव, कृत-करणीय, भारमुक्त, निर्वाणप्राप्त एवं भवबन्धन से विमुक्त एवं परम ज्ञान प्राप्त कर विमुक्त हो जाता है''॥ ●

९. प्रथम छन्दरागसूत्र : : रूप की कामना एवं आसक्ति का त्याग

९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे आयुष्मान् राध को भगवान् यों बोले— ''राध! रूप के छन्द राग अभिनन्दन एवं तृष्णा का परित्याग कर देना चाहिये। इस तरह वह रूप मूलतः नष्ट, शिर कटे ताड़ वृक्ष के समान, विनाशप्राप्त, भविष्य में पूर्णतः अनुत्पत्ति के योग्य हो जायगा। वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में उत्पन्न छन्द राग अभिनन्दन एवं तृष्णा का परित्याग कर...पूर्ववत्...पूर्णतः अनुत्पत्ति के योग्य हो जायगा''॥ ●

"रूपे खो, राध, यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा ये उपयुपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया, ते पजहथ। एवं तं रूपं पहीनं भविस्सति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं। वेदनाय यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा ये उपयुपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया, ते पजहथ। एवं सा वेदना पहीना भविस्सति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। सञ्ञाय...सङ्खारेसु यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा ये उपयुपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया, ते पजहथ। एवं ते सङ्खारा पहीना भविस्सन्ति उच्छिन्नमूला [N.407] तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। विञ्ञाणे यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा ये उपयुपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया, ते पजहथ। एवं तं विञ्ञाणं पहीनं भविस्सति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं" ति॥ •

पठमो वग्गो॥

तस्सुद्दानं

मारो सत्तो भवनेत्ति, परिञ्ञेय्या समणा दुवे।
सोतापन्नो अरहा च, छन्दरागापरे दुवे ति॥ •

---

१०. द्वितीय छन्दरागसूत्र : : रूप के छन्द राग का त्याग

१०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् यों बोले— "राध! रूप में छन्द राग, अभिनन्दन तृष्णा, आसक्ति परिग्रह तथा चित्त के अधिष्ठान, अभिनिवेश एवं अनुशय का त्याग कर देना चाहिये। इस तरह वह रूप मूलतः विनष्ट ...पूर्ववत्...अनुत्पत्ति के योग्य हो जायगा। इसी तरह वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान में छन्द राग...पूर्ववत्...सर्वथा अनुत्पत्ति योग्य हो जायँगें"॥ •

प्रथम वर्ग सम्पन्न॥

इस वर्ग में ये सूत्र व्याख्यात हैं—१. मारसूत्र, २. शक्तसूत्र, ३. भवनेत्रीसूत्र, ४. परिज्ञेयसूत्र, ५-६. श्रमणब्राह्मणसूत्र, ७. स्रोतआपन्नसूत्र, ८. अर्हत्सूत्र, ९-१०. छन्दराग-सूत्र॥ •

२. दुतियो वग्गो

११. मारसुत्तं

११. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो [B.159, R.195] भगवन्तं एतदवोच—"'मारो मारो' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमो नु खो, भन्ते, मारो" ति?

"रूपं खो, राध, मारो, वेदना मारो, सञ्ञा मारो, सङ्खारा मारो, विञ्ञाणं मारो। एवं पस्सं, राध, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति॥ •

१२. मारधम्मसुत्तं

१२. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच—"'मारधम्मो मारधम्मो' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमो नु खो, भन्ते, मारधम्मो" ति?

"रूपं खो, राध, मारधम्मो, वेदना मारधम्मो, सञ्ञा मारधम्मो, सङ्खारा मारधम्मो, विञ्ञाणं मारधम्मो। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

द्वितीय वर्ग

११. मारसूत्र : : 'मार' क्या है?

११. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे आयुष्मान् राध ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! यह जो लोग 'मार' 'मार'—ऐसा कहते हैं, यह 'मार' क्या है?"

"राध! यहाँ रूप ही 'मार' है, वेदना ही...संज्ञा ही...संस्कार ही...विज्ञान ही मार है। ऐसा जानता हुआ, ऐसा देखता हुआ विद्वान् आर्यश्रावक रूप में अपनी अरुचि दिखाता है, वेदना में...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान में अपनी अरुचि दिखाता है। तब उसे, उस अरुचि के कारण वैराग्य हो जाता है। वैराग्य होने से वह चित्तविकारों से छुटकारा पा जाता है। यह छुटकारा पाने से वह 'मैं विमुक्त हो गया'—ऐसा ज्ञानवान् हो जाता है। तब वह समझ जाता है कि मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो चुकी, मैं कृतकार्य हो चुका, अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है॥" •

१२. मारधर्मसूत्र : : यह 'मारधर्म' क्या है?

१२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे आयुष्मान् राध ने भगवान् से यह प्रश्न किया—"भन्ते! लोग (परस्पर संवाद में) 'मारधर्म' 'मारधर्म'—ऐसा बोलते रहते हैं, भन्ते! यह 'मारधर्म' क्या है?"

१३. अनिच्चसुत्तं

[N.408] १३. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच—"'अनिच्चं अनिच्चं' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमं नु खो, भन्ते, अनिच्चं" ति?

"रूपं खो, राध, अनिच्चं, वेदना अनिच्चा, सञ्ञा अनिच्चा, सङ्खारा अनिच्चा, विञ्ञाणं अनिच्चं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताय ति पजानाती" ति॥ ●

१४. अनिच्चधम्मसुत्तं

१४. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच—"'अनिच्चधम्मो अनिच्चधम्मो' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमो नु खो, भन्ते, अनिच्चधम्मो" ति?

"रूपं खो, राध, अनिच्चधम्मो, वेदना अनिच्चधम्मो, सञ्ञा अनिच्चधम्मो, [R.196] सङ्खारा अनिच्चधम्मो, विञ्ञाणं अनिच्चधम्मो। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताय ति पजानाती" ति॥ ●

१५. दुक्खसुत्तं

[B.160] १५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच—"'दुक्खं दुक्खं' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमं नु खो, भन्ते, दुक्खं" ति?

"राध! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान ही 'मारधर्म' है। ऐसा जानता हुआ...पूर्ववत्...अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है—ऐसा जान जाता है॥" ●

१३. अनित्यसूत्र : : 'अनित्य' क्या है?

१३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भन्ते! अनित्य, अनित्य—ऐसा लोग कहते रहते हैं, भन्ते! यह 'अनित्य' क्या है?"

"राध! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान 'अनित्य' है। ऐसा जानता हुआ... पूर्ववत्...अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं—ऐसा जान जाता है॥" ●

१४. अनित्यधर्मसूत्र : : 'अनित्यधर्म' क्या है?

१४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भन्ते! 'अनित्यधर्म', 'अनित्यधर्म'—ऐसा लोक में कहा जाता है, भन्ते! यह 'अनित्यधर्म' क्या है?"

"राध! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान 'अनित्यधर्म' है। ...पूर्ववत्...ऐसा जान जाता है॥" ●

१५. दुःखसूत्र : : यह 'दुःख' क्या है?

१५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भन्ते! लोक में 'दुःख', 'दुःख'—ऐसा बोला जाता है, भन्ते! यह 'दुःख' क्या है?"

"रूपं खो, राध, दुक्खं, वेदना दुक्खा, सञ्ञा दुक्खा, सङ्खारा दुक्खा, विञ्ञाणं दुक्खं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

१६. दुक्खधम्मसुत्तं

१६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच—"'दुक्खधम्मो दुक्खधम्मो' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमो नु खो, भन्ते, दुक्खधम्मो" ति?

"रूपं खो, राध, दुक्खधम्मो, वेदना दुक्खधम्मो, सञ्ञा दुक्खधम्मो, [R.197] सङ्खारा दुक्खधम्मो, विञ्ञाणं दुक्खधम्मो। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

१७. अनत्तसुत्तं

१७. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं [N.409] एतदवोच—"'अनत्ता अनत्ता' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमो नु खो, भन्ते, अनत्ता" ति?

"रूपं खो, राध, अनत्ता, वेदना अनत्ता, सञ्ञा अनत्ता, सङ्खारा अनत्ता, विञ्ञाणं अनत्ता। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

१८. अनत्तधम्मसुत्तं

१८. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच—"'अनत्तधम्मो अनत्तधम्मो' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमो नु खो, भन्ते, अनत्तधम्मो" ति?

"रूपं खो, राध, अनत्तधम्मो, वेदना अनत्तधम्मो, सञ्ञा अनत्तधम्मो, सङ्खारा अनत्तधम्मो, विञ्ञाणं अनत्तधम्मो। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

"राध! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान 'दु:ख' है। ...पूर्ववत्...॥ ●

१६. दु:खधर्मसूत्र : : यह 'दु:खधर्म' क्या है?

१६. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भन्ते! यह 'दु:खधर्म' क्या है?"

"राध! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान—ये 'दु:खधर्म' हैं। ...पूर्ववत्...॥ ●

१७. अनात्मसूत्र : : यह 'अनात्म' क्या होता है?

१७. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भन्ते! यह 'अनात्म' क्या है?"

"राध! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान—ये 'अनात्म' हैं। ...पूर्ववत्...॥ ●

१८. अनात्मधर्मसूत्र : : यह 'अनात्मधर्म' क्या है?

१८. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भन्ते! यह 'अनात्मधर्म' क्या है?"

१९. खयधम्मसुत्तं

१९. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच—"'खयधम्मो खयधम्मो' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमो नु खो, भन्ते, खयधम्मो" ति?

[B.161] "रूपं खो, राध, खयधम्मो, वेदना खयधम्मो, सञ्ञा खयधम्मो, सङ्खारा खयधम्मो, विञ्ञाणं खयधम्मो। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥

२०. वयधम्मसुत्तं

२०. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच—"'वयधम्मो वयधम्मो' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमो नु खो, भन्ते, वयधम्मो" ति?

"रूपं खो, राध, वयधम्मो, वेदना वयधम्मो, सञ्ञा वयधम्मो, सङ्खारा वयधम्मो, विञ्ञाणं वयधम्मो। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

२१. समुदयधम्मसुत्तं

[N.410] २१. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच—"'समुदयधम्मो समुदयधम्मो' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमो नु खो, भन्ते, समुदयधम्मो" ति?

"रूपं खो, राध, समुदयधम्मो, वेदना समुदयधम्मो, सञ्ञा समुदयधम्मो, सङ्खारा समुदयधम्मो, विञ्ञाणं समुदयधम्मो। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

"राध! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान—ये सभी 'अनात्मधर्म' वाले हैं। ...पूर्ववत्...॥ ●

१९. क्षयधर्मसूत्र : : यह 'क्षयधर्म' क्या है?

१९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भन्ते! यह 'क्षयधर्म' क्या है?"

"राध! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान—ये सभी 'क्षयधर्मा' हैं। ...पूर्ववत्...॥

२०. व्ययधर्मसूत्र : : यह 'व्यय (नाश) धर्म' क्या है?

२०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भन्ते! यह 'व्ययधर्म' क्या है?"

"राध! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान—ये सभी 'व्ययधर्म' वाले हैं। ...पूर्ववत्...॥ ●

२१. समुदयधर्मसूत्र : : यह 'समुदय (उत्पाद) धर्म' क्या है?

२१. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भन्ते! यह 'समुदयधर्म' क्या है?"

"राध! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान—ये सभी 'समुदयधर्म' वाले कहलाते हैं। ...पूर्ववत्...॥ ●

२२. निरोधधम्मसुत्तं

२२. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो एतदवोच— "'निरोधधम्मो निरोधधम्मो' ति, भन्ते, वुच्चति। कतमो नु खो, भन्ते, निरोध- [R.198] धम्मो" ति?

"रूपं खो, राध, निरोधधम्मो, वेदना निरोधधम्मो, सञ्ञा निरोधधम्मो, सङ्खारा निरोधधम्मो, विञ्ञाणं निरोधधम्मो। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ ●

दुतियो वग्गो।

तस्सुद्दानं

मारो च मारधम्मो च, अनिच्चेन अपरे दुवे।
दुक्खेन च दुवे वुत्तो, अनत्तेन तथेव च।
खयवयसमुदयं, निरोधधम्मेन द्वादसा ति॥ ●

---

२२. निरोधधर्मसूत्र : : यह 'निरोधधर्म' क्या है?

२२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भन्ते! यह 'निरोधधर्म' क्या है?"

"राध! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान—ये सभी 'निरोधधर्म' वाले हैं। (इनका निरोध किया जा सकता है।) ...पूर्ववत्... ॥ ●

द्वितीयवर्ग सम्पन्न॥

इस वर्ग में ये सूत्र व्याख्यात हुए हैं—१. मारसूत्र, २. मारधर्मसूत्र, ३. अनित्यसूत्र, ४. अनित्यधर्मसूत्र, ५. दुःखसूत्र, ६. दुःखधर्मसूत्र, ७. अनात्मसूत्र, ८. अनात्मधर्मसूत्र, ९. क्षयधर्मसूत्र, १०. व्ययधर्मसूत्र, ११. समुदयधर्मसूत्र, १२. निरोधधर्मसूत्र॥ ●

३. ततियो आयाचनवग्गो

२३-३३. मारादिसुत्तएकादसकं

[B.162] २३. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच—"साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं" ति ?

"यो खो, राध, मारो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। को च, राध, मारो ? रूपं खो, राध, मारो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो [N.411] पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। वेदना मारो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०... सञ्ञा मारो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०...सङ्खारा मारो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०... विञ्ञाणं मारो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०...यो खो, राध, मारो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो" ति॥ •

२४. यो खो, राध, मारधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो...पे०...। •

[R.199] २५. यं खो, राध, अनिच्चं...पे०...। •

२६. यो खो, राध, अनिच्चधम्मो...पे०...। •

तृतीय वर्ग

२३-३३. मार आदि सूत्र (एकादशक): : मार के प्रति कामना का त्याग

२३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे आयुष्मान् राध ने भगवान् से अपनी यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! यह मेरे हित में उचित ही होगा कि यदि आप मुझ को अपने संक्षिप्त धर्म का ऐसा उपदेश करें जिसके सहारे, मैं एकान्त में बैठ कर सावधानीपूर्वक इन्द्रियसंयम के साथ धर्मसाधना में रत रह सकूँ॥"

"राध! तुम्हें मार में कामना का परित्याग कर देना चाहिये, राग को छोड़ देना चाहिये, छन्दराग का त्याग कर देना चाहिये। राध! यह 'मार' क्या है ? राध! यह रूप 'मार' है, वहाँ तुम्हें कामना, राग एवं छन्दराग का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान 'मार' है...पूर्ववत्...छन्दराग का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये"॥ •

२४. "राध! यह जो **मारधर्म** है उस में कामना, राग एवं छन्दराग का परित्याग कर देना चाहिये"॥ •

२५. "राध! यह जो **अनित्य** है उस में कामना का...परित्याग कर देना चाहिये"॥ •

२६. "राध! यह जो **अनित्यधर्म** है उस में कामना का...परित्याग कर देना चाहिये"॥ •

२७. यं खो, राध, दुक्खं...पे०...। •

२८. यो खो, राध, दुक्खधम्मो...पे०...। •

२९. यो खो, राध, अनत्ता...पे०...। •

३०. यो खो, राध, अनत्तधम्मो...पे०...। [B.163] •

३१. यो खो, राध, खयधम्मो...पे०...। •

३२. यो खो, राध, वयधम्मो...पे०...। •

३३. यो खो, राध, समुदयधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो...पे०...। •

३४. निरोधधम्मसुत्तं

३४. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राधो भगवन्तं एतदवोच— ''साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं'' ति?

''यो खो, राध, निरोधधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। को च, राध, निरोधधम्मो? रूपं खो, राध, निरोधधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०...वेदना निरोधधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०...सञ्ञा निरोधधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०...सङ्खारा निरोधधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०... विञ्ञाणं निरोधधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०...यो खो, राध, निरोध- [N.412] धम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो'' ति॥ •

आयाचनवग्गो ततियो॥

---

२७. ''राध! यह जो **दुःख** है उस में कामना का...परित्याग कर देना चाहिये''॥ •

२८. ''राध! यह जो **दुःखधर्म** है उस में कामना का...परित्याग कर देना चाहिये''॥ •

२९. ''राध! यह जो **अनात्मा** है उस में कामना का...परित्याग कर देना चाहिये''॥ •

३०. ''राध! यह जो **अनात्मधर्म** है उस में कामना का...परित्याग कर देना चाहिये''॥

३१. ''राध! यह जो **क्षयधर्म** है उस में कामना का...परित्याग कर देना चाहिये''॥ •

३२. ''राध! यह जो **व्ययधर्म** है उस में कामना का...परित्याग कर देना चाहिये''॥ •

३३. ''राध! यह जो **समुदयधर्म** है उस में कामना का...परित्याग कर देना चाहिये''॥

३४. निरोधधर्मसूत्र : : निरोधधर्मों के प्रति छन्दराग का त्याग

३४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे आयुष्मान् राध ने अपनी जिज्ञासा भगवान् से यों प्रकट की—''अच्छा हो, भन्ते! ...पूर्ववत्...साधना में रत रह सकूँ।''

भगवान् बोले—''राध! यह जो निरोधधर्म है, उस में तुझे कामना का त्याग करना

तस्सुद्दानं

[R.200] मारो च मारधम्मो च, अनिच्चेन अपरे दुवे।
दुक्खेन च दुवे वुत्ता, अनत्तेन तथेव च।
खयवयसमुदयं, निरोधधम्मेन द्वादसा ति॥

चाहिये। ...। यह निरोधधर्म क्या है? रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान निरोधधर्म है, उस में तुम्हें कामना का परित्याग कर देना चाहिये। ...॥

तृतीय आयाचनवर्ग सम्पन्न॥

इस आयाचनवर्ग में इन अधोलिखित सूत्रों का व्याख्यान हुआ है—१. मारसूत्र, २. मारधर्मसूत्र, ३. अनित्यसूत्र, ४. अनित्यधर्मसूत्र, ५. दुःखसूत्र, ६. दुःखधर्मसूत्र, ७. अनात्मसूत्र, ८. अनात्मधर्मसूत्र, ९. क्षयधर्मसूत्र, १०. व्ययधर्मसूत्र, ११. समुदयधर्मसूत्र एवं १२. निरोधधर्मसूत्र॥

४. उपनिसिन्नवग्गो चतुत्थो

३५-४५. मारादिसुत्तएकादसकं

३५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राधं भगवा [B.164] एतदवोच—"यो खो, राध, मारो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। को च, राध, मारो? रूपं खो, राध, मारो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो... पे०...विञ्ञाणं मारो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो...पे०...यो खो, राध, मारो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो" ति॥

३६. यो खो, राध, मारधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो...पे०...।

३७. यं खो, राध, अनिच्चं...पे०...। •

३८. यो खो, राध, अनिच्चधम्मो...पे०...। •

३९. यं खो, राध, दुक्खं...पे०...। [R.201] •

४०. यो खो, राध, दुक्खधम्मो...पे०...। •

४१. यो खो, राध, अनत्ता...पे०...। •

४२. यो खो, राध, अनत्तधम्मो...पे०...। •

४३. यो खो, राध, खयधम्मो...पे०...। •

४४. यो खो, राध, वयधम्मो...पे०...। •

---

४. उपनिषिण्णवर्ग चतुर्थ

३५-४५. मार आदि सूत्र (एकादशक): : मार में कामना का त्याग

३५. ...**श्रावस्ती में** ही...। एक ओर बैठे आयुष्मान राध से भगवान् बोले—"राध! **मार** में कामना का परित्याग कर देना चाहिये। राग का, छन्दराग का परित्याग कर देना चाहिये॥ •

३६. **मारधर्म** में कामना, राग एवं छन्दराग का परित्याग कर देना चाहिये॥ •

३७. **अनित्य** में कामना का...पूर्ववत्...॥ •

३८. **अनित्यधर्म** में कामना का...पूर्ववत्...॥ •

३९. **दुःख** में कामना का...पूर्ववत्...॥ •

४०. **दुःखधर्म** में कामना का...पूर्ववत्...॥ •

४१. **अनात्मा** में कामना का...पूर्ववत्...॥ •

४२. **अनात्मधर्म** में कामना का...पूर्ववत्...॥ •

४३. **क्षयधर्म** में कामना का...पूर्ववत्...॥ •

४५. यो खो, राध, समुदयधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो...पे०...।

४६. निरोधधम्मसुत्तं

[N.413] ४६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राधं भगवा एतदवोच— "यो खो, राध, निरोधधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो [B.165] पहातब्बो। को च, राध, निरोधधम्मो? रूपं खो, राध, निरोधधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। वेदना...पे०...सञ्ञा...पे०... सङ्खारा...पे०...विञ्ञाणं निरोधधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो। यो खो, राध, निरोधधम्मो; तत्र ते छन्दो पहातब्बो, रागो पहातब्बो, छन्दरागो पहातब्बो" ति॥

उपनिसिन्नवग्गो चतुत्थो॥

तस्सुद्दानं

मारो च मारधम्मो च, अनिच्चेन अपरे दुवे।
दुक्खेन च दुवे वुत्ता, अनत्तेन तथेव च।
खयवयसमुदंयं, निरोधधम्मेन द्वादसा ति॥

राधसंयुत्तं समत्तं॥

---

४४. **व्ययधर्म** में कामना का...पूर्ववत्...॥

४५. **समुदयधर्म** में कामना का...पूर्ववत्...परित्याग कर देना चाहिये॥

४६. निरोधधर्मसूत्र : : निरोधधर्म में कामना का त्याग

४६. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् ने यों कहा—"राध! यह जो निरोधधर्म है, इस में तुम्हें कामना, राग एवं छन्दराग नहीं करना चाहिये। वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में तुम्हें कामना, राग तथा छन्दराग नहीं करना चाहिये। कहने का तात्पर्य यही है कि निरोधधर्म में किसी भी प्रकार की कामना का, राग का, छन्दराग का सर्वथा प्रहाण (त्याग) कर देना चाहिये"॥

उपनिषिण्णवर्ग चतुर्थ सम्पन्न॥

इस उपनिषिण्णवर्ग में ये सूत्र व्याख्यात हुए हैं—१. मारसूत्र, २. मारधर्मसूत्र, ३. अनित्यसूत्र, ४. अनित्यधर्मसूत्र, ५. दुःखसूत्र, ६. दुःखधर्मसूत्र, ७. अनात्मसूत्र, ८. अनात्मधर्मसूत्र, ९. क्षयधर्मसूत्र, १०. व्ययधर्मसूत्र, ११. समुदयधर्मसूत्र एवं १२. निरोधधर्मसूत्र॥

राधसंयुक्त समाप्त॥

२४. दिट्ठिसंयुत्तं

१. सोतापत्तिवग्गो पठमो

१. वातसुत्तं

१. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने। [N.414, B.166, R.202] भगवा एतदवोच—''किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'न वाता वायन्ति, न नज्जो सन्दन्ति, न गब्भिनियो विजायन्ति, न चन्दिमसुरिया उदेन्ति वा अपेन्ति वा एसिकट्ठायिट्ठिता''' ति?

''भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा भगवंनेत्तिका भगवम्पटिसरणा। साधु वत, भन्ते, भगवन्तञ्ञेव पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती'' ति।

''तेन हि, भिक्खवे, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति।

''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'न वाता वायन्ति, न नज्जो सन्दन्ति, न गब्भिनियो विजायन्ति, न चन्दिम-

---

२४. दृष्टिसंयुक्त

प्रथम स्रोतआपत्तिवर्ग

१. वातसूत्र : : **मिथ्यादृष्टि का मूल**

१. एक समय भगवान् श्रावस्ती के जेतवन में साधनाहेतु विराजमान थे। भगवान् भिक्षुओं से यों बोले—''भिक्षुओ! क्या होने पर, किस के आलम्बन से, किस का अभिनिवेश कर मनुष्य को ऐसी धारणा उत्पन्न होती है—''हवाएँ नहीं चलतीं, नदियाँ नहीं बहतीं, गर्भिणी स्त्रियाँ बच्चे नहीं पैदा करतीं, सूर्य एवं चन्द्रमा न उदित होते हैं न अस्त होते हैं, न उनमें गति है, वे तो इषीका (स्तम्भ) की तरह स्थायी एवं अचल हैं?''

''भन्ते! हमारे धर्मज्ञान के मूल तो आप ही हैं, आप ही पथप्रदर्शक हैं, कोई धर्म-संशय होने पर हम तो आप की ही शरण में आते हैं, अत: आप ही इस का समाधान बतावें। आप से सुन कर हम भी अपने मन में वैसा ही बैठा लेंगे।''

''तो भिक्षुओ! सुनो, सुन कर मन में दृढता से बैठा लो। मैं बताता हूँ।''

''ठीक है, भन्ते!'' कह कर भिक्षुओं ने भगवान् के आदेश को स्वीकार किया।

तब भगवान् यों बोले—''भिक्षुओ! रूप के होने पर, रूप के आलम्बन से, रूप का अभिनिवेश कर मनुष्य को ऐसी धारणा (दृष्टि) उत्पन्न होती है—'न हवाएँ चलती हैं

सुरिया उदेन्ति वा अपेन्ति वा एसिकट्ठायिट्ठिता' ति। वेदनाय सति...पे०...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'न वाता वायन्ति, न नज्जो सन्दन्ति, न गब्भिनियो विजायन्ति, न चन्दिमसुरिया उदेन्ति वा अपेन्ति वा एसिकट्ठायिट्ठिता' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा'' ति?

''दुक्खं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं, दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'न वाता वायन्ति, न नज्जो सन्दन्ति, न गब्भिनियो विजायन्ति, न [N.415] चन्दिमसुरिया उदेन्ति वा अपेन्ति वा एसिकट्ठायिट्ठिता''' ति?

[R.203] ''नो हेतं, भन्ते''।

''वेदना निच्चा वा अनिच्चा वा ति? सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा'' ति?

''दुक्खं, भन्ते''।

''यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'न वाता वायन्ति, न नज्जो सन्दन्ति, न गब्भिनियो विजायन्ति, न [B.167] चन्दिमसुरिया उदेन्ति वा अपेन्ति वा एसिकट्ठायिट्ठिता''' ति?

...पूर्ववत्...स्थायी एवं अचल हैं। वेदना के, संज्ञा के, संस्कारों के, विज्ञान के होने पर, विज्ञान के आलम्बन से...पूर्ववत्...स्थायी एवं अचल हैं। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?''

''अनित्य, भन्ते!''

''जो अनित्य है वह दुःखमय है या सुखमय?''

''दुःखमय, भन्ते!''

''जो स्वयं अनित्य दुःखमय एवं विनाशशील है, उसके उपादान (ग्रहण) न करने से उपर्युक्त धारणा मनुष्य के चित्त में बैठना सम्भव है?''

''नहीं, भन्ते!''

''वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान नित्य है या अनित्य?'' ...पूर्ववत्... सम्भव है''

"नो हेतं, भन्ते"।

"यम्पिदं दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'न वाता वायन्ति, न नज्जो सन्दन्ति, न गब्भिनियो विजायन्ति, न चन्दिमसुरिया उदेन्ति वा अपेन्ति वा एसिकट्ठायिट्ठिता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमेसु च ठानेसु कङ्खा पहीना होति, दुक्खे पिस्स कङ्खा पहीना होति, दुक्खसमुदये पिस्स कङ्खा पहीना होति, दुक्खनिरोधे पिस्स कङ्खा पहीना होति, दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय पिस्स कङ्खा पहीना होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ •

२. एतंममसुत्तं

२. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, [N.416] किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"नहीं, भन्ते!"

"जो यह देखा गया, सुना गया, सूँघा गया, चखा गया, स्पर्श किया गया, जाना गया, पाया गया, खोजा गया, या मन से विचारा गया वह सब नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...। "क्यों कि, भिक्षुओ! उस विद्वान् आर्यश्रावक की इन स्थानों में आकांक्षाएँ प्रहीण हो जाती हैं, अत: दु:ख में भी उसकी आकांक्षा प्रहीण हो जाती है, दु:खसमुदय में भी...दु:खनिरोध में भी...दु:खनिरोधगामी मार्ग में उस की आकांक्षा प्रहीण हो जाती है। भिक्षुओ! ऐसा आर्यश्रावक ही स्रोतआपन्न, धर्म से च्युत न होने वाला, सतत धर्मरत रहने वाला तथा सम्बोधि की ओर अग्रसर होने वाला होता है"॥

२. एतन्ममसूत्र : : मिथ्यादृष्टि का मूल

२. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने पर, किस के आलम्बन से,

[R.204] "रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति। वेदनाय सति...पे०...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...। वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...। अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यम्पिदं दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

[B.168] "यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमेसु च ठानेसु कङ्खा पहीना होति, दुक्खे पिस्स कङ्खा पहीना होति...पे०...दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय पिस्स कङ्खा पहीना होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ ●

३. सोअत्तासुत्तं

३. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं

किस का अभिनिवेश कर...पूर्ववत्...'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ', 'यह मेरी आत्मा है'...पूर्ववत्...यह मेरी आत्मा है? तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य? ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! ऐसा आर्यश्रावक ही स्रोतआपन्न, धर्म से च्युत न होने वाला तथा सम्बोधि की ओर सतत अग्रसर होने वाला होता है॥ ●

३. सआत्मासूत्र : : मिथ्यादृष्टि का मूल

३. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने पर, किस के आलम्बन से,

अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'सो अत्ता सो लोको, सो पेच्च भविस्सामि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो''' ति ?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...। [N.417, R.205]

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'सो अत्ता सो लोको, सो पेच्च भविस्सामि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो' ति। वेदनाय सति...पे०...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'सो अत्ता सो लोको, सो पेच्च भविस्सामि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? "अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—सो अत्ता...पे०...अविपरिणामधम्मो ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? "अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—सो अत्ता...पे०...अविपरिणामधम्मो ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यम्पिदं दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—सो अत्ता सो लोको, सो पेच्च भविस्सामि निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

किस में अभिनिवेश कर मनुष्य को ऐसी धारणा होती है—"जो आत्मा है वही लोक है; अत: मैं मर कर नित्य, ध्रुव, शाश्वत तथा अविनाशी होऊँगा ?" ...पूर्ववत्...।

"रूप के होने पर, रूप के आलम्बन से, रूप में अभिनिवेश कर मनुष्य को ऐसी मिथ्या धारणा होती है—जो आत्मा है वही लोक है, ...पूर्ववत्...अविनाशी होऊँगा। वेदना के होने पर, संज्ञा के होने पर, संस्कारों के होने पर, विज्ञान के होने पर...पूर्ववत्... अविनाशी होऊँगा। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य ?"

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमेसु च ठानेसु कङ्खा पहीना होति, दुक्खे पिस्स कङ्खा पहीना होति...पे०...। दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय पिस्स कङ्खा पहीना होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥

४. नोचमेसियासुत्तं

४. सावत्थिनिदानं। "किस्मि नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभि-
[B.169] निविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती'" ति?

[N.418] भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

[R.206] "रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती' ति। वेदनाय सति...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...सम्बोधि की ओर सतत अग्रसर होने वाला होता है॥

४. नच मे स्यात्सूत्र : : मिथ्यादृष्टि का मूल

४. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने पर, किस के आलम्बन से, किस में अभिनिवेश कर मनुष्य को यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'न मैं होता, न मेरा होवे, न मैं होऊँगा, न मेरा होगा?'" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने से, रूप के आलम्बन से, रूप के अभिनिवेश से ऐसी मिथ्यादृष्टि होती है—'न मैं होता...न मेरा होगा'। वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने से...ऐसी मिथ्यादृष्टि होती है—'न मैं होता...पूर्ववत्...न मैं होऊँगा।' तो क्या मानते हो,

अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यम्पिदं दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति? "अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—नो चस्सं, नो च मे सिया, नाभविस्स, न मे भविस्सती ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमेसु च ठानेसु कङ्खा पहीना होति, दुक्खे पिस्स कङ्खा पहीना होति...पे०...दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय पिस्स कङ्खा पहीना होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥

●

५. नत्थिदिन्नसुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नत्थि दिन्नं नत्थि यिट्ठं नत्थि हुतं नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको; नत्थि अयं लोको नत्थि परो लोको नत्थि माता नत्थि पिता नत्थि सत्ता ओपपातिका; नत्थि लोके समणब्राह्मणा [N.419, B.170] सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ति। चातुम्महाभूतिको अयं पुरिसो यदा कालं करोति पठवी पठवीकायं [R.207]

भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?" "अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...उस के होने से, उस के आलम्बन से, उस के अभिनिवेश से क्या ऐसी मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होना उचित हो सकता है—"न मैं होता, ...पूर्ववत्...न मैं होऊँगा?" "नहीं, भन्ते!" "...पूर्ववत्...सम्बोधि की ओर अग्रसर होता है॥"

●

५. नास्तिदत्तसूत्र : : उच्छेदवाद

५. ...**श्रावस्ती में** ही...।..."भिक्षुओ! क्या होने पर, किस का ग्रहण कर, किस में अभिनिवेश कर मनुष्य को ऐसी मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'दान, यज्ञ, होम एवं सुकृत दुष्कृत कर्मों का कोई फल या विपाक (परिणाम) नहीं है, न यह लोक है, न परलोक है, न कोई माता है, न कोई पिता, न कोई स्वयं जात (गर्भ से न उत्पन्न होने वाले प्राणी=देवता) प्राणी है, न लोक में ऐसे श्रमण या ब्राह्मण हैं जो सम्यग्ज्ञानवान् हों तथा लोक-परलोक को स्वयं जान कर उपदेश करने वाले हों। यह मानव शरीर चार महाभूतों

अनुपेति अनुपगच्छति, आपो आपोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, तेजो तेजोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, वायो वायोकायं अनुपेति अनुपगच्छति। आकासं इन्द्रियानि सङ्कमन्ति। आसन्दिपञ्चमा पुरिसा मतं आदाय गच्छन्ति। याव आळाहना पदानि पञ्ञायन्ति। कापोतकानि अट्ठीनि भवन्ति। भस्सन्ता आहुतियो। दत्तुपञ्ञत्तं यदिदं दानं। तेसं तुच्छं मुसा विलापो ये केचि अत्थिकवादं वदन्ति। बाले च पण्डिते च कायस्स भेदा उच्छिज्जन्ति विनस्सन्ति न होन्ति परं मरणा''' ति?

''भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

''रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं...पे०...कायस्स भेदा उच्छिज्जन्ति विनस्सन्ति न होन्ति परं मरणा' ति। वेदनाय सति...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नत्थि दिन्नं नत्थि यिट्ठं...पे०...कायस्स भेदा उच्छिज्जन्ति विनस्सन्ति न होन्ति परं मरणा' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति? ''अनिच्चं, भन्ते''...पे०...।

''अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—नत्थि दिन्नं नत्थि यिट्ठं...पे०...कायस्स भेदा उच्छिज्जन्ति विनस्सन्ति न होन्ति परं मरणा ति?

से मिल कर बना है। इस की पृथ्वीधातु, मरणानन्तर, पृथ्वी में विलीन हो जाती है, अब्धातु जल में, तेजोधातु तेज में तथा वायुधातु वायु में विलीन हो जाती है। इन्द्रियाँ आकाश में चली जाती हैं। मरणानन्तर, चार मनुष्य इस के शव को अर्थी में रख कर कुछ दूर श्मशान पर ले जा कर जला देते हैं। अन्त में (दाहानन्तर), इस की कबूतर जैसी दो चार सफेद अस्थियाँ केवल बच जाती हैं। या फिर केवल उस की राख बच जाती है। ऐसे अकिञ्चन का किया हुआ दान निष्फल है, असत्य है। ऐसे धर्मोपदेष्टाओं का धर्मोपदेश मिथ्या प्रलापमात्र है, जो आस्तिकवाद (=स्वर्ग, नरक की सत्ता) का समर्थन करते हैं। उन का ऐसा कहना केवल ढोंग (दम्भ) है। ऐसे तथाकथित पण्डित मूर्ख एक दिन उच्छिन्न हो जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं, मरणान्तर उन की कोई सत्ता नहीं रहती?''

''भगवान् ही हमारे धर्म पथप्रदर्शक हैं...पूर्ववत्...''।

''रूप के...वेदना के...संज्ञा के...संस्कारों के...विज्ञान के होने पर, विज्ञान का ग्रहण कर, विज्ञान में अभिनिवेश कर ऐसी मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'दान, यज्ञ, होम एवं सुकृत दुष्कृत...पूर्ववत्...मरणान्तर उन की कोई सत्ता नहीं रहती। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?'' ''अनित्य है, भन्ते!'' ...पूर्ववत्...'भिक्षुओ! इन छह स्थानों में उस आर्यश्रावक के सभी सन्देह (आकांक्षाएँ) निवृत्त हुए रहते

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

"अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—नत्थि दिन्नं नत्थि [R.208] यिट्ठं...पे०...कायस्स भेदा उच्छिज्जन्ति विनस्सन्ति न होन्ति परं मरणा ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यम्पिदं दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा तं [N.420] पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

"अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—नत्थि दिन्नं नत्थि यिट्ठं...पे०...ये केचि अत्थिकवादं वदन्ति; बाले च पण्डिते च कायस्स भेदा उच्छिज्जन्ति विनस्सन्ति न होन्ति परं मरणा" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमेसु च ठानेसु कङ्खा पहीना होति, दुक्खे पिस्स कङ्खा पहीना होति...पे०...दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय पिस्स कङ्खा पहीना होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो [B.171] नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ ●

६. करोतोसुत्तं

६. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'करोतो कारयतो छिन्दतो छेदापयतो पचतो पाचापयतो सोचतो सोचापयतो किलमतो किलमापयतो फन्दतो फन्दापयतो पाणमतिपातापयतो अदिन्नं आदियतो सन्धिं छिन्दतो निल्लोपं हरतो एकागारिकं करोतो परिपन्थे तिट्ठतो

हैं...पूर्ववत्...ऐसा ही आर्यश्रावक स्रोतआपन्न, धर्म में स्थित तथा सम्बोधि की ओर अग्रसर होने वाला होता है॥" ●

६. कुर्वतःसूत्र : : अक्रियवाद

६. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! क्या होने पर, क्या ग्रहण कर, किस में अभिनिवेश कर मनुष्य को ऐसी मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'करते कराते हुए, काटते कटवाते हुए, मारते मरवाते हुए, सोचते सोचाते हुए, थकते थकाते हुए, फँसते फँसाते हुए, हिंसा करते कराते हुए, चोरी करते, संध लगाते, डकैती करते, घरों को लूटते, राहजनी (मार्ग में लूट पाट) करते, परस्त्री से व्यभिचार करते, असत्य भाषण करते हुए

परदारं गच्छतो मुसा भणतो करोतो न करीयति पापं। खुरपरियन्तेन चे पि चक्केन यो इमिस्सा पठविया पाणे एकमंसखलं एकमंसपुञ्जं करेय्य, नत्थि ततोनिदानं पापं, नत्थि [R.209] पापस्स आगमो। दक्खिणं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य; हनन्तो घातेन्तो छिन्दन्तो छेदापेन्तो पचन्तो पाचेन्तो, नत्थि ततोनिदानं पापं, नत्थि पापस्स आगमो। उत्तरं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य; ददन्तो दापेन्तो यजन्तो यजापेन्तो, नत्थि ततोनिदानं पुञ्ञं, नत्थि [N.421] पुञ्ञस्स आगमो। दानेन दमेन संयमेन सच्चवज्जेन नत्थि पुञ्ञं, नत्थि पुञ्ञस्स आगमो'' ति?

''भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

''रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'करोतो कारयतो...पे०...नत्थि पुञ्ञं नत्थि पुञ्ञस्स आगमो' ति। वेदनाय सति...पे०...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'करोतो कारयतो...पे०...नत्थि पुञ्ञं नत्थि पुञ्ञस्स आगमो' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''...पे०...।

अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—करोतो कारयतो...पे०...नत्थि पुञ्ञं नत्थि पुञ्ञस्स आगमो ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''...पे०...।

''अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—करोतो कारयतो...पे०...नत्थि पुञ्ञं नत्थि पुञ्ञस्स आगमो ति?

भी वह कोई पाप नहीं करता। यदि कोई तीक्ष्ण छुरों से युक्त किसी चक्र से पृथ्वीवासी समस्त प्राणियों को मार कर मांस का एक विशाल पुञ्ज (राशि) एकत्र कर दे, तो भी उसे कोई पाप नहीं लगता। यदि कोई गङ्गा के दक्षिण तट पर जा कर प्राणियों को मारने काटने लगे...तो भी उसे कोई पाप नहीं लगता। यदि कोई गङ्गा के उत्तरी किनारे पर जा कर यज्ञ, दान दक्षिणा करने लगे तो भी उसे कोई पुण्य नहीं होता। निष्कर्ष यह है कि दान, दम या संयम यां सत्यभाषण से कोई पुण्य नहीं होता।'

...पूर्ववत्...। रूप में, रूप का परिग्रह कर या रूप में अभिनिवेश करने वाले मनुष्य को ऐसी दृष्टि होती है—'कुछ करते कराते हुए, काटते कटवाते हुए...पूर्ववत्...कोई

"नो हेतं, भन्ते"।

"यम्पिदं दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

"अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—करोतो कारयतो...पे०... [B.172] नत्थि पुञ्ञं नत्थि पुञ्ञस्स आगमो ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमेसु च ठानेसु कङ्खा पहीना होति, दुक्खे पिस्स कङ्खा पहीना होति...पे०...दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय पिस्स कङ्खा पहीना होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ •

७. हेतुसुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। "किस्मि नु खो, भिक्खवे, सति, किं [N.422, R.210] उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नत्थि हेतु नत्थि पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय। अहेतू अप्पच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति। नत्थि हेतु, नत्थि पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया। अहेतू अप्पच्चया सत्ता विसुज्झन्ति। नत्थि बलं नत्थि विरियं नत्थि पुरिस-थामो नत्थि पुरिसपरक्कमो। सब्बे सत्ता सब्बे पाणा सब्बे भूता सब्बे जीवा अवसा अबला अविरिया नियतिसङ्गतिभावपरिणता छस्वेवाभिजातीसु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ती'" ति?

पुण्य नहीं होता।' तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?" "अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...

"वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान नित्य है या अनित्य? ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! इन छह स्थानों से आर्यश्रावक के सन्देह निवृत्त हो जाते हैं। तो दुःख में भी सन्देह...पूर्ववत्...सम्बोधि की ओर निरन्तर अग्रसर होने लगता है॥" •

७. हेतुसूत्र : : हेतुवाद (दैववाद)

७. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! क्या होने पर, किस का उपादान कर, किस के आलम्बन से पुरुष को ऐसी धारणा उत्पन्न होती है—'प्राणियों के क्लेश के लिये कोई हेतु नही है। किसी हेतु के विना ही, किसी प्रत्यय के विना ही प्राणी कष्ट पाते रहते हैं। प्राणियों की चित्तविशुद्धि में भी न कोई हेतु है, न कोई प्रत्यय है। विना किसी हेतु या कारण के प्राणी शुद्ध होते रहते हैं। वहाँ, बल वीर्य पराक्रम या सामर्थ्य की भी कोई अपेक्षा नहीं है। सभी सत्त्व, सभी प्राणी, सभी भूत, सभी जीव अवश (अस्वतन्त्र) हैं,

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नत्थि हेतु, नत्थि पच्चयो...पे०...सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ती' ति। वेदनाय सति...पे०...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नत्थि हेतु नत्थि पच्चयो...पे०... सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ती' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—नत्थि हेतु नत्थि पच्चयो...पे०...सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ती ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—नत्थि हेतु नत्थि पच्चयो...पे०...सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ती ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यम्पिदं दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—नत्थि हेतु [N.423] नत्थि पच्चयो...पे०...सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ती ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

[B.173] "यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमेसु च ठानेसु कङ्खा पहीना होति, [R.211] दुक्खे पिस्स कङ्खा पहीना होति...पे०...दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय पिस्स कङ्खा पहीना होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ •

निर्बल हैं, जैसी उन की नियति (भाग्य) हो, जैसी उन की सङ्गति हो, जैसा उन का संयोग हो, इन छह अभिजातियों में आ जा कर सुख दुःख का अनुभव करते रहते हैं?"

"भगवान् ही हमारे धर्म पथप्रदर्शक हैं...पूर्ववत्...।"

"रूप के होने पर, रूप का उपादान कर, रूप में अभिनिवेश करने वाले प्राणी को ऐसी दृष्टि उत्पन्न होती है—'प्राणियों के क्लेश के लिये कोई हेतु नहीं है...पूर्ववत्...सुख दुःख का अनुभव करते रहते हैं। वेदना के, संज्ञा के, संस्कार के, विज्ञान के होने पर...पूर्ववत्...।

८. महादिट्ठिसुत्तं

८. सावत्थिनिदानं। ''किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'सत्तिमे काया अकटा, अकटविधा, अनिम्मिता, अनिम्माता, वञ्झा, कूटट्ठा, एसिकट्ठायिट्ठिता; ते न इञ्जन्ति, न विपरिणमन्ति, न अञ्ञमञ्ञं ब्याबाधेन्ति; नालं अञ्ञमञ्ञस्स सुखाय वा दुक्खाय वा सुखदुक्खाय वा। कतमे सत्त? पठवीकायो, आपोकायो, तेजोकायो, वायोकायो, सुखे, दुक्खे, जीवे सत्तमे। इमे सत्त काया अकटा, अकटविधा, अनिम्मिता, अनिम्माता, वञ्झा, कूटट्ठा एसिकट्ठायिट्ठिता; ते न इञ्जन्ति, न विपरिणमन्ति, न अञ्ञमञ्ञं ब्याबाधेन्ति; नालं अञ्ञमञ्ञस्स सुखाय वा दुक्खाय वा सुखदुक्खाय वा। यो पि तिण्हेन सत्थेन सीसं छिन्दति न सो पि कञ्चि जीविता वोरोपेति; सत्तन्नं त्वेव कायानमन्तरेन सत्थं विवरमनुपविसति। चुद्दस खो पनिमानि योनिपमुखसतसहस्सानि सट्ठि च सतानि छ च सतानि पञ्च च कम्मुनो सतानि पञ्च च कम्मानि, तीणि च कम्मानि, कम्मे च अड्ढकम्मे च द्वट्ठिपटिपदा, द्वट्ठन्तरकप्पा, छळाभिजातियो, अट्ठपुरिसभूमियो, एकूनपञ्ञास आजीवकसते, एकूनपञ्ञास परिब्बाजकसते, एकूनपञ्ञास नागवाससते, वीसे इन्द्रियसते, तिंसे निरयसते, छत्तिंस रजोधातुयो, सत्त सञ्ञीगब्भा, सत्त असञ्ञीगब्भा,

---

तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है? या अनित्य?''

''अनित्य, भन्ते!'' ...पूर्ववत्...सम्बोधि की ओर सतत अग्रसर होता रहता है॥''●

८. महादृष्टिसूत्र : : अकृततावाद

८. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! किस के होने से, किस के आलम्बन से...ऐसी मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'ये सात काय अकृत हैं, अकारित हैं, अनिर्मित हैं, अनिर्मापित हैं, वन्ध्य (तटस्थ) हैं, कूटस्थ हैं, अचल हैं। वे स्तम्भ की तरह स्थिर हैं, न उनमें कोई क्रिया होती है, न वे विपरिणत (परिवर्तित) होते हैं, न एक दूसरे को सुख देते हैं, न दुःख। कौन से सात? १. पृथ्वीकाय, २. अप्काय (जलकाय), ३. तेजःकाय, ४. वायुकाय, ५. सुख, ६. दुःख एवं ७. जीव। ये सात काय न किसी के द्वारा कृत हैं...पूर्ववत्...न एक दूसरे को सुख देते हैं न दुःख।

''जो भी कोई किसी का तीक्ष्ण शस्त्र से सिर काटता है, वह भी वहाँ किसी की हत्या या हिंसा नहीं करता; अपि तु उस का चलाया हुआ वह शस्त्र केवल उन सात कायों में छिद्र कर देता है। ये चौदह लाख छह सौ छासठ योनियाँ (१४००६६६) हैं, पाँच सौ साधारण कर्म हैं, पाँच विशेष कर्म हैं, तीन कर्म भी हैं, कर्म एवं अर्धकर्म के रूप में ६२ मार्ग विभक्त हैं, ६२ अन्तरकल्प हैं, छह अभिजातियाँ (वर्गविशेष) हैं, आठ पुरुषभूमियाँ

[R.212] सत्त निगण्ठिगब्भा, सत्त देवा, सत्त मानुसा, सत्त पेसाचा, सत्त सरा, सत्त पवुटा, सत्त पपाता, सत्त च पपातसतानि, सत्त सुपिना, सत्त सुपिनसतानि, चुल्लासीति [B.174] महाकप्पिनो सतसहस्सानि यानि बाले च पण्डिते च सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति। तत्थ नत्थि इमिनाहं सीलेन वा वतेन वा तपेन वा ब्रह्मचरियेन [N.424] वा अपरिपक्कं वा कम्मं परिपाचेस्सामि; परिपक्कं वा कम्मं फुस्स फुस्स ब्यन्तीकरिस्सामी ति हेवं नत्थि दोणमिते सुखदुक्खे परियन्तकते संसारे, नत्थि हायनवड्ढने, नत्थि उक्कंसावकंसे। सेय्यथापि नाम सुत्तगुळे खित्ते निब्बेठियमानमेव पलेति; एवमेव बाले च पण्डिते च निब्बेठियमाना सुखदुक्खं पलेन्ती''' ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'सत्तिमे काया अकटा अकटविधा...पे०...सुखदुक्खं पलेन्ती' ति। वेदनाय सति...पे०...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'सत्तिमे काया अकटा अकटविधा ...पे०...सुखदुक्खं पलेन्ती' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

हैं, ४९०० आजीवक हैं, ४९०० परिव्राजक हैं, ४९०० नागों के आवास हैं, २००० इन्द्रियाँ हैं, ३००० नरकभूमियाँ हैं, ३६ रजोधातु हैं, ७ संज्ञी गर्भ हैं, सात ही असंज्ञी गर्भ, सात निर्ग्रन्थि गर्भ, सात देव, सात मानुष, सात पैशाच, सात सर, सात प्रवृत्त, सात प्रपात, और सात सौ प्रपात, सात स्वप्न और सात सौ स्वप्न, चौरासी हजार अस्सी से कुछ कम महाकल्प—इन में सभी मूर्ख तथा पण्डित जन घूमते हुए, दौड़ते हुए अपने दुःखों का अन्त करना चाहते हैं। परन्तु ऐसी बात नहीं है कि मैं इस शीलाचार से, व्रतपालन से, तपश्चर्या से, धर्मसाधना से, अभुक्त कर्मों को भोग योग्य बना लूँगा, या भुक्त कर्मों को भोग कर शनैः शनैः समाप्त कर लूँगा। क्यों कि संसार में न तो किसी सीमित परिमाण में नपे तुले सुख दुःख हैं, न उन के बढने घटने की निश्चित अवधि है। यह तो ऐसी ही बात होगी जैसे कोई मूर्ख सूत के गोले को खोलने लगे तो वह खोलता ही चला जाय, परन्तु उसका अन्त नहीं दिखायी दे; इसी तरह ये मूर्ख एवं पण्डित जन भी अपने सुख दुःख का क्या अन्त कर पायँगे!"

"भगवान् हमारे धर्म पथप्रदर्शक हैं...पूर्ववत्...।"

"भिक्षुओ! रूप के होने पर...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर...ऐसी

यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—सत्तिमे काया अकटा अकटविधा...पे०...सुखदुक्खं पलेन्ती ति?

"नो हेतं, भन्ते"। [R.213

"यम्पिदं दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

"अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—सत्तिमे काया अकटा अकटविधा...पे०...निब्बेठियमाना सुखदुक्खं पलेन्ती" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमेसु च ठानेसु कङ्खा पहीना होति, दुक्खे पिस्स कङ्खा पहीना होति...पे०...दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय पिस्स कङ्खा पहीना होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ ●

९. सस्सतदिट्ठिसुत्तं

९. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'सस्सतो लोको'" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...। [N.425]

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'सस्सतो लोको' ति। वेदनाय सति...पे०...सङ्खारेसु सति... [B.175] विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'सस्सतो लोको' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—सस्सतो लोको ति?

मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—...पूर्ववत्...। ...सम्बोधि की ओर अग्रसर होने लगता है॥" ●

९. शाश्वतदृष्टिसूत्र : : शाश्वतवाद

९. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने पर...यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'यह लोक शाश्वत (अविनाशी) है?"

...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने से...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने से...यह

"नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—सस्सतो लोको ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यम्पिदं दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

[R.214] "यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'सस्सतो लोको'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमेसु च ठानेसु कङ्खा पहीना होति, दुक्खे पिस्स कङ्खा पहीना होति...पे०...दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय पिस्स कङ्खा पहीना होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ •

१०. असस्सतदिट्ठिसुत्तं

१०. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'असस्सतो लोको'" ति?

[N.426] "भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति...पे०...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'यह लोक शाश्वत है। तो तुम यहाँ क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?" ...पूर्ववत्...सम्बोधि की ओर सतत अग्रसर होने लगता है॥" •

१०. अशाश्वतदृष्टिसूत्र : : अशाश्वतवाद

१०. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने पर...यह मिथ्या धारणा उद्भूत होती है—'यह लोक अशाश्वत है'?" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने से...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने से...यह

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

"अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—असस्सतो लोको ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यम्पिदं दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—असस्सतो लोको ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यतो खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमेसु च ठानेसु कङ्खा पहीना होति, दुक्खे पिस्स कङ्खा पहीना होति...पे०...दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय पिस्स कङ्खा पहीना होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ ●

११. अन्तवासुत्तं

११. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, [B.176] किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'अन्तवा लोको'" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ ●

१२. अनन्तवासुत्तं

१२. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, [R.215] किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'अन्तवा लोको'" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ ●

मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है कि यह लोक अशाश्वत है। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?" ...पूर्ववत्...सम्बोधि की ओर सतत अग्रसर होने लगता है॥"●

११. अन्तवान्सूत्र : : अन्तवाद

११. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने से..यह मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है—'यह लोक अन्तवान् (विनाशशील) है'?" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने से...यह मिथ्या धारणा (दृष्टि) उत्पन्न होती है—'यह लोक अन्तवान् है।' ...पूर्ववत्...॥ ●

१२. अनन्तवान् लोक : : अनन्तवाद

१२. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने से...ऐसी मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है—'यह लोक अनन्तवान् (स्थायी=अविनाशी) है'?" ...पूर्ववत्...।

१३. तंजीवंतंसरीरंसुत्तं

१३. सावत्थिनिदानं। ''किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं [N.427] अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति–'तं जीवं तं सरीरं''' ति?

''भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...नियतो सम्बोधिपरायनो'' ति॥ •

१४. अञ्ञंजीवंअञ्ञंसरीरंसुत्तं

१४. सावत्थिनिदानं। ''किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति–'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं''' ति?

''भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...नियतो सम्बोधिपरायनो'' ति॥ •

१५. होतितथागतोसुत्तं

१५. सावत्थिनिदानं। ''किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति–'होति तथागतो परं मरणा''' ति?

''भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०. नियतो सम्बोधिपरायनो'' ति॥ •

''रूप के होने पर...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर...यह मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है–'यह लोक अनन्तवान् है।''' ...पूर्ववत्...॥ •

१३. वही जीव वही शरीरसूत्र : : शरीरविषयक मिथ्यादृष्टि

१३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! किस के होने से...यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है–'जो यह शरीर है वही जीव है?''' ...पूर्ववत्...।

''भिक्षुओ! रूप के होने पर...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर...यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है–'यह शरीर ही जीव है।' ...पूर्ववत्...॥'' •

१४. 'जीव एवं शरीर भिन्न हैं' सूत्र : : शरीरविषयक मिथ्यादृष्टि

१४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! किस के होने पर...यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है–'यह जीव एवं यह शरीर भिन्न भिन्न हैं?''' ...पूर्ववत्...।

''भिक्षुओ! रूप के होने पर...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है–'यह जीव एवं यह शरीर भिन्न भिन्न हैं।' ...पूर्ववत्...॥ •

१५. 'मरणानन्तर तथागत होते' सूत्र : : तथागतविषयक मिथ्यादृष्टि

१५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! किस के होने पर...यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है–'मरणानन्तर तथागत पुनः होते हैं?''' ...पूर्ववत्...।

''भिक्षुओ! रूप के होने पर...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान क होने पर यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है–'मरणानन्तर तथागत पुनः होते हैं।' ...पूर्ववत्...॥ •

१६. न होतितथागतोसुत्तं

१६. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'न होति तथागतो परं मरणा'" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ ●

१७. होतिचनचहोतितथागतोसुत्तं

१७. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, [B.177] किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'होति च न च होति तथागतो परं [R.216] मरणा'" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥ ●

१८. नेवहोतिननहोतितथागतोसुत्तं

१८. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा'" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति...पे०...। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

---

१६. 'मरणानन्तर तथागत नहीं होते' सूत्र : : तथागतविषयक मिथ्यादृष्टि

१६. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने पर...यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'मरणानन्तर तथागत नहीं होते?'" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने पर...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'मरणानन्तर तथागत नहीं होते।' ...पूर्ववत्...॥ ●

१७. 'मरणानन्तर तथागत होते भी हैं,' सूत्र : : तथागतविषयक मिथ्यादृष्टि

१७. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने पर...यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'मरणानन्तर तथागत होते भी हैं, नहीं भी होते?'" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने पर...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'मरणानन्तर तथागत होते भी हैं, नहीं भी होते।' ...पूर्ववत्...॥

१८. 'तथागत नहीं...होते' सूत्र : : तथागतविषयक मिथ्यादृष्टि

१८. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! किस के होने पर...यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'मरणानन्तर तथागत नहीं होते, न नहीं ही होते?'" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने पर...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर...यह

"अनिच्चं, भन्ते"।

...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यम्पिदं दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"यतो च खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स इमेसु च ठानेसु कङ्खा पहीना होति, दुक्खे पिस्स कङ्खा पहीना होति, दुक्खसमुदये पिस्स कङ्खा पहीना होति, दुक्खनिरोधे पिस्स कङ्खा पहीना होति, दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय पिस्स कङ्खा पहीना होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियसावको सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो" ति॥

सोतापत्तिवग्गो॥

अट्ठारसवेय्याकरणं निट्ठित्तं॥

तस्सुद्दानं

[N.429, B.178, R.217] वातं एतं मम, सो अत्ता नो च मे सिया।
नत्थि करोतो हेतु च, महादिट्ठेन अट्ठमं॥

मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'मरणानन्तर तथागत नहीं होते, न नहीं ही होते'। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?" ...पूर्ववत्...सम्बोधि की ओर सतत अग्रसर होने लगता है"॥

स्रोतआपत्तिवर्ग सम्पन्न॥

अष्टादश व्याख्यान सम्पन्न॥

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्र इस प्रकार हैं—१. वातसूत्र, २. 'एतन्मम'सूत्र, ३. 'सआत्मा'सूत्र, ४. 'न च मे स्यात्'सूत्र, ५. नास्तिदत्तसूत्र, ६. कुर्वतःसूत्र, ७. हेतुसूत्र,

सस्सतो लोको च, असस्सतो च अन्तवा च।
अनन्तवा च तं जीवं तं सरीरं ति।
अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति च॥
होति तथागतो परं मरणा ति।
न होति तथागतो परं मरणा ति।
होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति।
नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति॥ ●

---

८. महादृष्टिसूत्र, ९. शाश्वतदृष्टिसूत्र, १०. अशाश्वतदृष्टिसूत्र, ११. 'अन्तवान्'सूत्र, १२. 'अनन्तवान्'सूत्र, १३. 'वही शरीर वही जीव'सूत्र, १४. 'जीव एवं शरीर भिन्न हैं'सूत्र, १५. 'मरणानन्तर तथागत होते हैं'सूत्र, १६. 'मरणानन्तर तथागत नहीं होते'सूत्र, १७. 'मरणानन्तर तथागत होते भी हैं, नहीं भी होते'सूत्र, एवं १८. 'मरणानन्तर तथागत नहीं होते, न नहीं ही होते'सूत्र॥ ●

२. दुतियो गमनवग्गो

१९. वातसुत्तं

१९. सावत्थिनिदानं। "किस्मि नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'न वाता वायन्ति, न नज्जो सन्दन्ति, न गब्भिनियो विजायन्ति, न चन्दिमसुरिया उदेन्ति वा अपेन्ति वा एसिकट्ठायिट्ठिता'" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'न वाता वायन्ति...पे०...एसिकट्ठायिट्ठिता' ति। वेदनाय सति...पे०... सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'न वाता वायन्ति...पे०...एसिकट्ठायिट्ठिता' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि [R.218] उप्पज्जेय्य—न वाता वायन्ति...पे०...एसिकट्ठायिट्ठिता ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"इति खो, भिक्खवे, दुक्खे सति, दुक्खं उपादाय, दुक्खं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि [N.430] उप्पज्जति—'न वाता वायन्ति ...पे०... एसिकट्ठायिट्ठिता' ति। "वेदना... सञ्ञा... सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

---

२. द्वितीय गमनवर्ग

१९. वातसूत्र : : मिथ्यादृष्टि का मूल

१९. ...**श्रावस्ती में** ही...।"भिक्षुओ! क्या होने पर...ऐसी मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है—'न हवाएँ बहती हैं...पूर्ववत्...सर्वथा अचल स्थिर हैं?" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने से...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर...ऐसी मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—न हवाएँ बहती हैं...पूर्ववत्...स्तम्भ की तरह अचल स्थिर हैं। भिक्षुओ! रूप नित्य है, या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"

"भिक्षुओ! इस तरह उस के उपादान न करने से यह मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होगी?"

"नहीं, भन्ते!"

"अतः, भिक्षुओ! दुःख के होने पर, दुःख का आलम्बन कर, दुःख में अभिनिवेश

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—न वाता वायन्ति...पे०...एसिकट्ठायिट्ठिता ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"इति खो, भिक्खवे, दुक्खे सति, दुक्खं उपादाय, दुक्खं अभिनिविस्स एव दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'न वाता वायन्ति, न नज्जो सन्दन्ति, न गब्भिनियो विजायन्ति, न चन्दिम-सुरिया उदेन्ति वा अपेन्ति वा एसिकट्ठायिट्ठिता''' ति॥ •

२०-३५. *[पुरिमवग्गे विय अट्ठारस वेय्याकरणानि वित्थारेतब्बानी ति।]*[B.179] •

३६. नेवहोतिननहोतिसुत्तं

३६. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा''' ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति। वेदनाय सति...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

कर यह मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है—'न हवाएँ बहती हैं...स्तम्भ की तरह अचल स्थिर हैं"॥ •

२०-३५. *(इसी पद्धति से आगे सोलह (१६) सूत्रों के व्याख्यान का भी पूर्व वर्ग के व्याख्यान के आधार पर विस्तार कर लेना चाहिये।)*

३६. 'मरणानन्तर तथागत नहीं होते' सूत्र: : तथागतविषयक मिथ्यादृष्टि

३६. ...**श्रावस्ती में** ही...।"भिक्षुओ! किस के होने पर...ऐसी मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है—'मरणानन्तर तथागत नहीं होते, न नहीं ही होते?''' ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने पर...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर ...पूर्ववत्...ऐसी मिथ्यादृष्टि उद्भूत होती है—'मरणानन्तर तथागत नहीं होते, न नहीं ही होते।'

"इति खो, भिक्खवे, दुक्खे सति, दुक्खं उपादाय, दुक्खं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा''' ति।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

[N.431] "अनिच्चं, भन्ते"...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"इति खो, भिक्खवे, दुक्खे सति, दुक्खं उपादाय, दुक्खं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा''' ति॥ •

३७. रूपीअत्तासुत्तं

३७. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं [R.219] अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'रूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा''' ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'रूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति। वेदनाय सति...पे०...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं [B.180] दिट्ठि उप्पज्जति—'रूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...।

विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—रूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा ति?

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?" "अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...। अतः भिक्षुओ! दुःख के होने पर...पूर्ववत्...न नहीं ही होते॥" •

३७. रूपी आत्मासूत्र : : आत्मविषयक मिथ्यादृष्टि

३७. ...**श्रावस्ती में** ही...।"भिक्षुओ! क्या होने पर...ऐसी मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है—'मरने के बाद भी आत्मा नीरोग रहता है?" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने पर...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर...'मरने के बाद भी आत्मा नीरोग रहता है।" तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!" ...पूर्ववत्...।

"नो हेतं, भन्ते"।

"इति खो, भिक्खवे, दुक्खे सति, दुक्खं उपादाय, दुक्खं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—रूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा ति? वेदना...पे०... ।"नो हेतं, भन्ते"।

"इति खो, भिक्खवे, दुक्खे सति, दुक्खं उपादाय, दुक्खं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'रूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा''' ति॥ •

३८. अरूपीअत्तासुत्तं

३८. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'अरूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा''' ति? *(पेय्यालो)* •

३९. रूपीचअरूपीअत्तासुत्तं

३९. सावत्थिनिदानं।"रूपी च अरूपी च अत्ता होति अरोगो परं मरणा" ति॥ [N.432]

४०. नेवरूपीनारूपीअत्तासुत्तं

४०. "नेव रूपी नारूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा" ति॥ •

४१. एकन्तसुखीसुत्तं

४१. "एकन्तसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा" ति॥ •

"इस तरह, भिक्षुओ! दु:ख के होने पर...यह मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है—'मरणानन्तर भी आत्मा रूपवान् तथा नीरोग रहता है॥" •

३८. अरूपी आत्मासूत्र : : आत्मविषयक मिथ्यादृष्टि

३८. ...**श्रावस्ती में** ही... । "भिक्षुओ! किस के होने पर...यह मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है—'मरणानन्तर आत्मा रूपरहित परन्तु नीरोग रहता है?" ...पूर्ववत्... ॥ •

३९. रूपी अरूपी आत्मासूत्र : : आत्मविषयक मिथ्यादृष्टि

३९. ...**श्रावस्ती में** ही... । ...पूर्ववत्...'मरणानन्तर भी आत्मा रूपवान् तथा नीरूप एवं नीरोग होता है'? ...पूर्ववत्... ॥ •

४०. नरूपी नअरूपी आत्मासूत्र : : आत्मविषयक मिथ्यादृष्टि

४०. ...**श्रावस्ती में** ही... । ...पूर्ववत्... ।'मरणानन्तर भी आत्मा न रूपवान् तथा न अरूपवान् एवं नीरोग होता है'? ...पूर्ववत्... ॥ •

४१. एकान्तसुखी आत्मासूत्र : : आत्मविषयक मिथ्यादृष्टि

४१. ...पूर्ववत्...'मरणानन्तर भी आत्मा एकान्तत: सुखी तथा नीरोग होता है'? ...पूर्ववत्... ॥ •

४२. एकन्तदुक्खीसुत्तं

[R.220] ४२. "एकन्तदुक्खी अत्ता होति अरोगो परं मरणा" ति॥ •

४३. सुखदुक्खीसुत्तं

४३. "सुखदुक्खी अत्ता होति अरोगो परं मरणा" ति॥ •

४४. अदुक्खमसुखीसुत्तं

[B.181] ४४. "अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा" ति॥

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति। वेदनाय सति...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"इति खो, भिक्खवे, दुक्खे सति, दुक्खं उपादाय, दुक्खं अभिनिविस्स एवं [N.433] दिट्ठि उप्पज्जति—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति? वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति? "अनिच्चं, भन्ते" ...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"इति खो, भिक्खवे, दुक्खे सति, दुक्खं उपादाय, दुक्खं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा'" ति॥ (दुतियपेय्यालो) •

दुतियगमनवग्गो॥

---

४२. एकान्तदुःखी आत्मासूत्र : : आत्मविषयक मिथ्यादृष्टि

४२. ...पूर्ववत्...'मरणानन्तर आत्मा एकान्तदुःखी परन्तु नीरोग रहता है'? ...पूर्ववत्... ॥ •

४३. सुखदुःखी आत्मासूत्र : : आत्मविषयक मिथ्यादृष्टि

४३. ...पूर्ववत्...'मरणानन्तर भी आत्मा सुखदुःखसम्पृक्त एवं नीरोग रहता है'? ...पूर्ववत्... ॥ •

तस्सुद्दानं

वातं एतं मम, सो अत्ता नो च मे सिया।
नत्थि करोतो हेतु च, महादिट्ठेन अट्ठमं॥
सस्सतो असस्सतो चेव, अन्तानन्तवा च वुच्चति। [R.221]
तं जीवं अञ्ञं जीवं च, तथागतेन चत्तारो॥
रूपी अत्ता होति अरूपी च अत्ता होति, रूपी च अरूपी च अत्ता होति।
नेव रूपी नारूपी अत्ता होति, एकन्तसुखी अत्ता होति॥
एकन्तदुक्खी अत्ता होति, सुखदुक्खी अत्ता होति।
अदुक्खमसुखी अत्ता होति, अरोगो परं मरणा ति।
इमे छब्बीसति सुत्ता, दुतियवारेन देसिता॥ ●

---

४४. न दुःखी न सुखी आत्मासूत्र : : आत्मविषयक मिथ्यादृष्टि

४४. ...पूर्ववत्...'मरणानन्तर आत्मा न सुखी न दुःखी तथा नीरोग रहता है'? ...पूर्ववत्... ॥ ●

द्वितीय गमनवर्ग समाप्त॥

(द्वितीय पेय्याल सम्पन्न)

इस वर्ग में इन छब्बीस (२६) सूत्रों का व्याख्यान हुआ है—१. वात, २. एतन्मम, ३. स आत्मा, ४. 'न च मे स्यात्'सूत्र, ५. 'नस्तिदत्तसूत्र, ६. कुर्वतःसूत्र, ७. हेतुसूत्र, ८. महादृष्टिसूत्र, ९. शाश्वतदृष्टिसूत्र, १०. अशाश्वतदृष्टिसूत्र, ११. अन्तवान्सूत्र, १२. अनन्तवान्सूत्र, १३. 'वही जीव वही शरीर'सूत्र, १४. 'जीव एवं शरीर भिन्न भिन्न'सूत्र, १५. 'मरणानन्तर तथागत होते हैं'सूत्र, १६. 'मरणानन्तर तथागत नहीं होते'सूत्र, १७. 'मरणानन्तर तथागत होते भी हैं नहीं भी होते'सूत्र, १८. 'मरणान्तर तथागत नहीं होते, न नहीं ही होते'सूत्र, १९. रूपी आत्मासूत्र, २०. अरूपी आत्मासूत्र, २१. रूपी अरूपी आत्मासूत्र, २२. नैवरूपी नरूपी आत्मासूत्र, २३. एकान्तसुखीसूत्र, २४. एकान्तदुःखीसूत्र, २५. सुखीदुःखी आत्मासूत्र, २६. न सुखी न दुःखी आत्मासूत्र॥ ●

ततिय गमनवग्गो

४५. नवातसुत्तं

[B.182] ४५. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं [N.434] अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'न वाता वायन्ति, न नज्जो सन्दन्ति, न गब्भिनियो विजायन्ति, न चन्दिमसुरिया उदेन्ति वा अपेन्ति वा एसिकट्ठायिट्ठिता'" ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—न वाता वायन्ति...पे०...वेदनाय सति...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति... विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—न वाता वायन्ति...पे०...एसिकट्ठायिट्ठिता ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—न वाता वायन्ति...पे०...एसिकट्ठायिट्ठिता ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"इति खो, भिक्खवे, यदनिच्चं तं दुक्खं। तस्मिं सति, तदुपादाय, एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'न वाता वायन्ति, न नज्जो सन्दन्ति, न गब्भिनियो विजायन्ति, न चन्दिमसुरिया उदेन्ति वा अपेन्ति वा एसिकट्ठायिट्ठिता' ति। वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—न वाता वायन्ति...पे०...एसिकट्ठायिट्ठिता ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"इति खो, भिक्खवे, यदनिच्चं तं दुक्खं। तस्मिं सति, तदुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जति—न वाता वायन्ति...पे०...एसिकट्ठायिट्ठिता" ति॥ •

---

३. तृतीय गमनवर्ग

४५. न वातसूत्र : : मिथ्यादृष्टि का मूल

४५. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! क्या होने पर, किस का उपादान कर, किस में अभिनिवेश कर ऐसी मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'न हवाएँ चलती हैं, ...पूर्ववत्...अचल स्तम्भ की तरह स्थिर हैं?'" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने पर, वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर उस का

४६-६९. *[दुतियवग्गे विय चतुवीसति सुत्तानि पूरेतब्बानि]* •

७०. अदुक्खमसुखीसुत्तं

७०. सावत्थिनिदानं। ''किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, [R.222] किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा''' ति?

''भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

''रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि [N.435] उप्पज्जति—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति। वेदनाय सति ...पे०...सञ्ञाय सति... सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, [B.183] विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''इति खो, भिक्खवे, यदनिच्चं तं दुक्खं। तस्मिं सति, तदुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति। वेदना...सञ्ञा... सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा'' ति?

''अनिच्चं, भन्ते''...पे०...विपरिणामधम्मं, अपि नु तं अनुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जेय्य—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति, अरोगो परं मरणा' ति? ''नो हेतं, भन्ते''।

उपादान कर, उस में अभिनिवेश कर पुरुष ऐसी धारणा बना लेता है—न हवाएँ चलती हैं...पूर्ववत्...। ...अचल स्तम्भ के समान स्थिर हैं''॥ •

४६-६९. *(पूर्वोक्त सूत्र द्वितीय वर्ग की तरह इन चौबीस सूत्रों का विस्तार कर लेना चाहिये।)*

७०. अदु:खीअसुखीसूत्र : : आत्मविषयक मिथ्यादृष्टि

७०. ...**श्रावस्ती में** ही...।''भिक्षुओ! क्या होने पर, किस का उपादान कर...यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'मरणानन्तर आत्मा अदु:खीअसुखी एवं नीरोग होता है?''' ...पूर्ववत्...।

''भिक्षुओ! रूप के होने पर, वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर, विज्ञान का उपादान कर, विज्ञान में अभिनिवेश करने से मनुष्य को यह धारणा उत्पन्न होती है—'मरणानन्तर आत्मा अदु:खीअसुखी एवं नीरोग रहता है'। ...पूर्ववत्...॥

"इति खो, भिक्खवे, यदनिच्चं तं दुक्खं। तस्मिं सति, तदुपादाय एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा''' ति॥ (ततियपेय्यालो) •

ततियगमनवग्गो॥

"इस तरह, भिक्षुओ! जो अनित्य है वह दुःख है। उस के होने पर, उस का उपादान तथा अभिनिवेश करने से यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'मरणानन्तर आत्मा अदुःखीअसुखी एवं नीरोग रहता है।''' •

तृतीय गमनवर्ग समाप्त॥

चतुत्थो गमनवग्गो

७१. नवातसुत्तं

७१. सावत्थिनिदानं। "किस्मि नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'न वाता वायन्ति, न नज्जो सन्दन्ति, न [R.223] गब्भिनियो विजायन्ति, न चन्दिमसुरिया उदेन्ति वा अपेन्ति वा एसिकट्ठायिट्ठिता'" ति?

भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'न वाता वायन्ति...पे०...एसिकट्ठायिट्ठिता' ति। वेदनाय सति...पे०... सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'न वाता वायन्ति...पे०...एसिकट्ठायिट्ठिता' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"। [N.436]

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"। [B.184]

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

---

४. चतुर्थ गमनवर्ग

७१. न वातसूत्र : : मिथ्यादृष्टि का मूल

७१. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! क्या होने पर, किस का उपादान कर तथा किस का अभिनिवेश करने से यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'न हवाएँ चलती हैं...पूर्ववत्...अचल स्तम्भ के समान स्थिर हैं?'" ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! रूप के होने पर, रूप के उपादान से, रूप में अभिनिवेश करने पर...वेदना... संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर, विज्ञान का उपादान करने पर, विज्ञान में अभिनिवेश से यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'न हवाएँ चलती हैं...पूर्ववत्...अचल स्तम्भ के समान स्थिर हैं। ...पूर्ववत्... ॥

"भिक्षुओ! क्या मानते हो—रूप नित्य है या...अनित्य है, भन्ते! इसलिये भिक्षुओ!

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता''' ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिह, भिक्खवे, यं किञ्चि रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा, ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। या काचि वेदना...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा, ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती" ति॥ •

७२-९५. *[दुतियवग्गे विय चतुवीसति सुत्तानि पूरेतब्बानि]* •

९६. अदुक्खमसुखीसुत्तं

९६. सावत्थिनिदानं। "किस्मिं नु खो, भिक्खवे, सति, किं उपादाय, किं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा''' ति?

"भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा...पे०...।

जो कुछ भी अतीत अनागत एवं वर्तमान रूप है...वेदना है...संज्ञा है...संस्कार हैं...विज्ञान है, फिर भले ही वह आभ्यन्तर हो या बाह्य...दूर हो या समीप—ऐसे समस्त विज्ञान के विषय में...'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'—ऐसा यथार्थतः समझना चाहिये। ऐसा समझ लेने वाला पुरुष ही—'अब मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी है...अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है'—ऐसा भी समझ लेता है"॥ •

७२-९५. सूत्र *(पूर्वोक्त द्वितीय वर्ग में व्याख्यात सूत्रों के समान ही इनका भी विस्तार कर लेना चाहिये।)* •

९६. अदुःखीअसुखीसूत्र : : आत्मविषयक मिथ्यादृष्टि

९६. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! क्या होने पर, किस का उपादान करने से...ऐसी मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है—'यह आत्मा, मरणानन्तर अदुःखी, असुखी एवं नीरोग रहता है?''' ...पूर्ववत्...।

"रूपे खो, भिक्खवे, सति, रूपं उपादाय, रूपं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि [N.437] उप्पज्जति—'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति। वेदनाय सति...सञ्ञाय सति...सङ्खारेसु सति...विञ्ञाणे सति, विञ्ञाणं उपादाय, विञ्ञाणं अभिनिविस्स एवं दिट्ठि उप्पज्जति— 'अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति। तं किं [R.224] मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"वेदना...सञ्ञा...सङ्खारा...विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं [B.185] मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिह, भिक्खवे, यं किञ्चि रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा, ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। या काचि वेदना...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा, ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं।

"भिक्षुओ! रूप के होने पर...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान के होने पर यह मिथ्या धारणा उत्पन्न होती है...पूर्ववत्...। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य? ...पूर्ववत्...। इसलिये, भिक्षुओ! जो कुछ भी अतीत अनागत एवं वर्तमान रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान है, फिर भले ही वह आध्यात्मिक हो या बाह्य...पूर्ववत्...'यह मेरा नहीं है'—ऐसा सम्यक्प्रज्ञा द्वारा यथार्थतः जान लेना चाहिये।

''एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। [N.438] 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती'' ति। •

चतुत्थगमनवग्गो॥

पुरिमगमने अट्ठारस वेय्याकरणा।
दुतियगमने छब्बीसं वित्थारेतब्बानि॥
ततियगमने छब्बीसं वित्थारेतब्बानि।
चतुत्थगमने छब्बीसं वित्थारेतब्बानि॥ •

दिट्ठिसंयुत्तं समत्तं॥

''भिक्षुओ! ऐसा जान लेने वाले विद्वान् आर्यश्रावक की रूप में भी, वेदना में भी, संज्ञा में भी, संस्कारों में भी, विज्ञान में भी अरुचि हो जाती है। इस अरुचि के कारण उस को वैराग्य हो जाता है। वैराग्य होने पर 'मैं विमुक्त हो गया'—यह ज्ञान सहज ही है। तथा वह यह समझ जाता है—'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी, धर्मसाधना सम्पन्न हो गयी कर्तव्य कर्म पूर्ण हो गये, अब मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है''॥ •

चतुर्थ गमनवर्ग सम्पन्न॥

इस दृष्टिसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों का विवरण

प्रथम वर्ग में अट्ठारह सूत्रों का व्याख्यान समझना चाहिये।
द्वितीय वर्ग में छब्बीस सूत्रों का व्याख्यान समझना चाहिये।
तृतीय वर्ग में छब्बीस सूत्रों का व्याख्यान समझना चाहिये।
तथा चतुर्थ वर्ग में भी छब्बीस सूत्रों का ही व्याख्यान समझना चाहिये॥ •

दृष्टिसंयुक्त समाप्त॥

२५. ओक्कन्तसंयुत्तं

१. चक्खुसुत्तं

१. सावत्थिनिदानं। "चक्खु, भिक्खवे, अनिच्चं [N.439, B.186, R.225] विपरिणामि अञ्ञथाभावि; सोतं अनिच्चं विपरिणामि अञ्ञथाभावि; घानं अनिच्चं विपरिणामि अञ्ञथाभावि; जिव्हा अनिच्चा विपरिणामिनी अञ्ञथाभाविनी; कायो अनिच्चो विपरिणामि अञ्ञथाभावि; मनो अनिच्चो विपरिणामि अञ्ञथाभावि। यो, भिक्खवे, इमे धम्मे एवं सद्दहति अधिमुच्चति—अयं वुच्चति सद्धानुसारी, ओक्कन्तो सम्मत्तनियामं, सप्पुरिसभूमिं ओक्कन्तो, वीतिवत्तो पुथुज्जनभूमिं; अभब्बो तं कम्मं कातुं यं कम्मं कत्वा निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा पेत्तिविसयं वा उपपज्जेय्य; अभब्बो च ताव कालं कातुं याव न सोतापत्तिफलं सच्छिकरोति।

"यस्स खो, भिक्खवे, इमे धम्मा एवं पञ्ञाय मत्तसो निज्झानं खमन्ति, अयं वुच्चति—'धम्मानुसारी, ओक्कन्तो सम्मत्तनियामं, सप्पुरिसभूमिं ओक्कन्तो, वीतिवत्तो पुथुज्जनभूमिं; अभब्बो तं कम्मं कातुं यं कम्मं कत्वा निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा पेत्तिविसयं वा उपपज्जेय्य; अभब्बो च ताव कालं कातुं याव न सोतापत्तिफलं

---

२५. अवक्रान्त संयुक्त

१. चक्षुःसूत्र : : **चक्षु अनित्य है**

१. ...**श्रावस्ती में** ही...।..."भिक्षुओ! चक्षु अनित्य है, परिवर्तनशील है, अन्यथा (परिणत) हो जाने वाला है। श्रोत्र अनित्य है...पूर्ववत्...घ्राण अनित्य है...जिह्वा अनित्य है...। काय अनित्य है, परिवर्तनशील है, अन्यथा हो जाने वाला है। मन अनित्य है, परिवर्तनशील है, अन्यथाभावी है। भिक्षुओ! जो (साधक) इन धर्मों के विषय में ऐसा श्रद्धापूर्वक जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है। ऐसे साधक को **श्रद्धानुसारी** कहते हैं। उस का संसार में आना जाना समाप्त हो चुका है। वह सत्पुरुषभूमि में प्रविष्ट हो चुका है, वह पृथग्जनभूमि से दूर हो चुका है। उस से अब ऐसे कर्म हो ही नहीं सकते, जिन कर्मों को करने से उस को नरक में या पशुयोनि एवं प्रेतयोनि में उत्पन्न होना पड़े। ऐसा साधक तब तक मृत्यु का ग्रास भी नहीं बन सकता, जब तक कि उसे स्रोतआपत्तिफल का साक्षात्कार न हो जाय।

"भिक्षुओ! जिस साधक को ये धर्म प्रज्ञापूर्वक पूर्णतः ध्यान में आ जाते हैं वह **धर्मानुसारी** कहलाता है। इस का भी संसार में आना जाना समाप्त हो चुका होता है, यह सत्पुरुषभूमि में प्रविष्ट हो चुका है। पृथग्जनभूमि से दूर हो चुका है। उस से ऐसे कर्म हो

सच्छिकरोति। यो, भिक्खवे, इमे धम्मे एवं पजानाति एवं पस्सति, अयं वुच्चति— 'सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो''' ति॥

२. रूपसुत्तं

२. सावत्थिनिदानं। ''रूपा, भिक्खवे, अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो; सद्दा अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो; गन्धा अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो; रसा अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो; फोट्ठब्बा अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो; धम्मा अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो। यो, भिक्खवे, इमे धम्मे एवं सद्दहति अधिमुच्चति, अयं वुच्चति—सद्धानुसारी, ओक्कन्तो [R.226] सम्मत्तनियामं, सप्पुरिसभूमिं ओक्कन्तो, वीतिवत्तो पुथुज्जनभूमिं; अभब्बो तं [N.440] कम्मं कातुं यं कम्मं कत्वा निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा पेत्तिविसयं वा [B.187] उपपज्जेय्य; अभब्बो च ताव कालं कातुं याव न सोतापत्तिफलं सच्छिकरोति।

''यस्स खो, भिक्खवे, इमे धम्मा एवं पञ्ञाय मत्तसो निज्झानं खमन्ति, अयं वुच्चति—'धम्मानुसारी, ओक्कन्तो सम्मत्तनियामं, सप्पुरिसभूमिं ओक्कन्तो, वीतिवत्तो पुथुज्जनभूमिं; अभब्बो तं कम्मं कातुं यं कम्मं कत्वा निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा पेत्तिविसयं वा उपपज्जेय्य; अभब्बो च ताव कालं कातुं याव न सोतापत्तिफलं सच्छिकरोति। यो, भिक्खवे, इमे धम्मे एवं पजानाति एवं पस्सति, अयं वुच्चति— 'सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो''' ति॥

३. विञ्ञाणसुत्तं

३. सावत्थिनिदानं। ''चक्खुविञ्ञाणं, भिक्खवे, अनिच्चं विपरिणामि अञ्ञथा-

---

ही नहीं सकते, जिन के कारण, उसे नरक में, पशुयोनि या प्रेतयोनि में जाना पड़े। तथा उस की मृत्यु भी तब तक नहीं हो सकती जब तक कि वह स्रोतआपत्तिफल का साक्षात्कार न कर ले। भिक्षुओ! जो (साधक) इस प्रकार जान लेता है, समझ लेता है वह स्रोतआपन्न, धर्ममार्ग में स्थित तथा निश्चय ही सम्बोधि की ओर सतत अग्रसर होने वाला है॥''

२. रूपसूत्र : : रूप अनित्य हैं

२. ...**श्रावस्ती में** ही...।...''भिक्षुओ! रूप अनित्य हैं, परिवर्तनशील हैं...पूर्ववत्...। शब्द...गन्ध...रस...स्प्रष्टव्य...। जो इन धर्मों को इस तरह प्रज्ञा से श्रद्धापूर्वक जान लेता है उसको 'श्रद्धानुसारी' कहते हैं। ...पूर्ववत्...। ...बोधि की ओर सतत अग्रसर होने वाला होता है''॥

भावि; सोतविञ्ञाणं...घानविञ्ञाणं...जिव्हाविञ्ञाणं...कायविञ्ञाणं...मनोविञ्ञाणं अनिच्चं विपरिणामि अञ्ञथाभावि। यो भिक्खवे...पे०...सम्बोधिपरायनो''' ति॥ ●

४. सम्फस्ससुत्तं

४. सावत्थिनिदानं। ''चक्खुसम्फस्सो, भिक्खवे, अनिच्चो विपरिणामी अञ्ञथाभावी; सोतसम्फस्सो...घानसम्फस्सो...जिव्हासम्फस्सो...कायसम्फस्सो... मनोसम्फस्सो अनिच्चो विपरिणामी अञ्ञथाभावी। यो, भिक्खवे, इमे धम्मे एवं सद्दहति अधिमुच्चति, अयं वुच्चति 'सद्धानुसारी...पे०...सम्बोधिपरायनो''' ति॥ ●

५. सम्फस्सजासुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। ''चक्खुसम्फस्सजा, भिक्खवे, वेदना अनिच्चा विपरिणामी अञ्ञथाभावी; सोतसम्फस्सजा वेदना...पे०...घानसम्फस्सजा वेदना...पे०...जिव्हा-सम्फस्सजा वेदना...पे०...कायसम्फस्सजा वेदना...पे०...मनोसम्फस्सजा वेदना अनिच्चा विपरिणामी अञ्ञथाभावी। यो, भिक्खवे, इमे धम्मे एवं सद्दहति अधिमुच्चति, अयं वुच्चति 'सद्धानुसारी...पे०...सम्बोधिपरायनो''' ति॥ ●

६. रूपसञ्ञासुत्तं

६. सावत्थिनिदानं। ''रूपसञ्ञा, भिक्खवे, अनिच्चा [N.441, B.188, R.227] विपरिणामी अञ्ञथाभावी; सद्दसञ्ञा...गन्धसञ्ञा...रससञ्ञा...फोट्ठब्बसञ्ञा...

---

३. विज्ञानसूत्र : : विज्ञान अनित्य हैं

३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान एवं मनोविज्ञान अनित्य, विनाशी एवं अन्यथाभावी (परिवर्तनशील) है। भिक्षुओ! जो इन धर्मों को...पूर्ववत्...सम्बोधि की ओर सतत अग्रसर होने वाला होता है''॥ ●

४. संस्पर्शसूत्र : : चक्षुरादि संस्पर्श अनित्य है

४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! चक्षुसंस्पर्श, श्रोत्रसंस्पर्श, घ्राणसंस्पर्श, जिह्वासंस्पर्श एवं कायसंस्पर्श अनित्य हैं, विनाशी हैं, परिणमनशील हैं। भिक्षुओ! जो इन धर्मों को...पूर्ववत्...सतत अग्रसर होने वाला होता है''॥ ●

५. संस्पर्शज वेदनासूत्र : : वेदना अनित्य है

५. ...**श्रावस्ती में** ही...।...''भिक्षुओ! चक्षु:संस्पर्शज वेदना, श्रोत्रसंस्पर्शज वेदना, घ्राणसंस्पर्शज वेदना, जिह्वासंस्पर्शज वेदना, एवं कायसंस्पर्शज वेदना अनित्य है, विनशनशील तथा परिवर्तनशील है। जो, भिक्षुओ! इन धर्मों को...पूर्ववत्...सम्बोधि की ओर अग्रसर होने वाला होता है''॥ ●

धम्मसञ्ञा अनिच्चा विपरिणामी अञ्ञथाभावी। यो, भिक्खवे, इमे धम्मे एवं सद्दहति अधिमुच्चति, अयं वुच्चति 'सद्धानुसारी...पे०...सम्बोधिपरायनो''' ति॥ •

७. रूपसञ्चेतनासुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। ''रूपसञ्चेतना, भिक्खवे, अनिच्चा विपरिणामी अञ्ञथाभावी; सद्दसञ्चेतना...गन्धसञ्चेतना...रससञ्चेतना...फोट्ठब्बसञ्चेतना...धम्मसञ्चेतना...अनिच्चा विपरिणामी अञ्ञथाभावी। यो, भिक्खवे, इमे धम्मे एवं सद्दहति अधिमुच्चति, अयं वुच्चति 'सद्धानुसारी...पे०...सम्बोधिपरायनो''' ति॥ •

८. रूपतण्हासुत्तं

८. सावत्थिनिदानं। ''रूपतण्हा, भिक्खवे, अनिच्चा विपरिणामी अञ्ञथाभावी; सद्द तण्हा...गन्धतण्हा...रसतण्हा...फोट्ठब्बतण्हा...धम्मतण्हा...अनिच्चा विपरिणामी अञ्ञथाभावी। यो, भिक्खवे, इमे धम्मे एवं सद्दहति अधिमुच्चति, अयं वुच्चति 'सद्धानुसारी...पे०...सम्बोधिपरायनो''' ति॥ •

९. पठवीधातुसुत्तं

९. सावत्थिनिदानं। ''पठवीधातु, भिक्खवे, अनिच्चा विपरिणामी अञ्ञथाभावी; आपोधातु...तेजोधातु...वायोधातु...आकासधातु...विञ्ञाणधातु अनिच्चा विपरिणामी

---

६. रूपसंज्ञासूत्र　　: :　　रूपसंज्ञा अनित्य है

६. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! रूपसंज्ञा, शब्दसंज्ञा, गन्धसंज्ञा, रससंज्ञा, एवं स्प्रष्टव्यसंज्ञा अनित्य है, विनाशी है एवं परिवर्तनशील है। जो, भिक्षुओ! भिक्षु इन धर्मों को... पूर्ववत्...सम्बोधि की ओर अग्रसर होने वाला होता है''॥ •

७. रूपसञ्चेतनासूत्र　　: :　　रूपसञ्चेतना अनित्य है

७. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! रूपसञ्चेतना, शब्दसञ्चेतना, गन्धसञ्चेतना, रस-सञ्चेतना, स्प्रष्टव्यसञ्चेतना एवं धर्मसञ्चेतना अनित्य, विनाशी एवं परिवर्तनशील है। भिक्षुओ! जो भिक्षु इन धर्मों को... पूर्ववत्...अग्रसर होने वाला होता है''॥ •

८. रूपतृष्णासूत्र　　: :　　रूपतृष्णा अनित्य है

८. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! रूपतृष्णा, शब्दतृष्णा, गन्धतृष्णा, रसतृष्णा, स्प्रष्टव्यतृष्णा एवं धर्मतृष्णा अनित्य, विनाशी एवं परिवर्तनशील है। भिक्षुओ! जो साधक इन धर्मों को...पूर्ववत्...अग्रसर होने वाला होता है''॥ •

९. पृथ्वीधातुसूत्र　　: :　　पृथ्वीधातु अनित्य है

९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! पृथ्वीधातु, अब्धातु, तेजोधातु, वायुधातु,

अञ्ञथाभावी। यो, भिक्खवे, इमे धम्मे एवं सद्दहति अधिमुच्चति, अयं वुच्चति 'सद्धानुसारी...पे०...सम्बोधिपरायनो''' ति॥

१०. खन्धसुत्तं

१०. सावत्थिनिदानं। ''रूपं, भिक्खवे, अनिच्चं विपरिणामि अञ्ञथाभावि; वेदना अनिच्चा विपरिणामी अञ्ञथाभावी; सञ्ञा...सङ्खारा अनिच्चा विपरिणामिनो अञ्ञथाभाविनो; विञ्ञाणं अनिच्चं विपरिणामि अञ्ञथाभावि। यो, भिक्खवे, [N.442] इमे धम्मे एवं सद्दहति अधिमुच्चति, अयं वुच्चति सद्धानुसारी, ओक्कन्तो [B.189] सम्मत्तनियामं, सप्पुरिसभूमिं ओक्कन्तो, वीतिवत्तो पुथुज्जनभूमिं; अभब्बो तं [R.228] कम्मं कातुं यं कम्मं कत्वा निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा पेत्तिविसयं वा उपपज्जेय्य; अभब्बो च तांव कालं कातुं याव न सोतापत्तिफलं सच्छिकरोति। यस्स खो, भिक्खवे, इमे धम्मा एवं पञ्ञाय मत्तसो निज्झानं खमन्ति, अयं वुच्चति धम्मानुसारी, ओक्कन्तो सम्मत्तनियामं, सप्पुरिसभूमिं ओक्कन्तो, वीतिवत्तो पुथुज्जनभूमिं; अभब्बो तं कम्मं कातुं यं कम्मं कत्वा निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा पेत्तिविसयं वा उपपज्जेय्य; अभब्बो च ताव कालं कातुं याव न सोतापत्तिफलं सच्छिकरोति। यो, भिक्खवे, इमे धम्मे एवं पजानाति एवं पस्सति, अयं वुच्चति 'सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो''' ति॥

ओक्कन्तसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

चक्खु रूपं च विञ्ञाणं, फस्सो च वेदनाय च।
सञ्ञा च चेतना तण्हा, धातु खन्धेन ते दसा ति॥

आकाशधातु एवं विज्ञानधातु अनित्य, विनाशी एवं परिवर्तनशील हैं। भिक्षुओ! जो भिक्षु इन धर्मों को...पूर्ववत्...अग्रसर होने वाला होता है''॥

१०. स्कन्धसूत्र : : स्कन्ध अनित्य है

१०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान अनित्य हैं, विनाशी एवं परिवर्तनशील हैं। भिक्षुओ! जो भिक्षु इन धर्मों को...पूर्ववत्... स्रोतआपन्न, धर्म से च्युत न होने वाला तथा सम्बोधि की ओर निरन्तर आगे बढने वाला होता है''॥

अवक्रान्तसंयुक्त समाप्त॥

इस अवक्रान्तसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों का क्रम यह है— १. चक्षुःसूत्र, २. रूपसूत्र, ३. विज्ञानसूत्र, ४. स्पर्शसूत्र, ५. वेदनासूत्र, ६. संज्ञासूत्र, ७. सञ्चेतनासूत्र, ८. तृष्णासूत्र, ९. धातुसूत्र एवं १०. स्कन्धसूत्र॥

२६. उप्पादसंयुत्तं

१. चक्खुसुत्तं

[N.443, B.190] १. सावत्थिनिदानं। "यो खो, भिक्खवे, चक्खुस्स उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो। यो सोतस्स उप्पादो ठिति...पे०...यो घानस्स उप्पादो ठिति...यो जिव्हाय उप्पादो ठिति...यो कायस्स उप्पादो ठिति...यो मनस्स उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो [R.229] उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो। यो च, भिक्खवे, चक्खुस्स निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो। यो सोतस्स निरोधो...पे०...यो घानस्स निरोधो...यो जिव्हाय निरोधो...यो कायस्स निरोधो...यो मनस्स निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो" ति॥ ●

२. रूपसुत्तं

२. सावत्थिनिदानं। "यो खो, भिक्खवे, रूपानं उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो। यो सद्दानं...यो गन्धानं...यो रसानं...यो फोट्ठब्बानं...यो धम्मानं उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो,

---

२६. उत्पादसंयुक्त

१. चक्षुःसूत्र : : **चक्षुर्निरोध ही दुःखनिरोध**

१. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! यह जो चक्षु का उत्पाद, स्थिति, उद्भूति एवं प्रादुर्भाव है, वस्तुतः यह दुःख का उत्पाद, रोगों की स्थिति तथा जरामरण का प्रादुर्भाव है। यह जो श्रोत्र का...घ्राण का...जिह्वा का...काय का...मन का उत्पाद, स्थिति, उद्भव एवं प्रादुर्भाव है, यह सब एक तरह से दुःख का ही उत्पाद, रोगों की स्थिति एवं जरामरण का ही प्रादुर्भाव है। (इसके विपरीत) और जो, भिक्षुओ! चक्षु का...श्रोत्र का...घ्राण का...जिह्वा का...काय का...मन का निरोध, व्युपशम (शान्ति), अस्त होना है यह एक तरह से उस दुःख का ही निरोध एवं रोगों का व्युपशम एवं जरामरण का नष्ट होना ही है"॥ ●

२. रूपसूत्र : : **रूपनिरोध से दुःखनिरोध**

२. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! यहाँ यह जो रूप का उत्पाद, स्थिति, अभिनिर्वृत्ति (जन्म), प्रादुर्भूति है यह वस्तुतः दुःख का उत्पाद, रोगों की स्थिति एवं जरामरण का प्रादुर्भाव ही है। शब्द का, गन्ध का, रस का, स्प्रष्टव्यों का, धर्मों का...पूर्ववत्...।

दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो। यो च खो, भिक्खवे, रूपानं निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो। यो सद्दानं...यो गन्धानं...यो रसानं...यो फोट्ठब्बानं...यो धम्मानं निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ ●

३. विञ्ञाणसुत्तं

३. सावत्थिनिदानं। ''यो खो, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञाणस्स उप्पादो [B.191] ठिति ...पे०...जरामरणस्स पातुभावो...पे०...यो मनोविञ्ञाणस्स उप्पादो ठिति [N.444] ...पे०... जरामरणस्स पातुभावो। यो च खो, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञाणस्स निरोधो ...पे०... जरामरणस्स अत्थङ्गमो...पे०...यो मनोविञ्ञाणस्स निरोधो...पे०... जरामरणस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ ●

४. सम्फस्ससुत्त

४. सावत्थिनिदानं। ''यो खो, भिक्खवे, चक्खुसम्फस्सस्स उप्पादो [R.230] ठिति ...पे०...जरामरणस्स पातुभावो...पे०...यो मनोसम्फस्सस्स उप्पादो ठिति ...पे०... जरामरणस्स पातुभावो। यो च खो, भिक्खवे, चक्खुसम्फस्सस्स निरोधो...पे०... जरामरणस्स अत्थङ्गमो...पे०...यो मनोसम्फस्सस्स निरोधो...पे०...जरामरणस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ ●

(इसके विपरीत—) भिक्षुओ! यहाँ जो रूप का, शब्द का, गन्ध का, रस का, स्प्रष्टव्य का एवं धर्मों का निरोध है, व्युपशम है यह भी वस्तुत: दु:खों का निरोध, रोगों का शमन तथा जरामरण का प्रादुर्भाव ही है॥'' ●

३. विज्ञानसूत्र : : चक्षुर्विज्ञान

३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! यह जो चक्षुर्विज्ञान का उत्पाद, स्थिति ...पूर्ववत्... मनोविज्ञान का प्रादुर्भाव है वह सब...। तथा, भिक्षुओ! यह जो चक्षुर्विज्ञान का...मनोविज्ञान का निरोध है वह सब...जरामरण का निरोध होना ही है''॥ ●

४. गंस्पर्शसूत्र : : चक्षु:संस्पर्श

४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ''भिक्षुओ! यह जो चक्षु:संस्पर्श का उत्पाद, स्थिति...प्रादुर्भाव है...मन:संस्पर्श का जो उत्पाद, स्थिति एवं... प्रादुर्भाव है वह दु:ख का ही...प्रादुर्भाव है। तथा, भिक्षुओ! यह जो चक्षु:संस्पर्श...मन:संस्पर्श का निरोध है वह सब...पूर्ववत्...जरामरण का ही निरोध होना है''॥ ●

५. सम्फस्सजसुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। ''यो खो, भिक्खवे, चक्खुसम्फस्सजाय वेदनाय उप्पादो ठिति...पे०...जरामरणस्स पातुभावो...पे०...यो मनोसम्फस्सजाय वेदनाय उप्पादो ठिति...पे०...जरामरणस्स पातुभावो। यो च खो, भिक्खवे, चक्खुसम्फस्सजाय वेदनाय निरोधो वूपसमो...पे०...जरामरणस्स अत्थङ्गमो...पे०...यो मनोसम्फस्सजाय वेदनाय निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ •

६. सञ्ञासुत्तं

६. सावत्थिनिदानं। ''यो खो, भिक्खवे, रूपसञ्ञाय उप्पादो ठिति...पे०...जरामरणस्स पातुभावो...पे०...यो धम्मसञ्ञाय उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो। यो च खो, भिक्खवे, रूपसञ्ञाय निरोधो...पे०...जरामरणस्स अत्थङ्गमो...पे०...यो धम्मसञ्ञाय निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ •

७. सञ्चेतनासुत्तं

[N.445, B.192] ७. सावत्थिनिदानं। ''यो खो, भिक्खवे, रूपसञ्चेतनाय उप्पादो

---

५. संस्पर्शसूत्र : : संस्पर्शज वेदना का निरोध

५. ...**श्रावस्ती में** ही...।...''भिक्षुओ! यह जो चक्षुःसंस्पर्शज वेदना का उत्पाद, स्थिति... पूर्ववत्...जरामरण का प्रादुर्भाव...पूर्ववत्...मनःसंस्पर्शज वेदना का उत्पाद ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! यह जो चक्षुःसंस्पर्शज वेदना...मनःसंस्पर्शज वेदना का निरोध व्युपशम...पूर्ववत्...जरामरण का ही अस्त होना वस्तुतः दुःख का ही निरोध है, रोगों की शान्ति तथा जरामरण का अस्त होना ही है''॥ •

६. संज्ञासूत्र : : संस्पर्शज संज्ञा का निरोध

६. ...**श्रावस्ती में** ही...।...''भिक्षुओ! यह जो रूपसंज्ञा का...धर्मसंज्ञा का उत्पाद, स्थिति...जरामरण का प्रादुर्भाव है, यह वस्तुतः दुःख का ही उत्पाद है, स्थिति...जरामरण का ही प्रादुर्भाव है। तथा, भिक्षुओ! यह जो रूपसंज्ञा का...धर्मसंज्ञा का निरोध, व्युपशम, अस्त होना है यह दुःख का ही वस्तुतः निरोध है रोगों का शमन है तथा जरामरण का अस्त होना है''॥ •

७. सञ्चेतनासूत्र : : सञ्चेतना का निरोध

७. ...**श्रावस्ती में** ही...।...''भिक्षुओ! यह जो रूपसञ्चेतना का...धर्मसञ्चेतना का

ठिति...पे०...जरामरणस्स पातुभावो...पे०...यो धम्मसञ्चेतनाय उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो। यो च खो, भिक्खवे, रूपसञ्चेतनाय निरोधो...पे०...जरामरणस्स अत्थङ्गमो...पे०...यो धम्मसञ्चेतनाय निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ •

८. तण्हासुत्तं

८. सावत्थिनिदानं। ''यो खो, भिक्खवे, रूपतण्हाय उप्पादो ठिति...पे०... जरामरणस्स पातुभावो...पे०...यो धम्मतण्हाय उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो। यो च खो, भिक्खवे, रूपतण्हाय निरोधो...पे०...जरामरणस्स अत्थङ्गमो...पे०...यो धम्मतण्हाय [R.231] निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ •

९. धातुसुत्तं

९. सावत्थिनिदानं। ''यो खो, भिक्खवे, पठवीधातुया उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो...पे०...जरामरणस्स पातुभावो; यो आपोधातुया...यो तेजोधातुया ...यो वायोधातुया...यो आकासधातुया...यो विञ्ञाणधातुया उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो। यो च खो,

---

उत्पाद है, स्थिति है प्रादुर्भाव है, यह वस्तुतः दुःख का ही उत्पाद है, रोगों की स्थिति एवं जरामरण का प्रादुर्भाव है। तथा, भिक्षुओ! यह जो रूपसञ्चेतना का...धर्मसञ्चेतना का निरोध है...जरामरण का अस्त होना है यह भी वस्तुतः दुःख का ही निरोध है, रोगों का उपशम है तथा जरामरण का अस्त होना है''॥ •

८. तृष्णासूत्र : : तृष्णा का निरोध

८. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! यह जो रूपतृष्णा...धर्मतृष्णा का उत्पाद, स्थिति एवं प्रादुर्भाव है, यह वस्तुतः दुःख का ही उत्पाद, स्थिति एवं जरामरण का प्रादुर्भाव है। इसी तरह, भिक्षुओ! यह जो रूपतृष्णा का...धर्मतृष्णा का निरोध, उपशम एवं अस्तगमन है, यह भी वस्तुतः दुःखनिरोध, रोगशान्ति एवं जरामरण का अस्त होना है''॥ •

९. धातुसूत्र : : पृथ्वीधातु आदि का निरोध

९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! यह जो पृथ्वीधातु का, अब्धातु का, तेजोधातु का, वायोधातु का, आकाशधातु का, विज्ञानधातु का उत्पाद, स्थिति, अभिनिर्वृत्ति

भिक्खवे, पठवीधातुया निरोधो...पे०...जरामरणस्स अत्थङ्गमो; यो आपोधातुया निरोधो...यो तेजोधातुया निरोधो...यो वायोधातुया निरोधो...यो आकासधातुया निरोधो...यो विञ्ञाणधातुया निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ •

१०. खन्धसुत्तं

[N.446, B.193] १०. सावत्थिनिदानं। ''यो खो, भिक्खवे, रूपस्स उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो। यो वेदनाय...यो सञ्ञाय...यो सङ्खारानं...यो विञ्ञाणस्स उप्पादो ठिति अभिनिब्बत्ति पातुभावो, दुक्खस्सेसो उप्पादो, रोगानं ठिति, जरामरणस्स पातुभावो। यो च खो, भिक्खवे, रूपस्स निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो। यो वेदनाय...यो सञ्ञाय...यो सङ्खारानं...यो विञ्ञाणस्स निरोधो वूपसमो अत्थङ्गमो, दुक्खस्सेसो निरोधो, रोगानं वूपसमो, जरामरणस्स अत्थङ्गमो'' ति॥ •

उप्पादसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

चक्खु रूपं च विञ्ञाणं, फस्सो च वेदनाय च।
सञ्ञा च चेतना तण्हा, धातु खन्धेन ते दसा ति॥ •

एवं प्रादुर्भाव है वह दुःख का ही उत्पाद...जरामरण का प्रादुर्भाव है। तथा, भिक्षुओ! पृथ्वीधातु का...पूर्ववत्... विज्ञानधातु का निरोध है वह वस्तुतः दुःख का ही निरोध है, रोगों का शमन है तथा जरामरण का अस्तगमन है''॥ •

१०. स्कन्धसूत्र : : उपादानस्कन्धों का निरोध

१०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! यह जो रूप का, वेदना का, संज्ञा का, संस्कारों का, विज्ञान का उत्पाद, स्थिति, जन्म एवं प्रादुर्भाव है यह वस्तुतः दुःख का उत्पाद, स्थिति, जन्म एवं प्रादुर्भाव है। तथा, भिक्षुओ! यह जो रूप का, वेदना का, संज्ञा का, संस्कारों का, विज्ञान का जो निरोध, उपशम एवं अस्तगमन है, वह सब दुःख का निरोध, रोगों की शान्ति तथा जरामरण का ही अस्तगमन (नाश) है''॥ •

उत्पादसंयुक्त समाप्त॥

इस उत्पादसंयुक्त में ये सूत्र व्याख्यात हुए हैं—१. चक्षुःसूत्र, २. रूपसूत्र, ३. विज्ञानसूत्र, ४. स्पर्शसूत्र, ५. संस्पर्शज वेदनासूत्र, ६. संज्ञासूत्र, ७. चेतनासूत्र, ८. तृष्णासूत्र, ९. धातुसूत्र एवं १०. स्कन्धसूत्र॥

२७. किलेससंयुत्तं

१. चक्खुसुत्तं

१. सावत्थिनिदानं। "यो, भिक्खवे, चक्खुस्मिं [N.447, B.194, R.232] छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यो सोतस्मिं छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यो घानस्मिं छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यो जिव्हाय छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यो कायस्मिं छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यो मनस्मिं छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो इमेसु छसु ठानेसु चेतसो उपक्किलेसो पहीनो होति, नेक्खम्मनिन्नं चस्स चित्तं होति। नेक्खम्मपरिभावितं चित्तं कम्मनियं खायति अभिञ्ञा सच्छिकरणीयेसु धम्मेसू" ति॥ •

२. रूपसुत्तं

२. सावत्थिनिदानं। "यो, भिक्खवे, रूपेसु छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यो सद्देसु...यो गन्धेसु...यो रसेसु...यो फोट्ठब्बेसु...यो धम्मेसु छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो इमेसु छसु ठानेसु चेतसो उपक्किलेसो पहीनो होति, नेक्खम्मनिन्नं चस्स चित्तं होति। नेक्खम्मपरिभावितं चित्तं कम्मनियं खायति अभिञ्ञा सच्छिकरणीयेसु धम्मेसू" ति॥ •

---

२७. क्लेशसंयुक्त

१. चक्षुःसूत्र : : चक्षु का छन्दराग चित्त का उपक्लेश

१. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भिक्षुओ! चक्षुरिन्द्रिय में जो छन्दराग (कामना) है वह चित्त का उपक्लेश (चित्तमल) है। श्रोत्र में...घ्राण में...जिह्वा में...कायेन्द्रिय में...मन में जो छन्दराग है वह चित्त का उपक्लेश ही है। भिक्षुओ! जब साधक भिक्षु का इन (उपर्युक्त) छह स्थानों से उपक्लेश प्रहीण (नष्ट) हो जाता है तब उस साधक के चित्त का झुकाव नैष्कर्म्य (संसारत्याग) की ओर झुक जाता है। इस नैष्कर्म्य की तरफ झुकने पर वह अभ्यस्त चित्त प्रज्ञापूर्वक साक्षात्करणीय धर्मों में लगता है"॥ •

२. रूपसूत्र : : रूप में छन्दराग चित्त का उपक्लेश

२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भिक्षुओ! जो रूप में, शब्द में, गन्ध में, रस में, स्प्रष्टव्य में मनोधर्मों में जो छन्दराग है वह चित्त का उपक्लेश है। जब, भिक्षुओ! उस साधक भिक्षु के चित्त का उपक्लेश इन छह स्थानों से प्रहीण हो जाता है...पूर्ववत्...चित्त प्रज्ञापूर्वक साक्षात्करणीय धर्मों में लग जाता है"॥ •

३. विञ्ञाणसुत्तं

३. सावत्थिनिदानं। ''यो, भिक्खवे, चक्खुविञ्ञाणस्मिं छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यो सोतविञ्ञाणस्मिं...यो घानविञ्ञाणस्मिं...यो जिव्हाविञ्ञाणस्मिं...यो कायविञ्ञाणस्मिं...यो मनोविञ्ञाणस्मिं छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यतो खो, [R.233] भिक्खवे, भिक्खुनो इमेसु छसु ठानेसु चेतसो उपक्किलेसो पहीनो होति, नेक्खम्मनिन्नं चस्स चित्तं होति। नेक्खम्मपरिभावितं चित्तं कम्मनियं खायति अभिञ्ञा सच्छिकरणीयेसु धम्मेसू'' ति॥ ●

४. सम्फस्ससुत्तं

[N.448, B.195] ४. सावत्थिनिदानं। ''यो, भिक्खवे, चक्खुसम्फस्सस्मिं छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यो सोतसम्फस्सस्मिं...यो घानसम्फस्सस्मिं...यो जिव्हा-सम्फस्सस्मिं...यो कायसम्फस्सस्मिं...यो मनोसम्फस्सस्मिं छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो...पे०...अभिञ्ञा सच्छिकरणीयेसु धम्मेसू'' ति॥ ●

५. सम्फस्सजसुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। ''यो, भिक्खवे, चक्खुसम्फस्सजाय वेदनाय छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यो सोतसम्फस्सजाय वेदनाय...यो घानसम्फस्सजाय वेदनाय ...यो जिव्हासम्फस्सजाय वेदनाय...यो कायसम्फस्सजाय वेदनाय...यो मनोसम्फस्स-

---

३. विज्ञानसूत्र : : **विज्ञान में छन्दराग चित्त का उपक्लेश**

३. ...**श्रावस्ती में** ही...।...''भिक्षुओ! चक्षुर्विज्ञान में, श्रोत्रविज्ञान में, घ्राणविज्ञान में, जिह्वाविज्ञान में, कायविज्ञान में एवं मनोविज्ञान में जो साधक का छन्दराग है वह चित्त का उपक्लेश है। जब, भिक्षुओ! इस साधक के चित्त का उपक्लेश इन छह स्थानों से प्रहीण हो जाता है...पूर्ववत्...साक्षात्करणीय धर्मों में लग जाता है''॥ ●

४. संस्पर्शसूत्र : : **संस्पर्श में छन्दराग चित्त का उपक्लेश**

४. ...**श्रावस्ती में** ही...।...''भिक्षुओ! चक्षु:संस्पर्श में, श्रोत्रसंस्पर्श में, घ्राणसंस्पर्श में, जिह्वासंस्पर्श में, कायसंस्पर्श में तथा मन:संस्पर्श में जो छन्दराग है वही चित्त का उपक्लेश है। जब, भिक्षुओ! इस साधक के चित्त का उपक्लेश इन छह स्थानों से प्रहीण हो जाता है...पूर्ववत्... धर्मों में लगने लगता है''॥ ●

५. संस्पर्शज वेदनासूत्र : : **वेदना में छन्दराग चित्त का उपक्लेश**

५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! चक्षु:संस्पर्शज वेदना में, श्रोत्रसंस्पर्शज वेदना में...पूर्ववत्...मन:संस्पर्शज वेदना में जो छन्दराग है वही चित्त का उपक्लेश है।

जाय वेदनाय छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो ...पे०...अभिञ्ञा सच्छिकरणीयेसु धम्मेसू'' ति॥ ●

६. सञ्ञासुत्तं

६. सावत्थिनिदानं। ''यो, भिक्खवे, रूपसञ्ञाय छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यो सद्दसञ्ञाय...यो गन्धसञ्ञाय...यो रससञ्ञाय...यो फोट्ठब्ब-सञ्ञाय...यो धम्मसञ्ञाय छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो...पे०...अभिञ्ञा सच्छिकरणीयेसु धम्मेसू'' ति॥ ●

७. सञ्चेतनासुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। ''यो, भिक्खवे, रूपसञ्चेतनाय छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यो सद्दसञ्चेतनाय...यो गन्धसञ्चेतनाय...यो रससञ्चेतनाय...यो [R.234] फोट्ठब्बसञ्चेतनाय...यो धम्मसञ्चेतनाय छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो...पे०...अभिञ्ञा सच्छिकरणीयेसु धम्मेसू'' ति॥ ●

८. तण्हासुत्तं

८. सावत्थिनिदानं। ''यो, भिक्खवे, रूपतण्हाय छन्दरागो, चित्तस्सेसो [B.196] उपक्किलेसो। यो सद्दतण्हाय...यो गन्धतण्हाय...यो रसतण्हाय...यो फोट्ठब्बतण्हाय ...यो धम्मतण्हाय छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यतो खो, भिक्खवे, [N.449] भिक्खुनो...पे०...अभिञ्ञा सच्छिकरणीयेसु धम्मेसू'' ति॥ ●

भिक्षुओ! जब इस भिक्षु का...पूर्ववत्...चित्त प्रज्ञा से साक्षात्करणीय धर्मों में लगने लगता है''॥ ●

६. संज्ञासूत्र : : संज्ञा में छन्दराग चित्त का उपक्लेश

६. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! रूपसंज्ञा में, शब्दसंज्ञा में, गन्धसंज्ञा में, रससंज्ञा में, स्प्रष्टव्यसंज्ञा में, धर्मसंज्ञा में जो छन्दराग है वही चित्त का उपक्लेश है। भिक्षुओ! जब इस भिक्षु का...पूर्ववत्...चित्त प्रज्ञा से साक्षात्करणीय धर्मों में लगने लगता है''॥ ●

७. सञ्चेतनासूत्र : :सञ्चेतना में छन्दराग चित्त का उपक्लेश

७. ...**श्रावस्ती में** ही...।...''भिक्षुओ! रूपसञ्चेतना में, शब्दसञ्चेतना में, गन्धसञ्चेतना में, रससञ्चेतना में, स्प्रष्टव्यसञ्चेतना में, धर्मसञ्चेतना में जो छन्दराग है वही चित्त का उपक्लेश है। ...पूर्ववत्...धर्मों में लगने लगता है''॥ ●

८. तृष्णासूत्र : : तृष्णा में छन्दराग चित्त का उपक्लेश

८. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! रूपतृष्णा में, शब्दतृष्णा में, गन्धतृष्णा में,

९. धातुसुत्तं

९. सावत्थिनिदानं। "यो, भिक्खवे, पठवीधातुया छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यो आपोधातुया...यो तेजोधातुया...यो वायोधातुया...यो आकासधातुया ...यो विञ्ञाणधातुया छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो इमेसु छसु ठानेसु चेतसो उपक्किलेसो पहीनो होति, नेक्खम्मनिन्नं चस्स चित्तं होति। नेक्खम्मपरिभावितं चित्तं कम्मनियं खायति अभिञ्ञा सच्छिकरणीयेसु धम्मेसू" ति॥ ●

१०. खन्धसुत्तं

१०. सावत्थिनिदानं। "यो, भिक्खवे, रूपस्मिं छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो ...पे०...विञ्ञाणस्मिं छन्दरागो, चित्तस्सेसो उपक्किलेसो। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो इमेसु छसु ठानेसु चेतसो उपक्किलेसो पहीनो होति, नेक्खम्मनिन्नं चस्स चित्तं होति। नेक्खम्मपरिभावितं चित्तं कम्मनियं खायति अभिञ्ञा सच्छिकरणीयेसु धम्मेसू" ति॥ ●

किलेससंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

[R.235] चक्खु रूपं च विञ्ञाणं, फस्सो च वेदनाय च।
सञ्ञा च चेतना तण्हा, धातु खन्धेन ते दसा ति॥ ●

रसतृष्णा में, स्प्रष्टव्यतृष्णा में एवं धर्मतृष्णा में जो छन्दराग है वही चित्त का उपक्लेश है। ...पूर्ववत्... ॥" ●

९. धातुसूत्र : : धातुओं में छन्दराग चित्त का उपक्लेश

९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भिक्षुओ! पृथ्वीधातु में, अब्धातु में, तेजोधातु में, वायुधातु में, आकाशधातु में एवं विज्ञानधातु में जो छन्दराग है वही चित्त का उपक्लेश हो जाता है। भिक्षुओ! जब इस भिक्षु का चित्त...पूर्ववत्...प्रज्ञा से साक्षात्करणीय धर्मों में अभ्यस्त होने लगता है"॥ ●

१०. स्कन्धसूत्र : : उपादानस्कन्धों में छन्दराग...

१०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भिक्षुओ! रूप में, वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में जो छन्दराग हो जाता है वही चित्त का उपक्लेश है। ...पूर्ववत्...साक्षात्करणीय धर्मों में उस का चित्त अभ्यस्त होने लगता है"॥ ●

क्लेशसंयुक्त समाप्त॥

क्लेशसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. चक्षुःसूत्र, २. रूपसूत्र, ३. विज्ञानसूत्र, ४. स्पर्शसूत्र, ५. वेदनासूत्र, ६. संज्ञासूत्र, ७. चेतनासूत्र, ८. तृष्णासूत्र, ९. धातुसूत्र एवं १०. स्कन्धसूत्र॥ ●

२८. सारिपुत्तसंयुत्तं

१. विवेकजसुत्तं

[N.450, B.197] १. एकं समयं आयस्मा सारिपुत्तो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन अन्धवनं तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। अन्धवनं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि।

अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन जेतवनं अनाथपिण्डिकस्स आरामो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं सारिपुत्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"विप्पसन्नानि खो ते, आवुसो सारिपुत्त, इन्द्रियानि; परिसुद्धो मुखवण्णो परियोदातो। कतमेनायस्मा सारिपुत्तो अज्ज विहारेन विहासी" ति?

"इधाहं, आवुसो, विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, न एवं होति—'अहं पठमं झानं समापज्जामी' ति वा 'अहं पठमं झानं समापन्नो' ति वा 'अहं पठमा झाना वुट्ठितो' ति वा" ति।

---

२८. सारिपुत्रसंयुक्त

१. विवेकजसूत्र : : प्रथम ध्यान की अवस्था

१. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्तीस्थित जेतवन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब कभी पूर्वाह्ण में आयुष्मान् सारिपुत्र पात्र चीवर ले कर श्रावस्ती में भिक्षाटनहेतु गये। भिक्षाटन से लौट कर, भोजन कर दिन की साधनाहेतु अन्धवन में प्रविष्ट हुए। तथा वहाँ किसी वृक्ष के नीचे साधनारत हो गये।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र सायङ्काल ध्यानभावना से उठ कर पुनः जेतवन लौटने लगे। आयुष्मान् आनन्द ने उन को, दूर से ही, आते हुए देखा। देख कर पास आने पर उन से यों कहा—"आयुष्मन् सारिपुत्र! आप की इन्द्रियाँ आज बहुत प्रसन्न दिखायी दे रही हैं, मुख कान्ति भी बहुत स्वच्छ है। आज आप ऐसी कौन विशिष्ट साधना कर लौट रहे हैं?"

"आयुष्मन्! आज मैं कामगुणों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहते हुए विवेक विचार जन्य प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान का आश्रयण कर साधना कर रहा था। उस समय मुझे ऐसा

"तथा हि पनायस्मतो सारिपुत्तस्स दीघरत्तं अहङ्कारममङ्कारमानानुसया [R.236] सुसमूहता। तस्मा आयस्मतो सारिपुत्तस्स न एवं होति—'अहं पठमं झानं समापज्जामी' ति वा 'अहं पठमं झानं समापन्नो' ति वा 'अहं पठमा झाना वुट्ठितो' ति वा" ति॥ ●

२. अवितक्कसुत्तं

२. सावत्थिनिदानं। अद्दसा खो आयस्मा आनन्दो...पे०...आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"विप्पसन्नानि खो ते, आवुसो सारिपुत्त, इन्द्रियानि; परिसुद्धो [N.451] मुखवण्णो परियोदातो। कतमेनायस्मा सारिपुत्तो अज्ज विहारेन विहासी" ति?

"इधाहं, आवुसो, वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो [B.199] एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, न एवं होति—'अहं दुतियं झानं समापज्जामी' ति वा 'अहं दुतियं झानं समापन्नो' ति वा 'अहं दुतिया झाना वुट्ठितो' ति वा" ति।

"तथा हि पनायस्मतो सारिपुत्तस्स दीघरत्तं अहङ्कारममङ्कारमानानुसया सुसमूहता। तस्मा आयस्मतो सारिपुत्तस्स न एवं होति—'अहं दुतियं झानं समापज्जामी' ति वा 'अहं दुतियं झानं समापन्नो' ति वा 'अहं दुतिया झाना वुट्ठितो' ति वा" ति॥●

३. पीतिसुत्तं

३. सावत्थिनिदानं। अद्दसा खो आयस्मा आनन्दो...पे०..."विप्पसन्नानि खो ते,

---

कुछ नहीं लगा कि मैं प्रथम ध्यान में पहुँच गया हूँ या प्रथम ध्यान की साधना में रत हूँ, या प्रथम ध्यान से उठ चुका हूँ।"

क्यों कि आयुष्मान् सारिपुत्र के चित्त से, बहुत पहले ही, अहन्त्व, ममत्व, मान एवं अनुशय पूर्णत: निवृत्त हो चुके थे, अत: उन्हें उस गम्भीर प्रथम ध्यान के विषय में यह भी कठिनाई अनुभूत नहीं हुई कि वे अब प्रथम ध्यान में साधनारत होने जा रहे हैं, या अब प्रथम ध्यान में प्रविष्ट हो चुके हैं, या अब प्रथम ध्यान की भावना से विरत हो चुके हैं॥"

२. अवितर्कसूत्र : : द्वितीय ध्यान की अवस्था

२. ...**श्रावस्ती में** ही...।...आयुष्मान् आनन्द ने दूर से ही देखा...पूर्ववत्...आयुष्मान् सारिपुत्र से यों जिज्ञासा प्रकट की—"आयुष्मन्! आज आप की इन्द्रियाँ...कौन विशिष्ट साधना कर लौट रहे हैं?"

"आज मै, आयुष्मन्! वितर्क विचारों से भी व्युपरत हो कर समाधिजन्य प्रीतिसुख वाले द्वितीय ध्यान की साधना कर, लौट रहा हूँ। उस समय...पूर्ववत्...।

क्यों कि उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र के...पूर्ववत्...या अब द्वितीय ध्यान की भावना से निवृत्त हो चुके हैं॥"

●

आवुसो सारिपुत्त, इन्द्रियानि; परिसुद्धो मुखवण्णो परियोदातो। कतमेनायस्मा सारिपुत्तो अज्ज विहारेन विहासी'' ति?

''इधाहं, आवुसो, पीतिया च विरागा उपेक्खो च विहासिं सतो च सम्पजानो [R.237] सुखं च कायेन पटिसंवेदेमि; यं तं अरिया आचिक्खन्ति 'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, न एवं होति— 'अहं ततियं झानं समापज्जामी' ति वा 'अहं ततियं झानं समापन्नो' ति वा 'अहं ततिया झाना वुट्ठितो' ति वा'' ति।

''तथा हि पनायस्मतो सारिपुत्तस्स दीघरत्तं अहङ्कारममङ्कारमानानुसया सुसमूहता। तस्मा आयस्मतो सारिपुत्तस्स न एवं होति—'अहं ततियं झानं समापज्जामी' ति वा 'अहं ततियं झानं समापन्नो' ति वा 'अहं ततिया झाना वुट्ठितो' ति वा'' ति॥●

४. उपेक्खासुत्तं

४. सावत्थिनिदानं। अद्दसा खो आयस्मा आनन्दो...पे०...''विप्पसन्नानि खो ते, आवुसो सारिपुत्त, इन्द्रियानि; परिसुद्धो मुखवण्णो परियोदातो। कतमेनायस्मा सारिपुत्तो अज्ज विहारेन विहासी'' ति?

''इधाहं, आवुसो, सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्स- [N.452] दोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं

---

३. प्रीतिसूत्र : : तृतीय ध्यान की अवस्था

३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...आयुष्मान् आनन्द ने दूर से ही देखा...आयुष्मान् सारिपुत्र से यों पूछा—''आज आप की इन्द्रियाँ...कौन सी ध्यानभावना पूर्ण कर लौट रहे हैं?''

''आज मैं, आयुष्मन्! प्रीति एवं वैराग्य से उपेक्षा रखते हुए साधना कर रहा था, जिस से पण्डित जन स्मृति एवं सम्प्रजन्य को साधते हुए काया में लघुता (हल्कापन) अनुभव करते हैं उस तृतीय ध्यान में रत रहा। उस समय मुझ को यह भी न लगा कि मैं तृतीय ध्यान में...तृतीय ध्यान से निवृत्त हो चुका हूँ।''

क्योंकि उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र के बहुत पहले से...निवृत्त हो चुके हैं॥''●

४. उपेक्षासूत्र : : चतुर्थ ध्यान की अवस्था

४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...आयुष्मान् आनन्द ने दूर से ही देखा...आयुष्मान् सारिपुत्र से यों जिज्ञासा प्रकट की—''आज आप की इन्द्रियाँ...कौन सी ध्यानभावना पूर्ण कर लौट रहे हैं?''

''आज मैं, आयुष्मन्! सुख एवं दुःख के प्रहीण हो जाने से, तथा उस से भी पूर्व

उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, न एवं होति—'अहं चतुत्थं झानं समापज्जामी' ति वा 'अहं चतुत्थं झानं समापन्नो' ति वा 'अहं चतुत्था झाना [B.199] वुट्ठितो' ति वा'' ति।

''तथा हि पनायस्मतो सारिपुत्तस्स दीघरत्तं अहङ्कारममङ्कारमानानुसया सुसमूहता। तस्मा आयस्मतो सारिपुत्तस्स न एवं होति—'अहं चतुत्थं झानं समापज्जामी' ति वा 'अहं चतुत्थं झानं समापन्नो' ति वा 'अहं चतुत्था झाना वुट्ठितो' ति वा'' ति॥ ●

५. आकासानञ्चायतनसुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। अद्दसा खो आयस्मा आनन्दो...पे०...इधाहं, आवुसो, सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा अनन्तो आकासो ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरामि...पे०...वुट्ठितो ति वा ति॥

६. विञ्ञाणञ्चायतनसुत्तं

६. सावत्थिनिदानं। अद्दसा खो आयस्मा आनन्दो...पे०...इधाहं, आवुसो, सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरामि...पे०... वुट्ठितो ति वा ति॥ ●

सौमनस्य एवं दौर्मनस्य के दूर हट जाने से अदु:ख असुखमय उपेक्षा स्मृति परिशुद्धि वाले चतुर्थ ध्यान में पहुँच कर उसी से निवृत्त हो कर लौट रहा हूँ। उस समय मुझ को यह भी न लगा कि मैं चतुर्थ ध्यान में...पूर्ववत्...चतुर्थ ध्यान से निवृत्त हो चुका हूँ।

क्योंकि उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र के...निवृत्त हो चुके हैं॥'' ●

५. आकाशानन्त्यायनसूत्र : : आकाशानन्त्यायतन की अवस्था

५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...आयुष्मान् आनन्द ने...आयुष्मान् सारिपुत्र से पूछा ...पूर्ववत्...।

''यहाँ मैं, आयुष्मन्! आज रूपसंज्ञाओं का भी अतिक्रमण कर, प्रतिघसंज्ञाओं के नष्ट हो जाने से, नानात्व संज्ञाओं को मन में न लाते हुए 'आकाश अनन्त है'—ऐसी भावनायुक्त 'आकाशानन्त्यायतन समाधि में लीन रहा हूँ। ...पूर्ववत्...।'' ●

६. विज्ञानानन्त्यायतनसूत्र : : विज्ञानानन्त्यायतन अवस्था

६. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...आयुष्मान् आनन्द ने...आयुष्मान् सारिपुत्र से पूछा ...पूर्ववत्...। ''यहाँ अब मैं, आयुष्मन्! आकाशानन्त्यायतन अवस्था का भी सर्वथा समतिक्रमण कर विज्ञानानन्त्यायतन (अनन्त विज्ञान की) अवस्था में पहुँच कर विज्ञानन्त्यायतन समाधि में लीन रहा। ...पूर्ववत्...।'' ●

७. आकिञ्चञ्ञायतनसुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो...पे०...इधाहं, आवुसो, सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म, नत्थि किञ्ची ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरामि ...पे०...वुट्ठितो ति वा ति॥ •

८. नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसुत्तं

८. सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो...पे०...इधाहं, आवुसो, [R.238] आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसंञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरामि ...पे०... वुट्ठितो ति वा ति॥ •

९. निरोधसमापत्तिसुत्तं

९. सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो...पे०...''इधाहं, आवुसो, [N.453] सब्बसो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरामि। तस्स मय्हं, आवुसो, न एवं होति—'अहं सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जामी' [B.200] ति वा 'अहं सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नो' ति वा 'अहं सञ्ञावेदयितनिरोधा वुट्ठितो' ति वा'' ति।

''तथा हि पनायस्मतो सारिपुत्तस्स दीघरत्तं अहङ्कारममङ्कारमानानुसया सुसमूहता। तस्मा आयस्मतो सारिपुत्तस्स न एवं होति—'अहं सञ्ञावेदयितनिरोधं

---

७. आकिञ्चन्यायतनसूत्र : : आकिञ्चन्यायतन अवस्था

७. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...आयुष्मान् आनन्द ने...आयुष्मान् सारिपुत्र से पूछा ...पूर्ववत्...। ''यहाँ आज मैं, आयुष्मन्! विज्ञानानन्त्यायतन अवस्था को भी सर्वथा समतिक्रान्त कर 'कुछ नहीं है'—ऐसी अवस्था वाली आकिञ्चन्यायतन समाधि में लीन रह कर लौट रहा हूँ। ...पूर्ववत्...।'' •

८. नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसूत्र : : नैवसंज्ञानासंज्ञायतन अवस्था

८. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...आयुष्मान् आनन्द ने...आयुष्मान् सारिपुत्र से पूछा ...पूर्ववत्...।''यहाँ आज मैं, आयुष्मन्! आकिञ्चन्यावस्था को भी समतिक्रान्त कर उस से आगे वाली नैवसंज्ञानासंज्ञा वाली नैवसंज्ञानासंज्ञायतन समाधि में लीन रह कर लौट रहा हूँ। ...पूर्ववत्...।'' •

९. निरोधसमापत्तिसूत्र : : संज्ञावेदितनिरोध अवस्था

९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...आयुष्मान् आनन्द ने...आयुष्मान् सारिपुत्र से पूछा ...पूर्ववत्...।''यहाँ आज मैं, आयुष्मन्! उस नैवसंज्ञानासंज्ञायतन अवस्था को भी समतिक्रान्त

समापज्जामी' ति वा 'अहं सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नो' ति वा 'अहं सञ्ञा-वेदयितनिरोधा वुट्ठितो' ति वा'' ति॥

१०. सूचिमुखीसुत्तं

१०. एकं समयं आयस्मा सारिपुत्तो राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहे पिण्डाय पाविसि। राजगहे सपदानं पिण्डाय चरित्वा तं पिण्डपातं अञ्ञतरं कुड्डमूलं निस्साय परिभुञ्जति। अथ खो सूचिमुखी परिब्बाजिका येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—

''किं नु खो, समण, अधोमुखो भुञ्जसी'' ति?

''न ख्वाहं, भगिनि, अधोमुखो भुञ्जामी'' ति।

''तेन हि, समण, उब्भमुखो भुञ्जसी'' ति?

''न ख्वाहं, भगिनि, उब्भमुखो भुञ्जामी'' ति।

''तेन हि, समण, दिसामुखो भुञ्जसी'' ति? [R.239]

''न ख्वाहं, भगिनि, दिसामुखो भुञ्जामी'' ति।

''तेन हि, समण, विदिसामुखो भुञ्जसी'' ति?

कर संज्ञावेदितनिरोध अवस्था वाली संज्ञावेदितनिरोध समापत्ति (प्राप्ति) भावना में लीन रह कर लौट रहा हूँ। ...पूर्ववत्...।''

१०. सूचीमुखीसूत्र : : भिक्षु का धर्मानुसार आहार करना

१०. एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र **राजगृह** के वेणुवन कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र कभी प्रातः वस्त्र ठीक कर अपना पात्रचीवर ले कर राजगृह नगर में भिक्षाटन करने हेतु गये। वहाँ वे पैदल ही भिक्षाटन करते हुए भिक्षा में प्राप्त भोजन को, किसी घर की दीवार के सहारे बैठ कर, ग्रहण कर रहे थे। इसी बीच सूचीमुखी (शुचिमुखी) परिव्राजिका आयुष्मान् सारिपुत्र के पास पहुँची, और उन से यों पूछने लगी—

''श्रमण! नीचा मुख किये हुए क्यों खा रहे हो?''

''बहन! मैं तो नीचा मुख किये हुए नहीं खा रहा हूँ।''

''तो क्या ऊपर मुख कर के खा रहे हो?''

''नहीं, मैं ऊपर मुख किये भी नहीं खा रहा हूँ।''

''क्या चारों दिशाओं में मुख घुमा घुमा कर खा रहे हो?''

''नहीं, बहन! मैं वैसा भी नहीं कर रहा हूँ।''

"न ख्वाहं, भगिनि, विदिसामुखो भुञ्जामी" ति।

[N.454] "'किं नु, समण, अधोमुखो भुञ्जसी' ति इति पुट्ठो समानो 'न ख्वाहं, भगिनि, अधोमुखो भुञ्जामी' ति वदेसि। 'तेन हि, समण, उब्भमुखो भुञ्जसी' ति इति पुट्ठो समानो 'न ख्वाहं, भगिनि, उब्भमुखो भुञ्जामी' ति वदेसि। 'तेन हि, समण, दिसामुखो भुञ्जसी' ति इति पुट्ठो समानो 'न ख्वाहं, भगिनि, दिसामुखो भुञ्जामी' ति वदेसि। 'तेन [B.201] हि, समण, विदिसामुखो भुञ्जसी' ति इति पुट्ठो समानो 'न ख्वाहं, भगिनि, विदिसामुखो भुञ्जामी' ति वदेसि। कथञ्चरहि, समण, भुञ्जसी" ति?

"ये हि केचि, भगिनि, समणब्राह्मणा वत्थुविज्जातिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीविकं कप्पेन्ति, इमे वुच्चन्ति, भगिनि, समणब्राह्मणा 'अधोमुखा भुञ्जन्ती' ति। ये हि केचि, भगिनि, समणब्राह्मणा नक्खत्तविज्जातिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीविकं कप्पेन्ति, इमे वुच्चन्ति, भगिनि, समणब्राह्मणा 'उब्भमुखा भुञ्जन्ती' ति। ये हि केचि, भगिनि, समणब्राह्मणा दूतेय्यपहिणगमनानुयोगाय मिच्छाजीवेन जीविकं कप्पेन्ति, इमे वुच्चन्ति, भगिनि, समणब्राह्मणा 'दिसामुखा भुञ्जन्ती' ति। ये हि केचि, भगिनि, समणब्राह्मणा अङ्गविज्जातिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीविकं कप्पेन्ति, इमे वुच्चन्ति, भगिनि, समणब्राह्मणा 'विदिसामुखा भुञ्जन्ती' ति।

"क्या अपना मुख एक जगह स्थिर रख कर खा रहे हो?"

"नहीं, बहन! मैं ऐसा भी नहीं कर रहा हूँ।"

"श्रमण! आप से पूछा गया—'श्रमण! नीचा मुख किये हुए खा रहे हो? तो आपने निषेध कर दिया...पूर्ववत्...आप से पूछा गया—अपना मुख एक जगह स्थिर रख कर खा रहे हो? तो भी आप ने निषेध कर दिया। तो फिर आप किस तरह (किस तरफ मुख कर) खा रहे हो?"

"बहन! नीचा मुख कर वे ही श्रमण ब्राह्मण भोजन करते हैं जो वास्तुकला (गृहनिर्माणशिल्प) एवं तिरश्चीनविद्या (पशु-पक्षिविद्या) द्वारा अपनी मिथ्या आजीविका चलाते रहते हैं।

"तथा ऊपर मुख कर वे श्रमण ब्राह्मण भोजन करते हैं जो नक्षत्रविद्या (ज्यौतिष शास्त्र) या तिरश्चीन विद्या से अपनी मिथ्या आजीविका चलाते हैं।

"तथा जो श्रमण ब्राह्मण चारों दिशाओं में अपना मुख घुमा कर भोजन करते हैं वे दूतकर्म द्वारा मिथ्या आजीविका चलाने वाले होते हैं।

"तथा जो श्रमण ब्राह्मण अपना मुख एक जगह स्थिर रख कर भोजन करते हैं वे अङ्गविद्या (हस्तरेखा आदि शारीरिक चिह्न) द्वारा अपनी मिथ्या आजीविका चलाने वाले होते हैं।

"सो ख्वाहं, भगिनि, न वत्थुविज्जातिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीविकं कप्पेमि, न नक्खत्तविज्जातिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीविकं कप्पेमि, न दूतेय्य-पहिणगमनानुयोगाय मिच्छाजीवेन जीविकं कप्पेमि, न अङ्गविज्जातिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीविकं कप्पेमि। धम्मेन भिक्खं परियेसामि; धम्मेन भिक्खं परियेसित्वा भुञ्जामी" ति।

अथ खो सूचिमुखी परिब्बाजिका राजगहे रथियाय रथियं सिङ्घाटकेन [R.240] सिङ्घाटकं उपसङ्कमित्वा एवमारोचेसि—"धम्मिकं समणा सक्यपुत्तिया आहारं आहारेन्ति; अनवज्जं समणा सक्यपुत्तिया आहारं आहारेन्ति। देथ समणानं सक्यपुत्तियानं पिण्डं" ति॥ ●

सारिपुत्तसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

विवेकजं अवितक्कं, पीति उपेक्खा चतुत्थकं। [N.455]
आकासञ्चेव विञ्ञाणं, आकिञ्चं नेवसञ्ञिना।
निरोधो नवमो वुत्तो, दसमं सूचिमुखी चा ति॥ ●

—— ※ ——

"भगिनि! मैं न वास्तुविद्या से, न नक्षत्रविद्या से, न दूतकर्म से, एवं न अङ्गविद्या आदि से अपनी मिथ्या आजीविका चलाता हूँ; मैं तो धर्माचरणपूर्वक भिक्षाटन करता हूँ तथा धर्माचरणपूर्वक ही उस भिक्षा को भोजन के रूप में ग्रहण करता हूँ।"

यह सुन कर शुचिमुखी परिव्राजिका ने राजगृह नगर में—इस गली से उस गली में तथा इस चौराहे से उस चौराहे पर जा कर, सर्वत्र घूम घूम कर यह कहा—अरे! ये श्रमण शाक्यपुत्र धर्माचरणपूर्वक प्राप्त भोजन ही ग्रहण करते हैं, शाक्यपुत्र अनिन्द्य आहार का ही ग्रहण करते हैं। अत: इन श्रमण शाक्यपुत्रों को प्रेमपूर्वक भिक्षा दो॥" ●

सारिपुत्रसंयुक्त समाप्त॥

इस सारिपुत्रसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. विवेकजसूत्र, २. अवितर्कसूत्र, ३. प्रीतिसूत्र, ४. उपेक्षासूत्र, ५. आकाशानन्त्यायतनसूत्र, ६. विज्ञानानन्त्यायतनसूत्र, ७. आकिञ्चन्यायतनसूत्र, ८. नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसूत्र, ९. निरोधसमापत्तिसूत्र एवं १०. शुचिमुखीसूत्र॥ ●

—— ※ ——

२९. नागसंयुत्तं

१. सुद्धिकसुत्तं

[N.456, B.202] १. सावत्थिनिदानं। "चतस्सो इमा, भिक्खवे, नागयोनियो। कतमा चतस्सो? अण्डजा नागा, जलाबुजा नागा, संसेदजा नागा, ओपपातिका नागा—इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो नागयोनियो" ति॥ •

२. पणीततरसुत्तं

२. सावत्थिनिदानं। "चतस्सो इमा, भिक्खवे, नागयोनियो। कतमा चतस्सो? अण्डजा नागा, जलाबुजा नागा, संसेदजा नागा, ओपपातिका नागा। तत्र, भिक्खवे, [R.241] अण्डजेहि नागेहि जलाबुजा च संसेदजा च ओपपातिका च नागा पणीततरा। तत्र, भिक्खवे, अण्डजेहि च जलाबुजेहि च नागेहि संसेदजा च ओपपातिका च नागा पणीततरा। तत्र, भिक्खवे, अण्डजेहि च जलाबुजेहि च संसेदजेहि च नागेहि ओपपातिका नागा पणीततरा। इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो नागयोनियो" ति॥ •

३. उपोसथसुत्तं

३. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे।

---

२९. नागसंयुक्त

१. शुद्धिकसूत्र : : चार नागयोनियाँ

१. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भिक्षुओ! ये चार नागयोनियाँ (नागजातियाँ) होती हैं। कौन सी चार? १. अण्डज (अण्डों से उत्पन्न होने वाले) नाग, २. जरायुज (जरायु में लिपटे) नाग, ३. संस्वेदज (पसीने से उत्पन्न होने वाले) नाग एवं ४. औपपातिक (किसी प्रत्यक्ष कारण के विना उत्पन्न) नाग। भिक्षुओ! ये चार नागयोनियाँ होती हैं॥" •

२. प्रणीततरसूत्र : : औपपातिक नाग श्रेष्ठ

२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भिक्षुओ! ये चार नागयोनियाँ हैं...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! इन में अण्डज नागों से जरायुज नाग, संस्वेदज नाग एवं औपपातिक नाग श्रेष्ठ होते हैं। तथा इसी तरह अण्डज तथा जरायुज नागों से संस्वेदज और औपपातिक नाग श्रेष्ठ होते हैं, तथा इन में भी अण्डज, जरायुज एवं संस्वेदज नागों से औपपातिक नाग सर्वश्रेष्ठ होते हैं। इस तरह नागों की ये चार योनियाँ होती हैं॥" •

३. प्रथम उपोसथसूत्र : : अण्डज नाग उपोसथ रखते हैं

३. एक समय भगवान् **श्रावस्ती** के जेतवन महाविहार में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कोई भिक्षु भगवान् के सम्मुख आया तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ

अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे अण्डजा नागा उपोसथं उपवसन्ति वोस्सट्ठकाया च भवन्ती" ति?

"इध, भिक्खु, एकच्चानं अण्डजानं नागानं एवं होति—'मयं खो पुब्बे कायेन द्वयकारिनो अहुम्ह, वाचाय द्वयकारिनो, मनसा द्वयकारिनो। ते मयं कायेन द्वयकारिनो, वाचाय द्वयकारिनो, मनसा द्वयकारिनो, कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं नागानं सहब्यतं उपपन्ना। सचज्ज मयं कायेन सुचरितं चरेय्याम, वाचाय सुचरितं चरेय्याम, मनसा सुचरितं चरेय्याम, एवं मयं कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं [N.457, B.203] लोकं उपपज्जेय्याम। हन्द, मयं एतरहि कायेन सुचरितं चराम, वाचाय सुचरितं चराम, मनसा सुचरितं चरामा' ति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे अण्डजा नागा उपोसथं उपवसन्ति वोस्सट्ठकाया च भवन्ती" ति॥ ●

४. दुतियउपोसथसुत्तं

४. सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा...पे०... [R.242] एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे जलाबुजा नागा उपोसथं उपवसन्ति वोस्सट्ठकाया च भवन्ती" ति? *(सब्बं वित्थारेतब्बं)*

"अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे जलाबुजा नागा उपोसथं उपवसन्ति वोस्सट्ठकाया च भवन्ती" ति॥ ●

गया। एक ओर बैठे उस ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! क्या हेतु क्या प्रत्यय है कि कुछ अण्डज नाग उ पेसथ व्रत करते हैं, तथा उन का शरीर सुन्दर वर्ण वाला होता है?"

"हाँ, भिक्षु! कुछ अण्डज नागों के मन में यह विचार होता है—'हम पूर्व शरीर में, मन, वचन कर्म से पुण्य, पाप—दोनों ही कर्म करते थे, इसी कारण आज हम इसी नागयोनि में उत्पन्न हुए हैं। अत: अब हम क्यों न मन, वचन एवं काय से कुशल कर्म ही करें, जिस से हम इस देहपात के बाद सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न हों।' यही कारण है, भिक्षु! कुछ अण्डज नाग उपोसथ व्रत रखने वाले तथा सुन्दर वर्ण वाले होते हैं॥" ●

४. द्वितीय उपोसथसूत्र : : जरायुज नाग उपोसथव्रती

४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्...जरायुज नाग...पूर्ववत्...॥ ●

५. ततियउपोसथसुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे संसेदजा नागा उपोसथं उपवसन्ति वोस्सट्ठकाया च भवन्ती" ति? *(सब्बं वित्थारेतब्बं)*

"अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे संसेदजा नागा उपोसथं उपवसन्ति वोस्सट्ठकाया च भवन्ती" ति॥ •

६. चतुत्थउपोसथसुत्तं

६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे ओपपातिका नागा उपोसथं उपवसन्ति वोस्सट्ठकाया च भवन्ती" ति?

"इध, भिक्खु, एकच्चानं ओपपातिकानं नागानं एवं होति—'मयं खो पुब्बे कायेन द्वयकारिनो अहुम्ह, वाचाय द्वयकारिनो, मनसा द्वयकारिनो। ते मयं कायेन द्वयकारिनो, वाचाय द्वयकारिनो, मनसा द्वयकारिनो कायस्स भेदा परं मरणा [B.204, R.243] ओपपातिकानं नागानं सहब्यतं उपपन्ना। सचज्ज मयं कायेन सुचरितं चरेय्याम, वाचाय...मनसा सुचरितं चरेय्याम, एवं मयं कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्याम। हन्द मयं एतरहि कायेन सुचरितं चराम, वाचाय...मनसा [N.458] सुचरितं चरामा' ति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चे ओपपातिका नागा उपोसथं उपवसन्ति वोस्सट्ठकाया च भवन्ती" ति॥ •

७. सुतसुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं नागानं सहब्यतं उपपज्जती" ति?

---

५. तृतीय उपोसथसूत्र : : संस्वेदज नाग उपोसथव्रती

५. ...**श्रावस्ती में** ही... । ...पूर्ववत्...संस्वेदज नाग...पूर्ववत्... ॥ •

६. चतुर्थ उपोसथसूत्र : : औपपातिक नाग उपोसथव्रती

६. ...**श्रावस्ती में** ही... । ...पूर्ववत्...औपपातिक नाग...पूर्ववत्... ॥ •

(४-५-६ सूत्रों का विस्तार प्रथम उपोसथसूत्र के समान ही कर लिया जाय।)

७. श्रुतसूत्र : : अण्डज नागयोनि में उत्पत्ति

७. ...**श्रावस्ती में** ही... । ...एक ओर बैठे भिक्षु ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन द्वयकारी होति, वाचाय द्वयकारी होति, मनसा द्वयकारी होति। तस्स सुतं होति—'अण्डजा नागा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं नागानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं नागानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं नागानं सहब्यतं उपपज्जती" ति? •

८. दुतियसुतसुत्तं

८. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा जलाबुजानं नागानं सहब्यतं उपपज्जती" ति...पे०...अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन [R.244] मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा जलाबुजानं नागानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥ •

९. ततियसुतसुत्तं

९. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा संसेदजानं [B.205] नागानं सहब्यतं उपपज्जती" ति...पे०...अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा संसेदजानं नागानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥ •

१०. चतुत्थसुतसुत्तं

१०. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा [N.459] ओपपातिकानं नागानं सहब्यतं उपपज्जती" ति?

की—"भन्ते! क्या कारण है, क्या प्रत्यय है कि किसी को देहपात के बाद नागयोनि में जन्म लेना पड़ता है?"

"भिक्षु! यहाँ कोई मनुष्य अपने मन में ऐसा सोचता है—'हमने मन, वचन, कर्म से बहुत से पुण्य पाप किये, हमने सुना है—'अण्डज नाग दीर्घायु वर्णसम्पन्न एवं सुखमय जीवन विताते हैं', तो क्यों न, हम भी अण्डज नागयोगि में जन्म लें।' यों सोचता हुआ वह देहपात के बाद अण्डज नागयोनि में जन्म लेता है। ...पूर्ववत्... ॥ •

८. श्रुतसूत्र : : जरायुज नागयोनि में उत्पत्ति

८. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्...जरायुज नागयोनि...पूर्ववत्... ॥ •

९. श्रुतसूत्र : : संस्वेदज नागयोनि में उत्पत्ति

९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्...संस्वेदज नागयोनि...पूर्ववत्... ॥ •

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन द्वयकारी होति, वाचाय द्वयकारी, मनसा द्वयकारी। तस्स सुतं होति—'ओपपातिका नागा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा ओपपातिकानं नागानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो कायस्स भेदा परं मरणा ओपपातिकानं नागानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा ओपपातिकानं नागानं सहब्यतं उपपज्जती" ति? •

११-२०. अण्डजदानूपकारसुत्तदसकं

११-२०. एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं नागानं सहब्यतं [R.245] उपपज्जती" ति?

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन द्वयकारी होति, वाचाय द्वयकारी, मनसा द्वयकारी। तस्स सुतं होति—'अण्डजा नागा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं नागानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो अन्नं देति। सो कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं नागानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु...पे०...उपपज्जती ति...पे०...सो पानं देति...पे०... वत्थं देति...पे०...यानं देति...पे०...मालं देति...पे०...गन्धं देति...पे०...विलेपनं देति ...पे०...सेय्यं देति...पे०...आवसथं देति...पे०...पदीपेय्यं देति। सो कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं नागानं सहब्यतं उपपज्जति। [B.206] अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं

---

१०. श्रुतसूत्र : : औपपातिक नागयोनि में उत्पत्ति

१०. ...**श्रावस्ती में** ही... । ...पूर्ववत्...औपपातिक नागयोनि...पूर्ववत्... ॥ •

(८-९-१० सूत्रों का भी ७. श्रुतसूत्र के समान ही विस्तार कर लें।)

११-२०. अण्डज दानोपकारसूत्र (दशक) : : दानादि से नागयोनि में उत्पत्ति

११-२०. ...**श्रावस्ती में** ही... । ...पूर्ववत्...एक ओर बैठे भिक्षु ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! क्या कारण है, क्या प्रत्यय है कि इस देहपात के बाद कुछ लोग अण्डज नागयोनि में उत्पन्न होते हैं?"

"यहाँ, भिक्षु! कोई मनुष्य मन, वचन, कर्म से पाप-पुण्य दोनों प्रकार के कर्म करने वाला होता है। उस ने प्रामाणिक पुरुषों से सुन रखा होता है—'अण्डज नाग दीर्घायु, वर्णसम्पन्न एवं सुखमय जीवन भोगते हैं। तो क्यों न मैं भी अण्डज नागयोगि में उत्पन्न होऊँ।' यह सोच कर वह (दरिद्रों को) **अन्न** दान करने लगता है। इस पुण्य के प्रभाव से वह मरणानन्तर नागयोनि में उत्पन्न होता है। ...**पान...वस्त्र...यान...माला...गन्ध**...

पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं नागानं सहब्यतं उपपज्जती'' ति॥ ●

२१-५०. जलाबुजादिदानूपकारसुत्ततिंसकं

२१-५०. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं [N.460] एतदवोच—''को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा जलाबुजानं नागानं...पे०...ओपपातिकानं नागानं सहब्यतं उपपज्जती'' ति?

''इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन द्वयकारी होति, वाचाय द्वयकारी, मनसा द्वयकारी। तस्स सुतं होति—'ओपपातिका नागा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा ओपपातिकानं नागानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो अन्नं देति...पे०...पानं देति...पे०...पदीपेय्यं देति। सो कायस्स भेदा परं मरणा ओपपातिकानं नागानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु [R.246] अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा ओपपातिकानं नागानं सहब्यतं उपपज्जती'' ति। *(इमिना पेय्यालेन दस दस सुत्तन्ता कातब्बा। एवं चतूसु योनीसु चत्तालीसं वेय्याकरणा होन्ति। पुरिमेहि पन दसहि सुत्तन्तेहि सह होन्ति पण्णाससुत्तन्ता ति।)*॥ ●

नागसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

सुद्धिकं पणीततरं, चतुरो च उपोसथा।
तस्स सुतं चतुरो च, दानूपकारा च तालीसं।
पण्णास पिण्डतो सुत्ता, नागम्हि सुप्पकासिता ति॥ ●

विलेपन...**शय्या**...रहने के लिये **आवास**...प्रकाश के लिये **दीपक** दान करने लगता है। इस दान के प्रभाव से, वह मरणानन्तर, अण्डज नागयोनि में उत्पन्न होता है। ...पूर्ववत्...''॥ ●

२१-५०. जरायुजादि दानोपकारसूत्र (त्रिंशक) : : दानादि से नागयोनि

२१-५०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्...जरायुज...संस्वेदज...औपपातिक नागयोनि में क्यों उत्पन्न होते हैं ?

...पूर्ववत्...अन्न देता है...दीपक दान करने लगता है...पूर्ववत्...॥ ●

(इस प्रकार दश-दश सूत्रों का तीन बार विस्तार कर लेना चाहिये। इस तरह इन चार

योनियों में चालीस व्याख्यान हो जाते हैं। यों, पूर्वोक्त अण्डजसूत्र तक के १० व्याख्यान मिलाकर यह पञ्चाशत्क (पण्णासक) पूर्ण होता है।)

नागसंयुक्त समाप्त॥

इस नागसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. शुद्धिकसूत्र, २. प्रणीततरसूत्र, ३-४-५-६. उपोसथसूत्र, ७-८-९-१०. श्रुतसूत्र, ११-५०. दानोपकारसूत्र—इस तरह इस नागसंयुक्त में पचास सूत्रों का व्याख्यान हुआ है॥

३०. सुपण्णसंयुत्तं

१. सुद्धिकसुत्तं

१. सावत्थिनिदानं। "चतस्सो इमा, भिक्खवे, सुपण्णयोनियो। [N.461, B.207] कतमा चतस्सो ? अण्डजा सुपण्णा, जलाबुजा सुपण्णा, संसेदजा सुपण्णा, ओपपातिका सुपण्णा—इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो सुपण्णयोनियो" ति॥ ●

२. हरन्तिसुत्तं

२. सावत्थिनिदानं। "चतस्सो इमा, भिक्खवे, सुपण्णयोनियो। कतमा [R.247] चतस्सो ? अण्डजा...पे०...इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो सुपण्णयोनियो। तत्र, भिक्खवे, अण्डजा सुपण्णा अण्डजे व नागे हरन्ति न जलाबुजे न संसेदजे न ओपपातिके। तत्र, भिक्खवे, जलाबुजा सुपण्णा अण्डजे च जलाबुजे च नागे हरन्ति न संसेदजे न ओपपातिके। तत्र, भिक्खवे, संसेदजा सुपण्णा अण्डजे च जलाबुजे च संसेदजे च नागे हरन्ति न ओपपातिके। तत्र, भिक्खवे, ओपपातिका सुपण्णा अण्डजे च जलाबुजे च संसेदजे च ओपपातिके च नागे हरन्ति। इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो सुपण्णयोनियो" ति॥ ●

---

३०. सुपर्णसंयुक्त

१. शुद्धिकसूत्र : : चार सुपर्ण योनियाँ

१. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...भिक्षुओ! ये चार सुपर्ण (गरुड़ पक्षी) योनियाँ होती हैं। कौन सी चार? १. अण्डज, २. जरायुज, ३. संस्वेदज, ४. औपपातिक योनि। भिक्षुओ! ये चार सुपर्णयोनियाँ होती हैं॥ ●

२. हरन्तिसूत्र : : नागों को उठा ले जाना

२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्..."भिक्षुओ! ये चार सुपर्णयोनियाँ होती हैं। इन में अण्डज सुपर्ण अण्डज नागों को ही (भोजनहेतु) उठाते हैं; जरायुज, संस्वेदज एवं औपपातिक नागों को नहीं। भिक्षुओ! इसी प्रकार जरायुज सुपर्ण अण्डज एवं जरायुज नागों को ही उठाते हैं; संस्वेदज या औपपातिक नागों को नहीं। तथा भिक्षुओ! संस्वेदज सुपर्ण अण्डज, जरायुज एवं संस्वेदज नागों को उठाते हैं, औपपातिक नागों को नहीं। परन्तु, भिक्षुओ! औपपातिक सुपर्ण सभी चारों योनियों के नागों को भोजनहेतु उठा लेते हैं। इस तरह, भिक्षुओ! ये चार सुपर्णयोनियाँ हैं॥" ●

३. द्वयकारीसुत्तं

३. सावत्थिनिदानं। अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जती" ति?

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन द्वयकारी होति, वाचाय द्वयकारी, मनसा द्वयकारी। तस्स सुतं होति—'अण्डजा सुपण्णा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जति। [N.462] अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा [B.208] अण्डजानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥ ●

४-६. दुतियादिद्वयकारीसुत्तत्तिकं

४-६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा जलाबुजानं [R.248] सुपण्णानं ...पे०... संसेदजानं सुपण्णानं ...पे०... ओपपातिकानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जती" ति?

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन द्वयकारी होति, वाचाय द्वयकारी, मनसा द्वयकारी। तस्स सुतं होति—'ओपपातिका सुपण्णा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा ओपपातिकानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो कायस्स भेदा परं मरणा ओपपातिकानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा ओपपातिकानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥ ●

७-१६. अण्डजदानूपकारसुत्तदसकं

७-१६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—

---

३. द्वयकारीसूत्र : : सुपर्णयोनि में उत्पन्न होना

३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्...*(इस सूत्र का विस्तार नागसंयुक्त के सप्तम श्रुतसूत्र के समान ही विस्तार कर लें) ॥* ●

४-६. द्वितीयादि द्वयकारीसूत्र : :

४-६. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्...। *(इन तीनों सूत्रों का व्याख्यान भी नागसंयुक्त में आगत ८-९-१० श्रुतसूत्रों के समान कर लें) ॥* ●

"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जती" ति ?

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन द्वयकारी होति, वाचाय द्वयकारी, मनसा द्वयकारी। तस्स सुतं होति—'अण्डजा सुपण्णा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो अन्नं देति...पे०...पानं देति...वत्थं देति...यानं देति...मालं देति ...गन्धं देति...विलेपनं देति...सेय्यं देति...आवसथं देति...पदीपेय्यं देति। सो कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा अण्डजानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥

●

१७-४६. जलाबुजदानूपकारसुत्तं

१७-४६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो [N.463, B.209, R.249] भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा जलाबुजानं सुपण्णानं...पे०...संसेदजानं सुपण्णानं...पे०... ओपपातिकानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जती" ति ?

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन द्वयकारी होति, वाचाय द्वयकारी, मनसा द्वयकारी। तस्स सुतं होति—'ओपपातिका सुपण्णा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा ओपपातिकानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो अन्नं देति...पे०...पानं देति...पे०...पदीपेय्यं देति। सो कायस्स भेदा परं मरणा ओपपातिकानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा ओपपातिकानं सुपण्णानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥

●

(एवं पिण्डकेन छचत्तालीसं सुत्तन्ता होन्ति।)

सुपण्णसंयुत्तं समत्तं॥

७-१६. अण्डजदानोपकारसूत्र : : दानादि से सुपर्णयोनिप्राप्ति

७-१६. ...**श्रावस्ती में** ही... । ...पूर्ववत्... । *(इन तीस सूत्रों का व्याख्यान भी नागसंयुक्त में व्याख्यात २१-५० तक के सूत्रों के समान ही है। अत: वहाँ से सहायता लें। यों इस संयुक्त में समस्त सूत्र ४६ होते हैं)॥*

●

सुपर्णसंयुक्त समाप्त॥

तस्सुद्दानं

सुद्धिकं हरन्ति चेव, द्वयकारी च चतुरो।
दानूपकारा तालीसं, सुपण्णे सुप्पकासिता ति॥

—— ⁂ ——

इस सुपर्णसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. शुद्धिकसूत्र, २. हरन्तिसूत्र, ३-६. द्वयकारीसूत्र एवं जरायुजादि दानोपकारसूत्र, ४०—इस प्रकार समस्त ४६ सूत्र इस संयुक्त में व्याख्यात हैं॥

—— ⁂ ——

३१. गन्धब्बकायसंयुत्तं

१. सुद्धिकसुत्तं

१. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने [N.464, B.210, R.250] अनाथपिण्डिकस्स आरामे...पे०...भगवा एतदवोच—"गन्धब्बकायिके वो, भिक्खवे, देवे देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमा च, भिक्खवे, गन्धब्बकायिका देवा? सन्ति, भिक्खवे, मूलगन्धे अधिवत्था देवा। सन्ति, भिक्खवे, सारगन्धे अधिवत्था देवा। सन्ति, भिक्खवे, फेग्गुगन्धे अधिवत्था देवा। सन्ति, भिक्खवे, तचगन्धे अधिवत्था देवा। सन्ति, भिक्खवे, पपटिकगन्धे अधिवत्था देवा। सन्ति, भिक्खवे, पत्तगन्धे अधिवत्था देवा। सन्ति, भिक्खवे, पुप्फगन्धे अधिवत्था देवा। सन्ति, भिक्खवे, फलगन्धे अधिवत्था देवा। सन्ति, भिक्खवे, रसगन्धे अधिवत्था देवा। सन्ति, भिक्खवे, गन्धगन्धे अधिवत्था देवा। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, गन्धब्बकायिका देवा" ति॥ ●

२. सुचरितसुत्तं

२. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा गन्धब्बकायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति?

---

३१. गन्धर्वकायसंयुक्त

१. शुद्धिकसूत्र : : गन्धर्व देवकाय कौन है?

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती में** अनाथपिण्डिकश्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय उन्होंने भिक्षुओं को आमन्त्रित कर कहा—"भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें गन्धर्वकाय देवों के विषय में बताऊँगा। उसे ध्यान से सुनो। भिक्षुओ! ये गन्धर्वकाय देव कौन हैं? भिक्षुओ! १. कुछ इन में से मूलगन्ध में वास करने वाले देवता हैं, २. कुछ सारगन्ध में, ३. कुछ कच्ची लकड़ी की गन्ध में, ४. कुछ छाल (त्वचा) के गन्ध में, ५. कुछ पपड़ी की गन्ध में, ६. कुछ पत्तों की गन्ध में, ७. कुछ पुष्पों की गन्ध में, ८. कुछ फलों की गन्ध में, ९. कुछ रस की गन्ध में, तथा १०. कुछ गन्ध की गन्ध में ही वास करने वाले देवता हैं। भिक्षुओ! ये सब 'गन्धर्वकाय देव' कहलाते हैं॥" ●

२. सुचरितसूत्र : : गन्धर्वयोनि में उत्पन्न होने का कारण

२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे किसी भिक्षु ने भगवान् से अपनी यह

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। तस्स सुतं होति–'गन्धब्बकायिका देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति–'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा गन्धब्बकायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो कायस्स भेदा परं मरणा गन्धब्बकायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा गन्धब्बकायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥ •

३. मूलगन्धदातासुत्तं

३. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच–
[R.251] "को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा
[N.465, B.211] मूलगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति?

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। तस्स सुतं होति–'मूलगन्धे अधिवत्था देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति–'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा मूलगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो दाता होति मूलगन्धानं। सो कायस्स भेदा परं मरणा मूलगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु...पे०...येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा मूलगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥ •

४-१२. सारगन्धादिदातासुत्तनवकं

४-१२. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच–

जिज्ञासा प्रकट की–"भन्ते! कौन हेतु या कौन प्रत्यय है कि कोई (पुरुष) इस देहपात के बाद गन्धर्वों के साथ उत्पन्न होता है?"

"यहाँ कोई पुरुष मन, वचन एवं काय से सुचरित (सत्कर्म) करता रहता है तथा उसने पुराने लोगों से सुन रखा होता है–'गन्धर्वकाय देव दीर्घायु, सुरूप एवं सुखमय जीवन बिताने वाले होते हैं।' वह सोचता है–'तो क्यों न मैं भी उन गन्धर्वकाय देवों में उत्पन्न होऊँ'। भिक्षु! यही कारण है कि वैसा व्यक्ति देहपात के बाद उन गन्धर्वों की योनि में उत्पन्न होता है"॥ •

३. मूलगन्धदातृसूत्र : : दान से गन्धर्वयोनि में उत्पत्ति

३. .. **श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्... १. वह मूलगन्धों का दान करता है। उस दान के प्रभाव से, देहपात के बाद वह मूलगन्धवासी गन्धर्वों के साथ उत्पन्न होता है। ... ॥

"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा सारगन्धे अधिवत्थानं देवानं...पे०...फेग्गुगन्धे अधिवत्थानं देवानं...तचगन्धे अधिवत्थानं देवानं...पपटिकगन्धे अधिवत्थानं देवानं...पत्तगन्धे अधिवत्थानं देवानं...पुप्फगन्धे अधिवत्थानं देवानं...फलगन्धे अधिवत्थानं देवानं...रसगन्धे अधिवत्थानं देवानं... गन्धगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति?

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। तस्स सुतं होति—'सारगन्धे अधिवत्था देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा सारगन्धे अधिवत्थानं देवानं...पे०...फेग्गुगन्धे अधिवत्थानं देवानं...तचगन्धे अधिवत्थानं देवानं ...पपटिकगन्धे अधिवत्थानं देवानं...पत्तगन्धे अधिवत्थानं देवानं...पुप्फगन्धे अधिवत्थानं देवानं...फलगन्धे अधिवत्थानं देवानं...रसगन्धे अधिवत्थानं देवानं... गन्धगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो दाता होति सारगन्धानं ...पे०...सो दाता होति फेग्गुगन्धानं...सो दाता होति तचगन्धानं...सो दाता होति पपटिकगन्धानं...सो दाता होति पत्तगन्धानं...सो दाता होति पुप्फगन्धानं... सो [R.252] दाता होति फलगन्धानं...सो दाता होति रसगन्धानं...सो दाता होति गन्धगन्धानं। सो कायस्स भेदा परं मरणा गन्धगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं [N.466, B.212] उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा गन्धगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥ ●

१३-२२. मूलगन्धदानूपकारसुत्तदसकं

१३-२२. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा मूलगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति?

४-१२. सारगन्धादिदातृसूत्र (नवक) : : दान से गन्धर्वयोनि में उत्पत्ति

४-१२. ...श्रावस्ती में ही...। ...पूर्ववत्...।

२. ...वह सारगन्धों का दान करता है... ३. ...वह कच्ची लकड़ी की गन्ध का दान करता है... ४. ...वह छाल (त्वचा) की गन्ध का दान करता है... ५. ...वह पपड़ी की गन्ध का दान करता है... ६. ...वह पत्तों की गन्ध का दान करता है... ७. ...वह पुष्पों की गन्ध का दान करता है... ८. ...वह फलों की गन्ध का दान करता है... ९. ...वह रस की गन्ध का दान करता है... १०. ...वह गन्ध की गन्ध का दान करता है...। ...पूर्ववत्...॥ ●

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। तस्स सुतं होति—'मूलगन्धे अधिवत्था देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा मूलगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो अन्नं देति...पे०...पानं देति...वत्थं देति...यानं देति...मालं देति...गन्धं देति...विलेपनं देति...सेय्यं देति...आवसथं देति...पदीपेय्यं देति। सो कायस्स भेदा परं मरणा मूलगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा मूलगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥ •

२३-११२. सारगन्धादिदानूपकारसुत्तनवुतिकं

[R.253] २३-११२. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा सारगन्धे अधिवत्थानं देवानं...पे०...फेग्गुगन्धे अधिवत्थानं देवानं...तचगन्धे अधिवत्थानं देवानं...पपटिकगन्धे अधिवत्थानं देवानं...पत्तगन्धे अधिवत्थानं देवानं... पुप्फगन्धे अधिवत्थानं देवानं...फलगन्धे अधिवत्थानं देवानं...रसगन्धे अधिवत्थानं देवानं...गन्धगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति?

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। तस्स सुतं होति—'गन्धगन्धे अधिवत्था देवा दीघायुका वण्णवन्तो [N.467] सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा गन्धगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो अन्नं देति...पे०...पानं [B.213] देति...वत्थं देति...यानं देति...मालं देति...गन्धं देति...विलेपनं देति...सेय्यं देति...आवसथं देति...पदीपेय्यं देति। सो कायस्स भेदा परं मरणा गन्धगन्धे अधिवत्थानं

१३-२२. मूलगन्धदानोपकारसूत्र (दशक) : : दान से गन्धर्वयोनि में जाना

१३-२२. ...श्रावस्ती में ही...। ...पूर्ववत्...।

१. वह अन्न का दान करता है... २. वह पान (रस) का दान करता है... ३. वह वस्त्र का दान करता है... ४. वह यान (सवारी) का दान करता है... ५. वह माला का दान करता है... ६. वह गन्ध का दान करता है... ७. वह विलेपन का दान करता है... ८. वह शय्या का दान करता है... ९. वह रहने के लिये आवास का दान करता है... १०. वह प्रकाश के लिये दीपक का दान करता है...। ...पूर्ववत्...॥ •

२३-११२. सारगन्धादिदानोपकारसूत्र (नवतिक) : : दान से गन्धर्वकाय प्राप्ति

२३-११२. ...श्रावस्ती में ही...। ...पूर्ववत्...।

देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा गन्धगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती'' ति॥ ●

(एवं पिण्डकेन एकसतं च द्वादस च सुत्तन्ता होन्ति।)

गन्धब्बकायसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

सुद्धिकं च सुचरितं, दाता हि अपरे दस।
दानूपकारा सतधा, गन्धब्बे सुप्पकासिता ति॥ ●

(नागसंयुक्त में वर्णित प्रसङ्गों के अनुसार यहाँ भी उसी तरह विस्तार कर लें। इस तरह विस्तार करने पर इस संयुक्त में ११२ सूत्रों का व्याख्यान होता है)॥ ●

गन्धर्वकायसंयुक्त समाप्त॥

इस गन्धर्वसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची—१. शुद्धिकसूत्र, २. सुचरितसूत्र, ३-१२. दातृसूत्र, तथा १३-११२. दानोपकारसूत्रों का विस्तार हुआ है॥ ●

३२. वलाहकसंयुत्तं

१. सुद्धिकसुत्तं

[N.468, B.214, R.254] १. सावत्थिनिदानं। "वलाहककायिके वो, भिक्खवे, देवे देसेस्सामि। तं सुणाथ। कतमे च, भिक्खवे, वलाहककायिका देवा? सन्ति, भिक्खवे, सीतवलाहका देवा; सन्ति उण्हवलाहका देवा; सन्ति अब्भवलाहका देवा; सन्ति वातवलाहका देवा; सन्ति वस्सवलाहका देवा—इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, 'वलाहक-कायिका देवा'" ति॥

●

२. सुचरितसुत्तं

२. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा वलाहककायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति?

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। तस्स सुतं होति—'वलाहककायिका देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा वलाहक-कायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो कायस्स भेदा परं मरणा वलाहक-

---

३२. वलाहकसंयुक्त

१. शुद्धिकसूत्र : : **वलाहक देव कौन है?**

१. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें वलाहक (मेघ) कायिक देवों के विषय में बताऊँगा। उसे सुनो। भिक्षुओ! ये वलाहककायिक देव कौन होते हैं? भिक्षुओ! ये वलाहककायिक देव पञ्चविध होते हैं—१. शीतवलाहक, २. उष्णवलाहक, ३. अभ्रवलाहक, ४. वातवलाहक एवं ५. वर्षावलाहक। भिक्षुओ! ये सभी वलाहककायिक देव कहलाते हैं॥"

●

२. सुचरितसूत्र : : **वलाहकयोनि में उत्पन्न होने का कारण**

२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे किसी भिक्षु ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! कौन कारण है, कौन प्रत्यय है कि कोई प्राणी स्वदेहपातानन्तर वलाहककायिक देवयोनि में उत्पन्न होना चाहता है?"

"भिक्षु! यहाँ कोई मन, वचन, कर्म से सुचरित (शुभकर्म) करता है, साथ ही उस ने पुराने लोगों से सुन रखा होता है—'वलाहककायिक देव दीर्घायु, वर्णसम्पन्न एवं सुखमय जीवनयापन करने वाले होते हैं।' अत: उस को भी यह विचार होता है कि मैं भी

कायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा वलाहककायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती'' ति॥●

३-१२. सीतवलाहकदानूपकारसुत्तदसकं

३-१२. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच— ''को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा [R.255] सीतवलाहकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती'' ति?

''इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। तस्स सुतं होति—'सीतवलाहका देवा दीघायुका वण्णवन्तो [B.215] सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा सीतवलाहकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो अन्नं देति...पे०...पदीपेय्यं देति। सो कायस्स भेदा परं मरणा सीतवलाहकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु [N.469] अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा सीतवलाहकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती'' ति॥ ●

१३-५२. उण्हवलाहकदानूपकारसुत्तं

१३-५२. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा उण्हवलाहकानं...पे०...अब्भवलाहकानं देवानं...पे०...वातवलाहकानं देवानं...पे०... वस्सवलाहकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती'' ति?

अपने इस देहपात के बाद वलाहकयोनि में जन्म लेऊँ। यों, वह इस देहपात के बाद वलाहककाय देवयोनि में जन्म लेता है। यही कारण है...पूर्ववत्... ॥'' ●

३-१२. शीतवलाहकदानोपकारसूत्र दशक : : दान के प्रभाव से वलाहकों में उत्पत्ति

३-१२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...एक ओर बैठे किसी भिक्षु ने भगवान् से यों पूछा—''भन्ते! क्या कारण है कि कोई प्राणी देहपातानन्तर वलाहकयोनि में उत्पन्न हो जाता है?''

''भिक्षु! यहाँ कोई मन, वचन, कर्म से सत्कर्म करता है, तथा उस ने पुराने वृद्धजनों से सुन भी रखा होता है—'शीतवलाहक देव दीर्घायु, वर्णसम्पन्न एवं सुखमय जीवन जीते हैं।' अत: वह अन्नदान करने लगता है...पूर्ववत्...प्रदीपदान करता है। इस सत्कर्म के प्रभाव से वह, देहपातानन्तर, शीतवलाहक देवों की योनि में उत्पन्न होता है॥'' ●

१३-५२. उष्णवलाहकदानोपकारसूत्र : : दान से वलाहककाय में उत्पत्ति

१३-५२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भन्ते! क्या हेतु क्या प्रत्यय है, जिस से यहाँ

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। तस्स सुतं होति—'वस्सवलाहका देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा वस्सवलाहकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो अन्नं देति...पे०...पदीपेय्यं देति। सो कायस्स भेदा परं मरणा वस्सवलाहकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा वस्सवलाहकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥

५३. सीतवलाहकसुत्तं

५३. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—[R.256] "को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येनेकदा सीतं होती" ति?

"सन्ति, भिक्खु, सीतवलाहका नाम देवा। तेसं यदा एवं होति—'यन्नून मयं सकाय रतिया वसेय्यामा' ति, तेसं तं चेतोपणिधिमन्वाय सीतं होति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्च्रयो येनेकदा सीतं होती" ति॥

५४. उण्हवलाहकसुत्तं

[N.470, B.216] ५४. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच— "को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येनेकदा उण्हं होती" ति?

कोई उष्णवलाहकों की...अभ्रवलाहकों की...वातवलाहकों की...वर्षावलाहकों की योनि में उत्पन्न होता है?"

"यहाँ, भिक्षु! कोई मन, वचन, कर्म से कुशल कर्म करता है...पूर्ववत्...उत्पन्न होऊँ। तब वह अन्नदान...पूर्ववत्...प्रदीपदान करता है। उस के प्रभाव से वर्षावलाहक देवों की योनि में उत्पन्न होता है। भिक्षु! यह हेतु तथा यह प्रत्यय...पूर्ववत्...वह वर्षावलाहकों की योनि में उत्पन्न होता है॥"

५३. शीतवलाहकसूत्र : : शीत होने का कारण

५३. ...**श्रावस्ती में** ही...।...एक ओर बैठे किसी भिक्षु ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! क्या हेतु क्या प्रत्यय है कभी इतनी प्रबल शीतऋतु आ जाती है?"

"भिक्षु! इस संसार में शीतवलाहक नाम के देवता हैं। उन के मन में जब यह विचार आता है—'हम अपनी यथेच्छ रति से रमण करें', तब उन के इस विचार के प्रभाव से शीतऋतु आ जाती है॥"

५४. उष्णवलाहकसूत्र : : ग्रीष्मऋतु आने का कारण

५४. ...**श्रावस्ती में** ही...।...पूर्ववत्...इतनी प्रबल ग्रीष्मऋतु आ जाती है?"

"सन्ति, भिक्खु, उण्हवलाहका नाम देवा। तेसं यदा एवं होति—'यन्नून मयं सकाय रतिया वसेय्यामा' ति, तेसं तं चेतोपणिधिमन्वाय उण्हं होति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येनेकदा उण्हं होती" ति॥ •

५५. अब्भवलाहकसुत्तं

५५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येनेकदा अब्भं होती" ति?

"सन्ति, भिक्खु, अब्भवलाहका नाम देवा। तेसं यदा एवं होति—'यन्नून मयं सकाय रतिया वसेय्यामा' ति, तेसं तं चेतोपणिधिमन्वाय अब्भं होति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येनेकदा अब्भं होती" ति॥ •

५६. वातवलाहकसुत्तं

५६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येनेकदा वातो होती" ति?

"सन्ति, भिक्ख़ु, वातवलाहका नाम देवा। तेसं यदा एवं होति—'यन्नून [R.257] मयं सकाय रतिया वसेय्यामा' ति, तेसं तं चेतोपणिधिमन्वाय वातो होति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येनेकदा वातो होती" ति॥ •

"भिक्षु! यहाँ उष्णवलाहक देवता भी रहते हैं। जब उन के मन में यह विचार आता है—'हम अपनी यथेच्छ रति से रमण करें।' तब उन के इस विचार के प्रभाव से ग्रीष्मऋतु आ जाती है॥" •

५५. अभ्रबलाहकसूत्र : : आकाश में बादल घिरने का कारण

५५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्...क्या कारण है कि कभी आकाश मेघाच्छन्न हो जाता है?"

"भिक्षु! यहाँ अभ्रवलाहक देवता...पूर्ववत्...यथेच्छ रतिक्रीड़ा करें।' तब उन के इस विचार के प्रभाव से आकाश मेघों से आवृत हो जाता है॥" •

५६. वातवलाहकसूत्र : : तीव्र हवा (आँधी) का चलना

५६. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भन्ते! क्या कारण है कि यहाँ कभी कभी तीव्र आँधी (धूलभरी हवा) चलती है?"

"...पूर्ववत्...वातवलाहक देवता...उन के इस विचार-प्रभाव से यहाँ तीव्र आँधी चलने लगती है॥" •

५७. वस्सवलाहकसुत्तं

५७. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच– "को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येनेकदा देवो वस्सती" ति?

[N.471, B.217] "सन्ति, भिक्खु, वस्सवलाहका नाम देवा। तेसं यदा एवं होति– 'यन्नून मयं सकाय रतिया वसेय्यामा' ति, तेसं तं चेतोपणिधिमन्वाय देवो होति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येनेकदा देवो वस्सती" ति॥ •

वलाहकसंयुत्तं समत्तं॥

तस्सुद्दानं

सुद्धिकं सुचरितं च दानूपकारपञ्ञासं।
सीतं उण्हं च अब्भं च वातवस्सवलाहका ति॥ •

---

५७. वर्षावलाहकसूत्र : : तीव्र वर्षा का कारण

५७. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भन्ते! क्या कारण है कि यहाँ कभी कभी वर्षा बहुत अधिक होने लगती है?"

"...पूर्ववत्...वर्षावलाहक देवता...उन के विचार प्रभाव से यहाँ कभी कभी वर्षा बहुत अधिक होने लगती है॥" •

वलाहकसंयुक्त सम्पन्न॥

इस वलाहकसंयुक्त में ये सूत्र व्याख्यात हैं–१. शुद्धिकसूत्र, २. सुचरितसूत्र, ३-१२. शीतवलाहकादिदानोपकारसूत्र (दशक), १३-५२. उष्णवलाहकादिदानोपकारसूत्र, ५३. शीतवलाहकसूत्र, ५४. उष्णवलाहकसूत्र, ५५. अभ्रवलाहकसूत्र, ५६. वातवलाहकसूत्र, एवं ५७. वर्षावलाहकसूत्र॥ •

३३. वच्छगोत्तसंयुत्तं

१. रूपअञ्ञाणसुत्तं

१. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ- [N.472, B.218] पिण्डिकस्स आरामे। अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच–"को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो यानिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके [R.258] उप्पज्जन्ति–सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा, अन्तवा लोको ति वा, अनन्तवा लोको ति वा, तं जीवं तं सरीरं ति वा, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, होति तथागतो परं मरणा ति वा, न होति तथागतो परं मरणा ति वा, होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति वा, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा" ति?

"रूपे खो, वच्छ, अञ्ञाणा, रूपसमुदये अञ्ञाणा, रूपनिरोधे अञ्ञाणा, रूपनिरोधगामिनिया पटिपदाय अञ्ञाणा एवमिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति–सस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा ति। अयं खो, वच्छ, हेतु अयं पच्चयो यानिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके

---

३३. वत्सगोत्रसंयुक्त

१. रूप-अज्ञानसूत्र : : अज्ञान से विविध मिथ्यादृष्टियाँ

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) **श्रावस्ती** स्थित, अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनविहार में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कभी वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् के सम्मुख आ कर, उन से कुशलमङ्गल पूछ कर एक तरफ बैठ कर उस ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की–"भो गौतम! किस हेतु तथा किस प्रत्यय से लोक में ये नाना प्रकार की मिथ्यादृष्टियाँ (धारणाएँ) लोगों के मन में उत्पन्न होती हैं, जैसे–'यह लोक शाश्वत है' या 'यह लोक अशाश्वत है', 'यह लोक अन्तवान् है' या 'यह लोक अन्तवान् नहीं है', 'वही जीव है वही शरीर है' या 'वह शरीर ही वह जीव नहीं है, अपि तु शरीर अन्य है जीव अन्य है', 'तथागत मरणानन्तर भी होते हैं' या 'तथागत मरणानन्तर नहीं होते', 'मरणानन्तर तथागत होते भी हैं, नहीं भी होते' या 'मरणानन्तर तथागत नहीं होते या न नहीं होते?'

"वत्स! रूप में, रूपसमुदय में, रूपनिरोध में, रूपनिरोधगामी मार्ग में अज्ञान के

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। तस्स सुतं होति—'गन्धब्बकायिका देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा गन्धब्बकायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो कायस्स भेदा परं मरणा गन्धब्बकायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु अयं पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा गन्धब्बकायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥ •

३. मूलगन्धदातासुत्तं

३. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—[R.251] "को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा [N.465, B.211] मूलगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति?

"इध, भिक्खु, एकच्चो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। तस्स सुतं होति—'मूलगन्धे अधिवत्था देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा मूलगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो दाता होति मूलगन्धानं। सो कायस्स भेदा परं मरणा मूलगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं खो, भिक्खु, हेतु...पे०...येन मिधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा मूलगन्धे अधिवत्थानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती" ति॥ •

४-१२. सारगन्धादिदातासुत्तनवकं

४-१२. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—

जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! कौन हेतु या कौन प्रत्यय है कि कोई (पुरुष) इस देहपात के बाद गन्धर्वों के साथ उत्पन्न होता है?"

"यहाँ कोई पुरुष मन, वचन एवं काय से सुचरित (सत्कर्म) करता रहता है तथा उसने पुराने लोगों से सुन रखा होता है—'गन्धर्वकाय देव दीर्घायु, सुरूप एवं सुखमय जीवन बिताने वाले होते हैं।' वह सोचता है—'तो क्यों न मैं भी उन गन्धर्वकाय देवों में उत्पन्न होऊँ'। भिक्षु! यही कारण है कि वैसा व्यक्ति देहपात के बाद उन गन्धर्वों की योनि में उत्पन्न होता है"॥ •

३. मूलगन्धदातृसूत्र : : दान से गन्धर्वयोनि में उत्पत्ति

३. .. **श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्... १. वह मूलगन्धों का दान करता है। उस दान के प्रभाव से, देहपात के बाद वह मूलगन्धवासी गन्धर्वों के साथ उत्पन्न होता है। ...॥

अञ्ञाणा, सञ्ञानिरोधगामिनिया पटिपदाय अञ्ञाणा एवमिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा ...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा ति। अयं खो, वच्छ, हेतु अयं पच्चयो यानिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा'' ति॥ ●

४. सङ्खारअञ्ञाणसुत्तं

४. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—''को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो यानिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा ...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा'' ति?

''सङ्खारेसु खो, वच्छ, अञ्ञाणा, सङ्खारसमुदये अञ्ञाणा, सङ्खारनिरोधे अञ्ञाणा, सङ्खारनिरोधगामिनिया पटिपदाय अञ्ञाणा एवमिमानि [N.474, B.220] अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा ति। अयं खो, वच्छ, हेतु अयं पच्चयो यानिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा'' ति॥ ●

५. विञ्ञाणअञ्ञाणसुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—''को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो यानिमानि अनेकविहितानि

''वत्स! संज्ञा में, संज्ञासमुदय में, संज्ञानिरोध में तथा संज्ञानिरोधगामी मार्ग में अज्ञान के कारण ये तुम्हारी उपर्युक्त मिथ्यादृष्टियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। ...पूर्ववत्... ॥●

४. संस्कार-अज्ञानसूत्र : : संस्कार में अज्ञान से मिथ्यादृष्टि

४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्वसूत्रवत्...(वत्सगोत्र का प्रश्न)।

''संस्कारों में, संस्कारसमुदय में, संस्कारनिरोध में, संस्कारनिरोधगामी मार्ग में अज्ञान के कारण ये मिथ्यादृष्टियाँ होती रहती हैं...पूर्ववत्... ॥ ●

५. विज्ञान-अज्ञानसूत्र : : विज्ञान में अज्ञान से मिथ्यादृष्टि

५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्वसूत्रवत्...(वत्सगोत्र का प्रश्न)।

[R.260] दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा'' ति?

''विञ्ञाणे खो, वच्छ, अञ्ञाणा, विञ्ञाणसमुदये अञ्ञाणा, विञ्ञाणनिरोधे अञ्ञाणा, विञ्ञाणनिरोधगामिनिया पटिपदाय अञ्ञाणा एवमिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा ...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा ति। अयं खो, वच्छ, हेतु अयं पच्चयो यानिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा'' ति॥ ●

६-१०. रूपअदस्सनादिसुत्तपञ्चकं

६-१०. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—''को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो यानिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा'' ति?

रूपे खो, वच्छ, अदस्सना...पे०...रूपनिरोधगामिनिया पटिपदाय अदस्सना...पे०...वेदनाय...सञ्ञाय...सङ्खारेसु खो, वच्छ, अदस्सना...पे०...विञ्ञाणे खो, वच्छ, [N.475] अदस्सना...पे०...विञ्ञाणनिरोधगामिनिया पटिपदाय अदस्सना ...पे०... ॥ ●

११-१५. रूपअनभिसमयादिसुत्तपञ्चकं

[B.221] ११. सावत्थिनिदानं। रूपे खो, वच्छ, अनभिसमया...पे०... रूपनिरोधगामिनिया पटिपदाय अनभिसमया...पे०...। ●

''विज्ञान में, विज्ञानसमुदय में, विज्ञाननिरोध में, विज्ञाननिरोधगामी मार्ग में अज्ञान के कारण लोक में ये मिथ्यादृष्टियाँ उत्पन्न होती रहती हैं, जैसे—...पूर्ववत्... ॥'' ●

६-१०. रूप-अदर्शनादिसूत्र (पञ्चक): : अदर्शन से मिथ्यादृष्टि

६-१०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्...(वत्सगोत्र का प्रश्न)।

''रूप में अदर्शन से...रूपनिरोधगामी मार्ग में अदर्शन से; वेदना में अदर्शन से...वेदना-निरोधगामी मार्ग में अदर्शन से; संज्ञा में अदर्शन से...संज्ञानिरोधगामी मार्ग में अदर्शन से; संस्कारों में अदर्शन से...संस्कारनिरोधगामी मार्ग के अदर्शन से; विज्ञान में अदर्शन से...विज्ञाननिरोधगामी मार्ग के अदर्शन से वत्स! ये तुम्हारी कही गयी मिथ्यादृष्टियाँ उत्पन्न होती होती हैं। ...पूर्ववत्... ॥'' ●

१२. सावत्थिनिदानं। वेदना खो, वच्छ, अनभिसमया...पे०... ॥ •

१३. सावत्थिनिदानं। सञ्ञाय खो, वच्छ, अनभिसमया...पे०... ॥ •

१४. सावत्थिनिदानं। सङ्खारेसु खो, वच्छ, अनभिसमया...पे०... ॥ •

१५. सावत्थिनिदानं। विञ्ञाणे खो, वच्छ, अनभिसमया...पे०... ॥ •

१६-२०. रूपअननुबोधादिसुत्तपञ्चकं

१६. सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको [R.261] भगवन्तं एतदवोच—को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो...पे०...।

रूपे खो, वच्छ, अननुबोधा...पे०...रूपनिरोधगामिनिया पटिपदाय अननुबोधा...पे०...॥

१७. सावत्थिनिदानं। वेदना खो, वच्छ...पे०... ॥ •

१८. सावत्थिनिदानं। सञ्ञाय खो, वच्छ...पे०... ॥ •

१९. सावत्थिनिदानं। सङ्खारेसु खो, वच्छ...पे०... ॥ •

२०. सावत्थिनिदानं। विञ्ञाणं खो, वच्छ, अननुबोधा...पे०...विञ्ञाण-निरोधगामिनिया पटिपदाय अननुबोधा...पे०... ॥ •

११-१५. रूप-अनभिसमयादिसूत्र (पञ्चक) : : अज्ञान से मिथ्यादृष्टि

११. ...**श्रावस्ती में** ही...।...रूप में **अनभिसमय** (स्पष्ट ज्ञान का अभाव) होने से, वत्स! ...पूर्ववत्... ॥ •

१२. ...**श्रावस्ती में** ही...।...वेदना में अनभिसमय होने से, वत्स! ...पूर्ववत्... ॥ •

१३. ...**श्रावस्ती में** ही...।...संज्ञा में अनभिसमय होने से, वत्स! ...पूर्ववत्... ॥ •

१४. ...**श्रावस्ती में** ही...।...संस्कारों में अनभिसमय होने से, वत्स! ...पूर्ववत्... ॥ •

१५. ...**श्रावस्ती में** ही...।...विज्ञान में अनभिसमय होने से, वत्स! ...पूर्ववत्... ॥ •

१६-२०. रूप-अननुबोधादिसूत्र (पञ्चक) : : ज्ञान के अभाव से मिथ्यादृष्टि

१६. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्... (वत्स का प्रश्न)।

"वत्स! रूप में **अननुबोध** से...रूपनिरोधगामी मार्ग में अननुबोध (ज्ञान के अभाव) से, वत्स! ...पूर्ववत्... ॥ •

१७. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...वेदना में अननुबोध से...पूर्ववत्... ॥ •

१८. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...संज्ञा में अननुबोध से...पूर्ववत्... ॥ •

१९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...संस्कारों के अननुबोध से...पूर्ववत्... ॥ •

२०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...विज्ञान में अननुबोध से...पूर्ववत्... ॥ •

२१-२५. रूपअप्पटिवेधादिसुत्तपञ्चकं

२१-२५. सावत्थिनिदानं। को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो...पे०...रूपे खो, वच्छ, अप्पटिवेधा...पे०...विञ्ञाणे खो, वच्छ, अप्पटिवेधा...पे०... ॥

२६-३०. रूपअसल्लक्खणादिसुत्तपञ्चकं

२६-३०. सावत्थिनिदानं। रूपे खो, वच्छ, असल्लक्खणा...पे०...विञ्ञाणे [N.476] खो, वच्छ, असल्लक्खणा...पे०... ॥

३१-३५. रूपअनुपलक्खणादिसुत्तपञ्चकं

३१-३५. सावत्थिनिदानं। रूपे खो, वच्छ, अनुपलक्खणा...पे०...विञ्ञाणे [B.222] खो, वच्छ, अनुपलक्खणा...पे०... ॥

३६-४०. रूपअप्पच्चुपलक्खणादिसुत्तपञ्चकं

३६-४०. सावत्थिनिदानं। रूपे खो, वच्छ, अप्पच्चुपलक्खणा...पे०...विञ्ञाणे खो, वच्छ, अप्पच्चुपलक्खणा...पे०... ॥

४१-४५. रूपअसमपेक्खणादिसुत्तपञ्चकं

४१-४५. सावत्थिनिदानं। रूपे खो, वच्छ, असमपेक्खणा...पे०...विञ्ञाणे खो, वच्छ, असमपेक्खणा...पे०... ॥

२१-२५. रूप-अप्रतिवेधादिसूत्र (पञ्चक) : : गम्भीर ज्ञानाभाव से मिथ्यादृष्टि

२१-२५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्... (वत्सगोत्र परिव्राजक का प्रश्न)।

''वत्स! रूप में **अप्रतिवेध** (गम्भीर ज्ञानाभाव) से...वेदना...संज्ञा...संस्कार...विज्ञान में अप्रतिवेध से...पूर्ववत्... ॥

२६-३०. रूप-असल्लक्षणादिसूत्र (पञ्चक) : : विवेक के अभाव से मिथ्यादृष्टि

२६-३०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्... (वत्सगोत्र का प्रश्न)।

''वत्स! रूप में **असल्लक्षण** (विवेक के अभाव) से...वेदना...संज्ञा...संस्कार... विज्ञान के असल्लक्षण से...पूर्ववत्... ॥

३१-३५. रूप-अनुपलक्षणादिसूत्र(पञ्चक) : : गम्भीर अविवेक से मिथ्यादृष्टि

३१-३५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्... (वत्सगोत्र का प्रश्न)।

''वत्स! रूप में **अनुपलक्षण** (गम्भीर विवेक के अभाव) से...वेदना में...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान में अनुपलक्षण से...पूर्ववत्... ॥

३६-४०. रूप-अप्रत्युपलक्षणादिसूत्र (पञ्चक) : : अप्रत्युपलक्षण से मिथ्यादृष्टि

३६-४०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्... (वत्सगोत्र का प्रश्न)।

''वत्स! रूप में **अप्रत्युपलक्षण** (दोनों पक्षों पर सविवेक विचार न करना) से... वेदना में...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान में...पूर्ववत्... ॥

४६-५०. रूपअप्पच्चुपेक्खणादिसुत्तपञ्चकं

४६-५०. सावत्थिनिदानं। रूपे खो, वच्छ, अप्पच्चुपेक्खणा...पे०... [R.262] विञ्ञाणे खो, वच्छ, अप्पच्चुपेक्खणा...पे०... ॥ ●

५१-५४. रूपअप्पच्चक्खकम्मादिसुत्तचतुक्कं

५१. सावत्थिनिदानं। अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—''को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो यानिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा'' ति?

रूपे खो, वच्छ, अप्पच्चक्खकम्मा, रूपसमुदये अप्पच्चक्खकम्मा, रूपनिरोधे अप्पच्चक्खकम्मा, रूपनिरोधगामिनिया पटिपदाय अप्पच्चक्खकम्मा...पे०... ॥ ●

५२. सावत्थिनिदानं। वेदनाय खो, वच्छ, अप्पच्चक्खकम्मा...पे०... [N.477] वेदनानिरोधगामिनिया पटिपदाय अप्पच्चक्खकम्मा...पे०... ॥ ●

४१-४५. रूप-असम्प्रेक्षणादिसूत्र (पञ्चक) : : असम्प्रेक्षण से मिथ्यादृष्टि

४१-४५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्... (वत्सगोत्र का प्रश्न)।

''रूप में, वत्स! **असम्प्रेक्षण** (विधिवत् साक्षात्कार न करने) से...वेदना में...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान में...पूर्ववत्... ॥ ●

४६-५०. रूप-अप्रत्युप्रेक्षणादिसूत्र (पञ्चक) : : अप्रत्युप्रेक्षण से मिथ्यादृष्टि

४६-५०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्... (वत्सगोत्र का प्रश्न)।

''वत्स! रूप में **अप्रत्युप्रेक्षण** (मध्यस्थ भावपूर्वक विचार न करने) से...वेदना में...संज्ञा में...संस्कारों में...विज्ञान में...पूर्ववत्... ॥ ●

५१-५४. रूप-अप्रत्यक्षकर्मादिसूत्र (चतुष्क) : : अप्रत्यक्षकर्म से मिथ्यादृष्टि

५१. ...**श्रावस्ती में** ही...। तब कभी वत्सगोत्र परिव्राजक...पूर्ववत्...मरणानन्तर तथागत नहीं होते या न नहीं होते?''

''वत्स! रूप में **प्रत्यक्षकर्म** (यथातथ साक्षात्कार न करने) से...रूपनिरोधगामी मार्ग में प्रत्यक्षकर्म न करने से...पूर्ववत्... ॥ ●

५२. ...**श्रावस्ती में** ही...। वेदना में प्रत्यक्षकर्म न करने से...वेदनानिरोधगामी मार्ग में...पूर्ववत्... ॥ ●

५३. सावत्थिनिदानं। सञ्ञाय खो, वच्छ, अप्पच्चक्खकम्मा...पे०...सञ्ञा-निरोधगामिनिया पटिपदाय अप्पच्चक्खकम्मा...पे०... ॥ •

[B.223] ५४. सावत्थिनिदानं। सङ्खारेसु खो, वच्छ, अप्पच्चक्खकम्मा...पे०...सङ्खार-निरोधगामिनिया पटिपदाय अप्पच्चक्खकम्मा...पे०...॥ •

५५. विञ्ञाणअप्पच्चक्खकम्मसुत्तं

५५. सावत्थिनिदानं। "विञ्ञाणे खो, वच्छ, अप्पच्चक्खकम्मा, विञ्ञाणसमुदये अप्पच्चक्खकम्मा, विञ्ञाणनिरोधे अप्पच्चक्खकम्मा, विञ्ञाणनिरोधगामिनिया [R.263] पटिपदाय अप्पच्चक्खकम्मा। एवमिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा...पे०...नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा ति। अयं खो, वच्छ, हेतु अयं पच्चयो यानिमानि अनेकविहितानि दिट्ठिगतानि लोके उप्पज्जन्ति—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा, अन्तवा लोको ति वा, अनन्तवा लोको ति वा, तं जीवं तं सरीरं ति वा, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, होति तथागतो परं मरणा ति वा, न होति तथागतो परं मरणा ति वा, होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति वा, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा" ति॥ •

वच्छगोत्तसंयुत्तं समत्तं॥

---

५३. ...**श्रावस्ती में** ही...। संज्ञा में प्रत्यक्षकर्म न करने से...संज्ञानिरोधगामी मार्ग में...पूर्ववत्... ॥ •

५४. ...**श्रावस्ती में** ही...। संस्कारों में प्रत्यक्षकर्म न करने से...संस्कारनिरोधगामी मार्ग में प्रत्यक्षकर्म न करने से...पूर्ववत्... ॥ •

५५. विज्ञान-अप्रत्यक्षकर्मादिसूत्र : : विज्ञान का साक्षात्कार न करने से मिथ्यादृष्टि

५५. ...**श्रावस्ती में** ही...। "विज्ञान में, वत्स! प्रत्यक्षकर्म (यथातथ साक्षात्कार) न करने से, विज्ञानसमुदय में, विज्ञाननिरोध में, विज्ञाननिरोधगामी मार्ग में साधक का प्रत्यक्षकर्म न होने से। यों लोक में ये विविध मिथ्यादृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—'लोक शाश्वत है', 'यह लोक अशाश्वत है', 'यह लोक अन्तवान् है', 'यह लोक अन्तवान् नहीं है', 'वही जीव वही शरीर है', 'जीव पृथक् है तथा शरीर पृथक् है', 'तथागत मरणानन्तर होते हैं', 'तथागत मरणानन्तर नहीं होते', 'तथागत मरणानन्तर होते भी हैं, नहीं भी होते', 'तथागत मरणानन्तर नहीं होते या न नहीं होते॥''' •

वत्सगोत्रसंयुक्त समाप्त॥

तस्सुद्दानं

अञ्ञाणा अ[illegible]सना चेव, अनभिसमया अननुबोधा।
अप्पटिवेधा असल्लक्खणा, अनुपलक्खणेन अप्पच्चुपलक्खणा।
असमपेक्खणा अप्पच्चुपेक्खणा, अप्पच्चक्खकम्मं ति॥ •

इस वत्सगोत्रसंयुक्त सूत्रों में व्याख्यात सूत्रों की सूची—इस संयुक्त में अधोलिखित कारणों से मिथ्यादृष्टियाँ उद्भूत होती हैं—१. अज्ञान से, २. अदर्शन से, ३. अनभिसमय से, ४. अननुबोध से, ५. अप्रतिवेध से, ६ . असल्लक्षण से, ७. अनुपलक्षण से, ८. अप्रत्युपलक्षण से, ९. असम्प्रेक्षण से, १०. अप्रत्युपेक्षण से, तथा ११. अप्रत्यक्षकर्म (साक्षात्कार न करने) से॥ •

३४. झानसंयुत्तं

१. समाधिमूलकसमापत्तिसुत्तं

[N.478, B.224, R.264] १. सावत्थिनिदानं। "चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति, न समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति, न समाधिस्मिं समाधिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति न च समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो च, अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं, खीरम्हा दधि, दधिम्हा नवनीतं, नवनीतम्हा सप्पि, सप्पिम्हा सप्पिमण्डो तत्र अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो चा" ति॥ ●

---

३४. ध्यानसंयुक्त

१. समाधिमूलकसमापत्तिसूत्र : : ध्यानलाभी साधक चार

१. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! ये चार ध्यानी होते हैं। कौन से चार? १. भिक्षुओ! यहाँ कोई साधक समाधि में तो कुशल होता है, परन्तु उसकी समापत्ति (प्राप्ति) में कुशल नहीं होता। २. कोई साधक समाधिसमापत्ति में तो कुशल होता है, परन्तु समाधिकुशल नहीं होता। ३. तीसरा साधक ऐसा भी होता है जो न समापत्तिकुशल होता है, न समाधिकुशल। तथा ४. चतुर्थ साधक ऐसा होता है जो समापित्तकुशल भी होता है तथा समाधिकुशल भी।

इन में जो चतुर्थ ध्यानलाभी साधक है, जो समापत्ति एवं समाधि—दोनों में कुशल है, वही श्रेष्ठ माना जाता है। जैसे, भिक्षुओ! लोक में गौ से दूध, दूध से दधि, दघि से नवनीत, नवनीत से घी तथा घी से भी शुद्ध घी श्रेष्ठ कहलाता है उसी तरह यह समापत्ति एवं समाधि—दोनों में ही कुशल साधक इन चारों साधकों में अग्र, श्रेष्ठ, मुख्य एवं प्रधान कहलाता है॥" ●

२. समाधिमूलकठितिसुत्तं

२. सावत्थिनिदानं। "चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति, न समाधिस्मिं ठितिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं ठितिकुसलो होति, न समाधिस्मिं समाधिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति न च समाधिस्मिं ठितिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं ठितिकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं ठितिकुसलो च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं, खीरम्हा दधि, दधिम्हा [R.265] नवनीतं, नवनीतम्हा सप्पि, सप्पिम्हा सप्पिमण्डो तत्र अग्गमक्खायति; [N.479, B.225] एवमेव खो, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं ठितिकुसलो च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो चा" ति॥

●

३. समाधिमूलकवुट्ठानसुत्तं

३. सावत्थिनिदानं। "चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति, न समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो होति, न समाधिस्मिं समाधिकुसलो।

---

२. समाधिमूलकस्थितिसूत्र : : स्थितिकुशल ध्यानलाभी श्रेष्ठ

२. ...**श्रावस्ती में** ही...। "भिक्षुओ! ये ध्यानलाभी भी चार होते हैं। कौन से चार? १. यहाँ, भिक्षुओ! कोई ध्यानलाभी साधक समाधिकुशल ही होता है, समाधिस्थितिकुशल नहीं। २. कोई ध्यानलाभी साधक समाधि स्थितिकुशल तो होता है, परन्तु समाधिकुशल नहीं। ३. तथा कोई ध्यानलाभी न समाधिकुशल होता है न समाधिस्थितिकुशल। तथा ४. कोई ध्यानलाभी समाधि एवं समाधिस्थिति—दोनों में ही कुशल होता है।

इन में जो चतुर्थ ध्यानलाभी जो समाधि एवं समाधिस्थिति—दोनों में ही कुशल होता है, वही इन चारों ध्यानलाभियों में अग्र, श्रेष्ठ, प्रमुख एवं प्रधान कहलाता है। जैसे भिक्षुओं लोक में गौ से दूध...पूर्ववत्...प्रधान कहलाता है॥"

●

३. समाधिमूलकव्युत्थानसूत्र : : व्युत्थानकुशल ध्यानलाभी श्रेष्ठ

३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भिक्षुओ! ध्यानलाभी चार होते हैं। कौन से चार? १. यहाँ, भिक्षुओ! कोई ध्यानलाभी समाधि लगाने में तो कुशल होता है, परन्तु समाधि से

इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति न च समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं...पे०...पवरो चा'' ति॥ •

४. समाधिमूलककल्लितसुत्तं

४. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति, न समाधिस्मिं कल्लितकुसलो। इध पन, [R.266] भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं कल्लितकुसलो होति, न समाधिस्मिं समाधिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति न च समाधिस्मिं कल्लितकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं कल्लितकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं कल्लितकुसलो च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं...पे०...पवरो चा'' ति॥ •

उठने (व्युत्थान) में कुशल नहीं होता। २. कोई साधक समाधि से उठने में कुशल होता है, परन्तु समाधि लगाने में कुशल नहीं उठना। ३. तीसरा एक साधक ऐसा भी होता है जो न समाधि लगाने में तथा न समाधि से उठने में ही कुशल होता है। तथा ४. चतुर्थ ध्यानलाभी वह कहलाता है जो समाधि लगाने तथा उस से उठने—दोनों में ही कुशल होता है। भिक्षुओ! इन चारों में वही कुशल, श्रेष्ठ, अग्र एवं प्रमुख ध्यानलाभी कहलाता है जो समाधि एवं समाधिव्युत्थान—दोनों में समानतया कुशल होता है। जैसे, गौ से दूध, दूध से दधि...पूर्ववत्...चतुर्थ ध्यानलाभी ही उन में अग्र, श्रेष्ठ, प्रमुख, प्रवर, कुशल एवं उत्तम ध्यानलाभी होता है॥'' •

४. समाधिमूलककल्पितसूत्र : : समाधि में दक्षताप्राप्त ध्यायी श्रेष्ठ

४. ...**श्रावस्ती में** ही...।...''भिक्षुओ! ये चार ध्यानलाभी होते हैं। कौन से चार? १. वह ध्यानलाभी भी होता है जो समाधि लगाने में तो कुशल है, परन्तु समाधि भावना में दक्षता नहीं कर पाया हो। २. एक वह ध्यानलाभी भी होता है जो समाधि में दक्ष है, परन्तु समाधि लगाने में उतना कुशल नहीं है। ३. एक वह भी है, जो न समाधि लगा पाता है न समाधि भावना में ही दक्ष है। तथा ४. एक वह भी है जो समाधि लगाने तथा उस में स्थिर रहने की दक्षता—दोनों में ही कुशल है। इस चतुर्थ ध्यानलाभी को ही लोग इन में

५. समाधिमूलकआरम्मणसुत्तं

५. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे [N.480, B.226] चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति, न समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो होति, न समाधिस्मिं समाधिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति न च समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं...पे०...पवरो चा'' ति॥

●

६. समाधिमूलकगोचरसुत्तं

६. सावत्थिनिदानं।''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति, न समाधिस्मिं गोचरकुसलो। [R.267] इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं गोचरकुसलो होति, न समाधिस्मिं समाधिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति

श्रेष्ठ, प्रवर, अग्र, कुशल, प्रमुख या प्रधान कहते हैं। जैसे, भिक्षुओ! गौ से दूध, दूध से दधि...पूर्ववत्...चतुर्थ ध्यानलाभी ही उन में अग्र...उत्तम ध्यानलाभी कहलाता है॥'' ●

५. समाधिमूलकआलम्बनसूत्र : : आलम्बनकुशल ध्यानलाभी श्रेष्ठ

५. ...**श्रावस्ती में** ही...।...''भिक्षुओ! ये चार ध्यानलाभी होते हैं। कौन से चार? १. एक वह ध्यानलाभी होता है जो समाधिकुशल होते हुए भी समाधि के आलम्बन ग्रहण में कुशल नहीं है। २. एक वह भी है जो समाधिआलम्बन के ग्रहण में कुशल होते हुए भी समाधिकुशल नहीं है। ३. एक वह होता है जो न समाधिकुशल है, न समाधिआलम्बनकुशल ही है। तथा ४. वह है जो समाधि एवं समाधिआलम्बन—दोनों में ही कुशल है। यही इन चारों में अग्र...पूर्ववत्...उत्तम कहलाता है। भिक्षुओ! जैसे, गौ से दूध, ...पूर्ववत्...उत्तम कहलाता है॥''

●

६. समाधिमूलकगोचरसूत्र : : गोचरकुशल ध्यानलाभी श्रेष्ठ

६. ...**श्रावस्ती में** ही...।...''भिक्षुओ! ये ध्यानलाभी चार प्रकार के होते हैं। कौन से चार? १. कोई ध्यानी समाधि में कुशल होते हुए भी समाधि से सम्बद्ध गोचर (योग्य=उचित) स्थान प्राप्त नहीं कर पाता। २. कोई समाधि का गोचर प्राप्त करने पर भी समाधिकुशल नहीं होता। ३. कोई न समाधि का गोचर प्राप्त कर पाता है न वह समाधिकुशल

न च समाधिस्मिं गोचरकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधि-कुसलो च होति समाधिस्मिं गोचरकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं गोचरकुसलो च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं...पे०...पवरो चा'' ति॥

७. समाधिमूलकअभिनीहारसुत्तं

७. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति, न समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो होति, न समाधिस्मिं [N.481, B.227] समाधिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति न च समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं अभिनीहार-कुसलो च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं...पे०...पवरो चा'' ति॥

८. समाधिमूलकसक्कच्चकारीसुत्तं

८. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे,

---

ही होता है। तथा ४. एक ऐसा ध्यानी होता है जो समाधिगोचर भी प्राप्त कर लेता है तथा साथ ही समाधिकुशल भी होता है। इन में, भिक्षुओ! चतुर्थ प्रकार का ध्यानलाभी ही श्रेष्ठ...उत्तम कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! गौ से दूध, दूध से दही...पूर्ववत्...उत्तम कहलाता है।''

७. समाधिमूलकअभिनीहारसूत्र : : अभिनीहारकुशल ध्यानी श्रेष्ठ

७. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! ध्यानी चार प्रकार के होते हैं। कौन से चार? १. पहला वह जो ध्यानी समाधिकुशल होते हुए भी समाधि का दृढ सङ्कल्प लेने में चतुर नहीं होता। २. दूसरा वह जो समाधि का दृढ सङ्कल्प लेने में चतुर होते हुए भी समाधिकुशल नहीं होता। ३. तीसरा वह जो न समाधिकुशल ही होता है तथा न समाधि का दृढ सङ्कल्प लेने में ही चतुर होता है। ४. चतुर्थ वह जो समाधिकुशल भी होता है तथा समाधिसङ्कल्पकुशल भी। ...पूर्ववत्... ॥''

८. समाधिमूलकसत्कारकारीसूत्र : : समाधि का सम्मानकर्ता ध्यानी श्रेष्ठ

८. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! ये चार ध्यानलाभी भी गिनाये गये हैं।

एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति, न समाधिस्मिं सक्कच्चकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं सक्कच्चकारी होति, न समाधिस्मिं समाधिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति न च समाधिस्मिं सक्कच्चकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं सक्कच्चकारी च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं [R.268] झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं सक्कच्चकारी च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं...पे०...पवरो चा'' ति॥

९. समाधिमूलकसातच्चकारीसुत्तं

९. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति, न समाधिस्मिं सातच्चकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं सातच्चकारी होति, न समाधिस्मिं समाधिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति न च समाधिस्मिं सातच्चकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं सातच्चकारी च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं सातच्चकारी च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं...पे०...पवरो चा'' ति॥ [N.482] ●

कौन से चार? १. पहला वह है जो समाधि लगाने में तो कुशल है परन्तु उस में समाधि के प्रति कोई सत्कार (गौरव) नहीं होता। २. दूसरा वह है जिस का समाधि के प्रति सत्कार है परन्तु वह स्वयं समाधिकुशल नहीं है। ३. तीसरा वह जो न समाधिकुशल है, न समाधि के प्रति सत्कारकारी। ४. चतुर्थ वह है जो समाधि के प्रति सत्कारकारी भी है तथा समाधिकुशल भी। इन सब में यह चतुर्थ ही अग्र, श्रेष्ठ, उत्तम, प्रवर, प्रमुख एवं उत्तम है।''...पूर्ववत्...॥

●

९. समाधिमूलकसातत्यकारीसूत्र : : समाधि की निरन्तरता रखने वाला श्रेष्ठ

९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! ये चार ध्यानलाभी होते हैं। कौन से चार? १. पहला वह जो समाधिकुशल तो है, परन्तु उस में निरन्तरता नहीं रख पाता। २. दूसरा वह जो समाधि में निरन्तरता तो रखता है परन्तु समाधिकुशल नहीं होता। ३. तीसरा वह जो न तो समाधि में निरन्तरता रखने में कुशल है, न समाधिकुशल ही। ४. चतुर्थ वह जो समाधिकुशल भी है तथा समाधि में निरन्तरताकुशल भी। इन चारों में, भिक्षुओ! यह चतुर्थ साधक ही श्रेष्ठ...उत्तम माना जाता है।''...पूर्ववत्...॥

●

१०. समाधिमूलकसप्पायकारीसुत्तं

[B.228] १०. सावत्थिनिदानं। "चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति, न समाधिस्मिं सप्पायकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं सप्पायकारी होति, न समाधिस्मिं समाधिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति न च समाधिस्मिं सप्पायकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधि- [R.269] कुसलो च होति समाधिस्मिं सप्पायकारी च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो च होति समाधिस्मिं सप्पायकारी च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं...पे०...पवरो चा" ति॥ *(समाधिमूलकं)* •

११. समापत्तिमूलकठितिसुत्तं

११. सावत्थिनिदानं। "चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समाधिकुसलो होति, न समाधिस्मिं ठितिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं ठिति कुसलो होति, न समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति न च समाधिस्मिं ठितिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं

---

१०. समाधिमूलकसत्प्रायकारीसूत्र : : समाधिलाभ का कर्ता ही श्रेष्ठ

१०. ...**श्रावस्ती में** ही...।..."भिक्षुओ! ध्यानलाभी चार प्रकार के होते हैं। कौन से चार? १. पहला वह है जो समाधिकुशल तो है, परन्तु वह उस समाधि का लाभ उठाने में कुशल नहीं है। २. दूसरा वह जो समाधि का लाभ उठाने में तो कुशल है, परन्तु समाधिकुशल नहीं है। ३. तीसरा वह जो न समाधिकुशल है, न समाधिलाभकुशल। तथा ४. चतुर्थ वह जो समाधिकुशल भी है तथा समाधिलाभ उठाने में भी कुशल है। इन में यह चतुर्थ प्रकार का ध्यानलाभी ही श्रेष्ठ, अग्ग...उत्तम कहलाता है।"...पूर्ववत्...॥ •

समाधिमूलक व्याख्यान समाप्त॥

११. समापत्तिमूलकस्थितिसूत्र : : प्राप्तिमूलक ध्यानलाभी ही श्रेष्ठ

११. ...**श्रावस्ती में** ही...।"भिक्षुओ! ये ध्यानलाभी चार प्रकार के होते हैं। कौन से चार? १. यहाँ, भिक्षुओ! कोई ध्यानलाभी समाधि लगाने में तो कुशल होता है, परन्तु वह उस समाधि को स्थिर रखने में कुशल नहीं होता। २. कोई ध्यानलाभी समाधि स्थिरतया प्राप्त रखने में तो कुशल होता है, परन्तु समाधि लगाने में कुशल नहीं होता। ३. कोई ध्यानलाभी न समाधिकुशल होता है तथा न समाधिस्थितिकुशल। एवं ४. कोई

समापत्तिकुसलो च होति समाधिस्मिं ठितिकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मि समापत्तिकुसलो च होति समाधिस्मि ठितिकुसलो च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं...पे०...पवरो चा'' ति॥ •

१२. समापत्तिमूलकवुट्ठानसुत्तं

१२. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मि समापत्तिकुसलो होति, न समाधिस्मि [N.483] वुट्ठानकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मि वुट्ठानकुसलो होति, न समाधिस्मि समापत्तिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मि समापत्तिकुसलो होति न च समाधिस्मि वुट्ठानकुसलो। इध पन, [B.229, R.270] भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मि समापत्तिकुसलो च होति समाधिस्मि वुट्ठानकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी...पे०...पवरो चा'' ति॥ •

१३. समापत्तिमूलककल्लितसुत्तं

१३. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मि समापत्तिकुसलो होति, न समाधिस्मि कल्लित-कुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मि कल्लितकुसलो होति, न समाधिस्मि समापत्तिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मि

ध्यानलाभी ऐसा होता है जो समाधिकुशल भी होता है तथा समाधिस्थितिकुशल भी। भिक्षुओ! इन में यह चतुर्थ श्रेणि का ध्यानलाभी ही श्रेष्ठ, प्रवर, मुख्य...उत्तम होता है। ...पूर्ववत्... ॥'' •

१२. समापत्तिमूलकव्युत्थानसूत्र : : स्थिरताप्राप्ति वाले ध्यानी श्रेष्ठ

१२. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! ये चार ध्यानलाभी होते हैं। कौन से चार? १. यहाँ, भिक्षुओ! कोई ध्यानी समापत्तिव्युत्थानकुशल तो है परन्तु समापत्तिकुशल नहीं होता। २. कोई ध्यानलाभी समापत्तिकुशल होते हुए भी समापत्तिव्युत्थानकुशल नहीं होता। ३. तीसरे प्रकार का ध्यानलाभी वह है जो न समापत्तिकुशल है न समापत्तिव्युत्थान-कुशल। तथा ४. यहाँ चतुर्थ प्रकार का ध्यानलाभी वह है जो समापत्तिकुशल भी है तथा समापत्तिव्युत्थानकुशल भी। ...पूर्ववत्... ॥'' •

१३. समापत्तिमूलककल्पितसूत्र : : समापत्तिदक्षताप्राप्त ध्यानी श्रेष्ठ

१३. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! यहाँ चार प्रकार के ध्यानलाभी होते हैं। जिन में १. पहला ध्यानलाभी वह कहलाता है समाधिकुशल तो है, परन्तु समापत्ति-

समापत्तिकुसलो होति न च समाधिस्मिं कल्लितकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो च होति समाधिस्मिं कल्लितकुसलो च। तत्र ...पे०...पवरो चा'' ति॥ •

१४. समापत्तिमूलकआरम्मणसुत्तं

१४. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति, न समाधिस्मिं आरम्मण-कुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो होति, न समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति न च समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो च होति समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो च। तत्र ...पे०...पवरो चा'' ति॥ •

१५. समापत्तिमूलकगोचरसुत्तं

१५. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, [R.271] भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति, न समाधिस्मिं

दक्षताप्रासिकुशल नहीं है। २. दूसरा वह ध्यानलाभी है जो समापत्तिदक्षताप्रासिकुशल होते हुए भी समापत्तिकुशल नहीं है। ३. तीसरा वह होता है जो न समापत्तिकुशल है, न समापत्तिदक्षताप्राप्तिकुशल। तथा ४. चतुर्थ ध्यानलाभी वह है जो समापत्तिकुशल भी है तथा समापत्तिदक्षताप्रासिकुशल भी है। इन चारों में यह अन्तिम (चतुर्थ) ध्यानलाभी ही श्रेष्ठ, प्रवर, अग्र, प्रमुख एवं उत्तम माना गया है। ...पूर्ववत्... ॥'' •

१४. समापत्तिमूलकआलम्बनसूत्र : : समापत्तिआलम्बनकुशल ध्यानी श्रेष्ठ

१४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! यहाँ ध्यानलाभी चार होते हैं। उन में १. पहला ध्यानलाभी समाधि में तो समापत्तिकुशल होता है, परन्तु समाधि में आलम्बनकुशल नहीं होता। २. दूसरा ध्यानलाभी वह होता है जो समाधि में आलम्बनकुशल तो होता है परन्तु समाधि में समापत्तिकुशल नहीं होता। यहाँ ३. तीसरा ध्यानलाभी वह होता है जो न समाधि में समापत्तिकुशल है और न समाधि में आलम्बनकुशल ही। तथा ४. चतुर्थ वह है जो समाधि में समापत्तिकुशल भी है एवं समाधि में आलम्बनकुशल भी। इन चारों में, यह चतुर्थ ध्यानलाभी ही श्रेष्ठ, प्रवर, अग्र, प्रमुख एवं उत्तम माना गया है। ...पूर्ववत्... ॥'' •

१५. समापत्तिमूलकगोचरसूत्र : : समापत्तिगोचरकुशल ध्यानी श्रेष्ठ

१५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! यहाँ चार प्रकार के ध्यानलाभी होते हैं। इन में १. प्रथम ध्यानलाभी वह कहलाता है जो समाधि में समापत्तिकुशल तो होता है,

गोचरकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं गोचरकुसलो [N.484] होति, न समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति न च समाधिस्मिं गोचरकुसलो। इध पन, [B.230] भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो च होति समाधिस्मिं गोचरकुसलो च। तत्र...पे०...पवरो चा'' ति॥ ●

१६. समापत्तिमूलकअभिनीहारसुत्तं

१६. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति, न समाधिस्मिं अभिनीहार-कुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो होति, न समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति न च समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो च होति समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो च। तत्र...पे०...पवरो चा'' ति॥ ●

१७. समापत्तिमूलकसक्कच्चसुत्तं

१७. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध,

---

परन्तु समाधि में उचित स्थान खोजने में कुशल नहीं है। तथा २. दूसरा वह है जो समाधि में उचित स्थान खोजने में तो चतुर है, परन्तु समाधि में समापत्तिकुशल नहीं है। ३. यहाँ तीसरे प्रकार का वह ध्यानलाभी होता है जो न समाधि में उचित स्थान खोजने में चतुर होता है तथा न समाधि में समापत्तिकुशल ही। तथा ४. चतुर्थ प्रकार का ध्यानलाभी वह है जो समाधि में समापत्तिकुशल भी है तथा समाधि में उचित स्थान खोजने में भी कुशल होता है। इन चारों में, भिक्षुओ! यह चतुर्थ प्रकार का ध्यानलाभी ही श्रेष्ठ...उत्तम माना गया है। ...पूर्ववत्... ॥'' ●

१६. समापत्तिमूलकअभिनीहारसूत्र : : समापत्तिसङ्कल्पकुशल ध्यानी श्रेष्ठ

१६. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! ये चार ध्यानलाभी होते हैं। कौन से चार? १. यहाँ एक ध्यानी समाधि में समापत्तिकुशल होते हुए भी समाधि में दृढ सङ्कल्प रखने वाला नहीं होता। तथा २. दूसरा ध्यानी समाधि में दृढ सङ्कल्प रखने वाला होते हुए भी समाधि में समापत्तिकुशल नहीं होता। तथा ३. तीसरा न समाधि में समापत्तिकुशल होता है, न समाधि में दृढ सङ्कल्प रखने वाला होता है। ४. चतुर्थ समाधि में समापत्तिकुशल भी तथा समाधि में दृढ सङ्कल्प रखने वाला भी होता है। इन चारों में अन्तिम चतुर्थ ध्यानी ही श्रेष्ठ...उत्तम माना जाता है। ...पूर्ववत्... ॥'' ●

भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति, न समाधिस्मिं सक्कच्चकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं सक्कच्चकारी होति, न समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति न च समाधिस्मिं सक्कच्चकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो च होति समाधिस्मिं सक्कच्चकारी च। तत्र...पे०...पवरो चा'' ति॥

१८. समापत्तिमूलकसातच्चसुत्तं

१८. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति, न समाधिस्मिं सातच्चकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं सातच्चकारी होति, न समाधिस्मिं [N.485] समापत्तिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति न च समाधिस्मिं सातच्चकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो च होति समाधिस्मिं सातच्चकारी च। तत्र...पे०...पवरो चा'' ति॥

---

१७. समापत्तिमूलकसत्कृत्यसूत्र : : समापत्ति में गौरव मानने वाला श्रेष्ठ

१७. ...**श्रावस्ती में** ही... । ...''भिक्षुओ! यहाँ चार प्रकार के ध्यानलाभी होते हैं। उन में १. पहला ध्यानी समाधि में समापत्तिकुशल होता हुआ भी समाधि को गौरव (सत्कार) प्रदान नहीं करता। तथा २. दूसरा वह है जो समाधि को गौरव प्रदान करते हुए भी समापत्तिकुशल नहीं होता। तथा ३. तीसरा न समाधि को गौरव प्रदान करता है और न समापत्तिकुशल ही होता है। तथा ४. चतुर्थ ध्यानी समाधि को गौरव प्रदान करने वाला एवं समापत्तिकुशल—दोनों ही होता है। इन चारों में अन्तिम (चतुर्थ) ध्यानी ही सर्वश्रेष्ठ...एवं सर्वोत्तम माना जाता है। ...पूर्ववत्... ॥''

१८. समापत्तिमूलकसातत्यकारीसूत्र : : समापत्ति में सातत्य रखने वाला श्रेष्ठ

१८. ...**श्रावस्ती में** ही... । ...''भिक्षुओ! ये चार ध्यानी होते हैं। कौन से चार? १. पहला ध्यानी वह कहलाता है जो समाधि में समापत्तिकुशल होता हुआ भी उस समाधि में निरन्तरता (सातत्य) नहीं बनाये रख सकता। २. दूसरा वह होता है जो समाधि में निरन्तरता बनाये रखता हुआ भी समापत्तिकुशल नहीं होता। तथा ३. तीसरा वह है जो न समाधि में निरन्तरता बनाये रख सकता है तथा न समापत्तिकुशल ही होता है। तथा ४. चतुर्थ ध्यानी वह होता है जो समाधि में निरन्तरता भी बनाये रखता है एवं साथ ही समापत्तिकुशल भी है। इन चारों में यह चतुर्थ ध्यानी ही श्रेष्ठ...उत्तम कहलाता है।'' ...पूर्ववत्... ॥

१९. समापत्तिमूलकसप्पायकारीसुत्तं

१९. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, [B.231] भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति, न समाधिस्मिं [R.272] सप्पायकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं सप्पायकारी होति, न समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो होति न च समाधिस्मिं सप्पायकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो च होति समाधिस्मिं सप्पायकारी च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो च होति समाधिस्मिं सप्पायकारी च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं, खीरम्हा दधि, दधिम्हा नवनीतं, नवनीतम्हा सप्पि, सप्पिम्हा सप्पिमण्डो तत्र अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं समापत्तिकुसलो च होति समाधिस्मिं सप्पायकारी च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो चा'' ति॥ *(समापत्तिमूलकं)* ●

२०-२७. ठितिमूलकवुट्ठानसुत्तादिअट्ठकं

२०-२७. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं ठितिकुसलो होति, न समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो।

---

१९. समापत्तिमूलकसत्प्रायकारीसूत्र : : समापत्तिलाभकर्ता ध्यानी श्रेष्ठ

१९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! चार प्रकार के ध्यानी होते हैं। कौन से चार? १. यहाँ, भिक्षुओ! कोई ध्यानी समाधि में समापत्तिकुशल होता हुआ भी समाधि में लाभप्रदस्थिति में नहीं पहुँच पाता। २. कोई ध्यानी समाधि में लाभप्रदस्थिति में पहुँच कर भी समाधि में समापत्तिकुशल नहीं होता। तथा ३. कोई ध्यानी न समाधि में समापत्तिकुशल ही होता है तथा न समाधि में लाभप्रदस्थिति तक पहुँच पाता है। तथा ४. चतुर्थ ध्यानी इन दोनों ही बातों में—समाधि में समापत्तिकुशल भी एवं समाधि में लाभप्रदस्थिति तक पहुँचने वाला भी होता है। इन चारों ध्यानियों में यह अन्तिम (चतुर्थ) ध्यानी ही श्रेष्ठ...उत्तम कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! गौ से दूध, दूध से दही, दही से नवनीत, नवनीत से घी तथा इस घी से शुद्ध घी श्रेष्ठ होता है उसी तरह इन चतुर्विध ध्यानियों में चतुर्थ ध्यानी ही श्रेष्ठ, मुख्य, उत्तम एवं प्रवर कहलाता है॥'' ●

समापत्तिमूलक व्याख्यान समाप्त॥

२०-२७. स्थितिमूलकव्युत्थानसुत्तादि (अष्टक) : : स्थितिकुशल श्रेष्ठ

२०-२७. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! ये चार ध्यानी होते हैं। कौन से

इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो होति, न समाधिस्मिं ठितिकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं ठितिकुसलो होति न च समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं ठितिकुसलो [R.273] च होति समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी...पे०... उत्तमो च पवरो चा'' ति। *(पुरिममूलकानि विय याव सत्तवीसतिमा ठितिमूलकसप्पायकारीसुत्ता अट्ठ सुत्तानि पूरेतब्बानि। ठितिमूलकं)*॥ •

२८-३४. वुट्ठानमूलककल्लितसुत्तादिसत्तकं

[N.486] २८-३४. सावत्थिनिदानं। ''चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो होति, न समाधिस्मिं कल्लितकुसलो। [B.232, R.274] समाधिस्मिं कल्लितकुसलो होति, न समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो। नेव समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो होति न च समाधिस्मिं कल्लितकुसलो। समाधिस्मिं वुट्ठानकुसलो च होति समाधिस्मिं कल्लितकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी...पे०... उत्तमो च पवरो चा'' ति। *(अट्ठवीसतिमं पुरिममूलकानि विय याव चतुत्तिंसतिमा वुट्ठानमूलकसप्पायकारीसुत्ता सत्त सुत्तानि पूरेतब्बानि) वुट्ठानमूलकं*॥ •

चार? १. यहाँ, भिक्षुओ! कोई ध्यानी समाधि में स्थितिकुशल तो होता है, परन्तु समाधि में व्युत्थानकुशल नही होता। २. तथा कोई ध्यानी समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, परन्तु समाधि में स्थितिकुशल नहीं होता। ३. कोई ध्यानी न समाधि में स्थितिकुशल होता है तथा न समाधि में व्युत्थानकुशल ही होता है। तथा ४. चतुर्थ ध्यानी समाधि में स्थितिकुशल भी होता है एवं व्युत्थानकुशल भी। इन चारों ध्यानियों में यह चतुर्थ ध्यानी ही अग्र, श्रेष्ठ...उत्तम एवं प्रवर माना जाता है। ...पूर्ववत्... ॥'' •

(पूर्ववर्णित समाधिमूलक व्याख्यान के समान ही वहाँ के स्थितिमूलकसत्प्रायकारीसूत्र तक यहाँ भी उक्त आठ सूत्रों का व्याख्यान समझ लेना चाहिये।)

स्थितिमूलक व्याख्यान समाप्त॥

२८-३४. व्युत्थानमूलककल्लितसूत्र (सप्तक) : : व्युत्थानमूलक ध्यानी श्रेष्ठ

२८-३४. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...''भिक्षुओ! ये चार ध्यानी होते हैं। १. यहाँ, भिक्षुओ! कोई ध्यानी समाधि में व्युत्थानकुशल तो होता है, परन्तु वह समाधि में कल्यितकुशल नहीं होता। २. तथा कोई ध्यानी समाधि में कल्यितकुशल तो होता है, परन्तु समाधि में व्युत्थानकुशल नहीं होता। ३. कोई ध्यानी न समाधि में कल्यितकुशल होता है, न समाधि में व्युत्थानकुशल ही। तथा ४. चतुर्थ ध्यानी दोनों ही प्रकारों में कुशल होता है। इन में यह चतुर्थ ध्यानी ही श्रेष्ठ...उत्तम माना जाता है। ...पूर्ववत्... ॥'' •

३५-४०. कल्लितमूलकआरम्मणसुत्तादिछक्कं

३५-४०. सावत्थिनिदानं। "समाधिस्मिं कल्लितकुसलो होति, न [R.275] समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो। समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो होति, न समाधिस्मिं कल्लितकुसलो। नेव समाधिस्मिं कल्लितकुसलो होति न च समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो। समाधिस्मिं कल्लितकुसलो च होति समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी ...पे०...उत्तमो च पवरो चा" ति। *(पुरिममूलकानि विय याव चत्तालीसमा कल्लितमूलक-सप्पायकारीसुत्ता छ सुत्तानि पूरेतब्बानि)* कल्लितमूलकं॥ •

४१-४५. आरम्मणमूलकगोचरसुत्तादिपञ्चकं

४१-४५. सावत्थिनिदानं। "समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो होति, न समाधिस्मिं गोचरकुसलो। समाधिस्मिं गोचरकुसलो होति, न समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो। नेव समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो होति न च समाधिस्मिं गोचरकुसलो। समाधिस्मिं आरम्मणकुसलो च होति समाधिस्मिं गोचरकुसलो च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी

(इन अट्ठाईसवें सूत्र से चौंतीसवें व्युत्थानमूलकसत्प्रायकारीसूत्र तक पूर्वोक्त सात सूत्रों की तरह ही विस्तार कर लेना चाहिये।)

व्युत्थानमूलक व्याख्यान समाप्त॥

३५-४०. कल्यितमूलकआलम्बनसूत्र (षट्क) : : ध्यानी श्रेष्ठ

३५-४०. ...**श्रावस्ती में** ही...। ...पूर्ववत्... १. कोई समाधि में कल्यितकुशल होता है, परन्तु समाधि में आलम्बनकुशल नहीं होता। २. कोई समाधि में आलम्बनकुशल तो होता है, परन्तु समाधि में कल्यितकुशल नहीं होता। ३. कोई न समाधि में आलम्बनकुशल होता है, न समाधि में कल्यितकुशल ही। तथा ४. चतुर्थ समाधि में आलम्बनकुशल भी होता है एवं समाधि में कल्यितकुशल भी। इन चारों ध्यानियों में चतुर्थ ध्यानी ही श्रेष्ठ...उत्तम माना जाता है। ...पूर्ववत्... ॥" •

(इन पैंतीस से चालीस सूत्रों (कल्यितमूलकसत्प्रायकारीसूत्र) तक का व्याख्यान पूर्वोक्त सूत्रों के समान ही कर लेना चाहिये।)

कल्यितमूलक व्याख्यान समाप्त॥

४१-४५. आरम्मणमूलकगोचरसूत्र (पञ्चक) : : ध्यानी श्रेष्ठ

४१-४५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ... १. कोई समाधि में आलम्बनकुशल होता है, परन्तु समाधि में गोचरकुशल नहीं होता। २. कोई समाधि में गोचरकुशल तो होता है, परन्तु समाधि में आलम्बनकुशल नहीं होता। ३. कोई न समाधि में आलम्बनकुशल ही होता है, न समाधि में गोचरकुशल ही। तथा ४. कोई समाधि में आलम्बनकुशल भी होता

[R.276] ...पे०...उत्तमो च पवरो चा'' ति। *(पुरिममूलकानि विय याव पञ्च-चत्तालीसमा आरम्मणमूलकसप्पायकारी सुत्ता पञ्च सुत्तानि पूरेतब्बानि)* आरम्मणमूलकं॥

४६-४९. गोचरमूलकअभिनीहारसुत्तादिचतुक्कं

४६. सावत्थिनिदानं।''समाधिस्मिं गोचरकुसलो होति, न समाधिस्मिं अभि-
[B.233] नीहारकुसलो। समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो होति, न समाधिस्मिं गोचर-
[N.487] कुसलो। नेव समाधिस्मिं गोचरकुसलो होति न च समाधिस्मिं अभिनीहार-
कुसलो। समाधिस्मिं गोचरकुसलो च होति समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं, खीरम्हा दधि, दधिम्हा नवनीतं, नवनीतम्हा सप्पि, सप्पिम्हा सप्पिमण्डो तत्र अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं गोचरकुसलो च होति समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं...पे०...उत्तमो च पवरो चा'' ति।

४७. समाधिस्मिं गोचरकुसलो होति, न समाधिस्मिं सक्कच्चकारी...पे०...। *(वित्थारेतब्बं)*

४८. समाधिस्मिं गोचरकुसलो होति, न समाधिस्मिं सातच्चकारी...पे०...।

४९. समाधिस्मिं गोचरकुसलो होति, न समाधिस्मिं सप्पायकारी...पे०...॥

(गोचरमूलकं)

५०-५२. अभिनीहारमूलकसक्कच्चसुत्तादितिकं

५०. सावत्थिनिदानं। ''समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो होति, न समाधिस्मिं

है तथा समाधि में गोचरकुशल भी। इस तरह, इन चारों में यह चतुर्थ ध्यानी ही अग्र, श्रेष्ठ...उत्तम कहलाता है। ...पूर्ववत्... ॥''

(इन ४१ से ४५ सूत्र (आरम्मणमूलकसत्प्रायकारीसूत्र) तक पूर्ववत् व्याख्यान कर लें।)

आरम्मणमूलक व्याख्यान समाप्त॥

४६-४९. गोचरमूलकअभिनीहारसूत्र : : ध्यानी श्रेष्ठ

४६-४९. ...**श्रावस्ती में** ही...। ... १. कोई समाधि में तो गोचरकुशल होता है, परन्तु समाधि में अभिनीहारकुशल नहीं होता। २. कोई समाधि में अभिनीहारकुशल तो होता है, परन्तु समाधि में गोचरकुशल नहीं होता। ३. कोई साधक न समाधि में गोचरकुशल होता है तथा न समाधि में अभिनीहारकुशल ही। ४. तथा कोई समाधि में गोचरकुशल भी होता है तथा समाधि में अभिनीहारकुशल भी। इन चारों में जो ध्यानी उभयकुशल होता है, वही श्रेष्ठ, अग्र...उत्तम कहा गया है। ...पूर्ववत्... ॥''

गोचरमूलक व्याख्यान समाप्त॥

सक्कच्चकारी। समाधिस्मिं सक्कच्चकारी होति, न समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो। नेव समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो होति न च समाधिस्मिं सक्कच्चकारी। [R.277] समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो च होति समाधिस्मिं सक्कच्चकारी च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी...पे०...उत्तमो च पवरो चा'' ति।

५१. समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो होति, न समाधिस्मिं सातच्चकारी...पे०...।

५२. समाधिस्मिं अभिनीहारकुसलो होति, न समाधिस्मिं सप्पायकारी...पे०...॥

(अभिनीहारमूलकं)

५३-५४. सक्कच्चमूलकसातच्चकारीसुत्तादिदुकं

५३. सावत्थिनिदानं। ''समाधिस्मिं सक्कच्चकारी होति, न समाधिस्मिं सातच्चकारी। समाधिस्मिं सातच्चकारी होति, न समाधिस्मिं सक्कच्चकारी। नेव [N.488] समाधिस्मिं सक्कच्चकारी होति न च समाधिस्मिं सातच्चकारी। समाधिस्मिं सक्कच्चकारी च होति समाधिस्मिं सातच्चकारी च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं...पे०...उत्तमो च पवरो चा'' ति।

५०-५२. अभिनीहारमूलकसत्कृत्यसूत्र (त्रिक) : : ध्यानी श्रेष्ठ

५०. ...**श्रावस्ती में** ही...।... ''१. कोई समाधि में अभिनीहार (सङ्कल्प) कुशल होता है, परन्तु समाधि में सत्कार (गौरव) करने वाला नहीं होता। २. कोई समाधि में सत्कार तो कर्ता है, परन्तु वह उस में अभिनीहारकुशल नहीं होता। ३. कोई न समाधि में सत्कारकारी होता है, न अभिनीहारकुशल ही। तथा ४. कोई समाधि में सत्कारकारी एवं अभिनीहारकुशल—दोनों ही होता है। इन में चतुर्थ ध्यानी ही श्रेष्ठ, प्रवर...उत्तम माना जाता है। ...पूर्ववत्... ॥''

५१. ... १. समाधि में अभिनीहारकुशल तो होता है, परन्तु समाधि में निरन्तरता रखने वाला नहीं होता। ...पूर्ववत्... (चारों का व्याख्यान कर लें।) ॥''

५२. ... १. समाधि में अभिनीहारकुशल तो होता है, परन्तु समाधि में सत्प्राय (लाभप्रद) स्थिति में नहीं रहता। ...पूर्ववत्... ॥''

अभिनीहारमूलक व्याख्यान समाप्त ॥

५३-५४. सत्कृत्यमूलकसातत्यकारीसूत्र (द्विक) : : ध्यानी श्रेष्ठ

५३. ...**श्रावस्ती में** ही...।... ''१. कोई समाधि में गौरव तो रखता है, परन्तु उस में नैरन्तर्य नहीं रख पाता। २. कोई समाधि में सातत्यकारी तो होता है, परन्तु समाधि में गौरवशाली नहीं होता। ३. तीसरा वह होता है जो समाधि में न गौरवशाली होता है, न सातत्यकारी ही। तथा ४. चतुर्थ उभयवधि सम्पन्न होता है। ...उत्तम कहलाता है। ...पूर्ववत्... ॥''

५४. समाधिस्मिं सक्कच्चकारी होति, न समाधिस्मिं सप्पायकारी...पे०... ॥ •

५५. सातच्चमूलकसप्पायकारीसुत्तं

५५. सावत्थिनिदानं। "चत्तारोमे, भिक्खवे, झायी। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं सातच्चकारी होति, न समाधिस्मिं सप्पायकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं सप्पायकारी होति, न समाधिस्मिं सातच्चकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी नेव समाधिस्मिं सातच्चकारी होति न च समाधिस्मिं सप्पायकारी। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो झायी समाधिस्मिं सातच्चकारी च [R.278] होति समाधिस्मिं सप्पायकारी च। तत्र, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं सातच्चकारी च होति समाधिस्मिं सप्पायकारी च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं, खीरम्हा दधि, दधिम्हा नवनीतं, नवनीतम्हा सप्पि, सप्पिम्हा सप्पिमण्डो तत्र अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, य्वायं झायी समाधिस्मिं सातच्चकारी च होति समाधिस्मिं सप्पायकारी च अयं इमेसं चतुन्नं झायीनं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो चा" ति॥

५६. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥

(यथा पञ्चपञ्ञासं वेय्याकरणानि होन्ति तथा वित्थारेतब्बानि) •

झानसंयुत्तं समत्तं॥

---

५४. ...पूर्ववत्... "१. समाधि में सत्कारभाव तो रखता है, परन्तु वह समाधि की लाभप्रदस्थिति में नहीं पहुँच पाता। ...पूर्ववत्... ॥" •

५५. सातत्यमूलकसत्प्रायकारीसूत्र : : लाभस्थिति वाला ध्यानी श्रेष्ठ

५५. ...**श्रावस्ती में** ही...। ..."भिक्षुओ! ये चार ध्यानी गिनाये गये हैं। कौन से चार? १. यहाँ कोई ध्यानी समाधि में निरन्तरता तो रख पाता है, वह उस की लाभप्रदस्थिति तक नहीं पहुँच पाता। २. फिर एक ध्यानी ऐसा भी होता है जो समाधि की लाभप्रदस्थिति तक तो पहुँच जाता है परन्तु उस में सातत्य नहीं रख पाता। ३. तीसरा वह ध्यानी भी होता है जो न समाधि की लाभप्रदस्थिति तक पहुँच पाता है, न उस समाधि में सातत्य ही रख पाता है। तथा ४. चतुर्थ वह है जो समाधि में निरन्तरता भी रखता है तथा उस की लाभप्रदस्थिति में भी पहुँच पाता है। भिक्षुओ! वहाँ यह चतुर्थ प्रकार का ध्यानी ही अग्र, श्रेष्ठ...उत्तम कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! गौ से दूध, दूध से दही...पूर्ववत्...उसी तरह यह चतुर्थ ध्यानी इन तीनों से श्रेष्ठ...उत्तम कहलाता है॥" •

५६. भगवान् ने यह उपदेश किया। (इसे सुन कर) प्रसन्नचित्त उन भिक्षुओं ने भगवान् के इस भाषण का अभिनन्दन किया॥ •

तस्सुद्दानं

समाधि समापत्ति ठिति च, वुट्ठानं कल्लितारम्मणेन च। [B.235]
गोचरा अभिनीहारो सक्कच्च, सातच्चकारी अथो पि सप्पायं ति॥

खन्धवग्गो ततियो॥

तस्सुद्दानं

खन्धराधसंयुत्तं च, दिट्ठि ओक्कन्त उप्पादा। [N.489]
किलेससारिपुत्ता च, नागा सुपण्णगन्धब्बा।
वलाहवच्छझानं ति, खन्धवग्गम्हि तेरसा ति॥ [R.279 ●

—— ⁂ ——

॥ खन्धवग्गसंयुत्तपालि निट्ठिता॥

(जैसे इन उपर्युक्त पचपन (५५) सूत्रों का व्याख्यान पूर्ण हो उसी तरह इन का इस शास्त्र के अनुसार विस्तार कर लेना चाहिये।) ●

ध्यानसंयुक्त समाप्त॥

इस ध्यानसंयुक्त के सूत्रों का इन ११ विधियों से व्याख्या हुआ है—१. समाधि, २. समापत्ति, ३. स्थिति, ४. व्युत्थान, ५. कल्यित, ६. आलम्बन, ७. गोचर, ८. अभिनीहार, ९. सत्कृत्य, १०. सातत्यकारी एवं ११. सत्प्राय॥

इस स्कन्धवर्ग में इतने संयुक्तों का व्याख्यान हुआ है—१. स्कन्धसंयुक्त, २. राध-संयुक्त, ३. दृष्टिसंयुक्त, ४. अवक्रान्तसंयुक्त, ५. उत्पादसंयुक्त, ६. क्लेशसंयुक्त, ७. सारि-पुत्रसंयुक्त, ८. नागसंयुक्त, ९. सुपर्णसंयुक्त, १०. गन्धर्वसंयुक्त, ११. वलाहकसंयुक्त, १२. वत्सगोत्रसंयुक्त एवं १३. ध्यानसंयुक्त। इस तरह इस वर्ग में इन तेरह संयुक्तों का व्याख्यान हुआ है॥ ●

—— ⁂ ——

॥ स्कन्धवर्ग संयुक्तनिकाय पालि समाप्त॥

दसबलसेलप्पभवा, निब्बाणमहासमुद्दपरियन्ता।
अट्ठङ्गमग्गसलिला, जिनवचननदी चिरं वहतु॥

['बुद्ध' रूप महान् पर्वत से निःसृत, 'निर्वाण' रूप महासमुद्र तक जाने वाली, 'अष्टाङ्गिक मार्ग' रूप जल से पूर्ण यह 'बुद्धवाणी' रूप गङ्गा सदा बहती रहे।]